हिंदी तथा कोंकणी

भाषाशास्त्रीय तुलनात्मक अध्ययन

HINDI AND KONKANI

A COMPARATIVE PHILOLOGICAL STUDY

लेखक

डा. अनंत राम भट्ट

शांतादुर्गा विजयादुर्गा प्रकाशन
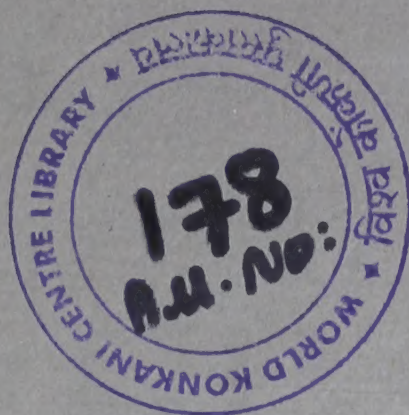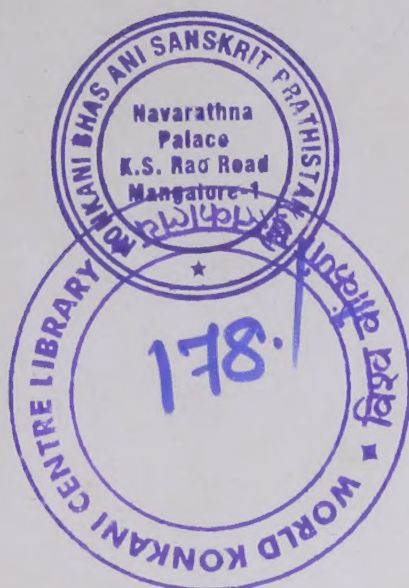
लेखक का संक्षिप्त परिचय
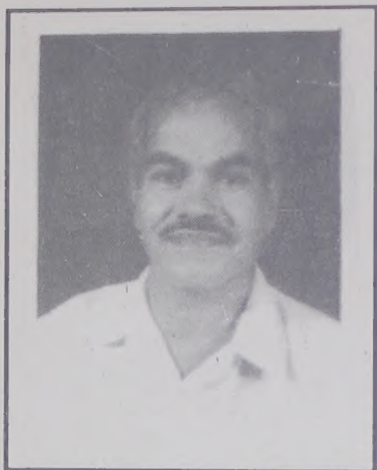
नाम – डा. अनंत राम भट्ट
जन्मस्थान – म्हार्दोल, गोवा 403 404
जन्मदिन – ११ एप्रिल १९३३
शिक्षा – एम्. ए. ; पीएच्. डी. ; संस्कृत व्याकरणतीर्थ ; साथ ही न्याय, मीमांसा, वेद, वेदान्त, योग, पौरोहित्य, ज्योतिष का भी अध्ययन; राष्ट्रभाषा पंडित ; हिंदी शिक्षक सनद ; कानडी, पुर्तगाली आदि भाषाओं का प्राथमिक अध्ययन ।

हाथ करघे के द्वारा वस्त्रनिर्माण प्रक्रिया में पूर्ण कौशल्य । संस्कृत पाठशाला तथा माध्यमिक स्कूल में कुल मिलाकर ३० बरस तक का अध्यापन कार्य ।

प्रकाशित साहित्य – हिंदी कोंकणी संबंध ; ऊठ दांड्या लाग फाटीक (कोंकणी) ।

संपादक के नाते – कोंकणी लोकवेद (कोंकणी) ; रामायण व महाभारतांतील गोष्टी (मराठी) ; गोवा बोर्ड की ग्यारहवी कक्षा के लिए द्वितीय भाषा हिंदी की पुस्तक ।

मार्गदर्शक के नाते – गोवा बोर्ड की ८ वी से १२ वी तक तृतीय भाषा मराठी की पुस्तकें ।

हस्तलिखित – कोंकणी व्याकरण ५ वी ; कोंकणी लोककथाएँ ; कोंकणी भाषाशास्त्र ; संस्कृत के कुछ स्तोत्रों का अनुवाद, संस्कृत में कुछ स्तोत्रौं की रचना ।

अन्य कुछ – लगभग पच्चीस बरस हिंदी की प्रचार–प्रसार परीक्षाओं का संचालन तथा सरकारी प्रौढ शिक्षा योजना की नीति में कुछ योगदान ।

लेख आदि – 'गोमन्तक ' अखबार में 'शिक्षणविषयक नयी योजना' नामक दो लेख तथा अन्य पत्र पत्रिकाओं में अनेक लेख प्रसिद्ध । आकाशवाणी पणजी केंद्र में अनेक भाषणों तथा चर्चाओं में सहयोग । कई सभाओं में अध्यक्ष तथा प्रमुख अतिथि के रूप में सम्मानित ।

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
VII	१	में	मैं
XIII	१०	मूल्य	कीमत
७	६	विदप्न	विद्वान
३१	४	हिंदी	हिंदी में
५५	१७	दुणे	दुणें
७१	१५	थूत	थूत्
७८	३१	हिं. 'व्'	हिं. 'ब्'
१०९	१२	कों. बारह	कों. बारा
११३	२३	आदि. ।	आदि ।
११७	२	इ, अ, इ'	इ, अ'
११८	२७	इस के	इसके
१२४	२६	त्रयस्त्रिशत्	त्रयस्त्रिंशत्
१४१	१४	नपुसकलिग	नपुंसकलिंग
१५६	१०	'आ'	'ओ'
१६५	५	सबद्ध	संबद्ध
१७५	११	पवत	पर्वत
१८१	२४	(३)	(२)
१९०	७	देखिए; पृ.	देखिए,
१९८	१	(॥)	(।।।)
१९८	२	हाकर 'मुज्इ'	होकर 'मुज्झ'
१९८	३	अदर्श	अदर्शन
२४१	२६	जो	जा
२३८	२१	प्रात	प्राप्त
२३९	१३	मे	में
२३८	१६	मे	में
२६२	५	पृ.	पृ. २०३
२६२	८	पृ.	पृ. २५३
२९९	७	मिलता है	मिलते हैं
३१५	७	नादशास्त्र	नादशास्त्र
३३७	६	भेद-में	भेद में
३५९	११	वर्तमा	वर्तमान
३५९	१४	खता	दीखता
३९३	६	हिंदी तथा कों.	हिं. तथा कों.
४०१	२	बे	बने रूप

हिंदी तथा कोंकणी

भाषाशास्त्रीय तुलनात्मक अध्ययन

HINDI AND KONKANI

A COMPARATIVE PHILOLOGICAL STUDY

–लेखक–

डा. अनंत राम भट्ट

एम्. ए. (प्रथम श्रेणी); पी. एच्. डी.

संस्कृत व्याकरणतीर्थ (प्रथम श्रेणी)

हिंदी शिक्षक सनद (द्वितीय श्रेणी); राष्ट्रभाषा पंडित

शिक्षक : न्यू इंग्लिश स्कूल, कुंडई–गोवा

तथा

शिक्षासदन, म्हार्दोळ–प्रियोल–गोवा
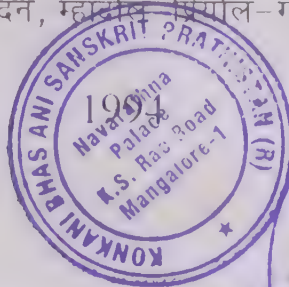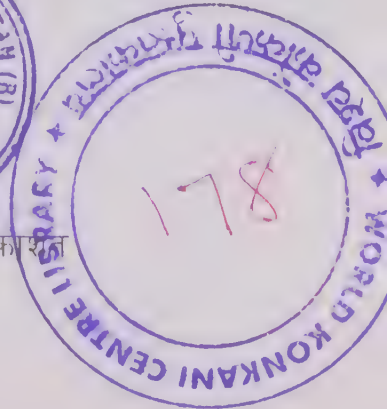
1994

श्री शांतादुर्गा विजयादुर्गा प्रकाशन

प्रकाशन :
श्री शांतादुर्गा विजयादुर्गा प्रकाशन
म्हार्दोल, गोवा – 403 404

प्रथम संस्करण 1994

प्रकाशक :
सौ. अंजनी अनंत भट्ट आदि मंडली
श्री शांतादुर्गा महालसा मंदिर प्राकार
म्हार्दोल, गोवा – 403 404

एक मात्र वितरक :
अनंत राम भट्ट
श्री वाडेसांतेरी मंदिर
म्हार्दोल, गोवा – 403 404

मुद्रक :
राजहंस आफसेट
पणजी, गोवा – 403 001

मूल्य: 600 = 00
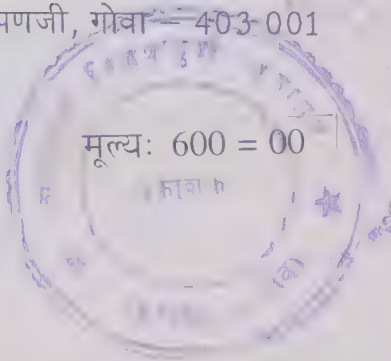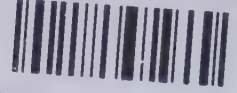
ॐ इदं पितृभ्यो नमो...

माता-पिता
की स्मृति में
सादर समर्पण

स्व. राम पद्मनाभ भट्ट

जन्म : २२-९-१९०२
मृत्यु : २६-८-१९८०

सौ. सीताबाई रा. भट्ट

जन्म : १४-२-१९११
मृत्यु : १२-४-१९७८
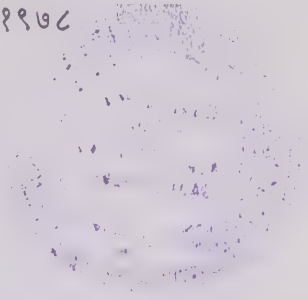
—अनंत राम भट्ट

ऋणनिर्देश

प्रस्तुत शोध कार्य के लिए मैंने अनेक लोगों से ज्ञान-कण प्राप्त किये हैं। अतः उन सब गुरुजनों का मैं ऋणी हूँ। फिर भी कुछ का नामनिर्देश किये बिना नहीं रह जाता। विशेषतः मेरे माता-पिता 'स्व. सौ. सीताबाई राम भट्ट,स्व. श्री राम पद्मनाभ भट्ट' से तो मैं कभी उऋण नहीं हो सकता ; इनके साथ-साथ मेरे चारों स्वर्गीय पितृव्यों – श्रीधर प. भट्ट, नारायण प. भट्ट, केशव प. भट्ट और मुकुंद प. भट्ट – की याद करना मेरा परम कर्तव्य है। इन सभी के कारण मुझमें बचपन से ही पढने-लिखने की रुचि पैदा हुई। इन्होंने मुझे बचपन में ही संस्कृत, मराठी, कानडी, हिंदी, अंग्रेजी का छुटपुटा ज्ञान करा दिया। इनमें विशेषतः मेरे पितृव्य – स्व. केशव पद्मनाभ भट्ट – का तो विशेष उपकारी हूँ, जिन्होंने मेरे दिमाग में बचपन से ही संस्कृत व्याकरण की नींव पक्की कर दी और संस्कृत रामायण, महाभारत आदि ग्रंथ मुझसे पढवा लिये जिससे आगे चलकर यह कार्य करने का सौभाग्य मिला।

स्व. दत्ताराम भट्ट तोटेकर भी मेरे गुरुवर्य रहे हैं। जिनके कारण संस्कृत काव्य-शास्त्र, वैदिक कर्मांग तथा ज्योतिष विषय में प्रवृत्ति हुई।

स्व. श्रीनिवास नरसिंह फोवकार, का भी आभारी रहना कर्तव्य है जिन्होंने महाराष्ट्र बोर्ड की सातवीं परीक्षा में सफलता पाने के लिए मेरी काफी मदद की और उन्हींकी सहायता से उस समय मुझे गोवा में पहला क्रमांक मिला। इसके कारण बम्बई के मराठा समाज से पच्चीस रुपये की पुस्तकें मिली थीं, जो बाद में यहाँ की जनता लायब्ररी को दे दी थीं। मोरजे मास्तर के कारण तो मैंने हिंदी में विशेष रुचि ले ली और हिंदी की प्रचार-प्रसार परीक्षाओं में बैठकर योग्यताएँ हासिल कीं।

इसके सिवा 'गौडपादाचार्य मठ, कवळे–गोवा' के मठाधीश श्री सच्चिदानंद सरस्वती स्वामी महाराजों और डिचोली-गोवा में स्थापित 'श्रीमदिंदिराकान्त संस्कृत पाठशाळा, व्यासाश्रम' के संस्थापक तथा 'पर्तगाळ मठ, काणकोण–गोवा' के मठाधीश श्री द्वारकानाथतीर्थ स्वामी महाराजों का भी मैं उपकृत हूँ जिनका आश्रय मेरी संस्कृत की पढाई पूर्ण होने में सहायक सिद्ध हुआ ; साथ-साथ यहाँ पढाने वाले स्व. श्री दत्तात्रेय साधले, स्व. श्री पुरुषोत्तमशास्त्री रानडे गुरुजी आदि का भी उपकृत हूँ। विशेषतः स्व. श्री वासुदेवशास्त्री निगुडकर, राजापूर के गुरुवर्यों का उऋण नहीं हो सकूँगा जिनके कारण मैं संस्कृत, न्याय, मीमांसा, व्याकरण आदि का अध्ययन कर सका और 'व्याकरणतीर्थ' उपाधि हासिल करने में कामयाब हुआ। यह बात मेरे लिए अतीव सौभाग्य की हुई, क्यों कि संस्कृत व्याकरण के परिपूर्ण ज्ञान के अभाव में यह शोध कार्य होना असंभव ही था।

इस संस्कृत की पढाई में मेरे सगे भाई श्री हरी राम भट्ट जी का भी योगदान है जिन्होंने घर की संकटग्रस्त परिस्थितियों में भी मेरी पढाई में बाधाएँ नहीं आने दीं और

इन्होंने तथा मेरे अनेक चचरे भाईयों – विशेषतः श्री कृष्ण मु. भट्ट , नरसिंह भट्ट आदि – ने बार-बार बढावा देकर मुझे प्रोत्साहित किया ।

गोवा शिक्षा संचनालय के निदेशक श्री एस्. व्ही. कुराडे जी, जो दामोदर विद्यालय के भूतपूर्व प्राचार्य थे उनका भी आभारी हूँ ।

श्री बाळकृष्ण कामत जी का भी उपकृत होना आवश्यक है जिन्होंने बी. ए. उपाधि परीक्षा में मेरी विशेष सहायता की ।

हिंदी तथा कोंकणी में पुर्तगाली शब्द हैं, परंतु हिंदी की अपेक्षा कोंकणी में वे अधिक हैं । इसके सिवा कोंकणी की प्राचीन पुस्तकें इस पुर्तगाली रोमन लिपि में लिखी गयी हैं । इन्हें पढना मुष्किल था । इसके लिए मुझे पुर्तगाली भाषा का ज्ञान आवश्यक हो गया । अतः पुर्तगाली उच्चारण तथा शब्दों के स्रोत जानने की दृष्टि से इस भाषा का ज्ञान देकर मेरी जिज्ञासा जिन्होंने पूरी की, उन स्व. मर्तो वि.कामत का भी मैं उपकृत हूँ ।

इस कार्य की सफलता का श्रेय मेरे मार्गदर्शक श्रद्धेय स्व. गुरुवर्य डा. शं. गो. राजवाडे जी को देते हुए उनके ऋण को सदैव शिर-मत्थे वहना मैं अपना कर्तव्य मानता हूँ । यह बात सच है कि उन्होंने मुझसे कठोर परिश्रम करवाये तो भी उनके अभ्यासपूर्ण मार्गदर्शन के बिना मुझसे यह कार्य संपन्न होना बहुत ही कठिन था । इसके साथ ही इस पुस्तक के प्रणयन के क्रम में जो योगदान उन्होंने दिया है वह भी बहुत ही उल्लेखनीय है । अतः उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ ।

डा. अरविंद पाण्डेय जी का भी मैं उपकृत हूँ जो मेरे गुरु रहे हैं । आप इस विषय में आस्थापूर्वक पूछताछ करते रहे और लिखने के लिए सदैव प्रेरणाएँ तथा सूचनाएँ देते रहे ।

इस शोध कार्य में कुछ मौलिक सूचनाएँ देकर जिन्होंने मेरे इस कार्य का गौरव किया उन डा. भोलानाथ तिवारी जी का भी मैं सदैव ऋणी हूँ ।

इसके सिवा ‘ सेंत्रु एदुकादोर सोसायटी, प्रियोल–गोवा ’ का भी उपकृत हूँ जिसके पदाधिकारियों ने शिक्षक का पदभार सौंपा, और जिसके कारण अध्ययन और अध्यापन जो व्यक्तिमात्र के विशेष धर्म हैं उन्हें बनाये रखने में मैं समर्थ हुआ ।

इसी प्रकार अनेक मित्रों , गुरुजनों , सहशिक्षकों , परिचितों तथा संबंधियों के प्रति भी मैं आभारी हूँ ,जिन्होंने मुझे अल्प-से-अल्प भी मदद की हो तथा यह शोध कार्य लिखने में मुझे प्रोत्साहित किया हो ।

यह पुस्तक लिखने में मैंने अनेकानेक सुधी विद्वानों के ग्रंथों, पुस्तकों, लेखों का उपयोग किया है । इन सभी विद्वानों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ ।

श्रीमती राधाबाई श्रीनिवास गायतोंडे जी का भी उपकृत हूँ जिन्होंने कुछ मदद की है।

मेरे परिचित वाले जानते हैं कि में रात-दिन इसी काम में प्रायः जुटा ही रहता हूँ। इस प्रकार जुटा रहने का सारा श्रेय मेरी सहधर्मिणी सौ. अंजनी देवी जी को है जिन्होंने घर का सभी व्यवहार संभालकर मुझे घर के काम से व्यस्त होने दिया और इस काम में पूर्ण रूप से लगा रखा। इनके आभार मानकर इन्हें उपकृत करना नहीं चाहता।

बच्चों – कु. संध्या अ. भट्ट , कु. अनिल अ. भट्ट , कु. वीणा अ. भट्ट ; श्री उल्हास भट्ट , कु. संजय मनोहर भट्ट तथा डा. दत्ता भट्ट – ने समय समय पर कुछ प्रुफ-संशोधन ग्रंथ-सूची और अनुक्रमणिका आदि तैयार करने में जो मदद की उसके लिए वे भी अभिनंदनार्ह हैं।

श्री वाडेश्वरी शांतादुर्गा उर्फ वाडेसांतेरी देवी के भोग की जिम्मेदारी सँभालकर लिखने में मेरा समय और भी बचा देने वाले श्री पद्मनाभ भट्ट , प्रभाकर भट्ट तथा श्री रमाकांत भट्ट जी का भी आभारी हूँ। पुस्तक के छपे हुए पृष्ठ जाँचने के लिए पणजी से म्हार्दोळ तथा म्हार्दोळ से पणजी ले जाने वाले श्री दिनेश विष्णु भट्ट का भी आभारी हूँ , क्यों कि इनके कारण मेरा बहुत समय बच गया।

विभिन्न पुस्तकालयों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों से प्राप्त सहयोग और सहायता के लिए उन्हें धन्यवाद देना परम कर्तव्य है। इनमें सबसे अधिक ' श्रीमद् शंकराचार्य पाठशाला, कवळे–गोवा ' के पुस्तकालय के अधिकारी एवं वहाँ के शिक्षक वर्ग , विशेषतः श्री सदाशिव नागेश टेंगसे तथा पु. बा. उपाध्ये जी से तो कभी उऋण नहीं हो सकता, क्यों कि उन्होंने मुझे जो-जो पुस्तक चाहिए थी वह देकर जब चाहे तब वापस लाकर देने की अनुमति देकर ऋण में रखा है। अतः उन्हें भी धन्यवाद देता हूँ।

श्री अभयकुमार वेलिंगकुमार ने इस पुस्तक की छपाई के बारे में थोडा प्रयत्न किया था। अतः वे भी धन्यवाद के भागी हैं।

' द्वादशवर्षैः व्याकरणं श्रूयते ' की तरह इस पुस्तक की छपाई में लगभग बारह बरस का काल बीत गया। लिखने में तो केवल छह बरस लगे ! ई. स. १९८१ में यह पूर्ण रूप से छपाई के लिए तैयार था। तब से यह गोवा और बेळगांव में इस मुद्रणालय से उस मुद्रणालय में घूमता ही रहा। कहीं दो बरस तो कहीं तीन बरस। अन्त में ' राजहंस आफसेट ' पणजी गोवा के मुद्रणालय में तीन-चार बरसों की रात–दिन के अतीव कष्टतर तपस्या के उपरान्त आज यह मुद्रित हो गयी। इसके लिए ' राजहंस आफसेट ' के मालिक श्री प्रभाकर भिडे तथा मुद्रित करने वाले उनके टायपिस्ट श्री गजानन पाटिल, श्री उमेश नाईक और श्री दामोदर नाईक धन्यवादार्ह हैं।

' यदत्र सौष्ठवं किञ्चित्तद् गुरोरेव मे नहि ' इति शम्।

– अनंत राम भट्ट

प्रस्तावना

मेरे प्रिय विद्यार्थी डाक्टर अनंत राम भट्ट जी का प्रबंध " हिंदी तथा कोंकणी का भाषाशास्त्रीय तुलनात्मक अध्ययन " पुस्तक रूप में प्रकाशित हो रहा है, यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई । इस प्रसन्नता के दो-तीन कारण हैं । एक कारण यह है कि इस प्रबंध से श्री. भट्ट जी की योग्यता सिद्ध हुई । एक अध्ययनशील विद्यार्थी और कुशल अभ्यासक का श्री. भट्ट जी का रूप स्पष्ट हुआ । मैं यह वाक्य इसलिए लिख रहा हूँ कि श्री. भट्ट हिंदी भाषी प्रांत से पर्याप्त दूर गोवा के निवासी हैं । परिश्रमपूर्वक हिंदी भाषा का अध्ययन करने के उपरांत ही वे प्रबंध यशस्वी रूप में लिख सके हैं यह मैं स्पष्ट करना चाहता हूँ ।

दूसरा कारण यह कि इस प्रबंध के प्रकाशन से ज्ञान-प्राप्ति के हेतु किये गये संशोधन ने यह भाव स्पष्ट किया कि बाहरी रूप में प्रांतीय अलगपन हम भारतीयों में कितना ही क्यों न हो, फिर भी अंतर्गत रूप में हम सब ' एक ' हैं । हमारी बोल-चाल, लेखन इत्यादि की भाषाओं में भिन्नता होते हुए भी हममें एकता अधिक है, भिन्नता कम । अधिकांश भारतीय भाषाएँ संस्कृतोत्पन्न अथवा संस्कृत ही से प्रभावित होने का यह परिणाम है ।

भारतीयों के ' एकात्म-भाव ' को वृद्धिंगत करने की दृष्टि से इस प्रकार के ' तुलनात्मक अध्ययन ' आवश्यक तथा उपादेय हैं । राष्ट्र की इस आवश्यकता को श्री. भट्ट जी ने सहायता की है । उनके प्रबंध की यह विशेषता और उपादेयता है ।

इस प्रबंध में श्री. भट्ट जी ने विस्तृत रूप में हिंदी तथा कोंकणी की चर्चा कर के यह सिद्ध किया है कि – हिंदी तथा कोंकणी में भिन्नताओं की अपेक्षा समानताएँ ही अधिक हैं । वे स्वयम् कोंकणी भाषा–भाषी होने के नाते उनके इस मंतव्य का महत्व समझ लेना आवश्यक है ।

किन्हीं कारणों से क्यों न हो, परंतु भारत के कुछ प्रांत ऐसे हैं जो हिंदी को ' संपर्क-भाषा ' के रूप में स्वीकार करने में आनाकानी करते हैं । हिंदी-भाषी प्रांत से पर्याप्त अंतर वाले स्थान में रहते हुए भी हिंदी से प्रेम रखने वाले श्री. भट्ट जी का यह प्रयत्न कि हिंदी को संपर्क-भाषा के रूप में स्वीकार करने में अडचनें कम हैं एक योग्य तथा आवश्यक विचार है ।

हिंदी तथा कोंकणी की समानताओं और विषमताओं को स्पष्ट करते हुए उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि इन भाषाओं में समानताएँ अधिक विषमताएँ कम हैं ।

मैं चाहता हूँ कि डा. भट्ट जी इस प्रकार का अन्य लेखन कर इस भावना को वृद्धिंगत करने का यशस्वी प्रयत्न करें, इति ।

स्थान : पुणे
दिनांक : १३–१–८८

शं. गो. राजवाडे
पी-एच्. डी. , डी. लिट.
पूर्व अध्यक्ष , हिंदी विभाग
पोस्ट ग्रैज्युएट इन्स्ट्रक्शन ऐण्ड रिसर्च सेंटर
पणजी-गोवा

मन्तव्य

डा. अनंत राम भट्ट लिखित " हिंदी तथा कोंकणी का भाषाशास्त्रीय तुलनात्मक अध्ययन " एक प्रामाणिक एवं महत्वपूर्ण ग्रंथ है। लगभग बीस बरसों से मैं उन्हें निकट से पहचानता हूँ। श्री भट्ट जी एम्. ए. के मेरे शिष्य रहे हैं और उन्होंने प्रथम श्रेणी में एम. ए. परीक्षा उत्तीर्ण की है। उसके बाद छः वर्षों में उन्होंने यह शोध प्रबंध लिखा। लगभग १९८१ में यह छपवाने की दृष्टि से पूरा हो गया था। परंतु यह बड़े दुर्भाग्य की बात हुई कि श्री भट्ट जी इसे तुरंत नहीं छपा पाये। फिर भी चुपचाप नहीं बैठे। इस विषय को लेकर निरंतर कुछ-न-कुछ लिखते रहे। कभी-कभी नये विषय को लेकर उपस्थित होते रहे। इस प्रकार जहाँ तक प्रकाशन का काम चलता रहा इसमें जोडते ही रहे। अतः मैं मानता हूँ कि यह बात बड़े सौभाग्य की भी हुई कि ग्रंथ की छपाई में कुछ देरी लगी। यदि यह ग्रंथ तुरंत छप जाता तो हम कुछ नयी बातों से वंचित हो जाते थे।

लेखक की तपस्या बड़ी कठिन है। इस ग्रंथ के लेखन के शुरू से लेकर प्रकाशन तक का समय लगभग अठ्ठारह बरस का है। इसके बीच उन्हें बहुत परिश्रम उठाना पडा ; बहुत-सी मुश्किलें झेलनी पड़ीं; अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा ; छपाई के नैराश्य के कारण लिखने में रुकावटें आती गयीं ; फिर भी उन्होंने अपने प्रयास को शिथिल होने नहीं दिया। अन्त में यह ग्रंथ मुद्रित होकर आ रहा है , यह बात समझकर बहुत खुशी हुई। यह बड़ी अच्छी बात है कि सुवर्ण की तरह इसका भी चारों प्रकारों से परीक्षण हुआ। इसका मतलब यह नहीं है कि इसमें दोनों भाषाओं का पूरा-का-पूरा विषय आ चुका है। कुछ बातें अधूरी लगती हैं , कुछ त्रुटियाँ भी महसूस होती हैं। फिर भी इनके लिए रुकना उचित नहीं था। विषय की व्यापकता के कारण ये बातें होना स्वाभाविक था। परंतु एक बात निश्चित है कि लेखक अपने विषयों का पक्का है , उसे अपने विचारों पर पूरा भरोसा है ; और इसका प्रत्यय ग्रंथ में यहाँ-वहाँ मिलता रहता है।

हमारे देश में कई भाषाएँ हैं। साथ ही राष्ट्रीय एकता के लिए हमने हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया है। फिर भी इसे सशक्त, सचेत माध्यम बनाना है ताकि भारत की एकता की नींव पक्की हो। इसके लिए हमें राष्ट्रभाषा हिंदी तथा देश की भिन्न-भिन्न भाषाओं में सामंजस्य एवं सामरस्य प्राप्त करा लेना चाहिए। अतः राष्ट्रभाषा हिंदी को देश की भिन्न-भिन्न भाषाओं के साथ उन्हीं के मूलाधार पर तौल लिया जाए तो हिंदी शिक्षकों तथा उनके द्वारा विद्यार्थियों को हिंदी तथा अपनी मातृभाषा के ज्ञान की गहराई प्राप्त करा लेने में कठिनाई नहीं होगी। अतः गोवा के हिंदी शिक्षकों और उच्चतर शिक्षण लेने वाले विद्यार्थियों को हिंदी तथा कोंकणी के भाषाशास्त्रीय तुलनात्मक अध्ययन की नितान्त आवश्यकता है , साथ-साथ इतर अनेक विज्ञ लोगों की ज्ञान-वृद्धि की दृष्टि से भी इसकी उपयोगिता साबित होगी। इसके सिवा एक और दृष्टि से देखा जाए तो इसमें

शक नहीं है कि हिंदी तथा कोंकणी के व्यतिरेकी पाठ्य-बिंदुओं को ध्यान में लेकर यदि गोवा की हिंदी पाठ्य-पुस्तकें तैयार की जाएँ और उसी प्रकार शिक्षक अध्यापन शुरू करें तो विद्यार्थी राष्ट्रभाषा हिंदी को शुद्ध रूप में अपनाने में तथा अपनी मातृभाषा की गठन पद्धतियों को भी उसी रूप में बनाये रखने में समर्थ होगा।

प्रस्तुत ग्रंथ डा. अनंत राम भट्ट जी की मौलिक कृति है। इसमें संस्कृत के आधार पर हिंदी तथा कोंकणी दोनों भाषाओं को समीप लाने का प्रयत्न किया गया है। भाषाशास्त्र को लेकर दोनों व्याकरणों का समग्र विषय जिस ढंग से प्रस्तुत किया है उसका अपना एक अनूठापन है। अवसर मिलते ही उन्होंने इसमें जो अनेक मौलिक विचार प्रस्तुत किये हैं उन मुद्दों पर सोचने के लिए हमें बाध्य होना पडता है। विशेषतः हिंदी के कर्ता कारक ' ने , पूरे सर्वनाम और वाच्यों तथा प्रयोगों ' को लेकर की हुई गडबडी समाप्तप्राय करने की दृष्टि से जो विचार प्रस्तुत किये हैं उनके संबंध में हिंदी भाषा-विज्ञों को जरूर सोचना चाहिए। इसी प्रकार ' हिंदी तथा कोंकणी शब्दों के परिवर्तन के नियम, आकारान्त तथा ओकारान्त शब्दों की व्युत्पत्ति , शब्दों के अर्थ, वाक्य-रचना ' आदि में इसकी अपनी एक खासियत दिखायी देती है।

इस प्रकार यह ग्रंथ अपने ढंग का पहला ही है। दो भाषाओं का इतनी सूक्ष्मता से , गंभीरता से गहरा ज्ञान प्राप्त करा देने वाला प्रायः यह एक उत्तम ग्रंथ है। लेखक की बरसों की साधना इसमें साकार हो उठी है।

उम्मीद है, भाषाशास्त्र में रुचि लेने वाले मान्यवर सुधी लोग , हिंदी के जाने-माने विद्वान लोग, हिंदी के शिक्षकवर्ग तथा उच्चतर पढ़ाई करने वाले विद्यार्थिगण इसका समुचित उपयोग करेंगे और अपनी ज्ञान-वृद्धि का ग्रंथ को सहयोगी बनाएँगे। यही ग्रंथ की उपलब्धि एवं सफलता होगी।

स्थान : धनतुलसी,
वाराणसी
दिनांक : २५–५–९३

अरविन्द पाण्डेय
पी-एच. डी., डी. लिट.
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गोवा विश्वविद्यालय, गोवा

प्रकाशक मंडल का मन्तव्य

हिंदी माताडुव प्रदेशकिंत बेरे भाषेय प्रदेशगळ कोंकणी भाषेय जनरू ईग हेच्च प्रमाणदिंद हिंदी भाषेय शिक्षण तेगेदुकोळ्ळुत्तारे. ई जनरिगे राष्ट्रभाषा हिंदी भाषेय व्याकरणद चलो ज्ञान बरबेकु मत्तु अदरसंगड भाषाशास्त्राद हेच्चु-कडिमे परिचय आगबेकेंदु लेखकन उद्देश. आदरिंद हिंदी चन्नागि कलिसुव शिक्षकरू कोंकणी भाषेय विद्यार्थियवरिगे हिंदी कलिसुवाग ई पुस्तकद पूर्णरीतियिंद सहाय तोक्कळ्ळुवरू. हागेय स्वल्प हिंदी ज्ञान तोक्कण्डिद्द कोंकणी भाषेय विद्यार्थियवरू ई पुस्तकदवतींद ज्ञानवृद्धि मत्तु भाषाशास्त्रद स्वल्प परिचय माडिसि कोळ्ळुवरू.

नम्म राष्ट्रद अथवा यावदे राज्यद ग्रंथ निर्माण योजनेय ई पुस्तकद प्रकाशन माडलिक्के आगलिल्ला, ईदु दोड्ड दुर्भाग्य. अवर ग्रंथनिर्माण योजनेय मार्फतदिंद आगुव लेखकन इच्छे इत्तु. आदरे अवन इच्छेय प्रकार आगलिल्ला. अवनु प्रयत्न माडिद्दाने. अवनु स्वल्प जनरिगे शिक्किद्दाने, हागेय स्वल्प संस्थेरिगे पत्रव्यवहार माडिद्दाने. आ समय तिळियतु अवरहत्तर ईग ई प्रकारद येनु योजने इल्ला. आदरिंद नाऊ एल्ला वज्जें नम्म तलेमेले तेगेदुकोण्डिद्देवे, अदरमेले नाऊ सफल आगिद्देवे. ईग प्रश्न उंटु ई वज्जे तोक्कण्डु होगी माराट माडबेकु. ई पुस्तकद बेले यारिगादरू हेच्च काणबहुदु. केंद्रीय शत-प्रतिशत अनुदान योजनेय ई पुस्तकद प्रकाशन आगिद्दरे किंमत कडिमे माडलिक्के आगुतित्तु , इग आगलिल्ला. आदरे नाऊ इट्टदु बेले हेच्चु इल्ला. ईग पुनर्मुद्रित हळे पुस्तकद बेले – उदाहरणे ' सान्वय सार्थ मराठी भागवत , मेघदूत , गोमन्तोपनिषद ' आदि – नोडिदरे ई अनुदानरहित छापिसद पुस्तकद किंमत हेच्चु इल्ला.

आदरे ई महत्वपूर्ण ग्रंथद प्रकाशन संबंधी प्रयासद एल्ला क्षेत्रदल्ली स्वागत आगुवदु ई नम्म आशा.

उपर्युक्त मन्तव्य का रूपान्तरण

अहिंदी भाषिक क्षेत्र के कोंकणी लोग अब पर्याप्त संख्या में हिंदी का अध्ययन करते हैं । इन लोगों को राष्ट्रभाषा हिंदी के व्याकरण का सम्यक् ज्ञान साथ ही भाषा-शास्त्र का थोडा-बहुत परिचय प्राप्त हो यह लेखक का उद्देश्य है । इसके लिए हम चाहते हैं कि हिंदी के विज्ञ शिक्षक कोंकणी भाषिक विद्यार्थियों को हिंदी पढाने में

इसकी पूरी तरह से सहायता लें तथा कोंकणी भाषिक विद्यार्थी भी – जो हिंदी के जानकार हो गये हैं – इसकी सहायता से अपनी हिंदी भाषा में ज्ञान-वृद्धि करा लें तथा भाषा-शास्त्र से यत्किञ्चित् परिचय प्राप्त करा लें।

बडे दुर्भाग्य की बात है कि किसी भी राज्यस्तरीय या राष्ट्रस्तरीय ग्रंथ-निर्माण की योजना के अन्तर्गत इस ग्रंथ को लेखक छपा नहीं पाये। वे चाहते थे कि ऐसा हो। परंतु लेखक की इच्छा के अनुसार नहीं हुआ। ऐसा भी नहीं है कि उन्होंने प्रयत्न ही नहीं किये। अनेक व्यक्तियों और संस्थाओं से मिलने तथा पत्र-व्यवहार करने के उपरान्त पता चला कि यह ग्रंथ छापने में उन व्यक्तियों और संस्थाओं के मार्ग कुण्ठित हुए हैं। अतः सारा बोझ अपने ही खंदों पर लेकर खडा होने का प्रयास किया , और इसमें हम सफल हुए। अब प्रश्न है इसे ढोने का अर्थात् इसके खपने का, क्यों कि इसकी मूल्य बहुत दिखायी देगी। केंद्रीय शत-प्रतिशत अनुदान योजना के अन्तर्गत यदि यह ग्रंथ छप जाता तो इसका मूल्य बहुत ही कम हो जाता था। परंतु ऐसा नहीं हुआ है। फिर भी यह मूल्य हमारी दृष्टि से अधिक नहीं है; ताकि पुराने ग्रंथ जो कई बार छापे हैं और फिर आज जब हम उनके पुनर्मुद्रण की कीमत देखते हैं तो दंग रह जाते हैं , जैसे :– ' सान्वय सार्थ मराठी भागवत, मेघदूत, कोंकणी गोमन्तोपनिषद '; आदि। अतः लगता है बिना अनुदान से प्रकाशित इस ग्रंथ की कीमत जो रखी है वह कम ही है।

आशा है, इस महत्वपूर्ण ग्रंथ के प्रकाशन-संबंधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत होगा।

प्रकाशक मंडल–

सौ. अंजनी अ. भट्ट

कु. संध्या भट्ट

कु. अनिल भट्ट

कु. वीणा भट्ट

प्राक्कथन

मेरे प्रबंध का विषय है – " हिंदी तथा कोंकणी का भाषाशास्त्रीय तुलनात्मक अध्ययन "। इसके पूर्व हिंदी तथा कोंकणी का भाषाशास्त्रीय अध्ययन अलग-अलग रूप में हो चुका है । फिर भी हिंदी तथा कोंकणी को लेकर किया हुआ भाषाशास्त्रीय तुलनात्मक अध्ययन मेरी जानकारी के अनुसार उपलब्ध नहीं है । हिंदी तथा कोंकणी के भाषाशास्त्रीय अध्ययन में कहीं-कहीं एकाध समय तुलना के लिए हिंदी तथा कोंकणी के व्याकरणिक रूपों को उद्धृत किया है, फिर भी 'ध्वनि-विचार, शब्द-विचार' तथा 'वाक्य-विचार' के तौर पर सभी व्याकरणिक रूपों को लेकर किया हुआ अध्ययन अब तक उपलब्ध नहीं है । इस दृष्टि से हिंदी भाषा में किया गया यह प्रयास सर्वथा नवीन है ।

आज हिंदी भारत की संपर्क-भाषा है । अतः भाषिक आदान-प्रदान की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक हो गया है । इसलिए इस पुस्तक में हिंदी तथा कोंकणी भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है । इससे हिंदी तथा कोंकणी की विशेषताओं एवं विशिष्टताओं से परिचित होने पर दोनों भाषाओं का सम्यक् परिचय हो सकता है । प्रा. मैक्समूलर के मन्तव्य के अनुसार 'सभी उच्चतर ज्ञान की प्राप्ति तुलनात्मक अध्ययन से होती है' । अतः हिंदी तथा कोंकणी के उच्चतर ज्ञान की प्राप्ति इस तुलनात्मक अध्ययन से प्राप्त होने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

भारत में एकता बनायी रखने के लिए विविध प्रकार के वैचारिक प्रवाह कार्य-रत हैं तथा आज भी भारत में राष्ट्रीय एकता के लिए नये-नये सूत्र खोजे जा रहे हैं । ऐसी स्थिति में प्रादेशिक भिन्नताओं को समाप्त करने के लिए भाषिक आदान-प्रदान के द्वारा कार्य करना होगा । इसके लिए भिन्न-भिन्न प्रदेशों की भाषाओं की विशेषताओं एवं विशिष्टताओं से परिचित होने की आवश्यकता है जिससे देश की एकता बनायी रखने के काम में कुछ सहायता हो सकेगी । अतः भारतीय एकता के लिए भारतीय विभिन्न भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है । " हिंदी तथा कोंकणी का भाषाशास्त्रीय तुलनात्मक अध्ययन " इस दिशा में एक स्पृहणीय मार्ग कहा जा सकता है ।

हिंदी तथा कोंकणी के शिक्षण कार्य को त्वरित ही आत्मसात् करने तथा उसे वैज्ञानिक बनाने में हिंदी तथा कोंकणी की तुलना बहुत सहायता दे सकेगी । अतः गोवा की दृष्टि से इस अध्ययन की अधिक उपयोगिता सिद्ध होगी । माध्यमिक, उच्च माध्यमिक तथा कालिज के स्तर पर हिंदी पढाते समय विद्यार्थियों की मातृभाषा की ओर ध्यान देकर उसमें प्राप्त कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न किया जाए अथवा जो विद्यार्थी अपनी मातृभाषा के प्रभाव के कारण हिंदी में गलतियाँ करते हैं उन्हें इस अध्ययन के आधार पर सुधारने का प्रयत्न किया जाए तो हिंदी के सुधार में कम कठिनाइयाँ प्राप्त होंगी ।

यद्यपि हिंदी तथा कोंकणी में भिन्नता दिखायी देती है फिर भी यह भिन्नता गौण है क्यों कि उसमें साम्य अधिक है; जिसके कारण हिंदी भाषा-भाषी को कोंकणी तथा कोंकणी भाषा-भाषी को हिंदी सर्वथा अपरिचित नहीं दिखायी देती। यदि थोडा-सा परिश्रम लिया जाए तो हिंदी भाषा-भाषी कोंकणी भाषा को और कोंकणी भाषा-भाषी हिंदी भाषा को क्षिप्र ही आत्मसात् कर सकता है। इसका कारण यह है कि हिंदी तथा कोंकणी भाषाएँ संस्कृत के ही विकसित रूप हैं ; अथवा ऐसा माना जा सकता है कि संस्कृत भाषा ने भिन्न-भिन्न काल में तथा भिन्न-भिन्न प्रदेश में नये-नये रूप धारण किये हैं जो कुछ असमानता के साथ समान हैं।

अतः यह मानना आवश्यक होता है कि कोई भी व्यक्ति भारतीय आर्यभाषाओं में से किसी भी भारतीय भाषा का – चाहे वह हिंदी हो या कोंकणी – भाषाशास्त्रीय अध्ययन सूक्ष्मता से करना चाहता है तो उसे संस्कृत के व्याकरण ग्रंथों का पूरा-पूरा अध्ययन करना चाहिए।

यह पुस्तक हिंदी तथा कोंकणी भाषा संबंधी विशेष ज्ञान प्राप्त करा लेने वाले प्रत्येक जिज्ञासु के लिए लाभदायक सिद्ध होगी यह मेरा विश्वास है। फिर भी मैं दावे के साथ यह नहीं कह सकता कि इसका एक बार पठन करने वाला कोई भी व्यक्ति हिंदी तथा कोंकणी का विज्ञ बन सकता है। हमें एक बात मान लेनी ही चाहिए कि भाषा का ज्ञान किसी पुस्तक को एक बार पढने से नहीं, बल्कि सतत किये जाने वाले अध्ययन तथा सीखने की उम्मीद पर ही निर्भर होता है।

इस पुस्तक के संबंध में कुछ बातें कहना आवश्यक है।

(१) हिंदी तथा कोंकणी के विशिष्ट स्वरों और व्यंजनों को पहले अध्याय में स्पष्ट किया है। परंतु दूसरे अध्याय से इनका प्रयोग सामान्य रूप से किया है ; जैसे :– हिंदी : ' अ , इ , उ , क् , ख् , ग् , ड् , ढ् ' आदि ; कोंकणी ' अ, ए, ओ , च् , ज् , झ् ' आदि। हिंदी में ' क् , ख् ' आदि विशिष्ट व्यंजनों के नीचे नुक्ता देने का रिवाजा है। फिर भी यहाँ इस पद्धति को नहीं स्वीकारा है। क्यों कि छापखाने में इस पद्धति का अवलंब करना बहुत कठिन है; इसके सिवा कोंकणी में ' च् , ज् ' आदि विशिष्ट व्यंजनों के नीचे नुक्ता देने का रिवाजा नहीं है। एक दूसरी बात भी थी कि हिंदी तथा कोंकणी के अन्य विशिष्ट स्वरों का भी निर्देश भिन्न पद्धति से करना पडता था। अतः इन सारे विशिष्ट स्वरों तथा व्यंजनों को एक ही प्रकार से लिखा है।

(२) इस पुस्तक में सर्वनाम का पाँचवाँ अध्याय जरूरत से अधिक लम्बा हो गया है। वास्तव में इसमें हिंदी के १२ तथा कोंकणी के ९ सर्वनामों की चर्चा करनी है। पहले इस अध्याय को अलग कर उसका छोटा-सा संक्षिप्त रूप इस पुस्तक में देना चाहता था और

इस लम्बे अध्याय को अलग पुस्तक के रूप में छपवाना चाहता था। परंतु बाद में लगा कि ऐसा करना मेरे लिए प्रायः असंभव है। अतः यह अध्याय जैसे-के-वैसे रख दिया है। यहाँ जो विचार प्रस्तुत किये हैं उन्हें विद्वान लोगों के सामने रखना उचित समझता हूँ। बीच-बीच में विचार विस्तृत होने के कारण हिंदी तथा कोंकणी सर्वनामों की तुलना में व्यवधान जरूर पडा है। फिर भी विषय की दृष्टि से उसकी उपेक्षा करना ठीक नहीं समझा। इस लम्बे अध्याय को यहाँ रखने का मैंने जो विचार किया है उसे विद्वान तथा अन्य लोग क्षमा करें।

(३) हिंदी तथा कोंकणी शब्दों का जो परीक्षण किया गया है उसके आधार यह बात स्पष्ट होती है कि हिंदी तथा कोंकणी में संस्कृत शब्द बहुत संख्या में प्राप्त हैं। उसके अनन्तर हिंदी में फारसी, अरबी, अंग्रेजी तो कोंकणी में कानडी, पुर्तगाली , अंग्रेजी शब्द अधिक हैं। इनके सिवा दोनों में देशी भाषाओं के शब्द भी विपुल प्रमाण में मिलते हैं। आजकल तो दोनों में अंग्रेजी शब्दों की भरमार अधिक होने लगी है।

अतः हिंदी तथा कोंकणी में साम्य लाने की दृष्टि से यह विचार आवश्यक है कि 'आदमी , औरत ' जैसे शब्दों का त्याग करें और तत्सम या तद्भव शब्दों ' मानव, मानुस , मनुष्य मनीस, स्त्री ' आदि का प्रयोग करें। मतलब समानार्थक तथा समानानुपूर्विक शब्दों का अधिक से अधिक व्यवहार करने का प्रयत्न करें ताकि हिंदी तथा कोंकणी में शब्दों की दृष्टि से समानता उभर आए। इसी प्रकार ' सामाजिक , माध्यामिक , ऐतिहासिक ' आदि शब्दों को हिंदी तथा कोंकणी में जैसे-के-वैसे स्वीकार करें जो संस्कृत के अपने हैं और हिंदी में काफी प्रचलित हैं। ' सूर्य, पूर्व, मूर्ख ' आदि शब्दों को भी कोंकणी में इसी प्रकार लिखें ताकि ये शब्द संस्कृत, हिंदी, कोंकणी में समान रह जाएँगे। हिंदी को चाहिए कि वह भी अपना दुराग्रह छोडे ; क्यों कि हिंदी में ' दूकान ' और ' दुकान ' दो शब्द हैं। परंतु हिंदी में ' दूकान ' ही लिखवाने का आग्रह है। इस आग्रह को छोड कोंकणी भाषा-भाषी यदि ' दुकान ' भी लिखता है तो स्वीकृत होना चाहिए क्यों कि कोंकणी में ' दुकान ' शब्द ही प्रचलित है। फिर भी अभ्यास ' दूकान ' शब्द का ही हो।

(४) कोंकणी शब्दों का स्वरूप अब तक ठीक-ठीक न होने के कारण इसके शब्द कहीं-कहीं अलग-अलग रूप में लिखे गये हैं , जिनमें विवाद होना संभव है, जैसे :– ' शिकैता/शिकयता ', ' नी/नीं ', ' णी/णीं ', ' आमो/आंबो ' , ' तिज्या तकलेन / तिजे तकलेन ' , ' धा वर्सां पिरायेच्या एका चलयेच्या आवयक/चलयेचे आवयक ' आदि। तो इस बात को यहाँ गंभीरता से न लें।

(५) इस पुस्तक की छपाई में कुछ अक्षर भिन्न-भिन्न रूप में छपे गये हैं, जैसे :– ' ञ्च् / ञ्च् '। यही स्थिति ' ट्ट / ट्ट् ', ' द्द / द्द् ' , ' द्ध / ध्द् ' आदि अक्षरों के बारे में हुई है। एक ही ' श्च ' अक्षर एक ही पंक्ति में तीन तरह से आया है , जैसे :– ' श्च ' ,

' श्च ', ' श्च '। शब्दों में भी कहीं-कहीं रूपान्तरण हुआ है, जैसे :– ' अन्तर / अंतर ', ' परन्तु / परंतु ' आदि। इस प्रकार की अन्य गलतियों को पाठक समझ लें।

(६) इसमें कुछ आधिक्य भी दिखायी देता है। जैसे :– ' ऊ (= जूं) : उवां '। वास्तव में ' उवां ' की वहाँ आवश्यकता नहीं थी क्यों कि एकवचनीय ' उवा ' उदाहरण जो दिया है उससे काम चलता था (देखिए, पृ. १५५)। इसी प्रकार विषय समझाने की दृष्टि से कहीं-कहीं उसकी द्विरुक्ति भी हुई है, फिर भी विषय की दृष्टि से वह क्षन्तव्य है।

(७) इस पुस्तक में कहीं-कहीं शब्द जोडकर लिखे हैं तो कहीं-कहीं अलग, जैसे :– ' होनेवाला / होने वाला ', ' क्योंकि / क्यों कि ' आदि। इसी प्रकार सामासिक शब्दों में भी हुआ है, जैसे :– ' स्वरपरिवर्तन /स्वर परिवर्तन ', ' लिंगभेद / लिंग-भेद / लिंग भेद ', ' वचन भेद / वचन-भेद / वचनभेद ' आदि। कभी-कभी शब्द पास तो कभी-कभी दूर हो गये हैं, जैसे :– ' कभी-कभी / कभी – कभी ' आदि।

(८) इसकी पाण्डु-लिपि तैयार होने तथा प्रेस में मुद्रण का कार्य चलते रहने पर भी इसमें अनेक स्थलों पर छोटे-मोटे सुधार किये गये हैं। इसके सिवा जहाँ तक हो सका नये-नये विषय इसमें समाविष्ट करने और जोडने का प्रयास किया गया हैं। फिर भी बहुत कुछ बातें शेष रह गयीं हैं। उदाहरण के लिए कुछ बातें देखिए :–

(i) हिंदी तथा कोंकणी में ' न् ' के पूर्व ' न् ' आता है तब उसके पूर्वस्वर पर अनुस्वार (ं) नहीं दिया जाता, बल्कि ' न् ' ही लिखा जाता है, जैसे :– हिंदी : ' अन्न, प्रसन्न, उन्नीस, अनन्नास ' आदि ; कोंकणी : ' अन्न, प्रसन्न, अन्नाटी, गिन्नाटी ' आदि (हिंदी के ' उन्नीस, अनन्नास ' तथा कोंकणी के ' अन्नाटी, गिन्नाटी ' में अर्थ-भेद है)। परंतु हिंदी में ' अन्तर ' शब्द अन्तर/अंतर ' दो रूपों में लिखा जाता है तो कोंकणी में ' अन्तर ' शब्द केवल एक ही प्रकार से ' अंतर ' रूप में लिखा जाता है। ऐसा यदि है तो ' अन्न ' आदि शब्द ' अंन ' आदि रूपों में क्यों नहीं लिखते ? इसी प्रकार ' सम्मान, उम्मीद ' के बदले ' संप (=सम्प) ' की तरह ' संमान, उंमीद ' क्यों नहीं लिखा जाता ? संस्कृत में ये प्रश्न नहीं उठते। यहाँ ये प्रश्न उठाये हैं इसलिए कि अनुस्वार के बारे में फिर से सोचें।

(ii) कोंकणी में ' कूंय, खंय, गांयडोळ, गोंय, गोंयडो, पांयजण, पोंय ' आदि शब्दों में ' ञ् ' जैसी श्रुति है या ' यँ ' जैसी ? यदि ' ञ् ' मानी जाए तो इसका चवर्ग में समावेश करना आवश्यक होगा और ' यँ ' जैसी मानी जाए तो ' य् ' को निरनुनासिक तथा सानुनासिक स्वरों की तरह द्विधा मानना होगा। संस्कृत में भी ' य् ' को द्विधा माना है। ब्रज बोली में प्राप्त ' साञ्, नाञ् ' शब्दों में स्थित ' ञ् ' का

उच्चारण धीरेंद्र वर्मा के अनुसार ' यँ् ' से मिलता जुलता है (देखिए, हिंदी भाषा का इतिहास पृ. ११९)।

(iii) हिंदी तथा कोंकणी शब्दों के लिंगभेद में एक और बात दिखायी देती है , जैसे :– हिंदी में ' हार ' शब्द ' माला ' अर्थ में हो तो वह पुल्लिंग में होता है और ' पराजय ' अर्थ में हो तो वह स्त्रीलिंग में । यही बात कोंकणी ' हार ' शब्द में भी दिखायी देती है । कोंकणी का एक अन्य उदाहरण भी देखिए :– ' वेळ ' शब्द ' समुद्राची देग (=सागर का तट) ' अर्थ में स्त्रीलिंग है तो ' काळ (=काल) , समय ' अर्थ में पुल्लिंग ।

(iv) लिंग की कोटि के अन्त में , हिंदी तथा कोंकणी में अधिक व्यवहृत होने वाले भिन्न-भिन्न लिंगवाची शब्दों की एक सूची देने से लिंग-व्यवस्था में थोडी-सी सुगमता प्राप्त हो जाती ।

(v) व्यक्तिवाचक ' सीता ' संज्ञा-युक्त कोंकणी का ' सीतेन आमो खालो (=सीता ने आम खाया).' वाक्य लीजिए । इसमें ' सीता ' शब्द का विकृत रूप ' सीते(–न) ' हुआ है । परंतु ' प्रेमा, विजया , माला, निशा, उषा, राधा, गीता ' आदि व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के विकृत रूप ' प्रेमे(–न) , विजये (–न) ' आदि नहीं होता है । यहाँ ' प्रेमा(–न), विजया(–न) ' जैसा प्रयोग दीखता है । क्वचित् ' राधा ' शब्द का ' राधा/राधे(–न) ' दीखता है । ' भगवद्गीता ' अर्थ में ' गीता ' शब्द के विकृत रूप में ' गीते(–न) ' होता है , जैसे :– ' गीतेन आमकां खूब कितें सांगलां (=गीता ने हमें बहुत कुछ बताया है) .' । अर्थात् इस प्रश्न का सोपपत्तिक उत्तर ढूँढना आवश्यक है ।

(vi) हिंदी में ' करता, जाता , चलता, होता ' आदि एक पदात्मक क्रिया भविष्यकाल का अर्थ देती है । इस ' ता ' में यह अर्थ कहाँ से प्राप्त है ? इसके सिवा यह भिन्न-भिन्न काल में भी प्रयुक्त है, इसका क्या कारण है ?

(vii) हिंदी ' कुछ ' की कोंकणी ' कांय ' सर्वनाम से यद्यपि तुलना की है फिर भी कभी-कभी इन दोनों में अर्थ-साम्य की दृष्टि से अन्तर आता है जैसे :– ' हमें सब कुछ मालूम है (हिंदी) = आमकां सगळें कितें खबर आसा (कोंकणी) ' । यहाँ हिंदी ' कुछ ' के अर्थ में कोंकणी ' कितें ' का प्रयोग हुआ है । इस संबंध में कुछ नहीं बता पाया ।

(viii) कोंकणी के ' हातूंत / हेतूंत, तातूंत/तेतूंत 'आदि सर्वनामवाचक शब्दों के बारे में सोचना चाहिए कि इनकी निष्पत्ति कैसी हुई है ? इसमें ' तूंत ' कैसे प्राप्त है ? कोंकणी ' त ' प्रत्यय प्राकृत ' अन्तो ' से विकसित माना गया तो भी इससे ' तूंत ' तो नहीं हो सकता !

(ix) हिंदी में निजवाचक ' आप ' और आदरवाचक ' आप ' का विकास संस्कृत के ' आत्मन् ' शब्द से माना जाता है और इस पुस्तक में भी माना गया है । फिर भी लगता है इन दोनों में से निजवाचक ' आप ' का विकास संस्कृत ' आत्मन् ' शब्द से तो आदरवाचक ' आप ' का विकास संस्कृत ' आप्त ' शब्द से माना जाना उचित है । इससे हिंदी के दोनों शब्दों में प्राप्त अर्थ-भेद भी स्पष्ट हो जायेगा ।

(x) हिंदी में आँकारान्त विशेषण प्राप्त हैं , जैसे :– ' दायाँ , बायाँ , पछुवाँ, निहाँ (फारसी से आगत शब्द), निचोहाँ ' आदि । कोंकणी में , नपुंसकलिंग में ईंकारान्त और एंकारान्त विशेषण प्राप्त होते हैं , जैसे :– ईंकारान्त : ' सगळीं / गुणीं भुरगीं ' ; एंकारान्त : ' सगळें/बरें जग ' ; आदि । इसी प्रकार पुल्लिंग में ऊंकारान्त भी एक विशेषण प्राप्त है जो पुर्तगाली से प्राप्त है, जैसे :– ' कोमूं ' ।

(xi) हिंदी तथा कोंकणी में पूर्णविराम लिखने की पद्धति में अन्तर है , जैसे :– हिंदी में रेखा ' । ' तथा कोंकणी में बिंदु ' . ' । इनके संबंध में बताना आवश्यक था ।

इस प्रकार लगता है अब भी यह पुस्तक पूरी नहीं हुई है । कुछ बातें स्पष्ट नहीं हो पायी हैं ; कुछ बातें अधूरी लगती हैं ; कुछ त्रुटियाँ महसूस होती हैं । इनके लिए रुकना अब ठीक नहीं है । सभी कुछ पूर्ण रूप में लिखने के लिए और भी पाँच-दस बरस प्रयास करना पडता । इसे व्यावहारिक न समझकर यह तुलनात्मक अध्ययन विद्वज्जनों तथा उच्चतर ज्ञान प्राप्त कर लेने वाले जिज्ञासु विद्यार्थियों के सामने रखना उचित समझा ।

इस पुस्तक में अनेक गलतियाँ हैं जिन्हें सुधारना आवश्यक था । खेद है कि प्रेस में बैठकर गलतियाँ सुधारने में काफी सावधानी रखने पर भी बहुत सी गलतियाँ रह गयी हैं । वास्तव में व्याकरण ग्रंथ में ऐसा होना ठीक नहीं था । परंतु अब समय के अभाव में इन्हें सुधारना अशक्यप्राय है । अतः पाठक इसके लिए क्षमा करें ।

आज अंग्रेजी के बोलबाले में हमारे राष्ट्र की समस्त भाषाओं का अस्तित्व धोखे में है । ऐसी संकट-ग्रस्त स्थिति में भाषा-वैज्ञानिक तत्वों के आधार पर हिंदी के साथ अपनी मातृभाषा का सामंजस्य कर लेने में यह पुस्तक यदि थोडा-सा भी योगदान दे सका तो मैं अपने आपको सफल समझूँगा ।

स्थान : म्हार्दोळ, गोवा

अनंत राम भट्ट

अनुक्रम

संक्षिप्त-रूप

– पदों के बीच यह छोटी रेखा समास तथा कोष्ठक में यह छोटी रेखा शब्दांश द्योतित करने के लिए प्रयुक्त है।

= इस चिह्न का अर्थ है ‘ बराबर ’।

> यह चिह्न पूर्वरूप से पररूप के परिवर्तन को बताता है।

< यह चिह्न पररूप से पूर्वरूप के परिवर्तन को बताता है।

* कल्पित रूप

√ धातु चिह्न

/ यह चिह्न ‘ अथवा ’ अर्थ में प्रयुक्त है।

अ. = पुरुष के संबंध में ‘ अन्य ’।

अ. = अरबी

अधि. = अधिकरण

अनु. = अनुनासिक

अ. पु. = अन्य पुरुष

अप. = अपभ्रंश

अपा. = अपादान

अं. = अंग्रेजी

उ. = उत्तम

उ. पु. = उत्तम पुरुष

एक. = एकवचन

क. कों. = कर्नाटक कोंकणी

कों. = कोंकणी

कों. – = कोंकणी में शब्द उपलब्ध नहीं।

नपुं. / नपुंसक. = नपुंसकलिंग

परि. क्र. = परिच्छेद क्रमांक

पा. = पालि

पा. सू. = पाणिनि सूत्र

प्रा. = प्राकृत

पु. = पुल्लिंग

पुर्त. = पुर्तगाली

फा. = फारसी

बहु. = बहुवचन

बो. = बोली

म. = मध्यम

म. पु. = मध्यम पुरुष

सं. = संस्कृत

संप्र. = संप्रदान

सू. क्र. = सूत्र क्रमांक

स्त्री. = स्त्रीलिंग

हिं. = हिंदी

हिं. – = हिंदी में शब्द उपलब्ध नहीं।

अध्याय १

हिंदी तथा कोंकणी ध्वनिसमूह

हिंदी तथा कोंकणी ध्वनियों के मूलाधार

हिंदी तथा कोंकणी ध्वनिसमूहों में दिखायी देने वाली अधिकांश ध्वनियाँ भारतीय आर्यभाषा परंपरा से प्राप्त हैं। ये ध्वनियाँ हिंदी तथा कोंकणी ध्वनिसमूहों का मूलाधार हैं। एवं हिंदी तथा कोंकणी ध्वनिसमूहों के संबंध में तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने के पूर्व हिंदी तथा कोंकणी की पूर्ववर्ती भारतीय आर्यभाषा ध्वनिसमूहों की स्थिति जान लेना अनुचित नहीं होगा। अतः आगे वैदिक परंपरा से प्राप्त ध्वनिसमूहों का संक्षेप में परिचय दिया है।

वैदिक ध्वनिसमूह

भारतीय आर्यभाषाओं के मूल में जो ध्वनियाँ हैं उनका मूल रूप वैदिक ध्वनिसमूह में दिखायी देता है। वैदिक भाषा में कुल मिलाकर ५२ ध्वनियाँ हैं[1]। इन ध्वनियों में १३ स्वर और ३९ व्यंजन हैं। देवनागरी लिपि में ये ध्वनियाँ निम्मलिखित प्रकार से लिखी जाती हैं –

(क) नौ मूल स्वर : अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ
(ख) चार संयुक्त स्वर : ए ऐ ओ औ
(ग) सत्ताईस स्पर्श व्यंजन :
  (i) कण्ठ्य - क् ख् ग् घ् ङ्
  (ii) तालव्य - च् छ् ज् झ् ञ्
  (iii) मूर्द्धन्य - ट् ठ् ड् ळ् ढ् ळ्ह् ण्
  (iv) दन्त्य - त् थ् द् ध् न्
  (v) ओष्ठ्य - प् फ् ब् भ् म्
(घ) चार अन्तस्थ : य् र् ल् व्
(ङ) तीन ऊष्म : श् ष् स्
(च) एक महाप्राण : ह्
(छ) तीन अघोष ऊष्म : विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय
(ज) एक शुद्ध अनुस्वार : ं

इस प्रकार मैकडानेल के 'वैदिक ग्रामर' में कुल ५२ ध्वनियाँ दिखायी देती हैं।

संस्कृत ध्वनिसमूह

संस्कृत में कुल मिलाकर ४८ ध्वनियाँ मानी गयी हैं। उपर्युक्त वैदिक की ५२ ध्वनियों में से 'ळ्, ळ्ह्, जिह्वामूलीय' और 'उपध्मानीय' ध्वनियों का प्रयोग संस्कृत में नहीं के बराबर हुआ। स्वरों के उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित उच्चारण भी प्रायः समाप्त हो गया। संस्कृत की मूल ध्वनियाँ इस प्रकार हैं[२] –

(१) स्वर :

(i) ह्रस्व	-	अ इ उ ऋ लृ
(ii) दीर्घ	-	आ ई ऊ ॠ ए ऐ ओ औ

(२) व्यंजन :

(i) स्पर्श	-	क् ख् ग् घ् ङ्
		च् छ् ज् झ् ञ्
		ट् ठ् ड् ढ् ण्
		त् थ् द् ध् न्
		प् फ् ब् भ् म्
(ii) अन्तस्थ	-	य् र् ल् व्
(iii) ऊष्म	-	श् ष् स् ह्
(iv) अनुस्वार	-	ं
(v) विसर्ग	–	:

इस प्रकार संस्कृत में वैदिक ध्वनियों की संख्या कम हुई।

पालि ध्वनिसमूह

वैदिक ध्वनिसमूह में से 'ऋ, ॠ, लृ, ऐ, औ, ळ्ह्, श्, ष्, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय' और 'विसर्ग' ध्वनियाँ पालि में कम हुईं। एवं कुल मिलाकर ११ ध्वनियाँ कम होने से पालि में ४१ ध्वनियाँ शेष रह गयीं। फिर इनमें तीन ध्वनियाँ प्राप्त हुईं। वैदिक ध्वनिसमूह का 'ळ्' जो संस्कृत में लुप्त हुआ था पालि में फिर से दिखायी देता है। इसके सिवा पालि में ह्रस्व 'ए' और 'ओ' दो नवीन ध्वनियाँ विकसित हुईं। एवं पालि में कुल मिलाकर ४३ ध्वनियाँ हैं जिनमें १० स्वर और ३३ व्यंजन हैं।

पालि में निम्नलिखित ध्वनियाँ हैं[३] --

(१) स्वर :

(i) ह्रस्व	-	अ इ उ ए ओ
(ii) दीर्घ	-	आ ई ऊ ए ओ

(२) व्यंजन :

(i) स्पर्श - क् ख् ग् घ् ङ्
च् छ् ज् झ् ञ्
ट् ठ् ड् ढ् ण्
त् थ् द् ध् न्
प् फ् ब् भ् म्

(ii) अन्तस्थ – य् र् ल् व्

(iii) ऊष्म – स् ह् ळ्

(iv) अनुस्वार – ं

प्राकृत ध्वनिसमूह

प्राकृत ध्वनिसमूह में ' ऋ, ॠ, लृ, ऐ, औ, ळ् , ळ्ह् , श् , ष् , जिह्वामूलीय, उपध्मानीय ' और ' विसर्ग ' कुल मिलाकर १२ ध्वनियाँ कम हुईं। संस्कृत में लुप्त होकर पालि में दिखायी देने वाला वैदिक ' ळ् ' प्राकृत में फिर से अदृश्य हुआ। पालि में विकसित ह्रस्व ' ए, ओ ' ध्वनियाँ यहाँ भी प्राप्त हैं। अभिनव प्राकृत व्याकरण में कुल ४२ ध्वनियाँ उपलब्ध होती हैं। फिर भी उस ग्रंथ में दिये हुए स्पष्टीकरण के मुताबिक व्यंजन ध्वनियाँ तीस ही होती हैं [४]। इससे प्राकृत में कुल मिलाकर ४० ध्वनियाँ प्राप्त होती हैं –

(१) स्वर :

(i) ह्रस्व - अ इ उ ए ओ

(ii) दीर्घ - आ ई ऊ ए ओ

(२) व्यंजन :

(i) स्पर्श - क् ख् ग् घ्
च् छ् ज् झ्
ट् ठ् ड् ढ् ण्
त् थ् द् ध् न्
प् फ् ब् भ् म्

(ii) अन्तस्थ - य् र् ल् व्

(iii) ऊष्म - स् ह्

(iv) अनुस्वार - ं

अपभ्रंश ध्वनिसमूह

अपभ्रंश में प्राकृत की तरह ४० ध्वनियाँ हैं।

(१) स्वर :

ह्रस्व	-	अ इ उ ए ओ
दीर्घ	-	आ ई ऊ ए ओ

(२) व्यंजन :

स्पर्श	-	क् ख् ग् घ्
		च् छ् ज् झ्
		ट् ठ् ड् ढ् ण्
		त् थ् द् ध् न्
		प् फ् ब् भ् म्
अन्तस्थ	-	य् र् ल् व्
ऊष्म	-	स् ह्
अनुस्वार	-	ं

अपभ्रंश के ' तृणु, सुकृदु ' जैसे शब्दों में ' ऋ ' का प्रयोग लिखित रूप में दिखायी देता है [१]। यह प्रायः संस्कृत के अर्द्धतत्सम शब्दों में प्राप्त है। फिर भी अपभ्रंश व्याकरण ग्रंथों में ' ऋ ' का परिगणन दिखायी नहीं देता। इसका कारण प्रायः यह हो सकता है। अपभ्रंश में ' ऋ ' का उच्चारण संस्कृत की तरह न होकर ' रि, रु ' आदि की तरह रहा होगा। तब भी संस्कृत के प्रभाव के कारण कुछ लोगों ने भिन्न रूप में उच्चरित होने वाले इस ' ऋ ' को ' ऋ ' रूप में लिखना पसंद किया होगा। आज भी हम देखते हैं कि कोंकणी तथा मराठी भाषा बोलने वाले लोग 'अमृत, कृपा, प्रकृति ' जैसे शब्दों का उच्चारण ' अम्रुत, क्रुपा, प्रक्रुति ' जैसा करते हैं। फिर भी संस्कृत के प्रभाव के कारण लिखते समय ' अमृत, कृपा, प्रकृति ' ही लिखते हैं। हिंदी भाषा बोलने वाले लोग भी ' भाषा ' शब्द का उच्चारण ' भासा ' करते हैं और लिखते समय ' भाषा ' लिखते हैं। इसी प्रकार वे ' नमस्कार ' शब्द का उच्चारण ' नमश्कार ' करते हैं और लिखते समय ' नमस्कार ' ही लिखते हैं।

एवं उच्चारण भेद (जैसे ' रि, रु ') के कारण ' ऋ ' का परिगणन अपभ्रंश ध्वनियों में शायद नहीं हुआ होगा।

' ऋ ' को छोड दिया जाए तो अपभ्रंश में शेष सभी ध्वनियाँ प्रायः प्राकृत के समान हैं।

उपर्युक्त वैदिक आदि ध्वनिसमूहों में प्राप्त होनी वाली ध्वनियों के अलावा तत्तत्कालीन बोलियों में और भी ध्वनियों का प्रचलन रहा होगा। परंतु इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है।

यहाँ तक हिंदी तथा कोंकणी की पूर्ववर्ती स्थित वैदिक आदि भाषाओं के ध्वनिसमूह संक्षेप में देख लिये। इससे एक बात स्पष्ट होती है कि वैदिक काल में प्राप्त होने वाली ध्वनियाँ उत्तरकाल में कम होती गयीं।

हिंदी तथा कोंकणी ध्वनिसमूह

हिंदी तथा कोंकणी ध्वनिसमूहों का वर्तमान परिनिष्ठित रूप सर्वथा भिन्न है। एक ओर इनमें प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं की अधिकांश ध्वनियाँ परंपरा से प्राप्त हुई हैं तो दूसरी ओर कुछ प्राचीन ध्वनियाँ – जो पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में लुप्त हुई थीं – संस्कृत तत्सम शब्दों के साथ प्रविष्ट हुई हैं। साथ-साथ हिंदी तथा कोंकणी में कुछ नयी ध्वनियाँ विकसित हुई हैं। इसके सिवा हिंदी तथा कोंकणी में कुछ विदेशी ध्वनियाँ भी प्राप्त हैं जो हिंदी तथा कोंकणी में गृहीत विदेशी तत्सम शब्दों में उपलब्ध होती हैं। एवं हिंदी तथा कोंकणी ध्वनिसमूहों में चार स्रोतों से ध्वनियाँ प्राप्त हुई हैं। अतः हिंदी तथा कोंकणी ध्वनिसमूहों की स्थिति असामान्य बन गयी है।

हिंदी तथा कोंकणी ध्वनियों में काफी साम्य होते हुए भी कुछ वैषम्य भी प्राप्त है। इस दृष्टि से आगे दोनों ध्वनियों की तुलना की जाती है।

	हिंदी	कोंकणी
(१) स्वर :	अ आ ऑ इ ई उ ऊ ऋ ए ओ ऐ औ	अ आ ऑ इ ई उ ऊ ऋ ए ॲ ओ ऐ औ
(२) व्यंजन :		
अ. स्पर्श –		
(i) जिह्वामूलीय :	क़्	
(ii) कण्ठ्य :	क् ख् ग् घ्	क् ख् ग् घ्
(iii) मूर्द्धन्य :	ट् ठ् ड् ढ्	ट् ठ् ड् ढ्
(iv) दन्त्य :	त् थ् द् ध्	त् थ् द् ध्
(v) ओष्ठ्य :	प् फ् ब् भ्	प् फ् ब् भ्
आ. स्पर्शसंघर्षी –		
तालव्य :	च् छ् ज् झ्	च् छ् ज् झ्
इ. अनुनासिक –	ङ् ण् न् न्ह म् म्ह ञ्	ङ् ण् न् न्ह म् म्ह ञ्
ई. पार्श्विक –	ल् ल्ह	ल् ल्ह ळ्
उ. लुण्ठित –	र् न्ह (र्ह)	र् न्ह (र्ह)
ऊ. उत्क्षिप्त –	ड़् ढ़्	ड़्

ए. संघर्षी	–	ह्(:) ह ख़् ग़् श् ष् स् ज़् फ़् व् व्ह	ह्(:) ह श् ष् स् फ् व् व्ह
ऐ. अर्द्धस्वर	–	य् व्	य् व्
ओ. मिश्र व्यंजन	–	क्ष् ज्ञ्	क्ष् ज्ञ्
औ. अनुस्वार	–	ं	ं

आगे हिंदी तथा कोंकणी ध्वनियों का तुलनात्मक वर्णन प्रस्तुत है।

(१) स्वरों का वर्णन

स्वरों में (i) मूल स्वर, (ii) अनुनासिक स्वर, (iii) संयुक्त स्वर और (iv) स्वरानुक्रम आते हैं।

(i) मूल स्वर

अ : यह अर्द्धविवृत अवृत्तमुखी ह्रस्व मध्य स्वर है। यह स्वर भारतीय आर्यभाषा की परंपरा से प्राप्त है। 'अ' स्वर हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
घर, रथ, कमल, सरल	घर, रथ, कमळ, सरळ

हिंदी तथा कोंकणी शब्दों के मध्य तथा अन्त में आनेवाले 'अ' का उच्चारण कहीं – कहीं नहीं होता है, परंतु लिखते समय 'अ' मात्रा के रूप में लिखा जाता है, यथा –

हिंदी		कोंकणी	
उच्चरित	**लिखित**	**उच्चरित**	**लिखित**
इत्वार्	इतवार	आय्तार्	आयतार
अप्ना	अपना	आप्लो	आपलो
घर्	घर	घर्	घर
भावज्	भावज	भावज्	भावज

इन उदाहरणों में 'इतवार' शब्द के 'त' और 'र', 'अपना' शब्द के 'प', 'घर' शब्द के 'र' तथा 'भावज' शब्द के 'ज' के 'अ' का उच्चारण नहीं होता है; परंतु लिखते समय ये अक्षर 'अ' मात्रायुक्त लिखे जाते हैं। यही स्थिति उपर्युक्त कोंकणी शब्दों में भी दिखायी देती है।

फिर भी हिंदी तथा कोंकणी में इस नियम के अपवाद भी मिलते हैं। अर्थात् शब्दों के मध्य तथा अंत में प्राप्त होनेवाले 'अ' का उच्चारण भी पूर्णतया प्राप्त होता है। जैसे, ऊपर दिग्दर्शित 'भावज्' शब्द के 'व' के 'अ' का उच्चारण हिंदी तथा कोंकणी में

स्पष्ट रूप में सुनायी पडता है । इस प्रकार के अन्य अपवाद 'हिंदी व्याकरण' तथा 'कोंकणी नादशास्त्र' में प्राप्त होते हैं [६]।

विशेष :

डा. भोलानाथ तिवारी, डा. धीरेंद्र वर्मा आदि हिंदी के प्रसिद्ध भाषाशास्त्रियों ने हिंदी की बोलियों में उपर्युक्त 'अ' से भिन्न उदासीन 'अ' की उपलब्धि स्वीकारी है [७]। इस उदासीन 'अ' को सूचित करने के लिए कई विद्वान 'अ' के ऊपर खडी रेखा (जैसे – अ॑) देते हैं । परंतु परिनिष्ठित हिंदी में इस प्रकार नहीं लिखा जाता, बल्कि उदासीन 'अ॑' को 'अ' के उच्चारण का भेद मानकर 'अ' रूप में लिखा जाता है ।

हिंदी की अवधी, पंजाबी आदि बोलियों में प्राप्त उपर्युक्त उदासीन 'अ' को अर्द्धविवृत, ह्रस्वार्द्ध मध्य स्वर माना है [८]; फिर भी भोजपुरी में इसे ओष्ठों के वर्तुलाकार तथा दीर्घ रूप में स्वीकारा है [९]।

इसी प्रकार कोंकणी के उच्चारण में भी भिन्न 'अ' स्वर उपलब्ध है । इसकी सूचना श्री रा. भि. गुंजीकर ने अपनी 'सरस्वती-मंडळ' पुस्तक में दी है [१०]। उन्होंने इस 'अ' को सूचित करने के लिए 'अ' के ऊपर खडी रेखा (जैसे – अ॑) दी है और इस 'अ॑' के उच्चारण का सादृश्य बंगाली 'ओ' के उच्चारण के निकट बतलाया है ।

श्री वालावलीकर इस 'अ॑' का संबंध वैदिक स्वरित 'अ॑' स्वर से जोडते हैं [११]। वे इसका साम्य बिहार प्रांतीय भोजपुरी भाषा में दिखायी देने वाले 'देखल॑' शब्द में स्थित 'ल॑' के 'अ॑' के साथ मानते हैं ।

इस 'अ॑' के कारण कोंकणी शब्दों में वचनभेद तथा लिंगभेद होता है, साथ-साथ इसके कारण कोंकणी शब्दों में अर्थभेद भी दीखता है, जैसे –

वचनभेद :

प॑ण॑स (= पनस) – एकवचन	पणस – बहुवचन
पाप॑ड – ,,	पापड – ,,
माट॑व (= मंटप) – ,,	माटव – ,,

लिंगभेद :

वोंव॑ळ (= बकुल का पेड) – स्त्री.	वोंवळ (= बकुल का फूल) – नपुं.
जांब॑ळ (= जामुन ,, ,,) – ,,	जांबळ (= जामुन का फल) – ,,
फात॑र (= पत्थर) – पु.	फातर (= मसाला पीसने या कपडा धोने का पत्थर) – स्त्री.

इन उदाहरणों में वचनभेद तथा लिंगभेद के साथ-साथ अर्थभेद भी स्पष्ट दीखता है ।

कोंकणी में प्राप्त होने वाली यह प्रवृत्ति हिंदी में उदासीन 'अ॑' के कारण प्राप्त नहीं है ।

कोंकणी का यह ' अं ' श्री बालावलीकर लिखित पुस्तकों तथा अन्य कुछ लेखकों के लिखित पुस्तकों में प्राप्त होता है [१२]। परंतु आधुनिक परिनिष्ठित कोंकणी में ' अं ' केवल ' अ ' रूप में ही लिखा जाता है।

हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त इस ' अं ' स्वर को लिखने के लिए देवनागरी लिपि में स्वतंत्र लिपि-चिन्ह नहीं है।

आ : यह विवृत अवृत्तमुखी दीर्घ पश्च स्वर है। ' आ ' स्वर भारतीय आर्यभाषा परंपरा से प्राप्त है। यह स्वर हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
आज, बाट, कैलास, राम	आज, वाट, कैलास, राम

डा. अनंत चौधरी ने हिंदी में प्राप्त होने वाले इस दीर्घ ' आ ' के सिवा ह्स्व ' आ ' स्वर का भी निर्देश किया है [१३]। श्री बा. भ. बोरकर ने भी कोंकणी में दीर्घ ' आ ' स्वर के सिवा ह्स्व ' आ ' स्वर सूचित किया है [१४]। हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त उपर्युक्त ह्स्व ' आ ' केवल उच्चारण में ही प्राप्त है। यह बात निम्नलिखित उदाहरणों में दी हुए शब्दों की जोडियों से स्पष्ट होती है, जैसे –

हिंदी	कोंकणी
आज – आया	आज – आयलो

इनमें हिंदी तथा कोंकणी ' आज ' शब्द के ' आ ' का उच्चारण जितना दीर्घ होता है उतना हिंदी के ' आया ' शब्द के ' आ ' का तथा कोंकणी ' आयलो ' शब्द के ' आ ' का उच्चारण दीर्घ नहीं होता, बल्कि ह्स्व होता है। इस ह्स्व ' आ ' को लिखने के लिए हिंदी तथा कोंकणी में स्वतंत्र लिपि-चिह्न नहीं है। इसलिए ह्स्व ' आ ' की जगह दीर्घ ' आ ' ही लिखा जाता है।

इस प्रकार के कुछ अन्य शब्द द्रष्टव्य हैं –

हिंदी : दादा(=आजा), महाराज, मामा, आकाश, आशा, काला
कोंकणी : दादा(=बडा भाई), म्हाराज, मामा, आकाश, आशा, काळो

ऑ : अर्द्धविवृत ईषत् वृत्तमुखी दीर्घ पश्च स्वर। यह स्वर हिंदी तथा कोंकणी में गृहीत अंग्रेजी तत्सम शब्दों में प्राप्त है, अर्थात् यह ध्वनि विदेशी है। इसके उदाहरण निम्नलिखित प्रकार से प्राप्त हैं –

हिंदी	कोंकणी
लॉ, ऑफिस, कॉमर्स, ऑर्डर	लॉ, ऑफिस, कॉमर्स, ऑर्डर

सामान्य जनता इसका उच्चारण हिंदी तथा कोंकणी में 'आ' के रूप में करती है। इसलिए 'कॉलेज, ऑफिस' आदि शब्दों का उच्चारण हिंदी में 'कालिज, आफिस' तो कोंकणी में 'कालेज, आपिस' होता है।

लगता है, इस 'ऑ' का सादृश्य आगे बताये जानेवाले बहुवचनीय 'मोॅर, ओॅठ, दोॅर' आदि में प्राप्त 'ओॅ' से है। अतः इसके बारे में अधिक संशोधन आवश्यक है।

इ : यह संवृत अवृत्तमुखी ह्रस्व अग्र स्वर है। यह स्वर भारतीय आर्यभाषा परंपरा से प्राप्त है। 'इ' ध्वनि हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
इतना, गिरहन, कवि, ध्वनि	इतलो, गिराण, कवि, ध्वनि

परिनिष्ठित हिंदी तथा कोंकणी में अन्त्य 'इ' प्रायः केवल संस्कृत तत्सम शब्दों में मिलती है, यथा :– 'कवि, ध्वनि' आदि। कोंकणी में ये शब्द प्रायः दीर्घ भी लिखे जाते हैं, यथा :– 'कवी, ध्वनी' आदि।

हिंदी की बोलियों में फुसफुसाट वाला 'इ़' ध्वनि प्राप्त है। इस प्रकार का 'इ़' कोंकणी में उपलब्ध नहीं है।

ई : संवृत अवृत्तमुखी दीर्घ अग्र स्वर। यह ध्वनि भारतीय आर्यभाषा परंपरा की है। यह स्वर हिंदी तथा कोंकणी में उपलब्ध है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
ईश्वर, तीन, हाथी, माटी	ईश्वर, तीन, हती, माती

उ : संवृत वृत्तमुखी ह्रस्व पश्च स्वर। यह स्वर भारतीय आर्यभाषा परंपरा का है। हिंदी तथा कोंकणी में 'उ' स्वर उपलब्ध है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
उठता, दुगुना, गुरु, साधु	उठता, दुप्पट, गुरु, साधु

परिनिष्ठित हिंदी तथा कोंकणी में अन्त्य 'उ' प्रायः केवल संस्कृत तत्सम शब्दों में प्राप्त है, यथा :– 'गुरु, साधु'। कोंकणी में ये शब्द प्रायः दीर्घ भी लिखे जाते हैं, यथा :– 'गुरू, साधू'।

हिंदी की बोलियों में फुसफुसाट वाला 'उ़' भी प्राप्त है। इस प्रकार का 'उ़' कोंकणी में नहीं मिलता।

ऊ : यह संवृत वृत्तमुखी दीर्घ पश्च स्वर है। यह ध्वनि भारतीय आर्यभाषा परंपरा की है। हिंदी तथा कोंकणी में यह ध्वनि उपलब्ध है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
दूध, मसूर, लड्डू, बिच्छू	दूद, मसूर, लाडू, विंचू

ऋ : यह संवृत अवृत्तमुखी ह्रस्व अग्र स्वर है । ' ऋ ' प्राचीन भारतीय आर्यभाषा की ध्वनि है । यह ध्वनि हिंदी तथा कोंकणी में मण्डूकप्लुति की तरह आगत संस्कृत तत्सम शब्दों में दिखाई देती है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
ऋण, स्मृति, प्रकृति, अमृत	ऋण, स्मृति, प्रकृति, अमृत

विशेष :

'ऋ' का प्रयोग संस्कृत में खूब प्रचलित है । परंतु पालि, प्राकृत में यह नहीं के बराबर है । फिर अपभ्रंश के लिखित साहित्य में ' ऋ ' का प्रयोग उपलब्ध होता है, जैसे : – ' तृणु, सुकृदु, गृहण्णइ, घृण ' आदि । ऐसे शब्दों में स्थित ' ऋ ' का उच्चारण अपभ्रंश काल में ठीक कैसे रहा होगा, बताना कठिन है ।

हिंदी तथा कोंकणी में भी ' ऋ ' का उच्चारण प्रायः ठीक नहीं होता । इसका शुद्ध उच्चारण प्रायः वही करते हैं जो संस्कृतज्ञ विद्वान होते हैं । सामान्य लोक ' ऋ ' का उच्चारण प्रायः हिंदी में ' रि ' तो कोंकणी में ' रु ' के सदृश करते हैं , जैसे –

संस्कृत ' ऋ '	हिंदी ' रि '	कोंकणी ' रु '
अमृत	अम्रि (मरि)त	अम्रुत
ऋषि	रिषि	रुशी
ऋतु	रितु	रुतू
प्रकृति	प्रक्रिति	प्रक्रुति
संस्कृति	संस्क्रिति	संस्क्रुति

इन उच्चारणों में भी कहीं-कहीं फर्क होता है, जैसे –

ऋण	रिन (रि)	रीण (री)
वृक्ष	रूख (रू)	रूख (रू)
ऋजु	रिजु (रि)	उजू (उ)

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी में ' ऋ ' के उच्चारण की स्थिति विवादास्पद है ।

ए : यह अर्द्धसंवृत अवृत्तमुखी दीर्घ अग्र स्वर है । यह ध्वनि भारतीय आर्यभाषा परंपरा से प्राप्त है । ' ए ' स्वर हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
एक, देव, खेल, बेल	एक, देव, खेळ, बेल

विशेष :

उपर्युक्त दीर्घ ' ए ' के सिवा हिंदी में ह्रस्व ' ए ' भी प्राप्त है । यह अर्द्धसंवृत अवृत्तमुखी ह्रस्व अग्र स्वर है । यह स्वर पालि में विकसित है ।

डा. धीरेंद्र वर्मा ने इस ह्रस्व 'ए' की उपस्थिति परिनिष्ठित हिंदी में न मानकर केवल हिंदी की बोलियों में मानी है [१५]। परंतु डा. भोलानाथ तिवारी, डा. अनंत चौधरी आदि विद्वान इसका प्रयोग परिनिष्ठित हिंदी में भी मानते हैं [१६], जैसे :– 'खेलाना, देखाना, खेतिहर, मेहनत' आदि। इस ध्वनि को लिखने के लिए हिंदी में अलग लिपि-चिह्न नहीं है। अतः इसके स्थान पर दीर्घ 'ए' का प्रयोग होता है।

कोंकणी में भी डा. कत्रे ने ह्रस्व 'ए' के संबंध में विवरण प्रस्तुत किया है [१७]। इसके उदाहरण हैं :– 'म्हेनत (= मेहनत), देवूळ (= देऊल), तेवीस (= तेईस)'। कोंकणी में भी इस ध्वनि के लिए स्वतंत्र लिपि-चिह्न नहीं है।

हिंदी में प्राप्त उपर्युक्त दीर्घ तथा ह्रस्व 'ए' के सिवा हिंदी की बोलियों में प्राप्त फुसफुसाहट वाला 'ए', अर्द्धविवृत दीर्घ अग्र स्वर 'ऍ' और अर्द्धविवृत ह्रस्व अग्र स्वर 'ऍ' उपलब्ध हैं [१८]। ये स्वर परिनिष्ठित हिंदी में उपलब्ध नहीं हैं।

कोंकणी में भी उपर्युक्त दीर्घ तथा ह्रस्व 'ए' के सिवा भिन्न 'ए' प्राप्त है। इस 'ए' को '–́' चिह्न देकर 'एॅ' के रूप में लिखने के लिए सूचित किया है। [१९] परंतु कोंकणी में इस प्रकार नहीं लिखा जाता।

इस 'एॅ' के कारण कोंकणी शब्दों में वचनभेद तथा लिंगभेद होता है, और इसके साथ-साथ अर्थभेद भी स्पष्ट दीखता है, जैसे –

वचनभेद :

देव – एकवचन	दॅेव – बहुवचन
केंस – एकवचन	कॅेंस – बहुवचन
खेळ (= खेल) – एकवचन	खॅेळ – बहुवचन

लिंगभेद :

पेर (= अमरूद का पेड) – स्त्री.	पॅेर (= अमरूद का फल) – नपुं.
पेट (= मार) – पु.	पॅेट (= संदूक) – स्त्री.
बेत (= हेतु, योजना) – पु.	बॅेत (= बेंत) – नपुं.

उपर्युक्त उदाहरणों में वचनभेद तथा लिंगभेद के साथ-साथ अर्थभेद भी स्पष्ट दीखता है।

इस प्रकार की प्रवृत्ति हिंदी में नहीं है।

कोंकणी में प्राप्त इस 'एॅ' का ह्रस्व उच्चारण भी प्राप्त है, जैसे :– 'दॅेव, कॅेंस, खॅेळ' शब्दों में दीर्घ 'एॅ' है तो 'दॅेवांक, कॅेंसांनी, खॅेळांचो' शब्दों में ह्रस्व 'एॅ' है। परंतु इस दीर्घ तथा ह्रस्व 'एॅ' को लिखने के लिए कोंकणी में अलग-अलग लिपि-चिह्न नहीं है। अतः इन दीर्घ तथा ह्रस्व 'एॅ' के स्थान पर दीर्घ 'ए' लिखा जाता है।

ॲ : डा. भोलानाथ तिवारी, डा. लक्ष्मीनारायण शर्मा इस ध्वनि के संबंध में मौन हैं[२०]। डा. धीरेंद्र वर्मा ने ' ॲ ' को ' ऑ ' का ही ह्रस्व रूप माना है[२१]। उन्होंने अपने मंतव्य में लिखा है कि अंग्रेजी में ' ऑ ' के अतिरिक्त उसका ह्रस्व रूप ' ॲ ' भी व्यवहृत होता है और हिंदी में दोनों के लिए दीर्घ रूप का ही व्यवहार लिखने और बोलने में साधारणतया किया जाता है।

उपर्युक्त मंतव्य में ' साधारणतया ' शब्द का अर्थ यह है कि अंग्रेजी तत्सम शब्दों में उपलब्ध होनेवाला ' ॲ ' कभी-कभी ' ऐ ' रूप में लिखा जाता है, यथा:– अंग्रेजी ' टॅक्सी, मॅनेजर, मॅकडॉनल, बॅंक ' आदि शब्द हिंदी में ' टैक्सी, मैनेजर, मैकडानल, बैंक ' आदि रूप में लिखे जाते हैं। अंग्रेजी तत्सम शब्दों में प्राप्त होने वाली ' ऑ ' ध्वनि हिंदी में ' ऑ ' या ' आ ' रूप में मिलती है ; उसी प्रकार अंग्रेजी तत्सम शब्दों में प्राप्त होने वाली ' ॲ ' ध्वनि ' ॲ ' रूप में नहीं मिलती बल्कि ' ऑ, आ, ऐ ' रूप में मिलती है। अत एव कदाचित् डा. भोलानाथ तिवारी आदि विद्वानों ने हिंदी के स्वरों में ' ॲ ' का परिगणन नहीं किया होगा। परंतु कोंकणी में ' ॲ ' ध्वनि अंग्रेजी से आगत तत्सम शब्दों में मिलती है, जैसे :–

हिंदी	कोंकणी
----------	टॅक्सी, मॅनेजर, बॅंक, फ्लॅट

एवं कोंकणी स्वरों में ' ॲ ' का परिगणन किया है। यह विदेशी ध्वनि है।

लगता है यह ' ॲ ' उपर्युक्त कोंकणी के बहुवचनीय ' दॅव, कॅस, खॅळ ' में प्राप्त ' ए ' से सादृश्य रखता है। अतः इस संबंध में अधिक संशोधन की आवश्यकता है।

ओ : यह अर्द्धसंवृत वृत्तमुखी दीर्घ पश्च स्वर है। यह भारतीय परंपरा से आगत स्वर है। ' ओ ' ध्वनि हिंदी तथा कोंकणी प्राप्त होती है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
ओंठ, मोर, भूगोल, दो	ओंठ, मोर, भूगोल, दोन

विशेष :

उपर्युक्त दीर्घ ' ओ ' के सिवा हिंदी में ह्रस्व ' ओ ' भी प्राप्त है। यह अर्द्धसंवृत वृत्तमुखी ह्रस्व पश्च स्वर है। इसका विकास पालि में दीखता है।

डा. धीरेंद्र वर्मा ने इस ह्रस्व ' ओ ' की उपस्थिति परिनिष्ठित हिंदी में न मानकर केवल हिंदी की बोलियों में मानी है[२२]। परंतु डा. भोलानाथ तिवारी आदि विद्वानों ने परिनिष्ठित हिंदी में ह्रस्व ' ओ ' स्वर की उपस्थिति मानी है[२३], जैसे : – ओसारा, गोंदना, रोजगार ' आदि। परंतु इसके लिए हिंदी में अलग वर्ण न होने के कारण इसके स्थान पर दीर्घ ' ओ ' का ही प्रयोग होता है।

कोंकणी में भी डा. कत्रे ने ह्रस्व 'ओ' का उल्लेख किया है[२४], जैसे :– 'पोपट(= तोता), सोट्टा(= छोडता), कोंपर(= कुहनी)' आदि । कोंकणी में भी इस ध्वनि के लिए स्वतंत्र लिपि-चिह्न नहीं है ।

हिंदी में प्राप्त उपर्युक्त दीर्घ तथा ह्रस्व 'ओ' के सिवा हिंदी की बोलियों में अर्द्धविवृत दीर्घ पश्च स्वर 'ओं' तथा अर्द्धविवृत ह्रस्व पश्च स्वर 'ओँ' प्राप्त हैं[२५]। ये स्वर परिनिष्ठित हिंदी में प्राप्त नहीं है ।

कोंकणी में भी उपर्युक्त दीर्घ तथा ह्रस्व 'ओ' के सिवा भिन्न 'ओ' प्राप्त है । इस 'ओ' को '–' चिह्न देकर 'ओॅ' के रूप में लिखने के लिए सूचित किया है[२६]। परंतु कोंकणी में इस प्रकार नहीं लिखा जाता ।

इस 'ओॅ' के कारण कोंकणी शब्दों में वचनभेद तथा लिंगभेद होता है, और इसके साथ-साथ अर्थभेद भी स्पष्ट दीखता है, जैसे :–

वचन भेद :

मोर – एकवचन	मोॅर – बहुवचन
ओंठ – एकवचन	ओॅंठ – बहुवचन
दोर (= धागा) – एकवचन	दोॅर (= धागे) – बहुवचन
कोट – एकवचन	कोॅट – बहुवचन

लिंग भेद :

बोर (= बेर का पेड)	– स्त्री.	बोॅर (= बेर का फल)	– नपुं.
गोड (विशेषणवाची शब्द)	– पु. स्त्री. नपुं.	गोॅड (पदार्थवाची शब्द)	– नपुं.
बोट (= नौका)	– स्त्री.	बोॅट (= उंगली)	– नपुं.
जोत (= दीप की लौ)	– स्त्री.	जोॅत (= बैलों की जोडी)	– नपुं.

इन उदाहरणों में वचनभेद तथा लिंगभेद के साथ-साथ अर्थभेद भी स्पष्ट दीखता है ।

इस प्रकार की प्रवृत्ति हिंदी में नहीं है ।

कोंकणी में प्राप्त इस 'ओॅ' का ह्रस्व उच्चारण भी प्राप्त है, जैसे :– 'मोॅर, ओॅंठ, दोॅर' शब्दों में दीर्घ 'ओॅ' है तो 'मोॅराक, ओॅंठांत, दोॅरांनी' शब्दों में ह्रस्व 'ओॅ' है । परंतु इस दीर्घ तथा ह्रस्व 'ओॅ' को लिखने के लिए कोंकणी में अलग-अलग लिपि-चिह्न नहीं है; अतः इन दीर्घ तथा ह्रस्व 'ओॅ' के स्थान दीर्घ 'ओ' ही लिखा जाता है ।

ऐ : हिंदी 'ऐ' और 'औ' ध्वनियों के बारे में विवाद है । डा. धीरेंद्र वर्मा इन्हें संयुक्त स्वर मानते हैं[२७]। डा. भोलानाथ तिवारी इन्हें संयुक्त स्वर और मूल स्वर के रूप में

मानते हैं[२८]। डा. कादरी ने इन्हें सिर्फ मूल स्वर माना है[२९]। डा. चटर्जी ने भी बंगाली ' ऐ ' और ' औ ' को मूल स्वर माना है[३०]। बेली ने पंजाबी भाषा में ' ऐ ' को मूल स्वर माना है[३१]; जैसे :– ' पैर, पैले(= पहले) ' । यहाँ पंजाबी ' पैले ' शब्द कोंकणी ' पैलें ' शब्द से साम्य रखता है । एवं अधिकांश विद्वानों के मंतव्य के अनुसार हिंदी में ' ऐ ' तथा ' औ ' को यहाँ मूल स्वर माना है ।

कोंकणी में भी ' ऐ ' तथा ' औ ' को मूल स्वर माना है[३२]।

एवं नीचे हिंदी तथा कोंकणी ' ऐ ' तथा ' औ ' की तुलना मूल स्वर के रूप में की है ।

' ऐ ' अर्द्धविवृत अवृत्तमुखी दीर्घ अग्र स्वर है । यह ध्वनि मण्डूकप्लुति की तरह भारतीय आर्यभाषा परंपरा से प्राप्त है । इसके उदाहरण हैं –

हिंदी	कोंकणी
बैल, पैसा, मैदान, कैसा	बैल, पैसो, मैदान, सैम

[हिंदी ' कैसा ' तथा कोंकणी 'सैम (= निसर्ग)' भिन्नार्थक हैं ।]

औ : अर्द्धविवृत वृत्तमुखी दीर्घ पश्च स्वर । यह ध्वनि मण्डूकप्लुति की तरह भारतीय आर्यभाषा परंपरा से प्राप्त है । इसके उदाहरण हैं –

हिंदी	कोंकणी
चौदह, चौथा, मौन, चौक	चौदा, चौथो, मौन, चौक

(सूचना : – यहाँ ' औ ' को मूल स्वर माना है । इस संबंध में जो कुछ कहना था वह ऊपर ' ऐ ' के विवरण में स्पष्ट किया है ।)

कोंकणी में इस ' औ ' के सिवा भिन्न एक ' औ ' प्राप्त है । इस ' औ ' को '⌐' चिह्न देकर ' औॅ ' रूप में लिखने के लिए सूचित किया है[३३]।परंतु इस प्रकार कोंकणी में नहीं लिखा जाता । उपर्युक्त कोंकणी ' औ ' तथा इस ' औॅ ' के उच्चारण में अन्तर है । कोंकणी में प्राप्त इस द्वितीय ' औॅ ' के लिए स्वतंत्र लिपि-चिह्न नहीं है ।

(ii) अनुनासिक स्वर

उपर्युक्त स्वरों का हिंदी तथा कोंकणी में अनुनासिक रूप भी पाया जाता है । अनुनासिक उच्चारण को कोंकणी में ' नाखयो उच्चार ' कहा जाता है[३४]। अनुनासिक स्वर निरनुनासिक मूल स्वरों के सापेक्ष हैं । इसलिए मूल स्वर के आधार के बिना अनुनासिकता का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता ।

स्वरों में अनुनासिकता प्राप्त होने पर हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में अर्थभेद तथा वनचभेद होता है, यथा –

	हिंदी		कोंकणी	
अर्थभेद :				
	बास	बाँस	न्हय (= नहीं)	न्हंय (= नदी)
	गोद	गोंद	ल्हव (= हलका)	ल्हंव (= रोंया)
	आधी	आँधी	खत(=खाद)	खंत(=दुःख)
	भाग	भाँग	घाट (= घाट)	घांट (= घण्टा)
	बाट	बाँट	केस (= मुकदमा)	केंस (= केश)
	कहा	कहाँ	वाचप (= पढना)	वांचप (= जगना)
	काटा	काँटा	कोड (= कुष्ठ)	कोंड (= डबरा)
वचनभेद :				
	चली(एक.)	चलीं (बहु.)	ते (=वे; बहु.)	तें(=वह; एक.)
	चिडिया(एक.)	चिडियाँ(बहु.)	ती(=वह; एक.)	तीं(=वे;बहु.)
	कही(एक.)	कहीं(बहु.)	गेली(=गयी;एक.)	गेलीं(=गयीं;बहु.)

(उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी शब्द भिन्नार्थक हैं ।)

ऊपर दिये शब्दों में हिंदी के ' कहा, काटा, चली, कही ' और ' चलीं, कहीं ' शब्द तथा कोंकणी के ' गेली ' और ' गेलीं ' शब्द सामान्य भूतकाल के हैं । हिंदी का ' कहीं ' शब्द अव्यय भी माना जा सकता है । तब यह वचनभेद का उदाहरण नहीं होगा ।

नीचे हिंदी तथा कोंकणी के अनुनासिक स्वर सोदाहरण दिये हैं –

स्वर	:	हिंदी	कोंकणी
अं	:	हंसी, गंवार, अंधेरा	गंव, खंय, घेवंक
आं	:	आंसू, बांस, आंधी	हांसप, हांव, पांख
इं	:	बिंदिया, सिंघाडा, हिंग	बिंबल, शिंपप, शिंयाचे
ईं	:	ईंगुर, सींचना, आयीं	शींव, तीं, हीं, केळीं
उं	:	घुंगची, बुंदेली, उंगली	उंट, मुंबय, गुंथुंया
ऊं	:	सूंघना, गेहूं, पूंछ, ऊंट	तूं, भूंय, सूंठ, हातूंत
एं	:	गेंद, बातें, केंचुवा, में	मेंदू, उदेंत, नदरेंत, पेंड
ऐं	:	मैं, हैं, कैं, भैंस, गैंडा	मैंडोळें, पैंगीळ, पैंगीण
ओं	:	सोंठ, कोसों, जानवरों, गोंद	कोंकणी, जोंधळो, भोंवप, म्होंवो
औं	:	चौंकना, सौंफ, लौंग	चौंशी, गळौंक, लौंगट

(उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी के शब्द भिन्नार्थक हैं ।)

इस प्रकार ऊपर दिखाये हुए अनुनासिक स्वरों के अतिरिक्त हिंदी की बोलियों में प्राप्त होने वाले फुसफुसाहट वाले ' इ़, उ़, ए़ ' स्वरों को छोडकर अन्य विशिष्ट स्वरों (जैसे – ह्रस्व ' ए, ऍ, ओ, ओ ' तथा दीर्घ ' ए, ओ ') के अनुनासिक स्वर भी प्राप्त हैं[३५]; परंतु लिखित रूप में प्राप्त न होने के कारण इनका विवरण नहीं दिया है।

इसी प्रकार कोंकणी में भी उच्चरित रूप में प्राप्त होनेवाले विशिष्ट स्वरों (जैसे :– अ, ए, ओ) के भी अनुनासिक स्वर प्राप्त हैं ; परंतु इनमें से ' अ ' का ही अनुनासिक रूप (जैसे – अं) श्री वालावलीकर तथा अन्य कुछ कोंकणी लेखकों के लिखित पुस्तकों में उपलब्ध होता है[३६], जैसे :– ' तेजवंत, चंद्र ' आदि। परंतु यह प्रवृत्ति आज नहीं दिखायी देती।

विशेष :

परिनिष्ठित हिंदी में अनुनासिक स्वर प्रगट करने के लिए निरनुनासिक स्वर के ऊपर कहीं बिंदी तथा कहीं अर्द्धचंद्र और बिंदी लिखी जाती है। परंतु उपर्युक्त हिंदी के उदाहरणों में डा. धीरेंद्र वर्मा के अनुसार सर्वत्र बिंदी ही लिखी है।

कोंकणी में अनुनासिक स्वर केवल बिंदी देकर ही लिखे जाते हैं। अतः अर्द्धचंद्र और बिंदी देकर लिखने का प्रश्न कोंकणी में उपस्थित नहीं होता है।

वास्तव में अनुनासिक और अनुस्वार के उच्चारण में भेद है। अनुनासिक स्वर का धर्म है तो अनुस्वार स्वतंत्र वर्ण है। अत एव संस्कृत में अनुस्वार की गणना अयोगवाह नामक वर्णों में की है। अनुस्वार के कारण ह्रस्व स्वर में गुरुत्व प्राप्त होता है जिसका उपयोग काव्य में मात्रा-परिगणन के कार्य में उपयुक्त होता है। परंतु अनुनासिक स्वर लघु हो तो लघु, दीर्घ हो तो दीर्घ माना जाता है; क्यों कि अनुनासिकता के कारण उसमें गुरुत्व की प्राप्ति नहीं होती है। इसलिए ह्रस्व अनुनासिक स्वर द्विमात्रिक नहीं समझा जाता। एवं अनुनासिक और अनुस्वार में अंतर है। यह अंतर लिखित रूप में स्पष्ट होने के लिए अनुनासिक के लिए अर्द्धचंद्र और बिंदी (ँ) तो अनुस्वार के लिए केवल बिंदी (ं) का प्रयोग किया जाता है।

हिंदी में इन दोनों अनुनासिक (ँ) और अनुस्वार (ं) चिह्नों को अपनाया गया है। अतः इनके लिखने में सावधानी बरतना आवश्यक है।

कोंकणी में यद्यपि अर्द्धचंद्र और बिंदी (ँ) का उपयोग नहीं किया गया तो भी इसे अपनाकर कोंकणी उच्चारण में होनेवाला अनुनासिक और अनुस्वार का भेद लिखित रूप में दिखाना वैज्ञानिक दृष्टि से उचित लगता है। क्यों कि कोंकणी में भी बिंदी तथा अर्द्धचंद्र और बिंदी लगाने लायक शब्द उपलब्ध हैं, जो द्रष्टव्य हैं –

बिंदी लगाने लायक शब्द	अर्द्धचंद्र और बिंदी लगाने लायक शब्द
गंगा, तेजवंत, प्रसंग, शांत,	काँठ, खाँबो, हाँस, न्हँय, वँय,
तंत्र, तांका, रुंद, कुंडी, खंड,	साँतेरी, भाँगर, भूँय, खँय, थँय
कंत, गंडो, चंद्रीम	बाँय, खूँट, गाँठ, ताँदूळ

फिर भी यहाँ एक और बात स्पष्ट करना उचित लगता है। हिंदी में यद्यपि दो नासिक्य चिह्न हैं तो भी उनका उपयोग ठीक तरह से नहीं हो पाता। जैसे कि ' हँसी, गेहूँ, पूँछ, बाँस ' आदि शब्दों में अनुनासिकता स्पष्ट करने के लिए अर्द्धचंद्र और बिंदी दी जाती है तो ' आयीं, में, मैं, सोंठ, कोसों ' आदि शब्दों में अनुनासिकता स्पष्ट करने के लिए केवल बिंदी ही दी जाती है। अर्थात् यह बात वैज्ञानिक नहीं है; क्यों कि बिंदी को अनुस्वार का चिह्न माना गया है। इसलिए हमें ऐसा चिह्न ढूँढना चाहिए जो उपर्युक्त दोनों प्रकारों के शब्दों के लिए उचित हो। इससे आगे चलकर हम इनका उपयोग हिंदी तथा कोंकणी भाषा में ठीक तरह से कर पाएँगे।

इस संदर्भ दो और बातें स्पष्ट करना चाहता हूँ। मराठी में अनुनासिकता जो हटायी गयी वह ठीक नहीं लगती। इससे भाषा का वैशिष्ट्य खो जाता है। इसके सिवा जो नियम बनाए गये हैं वे भी ठीक नहीं है। उदाहरण के तौर पर ' ती (= तीं, नपुं. बहु.; हिंदी में अर्थ है ' वे ') ' का अनुस्वार निकालना और ' आम्हांला (हिंदी में अर्थ है ' हमको ') ' का अनुस्वार रखना उचित नहीं लगता। यद्यपि मराठी में अनुनासिक स्वरूप के अनुस्वार को हटाने का काफी प्रयत्न किया है ; फिर भी उसमें नयी पद्धति से अनुस्वार का अत्यधिक प्रसार होता दिखायी देता है, जैसे :– ' तुझं म्हणणं खरं वाटतं. (= तेरा कहना सत्य लगता है।) ।' इस मराठी वाक्य में अनुनासिक का प्रचलन काफी मात्रा में दीखता है। इसी प्रकार मराठी में ह्रस्व-दीर्घ के बारे में जो नियम बनाये हैं वे भी ठीक जँचते नहीं। मराठी की देखादेखी में इन बातों को कोंकणी में भी अपनाने का प्रयत्न किया जा रहा है, जो कि वैज्ञानिक दृष्टि से ठीक नहीं लगता। आशंका इस बात की है कि आगे चलकर हिंदी के विद्वान भी इस बात को अपनाने का प्रयास करेंगे।

मराठी में पहले ' ती (स्त्री. एक.; हिंदी में अर्थ है ' वह ') ' और ' तीं (नपुं. बहु. ; हिंदी में अर्थ है ' वे ')' दो रूप थे। इस अनुस्वार के कारण ' ती ' और तीं ' का भेद आसानी से समझा जाता था, जैसे :– ' ती ' रूप ' तो(=वह) ' सर्वनाम का स्त्रीलिंग एकवचन है और ' तीं ' रूप उसी का नपुंसकलिंग बहुवचन है। लगभग पचीस बरस पहले ' तीं ' का अनुस्वार हटा दिया। इससे ' ती ' और ' तीं ' का भेद लुप्त हुआ और दोनों रूप समान हो गये, जैसे :– ' ती '। एवं अब एक ही ' ती ' रूप स्त्रीलिंग एकवचन और नपुंसकलिंग बहुवचन में प्रयुक्त होता है।

' तुझं म्हणणं खरं वाटतं. ' वाक्य मराठी में पहले ' तुझें म्हणणें खरें वाटतें ' लिखा जाता था। पचीस बरस पहले इन पर से अनुनासिकता दिखानेवाला अनुस्वार हटा दिया। इससे वाक्य इस प्रकार बना :– ' तुझे म्हणणे खरे वाटते. '। अर्थात् एंकारान्त की जगह एकारान्त शब्दरूप प्रयुक्त हो गये। एवं वाक्यरचना निरनुनासिक बनती गयी। परंतु अब फिर से अनुनासिकता बढती हुई दिखायी देती है, जैसे :– ' तुझं म्हणणं खरं वाटतं.'।

(iii) संयुक्त स्वर

डा. धीरेंद्र वर्माने अपनी ' हिंदी भाषा का इतिहास ' पुस्तक में हिंदी मूल स्वरों के विवरण में ' ऐ ' तथा ' औ ' का विवरण नहीं दिया है [३७]। उन्होंने ' ऐ ' तथा ' औ ' का निर्देश ' संयुक्त-स्वर ' नामक उपशीर्षक में किया है[३८]। डा. धीरेंद्र वर्मा ' अए ' के लिए ' ऐ ' और ' अओ ' के लिए ' औ ' लिपि-चिह्नों का उपयोग करना उचित मानते हैं; इसके सिवा ' ऐ ' तथा ' औ ' चिह्नों का प्रयोग व्रजभाषा के मूल स्वर ' ऐ ' और ' औ ' के लिए और संस्कृत, हिंदी की कुछ बोलियों और कुछ साहित्यिक हिंदी के रूपों में पाये जाने वाले ' अइ ' और ' अउ ' संयुक्त स्वरों के लिए भी उपयुक्त मानते हैं ।

परंतु डा. लक्ष्मीनारायण शर्मा ने ' ऐ ' तथा ' औ ' को मूल स्वर माना है, और ' अइ – अई – अए ' तथा ' अउ – अऊ – अओ ' को संयुक्त स्वर माना है । उन्होंने ' ऐ ' तथा ' औ ' लिपि-चिह्नों का प्रयोग ' अइ – अई – अए [डा. धीरेंद्र वर्मा के अनुसार ' अए (= ऐ) ' भी] ' तथा ' अउ – अऊ – अओ [डा. धीरेंद्र वर्मा के अनुसार ' अओ (=औ) भी] ' के लिए करना अवैज्ञानिक माना है । इसलिए उन्होंने ' ऐ ' तथा ' औ ' को मूल स्वर माना है, और ' अइ – अई – अए ' तथा ' अउ – अऊ – अओ ' को संयुक्त स्वर मानकर इनके लिए ' ऐ ' तथा ' औ ' लिपि-चिह्नों का उपयोग नहीं किया है । एवं उन्होंने ' ऐ ' तथा ' औ ' की चर्चा मूल स्वरों में, ' अइ – अई – अए ' तथा ' अउ – अऊ – अओ ' की चर्चा संयुक्त स्वरों में और ' अइ, अई, अए ' तथा ' अउ, अऊ, अओ ' की चर्चा स्वरानुक्रम में की है[३९]।

मूल स्वर ' ऐ ' तथा ' औ ' का स्पष्टीकरण और उनके उदाहरण ' मूल स्वर ' विभाग में दिये जा चुके हैं । (देखिए, पृ. १३)

स्वरानुक्रम की चर्चा इसके अनंतर की है ।
यहाँ संयुक्त स्वर के बारे में एक बात बतानी है ।

डा. धीरेंद्र वर्मा ने ' संयुक्त स्वर ' तथा ' स्वरानुक्रम (जो आगे बताया जाएगा) ' में भेद करना कठिन माना है[४०]।

' संयुक्त स्वर ' तथा ' स्वरानुक्रम ' की व्याख्या डा. लक्ष्मीनारायण शर्मा ने इस प्रकार दी है[४१] :– " उच्चारण के समय जिह्वा एक स्वर का उच्चारण आरंभ करती हुई बिना किसी व्यवधान (मौन) के दूसरे स्वर के उच्चारण में अपनी गति समाप्त करती है । ऐसे दो स्वरों का समाहार ' संयुक्त स्वर ', ' संध्यक्षर स्वर ' या ' मिश्र स्वर ' कहलाता है तथा यह एक अक्षर का निर्माण करता है । उच्चारण के समय यदि एक स्वर के उच्चारण के पश्चात् दूसरा स्वर उच्चरित हो तो संयुक्त स्वर का निर्माण न होगा, वह ' स्वरानुक्रम ' कहलायेगा ।" अत एव उन्होंने ' अइ – अई – अए ' तथा ' अउ – अऊ – अओ ' को संयुक्त स्वर माना है । उनके कथनानुसार ये दोनों स्वर ब्रज, निमाडी, पूर्वी बोलियों में प्राप्त हैं ।

इस कथन का यह अर्थ है कि परिनिष्ठित हिंदी में ' अइ – अई – अए ' तथा 'अउ – अऊ – अओ ' संयुक्त स्वर प्राप्त नहीं है ।

इस प्रकार के संयुक्त स्वर कोंकणी में भी प्राप्त नहीं हैं ।

(iv) स्वरानुक्रम

जब दो या अधिक स्वर पास–पास (बीच में बिना किसी व्यंजन के) आते हैं तो उसे ' स्वरानुक्रम ' या ' स्वरसंयोग ' कहते हैं[४२]। ऐसे ' स्वरानुक्रम ' को धीरेंद्र वर्मा ' संयुक्त-स्वर ' मानते हैं[४३]। परंतु ऐसे स्वरों को ' स्वरानुक्रम ' से पहचानना उचित है । परिनिष्ठित हिंदी में प्राप्त स्वरानुक्रम के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं, यथा :– ' अई : कई, मंडई '; ' आई : नाई, भाई '; ' आऊ : टिकाऊ, खाऊ '; ' ओई : कोई, बहनोई '; ' उआ : बुआ, जुआ '; ' ऊई : रूई , सूई '; ' आइए : गाइए, खाइए '; ' आए : जाएगा ', खाएगा '; ' अइआ : मइआ, भइया ' आदि ।

इस प्रकार का ' स्वरानुक्रम ' कोंकणी में उपलब्ध नहीं । वैदिक संस्कृत में ' तितउ ' तथा संधिनियमों से समीप आये हुए ' पुरुषएवेदं ' जैसे शब्दों में स्वरानुक्रम की प्रवृत्ति दिखाई देती है[४४]। प्राकृत, अपभ्रंश में व्यंजन-लोप की प्रवृत्ति के कारण स्वरानुक्रम बहुत प्रचलित हो गया । इस प्रकार प्राकृत से चली आयी हुई स्वरानुक्रम की परंपरा हिंदी ने अपनी विशेषता के रूप में कायम बनायी रखी है; परंतु कोंकणी में यह विधा प्रायः है ही नहीं ।

हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त होनेवाली यह भिन्नता निम्नलिखित उदाहरणों से और भी स्पष्ट होती है –

हिंदी	**कोंकणी**	**हिंदी**	**कोंकणी**
कछुआ	कासव	जमाई	जांवय
अढाई	अडेच	भौजाई	भावज
चिउडा	चिवडो	भाई	भाव
निबुआ	लिंबू	जनेऊँ	जानवें
बाईस	बावीस	खडाऊँ	खडाव
ननदोई	नणडावो	सूई	सूय
सलाई	सळय/सळाक		

(२) व्यंजनों का वर्णन

व्यंजनों के वर्णन में (अ) स्पर्श, (आ) स्पर्शसंघर्षी, (इ) अनुनासिक, (ई) पार्श्विक, (उ) लुण्ठित, (ऊ) उत्क्षिप्त, (ए) संघर्षी, (ऐ) अर्द्धस्वर,(ओ) मिश्र व्यंजन और (औ) अनुस्वार आते हैं । आगे क्रमशः उदाहरणों के साथ इनका विवरण प्रस्तुत है –

(अ) स्पर्श व्यंजन

स्पर्श व्यंजन में (i) जिह्वामूलीय, (ii) कण्ठ्य, (iii) मूर्द्धन्य, (iv) दन्त्य और (v) ओष्ठ्य व्यंजन आते हैं ।

(i) जिह्वामूलीय व्यंजन

इसमें ' क़् ' ध्वनि आती है । इसका उच्चारण जीभ की जड या जिह्वामूल को कोमल तालु के पीछे कौवे के निकट स्पर्श कराकर होता है ।

क़् : अल्पप्राण अघोष जिह्वामूलीय स्पर्श व्यंजन है । ' क़् ' ध्वनि कोंकणी में प्राप्त नहीं है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
क़ुली, क़ानून, ताक़त, शौक़ीन	----------

' क़् ' ध्वनि भारतीय परंपरा से प्राप्त नहीं है । यह विदेशी ध्वनि है । इसका प्रयोग तुर्की, अरबी, फारसी शब्दों में उपलब्ध है । मध्ययुग में मुसलमानों के प्रभाव-स्वरूप यह ध्वनि हिंदी में प्राप्त है । इसका शुद्ध उच्चारण उर्दू की जानकारी रखनेवाले विद्वान ही ठीक कर पाते हैं । सामान्यतः इसके स्थान पर लोक ' क् ' बोलते हैं, यथा :– ताकत, कानून, शौकीन आदि ।

कोंकणी में ' क़् ' ध्वनि नहीं है । कोंकणी में तुर्की, अरबी, फारसी शब्द हैं, फिर भी हिंदी ' क़् ' जैसी ध्वनि नहीं है । कोंकणी में प्राप्त तुर्की, अरबी, फारसी शब्दों में ' क़् ' के बदले ' क् ' लिखा और बोला जाता है, यथा :– ताकत, शौकीन आदि ।

(ii) कण्ठ्य व्यंजन

कण्ठ्य व्यंजन में ' क्, ख्, ग्, घ् ' आते हैं । ये ध्वनियाँ भारतीय परंपरा की हैं । संस्कृत में इनका उच्चारण स्थान कण्ठ्य है फिर भी आजकल इनका उच्चारण स्थान कोमल तालु माना है[४५]। फिर भी कोमल तालव्य और कण्ठ्य में विशेष फर्क नहीं है; क्यों कि डा. भोलानाथ तिवारी ने एक जगह " कोमल तालव्य – इसे कण्ठ्य भी कहते रहे हैं ।" लिखा है[४६] । अर्थात् उनके मत में कोमल तालु और कण्ठ में अंतर नहीं दीखता । इसलिए यहाँ तुलना के लिए ' क्, ख्, ग्, घ् ' को कण्ठ्य व्यंजन मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

कोंकणी में डा. कत्रे ने ' क्, ख्, ग्, घ् ' को कण्ठ्य माना है[४७] ।

एवं हिंदी तथा कोंकणी की ' क्, ख्, ग्, घ् ' ध्वनियाँ कण्ठ्य हैं । इनका उच्चारण जीभ के पिछले भाग से कोमल तालु अर्थात् कण्ठ को छूकर किया जाता है, अतः इन्हें ' कण्ठ्य ' कहा जाता है । स्थान तथा आभ्यन्तर प्रयत्न की दृष्टि से कवर्ग के सभी वर्ण समान हैं, परंतु बाह्य प्रयत्न के भेदों के कारण ' क्, ख्, ग्, घ्'में परस्पर भिन्नता है ।

क् : अल्पप्राण अघोष कण्ठ्य स्पर्श व्यंजन, यथा–

हिंदी	कोंकणी
कमल, कापूस, एक, आंकडा	कमळ, कापूस, एक, आंकडो

उपर्युक्त ' क् ' व्यंजन के वर्णन में दिखाये ' अल्पप्राण, अघोष, कण्ठ्य, स्पर्श ' शब्दों में ' अल्पप्राण, अघोष ' बाह्य प्रयत्न हैं; ' कण्ठ्य ' स्थान से संबंधित है और ' स्पर्श ' आभ्यन्तर प्रयत्न है। इस प्रकार व्यंजनों के वर्णन में 'महाप्राण, सघोष ' शब्द भी आगे आये हैं। ये भी बाह्य प्रयत्न हैं। इसी प्रकार आगे चलकर स्थान तथा आभ्यन्तर प्रयत्न वाचक शब्द भी व्यंजन के अनुसार बदले हैं।

ख् : महाप्राण अघोष कण्ठ्य स्पर्श व्यंजन, यथा–

हिंदी	कोंकणी
खाजा, खजूर, सुख, लीख	खाजें, खाजूर, सुख, लीख

हिंदी में शब्दों के अन्त्य स्थित ' ख् ' में महाप्राणत्व बहुत कम होता है, तथा वह प्रायः ' क् ' के निकट पहुँच जाता है, यथा :– भूख > भूक, राख > राक। प्रायः यही स्थिति कोंकणी में भी दिखाई देती है, यथा :– भूख > भूक, राख > राक। परंतु हिंदी तथा कोंकणी में इस प्रकार नहीं लिखा जाता। फिर भी क्वचित् कोंकणी में ' भूक ' लिखना पसंद है, परंतु ' राक ' नहीं।

ग् : अल्पप्राण सघोष कण्ठ्य स्पर्श व्यंजन, यथा–

हिंदी	कोंकणी
गाय, गिरही, जगह, अंगुल	गाय, गिरेस्त, जागो, आंगूळ

घ् : महाप्राण सघोष कण्ठ्य स्पर्श व्यंजन, यथा –

हिंदी	कोंकणी
घर, घोंसला, आघात, बाघ	घर, घोंटेर, आघात, वाघ

हिंदी शब्दों के अन्त्य स्थित ' घ् ' में महाप्राणत्व कम होता है, यथा :– बाघ > बाग। यही स्थिति कोंकणी में होती है, यथा :– वाघ > वाग। परंतु हिंदी में ' बाघ ' के बदले ' बाग ' नहीं लिखा जाता, जब कि कोंकणी में ' वाघ ' में अल्पप्राण ' ग ' लिखा भी जाता है, यथा :– ' वाग(= बाघ) '।

फिर भी यहाँ एक बात पर ध्यान देना जरूरी है। यदि हिंदी ' बाघ ' तथा कोंकणी ' वाघ ' शब्द में ' ग ' लिखा जाए तो जो दो शब्द-युग्म (हिंदी : बाघ-बाग; कोंकणी :

वाघ-वाग) तैयार होते हैं उनके अर्थ में अन्तर प्राप्त होता है, जैसे :– हिंदी 'बाघ' का अर्थ है 'क्रूर जानवर' तो 'बाग' का अर्थ है 'बगीचा'। इसी प्रकार कोंकणी 'वाघ' शब्द का अर्थ है 'क्रूर जानवर' तो 'वाग' का अर्थ है 'वागप (=बर्ताव करना)' क्रिया का आज्ञार्थ एकवचन (वाग=बर्ताव कर)।

(iii) मूर्द्धन्य व्यंजन

मूर्द्धन्य व्यंजनों में 'ट्, ठ्, ड्, ढ्' आते हैं। ये ध्वनियाँ भारतीय परंपरा से आगत हैं। इन ध्वनियों का उच्चारण जीभ की नोक को उलटकर इसके नीचे के हिस्से से कठोर तालु के मध्य भाग के निकट छुआकर किया जाता है। प्राचीन परिभाषा के अनुसार टवर्गीय ध्वनियाँ मूर्द्धन्य व्यंजन कहलाती हैं [४८]।

डा. कत्रे ने भी कोंकणी में टवर्ग को मूर्द्धन्य माना है [४९]।

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी 'ट्, ठ्, ड्, ढ्' ध्वनियों का स्थान मूर्द्धा तथा आभ्यन्तर प्रयत्न स्पर्श है।इन ध्वनियों में केवल बाह्य प्रयत्नों की दृष्टि से अंतर है।

ट् : अल्पप्राण अघोष मूर्द्धन्य स्पर्श व्यंजन, यथा –

हिंदी	कोंकणी
टीका, टूटना, फूट, ठाटबाट	टीका, तुटप, फूट, थाटमाट

ठ् : महाप्राण अघोष मूर्द्धन्य स्पर्श व्यंजन, यथा –

हिंदी	कोंकणी
ठग, कठिन, आठ, गाँठ	ठक, कठीण, आठ, गांठ

कोंकणी शब्दों के अन्त्य स्थित 'ठ्' में महाप्राणत्व बहुत कम होता है, तथा वह प्रायः 'ट्' के निकट पहुँच जाता है, यथा :– आठ > आट, गांठ > गांट आदि। हिंदी में प्रायः यह स्थिति नहीं है।

ड् : अल्पप्राण सघोष मूर्द्धन्य स्पर्श व्यंजन, यथा –

हिंदी	कोंकणी
डमरू, डिब्बा, दंड, खंड	डमरू, डबो, दंड, खंड

ढ् : महाप्राण सघोष मूर्द्धन्य स्पर्श व्यंजन, यथा –

हिंदी	कोंकणी
ढोल,.ढोंग, ढंग, ढब	ढोल, ढोंग, ढंग, ढब

(iv) दन्त्य व्यंजन

इसमें 'त्, थ्, द्, ध्' व्यंजन आते हैं। इन ध्वनियों का उच्चारण जीभ की नोक से दाँतों के ऊपर की पंक्ति को छूकर किया जाता है। ये ध्वनियाँ हिंदी तथा कोंकणी में भारतीय परंपरा से प्राप्त हैं।

हिंदी तथा कोंकणी 'त्, थ्, द्, ध्' ध्वनियों का स्थान दन्त तथा आभ्यन्तर प्रयत्न स्पर्श है। इन वर्णों में केवल बाह्य प्रयत्नों के कारण अंतर प्राप्त है।

त् : अल्पप्राण अघोष दन्त्य स्पर्श व्यंजन, यथा –

हिंदी	कोंकणी
ताल, तब, आता, गीत	ताळ, तेन्ना, येता, गीत

थ् : महाप्राण अघोष दन्त्य स्पर्श व्यंजन, यथा –

हिंदी	कोंकणी
थोडा, थल, रथ, कथा	थोडो, थळ, रथ, कथा

कोंकणी शब्दों के अन्त्य स्थित 'थ्' में महाप्राणत्व बहुत कम होता है, तथा वह 'त्' के निकट पहुँच जाता है, यथा :–'रथ > रत, कथा > कता' आदि। परंतु कोंकणी में इस प्रकार नहीं लिखा जाता।

द् : अल्पप्राण सघोष दन्त्य स्पर्श व्यंजन, यथा –

हिंदी	कोंकणी
दाल, याद, दादा, बाद	दाळ, याद, दादा, बाद

ध् : महाप्राण सघोष दन्त्य स्पर्श व्यंजन, यथा –

हिंदी	कोंकणी
धान, धर्ती, आधार, साधु	धान, धर्तरी, आधार, साधु

कोंकणी में शब्दों के मध्य तथा अन्त्य प्राप्त 'ध्' में महाप्राणत्व कम सुनायी देता है, जैसे :– 'आधार > आदार, साधु > सादू' आदि।

(v) ओष्ठ्य व्यंजन

ओष्ठ्य व्यंजन में 'प्, फ्, ब्, भ्' ध्वनियाँ आती हैं। ये ध्वनियाँ हिंदी तथा कोंकणी

में भारतीय परंपरा से आगत हैं। इन ध्वनियों का उच्चारण दोनों ओठों को छुआकर होता है। अतः स्थान ओष्ठ तथा आभ्यन्तर प्रयत्न स्पर्श है। 'प्, फ्, ब्, भ्' में केवल बाह्य प्रयत्नों के कारण भिन्नता प्राप्त है।

प् : अल्पप्राण अघोष ओष्ठ्य स्पर्श व्यंजन, यथा –

हिंदी	कोंकणी
पान, पता, सुपारी, आप	पान, पत्तो, सुपारी, आपुण

फ् : महाप्राण अघोष ओष्ठ्य स्पर्श व्यंजन, यथा –

हिंदी	कोंकणी
फल, फूल, सफल, कफ	फळ, फूल, सफळ, कफ

ब् : अल्पप्राण सघोष ओष्ठ्य स्पर्श व्यंजन, यथा –

हिंदी	कोंकणी
बल, बदली, खबर, कोबी	बळ, बदली, खबर, कोबी

भ् : महाप्राण सघोष ओष्ठ्य स्पर्श व्यंजन, यथा –

हिंदी	कोंकणी
भाड, आभार, लोभ, लाभ	भट्टी, आभार, लोभ, लाभ

हिंदी में शब्दों के अन्त्य प्राप्त 'भ्' में महाप्राणता बहुत कम हो जाती है, और कभी-कभी 'भ्' 'ब्' के निकट पहुँच जाता है, जैसे :– जीभ >जीब। फिर भी हिंदी में 'जीब' नहीं लिखा जाता। कोंकणी में 'भ्' का उच्चारण 'ब्' होता है और 'जीभ, लाभ' शब्दों के बदले 'जीब, लाब' लिखा जाता है।

फिर भी यहाँ एक बात ध्यान में रखना आवश्यक है। हिंदी तथा कोंकणी शब्दों का उच्चारण करते समय मध्य या अन्त्य स्थित महाप्राण व्यंजनों के बदले अल्पप्राण व्यंजनों का उच्चारण करना प्रायः साधारण-सा हो गया है। और यह प्रवृत्ति हिंदी की अपेक्षा कोंकणी में अधिक है। इसके सिवा कोंकणी में शब्दों के मध्य या अन्त्य स्थित महाप्राण व्यंजनों के स्थान पर अल्पप्राण व्यंजन लिखे भी जाते हैं, जैसे :– 'संबंद(ध), आरंब(भ), वाग(घ), जीब(भ), आट(ठ), सादा(धा)रण, आदा(धा)र, गांट(ठ), अदी(धि)क, कटी(ठि)ण, भीक(ख)' आदि।

(आ) स्पर्शसंघर्षी व्यंजन

स्पर्शसंघर्षी व्यंजन में केवल तालव्य व्यंजन आते हैं ।

तालव्य व्यंजन

इसमें ' च्, छ्, ज्, झ् ' व्यंजन ध्वनियाँ आती हैं । ये ध्वनियाँ हिंदी तथा कोंकणी में भारतीय परंपरा से प्राप्त हैं । इन ध्वनियों के उच्चारण संबंध में मतभेद है । यह मतभेद बाह्य प्रयत्न के संबंध में नहीं है अपि तु स्थान तथा आभ्यन्तर प्रयत्न के संबंध में है । फिर भी स्थान तथा आभ्यन्तर प्रयत्न के संबंध में प्राप्त होने वाला समान अंश लेकर यहाँ हिंदी तथा कोंकणी ' च्, छ्, ज्, झ् ' की तुलना की है । यह समान अंश है स्थान की दृष्टि से ' तालव्य ' और आभ्यन्तर प्रयत्न की दृष्टि से ' स्पर्शसंघर्षी '। भारतीय परंपरा में इसका स्थान तालव्य और आभ्यन्तर प्रयत्न स्पर्श है ।

' च्, छ्, ज्, झ् ' का उच्चारण जीभ के अगले हिस्से को ऊपरी मसूडों के निकट कठोर तालु से कुछ रगड के साथ छूकर किया जाता है; अतः स्थान तालव्य और आभ्यन्तर प्रयत्न स्पर्शसंघर्षी है । इन वर्णो में परस्पर भिन्नता केवल बाह्य प्रयत्नों के कारण है ।

च् : अल्पप्राण अघोष तालव्य स्पर्शसंघर्षी व्यंजन, यथा –

हिंदी	कोंकणी
चंदन, चित्र, वचन	चंदन, चित्र, वचन

छ् : महाप्राण अघोष तालव्य स्पर्शसंघर्षी व्यंजन, यथा –

हिंदी	कोंकणी
छाती, छप्पर, छत्तीस, तुच्छ	छाती, छप्पर, छत्तीस, तुच्छ

ज् : अल्पप्राण सघोष तालव्य स्पर्शसंघर्षी व्यंजन, यथा –

हिंदी	कोंकणी
जीव, जेंवन, मजेदार, जय	जीव, जेवण, मजेदार, जय (जैत)

झ् : महाप्राण सघोष तालव्य स्पर्शसंघर्षी व्यंजन, यथा –

हिंदी	कोंकणी
झिडकना, झील, झेंपना	झिडकारप, झील, झेमप

(हिंदी ' झील, झेंपना ' तथा कोंकणी ' झील, झेमप ' भिन्नार्थक हैं ।)

विशेष :

हिंदी में ‘ च्, छ्, ज्, झ् ’ का उच्चारण संस्कृत के अनुसार एक ही प्रकार से (यकार मिश्रित-सा) होता है; तो कोंकणी में ‘ छ् ’ छोडकर ‘ च्, ज्, झ् ’ का उच्चारण दो प्रकार से होता है[५०]। पहले प्रकार के ‘ च्, ज्, झ् ’ के उच्चारण में यकार का श्रवण होता है, तो दूसरे प्रकार के ‘ च्, ज्, झ् ’ के उच्चारण में यकार का श्रवण नहीं होता है । ये दूसरे प्रकार की ‘ च्, ज्, झ् ’ कोंकणी में विकसित नयी ध्वनियाँ हैं ।

ऊपर ‘ च्, ज्, झ् ’ व्यंजनों के उदाहरणों में दिग्दर्शित ‘ चंदन, जीव, झिडकारप ’ आदि शब्दों का उच्चारण कोंकणी में ‘ च्यंदन, ज्यीव, झ्यिडकारप ’ जैसा यकारयुक्त सुनायी देता है । एवं कोंकणी में प्राप्त यकाररहित उच्चरित होनेवाले ‘ च्, ज्, झ् ’ के उदाहरण नीचे दिये हैं —

च् : यह अल्पप्राण अघोष दन्ततालव्य स्पर्शसंघर्षी व्यंजन है । इसके उदाहरण हैं :– ‘ चणो (= चना), चोर (= चोर), चौदा (= चौदह), चपाती (= चपाती), चमचो (= चम्मच), चौथाय (= चौथाई), चाल (= चाल) ’ आदि । हिंदी में इनका उच्चारण करना चाहें तो यकारयुक्त ‘ च् ’ सुनाई देगा, जैसे :– ‘ च्यना, च्योर, च्यौदह, च्यपाती, च्यम्मच्य, च्यौथाई, च्याल ’ आदि ।

‘ च् ’ के उच्चारण भेद के कारण कोंकणी शब्दों में अर्थभेद भी दिखाई देता है । ‘ चार ’ शब्द का यकारयुक्त (च्यार) उच्चारण करने से संख्या ‘ चार (= ४) ’ का बोध होता है; तो यकाररहित ‘ चार ’ शब्द को उच्चारण करने से ‘ पनस का छिलका, खाने के छोटे छोटे फल (जैसे ‘ चारां ’) ’ आदि अर्थ प्राप्त होते हैं । इस यकाररहित उच्चरित होने वाले ‘ च् ’ को लिखने के लिए कोंकणी में स्वतंत्र लिपि-चिह्न नहीं है । अतः इसके स्थान पर यकारयुक्त उच्चरित होने वाला ‘ च् ’ लिखा जाता है ।

एवं यकाररहित उच्चरित होनेवाला ‘ च् ’ हिंदी में नहीं है ।

ज् : यह अल्पप्राण सघोष दन्ततालव्य स्पर्शसंघर्षी व्यंजन है । इसके उदाहरण हैं :– ‘ जाय (= एक प्रकार का सुगंधित फूल, चाहिए), जोख (= वजन), आज (= आज), जगप (= जीना), लज (= लज्जा), खाजूर (= खजूर) ’ आदि । इनका उच्चारण हिंदी में करना चाहें तो यकारयुक्त ‘ ज् ’ सुनायी देगा, जैसे :– ‘ ज्याय, ज्योख, आज्य, ज्यगणे, लज्य, खाज्यूर ’ आदि ।

‘ ज् ’ के उच्चारण भेद के कारण कोंकणी शब्दों में अर्थभेद भी दिखाई देता है । ‘ जून ’ शब्द का यकारयुक्त (ज्यून) उच्चारण करने से उसका अर्थ होता है, ‘ अंग्रेजी छठा महीना ’; तो यकाररहित ‘ जून ’ शब्द का उच्चारण करने से ‘ पकने को तैयार, पक्का, परिपुष्ट, दृढ ’ आदि अर्थ प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार यकारयुक्त ‘ जग ’ का अर्थ है ‘ सृष्टि ’ तो यकाररहित ‘ जग ’ का अर्थ ‘ जीना क्रिया का आज्ञार्थ द्वितीय पुरुष ’।

इस यकाररहित उच्चरित होनेवाले ' ज् ' के स्थान पर यकारयुक्त उच्चरित होने वाला ' ज् ' लिखा जाता है; क्यों कि कोंकणी में इस दूसरे ' ज् ' के लिए स्वतंत्र लिपि-चिह्न नहीं है ।

कोंकणी का यह यकाररहित उच्चरित होने वाला ' ज् ' हिंदी में नहीं है । फिर भी इसका साम्य हिंदी के संघर्षी ' ज् (जो आगे स्पष्ट किया है, देखिए पृ. ३८) ' के साथ प्रायः मिलता-जुलता है ।

झ् : यह महाप्राण सघोष दन्ततालव्य स्पर्श संघर्षी व्यंजन है । इसके उदाहरण हैं :– ' झगडें (= झगडा), झोंपाळो (= झूला), झूज (= जूझ, लडाई) ' आदि । इनका उच्चारण हिंदी में करना चाहें तो यकारयुक्त ' झ् ' सुनायी देगा, जैसे :– झ्यगडें, झ्योंपाळो, झ्यूज ' आदि । इस यकाररहित उच्च रित होने वाले ' झ् ' के लिए कोंकणी में स्वतंत्र लिपि-चिह्न नहीं है । अतः इसके स्थान पर यकारयुक्त उच्चरित होने वाला ' झ् ' ही लिखा जाता है ।
यह ' झ् ' हिंदी में नहीं है ।

कर्नाटक प्रदेश के कुमठा, होन्नावर, मंगलूर आदि जिलों में बोली जाने वाली कोंकणी में उपर्युक्त यकाररहित उच्चरित होने वाली ' च्, ज्, झ् ' ध्वनियाँ उपलब्ध नहीं है । वहाँ संस्कृत और हिंदी के समान ' च् , ज् , झ् ' का एक ही प्रकार का यकारयुक्त उच्चारण श्रवण होता है ।

(इ) अनुनासिक व्यंजन

इसमें ' ङ्, ण्, न्, न्ह, म्, म्ह, ञ् ' ध्वनियाँ आती हैं । अनुनासिक व्यंजनों के उच्चारण में हवा मुख में कहीं–न–कहीं स्पर्श करती है, और कोमल तालु अलिजिह्वा सहित नीचे झुक जाने के कारण कुछ हवा नासिका विवर से गूंजती हुई निकलती है । इन अनुनासिक व्यंजनों के उच्चारण का स्थान और प्रयत्न वर्गीय तृतीय व्यंजन के अनुसार ही होता है । इसके सिवा इनमें अनुनासिक प्रयत्न अधिक होता है । इसलिए हिंदी के विद्वानों ने अनुनासिक व्यंजनों को स्पर्श व्यंजनों से अलग किया है । परंतु संस्कृत भाषाशास्त्रियों ने ' ङ्, ञ्, ण्, न्, म् ' को स्पर्श व्यंजन ही माना है[५१] ; क्यों कि उन्होंने अनुनासिकता को उनका धर्म माना है ।

ङ् : डा. धीरेंद्र वर्मा ने ' ङ् ' को कण्ठ्य, अनुनासिक व्यंजन माना है । डा. भोलानाथ तिवारी आदि विद्वान इसे कण्ठ्य के बदले ' कोमल तालव्य ' मानते हैं । ' हिंदी भाषा ' पुस्तक में डा. भोलानाथ तिवारी ने यद्यपि कण्ठ्य तथा कोमल तालव्य में भेद किया है[५२]; फिर भी उन्होंने अपनी ' भाषा-विज्ञान ' पुस्तक में '' कोमल तालव्य इसे कण्ठ्य भी कहते रहे हैं '' लिखा है[५३]। इसलिए ' ङ् ' को कण्ठ्य मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

'ङ्' अल्पप्राण सघोष कण्ठ्य अनुनासिक व्यंजन है। यह ध्वनि हिंदी तथा कोंकणी में भारतीय परंपरा से प्राप्त है। हिंदी तथा कोंकणी में प्रायः यह ध्वनि शब्द के केवल मध्य में, कवर्गीय व्यंजनों के पूर्व, संयुक्त व्यंजन के एक सदस्य के रूप में आती है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
अङ्क, शङ्ख	अंक (अङ्क), शंख (शङ्ख)
सङ्गम, सङ्घ	संगम (सङ्गम), संघ (सङ्घ)

विशेष :

हिंदी लेखन में कवर्गीय व्यंजनों के पूर्व 'ङ्' के लिए अब प्रायः अनुस्वार लिखा जाता है। अतः उपर्युक्त हिंदी के उदाहरण 'अंक, शंख, संगम, संघ' रूप में लिखे जाते हैं।

कोंकणी लेखन में कवर्गीय व्यंजनों के पूर्व 'ङ्' के लिए सर्वत्र अनुस्वार ही लिखा जाता है। अतः उपर्युक्त कोंकणी के उदाहरणों में अनुस्वारयुक्त रूप दिये हैं और अनुस्वार का 'ङ्' उच्चारण दिखाने के लिए कोष्ठक में 'ङ्' युक्त रूप दिये हैं।

संस्कृत में ङ्कारादि एक ही शब्द है जो पाणिनीय धातुपाठ में प्राप्त है, जैसे :– 'ङु (भ्वादि गण, आत्मनेपद)'। इसका वर्तमानकाल में 'ङवते', अनद्यतन भविष्यत् में 'ङोता', आशीर्लिङ् में 'ङोषीष्ट' रूप होते हैं। परंतु इस धातु से निष्पन्न कोई रूप अभी तक नहीं दिखायी दिया। एवं संस्कृत में 'ङु' धातु और उसके रूपों को छोड स्वरसहित या स्वररहित ङकारादि शब्द नहीं है। इसके सिवा संस्कृत में स्वरसहित 'ङ्' शब्दों के मध्य में भी नहीं मिलता; परंतु स्वररहित 'ङ्' संस्कृत शब्दों के मध्य में बहुत उपलब्ध होता है, जैसे :– 'शङ्कर, अङ्कुर, कङ्कण, गङ्गा, शङ्ख, पंङ्क्ति, दिङ्नाग, वाङ्मय' आदि। संस्कृत के व्याकरणिक परिभाषा में शब्दों के अन्त में स्वररहित 'ङ्' प्राप्त है, जैसे :– 'एङ्, लङ्, लिङ्, लृङ्, आशीर्लिङ्' आदि।

हिंदी तथा कोंकणी में 'ङ्' व्यंजन शब्दों के आदि या अंत में नहीं पाया जाता। स्वरसहित मध्य 'ङ्' हिंदी में उपलब्ध नहीं है। परंतु कोंकणी में स्वरसहित मध्य 'ङ्' अपवाद-स्वरूप लिखित रूप में एक ही उदाहरण में प्राप्त है, यथा :– 'चिर्ङट'[५४]।

डा. भोलानाथ तिवारी आदि विद्वानों ने हिंदी की बोलियों में शब्दों के मध्य तथा अन्त में प्राप्त होने वाले 'ङ्' के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, यथा :– कङ्ना, ढोङ्' आदि[५५]। परंतु ये रूप परिनिष्ठित हिंदी में उपलब्ध नहीं हैं।

यद्यपि 'ङ्' का उदाहरण दिखाने की दृष्टि से ऊपर कोंकणी में प्राप्त होने वाला 'चिर्ङट' शब्द दिखाया है फिर भी वह आज 'चिरंगट' रूप में लिखा जाता है।

एवं हिंदी तथा कोंकणी में 'ङ्' केवल सुनने में ही आता है लिखने में नहीं।

ण् : यह अल्पप्राण सघोष मूर्द्धन्य अनुनासिक व्यंजन है । इसमें जीभ की नोक उलट कर मूर्द्धा को स्पर्श करती है । यह स्पर्श निरनुनासिक मूर्द्धन्य व्यंजनों की अपेक्षा कठोर तालु पर कुछ अधिक पीछे की ओर होता है । यह ध्वनि हिंदी तथा कोंकणी में भारतीय परंपरा से प्राप्त है । इसके उदाहरण हैं –

हिंदी	कोंकणी
गुण, गणेश, प्राण	गुण, गणेश, प्राण
चरण, पुराण, पुण्य	चरण, पुराण, पुण्य

ये संस्कृत तत्सम शब्द हैं जो हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त हैं ।

विशेष :

हिंदी तथा कोंकणी में 'ण्' की प्रवृत्ति में भिन्नता है । अतः यहाँ ' ण् ' के संबंध में थोडी अधिक चर्चा करना अनावश्यक नहीं होगा ।

स्वरसहित ' ण् ' :

संस्कृत शब्दों के आदि में ' ण् ' प्राप्त नहीं है[५७]। यही प्रवृत्ति हिंदी में भी दिखायी देती है । परंतु कोंकणी में संख्यावाचक शब्दों के आदि में ' ण् ' ध्वनि पायी जाती है, यथा :– ' णव, णव्वद, णव्याण्णव, णवशें, णववो, णवपट ' आदि । यह प्रवृत्ति कोंकणी में प्रायः प्राकृत से प्राप्त है ।

संस्कृत शब्दों के मध्य में स्वरसहित ' ण् ' प्राप्त है, जैसे :– ' गुण, गणेश, चरण, प्राण, पुराण ' आदि । हिंदी तथा कोंकणी में भी तत्सम संस्कृत शब्दों में यह प्रवृत्ति दिखायी देती है, जैसे :– ' गुण, गणेश, प्राणी, चरण, पुराण ' आदि ।

हिंदी तद्भव शब्दों के मध्य में स्वरसहित ' ण् ' प्राप्त नहीं है । इतना ही नहीं उपर्युक्त ' गुण, गणेश ' आदि शब्द जब तद्भव रूप में प्रयुक्त होते हैं तो ' गुन, गनेस, चरन, प्रान, पुराना, किरन ' आदि शब्दों में ' ण् ' का ' न् ' हो जाता है । परंतु कोंकणी में बराबर इसके उल्टी स्थिति है । कोंकणी तद्भव शब्दों के मध्य में स्वरसहित ' ण् ' प्राप्त होता है । उदाहरणार्थ, ऊपर दिये हुए शब्दों में से तद्भव शब्दों के नाते कोंकणी में 'गू(गु)ण, गणेस, पोरणो ' रूप में प्रयुक्त होते हैं (' पोरणो ' के बदले ' पोन्नो ' नकारयुक्त रूप भी मिलता है) तो ' प्राण, चरण, किरण ' तत्सम रूप में ही कोंकणी में प्रयुक्त होते हैं ।

इस प्रकार हिंदी तद्भव शब्दों में स्वरसहित ' ण् ' प्राप्त नहीं है तो कोंकणी तद्भव शब्दों में स्वरसहित ' ण् ' प्राप्त है, यथा :– ' देखणो (= दर्शनीय), ताणें (= उसने), हाणें (= इसने), जीण (= जीवन), पणून (= परंतु), अणभव (= अनुभव), निसण (= निसैनी), राणी (= रानी), कोण (= कौन), गिराण (= गिरहन), हरण (= हिरन), सुणो (= कुत्ता), पणटू, पणतू (=पडपोता) ' आदि । यह प्रवृत्ति कोंकणी में व्यापक रूप

में दिखायी देती है । हिंदी की कौरवी बोली में भी स्वरसहित ' ण् ' विपुल प्राप्त होता है [५६]; यथा :– ' राणी, देखणा, माणस, अपणी ' आदि ।

कोंकणी तद्भव शब्दों में प्राप्त होने वाली यह स्वरसहित ' ण् ' की प्रवृत्ति परिनिष्ठित हिंदी में प्राप्त नहीं है ।

स्वररहित ' ण् ' :

हिंदी तथा कोंकणी में व्यवहृत तत्सम संस्कृत शब्दों में मूर्द्धन्य स्पर्श(ट् , ठ् , ड् , ढ्, ण्) व्यंजनों के पूर्व स्वररहित ' ण् ' प्राप्त होता है , यथा :–

हिंदी	**कोंकणी**
कण्टक, पण्डित	कंटक (कण्टक), पंडित (पण्डित)
कण्ठ, षण्ढ, विषण्ण	कंठ (कण्ठ), षंढ (षण्ढ), विषण्ण

हिंदी में व्यवहृत संस्कृत तत्सम शब्दों में मूर्द्धन्य स्पर्श व्यंजनों के पूर्व स्थित स्वररहित ' ण् ' का उच्चारण ' न् ' के समान हो गया है, यथा :– ' कन्टक, पन्डित, चन्डी ' । परंतु हिंदी में ' कन्टक, पन्डित, चन्डी ' नहीं लिखा जाता । ये शब्द ' ण् ' युक्त (कण्टक, पण्डित, चण्डी) अथवा अनुस्वार-युक्त (कंटक, पंडित, चंडी) लिखे जाते हैं ।

कोंकणी में भी व्यवहृत संस्कृत तत्सम शब्दों में मूर्द्धन्य स्पर्श व्यंजनों के पूर्व स्थित स्वररहित ' ण् ' का उच्चारण ' न् ' के समान होता है, और ' न् ' के बदले सदा अनुस्वार लिखा जाता है, यथा :– कंटक, पंडित, चंडी ।

इसके सिवा हिंदी तथा कोंकणी में आगत संस्कृत तत्सम शब्दों में मूर्द्धन्य स्पर्श व्यंजनों के सिवा ' य्, व्, म्' के पूर्व स्वररहित ' ण् ' उपलब्ध है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
पुण्य, अरण्य, कण्व, किण्व, मृण्मय	पुण्य, अरण्य, कण्व, किण्व(' मृण्मय ' शब्द कोंकणी में उपलब्ध नहीं है।)

हिंदी तद्भव शब्दों में मूर्द्धन्य स्पर्श व्यंजनों तथा अन्य व्यंजन (य्) के पूर्व स्वररहित ' ण् ' उपलब्ध नहीं है ।

परंतु कोंकणी तद्भव शब्दों में मूर्द्धन्य स्पर्श व्यंजनों के पूर्व स्वररहित ' ण् ' उपलब्ध है; और इस ' ण् ' के बदले अनुस्वार न लिखकर ' ण् ' ही लिखा जाता है, यथा :– ' जाण्टो, नेण्टो, म्हण्टले, कण्डुलो, कण्ण, काण्णां, काण्णी, किण्ण, शाण्णव ' आदि । यहाँ ऐसी बात नहीं है कि स्वररहित ' ण् ' तद्भव शब्दों में केवल मूर्द्धन्य स्पर्श व्यंजनों के पूर्व ही प्राप्त होता है , बल्कि अन्य व्यंजन ' य् ' के पूर्व भी स्वररहित अवस्था में वह प्राप्त होता है, यथा :– ' सवण्याक, येवजण्यो, पुण्याय, शिळोण्यो ' आदि ।

कोंकणी तद्भव शब्दों में प्राप्त होने वाली यह स्वररहित 'ण्' की प्रवृत्ति परिनिष्ठित हिंदी में प्राप्त नहीं है।

एवं कोंकणी तद्भव शब्दों के आदि में प्राप्त होने वाला 'ण्' शब्दों के मध्य में प्राप्त होने वाला स्वरसहित 'ण्' और शब्दों के मध्य में प्राप्त होने वाला स्वररहित 'ण्' हिंदी प्राप्त नहीं है।

न् : यह अल्पप्राण सघोष वर्त्स्य अनुनासिक व्यंजन है। यह ध्वनि भारतीय परंपरा से प्राप्त है। इसके उच्चारण में जीभ की नोक दन्त्य स्पर्श व्यंजनों के समान दाँतों की पंक्ति को न छूकर ऊपर के मसूडों को छूती है; अतः इसे 'वर्त्स्य' माना है। प्राचीन शिक्षाशास्त्रियों ने इसे दन्त्य माना है। इसके उदाहरण हैं –

हिंदी	कोंकणी
निसैनी, नसीब, कान, समान	निसण, नशीब, कान, समान

हिंदी लेखन में जब स्वररहित 'न्' तवर्गीय (त्, थ्, द्, ध्) व्यंजनों के पूर्व आता है तो उसके लिए अब प्रायः अनुस्वार का प्रयोग किया जाता है, यथा :– 'दन्त्य : दंत्य; ग्रन्थ : ग्रंथ; हिन्दी : हिंदी; सुन्दर : सुंदर; चन्दन : चंदन; गन्धर्व : गंधर्व' आदि। परंतु ऐसी स्थिति में कोंकणी में केवल अनुस्वार ही लिखा जाता है, यथा :– 'दंत्य, ग्रंथ, हिंदी, सुंदर, चंदन, गंधर्व' आदि।

परंतु जब स्वररहित 'न्' तवर्गीय 'न्' तथा 'म्, य्' व्यंजनों के पूर्व आता है तो उसके लिए प्रायः अनुस्वार का प्रयोग नहीं होता है, यथा :– हिंदी : 'अन्न, प्रसन्न, उन्नीस, अनन्नास, उन्माद, उन्मत्त, न्याय, मान्य, दैन्य' आदि; कोंकणी : 'अन्न, प्रसन्न, अन्नाडी, गिन्नाटी (=चावल मापने का एक अष्टमांश साधन), उन्माद, उन्मत्त, न्याय, मान्य, दैन्य' आदि। ऐसी स्थिती में 'न्' का अनुस्वार नहीं होता है।

न्ह् : यह महाप्राण सघोष वर्त्स्य अनुनासिक व्यंजन है। यह नयी विकसित ध्वनि है। 'न्' अल्पप्राण है तो 'न्ह्' महाप्राण है। 'न्ह्' के उदाहरण हैं –

हिंदी	कोंकणी
नन्हा, उन्हें, किन्होंने, कन्हैया	न्हाण, न्हीद, न्हेसण, न्हंय

(उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी शब्द भिन्नार्थक हैं।)

हिंदी तथा कोंकणी में 'न्ह्' के प्रयोग में अन्तर है। परिनिष्ठित हिंदी में 'न्ह्' शब्दों के आदि में नहीं आता, किन्तु शब्दों के मध्य में आता है, यथा :– 'नन्हा, उन्हें' आदि। परंतु कोंकणी में 'न्ह्' शब्दों के आदि में आता है, यथा :– 'न्हाण, न्हीद' आदि। इस दृष्टि से दोनों में अन्तर है। फिर भी कोंकणी की तरह हिंदी की बोलियों में 'न्ह्' दो शब्दों के आदि में प्राप्त है, यथा :– 'न्हाना, न्हान'। 'न्हान' शब्द 'न्हाना' शब्द का रूपांतर है।

एवं 'न्ह्' ध्वनि हिंदी में केवल एक ही शब्द 'न्हाना' के आदि में प्राप्त होती है।

म् : यह अल्पप्राण सघोष ओष्ठ्य अनुनासिक व्यंजन है। यह ध्वनि भारतीय परंपरा से प्राप्त है। इसका उच्चारण ओष्ठ्य स्पर्श व्यंजनों के समान दोनों ओठों को छुआकर होता है। इसके उदाहरण हैं –

हिंदी	कोंकणी
मोर, हमारा, मामा, काम	मोर, आमचो, मामा, काम

हिंदी लेखन में जब स्वररहित 'म्' पवर्गीय (प्, फ्, ब्, भ्) व्यंजनों के पूर्व आता है तो उसके लिए अब प्रायः अनुस्वार का प्रयोग होता है, यथा :– 'कम्प : कंप; गुम्फा : गुंफा; अम्बा : अंबा; आरम्भ : आरंभ' आदि। परंतु ऐसी स्थिति में कोंकणी में केवल अनुस्वार ही लिखा जाता है, यथा :–'कंप, गुंफा, अंबा, आरंभ'आदि।

परंतु जब स्वररहित'म्' पवर्गीय 'म्' तथा 'य्, र्' व्यंजनों के पूर्व आता है तो उसके लिए प्रायः अनुस्वार का प्रयोग नहीं होता है, यथा :– 'सम्मान, उम्मीद, क्षम्य, उम्र आदि। परंतु कोंकणी में अनुस्वारयुक्त 'संमान, संमत' जैसे शब्द लिखे जाते हैं।

म्ह् : यह महाप्राण सघोष ओष्ठ्य अनुनासिक व्यंजन है। 'म्ह्' नयी विकसित ध्वनि है। यह हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है। 'म्' अल्पप्राण है तो 'म्ह्' महाप्राण है। 'म्ह्' के उदाहरण हैं –

हिंदी	कोंकणी
तुम्हारा, ब्राम्हन, कुम्हार, सम्हलना	म्हारग, म्हैनो, म्हादेव, म्होंव

(उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी शब्द भिन्नार्थक हैं।)

हिंदी तथा कोंकणी में 'म्ह्' के प्रयोग में अंतर है। परिनिष्ठित हिंदी में 'म्ह्' ध्वनि शब्दों के आदि में नहीं आती किन्तु शब्दों के मध्य में आती है, यथा :– 'तुम्हारा, ब्राम्हन' आदि। परंतु कोंकणी में 'म्ह्' ध्वनि शब्दों के आदि में प्राप्त होती है, यथा :– 'म्हारग, म्हैनो' आदि। इस दृष्टि से दोनों में अन्तर है। फिर भी कोंकणी की तरह हिंदी की बोलियों में 'म्ह्' ध्वनि प्रायः तीन शब्दों के आदि में प्राप्त है, यथा :– 'म्हा, म्हारा, म्हगाई'।

ञ् : 'ञ्' के उच्चारण स्थान में विवाद है। फिर भी यहाँ तुलना के लिए तालव्य माना है। 'ञ्' अल्पप्राण सघोष तालव्य अनुनासिक व्यंजन है। इसके उदाहरण इस प्रकार दिये जाते हैं –

हिंदी	कोंकणी
चंचल, लांछन, अंजन, झंझट	चंचल, लांछन, अंजन, झंझट

हिंदी में ' ञ् ' ध्वनि क्वचित् शब्दों के मध्य में सदा स्पर्शसंघर्षी व्यंजनों के पूर्व एक सदस्य रूप में आती है, यथा :–'चञ्चल, लाञ्छन, अञ्जन '। परंतु हिंदी में विशेषतः इस प्रकार नहीं लिखा जाता; बल्कि उपर्युक्त ' चंचल ' आदि उदाहरणों की तरह अनुस्वार देकर ही लिखा जाता है । कोंकणी में तो सदा ' ञ् ' के बदले अनुस्वार देकर ही लिखा जाता है, जैसे ' चंचल ' आदि ।

विशेष :

संस्कृत में केवल एक ही शब्द के आदि में ञकार प्राप्त है, वह भी गौण रूप से । पीछे ' ङ् ' के विवरण में संस्कृत में प्राप्त ' ङु ' धातु का निर्देश किया है । रूप-रचना के अनुसार इस धातु के लिट्(परोक्षभूतकाल) में ' ञङुवे ', सन्-प्रक्रिया में ' जुङूषते ' रूप होते हैं, जिनके आदि ' ञ् ' है । परन्तु ये रूप मिलना प्रायः कठिन हैं । अर्थात् संस्कृत में ञकारादि शब्द उपलब्ध नहीं है । इसी प्रकार हिंदी तथा कोंकणी में ञकारादि शब्द नहीं है ।

संस्कृत में शब्दों के मध्य में स्वरसहित ' ञ् ' ध्वनि उपलब्ध नहीं है; परंतु स्वररहित ' ञ् ' ध्वनि उपलब्ध होती है, जैसे :– ' चञ्चल, लाञ्छन, अञ्जन ' आदि । माना जाता है कि संस्कृत में ऐसे उदाहरणों में स्पर्शसंघर्षी (च्, छ्, ज्, झ्) व्यंजनों के पूर्व स्वररहित स्थिति में एक सदस्य के रूप में ' ञ् ' ध्वनि आती है । संस्कृत-काल में इसका उच्चारण प्रायः उसी प्रकार रहा होगा । परंतु लगता है हिंदी में इस ' ञ् ' का उच्चारण प्रायः ' न् ' की तरह होता है, जैसे :– ' चन्चल, लान्छन, अन्जन ' आदि । यही स्थिति प्रायः कोंकणी में भी है । अर्थात् ' चञ्चल, लाञ्छन ' आदि शब्दों के मध्य स्थित स्वररहित ' ञ् ' का ' न् ' श्रवण होता है । एवं स्वरसहित अथवा स्वररहित ' ञ् ' ध्वनि श्रवण की दृष्टि से भी हिंदी तथा कोंकणी शब्दों के मध्य में उपलब्ध नहीं होती है ।

संस्कृत के कुछ तत्सम व्याकरणिक शब्दों के अन्त में ' ञ् ' प्राप्त है, जैसे :– ' नञ्, घञ् ' आदि । परिनिष्ठित हिंदी में यह स्थिति प्राप्त नहीं है । ब्रज की बोली में ' नाञ्(=नहीं), साञ्-साञ्(=विशेष प्रकार की आवाज), झाञ्-झाञ् (=विशिष्ट आवाज)' आदि में ' ञ् ' सी ध्वनि सुनायी पडती है । परंतु यह ' ञ् ' अनुनासिक ' यँ ' से मिलती जुलती है । यही स्थिति कोंकणी में दिखायी देती है। ' थंय, गोंय, गोंयकार, पोंय, पांयजण, गांयडोळ, गोंयडो ' आदि में ' ञ् ' जैसी ध्वनि सुनायी पडती है, परंतु वास्तव में यह उपर्युक्त ब्रज बोली के उदाहरणों की तरह अनुनासिक ' यँ ' से मिलती जुलती है ।

एवं हिंदी तथा कोंकणी में ' ञ् ' ध्वनि का होना विवादास्पद है ।

(ई) पार्श्विक व्यंजन

पार्श्विक व्यंजन में ' ल्, ल्ह् ' और ' ळ् ' ध्वनियाँ आती हैं । इनमें से 'ल्, ल्ह् ' के उच्चारण में जीभ की नोक ऊपर के मसूडों को अच्छी तरह छूती है किन्तु साथ ही जीभ के दाहिने–बायें जगह छूट जाती है जिसके कारण हवा पार्श्वों से निकलती रहती है ।

ल् : अल्पप्राण सघोष वर्त्स्य पार्श्विक व्यंजन । यह व्यंजन भारतीय आर्यभाषा परंपरा से प्राप्त है । यह हिंदी तथा कोंकणी में उपलब्ध है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
लाभ, लंबा, गोल, गाल	लाभ (ब), लांब, गोल, गाल

ल्ह् : यह ' ल् ' का महाप्राण रूप है । ' ल्ह् ' महाप्राण सघोष वर्त्स्य पार्श्विक व्यंजन है । यह नयी विकसित ध्वनि है । हिंदी तथा कोंकणी में यह ध्वनि प्राप्त है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
दूल्हा, कोल्हू, चूल्हा, कुल्हाडी	ल्हान, ल्हाय, ल्हेंवता, ल्हार

(उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी शब्द भिन्नार्थक हैं ।)

हिंदी में ' ल्ह् ' ध्वनि शब्द के मध्य में आती है, यथा :– ' दूल्हा, कोल्हू ' आदि । परंतु कोंकणी में ' ल्ह् ' ध्वनि शब्द के आदि में आती है, यथा :–'ल्हान, ल्हाय ' आदि । इस दृष्टि से दोनों में अन्तर है । फिर भी हिंदी की बोलियों में कोंकणी की तरह ' ल्ह् ' ध्वनि प्रायः तीन शब्दों के आदि में मिलती है, यथा :– ' ल्हास(सा), ल्हैदो, ल्हीक' इनमें से' ल्हीक ' के लिए परिनिष्ठित हिंदी में ' लीख ' शब्द है जो कोंकणी ' लीख ' से रूप तथा अर्थ की दृष्टि से साम्य रखता है ।

ळ् : यह अल्पप्राण सघोष मूर्द्धन्य प्रतिवेष्टित पार्श्विक व्यंजन है । इसके उच्चारण में जीभ की नोक उलट कर मूर्द्धा का स्पर्श करती है और दोनों ओर से हवा निकलती है । ' ळ् ' ध्वनि परिनिष्ठित हिंदी में नहीं है, परंतु कोंकणी में इसका प्रयोग बहुत उपलब्ध है, यथा :–

हिंदी	कोंकणी
———	फळ, दाळ, मळप, काळो, अळणी, तळी

इस ' ळ् ' के बदले परिनिष्ठित हिंदी में सर्वत्र ' ल् ' का ही प्रयोग होता है, जैसे :– उपर्युक्त कोंकणी शब्दों के रूप हिंदी में क्रमशः ' फल, दाल, मलना, काला, अलोना, तालाब ' होता है ।

कोंकणी में ' ळ् ' का प्रयोग बहुत है । परंतु यह ध्वनि शब्दों के आदि में प्राप्त नहीं होती, बल्कि शब्दों के मध्य तथा अन्त में प्राप्त होती है, जैसे :– ' मेळप (= मिलना), खेळ (= खेल; यदि ' खेळ ' को व्यंजनान्त ' खेळ् ' माना तो) ' आदि ।

हिंदी की बोलियों – हाडौती, निमाडी, मालवी, कौरवी, हरियानी, राजस्थानी – में ' ळ् ' ध्वनि प्रयुक्त है । इन बोलियों में भी ' ळ् ' ध्वनि कोंकणी की तरह शब्दों के आदि में उपलब्ध नहीं होती बल्कि शब्दों के मध्य तथा अन्त में प्राप्त होती है, यथा :– ' काळा

(= काला), माळी (= माली), पीळा (= पीला), पिळई (= पीली), तळाव (= तालाब), दाळ (= दाल), काळ (= काल) ' आदि ।

(उ) लुण्ठित व्यंजन

इसमें ' र्, ऱ्ह् (र्ह्) ' ध्वनियाँ आती हैं । इनके उच्चारण में जीभ की नोक लुण्ठित होकर वर्त्स्य को इस प्रकार स्पर्श करती है कि हवा के वेग से इसमें प्रकम्प उत्पन्न हो जाए । अतः इसे प्रकम्पी भी कहा जाता है ।

र् : यह अल्पप्राण सघोष वर्त्स्य लुण्ठित व्यंजन है । यह व्यंजन भारतीय आर्यभाषा परंपरा से आगत है । यह हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
राम, रहना, आराम, चरन	राम, रावप, आराम, चरण

ऱ्ह (र्ह) : यह ' र् ' का महाप्राण रूप है । यह नयी विकसित ध्वनि है । हिंदी के भाषाविज्ञान की पुस्तकों में महाप्राण ' ऱ्ह् ' का वर्णन किया है [५८] । ' ऱ्ह् ' महाप्राण सघोष वर्त्स्य लुण्ठित व्यंजन है । यह ध्वनि हिंदी की बोलियों में उपलब्ध है । जैसे :– ' कऱ्हानो (= कराहना), अऱ्ही (= अरहर, तुवर) ' आदि । परिनिष्ठित हिंदी में यह प्रायः उपलब्ध नहीं है; परंतु कोंकणी के कुछ शब्दों के आदि में यह व्यंजन प्राप्त होता है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
———	ऱ्हस्व, ऱ्हाट, ऱ्हास

(कोंकणी ' ऱ्हाट ' शब्द अब ' राट ' रूप में भी बोला और लिखा जाता है । परंतु इन दोनों शब्दों में अर्थान्तर है । अतः इनका प्रयोग करते समय सावधानी बरतनी चाहिए । अर्थात् कोंकणी के दोनों शब्द बनाये रखना जरूरी है ।)

कोंकणी में यह ध्वनि प्रायः शब्द के आदि में मिलती है; परंतु कोंकणी के एक ही शब्द ' कुऱ्हाड ' में ' ऱ्ह् ' ध्वनि शब्द के मध्य में भी प्राप्त है[५९] । फिर भी कोंकणी में आजकल ' कुराड (महाप्राण ' ऱ्ह ' के बिना लिखा हुआ) ' रूप ही अधिक प्रचलित है ।

(ऊ) उत्क्षिप्त व्यंजन

उत्क्षिप्त व्यंजन में ' ड़् , ढ़् ' व्यंजन आते हैं । इनके उच्चारण में जीभ प्रतिवेष्टित होकर मूर्द्धा को छूकर झटके से नीचे गिरती है । इन ध्वनियों के संबंध में मतभेद है । डा. वर्मा ' ड़् , ढ़् ' को नयी विकसित ध्वनियाँ मानते हैं [६०] । डा. भोलानाथ तिवारी इन्हें पहले सदी के लगभग विकसित मानते हैं[६१] । डा. अनंत चौधरी ने इन्हें वैदिक ' ळ् ' का विकसित रूप माना है[६२]।

ड़् : यह अल्पप्राण सघोष मूर्द्धन्य उत्क्षिप्त व्यंजन है। ' ड़् ' हिंदी की ' ड् ' ध्वनि की तरह मूर्द्धन्य ध्वनि नहीं है तथा ' ऱ् ' की तरह ' लुण्ठित ' ध्वनि नहीं है। यह स्वतंत्र ध्वनि है जिसे ' मूर्द्धन्य उत्क्षिप्त ' विशेषण दिया है।

यह ध्वनि कोंकणी में भी प्राप्त है। श्री वालावलीकर ने इसका वर्णन किया है[६३]। इसे लिखने के लिए कोंकणी में ' ड् ' का ही व्यवहार होता है। हिंदी तथा कोंकणी में मूर्द्धन्य उत्क्षिप्त ' ड़् ' ध्वनि शब्दों के मध्य में दो स्वरों के बीच पायी जाती है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
हाड़, घोड़ा, पेड़, गड़बड़	हाड, घोडो, झाड, गडबड

ढ़् : यह महाप्राण सघोष मूर्द्धन्य उत्क्षिप्त व्यंजन है। हिंदी में यह ध्वनि ' ड़् ' की तरह शब्दों के मध्य में दो स्वरों के बीच में आती है। कोंकणी में यह ध्वनि नहीं मानी है। इसका कारण शायद यह होगा कि कोंकणी में दो स्वरों के बीच ' ढ् ' आने पर भी उसमें महाप्राणत्व कम सुनाई देता है, जैसे :– हिंदी : ' ढाढ़स, चढ़ाव '; कोंकणी : ' धाड(ढ)स, चडा(ढा)व ' आदि। हिंदी ' ढ़् ' के उदाहरण इस प्रकार हैं –

हिंदी	कोंकणी
ढाढ़स, बढ़िया, बूढ़ा, पढ़ना	————

(ए) संघर्षी व्यंजन

संघर्षी व्यंजन में ' ह(:), ह्, ख़्, ग़्, श्, ष्, स्, ज़्, फ़्, व्, व्ह् ' ध्वनियाँ आती हैं। इनके उच्चारण में दो अंग एक दूसरे के इतने समीप चले जाते हैं कि उनके बीच से निकलने वाली हवा घर्षण करते हुए निकलती है।

ह(:) : महाप्राण अघोष स्वरयंत्रमुखी संघर्षी ध्वनि। यह भारतीय आर्यभाषा की ध्वनि है। इसे संस्कृत में ' विसर्ग ' कहा जाता है। हिंदी तथा कोंकणी के कुछ विस्मयादिबोधक अव्ययों में इसकी उपस्थिति दिखाई देती है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
वाः, छिः, ओः(ह्), हुं :	वाः, शीः, चेः, उंः(ह्)

इसके सिवा हिंदी में विसर्ग का प्रयोग थोडे से तत्सम संस्कृत शब्दों दिखाई देता है, जैसे :– दुःख, अन्तःकरण, मनःस्थिति, प्रायः, पुनः, अतः ' आदि। कोंकणी में यह विधा प्रायः नहीं दीखती है। क्वचित् ' दुःख ' आदि कुछ शब्दों में आजकल इसका प्रचलन फिर से शुरू हुआ है।

ह् : महाप्राण सघोष स्वरयंत्रमुखी संघर्षी व्यंजन । यह भारतीय आर्यभाषा परंपरा की ध्वनि है । यह ध्वनि हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
हाथी, हिरा, हिंदी, महेश	हती, हिरो, हिंदी, महेश

ख़् : महाप्राण अघोष जिह्वामूलीय संघर्षी व्यंजन । यह विदेशी स्रोत से आगत ध्वनि है । यह ध्वनि हिंदी में प्राप्त है, परंतु कोंकणी में नहीं है । हिंदी के उदाहरण इस प्रकार हैं –

हिंदी	कोंकणी
ख़ुश, ख़ैर, दाख़िल, बुख़ार	– – – –

'ख़्' ध्वनि हिंदी में फारसी, अरबी तत्सम शब्दों में व्यवहृत होती है । उर्दू के जानकार हिंदी विद्वान उच्चारण तथा लेखन में 'ख़्' का शुद्ध प्रयोग करते हैं । सामान्य हिंदी भाषा भाषी 'ख़्' के स्थान पर 'ख्' लिखते तथा बोलते हैं ।

कोंकणी में उपलब्ध फारसी, अरबी शब्दों में प्राप्त 'ख़्' के बदले 'ख्' ही लिखा और बोला जाता है । इस दृष्टि से उपर्युक्त 'ख़ुश, दाख़िल' शब्द कोंकणी में 'खुश, दाखल' रूप में लिखे और बोले जाते हैं ।

ग़् : यह अल्पप्राण सघोष जिह्वामूलीय संघर्षी व्यंजन है । यह ध्वनि हिंदी में प्राप्त है, परंतु कोंकणी में प्राप्त नहीं है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
ग़रीब, दाग़, बग़ल, मुग़ल	––––––

यह विदेशी ध्वनि है । हिंदी में यह फारसी, अरबी तत्सम शब्दों में पायी जाती है । उर्दू के जानकार ही इसका उच्चारण शुद्ध करते हैं । सामान्य हिंदी भाषा भाषी 'ग़्' के स्थान पर 'ग्' का ही व्यवहार लिखने और बोलने में करते हैं ।

कोंकणी में भी फारसी, अरबी शब्द हैं । परंतु इन शब्दों में प्राप्त 'ग़्' के स्थान पर 'ग्' लिखा और बोला जाता है । इस दृष्टि से उपर्युक्त फारसी, अरबी के शब्द कोंकणी में 'गरीब, दाग, बगल' रूप में लिखे और बोले जाते हैं ।

श् : अल्पप्राण अघोष तालव्य संघर्षी व्यंजन । यह भारतीय आर्यभाषा की ध्वनि है । संस्कृत में इसे महाप्राण माना है । यह ध्वनि हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
शब्द, शरीर, यश, शशी	शब्द, शरीर, यश, शशी

ष् : यह अल्पप्राण अघोष मूर्द्धन्य संघर्षी व्यंजन है । संस्कृत में इसे महाप्राण माना गया है । 'ष्' प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का व्यंजन है । वैदिक तथा संस्कृत में प्राप्त होनेवाला यह व्यंजन पालि, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं में प्राप्त नहीं है । फिर भी यह मण्डूकप्लुति की तरह संस्कृत तत्सम शब्दों के साथ हिंदी तथा कोंकणी में उपलब्ध होता है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
षट्कार, विशेष, निषेध, भाषा	षट्कार, विशेष, निषेध, भाषा

हिंदी तथा कोंकणी में इसका शुद्ध उच्चारण संस्कृत भाषा के विद्वान ही कर पाते हैं, अन्यथा अधिकांश लोग इसका उच्चारण 'श्' या 'स्' की तरह करते हैं । इस दृष्टि से उपर्युक्त उदाहरण 'शट्कार, विशेश, निशेध, भाशा' रूप में उच्चरित होते हैं । 'भाषा' शब्द का उच्चारण तो हिंदी तथा कोंकणी में 'भासा' जैसे भी होता है । कोंकणी में 'भासा' शब्द का उच्चारण तथा लेखन प्रायः 'भास' भी होता है ।

स् : यह अल्पप्राण अघोष वर्त्स्य संघर्षी व्यंजन है । 'स्' भारतीय आर्यभाषा परंपरा से आगत है । संस्कृत में इसे महाप्राण माना है । यह ध्वनि हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
सेना, सुख, पैसा, मसाला	सैन्य, सुख, पैसो, मसालो

ज़् : यह अल्पप्राण सघोष वर्त्स्य संघर्षी व्यंजन है । 'ज़्' विदेशी ध्वनि है । यह हिंदी में फारसी, अरबी के तत्सम शब्दों में व्यवहृत होती है । यह ध्वनि कोंकणी में नहीं है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
ज़रा, सज़ा, रोज़, ज़मीन	---

हिंदी में, इसका शुद्ध उच्चारण प्रायः सामान्य लोगों के लिए असंभव है । सामान्य हिंदी भाषा भाषी इसके स्थान 'ज्' ही बोलते एवं लिखते हैं ।

कोंकणी में 'ज़्' ध्वनि नहीं है । कोंकणी में उपलब्ध होनेवाले फारसी, अरबी शब्दों में भी 'ज़्' के बदले 'ज्' लिखा एवं बोला जाता है । यह 'ज्' तालव्य न होकर दन्ततालव्य है जो केवल उच्चारण में ही प्राप्त है । इस दृष्टि से उपर्युक्त हिंदी शब्द कोंकणी में 'जरा, सजा, रोज, जमीन' जैसे लिखे जाते हैं और इन शब्दों का उच्चारण यकार मिश्रित 'ज्य्' जैसा न होकर यकाररहित 'ज्' जैसा होता है । प्रायः हिंदी के इस 'ज़्' का उच्चारण कोंकणी के दन्त्यतालव्य 'ज्' से मिलता–जुलता लगता है (देखिए, पृ. २६)।

फ़् : यह महाप्राण अघोष दन्तोष्ठ्य संघर्षी व्यंजन है । ' फ़् ' विदेशी स्रोत से प्राप्त ध्वनि है । सामान्य हिंदी भाषा भाषी इसके स्थान पर ' फ् ' बोलते और लिखते हैं । यह ध्वनि फारसी–अरबी के तत्सम शब्दों में व्यवहृत होती है ।

हिंदी की ' फ़् ' सदृश ध्वनि कोंकणी में भी प्राप्त है । इसे दन्तोष्ठ्य कहा गया है[६४]। यह ध्वनि कोंकणी में उच्चरित रूप में प्राप्त है, क्यों कि कोंकणी में इसे लिखने के लिए स्वतंत्र लिपि-चिह्न नहीं है । अतः ' फ़् ' के बदले ' फ् ' लिखा जाता है । कोंकणी में यह ध्वनि शायद फारसी, अरबी के प्रभाव के कारण प्राप्त हो गयी होगी; क्यों कि गोवा में अरबी लोगों का संबंध लगभग छठी शताब्दी से हुआ है[६५]। हिंदी तथा कोंकणी में इसके उदाहरण इस प्रकार हैं –

हिंदी	कोंकणी
सफ़ेद, साफ़, बर्फ़	सफे(फ़े)द, साफ(फ़), बरफ(फ़)

श्री वालावलीकर के मतानुसार कोंकणी में 'ओष्ठ्य ' फ् ' शब्द के आदि में आता है, जैसे :– ' फांती, फांस, फळ, फाल्यां ' आदि; और यह दन्तोष्ठ्य ' फ्(= फ़्) ' शब्द के मध्य में आता है, जैसे :– ' उफेता, काफी ' आदि । परंतु हिंदी में यह ध्वनि शब्द के आदि में भी आती है, जैसे :– ' फ़ायदा, फ़ारसी, फ़िज़ूल ' आदि ।

व् : यह अल्पप्राण सघोष दन्त्योष्ठ्य संघर्षी व्यंजन है । ' व् ' भारतीय आर्यभाषा परंपरा से प्राप्त ध्वनि है । संस्कृत में ' व् ' अल्पप्राण सघोष दन्त्योष्ठ्य अन्तःस्थ व्यंजन है[६६] । यह ध्वनि हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
वेद, वन, यादव, देव	वेद, वन, यादव, देव

व्ह् : महाप्राण सघोष दन्त्योष्ठ्य संघर्षी व्यंजन । यह ध्वनि कोंकणी में नयी विकसित है । हिंदी में ' व्ह् ' ध्वनि संस्कृत से विकसित तद्भव शब्दों में उपलब्ध नहीं है; परंतु यह ध्वनि कोंकणी में संस्कृत से विकसित तद्भव शब्दों के आदि तथा मध्य में उपलब्ध है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
----	व्हड, व्हरता, व्हांवप, अव्हेर, वेव्हार

फिर भी यहाँ एक और बात उपर्युक्त बात से अलग है । ' व्ह् ' ध्वनि हिंदी तथा कोंकणी में अंग्रेजी से आगत तत्सम शब्दों के आदि तथा मध्य में प्राप्त होती है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
व्हैन, व्हालीबाल, ड्राइव्हर	व्हॅन, व्हॉलीबॉल, ड्रायव्हर

कभी-कभी हिंदी में ' ड्राइवर ' शब्द भी मिलता है ।

(ऐ) अर्द्धस्वर

इसमें ' य्, व् ' व्यंजन आते हैं । इनकी स्थिति स्वर और व्यंजन के बीच की है । ये संघर्षहीन हैं ।

य् : यह अल्पप्राण सघोष तालव्य अर्द्धस्वर व्यंजन है । संस्कृत में इसे अन्तःस्थ व्यंजन माना है । इसके उच्चारण में जीभ का अगला भाग कठोर तालु की ओर जाता है किंतु चवर्गीय व्यंजनों के समान तालु को अच्छी तरह नहीं छूता और ' इ ' आदि तालव्य स्वरों के समान दूर नहीं रहता । इसलिए संस्कृत में ' य् ' को अन्तस्थ व्यंजन कहा है । यह ध्वनि हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
यम, यमुना, गाय, आया	यम, यमुना, गाय, आयलो

व् : यह अल्पप्राण सघोष द्वयोष्ठ्य अर्द्धस्वर व्यंजन है । ' व् ' का उच्चारण करते समय निचला ओंठ ऊपर के ओंठ के दोनों छोरों को स्पर्श करता है, किंतु बीच में इतना मार्ग छोड देता है कि हवा बिना संघर्ष के बाहर निकलती है । डा. धीरेंद्र वर्मा के अनुसार यह ध्वनि शब्द के मध्य में स्वर-हीन व्यंजन के बाद आती है[६७]। यह नयी विकसित ध्वनि है । कोंकणी में भी इस ध्वनि को मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए । इसके उदाहरण हैं, –

हिंदी	कोंकणी
स्वर, स्वाद, क्वार	स्वता, क्वार्तेल, ज्वानी

(उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी शब्द भिन्नार्थक हैं ।)

डा. अनंत चौधरी ने इस ध्वनि को मुख्यतः संस्कृत तद्भव शब्दों के आदि तथा मध्य में माना है, जैसे :– ' वह, वाह, देवर, नाव, राव ' आदि । इसके बारे में कोंकणी में अधिक संशोधन की आवश्यकता है ।

(ओ) मिश्र व्यंजन

इसमें ' क्ष् ' और ' ज्ञ् ' व्यंजन आते हैं । ये ध्वनियाँ प्राचीन भारतीय आर्यभाषा की हैं । संस्कृत के परवर्ती पालि आदि भाषाओं में ये ध्वनियाँ दिखायी नहीं देती । फिर भी मण्डूकप्लुति की तरह ये ध्वनियाँ संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ हिंदी तथा कोंकणी में दिखायी देती हैं ।

क्ष् : यह महाप्राण अघोष कण्ठ्य-मूर्द्धन्य स्पर्शसंघर्षी व्यंजन हैं। यह व्यंजन 'क्' और 'ष्' व्यंजनों के मिश्रण से बना है[६८]। इसका शुद्ध उच्चारण संस्कृत भाषा के विद्वान ही कर पाते हैं। अधिकांश हिंदी तथा कोंकणी भाषा भाषी लोग 'क्ष्' का उच्चारण 'क्श्' संयुक्त व्यंजन की तरह करते हैं। हिंदी तथा कोंकणी में यह व्यंजन संस्कृत से ऋण रूप में आगत तत्सम शब्दों में दिखाई देता है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
क्षमा, शिक्षण, परीक्षा, शिक्षा	क्षमा, शिक्षण, परि(री)क्षा, शिक्षा

(उपर्युक्त हिंदी 'शिक्षा' तथा कोंकणी 'शिक्षा' शब्द भिन्नार्थक हैं।)

ज्ञ् : यह अल्पप्राण सघोष तालव्य-स्पर्शसंघर्षी अनुनासिक व्यंजन है। 'ज्ञ्' में 'ज्' और 'ञ्' का मिश्रण है[६९]। इसका शुद्ध उच्चारण अब प्रायः अप्राप्त है। फिर भी इसका उच्चारण कहीं-न-कहीं संकृत के कुछ विद्वान लोग शायद ठीक तरह से करते होंगे। आज इस 'ज्ञ्' का उच्चारण भिन्न-भिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है, जैसे :– गोवा और महाराष्ट्र में इसका उच्चारण 'द्न्य्' होता है; गुजरात में 'ग्न्' तो हिंदी में 'ग्य्' होता है; अन्य कुछ प्रांतों में 'ज्यँ' 'ज्य्', या 'ग्यँ' होता है। एवं हिंदी में 'ज्ञ्' का उच्चारण 'ग्य्' तो कोंकणी में 'द्न्य्' होता है, जैसे :– 'संज्ञा' शब्द का उच्चारण हिंदी में 'संग्या' तो कोंकणी में 'सवँद्न्या' होता है। 'ज्ञ्' हिंदी तथा कोंकणी में गृहीत संस्कृत के तत्सम शब्दों में आता है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
ज्ञान, विज्ञान, आज्ञा, कृतज्ञ	ज्ञान, विज्ञान, आज्ञा, कृतज्ञ

इन शब्दों में 'ज्ञान' शब्द का विकास हिंदी में 'ग्यान' होता है तो कोंकणी में 'गिन्यान' होता है, और इस प्रकार लिखा भी जाता है। परंतु आजकल हिंदी में 'ग्यान' के बदले 'ज्ञान' लिखने की प्रवृत्ति स्पष्ट दिखायी देती है। कोंकणी में अब भी 'गिन्यान' लिखा जाता है फिर भी 'ज्ञान' शब्द लिखने में अधिक आसक्ति दिखायी देती है। उपर्युक्त शेष शब्दों का हिंदी में 'ज्ञ्' का उच्चारण 'ग्य्' होता है जैसे :– 'विग्यान, आग्या, कृतग्य' तो भी लिखते समय 'ज्ञ्' ही लिखा जाता है, जैसे :– 'विज्ञान, आज्ञा, कृतज्ञ'।

(औ) अनुस्वार (ं)

हिंदी तथा कोंकणी में कवर्गीय, टवर्गीय, तवर्गीय, पवर्गीय और चवर्गीय व्यंजनों के पूर्व आने वाले 'ङ्, ण्, न्, म्' और 'ञ्' के संबंध में या इनके स्थान पर आने वाले अनुस्वार (ं) के बारे में पहले ही कहा जा चुका है (देखिए, पृ. २७)। अब यहाँ 'य्, र्, ल्, व्, श्, स्, ह्' के पूर्व आने वाले अनुस्वार के बारे में सोचना है; ताकि हिंदी तथा कोंकणी में इस अनुस्वार के उच्चारण में थोडा-सा फर्क दीखता है, जैसे :–

' य् ' के पूर्व स्थित (ं) :

हिंदी में ' य् ' के पूर्व स्थित स्वर पर जब अनुस्वार होता है तब उसका उच्चारण ' यँ् ' जैसा श्रवण होता है जो संस्कृत की परिपाटी से चलता आया है, जैसे :–

हिंदी	**कोंकणी**
सयँ्योग (संयोग), सयँ्यम (संयम)	सयँ्योग (संयोग), सयँ्यम (संयम)

' ल् ' के पूर्व स्थित (ं) :

हिंदी तथा कोंकणी में ' ल् ' के पूर्व स्थित स्वर पर जो अनुस्वार होता है उसका उच्चारण प्रायः ' न् ' की तरह होता है, जैसे :–

हिंदी	**कोंकणी**
सन्लग्न (संलग्न), सन्लाप (संलाप)	सन्लग्न (संलग्न), सन्लाप (संलाप)

' व् ' के पूर्व स्थित (ं) :

हिंदी में इसका उच्चारण प्रायः ' म् ' की तरह तो कोंकणी में ' वँ् ' की तरह होता है, जैसे :–

हिंदी	**कोंकणी**
सम्वाद (संवाद), सम्वेग (संवेग)	सवँ्वाद (संवाद) , सवँ्वेग (संवेग)

' र् , श् , स् ' के पूर्व स्थित (ं) :

हिंदी में ' र् , श् , स् ' के पूर्व स्थित अनुस्वार का उच्चारण ' न् ' की तरह तो कोंकणी में ' वँ् ' की तरह होता है, जैसे :–

	हिंदी	**कोंकणी**
र् :	सन्रक्षक (संरक्षक), सन्रचना (संरचना)	सवँ्रक्षक (संरक्षक), सवँ्रचना (संरचना)
श् :	अन्श (अंश), सन्शय (संशय)	अवँ्श (अंश), सवँ्शय (संशय)
स् :	सन्सद (संसद), सन्सार (संसार)	सवँ्सद (संसद), सवँ्सार (संसार)

कभी-कभी हिंदी में ' श् ' के पूर्व स्थित अनुस्वार (ं) का उच्चारण ' ञ् ' की तरह होता है, जैसे :– ' अञ्श (अंश), सञ्शय (संशय), सञ्शोधन (संशोधन)' आदि । परंतु कोंकणी में यह स्थिति प्राप्त नहीं है ।

' ह् ' के पूर्व स्थित (ं) :

हिंदी में ' ह् ' के पूर्व स्थित अनुस्वार (ं) का उच्चारण प्रायः ' ङ् ' की तरह तो कोंकणी में 'वँ् ' की तरह होता है, जैसे :–

हिंदी	**कोंकणी**
सिङ्ह (सिंह), सङ्हार (संहार)	सिवँ्ह(सिंह), सवँ्हार (संहार)

फिर भी कभी-कभी इसका उच्चारण हिंदी तथा कोंकणी में अनुनासिक स्वर की तरह होता है, जैसे :– ' सिँह, सँहार ' आदि। कोंकणी में ' सिंह ' के लिए ' शींव ' शब्द भी प्रचलित है।

संक्षेप में –

(१) हिंदी में प्राप्त होने वाले ' अ (ह्रस्वार्द्ध), इ़, उ़, ए़ (फुसफुसाहट वाले), ए, ऍ, ओ, ऑ (ह्रस्व), ऍ, ऑ (दीर्घ) ' स्वरों तथा कोंकणी में प्राप्त होने वाले ' अ (ह्रस्व और दीर्घ), ए, ऍ, ओ, ऑ (ह्रस्व), ऍ, ऑ, औं (दीर्घ) ' स्वरों के लिए स्वतंत्र लिपि-चिह्न नहीं है। ये स्वर केवल उच्चरित रूप में ही प्राप्त हैं।

(२) उच्चरित होनेवाले ' अ, ए, ओ ' के कारण कोंकणी के कुछ शब्दों का वचन, लिंग तथा अर्थ बदलता है, जब कि उच्चरित होने वाले किसी भी स्वर के कारण हिंदी शब्दों का वचन, लिंग तथा अर्थ नहीं बदलता।

कोंकणी के ' ऍ ' और ' ऑ ' ध्वनियों का साम्य अंग्रेजी के ' ॲ ' और ' ऑ ' ध्वनियों से प्रायः मिलता-जुलता है।

(३) हिंदी तथा कोंकणी में ' ऋ ' की प्रवृत्ति संस्कृत तत्सम शब्दों में दिखायी देती है।

(४) अनुनासिक स्वर की वैज्ञानिकता बनाये रखने के लिए अनुनासिक स्वर के इस ' ँ ' चिह्न के बदले दूसरा चिह्न ढूँढना नितांत आवश्यक है; और इसका उपयोग कोंकणी में भी कर लेना चाहिए।

(५) संयुक्त स्वर तथा स्वरानुक्रम हिंदी में उपलब्ध है, परंतु कोंकणी में उपलब्ध नहीं है।

(६) हिंदी में प्राप्त ' क़्, ढ़् , ख़् ग़् ; ज़् ' ध्वनियाँ कोंकणी में उपलब्ध नहीं है; फिर भी इन ध्वनियों में स्थित ' ज़् ' कोंकणी में प्राप्त यकाररहित उच्चरित होने वाली द्वितीय ' ज् ' ध्वनि से प्रायः साम्य रखती है। कोंकणी में प्राप्त ' ळ् ' ध्वनि हिंदी में उपलब्ध नहीं है। कोंकणी ' ळ् ' के लिए हिंदी में सर्वत्र ' ल् ' का प्रयोग होता है।

(७) हिंदी की ' ड़् , फ़् ' ध्वनियों के उच्चारण से सादृश्य रखनेवाली उच्चरित ' ड़्, फ़् ' ध्वनियाँ कोंकणी में भी प्राप्त हैं। परंतु कोंकणी में इन्हें लिखने के लिए स्वतंत्र लिपि-चिह्न नहीं है।

(८) ‘ च्, ज्, झ् ’ हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से लिखी जाती हैं। परंतु इन ध्वनियों का उच्चारण हिंदी में एक ही प्रकार से होता है तो कोंकणी में दो प्रकार से होता है। इस दूसरे प्रकार के ‘च्, ज्, झ् ’ के लिए कोंकणी में अलग लिपि-चिह्न नहीं है।

(९) स्वर-सहित ‘ ङ् ’ हिंदी में प्राप्त नहीं है; परंतु कोंकणी में स्वर-सहित ‘ ङ् ’ केवल एक ही उदाहरण (जैसे :– चिर्ङट) में प्राप्त है।

(१०) ‘ ण् ’ ध्वनि हिंदी में केवल तत्सम शब्दों में ही प्राप्त होती है तो कोंकणी में तत्सम शब्दों के साथ-साथ तद्भव शब्दों में भी पायी जाती है। इसके सिवा कोंकणी में ‘ ण् ’ ध्वनि कुछ संख्यावाचक तद्भव शब्दों के आदि में पायी जाती है, जो संस्कृत में भी उपलब्ध नहीं होती है।

(११) ‘ न्ह्, म्ह्, ल्ह् ’ ध्वनियाँ हिंदी में शब्दों के मध्य में आती हैं तो कोंकणी में शब्दों के आदि में आती हैं।

(१२) ‘ ऱ्ह् (ऱ्ह) ’ व्यंजन हिंदी की बोलियों में प्राप्त है पर परिनिष्ठित हिंदी में प्राप्त नहीं है। परंतु कोंकणी में यह ध्वनि कुछ शब्दों के आदि में प्राप्त है; साथ–साथ कोंकणी शब्दों के मध्य में इसका उपयोग क्वचित् होता है।

(१३) ‘ व्ह् ’ ध्वनि हिंदी में केवल अंग्रेजी से आगत तत्सम शब्दों में क्वचित् दिखायी देती है; परंतु यह ध्वनि कोंकणी में ऋण रूप में आगत अंग्रेजी तत्सम शब्दों में तो दिखायी देती है, साथ–साथ संस्कृत से विकसित तद्भव शब्दों में भी प्राप्त होती है।

(१४) हिंदी तथा कोंकणी की प्रवृत्ति के अनुसार इन दोनों में ‘ ष् ’ नहीं है; फिर भी संस्कृत से ऋण रूप में आगत तत्सम शब्दों में इसकी उपस्थिति दिखायी देती है।

(१५) अर्द्धस्वर ‘ व् ’ हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है।

(१६) ‘ ष् ’ की तरह ‘ क्ष् ’ और ‘ ज्ञ् ’ भी संस्कृत तत्सम शब्दों के साथ हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त हैं। ‘ ज्ञ् ’ का उच्चारण हिंदी तथा कोंकणी में भिन्न-भिन्न है।

(१७) ‘ य् ’ , ल् ’ के पूर्व स्थित अनुस्वार का उच्चारण हिंदी तथा कोंकणी में प्रायः समान है।

(१८) हिंदी तथा कोंकणी में ‘ व् , ऱ् , श् , स् , ह् , के पूर्व स्थित अनुस्वार में प्रायः भिन्नता दिखायी देती है।

(१९) शेष ध्वनियाँ हिंदी तथा कोंकणी में समान हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१) मैकडानेल – वैदिक ग्रामर, पृ. २ परि. क्र. ४
२) डा. अनंत चौधरी – नागरी लिपि और हिंदी वर्तनी, पृ. १५९
३) भिक्षु जगदीश काश्यप – पालि व्याकरण, कथावस्तु, पृ. बावन
४) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. १
५) डा. वीरेन्द्र श्रीवास्तव – अपभ्रंश भाषा का व्याकरण , पृ. ४७
६) श्री. कामताप्रसाद गुरु – हिंदी व्याकरण, पृ. ३६ से ३८ तक
श्री. वालावलीकर – कोंकणी नादशास्त्र, पृ. ३ से ७ तक
७) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा खंड दो, पृ. २२
डा. धीरेंद्र वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. १०८
८) डा. धीरेंद्र वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. १०८
९) डा. लक्ष्मीनारायण शर्मा – ' हिंदी की ध्वनिसंघटना ' शीर्षक लेख, गवेषणा (पत्रिका), अंक १६, पृ. ८७
१०) श्री. रा. भि. गुंजीकर – सरस्वती मंडळ, पृ. ५९
११) श्री. वालावलीकर – कोंकणिची व्याकरणी बांदावळ, पृ. १
१२) श्री. वालावलीकर – आबे फारीय, पृ. १
श्री. रवींद्र केळेकर द्वारा संपादित – महात्मा, पृ. ८२
१३) डा. अनंत चौधरी – नागरी लिपि और हिंदी वर्तनी, पृ. १७९
१४) श्री. बा. भ. बोरकर – कोंकणिची उतरावळ, पृ. ५
१५) डा. धीरेंद्र वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. १०६
१६) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २४
डा. अनंत चौधरी – नागरी लिपि और हिंदी वर्तनी, पृ. १८१
१७.) डा. कत्रे – फोनेटिक्स् परि. क्र. ३६
१८) डा. धीरेंद्र वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. १०६, १०७
१९) श्री. वालावलीकर – भुरग्यालें व्याकरण, पैलो वांटो, पृ. १५
२०) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २० से २५ तक
डा. लक्ष्मीनारायण शर्मा – ' हिंदी की ध्वनिसंघटना ' शीर्षक लेख, गवेषणा (पत्रिका), अंक १६, पृ. ८७
२१) डा. धीरेंद्र वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. १०३
२२) वही, पृ. १०४
२३) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २५
२४) डा. कत्रे – द फॉर्मेशन ऑफ कोंकणी , परि. क्र. ३८
२५) डा. धीरेंद्र वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. १०३
२६) श्री. वालावलीकर – भुरग्यालें व्याकरण, पृ. १७
२७) डा. धीरेंद्र वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. १०२ से १०८ तक
२८) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २६
२९) डा. कादरी – हिंदुस्तानी फोनेटिक्स, पृ. ५१, ५४
३०) डा. चटर्जी – द ओरिजन ऐण्ड डैवलप्मेंट ऑफ द बंगाली लैंग्वेज, पृ. २६७ , परि. क्र. १४०
३१) टी ग्राहम बेली – पंजाबी फोनेटिक्स रीडर, पृ. XIV
३२) श्री. वालावलीकर – कोंकणी नादशास्त्र, पृ. १, ९, १० तथा कोंकणी मुळावें पुस्तक, पाठ ११ और १५
३३) श्री. वालावलीकर कोंकणी नादशास्त्र, पृ. १७, १८
३४) श्री. वालावलीकर – कोंकणी नादशास्त्र, पृ. १८ तथा कोंकणी मुळावे पुस्तक, पाठ १४
३५) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. १०९
३६) श्री वालावलीकर – आबे फारिय, पृ. २, १२

३७) डा. धीरेंद्र वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. १०२ से १०८ तक
३८) वही, पृ. ११०
३९) डा. शर्मा – हिंदी की ध्वनि संघटना ' शीर्षक लेख, गवेषणा (पत्रिका), अंक १६, पृ. ८६ से ८९ तक
४०) डा. धीरेंद्र वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. ११०, १११
४१) डा. शर्मा – ' हिंदी की ध्वनि संघटना ' शीर्षक लेख, गवेषणा (पत्रिका) अं. १६, पृ. ८७
४२) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २९
४३) डा. धीरेंद्र वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. ११०
४४) ऋग्वेदसंहिता – अष्टक ८, अध्याय ७, वर्ग १८
४५) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. ३१
४६) डा. भोलानाथ तिवारी – भाषाविज्ञान, पृ. ३०३
४७) डा. कत्रे – द फार्मेशन आफ कोंकणी, पृ. ५९
४८) श्री. भट्टोजी दीक्षित – सिद्धान्तकौमुदी, पृ. २
४९) डा. कत्रे – द फार्मेशन आफ कोंकणी, पृ. ५९
५०) श्री. वालावलीकर – कोंकणी नादशास्त्र, पृ. ५९
५१) श्री. भट्टोजी दीक्षित – सिद्धान्तकौमुदी, पृ. २
५२) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो पृ. ३५
५३) डा. भोलानाथ तिवारी – भाषाविज्ञान, पृ. ३०३
५४) श्री. वालावलीकर – भुरग्यालें व्याकरण, पैलो वांटो, पृ. ५३
५५) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. ३५
डा. लक्ष्मीनारायण शर्मा – ' हिंदी की ध्वनिसंघटना ' शीर्षक लेख, गवेषणा (पत्रिका), अंक १६, पृ. ९६
५६) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. ३६
५७) श्री. वा. शि. आपटे – संस्कृत हिंदी कोश, पृ. ४१५
५८) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. ३८ तथा डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ३२५
५९) दाल्गादु – डिक्सियनारियो कोंकणी पोर्चुगीझ, पृ. १०८
६०) डा. धीरेंद्र वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. १२३
६१) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. ३८
६२) डा. अनंत चौधरी – नागरी लिपि और हिंदी वर्तनी, पृ. १९७
६३) श्री. वालावलीकर – कोंकणी नादशास्त्र, पृ. २२
६४) वही, पृ. २३, २४
६५) धि गोवा हिंदु असोसिएशन रौप्यमहोत्सव द्वारा प्रकाशित ग्रंथ – ' आजचा व कालचा गोमंतक,' पृ. २५८
६६) श्री. भट्टोजी दीक्षित – सिद्धान्त कौमुदी, पृ. २
६७) डा. धीरेंद्र वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. १२५
६८) श्री. मोरेश्वर रामचंद्र काले – हायर संस्कृत ग्रामर, पृ. ८ (ग)
६९) वही।

अध्याय २

हिंदी तथा कोंकणी ध्वनियों का इतिहास

गत अध्याय में हिंदी तथा कोंकणी में पायी जानेवाली समस्त मूल ध्वनियों का विस्तृत वर्णन किया जा चुका है । इस अध्याय में हिंदी तथा कोंकणी में प्रयुक्त ध्वनियों के इतिहास का विवरण प्रस्तुत किया जाता है ।

हिंदी तथा कोंकणी पर अनेक भाषाओं का प्रभाव है, जैसे :– प्राचीन भारतीय आर्यभाषा, देशी, द्राविड और विदेशी । इनमें से प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का प्रभाव इन दोनों पर अधिक लक्षित होता है । देशी भाषाओं के शब्दों का इतिहास अभी तक स्पष्ट मालूम न होने के कारण इनके शब्दों के संबंध में कुछ नहीं बताया जा सकता । हिंदी की अपेक्षा कोंकणी का संबंध द्राविड भाषाओं के साथ अधिक आ जाने के कारण कोंकणी में द्राविड शब्द अधिक प्राप्त होना सहज है । इसी प्रकार भारत में विदेशी शासकों का शासन स्थापन हो जाने के कारण फारसी, अरबी, तुर्की, अंग्रेजी, पुर्तगाली आदि भाषाओं के शब्द हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त होना स्वाभाविक है[1] । इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी में अनेक भाषाओं के शब्द प्राप्त होते हैं ।

ऊपर बताया जा चुका है कि हिंदी तथा कोंकणी पर प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (अर्थात् संस्कृत) का प्रभाव अधिक लक्षित होता है । इसका कारण यह है कि हिंदी तथा कोंकणी में सबसे अधिक शब्द वे हैं जो संस्कृत से मध्यकालीन भाषाओं (पालि, प्राकृत, अपभ्रंश) में से होते हुए चले आ रहे हैं । इनमें दो प्रकार के शब्द हैं :– तत्सम और तद्भव । यद्यपि हिंदी तथा कोंकणी में तत्सम शब्द बहुत व्यवहृत होते हैं तो भी ध्वनि-परिवर्तन का इतिहास जानने के लिए तत्सम शब्दों से बिलकुल सहायता नहीं मिलती । संस्कृत से विकसित तद्भव शब्द जो हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त हैं उनका ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत बडा महत्व है । एवं हिंदी तथा कोंकणी का ऐतिहासिक विकास जानने तथा भाषाशास्त्रीय तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए तद्भव शब्द बहुत ही उपयुक्त हैं ।

संस्कृत शब्दों का हिंदी तथा कोंकणी में विकास होते समय शब्दों में स्थित किस-किस ध्वनि का किस-किस रूप में परिवर्तन होता है इस संबंध में निश्चित नियम बताना बहुत कठिन है । इसका कारण यह है कि संस्कृत शब्दों में स्थित ध्वनियों का हिंदी तथा कोंकणी में जब विकास होता है तो कभी पहले, कभी दूसरे, तो कभी तीसरे ध्वनि का विकास होता है । कभी-कभी दो-दो, तीन-तीन ध्वनियों का भी विकास होता है । इससे हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त ध्वनि-विकास के परिवर्तनों को नियमों में बाँधना सहज सरल नहीं है । भाषा मानसिक प्रक्रिया होने के कारण मनुष्य की मानसिक स्वेच्छता, यादृच्छिकता तथा मन की तरलता का संबंध भाषा में भी उपलब्ध होता है । अत एव पाणिनि ने ' वा गमः ', ' विभाषा जसि ', ' बहुलं छन्दसि ' जैसे अपने व्याकरण-सूत्रों में अनेक स्थानों

पर ' वा, विभाषा, बहुलं ' जैसे शब्दों का प्रयोग किया है[२] । पालि में भी मोग्गलायन आदि सूत्रकारों ने ' सरो लोपो सरे ' तथा ' परो अचि ' आदि सूत्र-प्रणयन द्वारा भाषा का वैविध्य सामने रखा है[३] । यह वैविध्य संस्कृत से पालि आदि भाषाओं द्वारा विकसित होनेवाली हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है ।

इस अध्याय में निम्नलिखित बातें स्पष्ट की हैं –

(I) आगे संस्कृत ध्वनियों का हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में होने वाला परिवर्तन दिखाने का प्रयत्न किया है । इन उदाहरणों में सर्वप्रथम संस्कृत शब्द, उसके उपरांत विकास चिह्न (>) और उसके आगे हिंदी तथा कोंकणी शब्द दिये हैं । इस प्रकार संस्कृत स्वरों और व्यंजनों के उदाहरण देने के अनन्तर हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों प्राप्त साम्य और वैषम्य के आधार पर उदाहरणों के साथ कुछ नियम दिये हैं । इनके साथ-साथ आवश्यकता के अनुसार कुछ चर्चा भी की है ।

(II) हिंदी तथा कोंकणी में विदेशी भाषाओं के तद्भव शब्द भी प्राप्त हैं । अतः इन विदेशी तद्भव शब्दों का भी यहाँ संक्षिप्त परिचय करा दिया है; क्यों कि इतिहास की दृष्टि से इनका परिचय करा देना नितांत आवश्यक है ।

(III) अंत में स्वराघात के संबंध में थोडी-सी चर्चा की है ।

ध्वनियों का विकास

ऊपर बताये हुए अनुसार यहाँ नीचे संस्कृत शब्दों के आगे विकास चिह्न तदनन्तर हिंदी तथा कोंकणी शब्द दिये हैं । वास्तव में संस्कृत के उपरान्त पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के परिवर्तित रूप देना चाहिए था; क्योंकि परिवर्तन की दिशा का यथायोग्य ज्ञान होने के लिए इन भाषाओं के शब्दों का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है । फिर भी पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के शब्द यहाँ नहीं दिये हैं । इसका कारण है, उदाहरण के तौर पर यहाँ जो शब्द लिये हैं उन शब्दों के पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के सभी रूप अभी तक इकट्ठा नहीं कर सका । फिर भी इस त्रुटि को कम तथा ज्ञान-पिपासा को थोडा-सा शांत करने के लिए छठे अध्याय के अन्त में संख्यावाचक विशेषणों में पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के ज्यादा से ज्यादा शब्द देने का प्रयत्न किया है ।

यहाँ एक और बात ध्यान में रखना आवश्यक है । आगे दिये हुए उदाहरणों में एक ही शब्द कभी-कभी दूसरे स्थल पर भी उदाहरण-स्वरूप प्राप्त है; क्योंकि एक ही शब्द में अनेक ध्वनिपरिवर्तन स्पष्ट ही दिखायी देते हैं । अतः एक ही शब्द अन्यत्र लेना आवश्यक हो गया है । एवं प्रत्येक स्थान पर उपशीर्षक के अनुसार उस शब्द में पाये जाने वाले ध्वनिपरिवर्तन पर ध्यान देना उचित है ।

१) स्वरों का विकास

हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में प्राप्त होने वाला संस्कृत स्वरों का विकास नीचे पृथक्-पृथक् दिया जा रहा है –

अ :

संस्कृत ' अ ' स्वर हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में समान रूप से ' अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ ' स्वरों में विकसित होता है, यथा –

सं. ' अ ' > हिं. तथा कों. ' अ '

सं. कलश >	हिं. कलसा	कों. कळसो
सं. हरिद्रा >	हिं. हलदी	कों. हळद
सं. अलस >	हिं. आलसी	कों. आळशी

सं. ' अ ' > हिं. तथा कों. ' आ '

सं. अलस >	हिं. आलसी	कों. आळशी
सं. अद्य >	हिं. आज	कों. आज, आयज

सं. ' अ ' > हिं. तथा कों. ' इ '

सं. मरिच >	हिं. मिरिच	कों. मिरें
सं. ग्रहण >	हिं. गिरहन	कों. गिराण

सं. ' अ ' > हिं. तथा कों. ' ई '

सं. चामर >	हिं. चौंरी	कों. चौरी
सं. छत्र >	हिं. छतरी	कों. सत्री

सं. ' अ ' > हिं. तथा कों. ' उ '

सं. स्वर >	हिं. सुर	कों. सुर
सं. त्वरित >	हिं. तुरन्त	कों. तुर्त

सं. ' अ ' > हिं. तथा कों. ' ऊ '

सं. त्वम् >	हिं. तू	कों. तूं
सं. निम्ब >	हिं. निबू	कों. लिंबू

सं. ' अ ' > हिं. तथा कों. ' ए '

सं. कदल >	हिं. केला	कों. केळें
सं. वल्लि >	हिं. बेल	कों. वेल

सं. ' अ ' > हिं. तथा कों. ' ऐ '

सं. खदिर > हिं. खैर कों. खैर
सं. बलीवर्द > हिं. बैल कों. बैल

सं. ' अ ' > हिं. तथा कों. ' ओ '

सं. यः > हिं. जो कों. जो
सं. सः > हिं. सो कों. तो

सं. ' अ ' > हिं. तथा कों. ' औ '

सं. चतुष्क > हिं. चौक कों. चौक
सं. चतुर्दश > हिं. चौदह कों. चौदा

नीचे संस्कृत ' अ ' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होनेवाला विविध विकास प्रस्तुत किया है –

सं. ' अ ' > हिं. ' अ ' तथा कों. ' आ '

सं. दश > हिं. दस कों. धा
सं. आमलक > हिं. आँवला कों. आंवाळो

सं. ' अ ' > हिं. ' अ ' तथा कों. ' इ '

सं. अंगार > हिं. अंगारा कों. इं(विं)गळो
सं. पक्व > हिं. पका कों. पिको

सं. ' अ ' > हिं. ' अ ' तथा कों. ' ई '

सं. कुड्मल > हिं. कोंपल कों. कोमरी
सं. कुलत्थ > हिं. कुलथी कों. कुळीद

सं. ' अ ' > हिं. ' अ ' तथा कों. ' ए '

सं. अपयश > हिं. अपजस कों. अपेस
सं. गृहस्थ > हिं. गिरही कों. गिरेस्त

सं. ' अ ' > हिं. ' अ ' तथा कों. ' ऐ '

सं. प्रथम > हिं. पहला कों. पैलो
सं. अलवण > हिं. अलोना कों. ऐणी

सं. ' अ ' > हिं. ' अ ' तथा कों. ' ओ '

सं. खर्जू > हिं. खजुली कों. खोरज
सं. आम्र > हिं. आम कों. आंबो (मो)

सं. ' अ ' > हिं. ' आ ' तथा कों. ' अ '

सं. गर्दभ > हिं. गधा कों. गाढव
सं. कच्छप > हिं. कछुआ कों. कासव

सं. ‘ अ ’ > हिं. ‘ आ ’ तथा कों. ‘ ई ’

सं. अलवण >	हिं. अलोना	कों. अळणी
सं. गोपाल >	हिं. ग्वाला	कों. गवळी

सं. ‘ अ ’ > हिं. ‘ आ ’ तथा कों. ‘ ए ’

सं. कदलम् >	हिं. केला	कों. केळें
सं. अर्द्धत्रय >	हिं. अढाई	कों. अडेच

सं. ‘ अ ’ > हिं. ‘ आ ’ तथा कों. ‘ ओ ’

सं. द्रोण >	हिं. दोना	कों. दोणो
सं. घोटक >	हिं. घोडा	कों. घोडो

सं. ‘ अ ’ > हिं. ‘ इ ’ तथा कों. ‘ अ ’

सं. कपाट >	हिं. किवाड	कों. कवड
सं. हरिण >	हिं. हिरन	कों. हरण

सं. ‘ अ ’ > हिं. ‘ इ ’ तथा कों. ‘ आ ’

सं. घर्षति >	हिं. घिसता	कों. घासता
सं. दर्शयति >	हिं. दिखाता	कों. दाखैता

सं. ‘ अ ’ > हिं. ‘ ई ’ तथा कों. ‘ अ ’

सं. कुलत्थ >	हिं. कुलथी	कों. कुळीद
सं. तिल >	हिं. तिली	कों. तीळ

सं. ‘ अ ’ > हिं. ‘ ई ’ तथा कों. ‘ इ ’

सं. अभ्यन्तर >	हिं. भीतर	कों. भितर
सं. अभ्यनक्ति >	हिं. भीगता	कों. भिजता

सं. ‘ अ ’ > हिं. ‘ उ ’ तथा कों. ‘ अ ’

सं. कच्छप >	हिं. कछुआ	कों. कासव
सं. तल >	हिं. तलुआ	कों. तळवो

सं. ‘ अ ’ > हिं. ‘ उ ’ तथा कों. ‘ ऊ ’

सं. त्वरित >	हिं. तुरंत	कों. तूर्त
सं. निम्ब >	हिं. निबुआ	कों. लिंबू

सं. ‘ अ ’ > हिं. ‘ ए ’ तथा कों. ‘ आ ’

सं. कांस्यकार >	हिं. कसेरा	कों. कासार
सं. चित्रकार >	हिं. चितेरा	कों. चितारी

सं. ‘ अ ’ > हिं. ‘ ए ’ तथा कों. ‘ ओ ’

सं. बदर >	हिं. बेर	कों. बोर
सं. अंगयष्टि >	हिं. अंगलेट	कों. आंगलोट

सं. ' अ ' > हिं. ' ऐ ' तथा कों. ' अ '

सं. कपित्थ > हिं. कैथा कों. कवठ
सं. गायक > हिं. गवैया कों. गवय

सं. ' अ ' > हिं. ' ऐ ' तथा कों. ' ए '

सं. गंडक > हिं. गैंडा कों. गेंडो
सं. त्रयस्त्रिंशत् > हिं. तैंतीस कों. तेत्तीस

सं. ' अ ' > हिं. ' ओ ' तथा कों. ' अ '

सं. अलवण > हिं. अलोना कों. अळणी
सं. जलूका > हिं. जोंक कों. जळू

सं. ' अ ' > हिं. ' ओ ' तथा कों. ' आ '

सं. ननान्दपति > हिं. ननदोई कों. नणडावो
सं. परश्व > हिं. परसों कों. परां

सं. ' अ ' > हिं. ' औ ' तथा कों. ' अ '

सं. सपत्नी > हिं. सौत कों. सवत
सं. चतुर्थी > हिं. चौथ कों. चवथ(त)

सं. ' अ ' > हिं. ' औ ' तथा कों. ' आ '

सं. दर्वी > हिं. डौवा कों. दाय
सं. अहम् > हिं. हौं (बोली) कों. हांव

सं. ' अ ' > हिं. ' औ ' तथा कों. ' ओ '

सं. कर्षपट्टिका > हिं. कसौटी कों. कसोटी
सं. चतुर् > हिं. चौ कों. चों

आ :

संस्कृत ' आ ' स्वर हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में समान रूप से ' अ, आ, इ, ई ' स्वरों में विकसित होता है, यथा –

सं. ' आ ' > हिं. तथा कों. ' अ '

सं. ननान्दपति > हिं. ननदोई कों. नणडावो
सं. तृतीया > हिं. तीज कों. तय

सं. ' आ ' > हिं. तथा कों. ' आ '

सं. ग्राम > हिं. गाँव कों. गांव
सं. कुठार > हिं. कुल्हाडी कों. कुराड

सं. ' आ ' > हिं. तथा कों. ' इ '

सं. तावान् > हिं. तितना कों. तितलो
सं. यावान् > हिं. जितना कों. जितलो

सं. ' आ ' > हिं. तथा कों. ' ई '

सं. चूडा > हिं. चूडी कों. चुडी
सं. छोटिका > हिं. चुटकी कों. चुटकी

नीचे संस्कृत ' आ ' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होनेवाला विविध विकास प्रस्तुत किया है –

सं. ' आ ' > हिं. ' अ ' तथा कों. ' आ '

सं. आश्चर्य > हिं. अचरज कों. आच्छर्य
सं. जामातृ > हिं. जमाई कों. जांवय

सं. ' आ ' > हिं. ' अ ' तथा कों. ' उ '

सं. आत्मा > हिं. आप कों. आपुण
सं. चामर > हिं. चँवर कों. चुंवर

सं. ' आ ' > हिं. ' आ ' तथा कों ' अ '

सं. अष्टादश > हिं. अठारह कों. अठरा
सं. जामातृ > हिं. जमाई कों. जांवय

सं. ' आ ' > हिं. ' आ ' तथा कों. ' ए '

सं. अंगिका > हिं. अंगिया कों. आंगलें
सं. आयाति > हिं. आता कों. येता

सं. ' आ ' > हिं. ' आ ' तथा कों. ' ओ '

सं. अवमूर्धा > हिं. औंधा कों. उमथो
सं. भस्त्रा > हिं. भाता कों. भातो

सं. ' आ ' > हिं. ' ई ' तथा कों. ' अ '

सं. अंगारशकटी > हिं. अंगीठी कों. आगटी
सं. हरिद्रा > हिं. हलदी कों. हळद

सं. ' आ ' > हिं. ' ए ' तथा कों. ' अ '

सं. पारावत > हिं. परेवा कों. पारवो
सं. कषाय > हिं. कसेला कों. कस(सा)य

सं. ' आ ' > हिं. ' ए ' तथा कों. ' अ '

सं. तादृश > हिं. तैसा कों. तसो
सं. यादृश > हिं. जैसा कों. जसो

सं. ' आ ' > हिं. ' औ ' तथा कों. ' आ '

सं. भ्रातृजाया >	हिं. भौजाई	कों. भावज
सं. मातृष्वसा >	हिं. मौसी	कों. मावशी

इ :

संस्कृत ' इ ' स्वर हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में समान रूप से ' अ, इ, ई, ऊ, ए ' स्वरों में विकसित होता है, यथा –

सं. ' इ ' > हिं. तथा कों. ' अ '

सं. हरिद्रा >	हिं. हलदी	कों. हळद
सं. ग्रंथि >	हिं. गाँठ	कों. गांठ

सं. ' इ ' > हिं. तथा कों. ' इ '

सं. चिपिटक >	हिं. चिउडा	कों. चिवडो
सं. निम्ब >	हिं. निबू	कों. लिंबू

सं. ' इ ' > हिं. तथा कों. ' ई '

सं. इष्टका >	हिं. ईंट	कों. ई(वी)ट
सं. जिह्वा >	हिं. जीभ	कों. जीब(भ)

सं. ' इ ' > हिं. तथा कों. ' ऊ '

सं. इक्षु >	हिं. ऊँख	कों. ऊस
सं. वृश्चिक >	हिं. बिच्छू	कों. विंचू

सं. ' इ ' > हिं. तथा कों. ' ए '

सं. कर्णिकार >	हिं. कनेर	कों. कणेर
सं. बिल्व >	हिं. बेल	कों. बेल

नीचे संस्कृत ' इ ' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होनेवाला विविध विकास प्रस्तुत किया है –

सं. ' इ ' > हिं. ' अ ' तथा कों. ' ऊ '

सं. कोकिल >	हिं. कोयल	कों. कोगूळ

सं. ' इ ' > हिं. ' आ ' तथा कों. ' अ '

सं. चुल्लि >	हिं. चूल्हा	कों. चूल
सं. हरित् >	हिं. हरा	कों. हरवो

सं. ' इ ' > हिं. ' इ ' तथा कों. ' अ '

सं. दाडिम्ब >	हिं. दाडिम	कों. दाळम
सं. अंगिका >	हिं. अंगिया	कों. आंगलें

सं. ‘ इ ’ > हिं. ‘ इ ’ तथा कों. ‘ ई ’

सं. तिल > हिं. तिली कों. तीळ
सं. चिंचा > हिं. चिआँ कों. चींच

सं. ‘ इ ’ > हिं. ‘ इ ’ तथा कों. ‘ ऊ ’

सं. कोकिल > हिं. कोइल कों. कोगूळ
सं. इक्षु > हिं. इखु कों. ऊस

सं. ‘ इ ’ > हिं. ‘ इ ’ तथा कों. ‘ ए ’

सं. कर्णिकार > हिं. कनियार कों. कणेर
सं. त्रिपंचाशत् > हिं. तिरपन कों. त्रेप्पन

सं. ‘ इ ’ > हिं. ‘ ई ’ तथा कों. ‘ अ ’

सं. दधि > हिं. दही कों. धंय
सं. यूथिका > हिं. जूही कों. जूय

सं. ‘ इ ’ > हिं. ‘ ई ’ तथा कों. ‘ इ ’

सं. इंदुर > हिं. ईंदूर कों. विंदूर
सं. अरिष्ट > हिं. रीठा कों. रिठो

सं. ‘ इ ’ > हिं. ‘ ऊ ’ तथा कों. ‘ उ ’

सं. द्विगुण > हिं. दूना कों. दुणे
सं. द्विसदृश > हिं. दूसरा कों. दुसरो

ई :

संस्कृत ‘ ई ’ स्वर हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में समान रूप से ‘ अ, इ, ई ’ स्वरों में विकसित होता है, यथा –

सं. ‘ ई ’ > हिं. तथा कों. ‘ अ ’

सं. उड्डीयति > हिं. उडता कों. उडतां
सं. परीक्षा > हिं. परख कों. पारख

सं. ‘ ई ’ > हिं. तथा कों. ‘ इ ’

सं. ताम्रीय > हिं. तांबिया कों. तांबियो
सं. दीप > हिं. दिया कों. दिवो

सं. ‘ ई ’ > हिं. तथा कों. ‘ ई ’

सं. त्रीणि > हिं. तीन कों. तीन
सं. गंत्री > हिं. गाडी कों. गाडी

नीचे संस्कृत 'ई' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होनेवाला विविध विकास प्रस्तुत किया है –

सं. 'ई' > हिं. 'आ' तथा कों. 'अ'

सं. कदली > हिं. केला कों. केळ
सं. दर्वी > हिं. डौवा कों. दाय

सं. 'ई' > हिं. 'ई' तथा कों. 'अ'

सं. चालनी > हिं. छलनी कों. चाळण
सं. जाती > हिं. जाई कों. जाय

सं. 'ई' > हिं. 'ई' तथा कों. 'इ'

सं. जीरक > हिं. जीरा कों. जिरें
सं. दीपावलि > हिं. दीवाली कों. दिवाळी

सं. 'ई' > हिं. 'ऐ' तथा कों. 'अ'

सं. कीदृश > हिं. कैसा कों. कसो
सं. पंचमी > हिं. पाँचै कों. पंचम

उ :

संस्कृत 'उ' स्वर हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में समान रूप से 'अ, उ, ऊ, ओ' स्वरों में विकसित होता है, यथा –

सं. 'उ' > हिं. तथा कों. 'अ'

सं. चंचु > हिं. चोंच कों. चोंच
सं. इक्षु > हिं. ईख कों. ऊस

सं. 'उ' > हिं. तथा कों. 'उ'

सं. कुष्मांड > हिं. कुँहडा कों. कुंवाळो
सं. कुलत्थ > हिं. कुलथी कों. कुळीत

सं. 'उ' > हिं. तथा कों. 'ऊ'

सं. चुल्लि > हिं. चूल्हा कों. चूल
सं. तालु > हिं. तालू कों. ताळू (टाळू)

सं. 'उ' > हिं. तथा कों. 'ओ'

सं. कुष्ठ > हिं. कोढ़ कों. कोड
सं. तुवरी > हिं. तोर कों. तोर

नीचे संस्कृत ' उ ' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होनेवाला विविध विकास प्रस्तुत किया है –

सं. ' उ ' > हिं. ' अ ' तथा कों. ' ऊ '

सं. अंगुली >	हिं. उंगली	कों. आंगूळ
सं. लगुड >	हिं. लकडी	कों. लाकूड

सं. ' उ ' > हिं. ' उ ' तथा कों. ' अ '

सं. साधु >	हिं. साहु	कों. साव
सं. जम्बुल >	हिं. जामुन	कों. जांबळ

सं. ' उ ' > हिं. ' उ ' तथा कों. ' ऊ '

सं. कटु >	हिं. कडुआ	कों. कोडू
सं. तण्डुल >	हिं. तंदुल	कों. तांदूळ

सं. ' उ ' > हिं. ' ऊ ' तथा कों. ' अ '

सं. अंगुष्ठ >	हिं. अंगूठा	कों. आंगठो
सं. उपरि >	हिं. ऊपर	कों. वयर

सं. ' उ ' > हिं. ' ऊ ' तथा कों. ' उ '

सं. छुछुन्दर >	हिं. छछूँदर	कों. चिचुंदर
सं. त्रुटति >	हिं. टूटता	कों. तुटता

सं. ' उ ' > हिं. ' ऊ ' तथा कों. ' ओ '

सं. शुण्डा >	हिं. सूँड	कों. सोंड
सं. गुड >	हिं. गूड	कों. गोड

सं. ' उ ' > हिं. ' ओ ' तथा कों. ' उ '

सं. गुटिका >	हिं. गोली	कों. गुळी
सं. कुष्मांड >	हिं. कोंहडा	कों. कुंवाळो

सं. ' उ ' > हिं. ' ओ ' तथा कों. ' ऊ '

सं. कुक्षि >	हिं. कोख	कों. कूस
सं. शुण्ठि >	हिं. सोंठ	कों. सूंठ

ऊ :

संस्कृत ' ऊ ' स्वर हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में समान रूप से ' उ , ऊ ' स्वरों में विकसित होता है, यथा –

सं. ' ऊ ' > हिं. तथा कों. ' उ '

सं. पूर्णिमा >	हिं. पुनव	कों. पुनव

सं. धूम्र >	हिं. धुवाँ	कों. धुंवर

सं. ' ऊ ' > हिं. तथा कों. ' ऊ '

सं. धूलि >	हिं. धूल	कों. धूळ
सं. कर्पूर >	हिं. कपूर	कों. कापूर

नीचे संस्कृत ' ऊ ' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होनेवाला विविध विकास प्रस्तुत किया है –

सं. ' ऊ ' > हिं. ' ई ' तथा कों. ' ऊ '

सं. पूय >	हिं. पीव	कों. पूं
सं. शूक >	हिं. सींका	कों. कूंस

सं. ' ऊ ' > हिं. ' उ ' तथा कों. ' ओ '

सं. खर्जू >	हिं. खजुली	कों. खोरोज
सं. घूर्णते >	हिं. घुलता	कों. घोळता

सं. ' ऊ ' > हिं. ' ऊ ' तथा कों. ' उ '

सं. ऊन >	हिं. ऊना	कों. उणो
सं. चूर्ण >	हिं. चूना	कों. चुनो

ऋ :

संस्कृत ' ऋ ' स्वर हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में समान रूप से ' अ, आ, इ, ई, ऊ ' स्वरों में विकसित होता है, यथा –

सं. ' ऋ ' > हिं. तथा कों. ' अ '

सं. गृह >	हिं. घर	कों. घर
सं. प्रावृष् >	हिं. पावस	कों. पावस

सं. ' ऋ ' > हिं. तथा कों. ' आ '

सं. नृत्य >	हिं. नाच	कों. नाच
सं. मृत्तिका >	हिं. माटी	कों. माती

सं. ' ऋ ' > हिं. तथा कों. ' इ '

सं. गृहस्थ >	हिं. गिरही	कों. गिरेस्त
सं. वृश्चिक >	हिं. बिच्छू	कों. विंचू

सं. ' ऋ ' > हिं. तथा कों. ' ई '

सं. गृध्र >	हिं. गीध	कों. गीद

सं. धृष्ट >	हिं. ढीट	कों. धीट

सं. ' ऋ ' > हिं. तथा कों. ' ऊ '

सं. वृक्ष >	हिं. रूख	कों. रूख
सं. कर्तृत्व >	हिं. करतूत	कों. करतूप

नीचे संस्कृत ' ऋ ' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होनेवाला विविध विकास प्रस्तुत किया है –

सं. ' ऋ ' > हिं. ' अ ' तथा कों. ' आ '

सं. जृंभा >	हिं. जंभाई	कों. जांभ(ब)य
सं. कृन्तति >	हिं. कतता	कों. कांतता

सं. ' ऋ ' > हिं. ' इ ' तथा कों. ' आ '

सं. मृत्तिका >	हिं. मिट्टी	कों. माती
सं. तृष्णा >	हिं. तिसना	कों. तान

सं. ' ऋ ' > हिं. ' इ ' तथा कों. ' ई '

सं. ऋण >	हिं. रिन	कों. रीण
सं. कृपा >	हिं. किरपा	कों. कींव

सं. ' ऋ ' > हिं. ' इ ' तथा कों. ' उ '

सं. मृदंग >	हिं. मिरदंग	कों. मुर्दंग
सं. ऋषि >	हिं. रिसि	कों. रुशी

सं. ' ऋ ' > हिं. ' ई ' तथा कों. ' अ '

सं. तृतीया >	हिं. तीज	कों. तय
सं. सदृक्ष >	हिं. सरीखा	कों. सारखो(को)

सं. ' ऋ ' > हिं. ' ई ' तथा कों. ' इ '

सं. दृश्यते >	हिं. दीसता	कों. दिसता
सं. श्रृंग >	हिं. सींग	कों. शिंग

सं. ' ऋ ' > हिं. ' ई ' तथा कों. ' ऊ '

सं. नप्तृ >	हिं. नाती	कों. नातू
सं. भ्रातृ >	हिं. भाई	कों. भावू(= भाव)

ए :

संस्कृत 'ए' स्वर हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में समान रूप से 'इ, ए' स्वरों में विकसित होता है, यथा –

सं. 'ए' > हिं. तथा कों. 'इ'

सं. एकादश > हिं. इगारह कों. इकरा
सं. खेचरान्न > हिं. खिचडी कों. खिचडी

सं. 'ए' > हिं. तथा कों. 'ए'

सं. एकार्ध > हिं. एकाध कों. एकाद्रो
सं. केश > हिं. केंस कों. केंस

नीचे संस्कृत 'ए' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होनेवाला विविध विकास प्रस्तुत किया है –

सं. 'ए' > हिं. 'अ' तथा कों. 'ए'

सं. एरण्ड > हिं. अरंड कों. एरंड(एंडो)
सं. एकल > हिं. अकेला कों. एकलो(टो)

सं. 'ए' > हिं. 'इ' तथा कों. 'ए'

सं. एकस्थान > हिं. इकठाऊँ कों. एकठांय
सं. एकत्रिंशत् > हिं. इकतीस कों. एकतीस

सं. 'ए' > हिं. 'ऐ' तथा कों. 'अ'

सं. एतादृश > हिं. ऐसा कों. असो
सं. निश्रेणी > हिं. निसैनी कों. निसण

ऐ :

संस्कृत 'ऐ' स्वर हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में समान रूप से 'आ, ई, ए, ऐ' स्वरों में विकसित होता है, यथा –

सं. 'ऐ' > हिं. तथा कों. 'आ'

सं. उच्चैस् > हिं. उँचाई कों. उंचाय
सं. नीचैस् > हिं. निचाई कों. निचाय

सं. 'ऐ' > हिं. तथा कों. 'ई'

सं. धैर्य > हिं. धीर कों. धीर
सं. स्थैर्य > हिं. थीर कों. थीर

सं. 'ऐ' > हिं. तथा कों. 'ए'

सं. गैरिक > हिं. गेरू कों. गेरू
सं. तैल > हिं. तेल कों. तेल

सं. ' ऐ ' > हिं. तथा कों. ' ऐ '

सं. वैद्य > हिं. बैद कों. वैज
सं. वैद्यक > हिं. बैदगी कों. वैजकी

ओ :

संस्कृत ' ओ ' स्वर हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में समान रूप से 'अ, आ, ओ ' स्वरों में विकसित होता है, यथा –

सं. ' ओ ' > हिं. तथा कों. ' अ '

सं. करोति > हिं. करता कों. करता
सं. तनोति > हिं. तानता कों. ताणता

सं. ' ओ ' > हिं. तथा कों. ' आ '

सं. ओम् > हिं. हाँ कों. हां
सं. गो > हिं. गाय कों. गाय

सं. ' ओ ' > हिं. तथा कों. ' ओ '

सं. ओष्ठ > हिं. ओं(हों)ठ कों. ओंठ
सं. घोटक > हिं. घोडा कों. घोडो

नीचे संस्कृत ' ओ ' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होनेवाला विविध विकास प्रस्तुत किया है –

सं. ' ओ ' > हिं. ' ए ' तथा कों. ' अ '

सं. गोधूम > हिं. गेहूँ कों. गंव
सं. यज्ञोपवीत > हिं. जनेऊ कों. जानवें

सं. ' ओ ' > हिं. ' ओ ' तथा कों. ' उ '

सं. दोहद > हिं. दोहल कों. दुवाळो
सं. प्रोञ्छति > हिं. पोंछता कों. पुसता

औ :

संस्कृत ' औ ' स्वर हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में समान रूप से ' ओ ' स्वर में विकसित होता है, यथा –

सं. ' औ ' > हिं. तथा कों. ' ओ '

सं. मौक्तिक > हिं. मोती कों. मोतीं
सं. द्वौ > हिं. दो कों. दोन
सं. गौर हिं. गोरा कों. गोरो

२) अनुनासिक स्वरों का विकास

हिंदी तथा कोंकणी में प्रायः प्रत्येक स्वर अननुनासिक और अनुनासिक दोनों रूपों में व्यवहृत होता है । डा. तेजकृष्ण भाटिया के अनुसार अनुनासिकता का विकास नासिक्य व्यंजन के लोप एवं स्वर के दीर्घीकरण के परिणाम-स्वरूप हुआ है[४]। डा. धीरेंद्र वर्मा भी यही बात मानते हैं[५]। इनके मंतव्य के अनुसार अनुनासिक स्वर उन शब्दों में पाए जाते हैं जिनके तत्सम रूपों में कोई अनुनासिक व्यंजन रहा हो और उसका लोप हो गया हो । हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होनेवाले इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये हैं, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
जङ्घा	जाँघ	जांघ(ग)
पञ्च	पाँच	पांच
कण्टक	काँटा	कांटो
दन्त	दाँत	दांत
चम्पक	चंपा	चांपो
भ्रमर	भौंरा	भों(भं)वरो

इसके सिवा हिंदी तथा कोंकणी स्वरों में अनुनासिकता एक और प्रकार से प्राप्त है । यह किसी अनुनासिक व्यंजन के प्रभाव से उत्पन्न नहीं होती बल्कि स्वतंत्र रूप से निर्माण होती है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
पक्ष	पाँख	पांख
हस	हँास	हांस
ओष्ठ	ओंठ	ओंठ
काच	काँच	कांच, कंवची

इस संबंध में थोडा अधिक विवरण इसी अध्याय में आगे ' अकारण अनुनासिकता ' उपशीर्षक में स्पष्ट किया है (देखिए, पृ. १२३)।

हिंदी तथा कोंकणी स्वरों में अनुनासिकता की तीसरी एक स्थिति प्राप्त होती है । यह स्थिति केवल उच्चरित रूप में ही प्राप्त है न कि लिखित रूप में । जब किसी शब्द में एक या अधिक अनुनासिक व्यंजन आते हैं तब उनके प्रभाव से निरनुनासिक स्वर का उच्चारण भी सानुनासिक बन जाता है, यथा –

निरनुनासिक स्वर लिखित रूप	सानुनासिक स्वर उच्चरित रूप	
शब्द	हिंदी	कोंकणी
राम	राँम	रांम

हनूमान	हँनूँमान	हंनुमान
काम	काँम	कांम

यह स्थिति क्वाचित्क है, और केवल उच्चरित रूप में ही दिखायी देती है।

३) संयुक्त स्वरों का विकास

वैदिक संस्कृत में ' ए, ऐ, ओ, औ ' चार संयुक्त स्वर थे। संस्कृत में भी पाणिनि ने इनकी गणना अपने अक्षर-सूत्रों में की है[६]। पालि भाषा में ' ऐ, औ ' स्वर नहीं रहे। वे क्रमशः ' ए, ओ ' में समाहित हो गये या तो ' अइ, अउ ' में परिवर्तित हो गये। यही स्थिति प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा में भी रही। परंतु हिंदी तथा कोंकणी में ' ऐ, औ ' की उपस्थिति फिर से दिखायी देती है। इनका प्रादुर्भाव हिंदी तथा कोंकणी में भिन्न-भिन्न प्रकार से हुआ स्पष्ट ही नजर आता है।

(i) हिंदी तथा कोंकणी में ' ऐ ' और ' औ ' स्वर संस्कृत तत्सम शब्दों के साथ प्रविष्ट हुए हैं; यथा –

ऐ :

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
ऐक्य	ऐक्य	ऐक्य
ऐरावत	ऐरावत	ऐरावत
चैत्र	चैत्र	चैत्र
चैतन्य	चैतन्य	चैतन्य

औ :

औंदुबर	औंदुबर	औंदुबर
गौरव	गौरव	गौरव
गौतम	गौतम	गौतम

(ii) संस्कृत से विकसित हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में भी स्वरपरिवर्तन आदि के कारण ' ऐ ' और ' औ ' स्वरों की उपलब्धि होती है, यथा –

ऐ :

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
खदिर	खैर	खैर
निश्रेणी	निसैनी	– –
अशीति	– –	ऐंशीं

औ :

चतुष्क	चौक	चौक
काक	कौआ	– –
बहुमान	– –	भौमान

(iii) अरबी, फारसी शब्दों के साथ भी हिंदी तथा कोंकणी में ' ऐ ' और ' औ ' स्वर प्राप्त हैं, यथा –

ऐ :

अरबी शब्दों से प्राप्त :– कैद, कैफ, ऐवज
फारसी शब्दों से प्राप्त :– चैन, मैदा, मैदान

औ :

अरबी शब्दों से प्राप्त :– कौल, दौलत, हौद
फारसी शब्दों से प्राप्त :– नौकर, नौबत, फौज

' ऐ, औ ' स्वरों के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। हिंदी के कुछ विद्वान इन्हें मूल स्वर मानते हैं, तो कुछ विद्वान इन्हें संयुक्त स्वर मानते हैं। हिंदी तथा कोंकणी में इनकी तुलना करने के लिए इन्हें इस ग्रंथ में मूल स्वर के रूप में स्वीकारा है(देखिए, पृ. १३)। यद्यपि हिंदी में ' ऐ, औ ' स्वरों को संयुक्त स्वर के रूप में स्वीकारा है तो भी कोंकणी में ये स्वर संयुक्त स्वर के रूप में प्रायः उपलब्ध नहीं है; इनका एक भिन्न रूप प्राप्त है जो स्वर और व्यंजन के रूप में दिखायी देता है, जैसे– ऐ : अय् (अय); औ : अव् (अव)। डा. लक्ष्मीनारायण शर्मा ने हिंदी में ' ऐ ' के 'अइ – अई – अए ' तथा ' औ ' के 'अउ – अऊ – अओ ' को संयुक्त स्वर माना है। इन संयुक्त स्वरों के संबंध में भी उनका कहना है कि ये स्वर केवल हिंदी की बोलियों में प्राप्त होते हैं, न कि परिनिष्ठित हिंदी में। इस प्रकार के संयुक्त स्वर कोंकणी में भी प्राप्त नहीं हैं। एवं इन संयुक्त स्वरों के उदाहरण यहाँ नहीं दिये हैं।

संस्कृत संधिनियमों के कारण दो शब्द पास आने के बाद स्वरानुक्रम दिखायी देता है ; और इस प्रकार का स्वरानुक्रम संस्कृत में अनेक स्थानों पर मिलता है। परंतु एक ही शब्द में स्वरानुक्रम देखना चाहें तो वैदिक संस्कृत का एक ही रूप मिलता है ' तितउ '। प्राकृत में व्यंजन लोप के कारण स्वरानुक्रम की प्रवृत्ति बहुत प्राप्त होती है। हिंदी में यह प्रवृत्ति स्वीकृत है परंतु कोंकणी में यह प्रवृत्ति स्वीकृत नहीं है, यथा –

सं. जामातृ	हिं. जमाई	कों. जांवय
सं. यज्ञोपवीत	हिं. जनेऊँ	कों. जानवें
सं. एकस्थान	हिं. इकठाऊँ	कों. एकठांय
सं. शलाका	हिं. सळई	कों. सळय

४) असंयुक्त व्यंजन का विकास

नीचे संस्कृत के एक-एक असंयुक्त व्यंजन को लेकर यह दिखलाने का यत्न किया गया है कि वह प्रायः हिंदी तथा कोंकणी के किन-किन ध्वनियों में विकसित होता है। इसलिए प्रथम संस्कृत शब्द तदनन्तर हिंदी तथा कोंकणी शब्द दिये हैं।

क् :

संस्कृत ' क् ' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ' क् ' > हिं. तथा कों. ' क् '

सं. कीदृश > हिं. कैसा कों. कसो
सं. एकत्रिंशत् > हिं. इ(ए)कतीस कों. एकतीस

सं. ' क् ' > हिं. तथा कों. ' ख् '

सं. कास > हिं. खाँसी कों. खांक
सं. कील > हिं. खिला कों. खिळो

सं. ' क् ' > हिं. तथा कों. ' ग् '

सं. सकल > हिं. सगला कों. सगलो(ळो)
सं. प्राकार > हिं. पगार कों. पागा(गो)र

हिंदी ' पगार ' शब्द कविता में प्रयुक्त है।

नीचे संस्कृत ' क् ' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. ' क् ' > हिं. ' क् ' तथा कों. ' ख् '

सं. नासिका > हिं. नाक कों. नाख
सं. कक्ष > हिं. काँख कों. खाक

सं. ' क् ' > हिं. ' ख् ' तथा कों. ' क् '

सं. कालिक > हिं. कालिख कों. काळोक
सं. अंकुर > हिं. अंखुआ कों. आंकरी

सं. ' क् ' > हिं. ' ग् ' तथा कों. ' क् '

सं. शकुनि > हिं. सगुन कों. सुकणें
सं. एकादश > हिं. ग्यारह कों. इकरा

ख् :

संस्कृत ' ख् ' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप

में विकसित होता है, यथा –

सं. ' ख् ' > हिं. तथा कों. ' ख् '

सं. खदिर >	हिं. खैर	कों. खैर
सं. खर्जूर >	हिं. खाजूर	कों. खाजूर

ग् :

संस्कृत ' ग् ' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ' ग् ' > हिं. तथा कों. ' ग् '

सं. गर्दभ >	हिं. गधा	कों. गाढव
सं. गोष्ठ >	हिं. गोठ	कों. गोठो

सं. ' ग् ' > हिं. तथा कों. ' घ् '

सं. गृह >	हिं. घर	कों. घर
सं. गृहद्वार >	हिं. घरबार	कों. घरदार

नीचे संस्कृत ' ग् ' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. ' ग् ' > हिं. ' ग् ' तथा कों. ' क् '

सं. स्थग >	हिं. ठग	कों. ठक
सं. गोजिह्वा >	हिं. गोभी	कों. कोबी

सं. ' ग् ' > हिं. ' ग् ' तथा कों. ' घ् '

सं. गर्गरी >	हिं. गगरी	कों. घागर
सं. गोधूम >	हिं. गेहूँ	कों. घंव[7] (=गंव)

घ् :

संस्कृत ' घ् ' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ' घ् ' > हिं. तथा कों. ' घ् '

सं. घोटक >	हिं. घोडा	कों. घोडो
सं. घर्षति >	हिं. घिसता	कों. घांसता

ङ् :

संस्कृत में ङकारादि शब्द उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार स्वर-सहित ' ङ् ' संस्कृत शब्दों के मध्य में भी उपलब्ध नहीं है।

हिंदी तथा कोंकणी में भी ङकारादि शब्द नहीं है । इसी प्रकार हिंदी तथा कोंकणी शब्दों के मध्य में भी स्वर-सहित ' ङ् ' प्रायः (कोंकणी में केवल एकही शब्द में अपवादात्मक स्वरूप में स्वर-सहित ' ङ् ' प्राप्त है, यथा :– चिर्ङट) उपलब्ध नहीं है ।

संस्कृत में प्राप्त संयुक्त ' ङ् ' का विकास आगे ' संयुक्त व्यंजन का विकास ' उपशीर्षक में स्पष्ट किया है (देखिए, पृ. ३) ।

च् :

संस्कृत ' च् ' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ' च् ' > हिं. तथा कों. ' च् '

सं. चणक > हिं. चना कों. चणो
सं. चतुर्थ > हिं. चौथा कों. चौथो (चवथो)

नीचे संस्कृत ' च् ' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. ' च् ' > हिं. ' छ् ' तथा कों. ' च् '

सं. चालनी > हिं. छलनी कों. चाळण
सं. चित्र > हिं. छींट कों. चीट

छ् :

सं. ' छ् ' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ' छ् ' > हिं. तथा कों. ' छ् '

सं. छत्री > हिं. छतरी कों. छतरी
सं. छत्वर > हिं. छप्पर कों. छप्पर

नीचे संस्कृत ' छ् ' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. ' छ् ' > हिं. ' छ् ' तथा कों. ' श् '

सं. छिक्का > हिं. छींक कों. शींक (शिंक)
सं. छेदन > हिं. छेनी कों. शेणें

सं. ' छ् ' > हिं. ' छ् ' तथा कों. ' स् '

सं. छत्र > हिं. छतरी कों. सतरी
सं. छुरिका > हिं. छुरी कों. सुरी

ज् :

संस्कृत ' ज् ' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ' ज् ' > हिं. तथा कों. ' ज् '

सं. जलूका >	हिं. जोंक	कों. जळू
सं. जातीफल >	हिं. जायफल	कों. जायफळ

सं. ' ज् ' > हिं. तथा कों. ' य् '

सं. राज >	हिं. राय	कों. राय
सं. राजसी>	हिं. रायसा	कों. रायस

सं. ' ज् ' > हिं. तथा कों. ' व् '

सं. राज >	हिं. राव	कों. राव
सं. राजकुल >	हिं. रावल(लार)	कों. रावूळ

झ् :

संस्कृत ' झ् ' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ' झ् ' > हिं. तथा कों. ' झ् '

सं. झर्झर >	हिं. झाँझ	कों. झांज
सं. झाट >	हिं. झाडी	कों. झाडी

ञ् :

संस्कृत में ञकारादि शब्द उपलब्ध नहीं है । इसी प्रकार संस्कृत में स्वरसहित ' ञ् ' शब्द के मध्य में भी उपलब्ध नहीं है । हिंदी तथा कोंकणी में भी स्वरसहित ' ञ् ' शब्द के आदि या मध्य में प्राप्त नहीं है ।

संस्कृत में प्राप्त संयुक्त ' ञ् ' का विकास आगे ' संयुक्त व्यंजन का विकास ' उपशीर्षक में स्पष्ट किया है (देखिए, पृ. ८४)।

ट् :

संस्कृत ' ट् ' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ' ट् ' > हिं. तथा कों. ' ट् '

सं. छोटिका >	हिं. चुटकी	कों. चुटकी

सं. टलति > हिं. टलता कों. टळता(टा)

सं. ‘ ट् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ड् ’

सं. घोटक > हिं. घोडा कों. घोडो
सं. कटुक > हिं. कडुआ कों. कोडू

नीचे संस्कृत ‘ ट् ’ का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. ‘ ट् ’ > हिं. ‘ ट् ’ तथा कों. ‘ ड् ’

सं. घटन > हिं. घटना कों. घडण
सं. घटते > हिं. घटता कों. घडता(टा=घट्टा)

सं. ‘ ट् ’ > हिं. ‘ ल् ’ तथा कों. ‘ ड् ’

सं. चेटक > हिं. चेला कों. चेडो
सं. चेटी > हिं. चेली कों. चेडी

ठ् :

संस्कृत ‘ ठ् ’ व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ‘ ठ् ’ >हिं. तथा कों. ‘ ढ् ’

सं. पठति > हिं. पढता कों. ––––
सं. पिठर > हिं. ––– कों. पिढो

ड् :

संस्कृत ‘ ड् ’ व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ‘ ड् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ड् ’

सं. गुड > हिं. गूड कों. गोड
सं. लगुड > हिं. लकडी कों. लाकूड

नीचे संस्कृत ‘ ड् ’ का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. ‘ ड् ’ > हिं. ‘ ड् ’ तथा कों. ‘ ळ् ’

सं. दाडिम्ब > हिं. दाडिम कों. दाळम(ळिम)
सं. पीडा > हिं. पीर कों. पीळ

सं. ‘ ड् ’ > हिं. ‘ ल् ’ तथा कों. ‘ ळ् ’

सं. षोडश > हिं. सोलह कों. सोळा
सं. तडाग > हिं. ताल कों. तळी

ढ् :

संस्कृत 'ढ्' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. 'ढ्' > हिं. तथा कों. 'ढ्'

सं. आषाढ >	हिं. असाढ	कों. आशाढ
सं. गाढ >	हिं. गाढा	कों. गाढ

ण् :

नीचे संस्कृत 'ण्' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. 'ण्' > हिं. 'न्' तथा कों. 'ण्'

सं. अंगण >	हिं. आंगन	कों. आंगण
सं. निश्रेणी >	हिं. निसे(सै)नी	कों. निसण

त् :

संस्कृत 'त्' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. 'त्' > हिं. तथा कों. 'ड्'

सं. पतति >	हिं. पडता	कों. पडता(टा=पट्टा)
सं. प्रतिपदा >	हिं. पडवा	कों. पाडवो

सं. 'त्' > हिं. तथा कों. 'त्'

सं. तादृश >	हिं. तैसा	कों. तसो
सं. तीक्ष्ण >	हिं. तीख	कों. तीख(क)

सं. 'त्' > हिं. तथा कों. 'य्'

सं. जातिफल >	हिं. जायफल	कों. जायफळ
सं. घात >	हिं. घाय	कों. घाय

नीचे संस्कृत 'त्' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. 'त्' > हिं. 'य्' तथा कों. 'त्'

सं. अमृत >	हिं. अमिय	कों. अम्रुत
सं. किंतत् >	हिं. क्या	कों. कितें

सं. ‘ त् ’ > हिं. ‘ य् ’ तथा कों. ‘ ल् ’

सं. गत >	हिं. गया	कों. गेलो
सं. कृत >	हिं. किया	कों. केलो

सं. ‘ त् ’ > हिं. ‘ य् ’ तथा कों. ‘ व् ’

सं. घात >	हिं. घाय	कों. घाव
सं. कातर >	हिं. कायर	कों. कावरो(–बावरो)

थ् :

संस्कृत ‘ थ् ’ व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ‘ थ् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ढ् ’

सं. शिथिल >	हिं. ढीला	कों. ढील
सं. क्राथ >	हिं. काढा	कों. काढो

सं. ‘ थ् ’ > हिं. तथा कों. ‘ थ् ’

सं. ग्रथन >	हिं. गूथना	कों. गुंथप
सं. थूत+कृ >	हिं. थूक	कों. थूक

नीचे संस्कृत ‘ थ् ’ का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. ‘ थ् ’ > हिं. ‘ ढ् ’ तथा कों. ‘ ध् ’

सं. शिथिल >	हिं. ढीला	कों. धील
सं. शिथिलता >	हिं. ढिलाई	कों. धिलाय

द् :

संस्कृत ‘ द् ’ व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ‘ द् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ड् ’

सं. दंश >	हिं. डंक	कों. डंक
सं. दोलिका >	हिं. डोली	कों. डोली

सं. ‘ द् ’ > हिं. तथा कों. ‘ द् ’

सं. दुग्ध >	हिं. दूध	कों. दूद(ध)
सं. दोहद >	हिं. दोहल	कों. दुवाळो

सं. ‘ द् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ध् ’

सं. दुहिता >	हिं. धी(धि)या	कों. धूव
सं. दूर >	हिं. धुर	कों. ---
सं. दृढ >	हिं. ---	कों. धड

सं. ' द् ' > हिं. तथा कों. ' र् '

सं. एकादश >	हिं. ग्यारह	कों. इकरा
सं. अष्टादश >	हिं. अठारह	कों. अठरा

नीचे संस्कृत ' द् ' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. ' द् ' > हिं. ' ड् ' तथा कों. ' द् '

सं. दर्वि >	हिं. डौवा	कों. दाय
सं. दीपवर्तिका >	हिं. डीवट	कों. दिवटी

सं. ' द् ' > हिं. ' द् ' तथा कों. ' ध् '

सं. दधि >	हिं. दही	कों. धंय
सं. दश >	हिं. दस	कों. धा

सं. ' द् ' > हिं. ' ल् ' तथा कों. ' ळ् '

सं. कदम्ब >	हिं. कलंब	कों. कळंब(ळम)
सं. दोहद >	हिं. दोहल	कों. दुवाळो

ध् :

संस्कृत ' ध् ' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ' ध् ' > हिं. तथा कों. ' द् '

सं. औषध >	हिं. ओखद	कों. व(ओ)खद
सं. धात्री >	हिं. दाई	कों. दायी

सं. ' ध् ' > हिं. तथा कों. ' ध् '

सं. धूम्र >	हिं. धुआँ	कों. धुंवर
सं. धरित्री >	हिं. धर्ती	कों. धर्तरी

नीचे संस्कृत ' ध् ' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. ' ध् ' > हिं. ' ढ् ' तथा कों. ' ध् '

सं. धृष्ट >	हिं. ढीठ	कों. धीट
सं. धृष्टता >	हिं. ढिठाई	कों. धिटाय

सं. ‘ ध् ’ > हिं. ‘ ध् ’ तथा कों. ‘ द् ’

सं. शोधन > हिं. सोधन कों. सोदप
सं. धात्री > हिं. धाय कों. दायी

सं. ‘ ध् ’ > हिं. ‘ ह् ’ तथा कों. ‘ य् ’

सं. दधि > हिं. दही कों. धंय
सं. बधिर > हिं. बहरा कों. भयरो

सं. ‘ ध् ’ > हिं. ‘ ह् ’ तथा कों. ‘ व् ’

सं. साधु > हिं. साहु कों. साव
सं. गोधूम > हिं. गेहूँ कों. गंव

न् :

संस्कृत ‘ न् ’ व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ‘ न् ’ > हिं. तथा कों. ‘ न् ’

सं. नप्तृ > हिं. नाती कों. नातू
सं. नियम > हिं. नेम कों. नेम

सं. ‘ न् ’ > हिं. तथा कों. ‘ र् ’

सं. गृंजन > हिं. गाजर कों. गाजर

पालि में भी संस्कृत ‘ न् ’ से ‘ र् ’ विकसित होने का एक ही उदाहरण प्राप्त है, यथाः– सं. नीराजना > पा. नेरांजरा[१] । कोंकणी के एक और उदाहरण में भी ‘ न् ’ के बदले ‘ र् ’ सुनने को मिलता है, जैसे :– सं. आसनमण्ड > आसनमांडी > कों. आसरमांडी ।

सं. ‘ न् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ल् ’

सं. नवनीत > हिं. लवनी कों. लोणी
सं. जन्म > हिं. जलम कों. जल्म

नीचे संस्कृत ‘ न् ’ का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. ‘ न् ’ > हिं. ‘ न ’ तथा कों. ‘ ण् ’

सं. ननान्दपति > हिं. ननदोई कों. नणडावो
सं. नव > हिं. नौ कों. णव

सं. ‘ न् ’ > हिं. ‘ न् ’तथा कों. ‘ न्ह् ’

सं. नहि > हिं. नहीं कों. न्हय

सं. निद्रा > हिं. नींद कों. न्हीद

सं. ' न् ' > हिं. ' न् ' तथा कों. ' ल् '

सं. निम्ब > हिं. नि(नी)बू कों. लिंबू
सं. नवनीत > हिं. नवनी कों. लोणी

प् :

संस्कृत ' प् ' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ' प् ' > हिं. तथा कों. ' प् '

सं. पक्व > हिं. पका कों. पिको
सं. पारावत > हिं. परेवा कों. पारवो

सं. ' प् ' > हिं. तथा कों. ' फ् '

सं. पाश > हिं. फाँस(सी) कों. फांस(शी)
सं. परशु > हिं. फरसा कों. फरशी

सं. ' प् ' > हिं. तथा कों. ' व् '

सं. कपाट > हिं. किवाड कों. कवड
सं. सपाद > हिं. सवाया कों. सवाय

नीचे संस्कृत ' प् ' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. ' प् ' > हिं. ' प् ' तथा कों. ' फ् '

सं. पलाश > हिं. पलास कों. फळस
सं. पृष्ठ > हिं. पीठ कों. फाट

सं. ' प् ' > हिं. ' फ् ' तथा कों. ' प् '

सं. पनस > हिं. फनस कों. पणस
सं. परशु > हिं. फरसा कों. परशू

सं. ' प् ' > हिं. ' य् ' तथा कों. ' व् '

सं. दीप > हिं. दिया कों. दिवो
सं. दीपवर्ति > हिं. दियाबत्ती कों. दिवोवात

फ् :

संस्कृत ' फ् ' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ‘ फ् ’ > हिं. तथा कों. ‘ फ् ’

सं. फल > हिं. फल कों. फळ
सं. फेण > हिं. फेन कों. फेंड(ण)

ब् :

संस्कृत ‘ ब् ’ व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ‘ ब् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ब् ’

सं. बदर > हिं. बेर कों. बोर
सं. बिल्व > हिं. बेल कों. बेल

सं. ‘ ब् ’ > हिं. तथा कों. ‘ भ् ’

सं. बुक्कति > हिं. भौंकता कों. भों(भुं)कता
सं. बुस > हिं. भूसा कों. भुसो

नीचे संस्कृत ‘ ब् ’ का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होनेवाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. ‘ ब् ’ > हिं. ‘ ब् ’ तथा कों. ‘ भ् ’

सं. बहिर्(स्) > हिं. बाहर कों. भायर
सं. बधिर > हिं. बहरा कों. भेरो

भ् :

संस्कृत ‘ भ् ’ व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ‘ भ् ’ > हिं. तथा कों. ‘ भ् ’

सं. भागिनेय > हिं. भानजा कों. भाचो
सं. भिक्षा > हिं. भीख कों. भीक

नीचे संस्कृत ‘ भ् ’ का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. ‘ भ् ’ > हिं. ‘ ब् ’ तथा कों. ‘ भ् ’

सं. भगिनी > हिं. बहन कों. भै(भय)ण
सं. भगिनीपति > हिं. बहनोई कों. -----
सं. बहुत > हिं. --- कों. भोव(भौ)

सं. ‘ भ् ’ > हिं. ‘ ह् ’ तथा कों. ‘ ब् ’

सं. शोभते > हिं. सोहता कों. सोबता

सं. लाभ >	हिं. लाहु[१०]	कों. लाब

सं. ' भ् ' > हिं. ' ह् ' तथा कों. ' व् '

सं. गर्दभ >	हिं. गदहा	कों. गाढव
सं. लाभ >	हिं. लाह	कों. लाव

म् :

संस्कृत ' म् ' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ' म् ' > हिं. तथा कों. ' म् '

सं. मयूर >	हिं. मोर	कों. मोर
सं. अमावस्या >	हिं. अमावस	कों. उ(अ)मास

सं. ' म् ' > हिं. तथा कों. ' व् '

सं. चामर >	हिं. चँवर	कों. चंवर
सं. पंचम >	हिं. पाँचवा	कों. पांचवो

य् :

संस्कृत ' य् ' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ' य् ' > हिं. तथा कों. ' ज् '

सं. यः >	हिं. जो	कों. जो
सं. क्षीयते >	हिं. झीजता	कों. झिजता

सं. ' य् ' > हिं. तथा कों. ' त् '

सं. कियान् >	हिं. कितना	कों. कितलो
सं. इयान् >	हिं. इतना	कों. इतलो

सं. ' य् ' > हिं. तथा कों. ' य् '

सं. आयात >	हिं. आया	कों. आयलो
सं. ताम्रीय >	हिं. तांबिया	कों. तांबियो

सं. ' य् ' > हिं. तथा कों. ' ल् '

सं. यष्टि >	हिं. लाठी	कों. लाठी
सं. अंगयष्टि >	हिं. अंगलेट	कों. आंगलोट

नीचे संस्कृत ' य् ' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला विविध विकास

प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. ‘ य् ’ > हिं. ‘ ज् ’ तथा कों. ‘ च् ’

सं. भागिनेय > हिं. भानजा कों. भाचो
सं. भागिनेयी > हिं. भानजी कों. भाची

सं. ‘ य् ’ > हिं. ‘ ज् ’ तथा कों. ‘ य् ’

सं. तृतीया > हिं. तीज कों. तय
सं. यशस् > हिं. जस कों. यश(येस)

र् :

संस्कृत ‘ र् ’ व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा–

सं. ‘ र् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ड् ’

सं. खेचरान्न > हिं. खिचडी कों. खिचडी
सं. कर्कर > हिं. कंकड कों. -----
सं. आहरति > ----- हाडता

सं. ‘ र् ’ > हिं. तथा कों. ‘ र् ’

सं. खदिर > हिं. खैर कों. खैर
सं. जीरक > हिं. जीरा कों. जिरें

नीचे संस्कृत ‘ र् ’ का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होनेवाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. ‘ र् ’ > हिं. ‘ र् ’ तथा कों. ‘ ळ् ’

सं. अंगार > हिं. अंगारा कों. इंगळो
सं. कबरी > हिं. कँबरी कों. कवळी

सं. ‘ र् ’ > हिं. ‘ ल् ’ तथा कों. ‘ ळ् ’

सं. चत्वारिंशत् > हिं. चालीस कों. चाळीस
सं. हरिद्रा > हिं. हलदी कों. हळद

ल् :

संस्कृत ‘ ल् ’ व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ‘ ल् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ल् ’

सं. तैल > हिं. तेल कों. तेल

सं. लड्डूक > हिं. लड्डू कों. लाडू

नीचे संस्कृत ' ल् ' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. ' ल् ' > हिं. ' न् ' तथा कों. ' ल् '

सं. लवण > हिं. नोन कों. लोण
सं. लवणीय > हिं. नोनचा कों. लोणचें

सं. ' ल् ' > हिं. ' र् ' तथा कों. ' ळ् '

सं. लाला > हिं. लार कों. लाळ
सं. कोमल > हिं. कोंवर कों. कोंवळो

हिंदी ' कोंवर ' शब्द कविता में प्रयुक्त है।

सं. ' ल् ' > हिं. ' ल् ' तथा कों. ' ल्ह् '

सं. लघु > हिं. हलका कों. ल्हव
सं. लाजा > हिं. लावा कों. ल्हाय

सं. ' ल् ' > हिं. ' ल् ' तथा कों. ' ळ् '

सं. आलस > हिं. आलसी कों. आळशी
सं. अलवण > हिं. अलोना कों. अळणी

व् :

संस्कृत ' व् ' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. ' व् ' > हिं. तथा कों. ' त् '

सं. यावान् > हिं. जितना कों. जितलो
सं. तावान् > हिं. तितना कों. तितलो

सं. ' व् ' >हिं. तथा कों. ' ब् '

सं. वेतस् > हिं. बेंत कों. बेत
सं. वापी > हिं. बावली कों. बांय

सं. ' व् ' > हिं. तथा कों. ' व् '

सं. तरवारि > हिं. तलवार कों. तलवार
सं. प्रावृष् > हिं. पावस कों. पावस

नीचे संस्कृत ' व् ' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. ' व् ' > हिं. ' व् ' तथा कों. ' व् '

सं. विंशति > हिं. बीस कों. वीस
सं. विद्युत् > हिं. बिजली कों. वीज

सं. 'व्' > हिं. 'ब्ब्' तथा कों. 'व्व्'

सं. नवति > हिं. नब्बे कों. णव्वद
सं. एकनवति > हिं. इक्यानब्बे कों. -----
सं. एकोननवति > हिं. ----- कों. इकुणणव्वद

श् :

संस्कृत 'श्' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. 'श्' > हिं. तथा कों. 'स्'

सं. शाल्मलि > हिं. सेमल कों. सांवर
सं. लशुन > हिं. लहसून कों. लसूण

नीचे संस्कृत 'श्' का हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला विविध विकास प्रस्तुत किया है, यथा –

सं. 'श्' > हिं. 'छ्' तथा कों. 'श्'

सं. शिक्य > हिं. छींका कों. शिंकें
सं. शिंखति > हिं. छींकता कों. शिंकता

सं. 'श्' > हिं. 'श्' तथा कों. 'स्'

सं. शिंशपा > हिं. शीशम कों. सिसंव (म)
सं. शर्करा > हिं. शक्कर कों. साकर

सं. 'श्' > हिं. 'स्' तथा कों. 'श्'

सं. शतम् > हिं. सौ कों. शें (शंबर)
सं. शिक्षति > हिं. सीखता कों. शिकता

ष् :

संस्कृत 'ष्' व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से समान रूप में विकसित होता है, यथा –

सं. 'ष्' > हिं. तथा कों. 'ख्'

सं. विष > हिं. विख कों. वीख
सं. औषध > हिं. ओखद कों. वखद
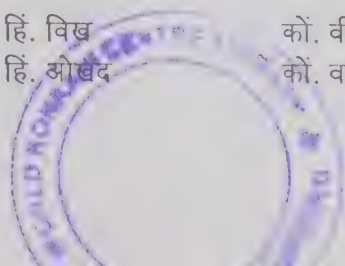
सं. रक्त > हिं. रगत कों. रगत

हिंदी ' रगत ' शब्द कविता में प्रयुक्त है ।

सं. ' क्त् ' > हिं. तथा कों. ' त् '

सं. मौक्तिक > हिं. मोती कों. मोतीं
सं. रिक्त > हिं. रीता कों. रितो

सं. ' क्य् ' > हिं. तथा कों. ' क् '

सं. माणिक्य > हिं. मानिक कों. माणिक
सं. शिक्य > हिं. छींका कों. शिंकें

सं. ' क्र् ' > हिं. तथा कों. ' क् '

सं. चक्र > हिं. चाक कों. चाक
सं. क्रोश > हिं. कोस कों. कोस

सं. ' क्व् ' > हिं. तथा कों. ' क् '

सं. पक्व > हिं. पका कों. पिको
सं. क्वथिता > हिं. कढी कों. कडी

ख् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ' ख्य् ' > हिं. तथा कों. ' ख् '

सं. व्याख्यान > हिं. बखानना कों. वाखाणणी
सं. मुख्य > हिं. मुखिया कों. ---
सं. संख्या > हिं. --- कों. संखे

ग् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ' ग्न् ' > हिं. तथा कों. ' ग् '

सं. अग्नि > हिं. आग कों. आग
सं. अलग्न > हिं. अलग कों. अळंग

सं. ' ग्र् ' > हिं. तथा कों. ' ग् '

सं. ग्राम > हिं. गाँव कों. गांव
सं. ग्रन्थि > हिं. गाँठ कों. गांठ

सं. ' ग्ध् ' > हिं. ' ध् ' तथा कों. ' द् '

सं. दुग्ध > हिं. दूध कों. दूद
सं. दुग्धालय > हिं. दुधैल कों. दुदाळ

घ् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ‘ घ्र् ’ > हिं. ‘ घ् ’ तथा कों. ‘ ग्(घ्) ’

सं. व्याघ्र >	हिं. बाघ	कों. वाग(घ)
सं. व्याघ्रनख >	हिं. बाघनख	कों. वागनखें

ङ् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ‘ ङ्क् ’ > हिं. तथा कों. ‘ क् ’

सं. पङ्क >	हिं. पाँक	कों. पांक
सं. अङ्क >	हिं. आँक	कों. आंक

सं. ‘ ङ्ख् ’ > हिं. तथा कों. ‘ क्(ख) ’

सं. श्रृङ्खला >	हिं. साँकल	कों. सांक(ख)ळ
सं. शिङ्खति >	हिं. छींकता	कों. शिंकता

सं. ‘ ङ्क् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ग् ’

सं. पर्यङ्क >	हिं. पलंग	कों. पलंग
सं. कङ्काल >	हिं. कंगाल	कों. कंगाल

सं. ‘ ङ्ग् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ग् ’

सं. अङ्गप्रोञ्छ >	हिं. अंगोछा	कों. आंगसो
सं. हिङ्गु >	हिं. हिंग	कों. हिंग

सं. ‘ ङ्घ् ’ > हिं. ‘ घ् ’ तथा कों. ‘ घ्(ग्) ’

सं. जङ्घा >	हिं. जांघ	कों. जांघ(ग)
सं. सङ्घ >	हिं. संघ	कों. संघ

च् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ‘ च्च् ’ > हिं. तथा कों. ‘ च् ’

सं. कच्चर >	हिं. कचरा	कों. कचरो
सं. उच्च >	हिं. ऊँच	कों. ऊंच

सं. ‘ च्छ् ’ > हिं. ‘ छ् ’ तथा कों. ‘ स् ’

सं. कच्छप >	हिं. कछुआ	कों. कासव
सं. उच्छलति >	हिं. उछलता	कों. उसळता

ज् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ‘ ज्ज् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ज् ’

सं. लज्जा >	हिं. लाज	कों. लज
सं. कज्जल >	हिं. काजल	कों. काजळ

सं. ‘ ज्य् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ज् ’

सं. ज्योतिस् >	हिं. जोत	कों. जोत
सं. राज्यक्ता >	हिं. रायता	कों. रायतें

सं. ‘ ज्व् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ज् ’

सं. ज्वलति >	हिं. जलता	कों. जळता
सं. उज्वल >	हिं. उजला	कों. उजळ

ञ् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ‘ ञ्च् ’ > हिं. तथा कों. ‘ च् ’

सं. पञ्च >	हिं. पाँच	कों. पांच
सं. चञ्चु >	हिं. चोंच	कों. चों(तों)च

सं. ‘ ञ्छ् ’ > हिं. ‘ छ् ’ तथा कों. ‘ स् ’

सं. प्रोञ्छति >	हिं. पोंछता	कों. पुसता
सं. अङ्गप्रोञ्छ >	हिं. अंगोछा	कों. आंगसो

सं. ‘ ञ्ज् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ज् ’

सं. गुञ्जति >	हिं. गूँजता	कों. गुंजता
सं. पञ्जर >	हिं. पिंजरा	कों. पांजरो

ट् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ‘ ट्ट ’ > हिं. तथा कों. ‘ ट् ’

सं. कुट्टति >	हिं. कूटता	कों. कुटता
सं. घट्ट >	हिं. घाट	कों. घाट

सं. ‘ ट्य् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ट् ’

सं. उल्लुट्यति >	हिं. उलटता	कों. उलटता
सं. त्रुट्यति >	हिं. टूटता	कों. तुटता

सं. ‘ ट्व् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ट् ’

सं. खट्वा >	हिं. खाट	कों. खाट
सं. खट्विका >	हिं. खटोला	कों. खाटलें

ड् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ‘ ड्ड् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ड् ’

सं. उड्डीयति >	हिं. उडता	कों. उडता
सं. लड्डूक >	हिं. लाडू	कों. लाडू

हिंदी ‘ लाडू ’ शब्द स्थानिक बोलचाल में प्रयुक्त होने वाला शब्द है ।

ण् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ‘ ण्ट् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ट् ’

सं. कण्टक   हिं. काँटा   कों. कांटो
सं. वण्टति   हिं. बाँटता   कों. वांटता

सं. ‘ ण्ठ् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ठ् ’

सं. शुण्ठि   हिं. सोंठ   कों. सूंठ
सं. कण्ठी   हिं. कंठी   कों. कंठी

सं. ‘ ण्ड् ’ > हिं. तथा कों ‘ ड् ’

सं.शुण्डा   हिं. सूँड   कों. सोंड
सं. दण्ड   हिं. डंडा   कों. दांडो

त् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ‘ त्त् ’ > हिं. तथा कों. ‘ त् ’

सं. उत्तान   हिं. उतान   कों. उताणो
सं. भित्ति   हिं. भीत   कों. भिंत

सं. ‘ त्म् ’ > हिं. तथा कों. ‘ प् ’

सं. आत्मन्   हिं. आप   कों. आपुण
सं. आत्मनीन   हिं. अपना   कों. आपलो

सं. ‘ त्य् ’ > हिं. तथा कों. ‘ च् ’

सं. सत्य   हिं. साँच   कों. साच
सं. नृत्य   हिं. नाच   कों. नाच

सं. ‘ त्य् ’ > हिं. तथा कों. ‘ त् ’

सं. आदित्यवार   हिं. इतवार   कों.आयतार
सं. प्रत्याययति   हिं. पतियाता   कों. पातेता

सं. ‘ त्र् ’ > हिं. तथा कों. ‘ त् ’

सं. त्रीणि   हिं. तीन   कों. तीन
सं. करपत्र   हिं. करौत   कों. खरवत

सं. ‘ त्व् ’ > हिं. तथा कों. ‘ त् ’

सं. त्वम्   हिं. तू   कों. तूं
सं. त्वरित   हिं. तुरंत   कों. तूर्त

सं. ‘ त्त् ’ > हिं. ‘ ट्ट् ’ तथा कों. ‘ त् ’

सं. मृत्तिका   हिं. मिट्टी   कों. माती

सं. ‘ त्थ् ’ > हिं. ‘ थ् ’ तथा कों. ‘ ठ् ’

सं. कपित्थ	हिं. कैथा	कों. कवठ

सं. ‘ त्थ् ’ > हिं. ‘ थ् ’ तथा कों. ‘ त् (द्) ’

सं. कुलत्थ	हिं. कुलथ	कों. कुळीत (द)

द् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ‘ द्ग् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ग् ’

सं. मुद्ग	हिं. मूँग	कों. मूग
सं. उद्गमन	हिं. उगना	कों. उगप

सं. ‘ द्य् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ज् ’

सं. अद्य	हिं. आज	कों. आज
सं. खाद्य	हिं. खाजा	कों. खाजें

सं. ‘ द्र् ’ > हिं. तथा कों. ‘ द् ’

सं. द्रोण	हिं. दोना	कों. दोणो
सं. निद्रा	हिं. नींद	कों. न्हीद

सं. ‘ द्व् ’ > हिं. तथा कों. ‘ द् ’

सं. द्वौ	हिं. दो	कों. दोन
सं. द्वार	हिं. दुवार	कों. दार

सं. ‘ द्व् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ब् ’

सं. द्वादश	हिं. बारह	कों. बारा
सं. उद्वारयति	हिं. उबारता	कों. उबारता

सं. ‘ द्ध् ’ > हिं. ‘ ढ् ’ तथा कों. ‘ ड् ’

सं. वृद्ध	हिं. बूढा	कों. व्हड
सं. वृद्धि	हिं. बाढ	कों. वाड

सं. ‘ द्व्य् ’ > हिं. ‘ ड् ’ तथा कों. ‘ द् ’

सं. द्व्यर्द्ध	हिं. डेढ	कों. देड
सं. द्व्यर्द्धशत	हिं. डेढसौ	कों. देडशें

ध् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ‘ ध्य् ’ > हिं. ‘ झ् ’ तथा ‘ द् ’

सं. मध्यम	हिं. मँझला	कों. मदलो
सं. मध्य	हिं. माँझ	कों. मदें (दीं)

सं. ' ध् ' > हिं. ' ध् ' तथा कों. ' द् '

सं. गृध	हिं. गीध	कों. गीद

न् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ' न्त् ' > हिं. तथा कों. ' त् '

सं. दन्त	हिं. दाँत	कों. दांत
सं. कृन्तति	हिं. कतता	कों. कांतता

सं. ' न्त्र् ' > हिं. तथा कों. ' त् '

सं. अन्त्र	हिं. आँत	कों. आंत
सं. यन्त्र	हिं. जाँता	कों. जां(दां)तें

सं. ' न्थ् ' > हिं. तथा कों. ' ठ् '

सं. ग्रन्थि	हिं. गाँठ	कों. गांठ
सं. ग्रन्थन	हिं. गाँठना	कों. गांठप

सं. ' न्द् ' > हिं. तथा कों. ' द् '

सं. कन्द	हिं. काँदा	कों. कांदो
सं. ननान्दृ	हिं. ननंद	कों. नणंद

सं. ' न्द्र् ' > हिं. तथा कों. ' द् '

सं. चन्द्रज्योत्स्ना	हिं. चाँदनी	कों. चाँदने (चान्ने)
सं. चन्द्र	हिं. चाँद	कों. चंद

सं. ' न्ध् ' > हिं. तथा कों. ' ध् '

सं. अन्ध	हिं. अंधा	कों. आंधळो
सं. अन्धकार	हिं. अँधेरा	कों. अंधार

सं. ' न्ध् ' > हिं. ' ध् ' तथा कों. ' द् '

सं. रन्धयति	हिं. रांधता	कों. रांदता
सं. स्कन्ध	हिं. कंधा	कों. खांदो

सं. ' न्ध्य् ' > हिं. ' झ् ' तथा कों. ' ज् '

सं. सन्ध्या	हिं. साँझ	कों. सांज
सं. वन्ध्या	हिं. बाँझ	कों. वांज

प् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ' प्त् ' > हिं. तथा कों. ' त् '

सं. विज्ञप्ति	हिं. बिनती	कों. विनंती
सं. नप्तृ	हिं. नाती	कों. नातू

सं. 'प्त्' > हिं. तथा कों. 'त्'

सं. सप्तति	हिं. सत्तर	कों. सत्तर
सं. सप्तविंशति	हिं. सत्ताईस	कों. सत्तावीस

सं. 'प्प्' > हिं. तथा कों. 'प्'

सं. पिप्पल	हिं. पीपल	कों. पिंपळ
सं. पिप्पलि	हिं. पीपर	कों. पिंपळी

सं. 'प्र्' > हिं. तथा कों. 'प्'

सं. प्राकार	हिं. पारा, पागार	कों. पारो, पागो(गा)र
सं. प्रहर	हिं. पहर	कों. पार

ब् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. 'ब्ज्' > हिं. तथा कों. 'ब्'

सं. कुब्ज	हिं. कुबडा	कों. कुबडो
सं. कुब्ज	हिं. कूबड	कों. कुबड

सं. 'ब्र्' > हिं. तथा कों. 'ब्'

सं. ब्राह्मण	हिं. बाम्हन	कों. बामण
सं. ब्रह्मा	हिं. बरम्हा	कों. बरमो

भ् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. 'भ्य्' > हिं. तथा कों. 'भ्'

सं. अभ्यन्तर	हिं. भीतर	कों. भितर
सं. अभ्यञ्जन	हिं. भीज(ग)ना	कों. भिजप

सं. 'भ्र्' > हिं. तथा कों. 'भ्'

सं. भ्रमर	हिं. भौंरा	कों. भोंवरो
सं. भ्रातृ	हिं. भाई	कों. भाव

म् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. 'म्प्' > हिं. तथा कों. 'प्'

सं. चम्पक	हिं. चंपा	कों. चांपो(फो)
सं. कम्पन	हिं. काँपना	कों. कांपप

सं. 'म्ब्' > हिं. तथा कों. 'ब्'

सं. निम्ब	हिं. निबू	कों. लिंबू
सं. कदम्ब	हिं. कलंब	कों. कळंब

सं. ‘ म्ब् ’ > हिं. तथा कों. ‘ म् ’

सं. चुम्बन — हिं. चूगा — कों. उमो
सं. दाडिम्ब — हिं. दाडिम — कों. दाळम

सं. ‘ म्भ् ’ > हिं. ‘ भ् ’ तथा कों. ‘ ब् ’

सं. जृम्भा — हिं. जंभाई — कों. जांबय
सं. स्कम्भ — हिं. खंभा — कों. खांब

सं. ‘ म्र् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ब् ’

सं. ताम्र — हिं. ताँबा — कों. तांबें
सं. आम्रिका — हिं. अँबिया — कों. आंबली

सं. ‘ म्र् ’ > हिं. तथा कों. ‘ म् ’

सं. ताम्र — हिं. तामडा — कों. तागडो
सं. अम्रातक — हिं. अमडा — कों. आमाडो

सं. ‘ म्र् ’ > हिं. ‘ म् ’ तथा कों. ‘ ब् ’

सं. आम्र — हिं. आम — कों. आंबो(गो)
सं. अम्रातक — हिं. अमडा — कों. आंबाडो

र् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ‘ र्क् ’ > हिं. तथा कों. ‘ क् ’

सं. कर्करी — हिं. ककडी — कों. काकडी
सं. वर्कर — हिं. बकरा — कों. बकरो

सं. ‘ र्ग् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ग् ’

सं. गर्गरी — हिं. गागर — कों. घागर
सं. मार्गयति — हिं. माँगता — कों. मागता

सं. ‘ र्घ् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ग् ’

सं. महार्घ — हिं. महँगा — कों. म्हारग
सं. महार्घता — हिं. महँगाई — कों. म्हारगाय

सं. ‘ र्ज् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ज् ’

सं. खर्जूर — हिं. खजूर — कों. खाजूर
सं. गुर्जर — हिं. गूजर — कों. गुजीर

सं. ‘ र्ण् ’ > हिं. तथा कों. ‘ न् ’

सं. कर्ण — हिं. कान — कों. कान
सं. पूर्णिमा — हिं. पूनो — कों. पुनव

सं. ‘ र्त् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ट् ’

सं. उद्वर्तन	हिं. उबटन	कों. उटणें
सं. दीपवर्तिका	हिं. डीवट	कों. दिवटी

सं. ‘ र्त् ’ > हिं. तथा कों. ‘ त् ’

सं. वर्तिका	हिं. बाती	कों. वात
सं. कर्तरी	हिं. काती	कों. कातरी

सं. ‘ र्थ् ’ > हिं. तथा कों. ‘ थ् ’

सं. चतुर्थ	हिं. चौथा	कों. चौथो
सं. चतुर्थी	हिं. चौथ	कों. चवथ

सं. ‘ र्प् ’ > हिं. तथा कों ‘ प् ’

सं. कर्पट	हिं. कापड	कों. कापड
सं. कर्पूर	हिं. कपूर	कों. कापूर

सं. ‘ र्म् ’ > हिं. तथा कों. ‘ म् ’

सं. कर्म	हिं. काम	कों. काम
सं. चर्म	हिं. चमडा	कों. चामडें

सं. ‘ र्य् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ज् ’

सं. आर्य	हिं. आजा	कों. आजो
सं. आर्यिका	हिं. आजी	कों. आजी

सं. ‘ र्य् ’ > हिं. तथा कों. ‘ र् ’

सं. उपर्यन्त	हिं. उपरांत	कों. उपरांत
सं. धैर्य	हिं. धीर	कों. धीर

सं. ‘ र्य् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ल् ’

सं. पर्यङ्क	हिं. पलंग	कों. पलंग
सं. पर्यङ्किका	हिं. पालकी	कों. पालखी

सं. ‘ र्ष् ’ > हिं. तथा कों. ‘ स् ’

सं. कर्षपट्टिका	हिं. कसौटी	कों. कसोटी
सं. घर्षति	हिं. घिसता	कों. घासता

सं. ‘ र्ण् ’ > हिं. ‘ न् ’ तथा कों. ‘ ण् ’

सं. कर्णिकार	हिं. कनेर	कों. कणेर
सं. प्राघूर्ण	हिं. पाहुना	कों. पाहु(व)णो

सं. ‘ र्द्ध् ’ > हिं. ‘ ढ् ’ तथा कों. ‘ ड् ’

सं. अर्द्धत्रय	हिं. अढाई	कों. अडेच
सं. द्व्यर्द्ध	हिं. डेढ	कों. देड

सं. ' र्भ् ' > हिं. ' भ् ' तथा कों. ' ब् '

सं. गर्भ	हिं. गाभ	कों. गाब
सं. गर्भिणी	हिं. गाभिन	कों. गाबीण

ल् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ' ल्य् ' > हिं. तथा कों. ' ल् '

सं. कल्य	हिं. कल	कों. काल
सं. मूल्य	हिं. मोल	कों. मोल

सं. ' ल्ल् ' > हिं. तथा कों. ' ल् '

सं. भल्लूक	हिं. भालू	कों. भालू
सं. वल्लि	हिं. बेल	कों. वेल

सं. ' ल्व् ' > हिं. तथा कों. ' ल् '

सं. बिल्व	हिं. बेल	कों. बेल
सं. बिल्वपत्र	हिं. बेलपत्र	कों. बेलपत्र

व् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ' व्य् ' > हिं. ' ब् ' तथा को. ' व् '

सं. व्याघ्र	हिं. बाघ	कों. वाग
सं. व्यवहार	हिं. बेवहार	कों. वेव्हार

श् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ' श्म् ' > हिं. तथा कों. ' म् '

सं. श्मश्रु	हिं. मूँछ	कों. मिशी
सं. श्मशान	हिं. मसान	कों. मसण

सं. ' श्य् ' > हिं. तथा कों. ' स् '

सं. श्यामल	हिं. साँवला	कों. सांवळो
सं. श्यामाक	हिं. साँवा	कों. सांवो(वें)

सं. ' श्र् ' > हिं. तथा कों. ' स् '

सं. आश्रय	हिं. आसरा	कों. आसरो
सं. निश्रेणी	हिं. निसेनी	कों. निसण

सं. ' श्व् ' > हिं. तथा कों. ' स् '

सं. अश्वगंध	हिं. असगंध	कों. आसगंध
सं. श्वश्रु	हिं. सास	कों. सासु (–मांय)

सं. 'श्च्' > हिं. 'च्छ्' तथा कों. 'च्'

सं. वृश्चिक   हिं. बिच्छू   कों. विंचू

सं. 'श्च्' > हिं. 'छ्' तथा कों. 'स्'

सं. तिरश्च   हिं. तिरछा   कों. तिरसो,
सं. पश्चात्ताप   हिं. पछतावा   कों. पस्ता(सता)वो

ष् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. 'ष्क्' >हिं. तथा कों. 'क्'

सं. चतुष्कोण   हिं. चौकोन   कों. चौकोन
सं. दुष्काल   हिं. दुकाल   कों. दुकळ

सं. 'ष्ट्' > हिं. तथा कों. 'ठ्'

सं. अष्टादश   हिं. अठारह   कों. अठरा
सं. मुष्टि   हिं. मूठ   कों. मूठ

सं. 'ष्ठ्' > हिं. तथा कों. 'ठ्'

सं. गोष्ठ   हिं. गोठ   कों. गोठो
सं. ओष्ठ   हिं. ओंठ   कों. ओंठ

सं. 'ष्क्' > हिं. 'ख्' तथा कों. 'क्'

सं. शुष्क   हिं. सूखा   कों. सुको
सं. चतुष्काष्ठ   हिं. चौखट   कों. चौकट

सं. 'ष्ठ्' > हिं. 'ठ्' तथा कों. 'ट्'

सं. षष्ठी   हिं. छठी   कों. सटी
सं. श्रेष्ठ   हिं. सेठ   कों. शेट (सेट)

स् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. 'स्त्' > हिं. तथा कों. 'थ्'

सं. स्तर   हिं. थर   कों. थर
सं. मस्तक   हिं. माथा   कों. माथें

सं. 'स्त्र्' > हिं. तथा कों. 'त्'

सं. भस्त्रा   हिं. भाता   कों. भातो
सं. चतुस्त्रिंशत्   हिं. चौंतीस   कों. चौंतीस

सं. 'स्थ्' > हिं. तथा कों. 'थ्'

सं. स्थल   हिं. थल   कों. थळ
सं. स्थाली   हिं. थाली   कों. थाली(ल)

सं. ' स्फ् ' > हिं. तथा कों. ' फ् '

सं. स्फोट　　हिं. फोडा　　कों. फोड
सं. स्फालन　　हिं. फाडना　　कों. फाडप

सं. ' स्म् ' > हिं. तथा कों. ' स् '

सं. विस्मरति　　हिं. बिसरता　　कों. विसरता
सं. स्मरण　　हिं. सुमरन　　कों. सुमरण

सं. ' स्य् ' > हिं. तथा कों. ' स् '

सं. अमावस्या　　हिं. अमावस　　कों. उ(अ)मास
सं. आलस्य　　हिं. आलस　　कों. आळस

सं. ' स्व् ' > हिं. तथा कों. ' स् '

सं. स्वर　　हिं. सुर　　कों. सु(सू)र
सं. स्वप्न　　हिं. सपना　　कों. सपन

सं. ' स्त् ' > हिं. ' थ् ' तथा कों. ' त् '

सं. हस्त　　हिं. हाथ　　कों. हात
सं. हस्ती　　हिं. हाथी　　कों. हती

सं. ' स्त् ' > हिं. ' त्थ् ' तथा कों. ' त् '

सं. प्रस्तर　　हिं. पत्थर　　कों. फातोर
सं. मस्तक　　हिं. मत्था　　कों. मातें(थें)

ह् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ' ह्म ' > हिं. तथा कों. ' म्ह् '

सं. ब्रह्माण्ड　　हिं. ब्रम्हांड　　कों. ब्रम्हांड
सं. ब्रह्मा　　हिं. ब्रम्हा　　कों. ब्रम्हो

सं. ' ह्य् ' > हिं. ' झ् ' तथा कों. ' ज् '

सं. वाह्य　　हिं. बोझ　　कों. ओ(व)जें
सं. गुह्य　　हिं. गोझा(गुझिया)　　कों. गूज

सं. ' ह्व ' > हिं. ' भ् ' तथा कों. ' ब् '

सं. जिह्वा　　हिं. जीभ　　कों. जीब
सं. गोजिह्वा　　हिं. गोभी　　कों. कोबी

क्ष् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ‘ क्ष् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ख् ’

सं. क्षीर   हिं. खीर   कों. खीर
सं. परीक्षा   हिं. परख   कों. पारख

सं. ‘ क्ष् ’ > हिं. ‘ ख् ’ तथा कों. ‘ क् ’

सं. भिक्षा   हिं. भीख   कों. भीक
सं. शिक्षति   हिं. सीखता   कों. शिकता

सं. ‘ क्ष् ’ > हिं. ‘ ख् ’ तथा कों. ‘ श् ’

सं. क्षेत्र   हिं. खेत   कों. शेत
सं. क्षेत्रिकी   हिं. खेती   कों. शेती

सं. ‘ क्ष् ’ > हिं. ‘ ख् ’ तथा कों. ‘ स् ’

सं. इक्षु   हिं. ईख   कों. ऊस
सं. कुक्षि   हिं. कोख   कों. कूस

सं. ‘ क्ष् ’ > हिं. ‘ छ् ’ तथा कों. ‘ ख् ’

सं. नक्षत्र   हिं. नछत्र   कों. नखेत्र
सं. क्षार   हिं. छार   कों. खार

सं. ‘ क्ष् ’ > हिं. ‘ छ् ’ तथा कों. ‘ स् ’

सं. कक्षापुट   हिं. कछोटा   कों. कासाटो
सं. क्षुरिका   हिं. छुरी   कों. सुरी

सं. ‘ क्ष्म् ’ > हिं. ‘ छ् ’ तथा कों. ‘ क्ष् ’

स. लक्ष्मी   हिं. लछमी   कों. लक्षीम
सं. सूक्ष्म   हिं. सूछम   कों. सूक्षीम

ज्ञ् (संयुक्त व्यंजन) :

सं. ‘ ज्ञ् ’ > हिं. तथा कों. ‘ ज् ’

सं. अज्ञान   हिं. अजान   कों. अजाण
सं. प्रतिज्ञा   हिं. पैज   कों. पैज

सं. ‘ ज्ञ् ’ > हिं. ‘ ग्य् ’ तथा कों. ‘ ग् ’

सं. ज्ञान   हिं. ग्यान   कों. गिन्यान
सं. ज्ञानी   हिं. ग्यानी   कों. गिन्यानी

सं. ‘ ज्ञ् ’ > हिं. ‘ न् ’ तथा कों. ‘ ण् ’

सं. राज्ञी   हिं. रानी   कों. राणी
सं. आज्ञा   हिं. आन   कों. आण (=शपथ; क. कों.)

६) स्वर परिवर्तन से प्राप्त होने वाला साम्य तथा भेद

संस्कृत शब्दों के स्वरों में परिवर्तन होकर हिंदी तथा कोंकणी में अनेक तद्भव शब्द विकसित हुए हैं। अतः इन शब्दों में होने वाले स्वर परिवर्तन के संबंध में कुछ साधारण नियम संक्षेप में नीचे दिये हैं। ये नियम स्पष्ट होने के लिए नीचे संस्कृत, हिंदी और कोंकणी उपशीर्षक देकर उनके नीचे उन-उन भाषाओं के शब्द दिये हैं –

(१) संस्कृत शब्दों में दिखायी देने वाले मूल स्वर हिंदी तथा कोंकणी के तद्भव शब्दों में प्रायः ज्यों के त्यों उपलब्ध होते हैं, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
स्थल	थल	थळ	कदम्ब	कलंब	कलम
राज्ञी	रानी	राणी	ग्राम	गाँव	गांव
क्षेत्र	खेत	शेतं	ओष्ठ	ओंठ	ओंठ

परंतु हिंदी तथा कोंकणी में कुछ तद्भव शब्द ऐसे भी मिलते हैं जिनमें संस्कृत शब्दों में स्थित मूल स्वर परिवर्तित होते दिखायी देते हैं, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
वृश्चिक	बिच्छू	विंचू	चामर	चौंरी	चौंरी
पिष्ट	पीठी	पिठी	दीप	दिया	दिवो
अरिष्ट	रीठा	रिठो	कदली	केला	केळें

कभी-कभी यह स्वर परिवर्तन हिंदी तद्भव शब्दों में दिखायी देता है तो कोंकणी तद्भव शब्दों में नहीं दिखायी देता, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
नव	नौ	णव	त्रुटति	टूटता	तुटता
कुठार	कुल्हाडी	कुराड	आश्चर्य	अचरज	आच्छर्य

कभी-कभी यह स्वर परिवर्तन कोंकणी तद्भव शब्दों में दिखायी देता है तो हिंदी तद्भव शब्दों में नहीं दिखायी देता, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
कर्पूर	कपूर	कापूर	दश	दस	धा
पक्व	पका	पिको	कोकिल	कोइल	कोगूळ

(२) यह स्वर परिवर्तन कभी-कभी हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में भिन्न-भिन्न प्रकार से भी प्राप्त होता है, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
कुक्षि	कोख	कूस	शुण्डा	सूँड	सोंड
दर्वी	डौवा	दाय	कटुक	कडुआ	कोडू

उपर्युक्त संस्कृत ' कुक्षि ' तथा ' शुण्डा ' शब्दों का विकास हिंदी तथा कोंकणी में भिन्न-भिन्न प्रकार से हुआ है । सं. ' कुक्षि ' में प्राप्त ' उ ' का हिंदी में ' ओ ' तो सं. ' शुण्डा ' में प्राप्त ' उ ' का हिंदी में ' ऊ ' हुआ है । यह बात कोंकणी में बराबर उलटी दिखायी देती है । सं. ' कुक्षि ' में प्राप्त ' उ ' का कोंकणी में ' ऊ ' तो सं. ' शुण्डा ' में प्राप्त ' उ ' का कोंकणी में ' ओ ' हुआ है । सं. ' दर्वी , कटुक ' से विकसित हिं. ' डौवा, कडुआ ' तथा कों. ' दाय, कोडू ' में साम्य तो है ही नहीं ।

यहाँ एक और उदाहरण देकर यह बात स्पष्ट की जाती है, यथा : – सं ' कपाट ' > हिं. ' किवाड ' तथा कों. ' कवड ' । संस्कृत ' कपाट ' शब्द में स्थित ' क ' का ' अ ' हिंदी में ' इ ' रूप में प्राप्त है तो कोंकणी में ' अ ' रूप में ही रहा है; ' पा ' में स्थित ' आ ' का विकास हिंदी में नहीं हुआ है तो कोंकणी में ' अ ' रूप में हुआ है और ' ट ' में प्राप्त ' अ ' का विकास हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में नहीं हुआ है ।

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी में स्वर-परिवर्तन की दृष्टि से समानता होते हुए भी विविध प्रकार उपलब्ध होते हैं ।

(३) हिंदी पुल्लिंग तद्भव शब्दों के अन्त्य में जहाँ प्रायः ' आ ' का विकास दिखायी देता है वहाँ कोंकणी में पुल्लिग तद्भव शब्दों के अन्त्य में ' ओ ' का विकास दिखायी देता है, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
कलसः	कलसा	कळसो	शुष्कः	सूखा	सुको
पक्वः	पका	पिको	भ्रमरः	भौंरा	भोंवरो
अंगारः	अंगारा	इंगळो	अंगुष्ठः	अंगूठा	आंगठो

(४) हिंदी तद्भव शब्दों के अन्त्य में जहाँ केवल ' आ ' स्वर दिखायी देता है वहाँ कोंकणी में व्यंजन-युक्त भिन्न-भिन्न स्वर दिखायी देते हैं , यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
कटुक	कडुआ	कोडू	निम्ब	निबुआ	लिंबू
कच्छप	कछुआ	कासव	काकोल	कौआ	कावळो
अंकुर	अंखुआ	आंकरी	तल	तलुआ	तळवो

(५) हिंदी तद्भव शब्दों में जहाँ ' ई ' अथवा ' ई '- युक्त व्यंजन दिखायी देता है वहाँ कोंकणी तद्भव शब्दों में ' अ '- युक्त ' य् ' दिखायी देता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
जाती	जाई	जाय	नदी	नई	न्हंय
दधि	दही	धंय	यूथी	जुही	जूय

(६) हिंदी तद्भव शब्दों के अंत में जहाँ ' उ ' अथवा ' ऊ '- युक्त व्यंजन दिखायी देता है वहाँ कोंकणी तद्भव शब्दों में ' अ '- युक्त ' व् ' व्यंजन दिखायी देता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
साधु	साहु	साव	लाभ	लाहु	लाव
गोधूम	गेहूँ	गंव	काष्ठपादुका	खडाऊँ	खडाव

(७) संस्कृत शब्दों में प्राप्त एकाध व्यंजन का लोप होकर हिंदी तद्भव शब्दों में दो स्वर समीप आ जाते हैं (जिन्हें ' स्वरानुक्रम ' कहा जाता है, देखिए, पृ. १९), परंतु कोंकणी में प्रायः इस प्रकार दो स्वर एकत्र नहीं मिलते, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
कोकिल	कोइल	कोगूळ	अंकुर	अंखुआ	आंकुर
सूची	सूई	सूय	भ्रातृ	भाई	भाव
चिपिटक	चिउडा	चिवडो	गोस्वामी	गोसाईं	गोसाय
कच्छप	कछुआ	कासव	जाती	जाई	जाय
ननान्दपति	ननदोई	नणडावो	भगिनीपति	बहनोई	भावोजी

[यहाँ कोंकणी में ' भावोजी ' शब्द दिया है जो आजकल बहुत प्रचलित है। फिर भी ऐसा लगता है कि किसी एक समय ' भावोजी ' के बदले ' भै(भय)णावो ' शब्द कोंकणी में बहुत प्रचलित रहा होगा। संस्कृत ' ननान्दपति ' से ' नणडावो ' शब्द कोंकणी में विकसित है। इसी आधार पर संस्कृत ' भगिनीपति ' से ' भै(भय)णावो ' शब्द कोंकणी में विकसित होना अशक्य नहीं है। परंतु अभी तक यह शब्द उपलब्ध नहीं है।]

(८) संस्कृत शब्दों में प्राप्त एकाध व्यंजन का स्वर होकर समीप प्राप्त हुए दो स्वरों का विकास हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में ' ए, ऐ, ओ, औ ' स्वरों में दिखायी देता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
कदल	केला	केळें	त्रयोदश	तेरह	तेरा
प्रतिज्ञा	पैज	पैज	खदिर	खैर	खैर
मयूर	मोर	मोर	लवण	नोन(-चा)	लोण(-चें)

चतुर्दश	चौदह	चौदा	चतुर्थ	चौथा	चौथो

उपर्युक्त संस्कृत ' कदल ' शब्द के ' द ' का प्रथम ' य ' होता है। बाद में ' कइल ' होकर ' क ' का ' अ ' और उसके आगे का ' इ ' मिलकर ' ए ' होता है जो ' क् ' व्यंजन में मिलकर हिंदी का ' केला ' शब्द बनता है। कोंकणी में ' ल ' का ' ळ ' होकर ' केळें ' शब्द बनता है। संस्कृत में कदल शब्द नपुंसकलिंग है। कोंकणी में भी ' केळें ' शब्द नपुंसकलिंग है। हिंदी में नपुंसकलिंग नहीं है अतः इसका विकास पुल्लिग में हुआ है। संस्कृत ' त्रयोदश ' में ' त्रयो ' का ' तय ' होकर ' य ' के स्थान ' इ ' हुआ जिससे ' ते ' विकसित हुआ। शेष ' दश ' के ' द ' का ' र ' और ' श ' का ' ह ' होकर हिंदी में ' तेरह ' तथा कोंकणी में ' तेरा ' रूप विकसित हूआ। संस्कृत ' प्रतिज्ञा ' और ' खदिर ' में ' त् ' और ' द् ' का लोप होकर दोनों (अ+इ)स्वरों का ' ऐ ' रूप में विकास हुआ। संस्कृत ' मयूर ' शब्द में ' य् ' व्यंजन का लोप होकर दोनों (अ + ऊ) स्वरों का ' ओ ' में विकास हुआ है। संस्कृत ' लवण ' में तो ' व ' के ' अ ' का लोप और शेष ' व् ' का ' उ ' होकर दोनों (अ+उ) स्वर मिलकर ' ओ ' हुआ है। संस्कृत ' चतुर्दश ' ' चतुर्थ ' में ' त् ' व्यंजन के लोप और स्वरसंधि से ' औ ' विकसित है जिससे हिंदी में ' चौदह , चौथा ' तो कोंकणी में ' चौदा , चौथो ' रूप विकसित है।

कभी-कभी यह परिवर्तन केवल हिंदी शब्दों में ही दिखायी देता है तो कोंकणी शब्दों में दिखायी नहीं देता, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
चित्रकार	चितेरा	चितारी	कांस्यकार	कसेरा	कांसार
तादृश	तैसा	तसो	कीदृश	कैसा	कसो
अलवन	अलोना	अळणी	जलूका	जोंक	जळू
मातृष्वसा	मौसी	मावशी	भ्रातृजाया	भौजाई	भावज

कभी-कभी यह परिवर्तन केवल कोंकणी शब्दों में ही दिखायी देता है तो हिंदी शब्दों में दिखायी नहीं देता, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
अपयश	अपजस	अपेस	गृहस्थ	गिरही	गिरेस्त
प्रथम	पहला	पैलो	उपरि	ऊपर	वैर
नवनीत	लवनी	लोणी	बहुगुणम्	बहुगुना	भो(भ)गुणें

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में संस्कृत स्वरों का विकास विविध प्रकार से होता है जिसमें साम्य तथा वैषम्य दृग्गोचर होता है।

७) असंयुक्त व्यंजन परिवर्तन से प्राप्त होने वाला साम्य तथा भेद

संस्कृत शब्दों के असंयुक्त व्यंजनों में परिवर्तन होकर हिंदी तथा कोंकणी में अनेक तद्भव शब्द विकसित होते हैं। यह बात ठीक तरह से समझ में आने के लिए असंयुक्त व्यंजन परिवर्तन के संबंध में कुछ साधारण नियम संक्षेप में नीचे दिये जाते हैं –

(१) हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में आदि असंयुक्त व्यंजन प्रायः परिवर्तित नहीं होता, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
कोकिल	कोयल	कोगूळ	खर्जूर	खजूर	खाजूर
तादृश	तैसा	तसो	नासिका	नाक	नाख(क)
पुत्र	पूत	पूत	तैल	तेल	तेल
रात्रि	रात	रात	घोटक	घोडा	घोडो

परंतु हिंदी तथा कोंकणी में अपवाद के स्वरूप कई तद्भव शब्द ऐसे मिलते हैं जिनके आदि असंयुक्त व्यंजन में परिवर्तन भी दिखायी देता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
कासते	खाँसता	खांकता	खपुर	सुपारी	सुपारी
छोटिका	चुटकी	चुटकी	पाश	फाँस	फांस
नवनीत	लवनी	लोणी	षट्	छः	स

(२) संस्कृत शब्द के मध्य स्थित संयुक्त-असंयुक्त व्यंजन में होनेवाले परिवर्तन का प्रभाव कभी- कभी आदि व्यंजन पर होता है, जिससे आदि व्यंजन में परिवर्तन होता है। निम्नलिखित उदाहरणों में ऊष्म (श्, ष्, स्, ह्) व्यंजन के परिवर्तन के कारण अल्पप्राण आदि व्यंजन महाप्राण बन जाता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
गृह	घर	घर	दुहितृ	धीया	धूव
काष्ठपादुका	खडाऊँ	खडाव	महिषी	भैंस	म्ह(म्है)स

यहाँ कोंकणी ‘म्हस’ में ‘म्ह’ महाप्राण व्यंजन है (देखिए, पृ. ३२)।

परंतु मध्य स्थित संयुक्त व्यंजनों में से ऊष्म व्यंजन का लोप होने पर शेष व्यंजन अल्पप्राण से महाप्राण बन जाता है, ऐसी स्थिति में आदि व्यंजन अल्पप्राण ही बना रहता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
पिष्ट	पीठी	पीठ, पिठी	दंष्ट्रा	दाढ	दाढ
कर्षति	काढता	काढता	पश्चात्ताप	पछतावा	पछताप

ऐसा भी एक उदाहरण मिलता है, जिसमें 'ष्' का लोप होने पर हिंदी में शेष अल्पप्राण व्यंजन का परिवर्तन न होने के कारण आदि अल्पप्राण व्यंजन महाप्राण बनता है तो कोंकणी में शेष अल्पप्राण व्यंजन महाप्राण बनने से आदि अल्पप्राण व्यंजन अल्पप्राण ही रहता है, यथा –

सं. बाष्प हिं. भाप कों. वाफ

यहाँ कोंकणी 'वाफ' में 'वा' का महाप्राण होना था तो 'व्हा' हो जाता था।

कभी-कभी इसके विपरीत स्थिति भी दिखायी देती है। ऊष्म व्यंजन का परिवर्तन होने पर शेष व्यंजन हिंदी में महाप्राण हो तो आदि व्यंजन अल्पप्राण ही रहता है और कोंकणी में अल्पप्राण हो तो आदि व्यंजन महाप्राण बनता है, यथा –

सं. प्रस्तर हिं. पत्थर(पाथर) कों. फातो(त)र
सं. पृष्ठ हिं. पीठ कों. फाट

(३) संस्कृत शब्दों के मध्य में प्राप्त होने वाला ऊष्म व्यंजन हिंदी के कुछ शब्दों में लुप्त नहीं होता है तो कोंकणी के कुछ शब्दों में लुप्त होता है। ऐसी अवस्था में आदि अल्पप्राण व्यंजन हिंदी में अल्पप्राण होता है तो कोंकणी में महाप्राण होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
दश	दस	धा	बहुत	बहुताँ	भोव, भौ
दशम	दसवाँ	धावो	बहिर	बाहर	भायर

परंतु कोंकणी के जिस शब्द में ऊष्म व्यंजन दिखायी देता है वहाँ आदि व्यंजन महाप्राण नहीं होता, यथा –

सं. दशमी हिं. दसैं कों. दसम
सं. दृष्टि हिं. दीठ कों. दिश्ट

(४) संस्कृत शब्दों के मध्यस्थित असंयुक्त महाप्राण स्पर्श व्यंजन के परिवर्तन से हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में अंतर आता है। महाप्राण स्पर्श व्यंजनों में दो अंश होते हैं। एक अंश वर्गीय स्पर्श का रहता है तो दूसरा 'ह'कार का। इनमें से वर्गीय अंश लुप्त होता है और केवल 'ह्' शेष रह जाता है। इसके कारण हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में भिन्नता आ जाती है, यथा –

महाप्राण स्पर्श व्यंजन के स्थान होनेवाला 'ह्' हिंदी में जैसे के वैसे बना रहता है, जैसे :– सं. बधिर > हिं. बहरा; सं. दधि > हिं. दही; सं. भू > हिं. हो; सं. मुख > हिं. मुँह; सं. कथन > हिं. कहना; सं. अरघट्ट > हि. रहँट; सं. मेघ > हिं. मेह; सं. कफोणि > हिं. कुहनी; सं. वधू > हिं. बहू; आदि।

इस प्रकार के शब्दों में जब 'ह्' आता है तो हिंदी शब्दों के असंयुक्त आदि व्यंजन में

प्रायः कोई परिवर्तन नहीं होता है ।

(सूचना :– उपर्युक्त शब्दों में से ‘ भू , मुख, कथन, मेघ, कफोणि ’ से विकसित शब्द कोंकणी में उपलब्ध नहीं है ।)

परंतु इस प्रकार के कोंकणी शब्दों में ‘ ह् ’ का लोप होता है और साथ- साथ असंयुक्त आदि व्यंजन महाप्राण बनता है, जैसे :– सं. बधिर > कों. भे(भै)रो; सं. दधि > कों. धंय; सं. पृथुक > कों. फोव; सं. वधूवर > कों. व्होर, व्होवर; सं. वधूकुल्य > कों. व्हों(व्हं)कल; सं. वृद्ध > कों. व्हड ; सं. अरघट्ट > कों. ऱ्हा(रा)ट ; सं. मधु > कों. म्होंव, सं. मधुर > कों. म्होंवो ; आदि ।

कोंकणी के इन उदाहरणों में वर्गीय अंश के साथ-साथ ‘ ह् ’ अंश भी लुप्त हुआ है । इसके कारण असंयुक्त आदि व्यंजन महाप्राणत्व में बदल गया है । ‘ व्ह्, ऱ्ह् , म्ह् ’ को संयुक्त व्यंजन नहीं माना बल्कि ‘ व् , ऱ् , म् ’ के महाप्राण व्यंजन माना है (देखिए,पृ. ३९, ३५ , ३२)।

(सूचना :– इन शब्दों में से ‘ वधूवर, वधूकुल्य, मधु, मधुर ’ से विकसित शब्द हिंदी में नहीं है । संस्कृत के ‘ वृद्ध ’ शब्द से हिंदी ‘ बूढा ’ शब्द विकसित है जिसमें ‘ ह् ’ नहीं है । एवं ‘ बूढा ’ में ‘ ढ ’ महाप्राण होने के कारण असंयुक्त आदि व्यंजन में परिवर्तन नहीं हुआ है ।)

इस प्रकार मध्यस्थित महाप्राण स्पर्श व्यंजन के स्थान पर हिंदी में ‘ ह् ’ उपलब्ध होता है । परंतु कोंकणी में महाप्राण स्पर्श व्यंजन के स्थान पर आये ‘ ह् ’ तथा संस्कृत शब्दों में मूलतः प्राप्त ‘ ह् ’ के विविध प्रकार उपलब्ध होते हैं । इनका स्पष्टीकरण आगे किया है (देखिए, पृ. १०५ नियम १५) ।

(५) संस्कृत शब्दों में आदि प्राप्त असंयुक्त ‘ न् , म् , ल् , व् ’ व्यंजन हिंदी में असंयुक्त व्यंजन के रूप में तो कोंकणी में संयुक्त व्यंजन के रूप में परिवर्तित होते हैं । निम्नलिखित विवरण से यह बात स्पष्ट होती है –

संस्कृत शब्दों में जहाँ ‘ न ’ अक्षर के आगे ‘ ह् ’ होता है वहाँ कोंकणी में ‘ न् ’ तथा ‘ अ ’ के बीच अग्रिम ‘ ह् ’ प्राप्त होकर महाप्राण ‘ न्ह् ’ व्यंजन विकसित होता है, तो हिंदी में ‘ न् ’ तथा ‘ ह् ’ जैसे के वैसे बने रहते हैं । यथा –

सं. नहि हिं. नहीं कों. न्हय, न्हीं

परंतु संस्कृत के जिन शब्दों में ‘ ह् ’ नहीं होता वहाँ भी ‘ ह् ’ प्राप्त होकर कोंकणी में ‘ न्ह् ’ का विकास होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
नदी	नई(दी)	न्हंय	नापित	नाई	न्हावी
निद्रा	नींद	न्हीद	निवसन	-----	न्हेसण

साधारणत: यही प्रकार संस्कृत शब्दों में प्राप्त आदि असंयुक्त ' म् ' के संबंध में दिखायी देता है । ' म् ' के साथ के स्वर का लोप तथा ' म् ' तथा ' ह् ' का संयोग होकर कोंकणी में महाप्राण ' म्ह् ' व्यंजन विकसित होता है, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
महादेव	महादेव	म्हादेव	महार्घ	महँगा	म्हारग
महान्	महान	म्हान	मुहूर्त	महूरत	म्हूर्त

और जिन संस्कृत शब्दों में ' ह् ' नहीं होता, ऐसे शब्द जब कोंकणी में आते हैं तब उन शब्दों में ' ह् ' प्राप्त होकर ' म्ह् ' विकसित होता है, यथा –

सं. मधु हिं. मधु कों. म्होंव
सं. मधुर हिं. मधुर कों. म्होंवो

इसी प्रकार संस्कृत के जिन लकारादि शब्दों में ' ह् ' नहीं होता है कोंकणी में उन शब्दों में ' ह् ' प्राप्त होकर महाप्राण ' ल्ह् ' व्यंजन विकसित होता है, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
लाजा	लावा	ल्हाय	लघु	लघु	ल्हव
लोमन्	लोम	ल्हंव	लेह	लेई	ल्हेंव(–प)

इसी प्रकार संस्कृत शब्दों में जहाँ आदि ' व ' अक्षर के आगे ' ह ' होता है वहाँ कोंकणी में ' व् ' तथा ' अ ' के बीच अग्रिम ' ह् ' प्राप्त होकर महाप्राण ' व्ह् ' व्यंजन विकसित होता है, यथा –

सं. वहति हिं. बहता कों. व्हांवता

और जिन संस्कृत शब्दों में ' ह् ' नहीं होता, कोंकणी में उन शब्दों में ' ह् ' प्राप्त होकर ' व्ह् ' विकसित होता है, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
वधूवर	-----	व्होर,व्होवर	वधूकुल्य	-----	व्हो(व्हं)कल
वृद्ध	बूढा	व्हड	वधूजन	-----	व्हनी

(६) संस्कृत शब्दों के मध्य में आने वाला असंयुक्त ' क् ' व्यंजन कभी-कभी हिंदी में ' य् ' तो कोंकणी में भिन्न-भिन्न व्यंजनों में परिवर्तित होता है, अथवा लुप्त होता है , यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	
कोकिल	कोयल	कोगूळ	(हिं. में ' य् ' तो कों. में ' ग् ')
गायक	गवैया	गवय	(हिं. में ' य् ' तो कों. में ' य् ')
अंगिका	अंगिया	आंगलें	(हिं. में ' य् ' तो कों. में ' ल् ')
नारिकेल	नारियल	नार्ल (नाल्ल)	(हिं. में ' य् ' तो कों. में ' लोप ')

(७) ध्वनि-परिवर्तन में घोषीकरण का सिद्धान्त भी महत्वपूर्ण है। इसके अनुसार संस्कृत की अघोष अल्पप्राण ध्वनियाँ अपने वर्ग के सघोष अल्पप्राण ध्वनियों में परिवर्तित होती हैं। परंतु इसमें ' ट् ' की ' ड् ' होने की प्रवृत्ति हिंदी तथा कोंकणी में विशेष रूप से दिखायी देती है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
कीट	कीडा	किडो	कटुक	कडुआ	कोडू
घोटक	घोडा	घोडो	वट	बड	वड

परंतु उपर्युक्त टवर्गीय व्यंजनों से भिन्न वर्गीय व्यंजनों का परिवर्तन हिंदी शब्दों में जितना उपलब्ध होता है उतना कोंकणी शब्दों में उपलब्ध नहीं होता, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
कंकण	कंगन	कांकण	एकादश	ग्यारह	इकरा
शाक	साग	शाक			

परंतु निम्नलिखित उदाहरणों में कोंकणी में ' क् ' का ' ग् ' दिखायी देता है।

सं. सकल	हिं. सगला	कों. सगळो
सं. कंकाल	हिं. कंगाल	कों. कंगाल

(८) संस्कृत शब्दों में प्राप्त ' ण् ' हिंदी में ' न् ' तथा कोंकणी में ' ण् ' में परिवर्तित होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
अंगण	आंगन	आंगण	कंकण	कंगन	कांकण
चणक	चना	चणो	तृण	तिनका	तण

९) संस्कृत शब्दों में प्राप्त होने वाले असंयुक्त मध्य व्यंजन ' त् ' का हिंदी तथा कोंकणी में भिन्न-भिन्न प्रकार से विकास होता है। विशेषतः संस्कृत ' त् ' का हिंदी में ' य् ' होता है , यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	
जातिफल	जायफल	जायफळ	(हिं. में ' य् ' तथा कों. में ' य् ')
कृत	किया	केलो	(हिं. में ' य् ' तो कों. में ' ल् ')
कातर	कायर	कावरो	(हिं. में ' य् ' तो कों. में ' व् ')
घात	घाव	घाव	(हिं. में ' व् ' तथा कों. में ' व् ')

१०) संस्कृत शब्दों में प्राप्त ' न् ' हिंदी में ' न् ' तथा कोंकणी में ' ण् ' के रूप परिवर्तित होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
ननांदा	ननंद	नणंद	कथनिका	कहानी	काणी
ऊन	ऊना	उणो	नव	नौ	णव

(११) संस्कृत शब्दों में प्राप्त ' प् ' हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में ' व् ' में परिवर्तित होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
कपाट	किवाड	कवड	करपत्र	करवत	खरवत
गोपाल	ग्वाला	गवळी	सपाद	सवा	सवाय

परंतु कुछ उदाहरणों में ' प् ' का ' व् ' होने के बाद वह हिंदी में वृद्धिरूप ' औ ' तो कोंकणी में गुणरूप ' ओ ' में परिवर्तित होता है, यथा –

सं. कर्षपट्टिका हिं. कसौटी कों. कसोटी

परंतु कुछ उदाहरणों में यह बात भी दृष्टिगोचर होती है कि ' प् ' के स्थान हुए ' व् ' का जहाँ हिंदी में वृद्धिरूप ' औ ' होता है वहाँ कोंकणी में ' व् ' जैसे के वैसे बना रहता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
कपर्दिका	कौडी	कवडी	सपत्नी	सौत	सवत
करपत्र	करौत	खरवत			

(१२) ' म् ' सघोष अल्पप्राण अनुनासिक ओष्ठ्य व्यंजन है। कभी-कभी इस ' म् ' के अनुनासिक तथा ओष्ठ्य अंश पृथक् हो जाते हैं। इनमें से अनुनासिक अंश पिछले स्वर को सानुनासिक कर देता है, और ओष्ठ्य अंश ' व् ' में परिवर्तित होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
ग्राम	गाँव	गांव	आमलक	आँवला	आंवाळो
चामर	चँवर	चंवर	श्यामल	साँवला	सांवळो

परंतु ' म् ' का ' व् ' होने पर कभी-कभी ' व् ' व्यंजन ' उ ' स्वर का रूप धारण कर लेता है और वृद्धिरूप ' औ ' में परिवर्तित होता है। यह स्थिति हिंदी तथा कोंकणी दोनों में प्राप्त है, यथा –

सं. चामर हिं. चौंरी कों. चौंरी
सं. भ्रमर हिं. भौंरा कों. भौंरो
सं. वामन हिं. बौना कों. ———

कुछ उदाहरणों में यह बात भी दिखाई देती है कि ' म् ' के स्थान आये ' व् ' का हिंदी में वृद्धिरूप 'औ' होता है तो कोंकणी में 'व्' जैसे के वैसे ही बना रहता है यथा –

सं. भ्रमति	हिं. भौता	कों. भं/भोंवता
सं. भ्रमर	हिं. भौंरा	कों. भं/भोंवरो

(१३) संस्कृत शब्द में प्राप्त असंयुक्त 'ल्' हिंदी में 'ल्' तो कोंकणी में 'ळ्' रूप में परिवर्तित होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
अलवण	अलोना	अळणी	कोकिल	कोयल	कोगूळ
वेला	बेला	वेळ	चालनी	छलनी	चाळण

(१४) संस्कृत शब्द के मध्य स्थित 'व्' व्यंजन 'उ' स्वर में परिवर्तित होकर गुणरूप 'ओ' रूप धारण करता है, यथा –

सं. लवण	हिं. लोन	कों. लोण(चें)	सं. अव+पू	हिं. ओप	कों. ओप

कुछ शब्दों में 'व्' हिंदी में 'औ' तो कोंकणी में 'ओ' रूप में परिवर्तित होता है, यथा –

सं. अवनत	हिं. औनत	कों. ओणवो
सं. नवमी	हिं. नौमी	कों. नोम

कुछ शब्दों में 'व्' हिंदी में 'औ' तो कोंकणी में 'व्' रूप में दिखायी देता है, यथा –

सं. नव	हिं. नौ	कों. णव
सं. लवंग	हिं. लौंग	कों. लवंग

(१५) हिंदी तथा कोंकणी में महाप्राण स्पर्श व्यंजन के स्थान पर 'ह्' होने की बात पूर्व स्पष्ट की है (देखिए, नियम ४)। हिंदी में यह प्रवृत्ति अनेक शब्दों में दिखायी देती है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	संस्कृत	हिंदी	संस्कृत	हिंदी
कथनिका	कहानी	अरघट्ट	रहँट	कुम्भकार	कुम्हार
गौधार	गोह	गोधूम	गेहूँ	गर्दभ	गदहा

इन उदाहरणों में संस्कृत शब्दों में स्थित महाप्राण स्पर्श व्यंजन के स्थान पर हिंदी में 'ह्' हुआ है; परंतु ऐसे शब्दों में 'ह्' होने के उपरांत कोंकणी में एक भिन्न स्थिति दिखायी देती है, यथा –

संस्कृत	कोंकणी	संस्कृत	कोंकणी	संस्कृत	कोंकणी
कथनिका	काणी	अरघट्ट	राट	कुम्भकार	कुमार
गौधार	गार	गोधूम	गंव	गर्दभ	गाढव

यहाँ कोंकणी के शब्दों में हिंदी की तरह ' ह् ' नहीं दिखायी देता । इसका कारण यह है कि ' ह् ' के उच्चारण में मृदुत्व प्राप्त होकर ' ह् ' का ' अ ' में परिवर्तन होता है । यह ' अ ' तथा इसके समीप स्थित ' स्वर ' का संधि होकर ' आ होता है, यथा –

सं. कथनिका > कहनी > कअणी > कों. काणी; सं. अरघट्ट > अरहट्ट > रहट >रअट > कों. राट; सं. कुम्भकार > कुम्हकार > कुम्हआर > कुमआर > कों. कुमार; सं. गौधार > गौहार > गाहार > गहार > गआर > कों. गार; आदि ।

यही स्थिति कोंकणी के उन शब्दों में प्राप्त होती है जिन संस्कृत शब्दों में मूलतः ' ह् ' दिखायी देता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
ग्रहण	गिरहन	गिराण	द्विप्रहर	दोपहर	दनपार
प्रहर	पहर	पार	फलाहार	-----	फळार(फराळ)

कभी-कभी ' ह् ' व्यंजन ' अ ' स्वर में परिवर्तित होने के बाद भी पूर्वस्थित स्वर दीर्घ नहीं होता, यथाः– गोधूम > कों. गंव । शायद यहाँ ' गोधूम ' के ' ओ ' लोप हुआ होगा जिससे ' गंव ' रूप विकसित होता है । यही लोप-स्थिति सं. ' गौधार ' से कों. ' गार ' शब्द विकसित होते समय दिखायी देती है ।

कभी-कभी ' ह् ' लुप्त होते समय पूर्वस्थित व्यंजन को महाप्राण बना देता है, यथाः– सं. गोधूम > कों. घंव इस शब्द के लिए देखिए, पृ. ६६); सं. बधिर > कों. भेरो; सं. गर्दभ > कों. गाढव; सं. दश > कों. धा; आदि ।

कोंकणी के एक शब्द में तो ये तीनों स्थितियाँ दिखायी देती हैं, जैसेः– सं. बहिर् > हिं. बाहर तथा कों. भायर । कोंकणी के ' भायर ' शब्द में ' ह् ' का लोप, पूर्वस्थित ' अ ' स्वर का दीर्घ तथा ' ब ' का महाप्राणत्व दिखायी देता है । इसी प्रकार ' बधिर ' में ' ध् ' का ' ह् ' , पूर्वस्थित ' ब ' का महाप्राणत्व तथा ' अ ' और ' इ ' में गुणरूप संधि होकर ' भेरो ' रूप निष्पन्न होता है । ' गर्दभ ' में तो ' र्द ' का ' र् ' के कारण ' ड् ' , ' र् ' के लोप से पूर्व स्वर दीर्घ और ' भ ' का ब > व में रूपान्तर होकर ' गाढव ' निष्पन्न है ।

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी के उपर्युक्त शब्दों में अन्तर दिखायी देता है ।

(१६) हिंदी में ऊष्म (श्, ष्, स्) व्यंजन के स्थान पर अनेक शब्दों में ' ह् ' व्यंजन प्राप्त होता है, यथाः–

' श् ' के स्थान पर ' ह् ' : सं. केशरी > हिं. केहरी; सं. दश > हिं. दह(स); सं. द्वादश > हिं. बारह; सं. त्रयोदश > हिं. तेरह ।

' ष् ' के स्थान पर ' ह् ' : सं. कृष्ण > हिं. कान्ह; सं. पाषाण >हिं. पाहन ।

' स ' के स्थान पर ' ह् ' : सं. स्नान>हिं. नहाना; सं. एकसप्तत्ति > हिं. इकहत्तर; सं. त्रिसप्तति > हिं. ' तिहत्तर '; सं. केसरी > हिं. केहरी; आदि ।

उपर्युक्त संस्कृत ' केशरी, कृष्ण, पाषाण, केसरी ' शब्दों का विकसित रूप कोंकणी में उपलब्ध नहीं है । संस्कृत ' स्नान ' शब्द में ' ह् ' प्राप्त होकर कोंकणी में ' न्हाण ' शब्द विकसित है । शेष संस्कृत ' दश, द्वादश, त्रयोदश, एकसप्तति तथा त्रिसप्तति शब्दों में प्राप्त ' श् ' तथा ' स् ' के स्थान ' ह् ' होता है । यह ' ह् ' मृदु होकर 'अ' में परिवर्तित होता है और पूर्व स्थित स्वर में मिलता है । इससे पूर्वस्थित स्वर दीर्घ होता है, यथा :– सं. दश > दह > धअ > कों. धा; सं. द्वादश > बारह > बारअ > कों. बारा; सं. त्रयोदश > तेरह > तेरअ > कों. तेरा; सं. एकसप्तति > एकहत्तर > एक्यहत्तर > कों. एक्यात्तर; सं. त्रिसप्तति > त्रिहत्तर > त्र्यहत्तर > त्र्यअत्तर > कों. त्र्यात्तर ।

इस प्रकार हिंदी में ' चौदह, बहत्तर ' आदि शब्दों में ' ह ' उपलब्ध है तो कोंकणी में ' चौदा , ब्यात्तर ' आदि शब्दों ' ह ' ' अ(आ) ' में परिवर्तित हुआ दिखायी देता है ।

इस प्रकार संस्कृत शब्दों में प्राप्त ऊष्म व्यंजन के स्थान पर ' हिंदी में ' ह ' होता है तो कोंकणी में ' ह् ' का ' अ(=आ) ' स्वर में परिवर्तन होता है जिससे हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में अन्तर दिखायी देता है ।

(१७) संस्कृत शब्दों में प्राप्त होने वाला असंयुक्त व्यंजन हिंदी में कभी-कभी लुप्त होता है और शेष स्वर में परिवर्तन दिखायी देता है तो कोंकणी में उसी व्यंजन के स्थान पर या तो वही व्यंजन दिखायी देता है अथवा भिन्न व्यंजन दिखायी देता है, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	
अंकुर	अंखुआ	आंकुर	(हिं. में ' र् ' लोप तथा ' आ ' स्वर तो कों. में वही ' र् ' व्यंजन)
भातृ	भाई	भाव	(हिं. में ' त् ' लोप तथा ' ऋ ' का ' ई ' स्वर तो कों. में ' त् ' का ' व् ' तथा ' ऋ ' का 'अ')
कोकिल	कोइल	कोगूळ	(हिं. में ' क् ' लोप तो कों. में ' क् ' का 'ग्')
चिपिटक	चिउडा	चिवडो	(' इ ' लोप तथा शेष ' प् ' का हिं. में ' उ ' तो कों में ' व ')

(१८) संस्कृत शब्दों के अन्त्य ' ई ' स्वर के पहले जो व्यंजन होता है वह व्यंजन प्रायः हिंदी तथा कोंकणी में लुप्त होता है और शेष ' ई ' स्वर हिंदी में उसी रूप में रहता है तो कोंकणी में वह ' य ' में परिवर्तित होता है, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
नदी	नई	न्हंय	जाती	जाई	जाय
गोस्वामी	गोसाई	गोसाय	सूची	सूई	सूय

८) संयुक्त व्यंजन परिवर्तन से प्राप्त होने वाला साम्य तथा भेद

संस्कृत शब्दों में आदि अथवा मध्य में आने वाले संयुक्त व्यंजनों में से हिंदी तथा कोंकणी में प्रायः एक ही व्यंजन रह जाता है। इस संबंध में कुछ प्रवृत्तियाँ नीचे दी हैं –

(१) **स्पर्श + स्पर्श** : इस स्थिति में हिंदी तथा कोंकणी में प्रायः पहले व्यंजन का लोप होता है, साथ ही संयुक्त व्यंजन का पूर्व-स्वर दीर्घ होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
मुद्ग	मूँग	मूग	नप्तृ	नाती	नातू
दुग्ध	दूध	दूद(ध)	सप्त	सात	सात

परंतु कुछ शब्दों में पूर्व स्वर दीर्घ नहीं होता है, यथा –

चिक्कण	चिकना	चिकण	उच्चैस्	उंचाई(व)	उंचाव
कच्चर	कचरा	कचरो	उड्डीयति	उडता	उडता

कुछ शब्दों में, हिंदी में दीर्घ तो कोंकणी में ह्रस्व होता है, यथा –

पित्तल	पीतल	पितळ	भित्ति	भीत	भिंत
पिप्पल	पीपल	पिंपळ	रिक्त	रीता	रितो

कुछ शब्दों में ऐसा होता है कि स्पर्श + स्पर्श व्यंजनों में स्थित पूर्व स्पर्श व्यंजन द्वितीय स्पर्श व्यंजन का रूप धारण करता है, फिर भी व्यंजन संयुक्त ही बना रहता है। ऐसी अवस्था में संयुक्त व्यंजन का पूर्व स्वर दीर्घ नहीं होता है, यथा –

सं. सप्तति	हिं. सत्तर	कों. सत्तर
सं. सप्तविंशति	हिं. सत्ताईस	कों. सत्तावीस

(२) **स्पर्श + अनुनासिक** : इस स्थिति में अनुनासिक का लोप होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
अग्नि	आग	आग	सपत्नी	सौत	सवत
आत्मन्	आप	आप	तीक्ष्ण	तीखा	तीखा

(कोंकणी में 'आप' शब्द है, जैसे :– 'आप पाप भटा माथ्यार.'।)

संयुक्त व्यंजन 'ज्ञ् (ज् + ञ्)' के हिंदी तथा कोंकणी में विविध प्रकार प्राप्त हैं, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	
आज्ञा	आग्याँ	------	(हिं. में 'ग्य्')
संज्ञा	संग्या	सन्या(सन्न)	(हिं. में 'ग्य्' तो कों. में 'न्य्(न्न)')
ज्ञान	ग्यान	गिन्यान	(हिं. में. 'ग्य् तो कों. में 'ग् न्')
यज्ञोपवीत	जनेऊ	जानवें	(हिं. में 'न्' तथा कों. में. 'न्')
राज्ञी	रानी	राणी	(हिं. में 'न्' तो कों. में 'ण्')

आज्ञा	आन	आण	(हिं. में ' न् ' तो कों. में ' ण् ')
प्रतिज्ञा	पइज(पैज)	पैज	(हिं. में ' ज ' तथा कों. में ' ज ')

(उपर्युक्त कोंकणी विभाग में दिया ' आण ' शब्द का अर्थ है ' शपथ ' । यह कुमठा आदि कर्नाटक प्रांतों में बोलचाल में प्रयुक्त है ।)

(३) स्पर्श + अन्तस्थ : इनमें स्पर्श चाहे पहले हो या बाद को अन्तस्थ व्यंजन का लोप होता है, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
माणिक्य	मानिक	माणिक	व्याघ्र	बाघ	वाग
दुर्बल	दुबला	दुबळो	पक्व	पका	पिको

परंतु संयुक्त संख्यावाचक शब्दों में स्पर्श + अन्तस्थ व्यंजनों में प्रायः स्पर्श व्यंजन का लोप होता है, यथा –

सं. द्वादश	हिं. बारह	कों. बारह
सं. द्वाविंशति	हिं. बाईस	कों. बावीस

इन उदाहरणों में स्पर्श व्यंजन अन्तस्थ व्यंजन को स्पर्श व्यंजन में परिवर्तित करते हुए दिखायी देता है ।

असंयुक्त संख्यावाचक शब्द में स्पर्श+अन्तस्थ व्यंजनों में प्रायः हिंदी में अन्तस्थ व्यंजन का लोप तो कोंकणी में स्पर्श तथा अन्तस्थ व्यंजनों से दो शब्द विकसित होते हैं, यथा –

सं. द्वौ	हिं. दो	कों. दोन, बे

(४) स्पर्श + ऊष्म : इन व्यंजनों में स्पर्श चाहे पहले हो या बाद को, ऊष्म व्यंजन का प्रायः लोप हो जाता है, साथ ही स्पर्श व्यंजन अल्पप्राण हो तो महाप्राण हो जाता है –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
पक्ष	पाँख	पांख	मस्तक	माथा	माथें (तें)
अष्ट	आठ	आठ(ट)	पश्चात्ताप	पछतावा	पछताप

परंतु कोंकणी के कुछ शब्दों में शेष स्पर्श व्यंजन महाप्राण नहीं होता है, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
बुभुक्षा	भूख	भूक	भिक्षा	भीख	भीक
शिक्षते	सीखता	शिकता	लिक्षा	लीख	लीक

स्पर्श + ऊष्म परिस्थिति में, कोंकणी के कुछ शब्दों में स्पर्श व्यंजन का लोप होता है और शेष ऊष्म व्यंजन भिन्न ऊष्म व्यंजन में बदल जाता है, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
कुक्षि	कोख	कूस	इक्षु	ईख	ऊस
क्षेत्र	खेत	शेत	मक्षिका	मक्खी	माशी, मूस

(५) **अनुनासिक + स्पर्श** : इन व्यंजनों में अनुनासिक व्यंजन का लोप हो जाता है और पूर्व स्वर अनुनासिक होता है –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
जङ्घा	जाँघ	जांघ	मञ्चक	माँचा	मांचो
कण्टक	काँटा	कांटो	बन्धन	बाँधना	बांधप

(६) **अनुनासिक + अन्तस्थ** : व्यंजनों में चाहे अनुनासिक व्यंजन अन्तस्थ व्यंजन के प्रथम हो या अनन्तर, अन्तस्थ व्यंजन का लोप होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
अरण्य	अरन	रान	ताम्र	ताँबा	तांबें
कर्म	काम	काम	शाल्मलि	सेमल	सांवर

(संस्कृत 'शाल्मलि' में दिखायी देने वाले 'ल्म' के 'ल्' के लोप के उपरान्त 'म्' का 'व' होकर कोंकणी में 'सांवर' शब्द निष्पन्न है।)

कुछ शब्दों में अन्तस्थ व्यंजन का लोप होने पर शेष अनुनासिक व्यंजन भिन्न अनुनासिक व्यंजन में बदल जाता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
चूर्ण	चूना	चुनो	पर्ण	पान	पान
पूर्णिमा	पूनों	पुनव	कर्ण	कान	कान

(६) **अन्तस्थ + अन्तस्थ** : इस परिस्थिति में हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में किसी एक अन्तस्थ का लोप होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
उपर्यन्त	उपरांत	उपरांत	धैर्य	धीर	धीर
बिल्व	बेल	बेल	कल्य	कल	काल

कभी-कभी दोनों अन्तस्थ व्यंजनं में से एक अन्तस्थ व्यंजन का परिवर्तन होकर दोनों शेष रहते हैं, यथा –

सं. चौर्य	हिं. चोरी	कों. चोरी
सं. पर्व	हिं. परब(बो.)	कों. परब

यहाँ 'चौर्य' के 'य' का 'ई' हुआ है; और 'पर्व' के 'व' का 'ब' हुआ है।

कभी-कभी एक अन्तस्थ व्यंजन लुप्त होने के बाद दूसरा अन्तस्थ व्यंजन भिन्न व्यंजन में बदल जाता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
आर्य	आजा	आजो	चर्वति	चाबता	चाब(व)ता
शय्या	सेज	सेज	आर्यिका	आजी	आजी

(८) ऊष्म + अनुनासिक : इन व्यंजनों में ऊष्म व्यंजन का लोप होता है –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
श्मशान	मसान	मसण	श्मश्रु	मूँछ	मिशी
ब्राह्मण	बामन	बामण	युष्मद्	तुम्ह	तुम

परंतु कुछ शब्दों में अनुनासिक व्यंजन का लोप हो जाता है, यथा –

सं. विस्मरति	हिं. बिसरता	कों. विसरता
सं. कुष्मांड	हिं. कोंहडा	कों. ---

कभी-कभी ऊष्म तथा अनुनासिक दोनों व्यंजनों का लोप नहीं होता है, ऐसी अवस्था में उनमें व्यंजन विपर्यय होता है, यथा –

सं. चिह्न	हिं. चिन्ह	कों. चिन्ह
सं. स्नान	हिं. नहाना	कों. न्हाण

कभी-कभी ऊष्म तथा अनुनासिक दोनों व्यंजन हिंदी शब्दों में किसी न किसी रूप में ठहर जाते हैं, परंतु कोंकणी शब्दों में ऊष्म व्यंजन प्रायः लुप्त होता है, यथा :–

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	
कुष्मांड	कुम्हडा	कुंवाळो	(कों. 'कुंवाळो' में 'ष्' का लोप तथा 'म्' का 'व्')
ब्राह्मण	बाम्हन	बामण	(कों. 'बामण' में 'ह' का लोप)
तृष्णा	त्रिसना	तान	(कों. 'तान' में 'ष्' का लोप)

(९) ऊष्म + अन्तस्थ : इस स्थिति में अन्तस्थ व्यजन का लोप होता है, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
मनुष्य	मानुस	मनीस	अमावस्या	अमावस	उमास
निश्रेणी	निसेनी	निसण	श्मश्रु	मूँछ	मिशी
गोस्वामी	गोसाई	गोसाय	स्वामी	साईं	सामी

कभी - कभी ऊष्म व्यंजन का लोप होता है, यथा –

सं. जिह्वा	हिं. जीभ	कों. जीब
सं. गोजिह्वा	हिं. गोभी	कों. कोबी

ऐसा भी एक उदाहरण मिलता है जिसमें ऊष्म तथा अन्तस्थ दोनों व्यंजनों का लोप होता है, यथा –

सं. परश्वः	हिं. परौं	कों. परां

अथवा यहाँ ऐसा भी माना जा सकता है कि संस्कृत 'परश्वः' के 'श्' लोप के उपरान्त हिंदी में 'व्' का 'उ' होकर वृद्धिरूप 'औ' में बदल हुआ है तो कोंकणी में 'श्' और 'व्' का लोप हुआ है ।

कोंकणी में भी ' परवां ' शब्द है जिसमें ' व् ' सुनायी देता है। हिंदी में ' परसों ' शब्द भी है जिसमें ' स् ' सुनायी देता है। संस्कृत ' परश्वः ' से निष्पन्न हिंदी ' परसों ' में ' व् (अन्तस्थ व्यंजन) ' का लोप हुआ है तो कोंकणी ' परवां ' में ' स् (ऊष्म व्यंजन) ' का लोप हुआ है।

कभी-कभी ऊष्म तथा अन्तस्थ दोनों व्यंजन कुछ परिवर्तन के साथ रह जाते हैं, यथा :–

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
आश्रय	आसरा	आसरो	आदर्श	आदरस	हारसो
श्लोक	शिलोक	शिळोक	वर्ष	बरस	वरस

(१०) संस्कृत शब्दों में प्राप्त संयुक्त व्यंजन कभी-कभी हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में संयुक्त व्यंजन के रूप से ही प्राप्त होता है, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
क्षत्रिय	खत्री	खेत्रीय	नक्षत्र	नछत्र	नखेत्र
पत्रावलि	पत्तल	पत्रावळ	सप्तति	सत्तर	सत्तर

यह प्रवृत्ति कभी-कभी केवल हिंदी शब्दों में ही दिखायी देती है, यथा –

शर्कर	शक्कर	साकर	लड्डुक	लड्डू	लाडू
मृत्तिका	मिट्टी	माती	प्रस्तर	पत्थर	फातोर

परंतु कभी - कभी यह प्रवृत्ति केवल कोंकणी शब्दों में ही दिखायी देती है –

जन्म	जनम	जल्म	एकार्ध	एकाध	एकाद्रो
अर्द्ध	आधा	अर्दो	गृहस्थ	गिरही	गिरेस्त

(११) संस्कृत के कुछ शब्दों में दो से अधिक व्यंजनों का संयोग होता है। इन संयुक्त व्यंजनों में स्पर्श, अनुनासिक, अन्तस्थ तथा ऊष्म व्यंजनों में से तीन या चार व्यंजन होते हैं। ऐसी परिस्थिति में स्पर्श व्यंजन शेष रहता है और अन्य व्यंजन लुप्त होते हैं, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
अन्त्र	आँत	आंत	उष्ट्र	ऊंट	ऊंट
तीक्ष्ण	तीखा	तीख	भस्त्रा	भाता	भातो

कभी-कभी स्पर्श व्यंजन से भिन्न व्यंजन शेष स्पर्श व्यंजन के समान बन जाते हैं, यथा –

सं. भ्राष्ट्रिका हिं. भट्टी कों. भट्टी

यदि स्पर्श व्यंजन न हो तो ऊष्म व्यंजन शेष रहता है, यथा –

सं. पार्श्व हिं.पास कों. पासी(शी)

(१२) संस्कृत शब्दों में प्राप्त होने वाला संयुक्त व्यंजन स्वरागम के कारण हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में असंयुक्त व्यंजनों के रूप में प्राप्त होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
श्री	सिरी	शि(सि)री	श्लोक	शिलोक	शिळोक
पंक्ति	पंगत	पंगत	भक्त	भगत	भगत
आदर्शिका	आरसी	हारशी	वर्ष	बरस	वरस(वर्स)

उपर्युक्त प्रकार से स्वरागम होते समय अन्तस्थ ' र ' कभी-कभी ' ड् ' में परिवर्तित होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
अन्त्र	अँतडी	आंतडी	अम्रातक	अमडा	आमाडो
ताम्र	तामडा	तामडो	गन्त्री	गाडी	गाडी
गृध्र	(गीध)	गिदाड(गीद)			

(हिंदी ' गीध ' तथा कोंकणी ' गीद ' शब्द में ' ड् ' प्राप्त नहीं है ।)

९) विशेष परिवर्तन

ध्वनि-संबंधी विशेष परिवर्तन में मुख्य तीन प्रकार आते हैं, यथाः– आगम, लोप तथा विपर्यय । ये तीनों प्रकार स्वरों तथा व्यंजनों में उपलब्ध हैं । इससे स्वरों में (अ) स्वरागम, (आ) स्वर-लोप और (इ) स्वर-विपर्यय तथा व्यंजनों में (ई) व्यंजनागम, (उ) व्यंजन-लोप और (ऊ) व्यंजन-विपर्यय प्राप्त होते हैं । नीचे इनका क्रमशः विवरण प्रस्तुत किया है ।

अ. स्वरागम

स्वरागम चार प्रकार के उपलब्ध होते हैं, यथा :– (१) आदि स्वरागम, (२) मध्य स्वरागम, (३) अन्त्य स्वरागम तथा (४) विविध प्रकार के स्वरागम ।

(१) आदि स्वरागम

परिनिष्ठित हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में आदि स्वरागम के उदाहरण बहुत ही कम मिलते हैं, यथा :– हिं. स्त्री > इस्त्री, पंगु > अपंग; आदि.।कों. स्त्री > अस्तुरी, पंगु > अपंगूल; आदि ।

(२) मध्य स्वरागम

मध्य स्वरागम हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में तीन प्रकार से उपलब्ध होता है, यथा –

पहला प्रकार –

इस प्रकार में मध्य स्वरागम हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में प्राप्त होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
आश्रय	आसरा	आसरो	ताम्र	तामडा	तांब(म)डो
श्लोक	शिलोक	शिळोक	निम्न	निमाना[११]	निमाणो

दूसरा प्रकार –

इस प्रकार में मध्य स्वरागम केवल हिंदी शब्दों में ही दिखायी देता है, परंतु कोंकणी शब्दों में नहीं दिखायी देता, यथा –

आश्चर्य	अचरज	आच्छर्य	मुद्रिका	मुँदरी	मुदी
त्रिषष्टि	तिरसठ	त्रेंसठ	स्नान	नहाना	न्हाण

तीसरा प्रकार –

इस प्रकार में मध्य स्वरागम केवल कोंकणी शब्दों में ही दिखाई देता है, परंतु हिंदी शब्दों में नहीं दिखाई देता, यथा –

सर्प	साँप	सोरोप	धरित्री	धर्ती	धर्तरी
महार्घ	महँगा	म्हारग	धूम्र	धुआँ(वाँ)	धुँवर

(३) अन्त्य स्वरागम –

हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में अन्त्य स्वरागम भी उपलब्ध है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
प्रावृष्	पावस	पावस	शरद्	शरद	शरद
गौर्	गोरू	गोरूं	निम्ब	निबुआ	(लिंबू)
मेढ्र	(मेंढा)	मेंढरो	धूम्र	(धुआँ)	धुंवर

(ऊपर कोष्ठक में दिए शब्दों में अन्त्य स्वरागम प्राप्त नहीं है।)

(४) विविध प्रकार के स्वरागम –

इस प्रकार में हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में एक ही स्वर भिन्न-भिन्न स्थान पर आता है, अथवा भिन्न-भिन्न स्वर एक ही स्थान पर आते हैं; या तो भिन्न-भिन्न स्वर भिन्न-भिन्न स्थान पर आते हैं। इससे हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में अन्तर आ जाता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	
लक्ष्मी	लछमी (ई)	लक्षीम(ई)	एकही 'ई' स्वर भिन्न- भिन्न स्थान पर
अंकुर	अंखुआ(आ)	आंकरी(ई)	भिन्न-स्वर एक ही स्थान पर
महार्घ	महँगा(अ)	म्हारग(अ)	एक ही 'अ' स्वर भिन्न-भिन्न स्थान पर
अपूर्वता	अपूरबता(अ)	अपुर्बाय(आ)	भिन्न-भिन्न स्वर भिन्न-भिन्न स्थान पर
सर्प	साँप(आ)	सोरोप(ओ)	भिन्न-भिन्न स्वर भिन्न-भिन्न स्थान पर
महार्घ	महँगा(आ)	म्हारग(अ)	भिन्न - भिन्न स्वर एक ही स्थान पर
खर्जू	खुजली(अ)	खरोज(ओ)	भिन्न-भिन्न स्वर एक ही स्थान पर
त्रिषष्टि	तिरसठ(अ)	त्रेसश्ट(ए)	भिन्न - भिन्न स्वर एक ही स्थान पर

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी विभागों में अनेक शब्द दिये हैं। इन शब्दों में कुछ अक्षर रेखांकित किये हैं। हर शब्द के सामने जो कोष्ठक है उनमें स्वर दिये हैं। इससे रेखांकित अक्षरों के स्थान पर प्राप्त होने वाला स्वर और उसका स्थान बिलकुल स्पष्ट होता है।

आ. स्वर-लोप

स्वरागम की तरह स्वर-लोप के भी चार प्रकार उपलब्ध हैं - (१) आदि स्वर-लोप, (२) मध्य स्वर–लोप, (३) अन्त्य स्वर-लोप तथा (४) विविध प्रकार के स्वर - लोप ।

(१) आदि स्वर-लोप

आदि स्वर-लोप हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में तीन प्रकार का उपलब्ध होता है, यथा –

पहला प्रकार –

इस प्रकार में आदि स्वर-लोप हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में प्राप्त होता है । इसमें शब्दों के आदि स्थित स्वर का लोप होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
अभ्यंतर	भीतर	भितर	अपि	भी	बी
अरघट्ट	रहट	रा(न्हा)ट	अरिष्ट	रीठा	रिठो

दूसरा प्रकार –

इस प्रकार में आदि स्वर-लोप केवल हिंदी शब्दों में प्राप्त होता है, परंतु कोंकणी शब्दों में प्राप्त नहीं होता, यथा –

अमावस्या	मावस	अमास	अतसी •	तीसी	---
एरण्ड	रेंड	एरंड(एंडो)	एकादश	ग्यारह	इकरा

तीसरा प्रकार –

इस प्रकार में आदि स्वर-लोप केवल कोंकणी शब्दों में ही प्राप्त होता है, परंतु हिंदी शब्दों में प्राप्त नहीं होता, यथा –

उदुम्बर	उडंबर	रुमड	अरण्य	अरन	रान
आयाति	आता	येता	आहरति	---	हाडता

(२) मध्य स्वर-लोप

मध्य स्वर-लोप हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में तीन प्रकार का उपलब्ध होता है, यथा –

पहला प्रकार –

इस प्रकार में मध्य स्वर - लोप हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में उपलब्ध होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
वसति	बस्ती	वस्ती	धरित्री	धर्ती	धर्तरी
चिपिटक	चिउडा	चिवडो	त्वरित	तूर्त	तूर्त

दूसरा प्रकार –

इस प्रकार में मध्य स्वर-लोप केवल हिंदी शब्दों में ही दिखायी देता है, परंतु कोंकणी

शब्दों में नहीं दीखता है, यथा –

गोपाल	ग्वाला	गवळी	पत्रावलि	पत्तल	पत्रावळ
पिपासा	प्यास	——	हरिद्रा	हल्दी	हळद

तीसरा प्रकार –

इस प्रकार में मध्य स्वर-लोप केवल कोंकणी शब्दों में ही दिखायी देता है, परंतु हिंदी शब्दों में नहीं दिखायी देता, यथा –

नारिकेल	नारियल	नारळ(नाल्ल)	व्यवहार	बेवहार	वेव्हार
महार्घ	महँगा	म्हारग	सप्तपर्ण	छतिवन	सांतोण

(३) अन्त्य स्वर-लोप

यद्यपि ' संज्ञा ' शीर्षक अध्याय में कहने के अनुसार हिंदी तथा कोंकणी में सभी शब्द स्वरान्त माने गये हैं फिर भी शब्दों के अन्त्य स्वर का लोप होना साधारण बात है। यह लोप केवल उच्चरित शब्दों में ही प्राप्त है लेकिन लिखित शब्दों में प्राप्त नहीं है, यथा –

उच्चरित रूप		लिखित रूप	
हिंदी	**कोंकणी**	**हिंदी**	**कोंकणी**
चल्	चल्	चल	चल
घर्	घर्	घर	घर
नियम्	नियम्	नियम	नियम
साधारण्	साधारण्	साधारण	साधारण
हाथ्	हात्	हाथ	हात

इस नियम के कई अपवाद भी हैं। अन्त्य ' अ ' के पहले यदि संयुक्त व्यंजन हो तो अन्त्य ' अ ' का उच्चारण हिंदी तथा कोंकणी में स्पष्ट होता है, यथा :– कर्तव्य, आरंभ, दीर्घ, आर्य ' आदि। इस प्रकार के अन्य नियम ' हिंदी व्याकरण ' तथा ' कोंकणी नादशास्त्र ' में स्पष्ट किये हैं [१२]।

अन्त्य स्वर-लोप की दृष्टि से निम्नलिखित मंतव्य के संबंध में विचार करना उचित होगा।

संस्कृत से विकसित हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में व्यंजनसहित अन्त्य स्वर का लोप होता है। ऐसे शब्दों को अन्त्य स्वर - लोप के उदाहरण मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
कथनिका	कहानी	काणी	मुद्रिका	मुँदरी	मुदी
भ्रातृजाया	भावज	भावज	अशीति	अस्सी	ऐंशी
बलीवर्द	बैल	बैल	आश्रय	आसरा	आसरो

उपर्युक्त उदाहरणों में प्राप्त अन्त्य ' का, का, या, ति, र्द, य ' अक्षरों के अन्त्य ' आ, इ, अ, इ ' का लोप हुआ है, साथ - साथ व्यंजनों का भी लोप हुआ है ।

एवं इन्हें अन्त्य स्वर - लोप के उदाहरण माना जाएँ ।

(४) विविध प्रकार के स्वर-लोप –

इस प्रकार में हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में भिन्न-भिन्न स्थान पर भिन्न-भिन्न प्रकार से स्वर-लोप हो जाते हैं, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	
आदित्यवार	इतवार	आयतार	(हिं. में. ' आ ' का लोप तो कों. में 'इ' का लोप)
अंगप्रोंछ	अंगोछा	आंगसो	(हिं. में. ' ग ' के ' अ ' का लोप तो कों. में ' प्र ' के ' ओ ' का लोप)
मातृष्वसृ	मौसी	मावशी	(हिं. में ' व ' के ' अ ' का लोप तो कों. में ' तृ ' के ' ऋ ' का लोप)
भ्रातृजाया	भौजी	भावज	(हिं. में. ' जा, या ' के ' आ ' लोप तो कों. में ' या ' के ' आ ' लोप)
अवमूर्द्धा	औंधा	उमथो	(हिं. में ' व ' के ' अ ' तथा ' मू ' के ' ऊ ' का लोप तो कों. में ' अ ' तथा ' व ' के ' अ ' का लोप और ' मू ' के ' ऊ ' का ' अ '; अथवा ' व ' के ' अ ' तथा ' मू ' के ' ऊ ' में स्वर विपर्यय)

इ. स्वर-विपर्यय

हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में स्वर-विपर्यय चार प्रकार का उपलब्ध होता है –

पहला प्रकार –

इस प्रकार में स्वर-विपर्यय हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में प्राप्त होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
इक्षु	ऊँख	ऊस	चंचु	चोंच	तों(चों)च
बंध्या	बाँझ	वांज	वृश्चिक	बिच्छू	विंचू

दूसरा प्रकार –

इस प्रकार में स्वर - विपर्यय केवल हिंदी शब्दों में ही दिखायी देता है तो कोंकणी शब्दों में दिखायी नहीं देता, यथा –

अंगुली	उंगली	आंगूळ	एकल	अकेला	एकलो(टो)
महार्घ	महँगा	म्हारग	हरिण	हिरन	हरण

तीसरा प्रकार –

इस प्रकार में स्वर-विपर्यय केवल कोंकणी शब्दों में ही दिखाई देता है तो हिंदी शब्दों में दिखायी नहीं देता, यथा –

कर्पास	कपास	कापूस	परीक्षा	परख	पारख
अपूर्व	अपूरब	अप्रूब	शर्करा	शक्कर	साक(ख)र

चौथा प्रकार –

इस प्रकार में एक स्वर दूसरे स्वर को प्रभावित कर उसे या तो परिवर्तित कर देता है या दोनों मिलकर तीसरा रूप धारण करते हैं। इस प्रकार के शब्द हिंदी तथा कोंकणी में उपलब्ध होते हैं, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	
बलीवर्द	बैल	बैल	(सं. 'बलीवर्द' प्रा. में 'बइल्ल' बनता है। बाद में उसका 'बैल' होता है। अर्थात 'बलीवर्द' के 'इ' का 'ल्' के पूर्व विपर्यय तथा उसका परिवर्तन)
फल्गु	फोकट	फुकट	('उ' स्वर का विपर्यय तथा हिंदी में 'उ' स्वर दूसरे स्वर को प्रभावित करता है)
पंचमी	पांचै	पंचम	(हिंदी में ही स्वर-विपर्यय तथा 'ऐ' में परिवर्तन)

इस प्रकार के कुछ शब्द केवल हिंदी में या तो केवल कोंकणी में उपलब्ध होते हैं, जो दृष्टव्य हैं, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
हरिण	हिरन	-----	मधु	-----	म्होंव
संधि	सेंध	-----	मृदु	-----	मोव
पशु	पोहे	-----	पृथुक्	-----	फोव

ई. व्यंजनागम

हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में व्यंजनागम के प्रमुख दो भेद हैं – (१) 'आदि व्यंजनागम' और (२) 'मध्य व्यंजनागम'। इस के सिवा तीसरा एक प्रकार उपलब्ध है। इसमें हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों के अन्त्य में स्वरयुक्त व्यंजन का आगम दिखायी देता है। इसलिए इसे (३) 'स्वरसहित अन्त्य व्यंजनागम' से पहचानना उचित होगा। नीचे इनका क्रमशः सोदाहरण स्पष्टीकरण दिया है –

(१) आदि व्यंजनागम

हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में आदि व्यंजनागम तीन प्रकार का उपलब्ध होता है, यथा –

पहला प्रकार –

इस प्रकार में आदि व्यंजनागम हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में प्राप्त होता है, यथा–

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
अत्र	यहाँ	हांगा,हंय	ऋण	रिन	रीण
अहं	हौं	हांव	अस्थि	हड्डी	हाड

दूसरा प्रकार –

इस प्रकार में आदि व्यंजनागम केवल हिंदी शब्दों में ही दिखायी देता है, परंतु कोंकणी शब्दों में नहीं दिखायी देता, यथा –

अस्मद्	हम	आमी	अस्ति	है	आसा
अवनत	नवना	ओणवो	ऋक्ष	रीछ	–––

तीसरा प्रकार –

इस प्रकार में आदि व्यंजनागम केवल कोंकणी शब्दों में ही दिखायी देता है, परंतु हिंदी शब्दों में नहीं दिखायी देता, यथा –

आदर्श	आदरस	हारसो	उपरि	ऊपर	वयर, वैर
ऊधस्	औडी	होंट	अंगार	अंगारा	विंगळो[११]

(२) मध्य व्यंजनागम

मध्य व्यंजनागम भी हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में तीन प्रकार का उपलब्ध होता है,यथा –

पहला प्रकार –

इस प्रकार में मध्य व्यंजनागम हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में प्राप्त होता है, यथा–

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
शाप	सराप (श्राप)	सराप	कु ठार	कुल्हाडी	कुन्हाड
अक्षोट	अखरोट	आखरोट	कील	किल्ली	किल्ली

दूसरा प्रकार –

इस प्रकार में मध्य व्यंजनागम केवल हिंदी शब्दों में ही दिखायी देता है, परंतु कोंकणी शब्दों में नहीं दिखायी देता, यथा -

लशुन	लहसून	लसूण	कुठार	कुल्हाडी	कुराड
षट्	छह	स			

तीसरा प्रकार –

इस प्रकार में मध्य व्यंजनागम केवल कोंकणी शब्दों में ही दिखायी देता है, परंतु हिंदी शब्दों में नहीं दिखायी देता, यथा –

अद्य	आज	आयज	नदी	नई	न्हंय
लाजा	लावा	ल्हाय	काच	काँच	कंवची

(३) स्वरसहित अन्त्य व्यंजनागम

हिंदी तथा कोंकणी में कुछ तद्भव शब्दों के अन्त्य में स्वरसहित व्यंजनागम की प्रवृत्ति दिखायी देती है, यथा –

मंच	मचान	मचाण	अंध	आंधरा	आंधळो
वापी	बावली	–––	कोन	–––	कोनसो

उ. व्यंजन-लोप

व्यंजनागम की तरह हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में व्यंजन-लोप भी प्राप्त हैं। व्यंजन-लोप के पाँच प्रकार उपलब्ध है, यथा :– (१) आदि व्यंजन-लोप, (२) मध्य व्यंजन - लोप, (३) अन्त्य व्यंजन-लोप, (४) स्वरसहित अन्त्य व्यंजन-लोप और (५) विविध प्रकार के व्यंजन-लोप।

(१) आदि व्यंजन-लोप

हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में असंयुक्त और संयुक्त आदि व्यंजन-लोप के कारण दो प्रकार होते हैं, जैसे –

पहला प्रकार –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
वक्षस्थल	छाती	छाती	बुभूक्षा	भूख	भूख(क)
वृक्ष	रूख	रूख	शिथिल	ढीला	धी(ढी)ल
बभ्रु	भूरा	–––––	कपोल	–––––	पोलो

उपर्युक्त उदाहरणों में क्रमशः आदि ' व, बु, व्, शि, ब, क ' व्यंजनों का लोप हुआ है। साथ-साथ इनके ' स्वरों (' व् ' छोडकर)' का भी लोप हुआ है। इसलिए इसे स्वर-सहित आदि व्यंजन-लोप माना जा सकता है। ' वृक्ष ' शब्द में केवल असंयुक्त आदि व्यंजन ' व् ' का लोप हुआ है। वहाँ ' ऋ ' का ' रू ' हुआ है।

दूसरा प्रकार –

द्वादश	बारा	बारा	स्थल	थळ	थळ
स्कंभ	खंभा	खांब	श्मश्रु	मूँछ	मिशी

उपर्युक्त उदाहरणों में आदि संयुक्त व्यंजनों में से प्रथम होनेवाले ' द्, स्, स्, श् ' व्यंजनों का लोप हुआ है।

कभी-कभी आदि संयुक्त व्यंजन में प्रथम व्यंजन का लोप न होकर द्वितीय व्यंजन का लोप होता है, यथा –

क्रोश	कोस	कोस	क्षीर	खीर	खीर
ज्वलति	जलता	जळता	स्वर	सुर	सु(सू)र

इस प्रकार की प्रवृत्ति हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में बहुत उपलब्ध होती है जो ' संयुक्त व्यंजन का विकास ' उपशीर्षक में स्पष्ट की है (देखिए, पृ. ८१)।

(२) मध्य व्यंजन-लोप

मध्य व्यंजन-लोप हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में तीन प्रकार से उपलब्ध होता है, यथा –

पहला प्रकार –

इस प्रकार में मध्य व्यंजन-लोप हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में प्राप्त होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
दुग्ध	दूध	दूद(ध)	मुद्ग	मूँग	मूग
नासिका	नाक	नाख	हस्त	हाथ	हात

दूसरा प्रकार –

इस प्रकार में मध्य व्यंजन-लोप केवल हिंदी शब्दों में ही दिखायी देता है, परंतु कोंकणी शब्दों में नहीं दिखायी देता, यथा –

एकार्ध	एकाध	एकाद्रो	धरित्री	धर्ती	धर्तरी
मेढ्र	मेंढा	मेंढरो	चिंच	चिआँ	चींच

तीसरा प्रकार –

इसमें मध्य व्यंजन-लोप केवल कोंकणी शब्दों में ही दिखायी देता है, परंतु हिंदी शब्दों में नहीं दिखायी देता, यथा –

अपयश	अपजस	अपेश	परश्व	परसों	परां
अमावास्या	अमावस	उमास	आदर्श	आदरस	हारसो

(३) अन्त्य व्यंजन-लोप

इस प्रकार में संस्कृत से निष्पन्न हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में अन्त्य व्यंजन का लोप दिखायी देता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
कर्मन्	काम	काम	त्रिंशत्	तीस	तीस
जन्मन्	जनम	जल्म	चत्वाशिंत्	चालीस	चाळीस

(४) स्वर-सहित अन्त्य व्यंजन-लोप

संस्कृत शब्दों में दिखायी देनेवाला स्वर-सहित अन्त्य व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में लुप्त होता है, यथा –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
वृश्चिक	बिच्छू	विंचू	अशीति	अस्सी	ऐंशी
वक्षस्थल	छाती	छाती	चत्वारि	चौ	चों

(५) विविध प्रकार के व्यंजन-लोप

इस प्रकार में हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में भिन्न - भिन्न स्थान पर व्यंजन - लोप होता है जिससे हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में अन्तर प्राप्त होता है, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	
जलूका	जौंक	जळू	(हिं. में ' ल ' का लोप तो कों. में ' क ' का लोप)
आदित्यवार	इतवार	आयतार	(हिं. में ' आद्, य् ' का लोप तो कों. में ' द्, य्, व् ' का लोप)
एकचत्वारिंशत्	इकतालीस	एकेचाळीस	(हिं. में. ' च्, व्, अनुस्वार ' और ' ' त् ' का लोप तो कों. में ' त्व्, अनुस्वार ' और ' त् ' का लोप)
गोधूम	गेहूँ	गंव	(हिं. में. ' म ' का लोप तो कों. में ' धू ' का लोप)
गौधार	गोह	गार	(हिं. में. ' र ' का लोप तो कों. में ' ध ' का लोप)
गृहस्थ	गिरही	गिरेस्त	(हिं. में. ' स्थ ' का लोप तो कों. में. ' ह ' का लोप)

ऊ. व्यंजन-विपर्यय

व्यंजन-विपर्यय हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में तीन प्रकार का उपलब्ध होता है, यथा –

पहला प्रकार –

इस प्रकार में व्यंजन - विपर्यय हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में प्राप्त होता है, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
कुठार	कुल्हाडी	कुराड	लघुक	हलका	हलको
स्नान	नहाना	न्हाण	चिह्न	चिन्ह	चिन्ह(चिन्न)

संस्कृत ' कुठार ' शब्द में ' ठ् ' का ' ढ् ' होने पर ' ढ् ' और ' र् ' में विपर्यय होकर ' कुराढ ' शब्द विकसित हुआ। इसके अनन्तर ' ढ ' के महाप्राण अंश ने ' र ' को प्रभावित किया तब शेष व्यंजन (ड्) अल्पप्राण बना जिससे 'कुन्हाड' शब्द विकसित हुआ। प्राचीन कोंकणी में इसका व्यवहार होता होगा। आज यह शब्द कोंकणी में ' कुराड ' रूप में लिखा जाता है। हिंदी में ' र् ' का ' ल् ' होकर ' कुल्हाडा ' और इससे लघुतादर्शक ' कुल्हाडी ' शब्द विकसित हुआ।

दूसरा प्रकार –

इस प्रकार में व्यंजन-विपर्यय केवल हिंदी शब्दों में ही दिखायी देता है, परंतु कोंकणी शब्दों में नहीं दिखायी देता, यथा –

करोटी	कटोरी	करटी कट्टी	कुष्मांड	कुम्हडा	कुवांळो
खर्जू	खुजली	खरोज	ब्राह्मण	ब्राम्हण	बामण

तीसरा प्रकार –

इस प्रकार में व्यंजन-विपर्यय केवल कोंकणी शब्दों में ही दिखायी देता है, परंतु हिंदी शब्दों में नहीं दिखायी देता, यथा –

अलग्न	अलग	आगळो	शूक	सिंका	कूस
उदुम्बर	उडंबर	रूमड	पुच्छ	पूँछ	शेंपूट, शेपटी

(१०) अकारण अनुनासिकता

ध्वनि परिवर्तन में अनुनासिकता का महत्वपूर्ण स्थान है। उच्चारण सुविधा के लिए कुछ लोग निरनुनासिक ध्वनियों को अनुनासिक बना देते हैं।

हिंदी तथा कोंकणी में अनुनासिक स्वरों के कुछ उदाहरण ऐसे मिलते हैं जो अकारण (उच्चारण–सुविधा के लिए) अनुनासिक हो गए हैं। इनके तत्सम रूपों में कोई अनुनासिक ध्वनि नहीं पायी जाती, यथाः–सं. हसति>हिं. हँसता, कों. हांसता आदि। इनमें संस्कृत ' हसति ' में अनुनासिक ध्वनि नहीं है फिर भी हिंदी ' हँसता ' तथा कोंकणी ' हांसता ' में अनुनासिक ध्वनि विकसित हुई है। इसे अकारण अनुनासिकता कहा जा सकता है।

अकारण अनुनासिकता के संबंध में हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में तीन प्रकार होते हैं, यथा –

पहला प्रकार :

हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में अकारण अनुनासिकता –

संस्कृत	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	हिंदी	कोंकणी
काच	काँच	कांच, कंवची	उच्च	ऊँचा	उंच
ओष्ठ	ओंठ	ओंठ	उष्ट्र	ऊँट	उंट

दूसरा प्रकार :

केवल हिंदी तद्भव शब्दों में अकारण अनुनासिकता –

इष्टका	ईंट	ई(वी)ट	काष्ठपादुका	खडाऊँ	खडाव
सर्प	साँप	सोरोप	जलूका	जोंक	जळू

तीसरा प्रकार –

केवल कोंकणी तद्भव शब्दों में अकारण अनुनासिकता –

अशीति	अस्सी	ऐंशीं	वापी	बावली	बांय
पिप्पल	पीपल	पिंपळ	मौक्तिक	मोती	मोतीं

(११) अकारण निरनुनासिकता

संस्कृत से निष्पन्न हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में जिस प्रकार अकारण अनुनासिकता दिखायी देती है उसी प्रकार अकारण (उच्चारण सुविधा के लिए) निरनुनासिकता भी दृष्टिगोचर होती है। इसमें संस्कृत शब्दों में दिखायी देने वाली अनुनासिक ध्वनि हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में लुप्त होती है, यथा :– सं. गन्त्री >हिं. गाडी, कों. गाडी। इनमें संस्कृत 'गन्त्री' शब्द में अनुनासिक ध्वनि है फिर भी हिंदी 'गाडी' तथा कोंकणी 'गाडी' में अनुनासिक ध्वनि लुप्त हुई है। इसे अकारण निरनुनासिकता कहा जा सकता है।

अकारण निरनुनासिकता के संबंध में भी हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में तीन प्रकार होते हैं, यथा –

पहला प्रकार –

हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में अकारण निरनुनासिकता –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	**हिंदी**	**कोंकणी**
अभ्यन्तर	भीतर	भितर	त्रिंशत्	तीस	तीस
कांस्यकार	कसेरा	कासार	विंशति	बीस	वीस

दूसरा प्रकार –

केवल हिंदी तद्भव शब्दों में अकारण निरनुनासिकता –

सेमन्तिका	सेवती	शेंवतें	निम्ब	निबू	लिंबू
ननान्द	ननद	नणंद	कदलं	केला	केळें

तीसरा प्रकार –

केवल कोंकणी तद्भव शब्दों में अकारण निरनुनासिकता –

त्रयस्त्रिशत्	तैंतीस	तेत्तीस	प्रोञ्छति	पोंछता	पुसता
अंगारशकटी	अंगीठी	आगटी	चंद्रज्योत्स्ना	चाँदनी	चान्ने

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में साम्य और वैषम्य प्राप्त होता है।

१२) विदेशी शब्दों में परिवर्तन

हिंदी तथा कोंकणी शब्दसंग्रहों में विदेशी शब्दों का भी योगदान है । परंतु भाषा की ऐतिहासिक नजर में तत्सम शब्दों की चर्चा अनावश्यक होती है । तद्भव रूप में उपलब्ध होने वाले शब्दों की चर्चा भाषा के इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है । अतः नीचे कुछ विदेशी शब्दों का परिचय संक्षेप में दिखाने का यत्न किया है ।

(अ) फारसी-अरबी शब्द

i) स्वर-परिवर्तन –

	फारसी-अरबी	**हिंदी**	**कोंकणी**
‘ अ ’ > हिं. तथा कों. ‘ अ ’			
	फुरसत्	फुरसत	फुर्सत
	मुहर	मुहर	मोहोर(म्होर)
‘ अ ’ > हिं. तथा कों. ‘ इ ’			
	कनारह	किनारा	किनारो
	कल्अह	किला	किल्लो
‘ अ ’ > हिं. ‘ अ ’ तथा कों. ‘ आ ’			
	जादूगर	जादूगर	जादूगार
	जानवर	जानवर	जनावर
‘ अ ’ > हिं. तथा कों. ‘ ओ ’			
	तअल्लुकह्	तालुका	तालुको
	इशारह्	इशारा	इशारो
‘ अ ’ > हिं. ‘ अ ’ तथा कों. ‘ आ ’			
	जादूगर	जादूगर	जादूगार
	जानवर	जानवर	जनावर
‘ अ ’ > हिं. ‘ अ ’ तथा कों. ‘ इ ’			
	फर्याद	फरियाद	फिर्याद
‘ अ ’ >हिं. ‘ अ ’ तथा कों. ‘ ई ’			
	कम	कम	कमी
	खंजर	खंजर	खंजीर
‘ अ ’ > हिं. ‘ अ ’ तथा कों. ‘ ए ’			
	शहनाई	शहनाई	शेनाय
	शत्रंजी	शतरंजी	शेंदरी

‘ अ ’ > हिं. ‘ अ ’ तथा कों. ‘ ओ ’

कमीस	कमीज	खोमीस
मुहर	मुहर	मोहोर

‘ अ ’ > हिं. ‘ ऐ ’ तथा कों. ‘ अ ’

तय्यार	तैयार	तयार
तय्यारी	तैयारी	तयारी

‘ आ ’ > हिं. तथा कों. ‘ आ ’

खातिर	खातिर	खातीर
जाहिर	जाहिर	जाहीर

‘ आ ’ > हिं. ‘ आ ’ तथा कों. ‘ अ ’

जानवर	जानवर	जनावर
बादाम	बादाम	बदाम

‘ आ ’ > हिं. ‘ आ ’ तथा कों. ‘ इ ’

खजानह्	खजाना	खजिनो

‘ आ ’ > हिं. ‘ आ ’ तथा कों. ‘ ओ ’

हिसाब	हिसाब	हिशोब

‘ इ ’ > हिं. तथा कों. ‘ अ ’

इत्र	अतर	अत्तर
इत्रदान	अतरदान	अत्तरदाणी

‘ इ ’ > हिं. तथा कों. ‘ इ ’

इज्जत	इज्जत	इज्जत
इमारत	इमारत	इमारत

‘ इ ’ > हिं. ‘ इ ’ तथा कों. ‘ अ ’

दाखिल	दाखिल	दाखल
वारिस	वारिस	वारस

‘ इ ’ > हिं. ‘ इ ’ तथा कों. ‘ ई ’

खातिर	खातिर	खातीर
जाहिर	जाहिर	जाहीर

‘ इ ’ > हिं. ‘ इ ’ तथा कों. ‘ ए ’

आखिर	आखिर	अखेर

‘ ई ’ > हिं. तथा कों. ‘ ई ’

कुर्सी	कुर्सी	खुर्ची
कार्रवाई	कार्रवाई	कारवाई

‘ ई ’ > हिं. ‘ इ ’ तथा कों. ‘ ए ’

तबीयत	तबियत	तब्येत

‘ ई ’ > हिं. ‘ ई ’ तथा कों. ‘ इ ’

किंमत	कीमत	किंमत

‘ ई ’ > हिं. ‘ ई ’ तथा कों. ‘ ए ’

उम्मीद	उम्मीद	उमेद

‘ उ ’ > हिं. तथा कों. ‘ अ ’

गुवाह	गवाह	गवाय
चुगुली	चुगली	चुगली

‘ उ ’ > हिं. तथा कों. ‘ इ ’

जुराफ	जिराफ	जिराफ

‘ उ ’ > हिं. तथा कों. ‘ उ ’

चुगुली	चुगली	चुगली
कुर्सी	कुर्सी	खुर्ची

‘ उ ’ > हिं. ‘ उ ’ तथा कों. ‘ ऊ ’

कारकुन	कारकुन	कारकून
चाबुक	चाबुक	चाबूक

‘ उ ’ > हिं. ‘ उ ’ तथा कों. ‘ ओ ’

मुहर	मुहर	म्होर
मुहरम	मुहर्रम	म्होरम

‘ उ ’ > हिं. ‘ ऊ ’ तथा कों ‘ उ ’

दुकान	दूकान	दुकान
दुकानदार	दूकानदार	दुकानदार

‘ ऊ ’ > हिं. तथा कों. ‘ ऊ ’

कबूल	कबूल	कबूल
कबूतर	कबूतर	कबूतर

‘ ऊ ’ > हिं. ‘ ऊ ’ तथा कों. ‘ उ ’

तूफान	तूफान	तुफान

	दूरबीन	दूरबीन	दुर्बीण
‘ ए ’ > हिं. ‘ ए ’ तथा कों. ‘ इ ’			
	बेचारह्	बेचारा	बिचारो
‘ औ ’ > हिं. ‘ औ ’ तथा कों. ‘ ओ ’			
	नौकर	नौकर	नोकर
	नौबत	नौबत	नोबत

ii) व्यंजन–परिवर्तन :

‘ क् ’ > हिं. ‘ क् ’ तथा कों. ‘ ख् ’			
	कुर्सी	कुर्सी	खुर्ची
‘ ग् ’ > हिं. ‘ ग् ’ तथा कों. ‘ क् ’			
	फारिग	फारिग	फारिक
‘ च् ’ > हिं. ‘ च् ’ तथा कों. ‘ ज् ’			
	तबलची	तबलची	तबलजी
‘ ज् ’ > हिं. ‘ ज् ’ तथा कों. ‘ द् ’			
	कागज	कागज	कागद
	नजर	नजर	नदर
‘ त् ’ > हिं. ‘ त् ’ तथा कों. ‘ द् ’			
	ताकत	ताकत	ताकद
	शत्रंजी	शतरंजी	शेंदरी
‘ द्’ > हिं. ‘ द् ’ तथा कों. ‘ त् ’			
	पसंद	पसंद	पसंत
	मदद	मदद	मदत
‘ न् ’ > हिं. ‘ न् ’ तथा कों. ‘ ण् ’			
	तरानह्	तराना	तराणो
	नजरानह्	नजराना	नद(ज)राणो
‘ फ् ’ > हिं. ‘ फ् ’ तथा कों. ‘ प् ’			
	फौलाद	फौलाद	पोलाद
‘ ब ’ > हिं. ‘ ब् ’ तथा कों. ‘ प्(ब्) ’			
	खूब	खूब	खूप(ब)

‘ श् ’ > हिं. ‘ श् ’ तथा कों. ‘ स् ’

तलाश	तलाश	तलास
कुश्ती	कुश्ती	कुस्ती

‘ स् ’ > हिं. ‘ स् ’ तथा कों. ‘ श् ’

नसीब	नसीब	नशीब
हिसाब	हिसाब	हिशो(शे)ब

‘ ह्(:)’ > हिं. ‘ आ ’ तथा कों. ‘ ओ ’

इशारह्	इशारा	इशारो
कनारह्	किनारा	किनारो

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त होने वाले फारसी -अरबी शब्दों के स्वरों तथा व्यंजनों में विविध प्रकार का परिवर्तन होता है ।

(उपर्युक्त फारसी-अरबी शब्द ‘ गवेषणा (पत्रिका) ’, वर्ष ११, अंक २२, ई. स. १९७३ से उद्धृत हैं ।)

(आ) अंग्रेजी शब्द

नीचे हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त होने वाले कुछ अंग्रेजी शब्द दिये हैं –

हिंदी	कोंकणी	हिंदी	कोंकणी
अक्तूबर	आक्टोबर, ओतुंब्र	डाक्टर	डाक्टर, दोतोर
अपील	अपील	डिगरी	डिगरी
अफसर	ऑ(आ)फिसर	थर्मामिटर	थर्मामिटर
आर्ट	आर्ट	दर्जन	डझन, दू(डू)ज
इंच	इंच	दिसंबर	डिसेंबर, देझेंब्र
एजंट	एजंट	नंबर	नंबर
एजेंसी	एजेन्सी	निब	नीब
ऐक्ट	एक्ट	नोट	नोट
कलट्टर	कलेक्टर	पंप	पंप
कंपनी	कंपनी	पार्टी	पार्टी
गिलास	ग्लास, गलास	पास	पास
गैस	गॅस	फरलांग	फर्लांग
चाकलेट	चॉकलेट	फिनैल	फिनेल
जज	जज	फीस	फी
जनेवरी	जानेवरी, जानेर	बटन	बटन
जून	जून, जुन	बिगुल	बिगुल

जुलाई	जुलय, जुलाय	बोट	बोट
टन	टन	मसीन	मशीन
टिकट	तिकिट	मिनट	मिनीट
हाईस्कूल	हायस्कूल	मेंबर	मेंबर
हाकी	हॉकी	होटल	हॉटिल
फरवरी	फेब्रुवरी, फेब्रेर	मार्च	मार्च, मार्स
सितंबर	सप्टेंबर, सेतेंब्र	नवंबर	नोव्हेंबर, नोव्हेंब्र

उपर्युक्त कोंकणी विभाग में दिए ' ओतुंब्र, जानेर, जुलाय, फेब्रेर, सेतेंब्र, दोतोर ' आदि शब्द पुर्तगाली उच्चारण के द्वारा प्राप्त हैं। परंतु इस प्रकार का उच्चारण अब कम होता चला जा रहा है।

इ) पुर्तगाली शब्द

नीचे हिंदी तथा कोंकणी में उपलब्ध कुछ पुर्तगाली शब्द दिये हैं –

हिंदी	कोंकणी	हिंदी	कोंकणी
अनन्नास	अनस	आल्पीन	आल्पीन
अल्मारी	आल्मार	इस्त्री	इस्त्री
काजू	काजू	बाल्टी	बालदी, बाल्दी
क्रिस्तान	क्रिस्तांव	बिसकुट	बिस्कुट
परात	परात	बुताम	बुतांव
चाबी	चावी	बोतल	बोतल
तंबाकू	तंबाकू	कप्तान	कॅप्टन
तौलिया	तुवालो	काज	काज
नीलम	लिलांव	पादरी	पाद्री
पाव	पाव	बपतिस्मा	बाप्तिस्म
पिस्तौल	पिस्तोल	मिस्त्री	मिस्त्री

डा. धीरेंद्र वर्मा के अनुसार हिंदी में पुर्तगाली शब्दों की संख्या अधिक नहीं है। उनके कथनानुसार पुर्तगाली शब्दों का इतनी संख्या में भी हिंदी में पाया जाना आश्चर्यजनक है [१४]। परंतु कोंकणी में पुर्तुगाली शब्द हिंदी की अपेक्षा अधिक है। इसका कारण यह है कि पुर्तगाली लोगों का गोवा प्रदेश पर अधिक समय तक अधिकार था। नीचे कोंकणी में प्राप्त कुछ पुर्तगाली शब्द दिये हैं –

' आरमसांब (= रंग आदि देकर शोभा बढाना), ऑक्ल (= चष्मा, ऐनक), कदेल (= कुर्सी), काझार (= शादी), काशोत (= संदूक), कांतार (= गाना), कुझनेर (= रसोइया), केस्तांव (= झगडा), कोमेस (= शुरू), तोर्राद (= तुरंत क्रुद्ध होनेवाला), दिरेक्तोर (= मुख्य, डायरेक्टर), दुयेंत (= बीमार), दोब्राद (= दुगुना), पागामेंत

(= वेतन), पाय-मांय (= बाप-माँ = माँ-बाप), पिरदेर (= नष्ट होना), पोश (= हक्क, फामील (= कुटुंब), फार्मास (= औषधि दुकान), मिनेर (= खान का मालिक), मिश्तूर (= मिश्र), मुजा (= वाद्य), येप्रेंगाद (= सर्व्हंट), रकाद (= संदेश), लात = (डिब्बा), साल (= बडा कमरा), सिनाल (= चिह्न), सुसेग (= आराम), सेर्त (= निश्चित), बल्कांव (= बरामदे में बैठकर गप्पा हाँकने के लिए लकडी का किया हुआ बेंच)' आदि ।

ये उपर्युक्त पुर्तगाली शब्द ' आमची भास - सातवें पुस्तक ' से लिये हैं ।

१३) स्वराघात का इतिहास

स्वराघात के दो प्रकार होते हैं । एक स्वराघात तो वह है जिसमें आवाज का सुर ऊँचा या नीचा किया जाता है जिसे ' संगीतात्मक ' या ' गीतात्मक ' स्वराघात कहते हैं । दूसरा स्वराघात वह है जिसमें आवाज ऊँची या नीची नहीं की जाती बल्कि साँस को धक्के के साथ छोडकर जोर दिया जाता है जिसे ' बलात्मक ' स्वराघात कहते हैं । पहले का संबंध स्वरतन्त्रियों के ढीला करने या तानने से है तो दूसरे का संबंध स्वरतंत्रियों से न होकर फेफडे से हवा फेंकने के ढंग पर होता है । पहले प्रकार का स्वराघात प्रायः उस प्रकार का होता है जो गाने में पाया जाता है ।

वैदिक संस्कृत में संगीतात्मक स्वराघात की प्राप्ति मानी जाती है । इसमें बलात्मक स्वराघात के संबंध में डा. भोलानाथ तिवारी आदि विद्वान प्रायः संदेह व्यक्त करते हैं । टर्नर के अनुसार बलात्मक स्वराघात भी वैदिक संस्कृत में उपलब्ध था ।

संस्कृत में संगीतात्मक स्वराघात लुप्त हुआ । इसके स्थान पर बलात्मक स्वराघात का विकास माना जाने लगा । डा. भोलानाथ तिवारी के अनुसार संस्कृत में बलात्मक स्वराघात का पूरा विकास नहीं हो पाया था ।

भाषाविज्ञानियों का मत है कि मध्ययुगीन आर्यभाषा में स्वराघात की प्राचीन प्रणाली लुप्त हुई और बलात्मक स्वराघात की प्रवृत्ति चल पडी । इसमें भी विवाद है । कुछ विद्वान पूरे मध्यकाल में संगीतात्मक स्वराघात मानते हैं, तो जूल ब्लाक दोनों स्वराघात होने में संदेह प्रकट करते हैं ।

एक बात उल्लेखनीय है कि संस्कृत से लेकर अपभ्रंश तक तथा आधुनिक आर्य भाषाओं में भी स्वराघात का निर्देश करने के लिए किसी चिह्न का प्रयोग नहीं दिखायी देता । अतः इस लंबी परंपरा में स्वराघात के संबंध में संदेह उत्पन्न होना निश्चित है । फिर भी एक बात अवश्य होनी चाहिए कि स्वराघात की प्रवृत्ति प्रायः बोलचाल (वाचिक) के रूप में रही होगी । आज भी देखा जाता है कि ग्रंथों, पुस्तकों में लिखी जाने वाली पद्धति में आघात – युक्त स्वरों को लिखने की सुविधा नहीं है । परंतु जब उन्हीं ग्रंथों, पुस्तकों में लिखे वाक्यों का उच्चारण करना चाहते हैं तो हमारी दृष्टि से उचित स्थान पर आघात देकर हम बोलने का प्रयत्न करते हैं । नाटकीय पुस्तकों में भी स्वराघात देकर किस प्रकार बोलना चाहिए

इसके लिए कोई निर्देश नहीं होता है । फिर भी दिग्दर्शक सुयोग्य ढंग से उचित अक्षरों पर स्वराघात देकर अभिनेताओं से उच्चारण करवाने का प्रयत्न करता है । इसी प्रकार नित्य व्यवहार में बोली जाने वाली भाषा में भी बिना किसी के सूचित किये, बिना किसी के दिग्दर्शित किये उचित अक्षरों पर स्वराघात देकर वक्ता अपना अभिप्राय विशेष रूप से श्रोताओं के सामने उपस्थित करने का प्रयत्न करता है ।

अतः यह मानना आवश्यक है कि संस्कृत से लेकर अपभ्रंश तक लिखित ग्रंथों में यद्यपि स्वराघात का चिह्न नहीं दिया है फिर भी उच्चारण के समय उनमें स्वराघात देकर बोला जाता रहा होगा । इस संबंध में कल्पना के आधार पर ही संतोष मानना आवश्यक है ।

हिंदी तथा कोंकणी में स्वराघात

हिंदी में स्वराघात उपलब्ध है । डा. भोलानाथ तिवारी के अनुसार हिंदी में दोनों (संगीतात्मक तथा बलात्मक) स्वराघात हैं, फिर भी वे बहुत स्पष्ट नहीं है । कोंकणी में स्वराघात के संबंध में चर्चा उपलब्ध नहीं है; फिर भी कोंकणी में इसे स्वीकारने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए । हिंदी तथा कोंकणी में दिये निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होती है ।

(अ) संगीतात्मक स्वराघात –

वक्ता अपनी विशेष भावनाओं को व्यक्त करता है । ऐसे समय एक ही सामान्य वाक्य विशेष स्वराघात या सुर-लहर में उच्चरित होने से भिन्न-भिन्न अर्थ प्राप्त होते हैं, यथा :– ‘ तुम घर जाओगे ’। ‘ वह वहाँ था । ’ आदि सामान्य वाक्य विशेष स्वराघात या सुर-लहर में बदलने से प्रश्नवाचक बनते हैं, यथाः– ‘ तुम घर जाओगे?’, ‘वह वहाँ था?’ आदि । इन वाक्यों में ‘ जाओगे, था ’ में विशिष्ट संगीतात्मक अर्थात् ऊँचे स्वर में परिवर्तन हुआ है । इससे अर्थ में भी परिवर्तन हुआ है ।

यही स्थिति कोंकणी में भी दिखायी देती है । उपर्युक्त हिंदी के वाक्य कोंकणी में ‘तुमी घरा वतले. ’, ‘ तो थंय आशिल्लो. ’ आदि होगा । ये वाक्य सामान्य हैं । इन के अंतिम शब्दों में संगीतात्मक स्वराघात के कारण भिन्न अर्थ प्राप्त होता है, यथाः– ‘ तुमी घरा वतले?’, ‘ तो थंय आशिल्लो?’ आदि । इनमें अंतिम शब्दों का उच्चारण ऊँचे स्वर में होता है जिससे उपर्युक्त वाक्यों के अर्थों में परिवर्तन हुआ है ।

(आ) बलात्मक स्वराघात –

हिंदी में बलात्मक स्वराघात भी पाया जाता है । परंतु प्रत्येक शब्द में इसका स्थान निश्चित नहीं है । बलात्मक स्वराघात कहाँ दिया जाए यह बात वक्ता की इच्छा पर निर्भर होती है । जैसे :– ‘ राम ने मोहन को लाठी से मारा ।’ वाक्य में ‘ राम ’, ‘ मोहन ’, ‘ लाठी ’, ‘ मारा ’ शब्दों में से जिस किसी पर बल देंगे उससे वाक्य के अर्थ में बदल होता है । उदाहरणार्थ ‘ राम ’ शब्द पर बल दिया जाए तो ‘ राम ’ के सिवा अन्य किसी

ने नहीं मारा ', ' मोहन ' शब्द पर बल दिया जाए तो ' राम ने मोहन के सिवा अन्य किसी को नहीं मारा ' अर्थ स्पष्ट होते हैं। इसी प्रकार शेष ' लाठी ', ' मारा ' शब्दों पर बल देने से अर्थ में परिवर्तन होता है।

यही स्थिति कोंकणी में भी होती है। कोंकणी में भी कभी -कभी वक्ता विशिष्ट अर्थ प्राप्त होने के लिए शब्दों पर बल देकर बोलता है। इससे कोंकणी वाक्यों से भी हिंदी की तरह विशिष्ट अर्थ प्राप्त होता है। इस दृष्टिसे उपर्युक्त हिंदी का वाक्य भी कोंकणी में लिया जा सकता है, यथा – ' रामान मोहनाक बडयेन मारलें. '। इसमें भी ' राम ', ' मोहन ' आदि शब्दों पर बल देने से हिंदी की तरह विशिष्ट अर्थ प्राप्त होते हैं।

हिंदी में स्वराघात के संबंध में डा. भोलानाथ तिवारी, श्री कामता प्रसाद गुरु आदि विद्वानों ने विवरण प्रस्तुत किया है।

कोंकणी में इस प्रकार स्वराघात के संबंध में अब तक किसी विद्वान ने विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। फिर भी ' पंर्णस ' आदि शब्द में प्राप्त ' पं, र्ण ' को स्वराघात का विशिष्ट उदाहरण मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

संक्षेप में –

(१) संस्कृत शब्दों में प्राप्त स्वर और व्यंजन हिंदी तथा कोंकणी के अनेक शब्दों में जैसे के तैसे प्राप्त हैं।

(२) संस्कृत शब्दों में स्थित स्वरों और व्यंजनों का परिवर्तन जब एक ही दिशा में प्रवाहित होता है तब हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में समानता दीखती है।

(३) हिंदी तथा कोंकणी में अनेक तद्भव शब्द ऐसे भी है, जिन में संस्कृत शब्दों में प्राप्त स्वर और व्यंजन भिन्न-भिन्न स्वरों और व्यंजनों में परिवर्तित होते हैं। इससे हिंदी तथा कोंकणी के अनेक शब्दों में विविध प्रकार का अंतर दिखायी देता है।

(४) इसी प्रकार हिंदी तथा कोंकणी में विदेशी शब्द भी प्राप्त हैं जिनमें कुछ समान तथा असमान हैं।

(५) हिंदी तथा कोंकणी में स्वराघात प्राप्त होता है। इसके कारण हिंदी तथा कोंकणी वाक्यों में अर्थभेद प्राप्त होता है।

(६) कोंकणी के ' पंर्णस ' आदि शब्दों में प्राप्त स्वरों का उच्चारण विशिष्ट स्वराघात का माना जा सकता है।

टीपें और संदर्भ ग्रंथ सूची

१) कुछ वर्षों पूर्व हिंदी में फारसी-अरबी भाषाओं के शब्दों तो कोंकणी में पुर्तगाली भाषा के शब्दों का प्रचलन अधिक था; परंतु यह आजकल कम होता चला है और इन दोनों में अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रचलन बढने लगा है।

२) 'वागमः (सू. सं. १–२–१३) ' – गम् धातु के आगे झलादी विकल्प से कित् होते हैं। ' विभाषा जसि (सू. सं. १–१–३२) ' – जस् आगे हो तो द्वन्द्व में सर्वनाम संज्ञा का विकल्प होता है। ' बहुलं छन्दसि (सू. सं. २–४–७३)' – वेद में शप् का बहुत कुछ लुक् होता है। इसके सिवा ' अन्यतरस्याम् , प्राच्याम् , उदीच्याम् ' आदि शब्दों तथा अलग-अलग मुनियों के नाम से विकल्प बताया है।

३) ' सरो लोपो सरे (सू. सं. १–२६) ' – दूसरा स्वर आगे आने पर पूर्व स्वर का लोप होता है। ' परो अचि (सू. सं. १–२७)' – कहीं कहीं आगे के स्वर का भी लोप होता है।

४) डा. तेजकृष्ण भाटिया – ' हिंदी में अनुनासिकता ' शीर्षक लेख (गवेषणा पत्रिका), अंक २३, पृ. ८१

५) डा. धीरेंद्र वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास , पृ. १३९

६) श्री महामुनि पाणिनि प्रणीत – अष्टाध्यायी सूत्रपाठ , पृ. १

७) रोदोल्फ दाल्गादु – डिक्सियनरिओ कोंकणी पोर्चुगीझ, पृ. १५० (यहाँ दिया हुआ ' घंव ' शब्द प्राचीन कोंकणी में प्राप्त है। आजकल यह ' गंव ' रूप में प्रयुक्त है।)

८) 'कोंकणी वाचनपाठ ' कक्षा १० के लिए; गोवा दमण दीव के माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक शिक्षा मंडल द्वारा प्रकाशित ; प्रकाशन वर्ष १९७८ (रिव्हायज्ड एडिशन)

९) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. ३०

१०) ' हिंदुस्तानी–मराठी कोश ' अखिल महाराष्ट्र हिंदी प्रचार समिति द्वारा प्रकाशित, पुणें २; पृ. ४६२

११) श्री कृष्णलाल वर्मा तथा राहामनबाई पेणकर – राष्ट्रभाषा हिंदी मराठी कोश, पृ. ३०९

१२) श्री कामताप्रसाद गुरु – हिंदी व्याकरण, पृ. ३६
श्री वालावलीकार – कोंकणी नादशास्त्र, पृ. ५

१३) ' मराठी संशोधन पत्रिका ' मराठी संशोधन मंडळ द्वारा प्रकाशित, वर्ष २३ , अंक २ , जानेवरी–फेब्रुवारी–मार्च १९७६, पृ, ३२

१४) डा. धीरेंद्र वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास भूमिका, पृ. ७५, टिप्पणी १

अध्याय ३

हिंदी तथा कोंकणी शब्दों की व्याकरणिक कोटियाँ

व्याकरणिक कोटियों के तौर पर संस्कृत शब्दों – संज्ञाओं, सर्वनामों और विशेषणों [+]– में जाति, व्यक्ति, लिंग, संख्या (= वचन) और कारक का विचार किया जाता है । इनमें जाति और व्यक्ति अर्थपरक है । मतलब यह है कि शब्द का संकेत (= अर्थ) जाति में माने या व्यक्ति में । भारतीय मनीषियों ने इस पर काफी विचार किया है । परंतु यहाँ इस विषय का औचित्य न होने के कारण इसकी चर्चा यहाँ नहीं की है । संस्कृत के व्याकरणिक कोटियों में यद्यपि ' पुरुष ' का विचार नहीं किया है फिर भी संज्ञाओं और सर्वनामों की दृष्टि से उसकी जानकारी प्राप्त करा लेना आवश्यक है । अतः यहाँ ' पुरुष ' से संबंधित विचार किया है ।

इस प्रकार यहाँ हिंदी तथा कोंकणी शब्दों की व्याकरणिक कोटियों में (१) लिंग, (२) वचन (= संख्या), (३) कारक और (४) पुरुष पर विचार किया जाता है ।

१) लिंग

भारतीय आर्यभाषा की संस्कृत भाषा में तीन लिंग पाये जाते हैं, जैसे :– (१) पुल्लिंग, (२) स्त्रीलिंग और (३) नपुंसकलिंग । प्राकृत, अपभ्रंश तथा आधुनिक भाषाओं – मराठी, गुजराती, सिंहली आदि – में तीन लिंग हैं, परंतु ' पंजाबी, सिंधी, राजस्थानी ' आदि भाषाओं में दो लिंग हैं ।

\+ क्रियाओं की व्याकरणिक कोटियाँ ' क्रिया ' अध्याय में स्पष्ट की हैं (दे. पृ. ३२१ ।

साधारणतया संस्कृत में संज्ञा शब्दों और विशेषण शब्दों में कोई अंतर नहीं होता है । अतः संस्कृत के प्राचीन व्याकरण ग्रंथों में इन दोनों का पृथक् वर्णन नहीं किया है । उसी प्रकार उन्होंने सर्वनाम शब्दों का भी अलग विभाग नहीं किया है । परंतु जहाँ उनसे संबंधित विशेष कार्य होता है, वहाँ वह कार्य संपन्न होने के लिए ' सर्वादीनि सर्वनामानि ' नामक सूत्र से अलग गण (शब्दसमूह) का निर्देश किया है । इस गण में ३५ सर्वनाम हैं । इन सर्वनामों के कुछ कारकीय रूप विशिष्ट प्रकार से होते हैं तो शेष कारकीय रूप संज्ञा शब्दों के कारकीय रूपों के समान होते हैं । अतः इन तीनों – संज्ञाओं, सर्वनामों और विशेषणों – को संस्कृत वैयाकरणों ने एक ही ' नाम ' शब्द से परिचित किया है ।

लिंग की दृष्टि से हिंदी तथा कोंकणी में पर्याप्त असमानता है। हिंदी में दो लिंग हैं, जैसे :– (१) पुल्लिंग और (२) स्त्रीलिंग; तो कोंकणी में तीन लिंग हैं, जैसे :– (१) पुल्लिंग, (२) स्त्रीलिंग और (३) नपुंसकलिंग। हिंदी शब्दों में नपुंसकलिंग का विधान 'ग्रामातिका इन्दोस्ताना' पुस्तक में प्राप्त है[१]; फिर भी परिनिष्ठित हिंदी शब्दों में नपुंसकलिंग नहीं है। हिंदी में नपुंसकलिंग न होने के कारण हिंदी तथा कोंकणी लिंग-विधान में पर्याप्त अन्तर आया है।

i) लिंग-विधान में जटिलता

हिंदी में नपुंसकलिंग नहीं है। अतः प्रत्येक चेतन-अचेतन पदार्थवाची शब्दों को दो लिंगों में समाविष्ट करना पडता है। चेतन पदार्थों में पुरुषत्व या स्त्रीत्व का भेद होता है, इससे चेतन पदार्थों का पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग जान लेना थोडा आसान है। फिर भी कुछ चेतन पदार्थ ऐसे हैं जिनका लिंग जान लेना कठिन है। अचेतन पदार्थों में किसी भी लिंग का बोध न होने के कारण अचेतन पदार्थों का लिंग-निर्णय करना कठिन हो जाता है। इसलिए डा. धीरेंद्र वर्मा ने लिखा है[२]:– "हिंदी में व्याकरण-संबंधी लिंग-भेद सब से अधिक दुरूह है।"

हिंदी की तुलना में कोंकणी का लिंग-भेद और भी दुरूह है। तुलना के लिए नीचे हिंदी तथा कोंकणी लिंग-संबंधी कुछ जानकारी प्रस्तुत की है।

ii) चेतन का लिंगत्व

हिंदी में साधारणतया चेतन पदार्थगत लिंग-भेद के अनुसार संज्ञाओं को पुल्लिग या स्त्रीलिंग माना जाता है, उदाहरणार्थ :– 'आदमी (पुल्लिंग)', 'औरत (स्त्रीलिंग)'। परंतु चेतन पदार्थ से संबंधित कई संज्ञाएँ ऐसी हैं, जिनका संज्ञागत लिंग पुल्लिग होते हुए भी वस्तुगत पुरुषत्व और स्त्रीत्व दोनों का सूचन होता है, जैसे :– 'पक्षी, भेडिया, कौआ, चीता, उल्लू, कछुआ, बिच्छू, साँप' आदि। ये संज्ञाएँ पुल्लिग होते हुए भी पुरुष और स्त्री दोनों का बोध एक साथ करा देती हैं। इसी प्रकार 'चील, कोयल, चिडिया, मक्खी, तितली, गिलहरी, छिपकली' आदि संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होते हुए भी वस्तुगत पुरुषत्व और स्त्रीत्व दोनों का ज्ञान एक साथ करा देती हैं। ऐसी स्थिति में हिंदी की संज्ञाओं के संबंध में केवल दो लिंगों को सोचने से हिंदी की लिंग-समस्या कोंकणी से आसान दिखायी देती है।

कोंकणी में तीन लिंग होने के कारण उसकी लिंग-समस्या हिंदी से भी जटिल है। इसमें चेतन पदार्थ-संबंधी संज्ञाओं की लिंग-समस्या केवल वस्तुगत पुरुषत्व और स्त्रीत्व का विचार करके नहीं सुलझ सकती। यद्यपि चेतन पदार्थगत लिंग-भेद के अनुसार संज्ञाओं को पुल्लिंग या स्त्रीलिंग माना जाता है, यथा :– 'मनीस (पुल्लिंग)', 'बायल (स्त्रीलिंग)'; फिर भी पुरुषत्व और स्त्रीत्व का बोध स्पष्ट होते हुए भी कोंकणी में कई

संज्ञाएँ नपुंसकलिंग में प्रयुक्त होती हैं, यथा :– 'भुरगें (= बच्चा / बच्ची) ', ' सुणें (= कुत्ता / कुतिया) ', 'चेडूं (= दासी या दासी की बेटी) ' आदि । ये संज्ञाएँ ऐसी हैं, जिनका वस्तुगत लिंग देखकर उचित लिंग का आरोप इन पर नहीं कर पाते । वास्तव में ' भुरगें, सुणें ' संज्ञाएँ पुंस्त्व और स्त्रीत्व दोनों का एक साथ सूचन करती हैं तथा ' चेडूं ' में तो स्पष्ट ही स्त्रीत्व का बोध होता है । परंतु इन तीनों संज्ञाओं का समावेश न तो पुल्लिग में किया है न ही स्त्रीलिंग में; बल्कि इनसे भिन्न तृतीय प्रकार के नपुंसकलिंग में इनका समावेश किया है । एवं कोंकणी में वस्तुगत लिंग देखकर भी पुल्लिग या स्त्रीलिंग का निर्धारण करना असंभव है । क्योंकि वस्तुगत पुंस्त्व या स्त्रीत्व स्पष्ट दिखायी देते हुए भी कुछ संज्ञाएँ कोंकणी में नपुंसलिंग में प्रयुक्त हैं ।

कोंकणी के संबंध में कही उपर्युक्त बात चेतन पदार्थों में स्पष्ट रूप से दिखायी देने वाले पुंस्त्व या स्त्रीत्व के आधार पर प्राप्त होने वाली संज्ञाओं के संबंध में है, जो नपुंसकलिंग में प्रयुक्त हैं । इसके सिवा कोंकणी में चेतन पदार्थ से संबंधित कई संज्ञाएँ ऐसी हैं, जिनका संज्ञागत लिंग पुल्लिग होते हुए भी वस्तुगत पुरुषत्व और स्त्रीत्व दोनों का सूचन होता है, यथा :– ' कीर, मूस, दिवड, सोरोप, हुंदीर, पक्षी, विंचू, कावळो, भिकूण, कीडो ' आदि । ये संज्ञाएँ पुल्लिग होते हुए भी पुरुषत्व और स्त्रीत्व दोनों का बोध एक साथ करा देती हैं । कुछ संज्ञाएँ ऐसी भी हैं जिनका संज्ञागत लिंग स्त्रीलिंग होते हुए भी उनसे वस्तुगत पुरुषत्व और स्त्रीत्व दोनों का सूचन होता है, यथा :– ' कोगूळ, गार, पाल, मूंय, चानी, वाळटी, कीड, साळोरी, जळू ' आदि । ये संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होते हुए भी पुरुषत्व और स्त्रीत्व दोनों का एक साथ बोध करा देती हैं । इसी प्रकार ' चितळ, मांजर, वांसवेल, हरण, मेरूं, गोरूं, सुणें, बकें ' आदि संज्ञाएँ नपुंसकलिंग होते हुए भी वस्तुगत पुरुषत्व और स्त्रीत्व दोनों का ज्ञान एक साथ करा देती हैं । इस प्रकार कोंकणी में प्राप्त होने वाली पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग संज्ञाएँ हिंदी में पुल्लिग और स्त्रीलिंग होती हैं । इसके सिवा हिंदी में अन्य लिंग है ही नहीं । एवं चेतन पदार्थ-संबंधी संज्ञाएँ हिंदी में दो लिंगों तो कोंकणी में तीन लिंगों में विभक्त हो जाती हैं । इसलिए कोंकणी में चेतन पदार्थो से संबंधित संज्ञाओं की लिंग-संबंधी जानकारी हिंदी से भी कठिन है ।

× × ×

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित बात स्पष्ट होती है–

चेतन पदार्थगत संज्ञाओं का लिंग-भेद जान लेना हिंदी की अपेक्षा कोंकणी में अधिक कठिन है, क्यों कि ये संज्ञाएँ हिंदी में दो लिंगों तो कोंकणी में तीन लिंगों में बाँटनी पडती हैं ।

iii) अचेतन का लिंगत्व

उपर्युक्त बात चेतन पदार्थ से संबंधित हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त होनेवाली संज्ञाओं के लिंग-संबंधी जानकारी के उपलक्ष्य में है । चेतन पदार्थ से संबंधित संज्ञाओं का लिंग

जान लेना थोडा-सा आसान है । परंतु अचेतन पदार्थ से संबंधित संज्ञाओं का लिंग जान लेना बहुत कठिन है । कानडी भाषा में अचेतन पदार्थ-संबंधी संज्ञाओं को नपुंसकलिंग में आबद्ध कर दिया है जिससे अचेतन पदार्थों के संबंध में उस भाषा में कठिनाई नहीं है[३] । हिंदी तथा कोंकणी में भी अचेतन पदार्थ-संबंधी संज्ञाओं को नपुंसकलिंग में अनुबद्ध कर दिया जाता तो अचेतन पदार्थ-संबंधी संज्ञाओं के लिंग की समस्या सरलता से हल हो जाती । परंतु ऐसा न होने के कारण अचेतन पदार्थ-संबंधी संज्ञाओं के लिंग-ज्ञान में दुरूहता कायम रहती है ।

हिंदी में नपुंसकलिंग न होने के कारण अचेतन पदार्थ-संबंधी संज्ञाएँ पुल्लिंग या स्त्रीलिंग में विभक्त हो जाती हैं । कोंकणी में नपुंसकलिंग है, अतः कोंकणी में अचेतन पदार्थ-संबंधी संज्ञाएँ पुल्लिग, स्त्रीलिंग या नपुंसकलिंग में विभक्त हो जाती हैं । इसलिए अचेतन संज्ञाओं के लिंग की जानकारी में हिंदी की अपेक्षा कोंकणी में अधिक क्लिष्टता आ जाती है । इस दृष्टि से निम्नलिखित बात दृष्टव्य है –

हिंदी में ' घर, बचपन, छाता, घी, गेहूँ, आटा, मोती, हीरा, पेड, कपडा, चमडा, जीरा, मसाला ' आदि संज्ञाएँ पुल्लिंग हैं, तो ' प्यास, ईख, टोपी, नाक, आँख, बालू , पुस्तक, कुर्सी, लकडी, भिंडी, मिठाई ' आदि संज्ञाएँ स्त्रीलिंग हैं ।

हिंदी में प्राप्त उपर्युक्त पुल्लिग और स्त्रीलिंग संज्ञाएँ कोंकणी में निम्नलिखित प्रकार से पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में विभक्त होंगी, यथा –

पुल्लिग : ' गंव (= गेहूँ), हिरो (= हीरा), कपडो (= कपडा), मसालो (= मसाला), ऊंस (= ईख), दोळो (= आँख), भेंडो (= भिंडी) ' ।
स्त्रीलिंग : ' सत्री (= छाता), तान (= प्यास), तोपी (= टोपी), रेंव (= बालू), मिठाय (= मिठाई)' ।
नपुंसकलिंग : ' घर (= घर), भुरगेपण (= बचपन), तूप (= घी), पीठ (= आटा), मोतीं (= मोती), झाड (= पेड), चामडें (= चमडा), जिरें (= जीरा), नाख (= नाक), पुस्तक (= पुस्तक), कदेल (= कुर्सी), लांकूड (= लकडी) ' ।

इन हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं के लिंग देखने से यह बात स्पष्ट होती है कि हिंदी में अचेतन पदार्थ-संबंधी संज्ञाओं का लिंग जान लेना कोंकणी से आसान है, परंतु कोंकणी में उनका लिंग जान लेना हिंदी की अपेक्षा कठिन है; और इसका कारण है उनकी अपनी-अपनी ' लिंग-व्यवस्था '।

× × ×

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित बात स्पष्ट होती है –

अचेतन पदार्थवाची संज्ञाएँ हिंदी में पुल्लिग और स्त्रीलिंग में बाँटी जाती हैं तो कोंकणी में पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में बाँटी जाती हैं । अतः हिंदी की अपेक्षा कोंकणी की लिंग-व्यवस्था अधिक दुरूह है ।

iv) हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं में लिंगान्तर

संस्कृत से विकसित होते-होते हिंदी तथा कोंकणी की लिंग-व्यवस्था में अन्तर प्राप्त है। हिंदी में दो लिंग हैं और कोंकणी में तीन लिंग हैं। फलतः हिंदी तथा कोंकणी की कुछ संज्ञाओं के लिंग संस्कृत संज्ञाओं के लिंग के अनुरूप नहीं होते। इसी प्रकार हिंदी तथा कोंकणी में आगत अन्य भाषाओं की कुछ संज्ञाओं में भी लिंगान्तर प्राप्त होता है। हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त होने वाली लिंग-व्यवस्था के कुछ उदाहरण निम्नलिखित प्रकार से हैं –

१) संस्कृत में ' काच ' शब्द पुल्लिग है तो इससे विकसित ' काँच ' शब्द हिंदी में पुल्लिग तो कोंकणी में ' कांच ' स्त्रीलिंग है।

२) ' आत्मा (आत्मन्), ध्वनि ' शब्द संस्कृत में पुल्लिग हैं, परंतु हिंदी में ' आत्मा, ध्वनि ' स्त्रीलिंग हैं तो कोंकणी में पुल्लिंग। इस प्रकार ' अग्नि, मणि, श्वास, मृत्यु, देह ' आदि तत्सम शब्द संस्कृत में पुल्लिग होते हुए भी हिंदी में स्त्रीलिंग तथा कोंकणी में पुल्लिग हैं। इसी प्रकार संस्कृत ' मुद्ग, इक्षु ' आदि पुल्लिग शब्दों से विकसित हिंदी ' मूँग, ईख ' आदि शब्द स्त्रीलिंग हैं तो कोंकणी ' मूग, ऊंस ' आदि शब्द पुल्लिग हैं।

३) संस्कृत के पुल्लिग ' राशि, समाधि, शपथ, हार(= पराजय)' आदि तत्सम शब्द हिंदी तथा कोंकणी में स्त्रीलिंग होते हैं। इसी प्रकार संस्कृत के पुल्लिग ' दल, अग्नि ' से विकसित ' दाल, आग ' शब्द हिंदी तथा कोंकणी में स्त्रीलिंग होते हैं (कोंकणी में ' दाल ' के बदले ' दाळ ')।

४) संस्कृत के स्त्रीलिंग ' घंटा, तारा, देवता, व्यक्ति ' आदि तत्सम शब्द हिंदी में पुल्लिग तो कोंकणी में स्त्रीलिंग हैं।

५) संस्कृत में ' नासिका ' शब्द स्त्रीलिंग है। इससे विकसित ' नाक ' शब्द हिंदी में स्त्रीलिंग तो कोंकणी में नपुंसकलिंग है। कोंकणी में ' नाक ' शब्द ' नाख ' रूप में भी लिखा जाता है।

६) संस्कृत का नपुंसकलिंग ' मित्र ' शब्द हिंदी तथा कोंकणी में पुल्लिंग में प्रयुक्त है।

७) संस्कृत के नपुंसकलिंग ' कुटुंब, चित्र, नगर, राष्ट्र ' आदि तत्सम शब्द हिंदी में पुल्लिग हैं तो कोंकणी में नपुंसकलिंग हैं। इसी प्रकार संस्कृत ' अस्त्र, शस्त्र, शास्त्र, सुख, दुःख ' आदि तत्सम शब्द हिंदी में पुल्लिग तो कोंकणी में नपुंसकलिंग़ हैं। इसी प्रकार संस्कृत नपुंसकलिंग ' यशस्, यज्ञोपवीत, मौक्तिक, तैल ' से विकसित हिंदी के ' जस, जनेऊँ, मोती, तेल ' पुल्लिग हैं तो कोंकणी के ' येस (यश), जानवें, मोतीं, तेल ' नपुंसकलिंग हैं।

(८) संस्कृत में ' तालु ' शब्द नपुंसकलिंग है तो हिंदी में ' तालू ' पुल्लिंग है और

कोंकणी में ' ताळू ' स्त्रीलिंग है । संस्कृत नपुं. ' तालु ' से कोंकणी में ' ताळो ' शब्द विकसित है जो पुल्लिग है ।

(९) ' वस्तु ' शब्द संस्कृत में नपुंसकलिंग है तो हिंदी तथा कोंकणी में स्त्रीलिंग है । इसी प्रकार नपुंसकलिंग 'वक्षस्थलम् , श्मश्रु ' से विकसित हिंदी ' छाती, मूँछ ' तथा कोंकणी ' छाती, मिशी (' मिशयो ' बहु.) ' स्त्रीलिंग हैं ।

(१०) ' पुस्तक ' संस्कृत में नपुंसकलिंग है । वह हिंदी में स्त्रीलिंग है तो कोंकणी में नपुंसकलिंग है । इसी प्रकार 'अस्थि, लवंग ' से विकसित हिंदी 'हड्डी, लौंग ' स्त्रीलिंग हैं तो कोंकणी ' हाड, लवंग ' नपुंसकलिंग हैं ।

इसी प्रकार हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाले कुछ और लिंग-भेद जान लेना उचित होगा –

(१) हिंदी में प्राप्त कुछ पुल्लिग शब्द कोंकणी में नपुंसकलिंग होते हैं, यथा :– 'घर, दूध, पान, सामान, मैदान ' आदि शब्द हिंदी में पुल्लिग तो कोंकणी में नपुंसकलिंग हैं ।

(२) हिंदी में प्राप्त कुछ स्त्रीलिंग शब्द कोंकणी में नपुंसकलिंग होते हैं, यथा :– ' संतान, सरकार, वय(=उम्र) ' शब्द हिंदी में स्त्रीलिंग हैं तो कोंकणी में नपुंसकलिंग ।

(३) कोंकणी के नपुंसकलिंग शब्द अधिकतर हिंदी में पुल्लिग होते हैं, यथा :– ' वासरूं (= बछडा), भुरगें (= बच्चा), झाड (= पेड), वाचन (= वाचन), भुरगेपण (= बचपन), चित्र (= चित्र), फूल(=फूल), फळ(=फल) ' आदि । ये शब्द कोंकणी में नपुंसकलिंग हैं तो हिंदी में पुल्लिग ।

(४) हिंदी में ' दूकान, मेज, बैंच, लगाम, खाट, मीटिंग ' शब्द स्त्रीलिंग हैं तो कोंकणी में 'दुकान, मेज ' नपुंसकलिंग हैं; ' बेंच, लगाम ' पुल्लिग हैं और 'खाट, मीटिंग ' स्त्रीलिंग हैं ।

(५) कुछ समानार्थक चेतन पदार्थवाची शब्द ऐसे हैं, जो एक भाषा में एक लिंग में होते हैं तो तदर्थवाचक शब्द दूसरी भाषा में दूसरे लिंग में होते हैं । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :– ' लोमडी ' हिंदी में स्त्रीलिंग है तो तदर्थवाचक कोंकणी ' कोलो (= सियार), शब्द पुल्लिग है । परंतु ' सियार ' हिंदी में पुल्लिग है । इसके विपरीत ' रीछ ' हिंदी में पुल्लिग है किंतु तदर्थवाचक कोंकणी शब्द ' वांसवेल ' नपुंसकलिंग है । ' वासरूं ' कोंकणी में नपुंसकलिंग है तो इसके हिंदी के अर्थ का शब्द ' बछडा ' पुल्लिग है ।

कुछ समानार्थक अचेतन पदार्थवाची शब्दों में भी यही स्थिति है, जो एक भाषा में एक लिंग में होते हैं तो तदर्थवाचक शब्द दूसरी भाषा में दूसरे लिंग में । कुछ उदाहरण देखिए :– हिंदी में ' शादी, कलम ' शब्द स्त्रीलिंग हैं तो तदर्थवाचक ' लग्न, पेन ' शब्द कोंकणी में नपुंसकलिंग हैं । ' ईख, जान ' शब्द हिंदी में स्त्रीलिंग हैं तो इनके अर्थ के कोंकणी ' ऊस, जीव ' शब्द पुल्लिंग हैं ।

(६) लिंग की समस्या और भी दुरूह हो जाती है जब हिंदी तथा कोंकणी में

समानानुपूर्वीक तथा समानार्थक शब्द हिंदी में पुल्लिग होते हैं, तो कोंकणी में स्त्रीलिंग। 'चैन, कमाल, शिकार, व्यक्ति, देवता, तारा, चक्कर, बाग, जादू, नोट, मजा, घंटा, पूर्व, पच्छिम, तार' आदि कुछ ऐसे शब्द हैं जो हिंदी में पुल्लिग हैं तो कोंकणी में स्त्रीलिंग। इसके विपरीत 'अग्नि, देह, मृत्यु, श्वास, किरण, मार, धाक, मणि, लगाम, आवाज, आत्मा, पतंग, जय, विजय, पराजय, रिपोर्ट, विनय, ऋतु, ध्वनि, वायु' आदि कुछ ऐसे शब्द हैं जो हिंदी में स्त्रीलिंग हैं तो कोंकणी में पुल्लिंग।

यहाँ एक और समस्या जटिल होती है जो इससे भी अधिक कठिन लगती है। हिंदी में नपुंसकलिंग नहीं है तथा कोंकणी में नपुंसकलिंग है। अतः जो शब्द कोंकणी में नपुंसकलिंग होते हैं उन्हींके समानानुपूर्वीक तथा समानार्थक शब्द हिंदी में या तो पुल्लिग होते हैं या तो स्त्रीलिंग, जैसे :– 'अक्षर, आकाश, उदाहरण, कर्तव्य, काम, कारण, वस्त्र, विद्यालय, स्वराज्य, स्वातंत्र्य, स्वागत, फूल, जंगल, धन, चरित्र, वाचन, पत्र, गायन' आदि अनेक शब्द हैं, जो कोंकणी में नपुंसकलिंग हैं तो हिंदी में पुल्लिग। इसी प्रकार 'रामायण, नाक, पुस्तक, मशीन, टेबल, माप, मेज, इंद्रिय, झंझट, सामर्थ्य' आदि अनेक शब्द हैं जो कोंकणी में नपुसंकलिंग तो हिंदी में स्त्रीलिंग हैं।

अतः हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं के लिंग-निर्णय के लिए कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता। इसलिए कोष-ग्रंथों या प्रयोगों का आश्रय लेकर ही लिंग-भेद की दुरूह समस्या सुलझायी जा सकती है।

× × ×

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) संस्कृत के कुछ तत्सम शब्द तथा कुछ तद्भव शब्द हिंदी तथा कोंकणी में लिंगान्तर के साथ प्राप्त हैं।

(२) हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में व्याकरण-संबंधी लिंग-व्यवस्था में बहुत अंतर दिखायी देता है।

(३) हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त समानानुपूर्वीक तथा समानार्थक शब्दों में भी लिंग-भेद दिखायी देता है।

(४) लिंगान्तर की दृष्टि से हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं की लिंग-व्यवस्था अधिक जटिल है। इसे कोषों या प्रयोगों के आधार पर ही सुलझाना ठीक है।

v) सर्वनामों में लिंग-व्यवस्था

हिंदी के सर्वनामों में व्यक्तिगत लिंग-भेद के कारण परिवर्तन नहीं होता है। 'मैं, तू, वह' आदि सर्वनाम पुल्लिग और स्त्रीलिंग में समान रूप से प्रयुक्त होते हैं, यथा :– 'वह पुरुष, वह स्त्री' (परंतु हिंदी 'क्या' सर्वनाम प्रायः पुल्लिग में प्रयुक्त है)।

कोंकणी में 'हांव, तूं, कोण, आपुण (= निजवाचक 'आप')' और 'कांय' सर्वनाम पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में समान रूप से प्रयुक्त होते हैं, यथा :–

' हांव वता (= ' मैं जाता हूँ ।' पु., स्त्री. और नपुं.) ' आदि। परंतु ' तो, हो, जो ' सर्वनाम पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में परिवर्तित होते हैं, यथा :– तो : ' तो मनीस (= वह आदमी) ', ' ती बायल (= वह औरत) ' और ' तें भुरगें (= वह बच्चा / बच्ची) '। कोंकणी ' कितें (= क्या) ' प्रायः नपुंसकलिंग में प्रयुक्त है ।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी सर्वनामों के लिंग के विवेचन से निम्नलिखित बात स्पष्ट होती है –

हिंदी सर्वनामों में लिंग का प्रभाव नहीं है, परंतु कोंकणी ' तो, हो, जो ' और ' कितें ' सर्वनामों में लिंग का प्रभाव दिखायी देता है ।

vi) विशेषणों में लिंग-व्यवस्था

हिंदी में आकारान्त विशेषण भिन्न लिंगवाची संज्ञाओं के साथ परिवर्तित होते हैं, यथा:– ' अच्छा लडका (पु. एक.) ', ' अच्छी लडकी/लडकियाँ (स्त्री. एक. तथा बहु.) ', ' अच्छे लडके (पु. बहु.) ' इसके सिवा ' अच्छे ' का प्रयोग पुल्लिंग में कारक प्रत्यय सहित संज्ञा के साथ एक वचन तथा बहु वचन में प्रयुक्त है, यथा:– ' अच्छे लडके /लडकों ने '।

कोंकणी में भी ओकारान्त विशेषण भिन्न लिंगवाची संज्ञाओं के साथ परिवर्तित होते हैं, यथा :– ' बरो भुरगो (पु. एक.) ', ' बरे भुरगे (पु. बहु.) ', ' बरी चली (स्त्री. एक.) ', ' बऱ्यो चलयो (स्त्री. बहु.) ', ' बरें भुरगें (नपुं. एक.) ', ' बरीं भुरगीं (नपुं. बहु.) '। इसके सिवा कोंकणी में ' बऱ्या ' रूप है, जो पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में कारक प्रत्यय सहित संज्ञा के साथ एकवचन तथा बहुवचन में प्रयुक्त है यथा :– ' बऱ्या भुरग्यान / भुरग्यांनी / चलयेन / चलयांनी / मांजरान / मांजरांनी '। इनमें से 'चलयेन' संज्ञा के साथ कभी-कभी ' बरे ' रूप भी मिलता है, जैसे :– ' बरे चलयेन (= अच्छी लडकी ने) '।

हिंदी तथा कोंकणी के शेष अकारान्त, ईकारान्त और ऊकारान्त विशेषणों में लिंग-भेद नहीं है ।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी विशेषणों के लिंग की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी में आकारान्त तथा कोंकणी में ओकारान्त विशेषणों में लिंग का प्रभाव है ।

(२) हिंदी में आकारान्त विशेषण के तीन रूप प्राप्त हैं तो कोंकणी में ओकारान्त विशेषण के सात रूप प्राप्त हैं ।

(३) हिंदी तथा कोंकणी के शेष स्वरान्त विशेषणों में लिंग का प्रभाव नहीं है ।

vii) संबंध कारक में लिंग-व्यवस्था

हिंदी तथा कोंकणी में संबंध कारक के चिह्नों में परवर्ती संज्ञा के लिंग के अनुसार परिवर्तन होता है, यथा :– हिंदी : ' राम का बेटा, राम की माता, राम का घर '। कोंकणी : ' रामाचो भुरगो , रामाची आवय , रामाचें घर '।

संबंध कारक में दिखायी देने-वाली यह लिंग-व्यवस्था हिंदी तथा कोंकणी के शेष कारकों में नहीं दिखायी देती ।

हिंदी में ' का, की ; ना, नी ; रा, री ' संबंध कारक के चिह्न हैं, तो कोंकणी में ' चो, ची, चें; लो, ली, लें; जो, जी, जें; गेलो, गेली, गेलें ' संबंध कारक के चिह्न हैं । हिंदी तथा कोंकणी के इन सभी संबंध कारक के चिह्नों में लिंग का संबंध स्पष्ट दिखायी देता है ।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी संबंध कारक के चिह्नों की तुलना से निम्नलिखित बात स्पष्ट होती है –

हिंदी तथा कोंकणी संबंध कारक के चिह्नों में लिंग का प्रभाव स्पष्ट ही लक्षित होता है ।

viii) क्रिया में लिंग-व्यवस्था

संस्कृत क्रियाओं में लिंग का संबंध नहीं है । परंतु हिंदी तथा कोंकणी क्रियाओं में प्रायः लिंग का प्रभाव दिखायी देता है, यथा :– हिंदी : ' आया (पु.) ', ' आयी (स्त्री.) ', ' आयेगा (पु.) ', ' आयेगी (स्त्री.) '; कोंकणी : ' आयलो (पु.) ', ' आयली (स्त्री.) ', ' आयलें (नपुं.) ', ' येतलो (पु.) ', ' येतली (स्त्री.) ', ' येतलें (नपुं.) '। फिर भी हिंदी तथा कोंकणी की कुछ क्रियाओं में लिंग का संबंध प्राप्त नहीं होता । यह बात आगे ' क्रिया ' शीर्षक अध्याय में ' क्रियाओं की व्याकरणिक कोटियाँ ' उपशीर्षक में स्पष्ट की है देखिए,पृ. ३२१) ।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी क्रियाओं में प्राप्त लिंग की तुलना से निम्नलिखित बात स्पष्ट होती है ।

हिंदी तथा कोंकणी क्रियाओं में लिंग का प्रभाव प्राप्त है ।

ix) स्त्रीलिंग प्रत्यय

संस्कृत में मुख्यतः स्त्रीलिंग बनाने के लिए पाँच प्रत्यय है :– ' ई, आ, ऊ, ति, आनी '। हिंदी तथा कोंकणी में निम्नलिखित स्त्रीलिंग प्रत्ययों का व्यवहार होता है, यथा –

हिंदी	**कोंकणी**
ई, इन, न, इया, आइन, आनी, नी	ई, ईण, न, ण

नीचे इनके उदाहरण प्रस्तुत किए हैं –

हिंदी ' ई '	**कोंकणी 'ई'**
देव : देवी, कुमार : कुमारी	देव : देवी, कुमार : कुमारी
मामा : मामी, लडका : लडकी	मामा : मामी, चलो : चली

हिंदी ' ई ' तथा कोंकणी ' ई ' संस्कृत ' ई ' से प्राप्त है ।

हिंदी ' इन '	**कोंकणी ' ईण '**
बाघ : बाघिन, साँप : साँपिन	वाघ : वाघीण, नाग : नागीण
चमार : चमारिन	चामार : चामारीण

संस्कृत में ' मालिन् , हस्तिन् , दण्डिन् ' शब्दों में स्त्रीलिंग ' ई ' प्रत्यय लगाकर ' मालिनी, हस्तिनी, दण्डिनी ' होता है । इससे पालि में स्वतंत्र ' इनी ' प्रत्यय विकसित है[४] । इस ' इनी ' से हिंदी में ' इन ' तथा कोंकणी में ' ईण ' विकसित है ।

हिंदी ' न '	**कोंकणी ' न '**	**कोंकणी ' ण '**
धोबी : धोबन	घरकार : घरकान्न	रांदपी : रांदपीण
दुलहा : दुलहन	तेलकार : तेलकान्न	भंगी : भंगीण
माली : मालन	नुस्तेकार : नुस्तेकान्न	मावळो : मावळण

हिंदी ' न ' भी उपर्युक्त ' इन ' के ' इ ' लोप से विकसित है ।

कोंकणी ' न ' भी इसी प्रकार 'ईण' से विकसित है । कोंकणी ' घरकान्न ' आदि शब्द प्रथम ' घरकारीण ' आदि होना चाहिए । परंतु ध्वनियों को संकुचित करके बोलने की प्रवृत्ति के कारण ' ई ' का लोप तथा ' र् ' का ' न ' होकर संयुक्त ' न्न ' -युक्त रूप विकसित है । यही स्थिति कोंकणी ' ण ' में दिखायी देती है । रांदपी, भंगी ' मूलतः ईकारान्त होने के कारण ' ईण ' प्रत्यय का ' ई ' उसमें मिल जाता है । इसके अनन्तर केवल ' ण ' का विकास हुआ जो ' मावळण ' में ' ण ' रूप में दिखायी देता है । इस प्रकार कोंकणी ' न ' तथा ' ण ' का विकास ' ईण ' से प्राप्त है ।

हिंदी के शेष ' इया, आइन, आनी, नी ' स्त्रीलिंग प्रत्ययों के उदाहरण निम्नलिखित प्रकार से हैं, यथा –

इया :– बेटा : बिटिया, कुत्ता : कुतिया, चूहा : चुहिया, बूढा : बुढिया ।
आइन :– चौबे : चौबाइन, पांडे : पंडाइन, बाबू : बबुआइन ।
आनी :– सेठ : सेठानी , पंडित : पंडितानी , देवर देवरानी, जेठ : जेठानी ।

नी :– शेर : शेरनी , मोर : मोरनी, जाट : जाटनी, ऊँट : ऊँटनी ।

इस प्रकार के प्रत्यय प्रायः कोंकणी में उपलब्ध नहीं है ।

उपर्युक्त ' इया ' प्रत्यय संस्कृत ' घोटिका, स्फोटिका, सेविका ' शब्दों में प्राप्त ' इका ' से विकसित है । शेष ' आइन , आनी, नी ' प्रत्यय संस्कृत ' इंद्राणी, भवानी, अरण्यानी ' में प्राप्त ' आनी ' से विकसित हैं ।

कोंकणी में पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाये जाने वाले शब्दों में क्वचित् ' आणी ' प्रत्यय भी सुनायी पडता है । इस दृष्टि से निम्नलिखित अंश पठनीय है –

हाल ही में एक दूसरे गाँव में पहुँचा था । वहाँ बोलते-बोलते एक आदमी ने ' सूर्याणी ' शब्द का प्रयोग किया । मैं सुनकर दंग हो गया । इसमें जो ' आणी (सूर्य+आणी) ' प्रत्यय है वह संस्कृत के ' इंद्राणी ' शब्द में प्राप्त होने वाले ' आणी ' की तरह है । यहाँ ' इंद्राणी ' शब्द ' इंद्र की स्त्री ' अर्थ में प्रयुक्त है परंतु कोंकणी ' सूर्याणी ' शब्द ' सूर्य की स्त्री ' अर्थ में प्रयुक्त नहीं है , बल्कि सूर्य की धूप में तप-तपकर लाल-लाल हुई ' काजू की बीज ' जो बिना भुने फोडकर खायी जाती है । ' सूर्य की स्त्री ' अर्थ में संस्कृत में ' सूर्या ' शब्द है । अब विचार आता है कि इसका स्रोत क्या है ? संस्कृत या अन्य कोई भाषा ? संस्कृत में ' इंद्राणी ' शब्द है तो अन्य भाषा में ' बिर्याणी ' भी । संस्कृत में ' सूर्य ' शब्द में ' आणी ' जोडकर बनने वाला शब्द नहीं हैं + ।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी स्त्रीलिंग प्रत्ययों के विवरण से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

१) हिंदी ' ई , इन, नी ' तथा कोंकणी ' ई, ईण, न, ण ' में प्रायः साम्य दीखता है । हिंदी ' न ' तथा कोंकणी ' ण ' में उच्चारण स्थान के कारण अन्तर है ।

२) हिंदी के स्त्रीलिंग ' इया, आइन, आनी, नी ' जैसे प्रत्यय कोंकणी में उपलब्ध नहीं हैं ।

३) कोंकणी ' सूर्याणी ' में प्राप्त ' आणी ' प्रत्यय हिंदी में प्राप्त नहीं है ।

+ यहाँ थोडा विषयान्तर हुआ है । यह इसलिए कि यह उदाहरण पहले अंदर घुसेडा जा नहीं सका था । इसलिए यह प्राक्कथन में रखा था । परंतु पुस्तक का अन्तिम निरीक्षण करने के वक्त दिखायी दिया कि इस पृष्ठ पर अब ऊपर जो पंक्तियाँ दी हैं वे छापी नहीं गयी हैं । क्या करें ? बहुत सोचने के बाद याद आया कि प्राक्कथन में रखे इस उदाहरण को यहीं ले लिया जाए । परंतु प्रस्तावना भी छपी गयी थी । फिर भी उलट–पुलटकर और प्रस्तावना को सुधारकर इस पुस्तक का यह पृष्ठ बराबर कर दिया गया । इस प्रकार अन्य जगह भी कई बातें हुई हैं ।

२) वचन (संख्या)

संस्कृत में तीन वचन हैं; – एकवचन, द्विवचन और बहुवचन । संस्कृत से विकसित पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में दो वचन हैं :– एकवचन और बहुवचन । द्विवचन प्रायः पालि में ही लुप्त हुआ । वचन का भेद संख्या-भेद के आधार पर प्रचलित है । संख्या-भेद अनन्त होने पर भी ' एकत्व ' और ' बहुत्व ' ऐसे दो प्रमुख भेद स्वीकार कर ' एकवचन ' और ' बहुवचन ' अपनाये गये हैं । क्यों कि एक-एक संख्या के लिए वचन-भिन्नता का स्वीकार करने से अनन्त वचनों तथा इनके आधार पर अनन्त रूपों का स्वीकार करना पडता है । लिंगों की अपेक्षा वचनों की कल्पना व्यावहारिक है । यह चेतन-अचेतन मामलों में तर्क के परे की वस्तु नहीं है । डा. देवेंद्रनाथ शर्मा लिखते हैं [१] –

" लिंग की तुलना में वचन अधिक वास्तविक भी है और व्यावहारिक भी। लिंग का कोई निश्चित और तर्क-संगत आधार नहीं है, किंतु वचन का आधार संख्या-भेद है जो तार्किक और व्यावहारिक दोनों दृष्टि से स्वीकार्य है।"

हिंदी तथा कोंकणी में दो वचन हैं :– एकवचन और बहुवचन । हिंदी तथा कोंकणी में ये दोनों वचन संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रिया से संबंधित हैं ।

वचन की दृष्टि से यहाँ कुछ बातें ध्यान में रखना आवश्यक है । जिस प्रकार हिंदी में आदरवाचक ' आप ' सर्वनाम का बहुवचन में प्रयोग होता है उसी प्रकार कुछ अन्य शब्दों का भी बहुवचन में प्रयोग होता है, जैसे :– ' होश, आँसू , हिज्जे, प्राण, समाचार , दर्शन, भाग्य, दाम, हस्ताक्षर, लोग, ओंठ ' आदि । इनमें से ' होश, आँसू , हिज्जे ' शब्द कोंकणी में उपलब्ध नहीं हैं, ' प्राण, समाचार, दर्शन, भाग्य ' शब्द कोंकणी में प्रायः एकवचन में प्रयुक्त होते हैं और ' दाम, लोक(ग), ओंठ' एकवचन और बहुवचन में व्यवहृत होते हैं ।

हिंदी का निजवाचक ' आप ' सर्वनाम केवल एकवचन में प्राप्त होता है; परंतु इसका प्रयोग दोनों वचनों में होता है ।

कोंकणी में ' पितर, अक्षता ' शब्द हैं जो प्रायः बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं । ' कात्यो (= कृत्तिका नक्षत्र) ' भी प्रायः बहुवचन है ।

३) कारक

कारक की व्याख्या संस्कृत में ' क्रियान्वयित्वं कारकत्वं ' की है । जब संज्ञा या सर्वनाम क्रिया के साथ संबंध जोडता है तब उसे कारकत्व प्राप्त होता है । संस्कृत में केवल छः कारक माने हैं, जैसे :– कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादन और अधिकरण। संबंध और संबोधन को कारक नहीं माना हैं; क्यों कि इन दोनों का योग साक्षात् क्रिया से नहीं होता बल्कि दूसरे शब्द के द्वारा होता है । अर्थात् क्रिया से इनका संबंध दूर से होता है । फिर भी सुविधा के लिए संस्कृत शब्दावली में इन दोनों का परिगणन किया है; क्यों कि

वाक्यार्थ की दृष्टि से वाक्य-विन्यास में इन दोनों का बहुत बडा महत्व है। अतः यहाँ आठों कारकों को लेकर चर्चा करना अप्रस्तुत नहीं होगा । इसके पहले कारकीय रूप-रचना पर विचार करना आवश्यक है।

I) कारकीय रूप-रचना

संस्कृत में, संज्ञाओं के अन्त में भिन्न-भिन्न स्वर तथा भिन्न-भिन्न व्यंजन प्राप्त हैं। इसके सिवा संज्ञाओं में द्विवचन भी प्राप्त है। इनके कारण संस्कृत की संज्ञाओं में विभक्ति-प्रत्यय लगाते समय रूपों में वैविध्य प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ,अकारान्त पुल्लिग 'राम' शब्द के चार रूप और प्राप्त हैं :– 'राम्, रामा, रामे' और 'रामय्'। 'हरि' शब्द के 'हर् हर्य्, हरय्, हरे' और 'हरी' रूप होते हैं। स्त्रीलिंग 'रुचि' शब्द के 'रुच्, रुचय्, रुच्य्, रुच्या, रुची' और 'रुचे' रूप होते हैं। इसी प्रकार संस्कृत में व्यंजनान्त शब्दों के रूप भी भिन्न-भिन्न होते हैं। अर्थात् शब्द के अन्त में होने वाले हरएक स्वर तथा व्यंजन के अनुसार शब्दों के रूपों में विविधता प्राप्त होती है। अभी दिखाये सभी रूप विभक्त्यन्त रूपों से विभक्ति या विभक्त्यंश को अलग करके दिखाये हैं।

वास्तव में संस्कृत की कारकीय रूपरचना जटिल है। उपर्युक्त रूप बनाने के पूर्व शब्दों के अन्त में होने वाले भिन्न-भिन्न आदेशों तथा संधियों के कारण रूपरचना में अनेक प्रकार का वैविध्य प्राप्त है जो यहाँ स्पष्ट नहीं किया है।

परंतु पालि में व्यंजनान्त शब्द तथा द्विवचन लुप्त हो गया।इससे कारकों में एकसूत्रता बढने लगी जिससे अनन्तरकालीन भाषाओं में रूपों का वैविध्य कम होता चला गया। इसका प्रभाव हिंदी तथा कोंकणी पर भी स्पष्ट दीखता है। संस्कृत में दिखायी देने वाले रूपों का वैविध्य हिंदी तथा कोंकणी में नहीं के बराबर है। इससे हिंदी तथा कोंकणी रूपों में सुलभता प्राप्त हुई है। अकारान्त पुल्लिग 'राम' शब्द हिंदी में दो और रूपों में प्राप्त होता हैं, यथा :– 'रामों' और 'रामो'। इसी प्रकार कोंकणी में भी 'राम' शब्द दो और रूपों में प्राप्त होता है, यथा :– 'रामा' और 'रामां'। हिंदी में ईकारान्त स्त्रीलिंग 'रानी' शब्द के 'रानि(–याँ), 'रानियों(–को)' और 'रानियो' तीन रूप होते हैं तो कोंकणी में भी 'राणी' शब्द के 'राण(–यो)', 'राणये(–क)' और 'राणयां(–क)' तीन ही रूप प्राप्त हैं। ऊकारान्त पुल्लिग 'लड्डू' शब्द के हिंदी में 'लड्डूओं' और 'लड्डुओ' दो रूप प्राप्त हैं तो कोंकणी में भी 'लाडू' शब्द के 'लाडवा' और 'लाडवां' दो रूप प्राप्त हैं।

इस प्रकार संस्कृत की अपेक्षा हिंदी तथा कोंकणी में रूपों का वैविध्य कम हुआ और कारक बनाने की प्रकिया सुलभ हुई।

II) कारकीय रूपों के भेद

कारकीय रूप-रचना की दृष्टि से हिंदी में संज्ञा के दो भेद माने गये हैं, जैसे :– ' मूल रूप ' और ' विकृत रूप '। परंतु इनके सिवा हिंदी में एक और रूप अधिक मानना चाहिए, जिसे ' संबोधन रूप ' कहा जाता है। इन तीनों रूपों से हिंदी के सभी कारकीय रूप बनते हैं जिनके आधार पर हिंदी की वाक्य-रचना सिद्ध होती है। परंतु कोंकणी में केवल दो रूप मानने से कोंकणी के सभी कारकीय रूप बनते हैं जिनके आधार पर कोंकणी की वाक्य-रचना सिद्ध होती है। नीचे इनका विवरण प्रस्तुत है –

१) मूल रूप –

मूल रूप उसे कहा जाता है जो संज्ञा परसर्ग-विहीन अवस्था में कर्ता कारक में प्रयुक्त होती है, यथा :– ' लडका जाता है (हिंदी)। ' तथा ' भुरगो वता (कोंकणी). '। इन वाक्यों में ' लडका ' तथा ' भुरगो ' शब्द परसर्ग-विहीन अवस्था में कर्ता कारक में प्रयुक्त हैं। अतः हिंदी तथा कोंकणी के उपर्युक्त वाक्यों में प्रयुक्त ' लडका ' तथा ' भुरगो ' शब्द ' मूल रूप ' हैं।

२) विकृत रूप –

परसर्ग लगाने के पूर्व हिंदी तथा कोंकणी संज्ञा के मूल रूप में प्रायः परिवर्तन हो जाता है। ऐसे रूपों को संज्ञा का विकृत रूप कहते हैं, यथा :– ' लडके ने काम किया (हिंदी)।' तथा ' भुरग्यान काम केलें (कोंकणी) . '।

उपर्युक्त हिंदी वाक्य में ' लडका ' शब्द में कर्ता कारक ' ने ' परसर्ग लगाते समय ' लडका ' शब्द का ' लडके ' एकारान्त बना है। कोंकणी में भी ' भुरगो ' शब्द में कर्ता कारक ' न ' परसर्ग जुडते समय ' भुरगो ' शब्द का ' भुरग्या ' याकारान्त बना है। अतः हिंदी ' लडके ' तथा कोंकणी ' भुरग्या ' शब्द ' विकृत रूप ' हैं।

३) संबोधन रूप –

इसके सिवा हिंदी में संबोधन रूप की सत्ता स्पष्ट दीखती है; क्यों कि हिंदी में संबोधन के बहुवचन का रूप मूल रूप तथा विकृत रूप से भिन्न होता है, यथा :– ' हे लडको, तुम कहाँ जा रहे हो ? '। यहाँ ' लडका ' शब्द के अन्त्य ' आ ' के स्थान पर अनुनासिक – विहीन ' ओ ' होकर ' लडको ' शब्द बना है। जब यहाँ अनुनासिक आता है तब वही शब्द विकृत रूप का बहुवचन हो जाता है,यथा :– ' लडकों ने '। अतः हिंदी में संबोधन रूप अलग मानना आवश्यक हो जाता है। परंतु कोंकणी में संबोधन रूप अलग मानने की आवश्यकता नहीं है; क्यों कि संबोधन रूप और विकृत रूप के एकवचन तथा बहुवचन में फर्क नहीं दीखता, यथा :– ' ए भुरग्या (क्वचित् ' ए भुरगो ' मूल रूप एकवचन है), तूं

खंय वता ? ' । इस वाक्य में ' भुरग्या ' शब्द विकृत रूप एकवचन है । इसी प्रकार ' ए भुरग्यांनो, तुमी खंय वतात ?' वाक्य में ' भुरग्यां ' शब्द विकृत रूप बहुवचन है । अतः कोंकणी की अपेक्षा हिंदी में संबोधन रूप की अधिकता स्पष्ट दीखती है ।

४) सर्वनामों में रूपों की विशेषता –

हिंदी तथा कोंकणी सर्वनामों में मूल रूप और विकृत रूप प्राप्त हैं, परंतु इनमें संबोधन रूप प्राप्त नहीं होता है; क्यों कि किसी भी सर्वनाम को लेकर संबोधन का प्रसंग उपलब्ध नहीं है । हिंदी तथा कोंकणी के कुछ सर्वनामों में ' विशेष रूप ' और ' संबंध कारक रूप ' अधिक मानना पडता है । हिंदी में ' मैं , तू , वह , यह , जो , सो , कौन ' में विशेष रूप तो ' मैं , तू , अपना ' में संबंध कारक का विशेष रूप मिलता है । कोंकणी में ' हांव , तूं , तो , हो , जो , कोण , आपुण ' में विशेष रूप तो ' हांव , तूं , तो , हो ' में संबंध कारक का विशेष रूप प्राप्त है । यह उनकी अपनी विशेषता है । यह विशेषता ' सर्वनाम ' शीर्षक अध्याय में दृष्टव्य है ।

× × ×

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी में तीन रूप तो कोंकणी में दो रूप मानने से हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं की कारक-रचना संपन्न होती है ।

(२) सर्वनामों में संबोधन रूप नहीं है, फिर भी ' विशेष रूप ' और ' संबंध कारक रूप ' अधिक मानना पडता है ।

III) हिंदी की अपेक्षा कोंकणी में कारकीय रूपों का वैविध्य

हिंदी तथा कोंकणी में रूपों की सुलभता प्राप्त होते हुए भी हिंदी की अपेक्षा कोंकणी के कारकीय रूपों में भिन्न-भिन्न संज्ञाओं के अनुसार विविधता मिलती है, यथा –

(i) हिंदी में ईकारान्त पुल्लिग ' हाथी ' शब्द में परसर्ग (= कारकचिह्न) जोडते समय एकवचन में ' हाथी ' तथा बहुवचन में ' हाथियों ' होता है । इसी तरह हिंदी की शेष ईकारान्त पुल्लिग संज्ञाओं के रूप होते हैं ।

परंतु कोंकणी में ईकारान्त पुल्लिग ' हती (= हाथी) ' शब्द में परसर्ग जोडते समय एकवचन में ' हतया ' तथा बहुवचन में ' हतयां ' होता है; और दूसरे एक उदाहरण में ईकारान्त पुल्लिग ' खारवी (= मछुवा) ' शब्द में परसर्ग जोडते समय एकवचन में ' खारव्या ' तथा बहुवचन में ' खारव्यां ' होता है ।

(ii) हिंदी में अकारान्त स्त्रीलिंग ' पुस्तक ' शब्द के मूल रूप बहुवचन में ' एँ ' प्रत्यय जुडकर ' पुस्तकें ' होता है । इसी तरह शेष अकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं का बहुवचन उनमें ' एँ ' प्रत्यय जुडकर होता है ।

परंतु कोंकणी में अकारान्त स्त्रीलिंग 'बायल (= औरत)' संज्ञा में 'ओ' जुडकर मूल रूप बहुवचन में 'बायलो' होता है; और दूसरे एक उदाहरण में अकारान्त स्त्रीलिंग 'पाल (= छिपकली)' शब्द के मूल रूप का बहुवचन करते समय 'ई' जुडकर 'पाली' बनता है। इस तरह दोनों प्रकार के और शब्द भी प्राप्त होते हैं, यथा :– पहला प्रकार : 'मूयो, कुडो, तानों, जिबो, माळो, सुनो' आदि ; दूसरा प्रकार : 'साली, केळी, म्हशी, कापशिणी' आदि।

(iii) हिंदी में अकारान्त स्त्रीलिंग 'पुस्तक' संज्ञा में परसर्ग जोडते समय एकवचन में 'पुस्तक' तथा बहुवचन में 'पुस्तकों' होता है। इसी प्रकार परसर्ग जोडते समय शेष अकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं के विकृत रूप बनते हैं।

परंतु कोंकणी में अकारान्त स्त्रीलिंग 'बायल' संज्ञा में परसर्ग जोडते समय एकवचन में 'बायले' तथा बहुवचन में 'बायलां' विकृत रूप होता है; और दूसरे एक उदाहरण में अकारान्त स्त्रीलिंग 'पाल' संज्ञा में परसर्ग जोडते समय एकवचन में 'पाली' तथा बहुवचन में 'पालीं' विकृत रूप होता है।

(iv) हिंदी में ईकारान्त स्त्रीलिंग 'लडकी' संज्ञा के बहुवचन में 'याँ' जुडकर 'लडकियाँ' होता है। इसी तरह शेष ईकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं का बहुवचन करते समय उनमें 'याँ' जोडा जाता है तथा पूर्व स्वर ह्स्व किया जाता है।

परंतु कोंकणी में ईकारान्त स्त्रीलिंग 'चली (= लडकी)' संज्ञा में 'यो' जुडकर बहुवचन में 'चलयो' होता है; और दूसरे उदाहरण में, ईकारान्त स्त्रीलिंग 'मेवणी (= साली)' संज्ञा का बहुवचन करते समय 'यो' जुडकर 'मेवण्यो' होता है। अन्य एक उदाहरण में ईकारान्त स्त्रीलिंग 'बी' शब्द का बहुवचन 'बियो' होता है। यहाँ 'बियो' में 'यो' का पूर्व स्वर ह्स्व हुआ है। यह प्रक्रिया हिंदी 'लडकियाँ' शब्द की प्रक्रिया से मिलती-जुलती है।

(v) हिंदी में ईकारान्त स्त्रीलिंग 'लडकी' शब्द में परसर्ग जोडते समय एकवचन में 'लडकी' तथा बहुवचन में 'लडकियों' होता है। इसी प्रकार शेष ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के विकृत रूप होते हैं।

परंतु कोंकणी में ईकारान्त स्त्रीलिंग 'चली' शब्द में परसर्ग जोडते समय एकवचन में 'चलये' तथा बहुवचन में 'चलयां' होता है; और दूसरे एक उदाहरण में ईकारान्त स्त्रीलिंग 'मेवणी' शब्द में परसर्ग जोडते समय एकवचन में 'मेवणे' तथा बहुवचन में 'मेवण्यां' होता है। अन्य एक उदाहरण में स्त्रीलिंग ईकारान्त 'बी' शब्द को परसर्ग जोडते समय एकवचन में 'बिये' तो बहुवचन में 'बियां' होता है। इस प्रकार कोंकणी में ईकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं के विकृत रूपों के कारकीय रूप बनाते समय उनके विविध स्वरूप प्राप्त होते हैं।

कोंकणी में, ईंकारान्त नपुंसकलिंग 'मोतीं' शब्द के बहुवचन में 'मोतयां' होता है तो 'बीं' शब्द के बहुवचन में 'बिंयां' होता है। परसर्ग जोडते समय 'मोतीं' शब्द के एकवचन में 'मोतया' और बहुवचन में 'मोतयां' होता है तो 'बीं' शब्द के एकवचन में 'बिंया' और बहुवचन में 'बिंयां' होता है।

(vi) इसी प्रकार कोंकणी में ऊंकारान्त नपुंसकलिंग के शब्दों में अंतर दिखाई देता है, जैसेः– 'गोरूं' शब्द के बहुवचन में 'गोरवां' होता है तो 'वासरूं' शब्द के बहुवचन में 'वासरां' होता है। यहाँ यह बात स्पष्ट है कि 'गोरवां' में 'वा' अधिक प्राप्त हुआ है जो 'वासरां' में नहीं दिखायी देता। परसर्ग जोडते समय भी यही स्थिति दिखाई देती है, जैसेः– 'गोरूं' के एकवचन में 'गोरवा' और बहुवचन में 'गोरवां' होता है तो 'वासरूं' शब्द के एकवचन में 'वासरा' और बहुवचन में 'वासरां' होता है। इस प्रकार 'म्हारू, पोरसूं' शब्दों के भी अलग-अलग रूप होते हैं ! इसी प्रकार के कुछ और उदाहरण द्रष्टव्य हैं – पुल्लिग : 'तांदूळ(= चावल)' संज्ञा में परसर्ग जोडते समय 'तांदळा(–क = चावल को)' होता है। 'मनीस(= आदमी)' शब्द का 'मनशा(–क)' होता है। 'तांदळा' और 'मनशा' में अन्त्य 'आ' विकृत रूप का चिन्ह है। 'राजू, विंचू' शब्द का 'राजवा, विंचवा' होता है। स्त्रीलिंग 'जळू' शब्द को परसर्ग जोडते समय 'जळवा (–क)' होता है तो 'ऊ' शब्द को परसर्ग जोडते समय एकवचन में 'उवा(–क)' होता है और बहुवचन में 'उवां(–क)' होता है।

इसके सिवा और एक भेद यहाँ दिखाई देता है। कोंकणी में जिस शब्द के अन्त में 'स' होता है उस शब्द का कारकीय रूप बनाते समय 'स' का 'श' होता है, उदाहरण के लिए देखिए –

मूल शब्द	**कारकीय रूप**
पुल्लिग – मनीस	मनशा (एक.), मनशां (बहु.)
पुल्लिग – वांसो	वांशा (एक.). वांशां (बहु.)
स्त्रीलिंग – म्हस	म्हशी (एक.), म्हशयां (बहु.)
स्त्रीलिंग – भास	भाशे (एक.), भाशां (बहु.)

× × ×

उपर्युक्त स्पष्टीकरण से निम्नलिखित बात सिद्ध होती है।

एक ही स्वरान्त संज्ञाओं के कारकीय रूपों में हिंदी की अपेक्षा कोंकणी में वैविध्य प्राप्त है।

IV) रूपों का कारकीय स्वरूप

कारकीय रूप बनाते समय हिंदी तथा कोंकणी में संज्ञाओं के अन्त्य स्वरों में विकृति पायी जाती है। यह विकृति जान लेना आवश्यक है; क्यों कि यह विकृति हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार से प्राप्त होती है। इस दृष्टि से हिंदी के ईकारान्त स्त्रीलिंग 'लडकी' तथा कोंकणी के ईकारान्त स्त्रीलिंग 'चली' शब्द के रूपों को देखना योग्य होगा।

मूल रूप बहुवचन में हिंदी 'लडकी' शब्द का 'लडकियाँ' होता है तो कोंकणी 'चली' शब्द का 'चलयो' होता है। यहाँ हिंदी में 'लडकी' शब्द के अन्त्य 'ई' का 'इय्' होकर 'आँ' जुडा है (अथवा यहाँ अन्त्य 'ई' की 'इ' और 'याँ' जुडा हुआ

माना जाए) तो कोंकणी में 'चली' शब्द की अन्त्य 'ई' का 'अय्' होकर 'ओ' जुडा है (अथवा यहाँ अन्त्य 'ई' का 'अ' और 'यो' जुडा हुआ माना जाए)।

हिंदी में 'लडकी' शब्द के विकृत रूप एकवचन में 'लडकी' होता है। परंतु कोंकणी में 'चली' शब्द के विकृत रूप एकवचन में 'चलये' होता है। यहाँ हिंदी के 'लडकी' शब्द की अन्त्य 'ई' विकृत रूप के एकवचन में जैसे-के-तैसे ही बनी रही है, परंतु कोंकणी की 'चली' शब्द की अन्त्य 'ई' का 'अय्' होकर 'ए' जुडा है (अथवा उपर्युक्त प्रकार से अन्त्य 'ई' का 'अ' और 'ये' जुडा हुआ माना जाए)।

इसी प्रकार हिंदी में 'लडकी' शब्द के विकृत रूप के बहुवचन में 'लडकियों' रूप होता है तो कोंकणी में 'चली' शब्द के विकृत रूप के बहुवचन में 'चलयां' होता है। इन उदाहरणों में हिंदी की 'लडकी' शब्द के अन्त में स्थित 'ई' का 'इय्' और 'ओं' आगम हुआ है (अथवा उपर्युक्त प्रकार से अन्त्य 'ई' का 'इ' और 'यों' जुडा हुआ माना जाए) तथा कोंकणी की 'चली' शब्द के अन्त्य 'ई' का 'अय्' हुआ है। और 'आं' आगम हुआ है (अथवा उपर्युक्त प्रकार से अन्त्य 'ई' का 'अ' और 'यां' जुडा हुआ माना जाए)।

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी रूपों के कारकीय स्वरूपों में अंतर दिखायी देता है। यह अंतर स्पष्ट होने के लिए नीचे हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं के अन्त में प्राप्त होने वाले स्वरों को लेकर रूपों का कारकीय स्वरूप प्रस्तुत किया है –

संज्ञा का अन्त्य स्वर	रूप	पुल्लिंग संज्ञाओं का कारकीय स्वरूप			
		हिंदी		**कोंकणी**	
		एक.	बहु.	एक.	बहु.
अ		'राम'		'राम'	
	मूल	×	×	×	×
	विकृत	×	ओं	आ	आं
	संबोधन	×	ओ	×, आ	आं
आ		'मामा'		'मामा'	
	मूल	×	×	×	×
	विकृत	×	ओं	×	–ं
	संबोधन	×	ओ	×	–ं
		'घोडा'		(हिंदी का 'घोडा' शब्द	
	मूल	×	ए	कोंकणी में ओकारान्त है।	
	विकृत	ए	ओं	अतः यह शब्द 'ओ' स्वर	
	संबोधन	ए	ओ	के विभाग में दिया है।)	

ई		'हाथी'		'हती'	
	मूल	×	×	×	×
	विकृत	×	ओं(यों)	आ(या)	आं(यां)
	संबोधन	×	ओ(यो)	×,आ(या)	आं(यां)
ऊ		'लड्डू'		'लाडू'	
	मूल	×	×	×	×
	विकृत	×	ओं(वों)	आ(वा)	आं(वां)
	संबोधन	×	ओ(वो)	×, आ(वा)	आं(वां)
ऐ		'बर्रै'		'शणै'	
	मूल	×	×	×	×
	विकृत	×	ओं	×	ं
	संबोधन	×	ओ	×	ं
ओ		'रासो'		'घोडो'	
	मूल	×	×	×	ए
	विकृत	×	ओं	आ(या)	आं(यां)
	संबोधन	×	ओ	आ(या)	आं(यां)
औ		'जौ'		(औकारान्त शब्द कोंकणी में प्रायः उपलब्ध नहीं है।)	
	मूल	×	×		
	विकृत	×	ओं		
	संबोधन	×	ओ		

संज्ञा का अन्त्य स्वर	रूप	स्त्रीलिंग संज्ञाओं का कारकीय स्वरूप			
		हिंदी		कोंकणी	
		एक.	बहु.	एक.	बहु.
अ		'औरत'		'बायल, पाल'	
	मूल	×	एँ	×	ओ, ई
	विकृत	×	ओं	ए, ई	आं, ईं
	संबोधन	×	ओ	×, ए, ई	आं, ईं
आ		'महिला, चिडिया		'इत्सा'	
	मूल	×	एँ, ँ	×	×
	विकृत	×	ओं	ए	ं
	संबोधन	×	ओ	ए	ं

ई		'लडकी'		'चली, मावशी'	
	मूल	×	आँ(याँ)	×	ओ(अयो, यो)
	विकृत	×	ओं(यों)	ए(ये)	आं(यां)
	संबोधन	×	ओ(यो)	ए(ये)	आं(यां)
ऊ		'बहू'		'जळू'	
	मूल	×	एँ	×	ओ(अवो)
	विकृत	×	ओं	ए(वे)	आं(वां)
	संबोधन	×	ओ	ए(वे)	आं(वां)
ऐ		'जै'		'आवै'	
	मूल	×	एँ	×	×
	विकृत	×	ओं	×	–
	संबोधन	×	ओ	×	–

संज्ञा का अन्त्य स्वर	रूप	नपुंसकलिंग संज्ञाओं का कारकीय स्वरूप			
		हिंदी		कोंकणी	
		एक.	बहु.	एक.	बहु.
अ		(हिंदी में नपुंसकलिंग		'घर'	
	मूल	संज्ञाएँ नहीं हैं;		×	आं
	विकृत	अतः यह		आ	आं
	संबोधन	भाग रिक्त रखा है।)		×, आ	आं
ई				'मोतीं'	
	मूल			×	आं(यां)
	विकृत			आ(या)	आं(यां)
	संबोधन			आ(या)	आं(यां)
ऊं				'तारूं'	
	मूल			×	आं(वां)
	विकृत			आ(वा)	आं(वां)
	संबोधन			आ(वा)	आं(वां)
एं				'आबोलें'	
	मूल			×	ई
	विकृत			आ(या)	आं(यां)
	संबोधन			आ(या)	आं(यां)

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं के कारकीय स्वरूप बनते हैं जिनमें कारक-चिह्न लगाकर वाक्य रचना में प्राप्त शब्दों का आपसी सबंध स्पष्ट किया जाता है।

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं के कारकीय स्वरूपों को देखने से हिंदी तथा कोंकणी में निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

हिंदी –

(१) हिंदी के आकारान्त पुल्लिग 'घोडा', 'बेटा', 'लडका' जैसे संज्ञाओं के मूल रूप के बहुवचन में तथा विकृत रूप और संबोधन रूप के एकवचन में अन्त्य 'आ' के स्थान पर 'ए' का प्रयोग होता है, यथाः– 'घोडे', 'बेटे', 'लडके' आदि।

डा. भोलानाथ तिवारी ने बहुवचनीय 'ए' का विकास सं. 'एभिः, एभ्यः' प्रत्यय से माना है, तो एकवचनीय 'ए' का विकास सं. 'एन' प्रत्यय से माना है[६]।

(२) हिंदी में सभी पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग संज्ञाओं के विकृत रूप के बहुवचन के अन्त में 'ओं' प्राप्त है, यथा :– 'घर : घरों'; 'घोडा : घोडों'; 'औरत : औरतों; 'माला : मालाओं' आधि। 'ओं' में आदि 'य्' तथा 'व्' आगम होने के कारण 'यों (तिथियों, लडकियों, नारियों)' तथा 'वों (साधुवों, भालुवों, बहुवों)' होता है। 'ओं' लगाते समय दीर्घ 'ई, ऊ' के ह्रस्व 'इ, उ' बन जाते हैं।

'ओं' का विकास सं. 'आनाम्' से माना जाता है।

(३) हिंदी में सभी पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग संज्ञाओं के संबोधन रूप के बहुवचन के अन्त में 'ओ' प्राप्त है, यथा :– 'बालक : बालको'; घोडा : घोडो'; 'औरत : औरतो ; 'हाथी : हाथियो'; 'साधु : साधुओ'; 'नदी : नदियो'; 'बहु : बहुओ' आदि।

'ओ' का विकास अपभ्रंश 'देवहो, वीरहो, वीराहो' के अंतिम 'हो' के 'ह्' लोप से सिद्ध है।

(४) स्त्रीलिंग याकारान्त संज्ञाओं के मूल रूप बहुवचन के अन्त्य 'या' पर अनुनासिक प्राप्त होता है, यथाः– 'चिडिया : चिडियाँ', 'गुडिया : गुडियाँ', 'बुढिया : बुढियाँ' आदि।

इसका विकास सं. 'आनि' से माना गया है।

(५) हिंदी में स्त्रीलिंग इकारान्त तथा ईकारान्त संज्ञाओं के मूल रूप बहुवचन के अन्त में 'आँ' प्राप्त है, यथाः– 'जाति : जातियाँ'; 'घोडी : घोडियाँ' आदि। यहाँ भी 'आँ' को 'य्' आगम होता है।

'आँ' का विकास भी सं. 'आनि' से माना गया है।

(६) शेष स्त्रीलिंग संज्ञाओं के मूल रूप बहुवचन के अन्त में ' एँ ' प्राप्त है, यथा – ' किताब : किताबें '; ' महिला : महिलाएँ '; ' बहु : बहुएँ ' आदि।

' एँ ' का विकास भी सं. ' आनि ' से माना गया है।

(७) उपर्युक्त कारकीय स्वरूपों के सिवा शेष कारकीय स्वरूपों में कोई विकार नहीं होता है। अतः इनमें संज्ञाएँ जैसे-की-वैसी बनी रहती हैं; यथाः– ' घर ', ' घोडा ', ' हाथी ', ' औरत ', ' डाकू ', ' लडकी ', ' माला ' आदि।

इन ' विकारहीन संज्ञाओं ' का विकास संस्कृत के विभक्ति-ह्रास के कारण है और यह प्रवृत्ति संस्कृत में ही शुरू हो चुकी थी जो हिंदी में प्राप्त है।

कोंकणी –

(१) कोंकणी में ओकारान्त पुल्लिग संज्ञाओं के मूल रूप बहुवचन में अन्त्य ' आ ' के स्थान पर ' ए ' का प्रयोग होता है, यथा :– ' घोडो : घोडे ; ' भुरगो : भुरगे ' आदि। इसका विकास हिंदी बहुवचनीय ' ए ' की तरह ' एभिः ,एभ्यः' से है।

(२) पुल्लिंग आकारान्त तथा ऐकारान्त संज्ञाओं के विकृत रूप तथा संबोधन रूप के बहुवचन में अन्त्य स्वर पर अनुस्वार प्राप्त है, यथाः– ' मामा : मामां '; ' दादा : दादां ' ; ' शणै : शणैं ' आदि।

' ं ' का विकास संस्कृत ' आनाम् ' से है।

(३) स्त्रीलिंग अकारान्त, ईकारान्त तथा उकारान्त संज्ञाओं के मूल रूप बहुवचन के अन्त में ' ओ ' प्राप्त है, यथाः– ' बायल : बायलो '; ' माळ : माळो ' आदि। ईकारान्त संज्ञा में ' ओ ' को ' य् ' तथा ऊकारान्त संज्ञा में ' ओ ' को ' व् ' आगम होने के कारण ' यो (चलयो, नदयो) ' तथा ' वो (जळवो, उवो) ' होता है। क्वचित् अकारान्त संज्ञा में अन्त्य ' अ ' का ' ई ' होता है, यथाः– ' पाल : पाली '; ' म्हस : म्हशी '; ' केळ : केळी ' आदि।

इनका विकास अपभ्रंश से है। अपभ्रंश में ' माला ' आदि शब्दों के मूल रूप बहुवचन में ओकारान्त तथा ' मइ (=मति) ' आदि शब्दों के मूल रूप बहुवचन में ईकारान्त रूप प्राप्त हैं। इनसे कोंकणी के उपर्युक्त स्त्रीलिंग शब्दों में ' ओ ' तथा ' ई ' प्राप्त है। अपभ्रंश में जो ' मालाओ ' तथा ' मई ' रूप प्राप्त हैं; लगता है इनका विकास प्रायः संस्कृत के ' मालाः ' तथा ' मतयः ' से हुआ है।

(४) स्त्रीलिंग आकारान्त तथा ऐकारान्त संज्ञाओं के विकृत रूप तथा संबोधन रूप के बहुवचन में अन्त्य स्वर पर 'ं' प्राप्त है, यथाः– ' इत्सा : इत्सां '; ' पिडा : पिडां '; ' आवै : आवैं ' आदि।

इसका विकास सं. ' आनाम् ' से है।

(५) ऐकारान्त शब्द छोडकर शेष स्त्रीलिंग संज्ञाओं के विकृत रूप तथा संबोधन रूप के एकवचन के अन्त में ‘ ए ’ प्राप्त है, यथा :– ‘ बायल : बायले(–क) ’; हे बायले ’ आदि । ‘ ए ’ में आदि ‘ य्, व् ’ आगम होता है, यथाः– ‘ चली : चलये ’; ‘ जळू : जळवे ’ आदि ।

इसका विकास संस्कृत आदि भाषाओं में प्राप्त ईकारान्त शब्दों के ‘ ई ’ से है ।

(६) अकारान्त नपुंसकलिंग के मूल रूप बहुवचन में अन्त्य ‘ अ ’ के स्थान पर ‘ आं ’ होता है, यथाः– ‘ घर : घरां ’; ‘ तोंड : तोंडां ’ आदि ।

इस ‘ आं ’ का विकास संस्कृत ‘ आनि ’ से है ।

(७) एंकारान्त नपुंसकलिंग के मूल रूप बहुवचन में अन्त्य ‘ एं ’ के स्थान पर ‘ ईं ’ होता है, यथाः– ‘ आबोलें : आबोलीं ’; ‘ मोगरें : मोगरीं ’ आदि ।

इस ‘ ईं ’ का विकास संस्कृत ‘ आनि ’ से है ।

(८) शेष पुल्लिग तथा नपुंसकलिंग के विकृत रूप तथा संबोधन रूप के एकवचन में ‘ आ ’ प्राप्त है, यथाः– ‘ राम : रामा(–क), हे रामा ’; ‘ घर : घरा(–क), हे घरा ’ आदि ।

‘ आ ’ का विकास ‘ देवाय, वनाय ’ जैसे रूपों में प्राप्त ‘ आ ’ से है ।

(९) कोंकणी पुल्लिग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग संज्ञाओं के विकृत रूप तथा संबोधन रूप के बहुवचन में ‘ आं ’ प्राप्त है, यथा :– ‘ राम : रामां(–क) ’; ‘ बायल : बायलां(– क) ’; ‘ घर : घरां(– क) ’ आदि ।

इस ‘ आं ’ का विकास संस्कृत ‘ आनाम् ’ से है ।

(१०) उपर्युक्त कारकीय स्वरूपों के सिवा शेष कारकीय स्वरूपों में कोई प्रत्यय नहीं लगता, जिसे शून्य-विभक्तिक कहा जाता है, यथा – ‘ राम ’, ‘ हती ’. ‘ घर ’, ‘ बायल ’, ‘ इत्सा ’ आदि ।

शून्य-विभक्ति का विकास संस्कृत के विभक्ति ऱ्हास के कारण है और यह प्रवृत्ति संस्कृत में ही शुरू हो चुकी थी जो कोंकणी में प्राप्त है ।

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं के कारकीय स्वरूपों को देखने पर हिंदी तथा कोंकणी में परस्पर विरोधी एक बात नजर आती है । हिंदी की प्रवृत्ति सामान्यतः आकारान्त है तो कोंकणी की प्रवृत्ति सामान्यतः ओकारान्त है; और हिंदी तथा कोंकणी में सामान्यतः यह प्रमुख भेद है (देखिए पृ. १८०) । परंतु उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी के कारकीय स्वरूपों की तालिका से यह बात स्पष्ट होती है कि हिंदी तथा कोंकणी के कारकीय स्वरूपों में जहाँ हिंदी में ओकारान्तता दिखाई देती है वहाँ कोंकणी में आकारान्तता दिखाई देती है । और यह बात सामान्यतः हिंदी के आकारान्त तथा कोंकणी के ओकारान्त प्रवृत्ति के विरुद्ध है ।

× × ×

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित बातें सिद्ध होती हैं –

(१) हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं के कुछ कारकीय स्वरूपों में समानता दिखाई देते हुए भी बहुत से कारकीय स्वरूपों में भिन्नता भी दिखाई देती है।

(२) कारकीय स्वरूपों में हिंदी की आकारान्त प्रवृत्ति प्रायः ओकारान्त बनती है तों कोंकणी की ओकारान्त प्रवृत्ति प्रायः आकारान्त बनती है।

V) कारक-चिह्न (= परसर्ग)

हिंदी तथा कोंकणी में कारक-चिह्न लगाकर कारकीय अर्थ स्पष्ट किया जाता है। इन कारक-चिह्नों के रूप संस्कृत के कुछ कारक-प्रत्ययों, कुछ तद्धित प्रत्ययों और कुछ संबंध-बोधक अव्ययों से निष्पन्न होते हैं। इनकी चर्चा करने से पहले हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त कारक-चिह्न नीचे दिये जाते हैं, यथा –

	हिंदी		कोंकणी	
कारक –	एक.	बहु.	एक.	बहु.
कर्ता –	०, ने	०, ने	०, न, एं, णें	०, नीं, णीं
कर्म –	०, को, ए	०, को, एं	०, क, का	०, क, कां
करण –	से	से	न	नीं
संप्रदान–	को, ए	को, एं	क, का	क, कां
अपादान –	से	से	सून	सून
संबंध –	का, की, के	का,की,के	चो, ची, चें चे, च्यो, चीं, च्या	चो, ची, चें चे, च्यो, चीं, च्या
	रा, री, रे	रा, री, रे	लो, ली, लें ले, ल्यो, लीं, ल्या	लो, ली, लें ले, ल्यो, लीं, ल्या
	ना, नी, ने	ना, नी, ने	गेलो, गेली, गेलें गेले, गेल्यो गेलीं, गेल्या	गेलो, गेली, गेलें गेले, गेल्यो गेलीं, गेल्या
			जो, जी, जें जे, ज्यो, जीं, ज्या	जो, जी, जें जे, ज्यो, जीं, ज्या
अधिकरण –	में, पर	में, पर	ंत, र, चेर, गेर	ंत, र, चेर, गेर
संबोधन –	०	०	०	नो, नू

हिंदी में संबंध कारक-चिह्न 'का, की, के' एकवचन तथा बहुवचन में दिखाये जाते हैं। उसी प्रकार कोंकणी में भी संबंध कारक-चिह्न 'चो, ची, चें, चे, च्यो, चीं, च्या' आदि एकवचन तथा बहुवचन में दिखाना आवश्यक है; क्यों कि इनका संबंध भी पूर्ववर्ती

संज्ञा के अनुसार नहीं होता बल्कि परवर्ती संबद्ध संज्ञा के लिंग तथा वचन और परवर्ती परसर्गयुक्त संबद्ध संज्ञा के अनुसार होता है।

नीचे क्रमशः कारकों के अनुसार कारक-चिह्नों का विकास दिखाया है।

(i) कर्ता कारक (हिंदी ' ०, ने ' तथा कोंकणी ' ०, न, एं, णें, नीं, णीं ')

हिंदी : '०, ने ' :

० : हिंदी में ' ० ' विभक्तिक रूप प्राप्त हैं। अर्थात् कुछ वाक्यों में ऐसी संज्ञाएँ होती हैं जिनमें कोई कारक-चिह्न नहीं लगा रहता, जैसे :– ' राम आम खाता है। इस वाक्य में ' राम ' और ' आम ' में कोई कारक-चिह्न नहीं लगा है। यहाँ ' राम ' संज्ञा कर्ता कारक तो ' आम ' संज्ञा कर्म कारक है। ऐसी संज्ञाओं को शून्य विभक्तिक कहा जाता है। इसका विकास ' संस्कृत से ही होने लगा था। संस्कृत में कारक-चिह्नों के बिना भी संज्ञाओं का प्रयोग होने लगा था, जैसे :– ' हे देव, हे वन, राजा, शशी, आत्मा, माला, नदी, वाक्, जगत् ' आदि। ये संज्ञाएँ ऐसी हैं जिनमें विभक्ति-चिह्न नहीं दिखायी देता है। यही प्रवृत्ति हिंदी में प्राप्त है और यही प्रवृत्ति कोंकणी में भी प्राप्त है।

ने : यह कर्ता कारक का परसर्ग है, परन्तु कर्ता के साथ सभी कालों में इसका प्रयोग नहीं होता है। यह ' मिल, समझ, बक, बोल, भूल, ला ' आदि कुछ धातुओं को छोडकर शेष सकर्मक धातुओं तथा ' नहा, खाँस, छींक ' आदि कुछ अकर्मक धातुओं के भूतकालिक कृदन्तों से बने कालों के साथ कर्मवाच्य एवं भाववाच्य में आता है। इसका प्रयोग संज्ञाओं तथा सर्वनामों के एकवचन और बहुवचन में होता है। यथा :–

सकर्मक धातुएँ

कर्मवाच्य : ' राम ने किताब पढी। '; ' लडकों ने किताब पढी।'; ' मैंने सारी चीजें देखीं। '; ' तुमने पत्र पढा।' आदि।

भाववाच्य : ' राम ने मोहन को बुलाया। '; ' तुमने लडकी को देखा। '; ' लडकों ने साँप को मारा।' आदि।

अकर्मक धातुएँ

भाववाच्य : ' राम ने नहाया। '; ' सीता ने खाँसा। ' ; हरि ने छींका। '

' ने ' कारक-चिह्न की व्युत्पत्ति के संबंध में बहुत मत-भेद हैं।

बीम्स इसे कर्मणि तथा भावे प्रयोग का अर्थ देने वाला बताते हैं। इसलिए करण कारक के अन्तर्गत इसका विचार करते हैं। उन्होंने तथा केलाग ने इसका संबंध ' लगि, लगि ' जैसे शब्दों से जोडा है[९]।

डा. हार्नले का मत है कि संप्रदान के लिए व्रजभाषा में ' कौं, को ' और मारवाडी में ' नै , ने ' का प्रयोग होता है। अतः उन्होंने संप्रदान के लिए ' ने ' या ' नैं ' अनावश्यक

समझकर इसे कर्ता और करण में प्रयुक्त माना है [८]।

डा. चटर्जी ' ने ' का विकास कर्ण > कण्ण से मानते हैं । इतना ही नहीं तो राजस्थानी, गुजराती में प्राप्त चतुर्थी (संप्रदानकारक) का ' ने ' तथा गुजराती में प्राप्त षष्ठी (संबंध-कारक) का ' नो, नी, ना, नु ' प्रत्यय भी इसी से व्युत्पन्न मानते हैं [९]।

श्री रा. भि. गुंजीकर आदि विद्वानों ने भिन्न मत स्थापन किया है । वे ' रामेण, देवेन ' में दिखायी देने वाले ' एन ' से ' ने ' व्युत्पन्न नहीं मानते बल्कि ' विधिना, भानुना ' में दिखायी देने वाले ' ना ' से व्युत्पत्ति मानना उचित समझते हैं [१०]।

श्री किशोरीदास वाजपेयी संस्कृत ' इन ' से हिंदी ' ने ' का विकास मानते हैं [११]।

डा. भोलानाथ तिवारी को उपर्युक्त किसी भी व्युत्पत्ति में संतोष नहीं है[१२]।

पता नहीं लगता कि ' लग्गि, लगि, कण्णे ' आदि तथा उनके मूल शब्द ' लग्न, लगित, कर्णे ' आदि से ' ने ' का विकास दिखाने के लिए आग्रह क्यों है ? आखिर इन मूल शब्दों का संस्कृत में कहीं-न-कहीं विभक्ति के अर्थ में प्रयोग तो दिखायी देना आवश्यक है । ' मध्ये, पारे, कृते ' आदि शब्दों का प्रयोग संस्कृत में इस प्रकार होता है । इन शब्दों में प्राप्त विभक्ति का अर्थ स्पष्ट होने के लिए इन्हें षष्ठी विभक्ति से जोडा जाता है, जैसे :– ' गंगायाः मध्ये ' । यहाँ ' गंगायां ' कहने के बदले ' गंगायाः मध्ये ' कहा गया है । (इसमें थोडी अर्थ की सूक्ष्मता है । फिर भी दोनों उदाहरणों से सप्तमी विभक्ति का अर्थ बोधित होता है ।) इसी प्रकार ' लग्ने, कर्णे ' आदि शब्द संस्कृत वाङ्मय में षष्ठी विभक्ति से जोडे हुए मिलने चाहिए और उनसे तृतीया विभक्ति का अर्थ द्योतन होना चाहिए । तभी तक ' कर्णे, कण्णे, लग्ने, लगि ' आदि से करण कारक (अभी हम उसे सिर्फ कर्ता कारक मानते हैं) ' ने ' विकसित मानना दुर्धर हो जाता है ।

वस्तुतः ऐसा लगता है कि अपभ्रंश तक संस्कृत ' इन(एन), ना ' के विकास के रूप में ' ए, एं, ण ' रूप मिलते हैं[१३]। इतना ही नहीं अपभ्रंश ' जणेण, करिण ' रूपों में तो ' एण , इण ' का संभव दिखायी देता है[१४]। अर्थात् ' एण, इण ' के ध्वनि-विपर्यय से हिंदी ' ने ' का विकास होने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

इस संबंध में कई तर्क उठाये जाते हैं । उन सबका समाधान करने का आगे यथासंभव प्रयत्न किया है । इतना ही नहीं ' ने ' के विकास के संबंध में अन्य दो कल्पनाएँ भी की हैं । ये सारी बातें इसी अध्याय के अन्त में दिये हुए ' परिशिष्ट ' उपशीर्षक में स्पष्ट की हैं पृ. १७२) ।

कोंकणी : ' ०, न, एं, णें, नीं, णीं ' :

० : ऊपर हिंदी ' ० ' के संबंध में जो बात कही है वह यहाँ कोंकणी में भी लागू होती है (देखिए पृ. १५९) ।

कोंकणी में ' न, एं, णें, नीं, णीं ' कर्ता कारक के परसर्ग हैं। हिंदी की तरह कर्ता के साथ सभी कालों में इनका प्रयोग नहीं होता है। इनका प्रयोग ' उलै (= बोल), न्हेस (= पहन), जेव (= जीम), शीक (= पढ) ' आदि धातुओं को छोडकर शेष सकर्मक धातुओं के भूतकालिक (रीतिभूतकाल की क्रियाएँ छोडकर) क्रियाओं के साथ कर्मवाच्य में तथा विध्यर्थ क्रियाओं के साथ कर्मवाच्य एवं भाववाच्य में आता है, यथा :– भूतकालिक कर्मवाच्य : ' रामान पुस्तक वाचलें. तुंवें रोटी खाल्ली. ताणें आंबे खाल्ले. हांवें सगळ्यो वस्तु पळेल्यो. भुरग्यांनीं पुस्तक वाचलां. ' आदि। विध्यर्थ कर्मवाच्य : ' रामान पुस्तक वाचचें. तुंवें रोटी खावची. ताणें आंबे खावचे. भुरग्यान पुस्तकां वाचचीं. ' आदि। विध्यर्थ भाववाच्य : ' रामान धांवचें. तुंवें खेळचें. ताणें उठचें. तांणीं बसचें. ' आदि।

न : यह संज्ञाओं के कर्ता कारक एकवचन में परसर्ग के रूप में प्राप्त है। संस्कृत करण कारक ' इन (एन) ' > अप. ' ण ' से कोंकणी में ' न ' प्राप्त है।

एं : यह परसर्ग ' हांव, तूं , कोण, आपुण ' सर्वनामों के कर्ता कारक एकवचन में जुडता है, जैसे :– ' हांवें, तुंवें, कोणें, आपणें '। संस्कृत ' इन (एन) ' > अप. ' एं ' से कोंकणी में ' एं ' प्राप्त है।

णें : यह परसर्ग ' तो, हो, जो ' सर्वनामों के कर्ता कारक एकवचन में प्रयुक्त है, जैसेः– ' ताणें, हाणें, जाणें '।

' णें ' का विकास हिंदी ' ने ' की तरह सं. ' इन (एन) ' अथवा अपभ्रंश ' ण + हिं ' या ' ण + एं ' से माना जा सकता है (विस्तार के लिए देखिए , हिंदी ' ने ', पृ. १५९ तथा १७५।।

नीं : यह संज्ञाओं के कर्ता कारक बहुवचन में परसर्ग के रूप में प्राप्त है, यथा :– ' मनशांनीं, बायलांनीं, भुरग्यांनीं ' आदि। यह ' नी ' रूप में भी प्राप्त है।

डा. भांडारकर के मतानुसार अपभ्रंश ' ण ' से विकसित ' न ' तथा ' हिं ' से विकसित ' इं ' इन दोनों के संयोग से ' नीं ' कारक-चिह्न विकसित है[१५]।

श्री वालावलकर संस्कृत ' ऐः ' या ' भिः ' से विकसित ' हि, हिं ' में से ' हिं ' से ' नीं ' का विकास मानते हैं[१६]।

श्री. गुंजीकर संस्कृत ' भिः ' से विकसित प्राचीन मराठी में प्राप्त ' हीं ' से ' नीं(नी) ' का विकास मानते हैं[१७]।

णीं : यह परसर्ग ' तो, हो, जो ' सर्वनामों के कर्ता कारक बहुवचन में जुडता है, यथा :– ' तांणीं, हांणीं, जांणीं '। ' णीं ' का विकास उपर्युक्त ' नीं ' की तरह माना जाए।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी कर्ता कारक-चिह्नों के विवेचन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं --

(१) हिंदी में 'ने' परसर्ग संज्ञाओं और सर्वनामों के कर्ता कारक एकवचन तथा बहुवचन में प्राप्त है परंतु कोंकणी में संज्ञाओं के एकवचन में 'न' तो बहुवचन में नीं; 'हांव, तूं, कोण, आपुण' सर्वनामों के एकवचन में 'एं'; 'तो, हो, जो' सर्वनामों के एकवचन में 'णें' तो बहुवचन में 'णीं' और 'कांय' सर्वनाम में 'नीं' प्राप्त है।

(२) हिंदी में कुछ क्रियाएँ छोडकर शेष सकर्मक तथा कुछ अकर्मक भूतकालिक क्रियाओं के साथ 'ने' का प्रयोग होता है। कोंकणी में भी रीतिभूतकाल छोडकर सकर्मक भूतकालिक क्रियाओं के साथ 'न, एं, णें, नीं, णीं' का प्रयोग होता है। साथ–साथ विध्यर्थ क्रिया के साथ भी कोंकणी में इन परसर्गों का प्रयोग होता है, परंतु हिंदी में 'ने' परसर्ग का प्रयोग विध्यर्थ (परोक्ष विधि या भविष्य आज्ञार्थ) में नहीं होता है।

(ii) कर्म कारक (हिंदी 'को, ए, एं' तथा कोंकणी 'क, का, कां')

हिंदी: 'को, ए, एं' :

को : यह कर्म कारक का परसर्ग है। 'को' संज्ञाओं तथा सर्वनामों में जुडता है, यथा :– 'राम को, मुझको, हमको'। डा. हार्नले, चटर्जी तथा बीम्स के अनुसार यह 'कक्षं' से विकसित है[१८]।

डा. श्यामसुंदर दास 'कक्ष' से 'को' का विकास मानने के विरोधी है। उन्होंने 'को' का विकास संस्कृत 'कृते' या 'कृतेन' से माना है[१९]।

कुछ विद्वान प्राकृत 'अम्हाकं, तुम्हाकं' से हिंदी 'हमको, तुमको' का विकास मानकर अनन्तर 'को' प्रत्यय स्वतंत्र रूप में विकसित मानते हैं।

अर्थ-सादृश्य तथा रूप-सादृश्य के आधार पर 'को' संस्कृत 'कृते' से माना जाए।

ए : हिंदी में 'मैं, तू, वह, यह, जो, सो, कौन' सर्वनामों के कर्म कारक एकवचन में 'ए' जुडता है, जैसे :– 'मुझे, तुझे, उसे, इसे, जिसे, तिसे, किसे'।

एं : यह हिंदी में 'मैं, तू, वह, यह, जो, सो, कौन' सर्वनामों के कर्म कारक बहुवचन में जुडता है, जैसे :– "हमें, तुम्हें, उन्हें, इन्हें, जिन्हें, तिन्हें, किन्हें'।

'ए' तथा 'एं' का विकास 'अम्हइँ, तुम्हइँ' से विकसित 'हमें, तुम्हें' से माना है (विस्तार के लिए देखिए, 'मुझे' रूप, पृ. १९८)

कोंकणी : 'क, का, कां' :

क : कोंकणी में 'क' कर्म कारक का परसर्ग है। 'क' संज्ञाओं तथा 'कोण, कितें, कांय, आपुण' सर्वनामों में प्राप्त है, यथा :– 'रामाक, भुरग्याक, भुरग्यांक, कोणाक, कित्याक, कांयक, आपणाक' आदि।

डा. कत्रे ने ' क ' की व्युत्पत्ति संस्कृत ' कृते, कृतं ' से मानी है [२०]।

श्री वालावलकर संस्कृत ' अस्माकं, युष्माकं ' से कोंकणी ' आमकां, तुमकां ' का विकास मानकर ' कां ' स्वतंत्र परसर्ग के रूप में विकसित मानते हैं। अनन्तर ' कां ' से ' का ' तथा ' क ' का विकास मानते हैं [२१]।

का : यह कोंकणी में ' हांव, तूं , तो, हो, जो ' सर्वनामों के कर्म कारक एकवचन में प्राप्त है, यथा :– ' म्हाका, तुका, ताका / तिका, हाका / हिका, जाका / जिका ' ।

कां : यह कोंकणी में ' हांव , तूं , तो , हो , जो ' सर्वनामों के कर्मकारक बहुवचन में प्राप्त है, यथा :– ' आमकां, तुमकां, ताकां, हांकां, जांकां ' ।

' का ' तथा ' कां ' का विकास श्री वालावलकर ने ' अस्माकं, युष्माकं ' से माना है ।

डा. भाण्डारकर प्राकृत ' कहिं ' > ' कहं ' से ' कां ' का विकास मानते हैं [२२]।

× × ×

उपर्युक्त कर्म कारक परसर्ग के विवेचन से हिंदी तथा कोंकणी में निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी तथा कोंकणी के कर्म कारक में तीन-तीन परसर्ग हैं, यथा :– हिंदी : ' को, ए, एं '; कोंकणी : ' क, का, कां ' ।

(२) हिंदी ' को ' संज्ञाओं तथा सर्वनामों में प्रयुक्त है तो ' ए ' तथा ' एं ' केवल सात सर्वनामों में विकल्प से प्राप्त हैं। कोंकणी में ' क ' संज्ञाओं तथा ' कोण, कितें, कांय, आपुण ' सर्वनामों में प्राप्त है तो ' का ' तथा ' कां ' केवल पाँच सर्वनामों में प्राप्त हैं।

(३) हिंदी ' को ' साधारणतया ' क, का, कां ' से समान दिखायी देता है परंतु ' ए, एं ' किसी प्रकार समान नहीं हैं।

(iii) करण कारक (हिंदी ' से ' तथा कोंकणी ' न, नीं ')

करण कारक ' से ' चिह्न हिंदी में एकवचन तथा बहुवचन में प्राप्त है तो कोंकणी में एकवचन में ' न ' तथा बहुवचन में ' नीं ' प्राप्त हैं। हिंदी : ' बाण से, बाणों से '; कोंकणी : ' बाणान, बाणांनीं ' ।

हिंदी : ' से ' :

डा. हार्नले ' से ' का संबंध संस्कृत अस् > प्राकृत ' सन्तो, सुन्तो ' से मानते हैं। बीम्स के अनुसार संस्कृत ' समं ' से ' से ' का विकास है। डा. भोलानाथ तिवारी ' से ' का विकास ' संगे ' से मानते हैं।

कोंकणी : ' न, नीं ' :

न : करण कारक एकवचन में प्राप्त है ।
नीं : करण कारक बहुवचन में प्राप्त है ।
कोंकणी करण कारक ' न, नीं ' का विकास उपर्युक्त कर्ता कारक 'न, नीं ' की तरह है ।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी करण कारक-चिह्नों के विवेचन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी में करण कारक एकवचन तथा बहुवचन में एक ही ' से ' परसर्ग है तो कोंकणी में करण कारक एकवचन में ' न ' तथा बहुवचन में ' नीं ' परसर्ग है ।

(२) हिंदी ' से ' तथा कोंकणी ' न, नीं ' में अंतर है ।

(iv) संप्रदान कारक (हिंदी ' को, ए , एं ' तथा कोंकणी ' क, का, कां ')

संप्रदान कारक में हिंदी में ' को, ए, एं ' तथा कोंकणी में ' क, का, कां ' परसर्ग हैं । इनका विवेचन कर्म कारक में किया है (देखिए, पृ. १६२) ।

(v) अपादान कारक (हिंदी ' से ' तथा कोंकणी ' सून ')

हिंदी में अपादान कारक के एकवचन और बहुवचन में ' से ' तथा कोंकणी में अपादान कारक के एकवचन और बहुवचन में ' सून ' परसर्ग है । हिंदी : ' गाँव से, गाँवों से '; कोंकणी : ' गांवासून, गांवांसून '।

हिंदी : ' से ' :

हिंदी में अपादान कारक ' से ' तथा करण कारक ' से ' में अन्तर नहीं है । इसका विकास करण कारक ' से ' के समान है ।

कोंकणी :'सून ' :

कोंकणी ' सून ' की व्युत्पत्ति प्राकृत के ' सुन्तो ' से मानी जाती है ।
' सुन्तो ' प्रत्यय के संबंध में श्री रा. भि. गुंजीकर का मन्तव्य है कि प्राकृत के सप्तमी बहुवचन के ' सुं ' और पंचमी के अव्ययार्थक विभक्ति प्रत्यय ' तस् ' के संयोग से ' सुन्तो ' विकसित है । इस ' सुन्तो ' से ' सून ' विकसित है[२३] ।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी अपादान कारक चिह्नों के विवेचन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती है –

(१) हिंदी ‘ से ’ तथा कोंकणी ‘ सून ’ एकवचन तथा बहुवचन में प्रयुक्त है ।
(२) हिंदी ‘ से ’ तथा कोंकणी ‘ सून ’ में अन्तर है ।

(vi) संबंध कारक (हिंदी ‘ का, रा, ना ’ तथा कोंकणी ‘ चो, लो, गेलो, जो’)

हिंदी में संबंध कारक के प्रमुख परसर्ग ‘ का, रा, ना ’ तथा कोंकणी में संबंध कारक के प्रमुख परसर्ग ‘ चो, लो, गेलो, जो ’ हैं । ये परसर्ग हिंदी तथा कोंकणी में परवर्ती सबद्ध संज्ञा के लिंग, वचन और परसर्गयुक्त परवर्ती संबद्ध संज्ञा से प्रभावित हैं । इससे इनके और रूप प्राप्त हैं, यथा –

हिंदी	कोंकणी
का : की, के	**चो** : ची, चें, चे, च्यो, चीं, च्या
रा : री, रे	**लो** : ली, लें, ले, ल्यो, लीं, ल्या
ना : नी, ने	**गेलो** : गेली, गेलें, गेले, गेल्यो, गेलीं, गेल्या
	जो : जी, जें, जे, ज्यो, जीं, ज्या

नीचे हिंदी ‘ का ’ तथा कोंकणी ‘ चो ’ परसर्ग के उदाहरण दिये हैं –

संबद्ध संज्ञा	लिंग	वचन	हिंदी	कोंकणी
परवर्ती.	पु.	एक.	राम का लडका	रामाचो भुरगो
,,	,,	बहु.	राम के लडके	रामाचे भुरगे
परसर्गयुक्त परवर्ती.	,,	एक.	राम के लडके ने	रामाच्या भुरग्यान
,,	,,	बहु.	राम के लडकों ने	रामाच्या भुरग्यांनीं
परवर्ती.	स्त्री.	एक.	राम की लडकी	रामाची चली
,,	,,	बहु.	राम की लडकियाँ	रामाच्यो चलयो
परसर्गयुक्त परवर्ती.	,,	एक.	राम की लडकी ने	रामाच्या चलयेन
,,	,,	बहु.	राम की लडकियों ने	रामाच्या चलयांनीं
परवर्ती.	नपुं.	एक.	––	रामाचें पुस्तक
,,	,,	बहु.	––	रामाचीं पुस्तकां
परसर्गयुक्त परवर्ती.	,,	एक.	––	रामाच्या पुस्तकाक
,,	,,	बहु.	––	रामाच्या पुस्तकांक

उपर्युक्त संबंध कारक-चिह्न पूर्ववर्ती संज्ञाओं के लिंग और वचन के कारण परिवर्तित नहीं होते, यथा :– हिंदी : ‘ लडकों का खेल ’; कोंकणी : ‘ भुरग्यांचो खेळ ’ ।

इसी प्रकार हिंदी के शेष ‘ रा, ना ’ तथा कोंकणी के शेष ‘ लो, गेलो, जो ’ संबंध कारक चिह्नों में परवर्ती संज्ञा के कारण परिवर्तन होता है ।

हिंदी : ' का, रा, ना ' :

का : ' का ' परसर्ग ' मैं, तू ' और निजवाचक ' आप ' सर्वनाम छोडकर शेष सर्वनामों तथा संज्ञाओं के संबंध कारक में प्राप्त है, यथा :– ' इसका, उसका, राम का, लडकों का, लडकी का ' आदि ।

हिंदी ' का ' के संबंध में विद्वानों में मत-भेद है । बीम्स प्रा. केर > हिं. ' का ' की व्युत्पत्ति संस्कृत ' कृतः ' से मानते हैं [२४]।

डा. भोलानाथ तिवारी आदि विद्वान इस मत से सहमत हैं [२५]।

पिशेल आदि विद्वान हिंदी ' केर ' आदि का संबंध ' कार्य ' से मानते हैं [२६]।

डा. चटर्जी हिंदी ' का ' का विकास संस्कृत ' कृत ' से मानते हैं तथा ' करा, केरा, केर ' आदि का विकास संस्कृत ' कार्य ' से मानते हैं [२७]।

परंतु ऐसा लगता है कि हिंदी ' का ' प्राकृत में प्राप्त ' केर ' प्रत्यय से व्युत्पन्न है । प्राकृत में ' केर ' प्रत्यय के अनेक उदाहरण हैं, यथा :– ' अम्हकेरो, तुम्हकेरो, परकेरो, रायकेरो ' आदि ।

प्राकृत में प्राप्त ' केर ' प्रत्यय किससे विकसित है ? शायद यह संस्कृत के ' मामकीन, आस्माकीन, तावकीन, यौष्माकीण ' में प्राप्त ' कीन (कीण) ' से विकसित होने की संभावना है (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी ' मेरा ' रूप, पृ. २००) ।

' की, के ' रूप ' का ' परसर्ग के लिंगीय तथा वचनीय रूप हैं ।

रा : हिंदी ' मैं ' तथा ' तू ' सर्वनामों के संबंध कारक में ' रा ' परसर्ग जुडता है, यथा :– ' मैं : मेरा, हमारा '; ' तू : तेरा, तुम्हारा ' ।

' रा ' की व्युत्पत्ति के संबंध में मत-भेद हैं । परंतु इसका विकास ' मामकीन ' आदि में प्राप्त ' कीन ' से मानने का प्रयत्न किया है (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी ' मेरा ' रूप, पृ. २००) । ' रा ' के भी ' री, रे ' रूप प्राप्त हैं जो लिंग तथा वचन से संबंधित हैं ।

ना : हिंदी में निजवाचक सर्वनाम ' आप ' के संबंधकारक में ' ना ' परसर्ग जुडता है, यथा :– ' अपना ' । यह परसर्ग निजवाचक ' आप ' के एकवचन में प्राप्त है ।

' ना ' का विकास संस्कृत ' आत्मनीन ' में प्राप्त ' नीन ' से है (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी ' अपना ', पृ. २६१) । ' ना ' के ' नी, ने ' रूप भी प्राप्त हैं जो लिंग तथा वचन के कारण परिवर्तित हैं ।

कोंकणी : ' चो, लो, गेलो, जो ' :

चो : यह परसर्ग सभी संज्ञाओं तथा ' हांव (= मैं), तूं (=तू) ' सर्वनामों के एकवचन छोडकर शेष सभी सर्वनामों के संबंध कारक के एकवचन और बहुवचन में प्राप्त है, यथा :– ' मनशाचो, बायलेचो, घराचो, ताचो, आमचो, तुमचो, तांचो ' आदि ।

प्रा. कुलकर्णी ' चा ' का विकास संस्कृत ' ईय ' से मानते हैं [२८] ।

डा. तुळपुळे प्रथम ' त्य ' या ' त्यत् ' से ' चा ' का विकास मानते थे । परंतु अब वे संस्कृत ' कृत्य ' से ' चा ' के विकास की व्युत्पत्ति सर्वाधिक मानते हैं [२९] ।

ज्यूल ब्लाक प्राकृत ' अम्हेच्चयं, तुम्हेच्चयं ' से ' चा ' के विकास के संबंध में सहमत होते हुए दिखायी देते हैं [३०] ।

' ची, चें, चे, च्यो, चीं, च्या ' परसर्ग ' चो ' के रूप हैं, जो लिंग और वचन तथा परसर्ग युक्त संज्ञा के कारण प्राप्त हैं ।

लो : उपर्युक्त ' चो ' के सिवा कोंकणी में संबंध कारक का दूसरा चिह्न ' लो ' है । ' लो ' परसर्ग ' आपुण, कोण ' सर्वनामों तथा प्राणिवाचक संज्ञाओं के संबंध कारक में प्राप्त है, यथाः– ' आपणालो, कोणालो, रामालो, मनशांलो, बैलालो, गायींलो ' आदि ।

श्री वालावलीकर संस्कृत ' मधु, वारि ' शब्दों के संबंध कारकीय ' मधुनः , वारिणः' रूपों में प्राप्त ' नः, णः ' से कोंकणी ' लो ' का विकास मानते हैं । इस प्रकार वे ' आत्मनः ' से कोंकणी ' आपलो ' का विकास मानते हैं [३१]।

कोंकणी ' लो ' में परवर्ती संज्ञा के लिंग और वचन का प्रभाव है । इसलिए ' लो ' का विकास कारकीय प्रत्ययों से विकसित न मानकर तद्धित प्रत्यय से मानना उचित होगा।

संस्कृत में ' ल, इल ' तद्धित प्रत्यय प्राप्त हैं [३२] । पालि में भी ' ल , इल ' प्राप्त हैं [३३] । पालि में यद्यपि ' उल्ल ' नहीं है तथापि ' दुट्ठुल्ल ' रूप प्राप्त है [३४] । इनसे प्राकृत में ' इल्ल, उल्ल ' प्रत्यय विकसित हैं । इनसे कोंकणी में ' लो ' परसर्ग विकसित माना जा सकता है ।

यहाँ एक और संभावना हो सकती है । संस्कृत में ' आत्मनीन ' रूप प्राप्त है । श्री वालावलीकर ने दिखाये ' न ' के ' ल ' होने की प्रक्रिया के आधार पर ' आत्मनीन ' से ' आपलो ' का भी विकास माना जा सकता है । इस ' आपलो ' में प्राप्त ' लो ' का प्रभाव अन्य संज्ञाओं में माना जा सकता है । श्री वालावलीकर ' आत्मनः ' से ' आपलो ' का विकास मानकर ' लो ' का प्रभाव अन्य संज्ञाओं में मानते हैं [३५] । संस्कृत ' आत्मनः ' से विकसित ' लो ' में लिंग-वचन का संबंध नहीं जुड सकता; परंतु ' आत्मनीन ' से विकसित ' आपलो ' में लिंग-वचन का संबंध जुड सकता है, क्योंकि ' आत्मनीन ' तद्धितान्त रूप है । एवं ' आत्मनीन ' से विकसित ' आपलो ' में प्राप्त ' लो ' परसर्ग कोंकणी के संबंध कारक में प्राप्त माना जा सकता है ।

' ली, लें, ले, ल्यो, लीं, ल्या ' रूप ' लो ' परसर्ग के हैं जो लिंग, वचन तथा परसर्गयुक्त संज्ञा के कारण प्राप्त हैं ।

गेलो : कोंकणी में संबंध कारक का तीसरा चिह्न ' गेलो ' है। ' गेलो ' सर्वनामों तथा मनुष्यवाचक संज्ञाओं के संबंध कारक में जुडता है, यथा :– ' मगेलो, आमगेलो, मनशागेलो, रामागेलो ' आदि।

श्री वालावलीकर संस्कृत ' माकीन, त्वाकीन ' आदि में प्राप्त ' कीन ' से कोंकणी ' गेलो ' का विकास मानते हैं [३६]।

वचन, लिंग तथा परसर्गयुक्त संज्ञा के कारण ' गेलो ' के अन्य छः रूप प्राप्त हैं, जैसे :– ' गेली, गेलें, गेले, गेल्यो, गेलीं, गेल्या '।

जो : कोंकणी में संबंध कारक का चौथा चिह्न है ' जो '। ' जो ' परसर्ग ' हांव, तूं ' सर्वनामों के संबंध कारक एकवचन में प्राप्त है, यथा:– ' हांव : म्हजो ' ; ' तूं : तुजो '। इसके सिवा ' तो, हो ' सर्वनामों के संबंध कारक एकवचन में ' जो ' वैकल्पिक रूप में प्राप्त हैं ' यथा:– ' तो : ताजो ' ; हो : हाजो '। ' ताजो ', ' हाजो ' के वैकल्पिक रूप ' ताचो ', ' हाचो ' होते हैं।

' जो ' का विकास संस्कृत ' मदीय, त्वदीय ' आदि रूपों में प्राप्त ' ईय ' से माना है[३७]।

वचन, लिंग तथा परसर्गयुक्त संज्ञा के कारण ' जो ' के अन्य रूप भी प्राप्त हैं, जैसे:– ' जी, जें, जे, ज्यो, जीं, ज्या '।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी संबंध कारक-चिह्नों के विवरण से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी में ' का, रा, ना ' तथा कोंकणी में ' चो, लो, गेलो, जो ' संबंध कारक के परसर्ग हैं।

(२) हिंदी तथा कोंकणी के इन परसर्गों पर परवर्ती संज्ञा के लिंग, वचन तथा परसर्गयुक्त परवर्ती संबद्ध संज्ञा का प्रभाव पडता है। इससे हिंदी के ' का, रा, ना ' के और दो-दो रूप होते हैं, तो कोंकणी के ' चो, लो, गेलो, जो ' के और छः-छः रूप होते हैं।

(३) हिंदी के ' का, रा, ना ' तथा कोंकणी के ' चो, लो, गेलो, जो ' में अन्तर है।

(vii) अधिकरण कारक (हिंदी ' में, पर ' तथा कोंकणी ' ंत, र, चेर, गेर ')

हिंदी : ' में, पर ' :

हिंदी में ' में, पर ' संज्ञाओं तथा सर्वनामों के अधिकरण कारक के एकवचन और बहुवचन में प्राप्त हैं, यथा :– संज्ञा ' घर ' का एक.:' घर में, घर पर ' ; संज्ञा ' घर '

का बहु. : ‘ घरों में, घरों पर ’ ; सर्वनाम ‘ मैं ’ का एक. : ‘ मुझमें , मुझपर ’ ; सर्वनाम ‘ मैं ’ का बहु. : ‘ हममें , हमपर ’ ।

में : इसकी व्युत्पत्ति के संबंध में प्रायः मतभेद नहीं है । इसका विकास संस्कृत ‘ मध्ये ’ से माना जाता है ।

पर : इसका विकास कुछ विद्वान संस्कृत ‘ परि ’ से तो कुछ विद्वान संस्कृत ‘ उपरि ’ से मानते हैं ।

कोंकणी : ‘ ंत, र, गेर, चेर ’ :

कोंकणी ‘ ंत, र, गेर, चेर ’ संज्ञाओं तथा सर्वनामों के अधिकरण कारक के एकवचन और बहुवचन में प्राप्त हैं, यथा –

परसर्ग :	संज्ञा	एक.	बहु.	सर्वनाम	एक.	बहु.
ंत :	घर –	घरांत	घरांत	हांव –	म्हज्यांत	आमच्यांत
र :	पांय –	पांयार	पांयांर	तूं –	तुजेर	तुमचेर
गेर :	भुरगो –	भुरग्यागेर	भुरग्यांगेर	तो –	तागेर	तांगेर
चेर :	मूय –	मुयेचेर	मुयांचेर	हो –	हाचेर	हांचेर

(उपर्युक्त ‘ र ’ परसर्ग के सामने दिया हुआ ‘ तुमचेर ’ रूप ‘ चेर ’ परसर्ग से भी निष्पन्न हो सकता है ।)

ंत : कोंकणी ‘ ंत ’ संस्कृत ‘ अन्तः ’ से विकसित है ।
र : कोंकणी ‘ र ’ संस्कृत ‘ उपरि ’ से विकसित है ।

गेर : कोंकणी ‘ गेर ’ का विकास संस्कृत ‘ गृहे ’ से है ।

चेर : कोंकणी ‘ चेर ’ का विकास दो प्रत्ययों के संयोग से माना है । संबंध कारक ‘ चो ’ का ‘ च ’ रूप तथा ‘ उपरि ’ से विकसित ‘ वैर ’ के संयोग (च + वैर) से ‘ चेर ’ विकसित माना है [३८]।

उपर्युक्त कोंकणी परसर्गों में से साधरणतया कोंकणी ‘ ंत ’ परसर्ग का अर्थ हिंदी में ‘ में ’ परसर्ग से, कोंकणी ‘ र ’ परसर्ग का अर्थ हिंदी में ‘ पर ’ परसर्ग से, कोंकणी ‘ गेर ’ परसर्ग का अर्थ हिंदी में ‘ घर ’ शब्द से तथा कोंकणी ‘ चेर ’ परसर्ग का अर्थ हिंदी में ‘ के ऊपर ’ से स्पष्ट होता है ।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी अधिकरण कारक-चिह्नों के विवरण से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी अधिकरण कारक में ‘ में, पर ’ परसर्ग हैं, तो कोंकणी अधिकरण कारक में ‘ ंत, र, गेर, चेर ’ परसर्ग हैं ।

(२) हिंदी तथा कोंकणी अधिकरण कारक परसर्गों में अन्तर है ।

(viii) संबोधन (हिंदी : ' ० ' तथा कोंकणी ' नो, नू ')

हिंदी : ' ० ' :

हिंदी संबोधन में कारक-चिह्न उपलब्ध नहीं है ।

कोंकणी : ' नो, नू ' :

कोंकणी में संबोधन के एकवचन में कारक-चिह्न नहीं है, परंतु बहुवचन में ' नो ' चिह्न जुडता है, यथा :– 'मनशांनो, भुरग्यांनो, राणयांनो, रायांनो, मामांनो ' आदि । ' नो ' के बदले ' नू ' का भी कभी-कभी प्रयोग होता है, यथा :– ' मनशांनू , भुरग्यांनू ' आदि ।

' नो, नू ' का विकास प्राकृत से हुआ है । प्राकृत में संबोधन के बहुवचन में ' दण्डिनो, स्वयंभुवो, गिरिणो, रायाणो ' आदि होता है । इनमें प्राप्त ' नो ' या ' णो ' से कोंकणी में ' नो, नू ' प्राप्त हैं ।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी संबोधन कारक-चिह्नों के विवेचन से निम्नलिखित बात स्पष्ट होती है –

हिंदी में संबोधन के लिए कोई परसर्ग नहीं है, परंतु कोंकणी संबोधन में ' नो, नू ' परसर्ग हैं । इस दृष्टि से हिंदी तथा कोंकणी में अन्तर है ।

(ix) कारक-चिह्नों के समान प्रयुक्त अन्य शब्द

ऊपर दिए हुए कारक-चिह्नों के अतिरिक्त हिंदी तथा कोंकणी में कुछ संबंधबोधक अव्यय कारकों के अर्थ में प्रयुक्त हैं, यथा –

हिंदी –

कर्म कारक :	' प्रति (सं.) ' – राम के प्रति ।
करण कारक :	' द्वारा(सं.) ' – राम के द्वारा । ' कारण (सं.) ' – राजाश्रय के कारण । ' मारे (सं. मारितेन) ' – भूख के मारे । ' जरिए (अ.) ' – रस्सी के जरिए ।
संप्रदान कारक :	' लिए (सं. लग्ने) ' – प्रजा के लिए । ' हेतु(सं.) ' – धर्म के हेतु । ' निमित्त (सं.) ' – भरत के निमित्त । ' वास्ते (अ.) ' – राम के वास्ते ।
अपादान कारक :	' अपेक्षा (सं.) ' – उसकी अपेक्षा । ' सामने (सं. सम्मुख) ' – घर के सामने । ' बनिस्बत (फा.) ' – गोपाल की बनिस्वत ।

अधिकरण कारक : ' मध्य (सं.) ' – महल के मध्य। ' बीच (सं. विच्) ' – सभा के बीच। ' ऊपर (सं. उपरि) ' – सिर के ऊपर। ' पास (सं. पार्श्व) ' – घर के पास। ' अंदर (फा.) ' – घर के अंदर।

कोंकणी –

कर्म कारक : ' कडेन (कड + न) ' – रामाकडेन.

करण कारक : 'कडच्यान (कड + च्यान)' – रामकडच्यान. ' च्यान (त्यद् हिन्तो) ' – रामाच्यान. ' लागून (सं. लगित्वा) ' – राजाश्रयालागून.

संप्रदान कारक : ' साटीं (सं. स्यार्थे) '–रामासाटीं. ' खातीर (अ.) ' – रामाखातीर.

अपादान कारक : ' च्यान (चो+न) ' – घरच्यान. ' साकून (सं. साकम् + प्रा. हिन्तो) ' – घरासाकून. ' परस (सं. पार्श्व) ' – रामापरस. ' कूय(सं. कुतः) ' – रामाकूय, घराकूय.

अधिकरण कारक : ' मदीं (सं. मध्ये) ' – घरामदीं. ' वैर (सं. उपरि) ' – घरावैर. ' म्हन्यांत (सं. मर्यादा) ' – रामाम्हन्यांत. ' भितर (सं. अभ्यन्तर) ' – घराभितर.

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी शब्द संबंध कारक के रूपों में लगाये जाते हैं। हिंदी तथा कोंकणी के इन संबंधबोधक अव्ययों में काफी भिन्नता है।

४) पुरुष

संस्कृत में तीन पुरुष हैं :– (१) उत्तम पुरुष, (२) मध्यम पुरुष और (३) प्रथम पुरुष। पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में भी यही स्थिति रही। नाम भी प्रायः वही हैं जो संस्कृत के थे। हिंदी में भी पहले यही नाम दिखायी देते हैं। आगे चलकर हिंदी, मराठी आदि व्याकरण ग्रंथों में नामों के संबंध में कुछ गडबड दिखायी देती है, जैसेः– उत्तम के लिए ' प्रथम ', मध्यम के लिए ' द्वितीय ' और प्रथम के लिए ' तृतीय ' या ' अन्य '। परंतु हिंदी में ज्यादातर ' उत्तम, मध्यम और अन्य ' नाम ही अधिक प्रचलित हैं अतः यही नाम इस ग्रंथ में व्यवहृत हैं। ये पुरुष और उनसे संबंधित शब्द नीचे दिये हैं –

पुरुष :	हिंदी		कोंकणी	
	एक.	बहु.	एक.	बहु.
उत्तम :	मैं	हम	हांव	आमी
मध्यम :	तू	तुम	तूं	तुमी

अन्य : अन्य पुरुष में शेष सभी सर्वनाम और सभी संज्ञाएँ आती हैं।

अत एव मध्यम पुरुष ' तुम ' के स्थान प्रयुक्त होने वाला सर्वनाम भी अन्य पुरुष होता है और उसके साथ आने वाली क्रिया अन्य पुरुष में व्यवहृत होती है, जैसे :– ' तुम जाते हो । ' ; ' आप जाते हैं । '। यहाँ ' तुम जाते हो ' वाक्य के सदृश ' आप ' के साथ ' जाते हो ' क्रिया का प्रयोग नहीं होता है । कोंकणी में आप जैसा सर्वनाम न होने के कारण कोंकणी की पुरुष वाचक प्रक्रिया हिंदी से आसान है ।

इस प्रकार इन्हीं पुरुषों के आधार पर हिंदी तथा कोंकणी क्रियाओं की रूप-रचना संपन्न होती है ।

संक्षेप में –

(१) हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में लिंग की दृष्टि से बडा भेद दिखायी देता है । हिंदी में दो तो कोंकणी में तीन लिंग हैं । संस्कृत से आगत तत्सम या तद्भव शब्द में भी लिंगांतर की दृष्टि से काफी अंतर आया है ।

(२) हिंदी तथा कोंकणी के दो स्त्रीलिंग प्रत्ययों में साम्य है, दो में कुछ साम्य होते हुए भी भिन्नता है तो हिंदी के शेष स्त्रीलिंग प्रत्यय कोंकणी में प्रायः प्राप्त नहीं है ।

(३) दो वचनों की दृष्टि से हिंदी तथा कोंकणी में समानता है । फिर भी इनमें एक अंतर है । हिंदी तथा कोंकणी में कुछ शब्द ऐसे हैं जो केवल बहुवचन में मिलते हैं, परंतु ये शब्द दोनों में प्रायः भिन्न–भिन्न हैं ।

(४) हिंदी तथा कोंकणी में व्यंजनान्त शब्द नहीं है तथा इन दोनों में द्विवचन प्राप्त नहीं है ।

(५) हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं में कारक-चिह्न (= परसर्ग) लगाते समय संज्ञाओं के रूपों में सुलभता आयी है, फिर भी हिंदी की अपेक्षा कोंकणी में वैविध्य है ।

(६) हिंदी तथा कोंकणी के कुछ कारकीय स्वरूपों में समानता प्राप्त होते हुए भी बहुत से कारकीय स्वरूपों में भिन्नता दिखायी देती है ।

(७) हिंदी ' ने, को, का ' तथा कोंकणी ' न, क, का ' आदि कारक-चिह्नों में यद्यपि कुछ समानता दिखायी देती है, फिर भी हिंदी तथा कोंकणी कारक-चिह्नों में बहुत अंतर है ।

(८) हिंदी तथा कोंकणी में कारक–चिह्नों के समान प्रयुक्त होने वाले शब्द प्रायः भिन्न–भिन्न दीखते हैं ।

(९) पुरुषों की दृष्टि से भी हिंदी तथा कोंकणी में समानता है । परंतु मध्यम तथा अन्य पुरुष के बहुवचन में आदर दिखाने लिए हिंदी में उपयुक्त होनेवाला ' आप ' जैसा सर्वनाम कोंकणी में नहीं है ।

परिशिष्ट

हिंदी कर्ता कारक ' ने ' के संबंध में अनेक विद्वानों के मत देकर यह बात स्पष्ट की है कि इसका विकास संस्कृत ' इन(एन) ' से हुआ है (देखिए पृ. १५९) । फिर भी इस मंतव्य पर कई तर्क उपस्थित होते हैं । ये तर्क और उनका समाधान निम्नलिखित प्रकार से हैं –

(१) संस्कृत के ' इन (एन) ' का अपभ्रंश में ' इण (एण) ' होने पर फिर ' इण ' के ' ण ' का ' न ' होना कहाँ तक उचित है ? यहाँ फिर से नत्व के रूप में भाषा-विकास का प्रवाह प्राचीनत्व की ओर मुडा दिखायी देता है, क्या यह संभव है ?

इसका समाधान यह है कि विकास का परिवर्तन चक्राकार होता है । विकास जहाँ से शुरू होता है वहीं फिर से उसकी गति पहुँचती है । भाषा-विज्ञानियों का अनुमान है कि भाषा के विकास का चक्र अयोगात्मकता से योगात्मकता की ओर और योगात्मकता से अयोगात्मकता की ओर अनवरत चलता रहता है [३९] । यही प्रक्रिया अपभ्रंश ' इण (एण) ' के ' ण ' का ' न ' होते समय मानने में कोई अडचन नहीं है ।

दूसरी एक बात । आज हम देखते हैं कि हिंदी में स्वरान्त शब्दों में व्यंजनान्त का स्वरूप आ रहा है । वास्तव में संस्कृत के व्यंजनान्त शब्द लुप्त होकर स्वरान्त बनते चले आये थे । परंतु यह स्थिति आज फिर से बदल रही है ।

(२) अन्य विभक्तियों की हिंदी में परिणति देखते हुए ' इन (एन) ' से ' ने ' परिवर्तन असाधारण लगता है क्यों कि प्राचीन भारतीय आर्यभाषा की अन्य विभक्तियाँ आधुनिक भारतीय आर्यभाषा में लघु रूप में प्रवृत्त होती हैं; यथा :– सं. आनि > हिं. एं ; सं. आनाम् > हिं. ओं । इन परिवर्तनों में ' न् ' की परिणति अनुस्वार में हुई दिखायी देती है । वर्ण – व्यत्यय द्वारा उसका दीर्घ रूप नहीं बनाया गया, फिर इन > ने में ' न् ' का दीर्घ रूप होना संभव नहीं है ।

भाषा का परिवर्तन सदा साधारण रूप में नहीं होता है । कुछ बातें उसमें असाधारण रूप में भी परिवर्तित होती हैं । एवं भाषा की यादृच्छिकता को सभी विद्वान मान्यता देते हैं । इसलिए इन > ने यदि दीर्घ रूप में परिवर्तित हुआ हो तो इसमें किसी को आपत्ति नहीं होगी ।

(३) हिंदी ' ने ' अपभ्रंश ' इण (एण) ' के ध्वनि-विपर्यय (इण > नइ > ने) से प्राप्त है; यह संभावना उचित नहीं, क्योंकि ऐसा ध्वनि–विपर्यय अन्य कारक–चिह्नों में नहीं दिखायी देता । अतः ' ने ' के संबंध में ध्वनि-विपर्यय की कल्पना कहाँ तक टिक सकती है ?

यद्यपि ध्वनि–विपर्यय अन्य कारक–चिह्नों में उपलब्ध नहीं है फिर भी कारक–चिह्न भिन्न शब्दों में ध्वनि–विपर्यय प्राप्त है, यथा : – अंगुली > उंगली । इस प्रकार ध्वनि–विपर्यय कारक–चिह्न में भी मानने में अडचन नहीं होगी ।

इस समाधान में भी त्रुटियाँ ढूँढने वालों के सामने एक प्रश्न है । क्या भाषागत परिवर्तन के नियम निश्चित स्वरूप में प्राप्त हैं ? यदि नहीं, तो दूसरे कारक–चिह्नों में ध्वनि–विपर्यय नहीं है इसलिए ' ने ' के संबंध में ध्वनि–विपर्यय मानना उचित क्यों नहीं ?

(४) संस्कृत ' इन ' अपभ्रंश में ' इण (एण) ' रूप में प्राप्त है ; तथापि पुरानी हिंदी में कारक–चिह्न घिस गये थे । इसलिए बीच में कारक–चिह्नों की कडी टूटने पर संस्कृत आदि भाषाओं से संबंध जोडना कठिन है । अतः हिंदी ' ने ' का विकास संस्कृत ' इन ' से कैसे मानें ?

इस प्रकार की आपत्ति मानने की कोई आवश्यकता नहीं । ऐसे कई रूप हैं कि जिनका बीच का रूप लुप्त हो गया है और उस परंपरा को बनाए रखने के लिए प्रयत्न किया है । इसके लिए किसी कल्पित रूप की कल्पना की है । सर्वनामों में कई रूप ऐसे हैं जिनकी कडी टूटने के कारण कल्पित रूपों के आधार पर उन्हें सिद्ध किया है । इतना ही नहीं, कल्पित रूपों की लंबी परंपरा स्वीकार कर भी रूप–सिद्धि का यत्न किया है । डा. भोलानाथ तिवारी ने ' वह ' सर्वनाम इस प्रकार सिद्ध किया है [४०] । आखिर ' ने ' के संबंध में ही ऐसा क्यों सोचें कि उसकी कडी टूटती है । यहाँ भी किसी कल्पित रूप से टूटी हुई कडी जोडकर ' ने ' का विकास सिद्ध करने का प्रयत्न क्यों न किया जाए ?

(५) ' ने ' का प्रयोग अधिक प्राचीन भी नहीं है । यदि यह इन > ने होता तो पुरानी हिंदी अथवा उसकी जननी पश्चिमी अपभ्रंश में इसका कोई–न–कोई उदाहरण अवश्य मिलता । परंतु ऐसे किसी उदाहरण का न मिलना ' ने ' की नवीनता सिद्ध होती है ।

वैदिक संस्कृत में ' ळ ' था । फिर भी संस्कृत में ' ळ ' प्राप्त नहीं । ऐसे होते हुए भी ' ळ ' का प्रादुर्भाव पालि में हुआ है । इसका अर्थ यह नहीं होता, पालि में ' ळ ' कहाँ से आ टपका ? क्या पालि के लिए ' ळ ' नया था ? अर्थात् इसका अर्थ यह है कि संस्कृत–काल के वातावरण में ' ळ ' कहीं–न–कहीं अवश्य था । इससे पालि में फिर से ' ळ ' का आगमन हुआ । आज भी हम देखते हैं कि हिंदी में ' ळ ' नहीं है । इसका अर्थ यह नहीं है कि वह हिंदी–काल में हिंदी के पूरे वातावरण से उठ गया है । बल्कि आज ' मालवी, कौरवी, हाडौती, निमाडी, हरियानबी ' में ' ळ ' प्राप्त है । इनमें प्राप्त ' ळ ' को आज लिखित रूप में न रखें तो अनन्तर के काल में यही धारणा होगी कि हिंदी में ' ळ ' कहीं नहीं था । इसलिए पुरानी हिंदी अथवा पश्चिमी अपभ्रंश में ' ने ' का कोई उदाहरण न मिलता हो तो इसे एकदम नवीन सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है ।

दक्खिनी हिंदी के ज्ञात प्रथम लेखक खाजा बन्देनवाज गेसू दराज के साहित्य में ' ने ' का प्रयोग मिलता है [४१] । इनका जन्म १३२२ ई. और मृत्यु १४२३ ई. है । अतः हिंदी साहित्य में लगभग आज से छः सौ वर्ष पहले ' ने ' का प्रयोग किया गया है [४२] । अमीर खुसरो (१२५३–१३२५ ई.) के साहित्य में ' ने ' का प्रयोग प्राप्त है [४३]।

फिर एक प्रश्न है । हिंदी के विकास में पुरानी हिंदी को हम कितने प्रमाण में मानते हैं ? विद्वान प्रायः अपभ्रंश से एकदम हिंदी की ओर मुडते दिखाई देते हैं, न कि पुरानी हिंदी; और अपभ्रंश में तो ' ण ' स्पष्ट है, जैसेः– ' करिण , गिरिण '। ' निरंतरिण , दवेण , मणेण ' आदि । इनमें स्पष्ट ही ' इण(एण) ' अंश प्राप्त है [४४]।

कोंकणी के करण कारक ' न ' की दृष्टि से देखा जाए तो यह बात स्पष्ट है कि अपभ्रंश में करण कारक एकवचन में जो ' ण ' प्राप्त है वह आगे चलकर ' न ' रूप में विकसित हुआ है, जैसे :– अप. गिरिण > गिरिन > कों. गिरीन (= पर्वतान = पवत ने)।

(६) पुराने लेखकों ने कितने ही ऐसे स्थानों पर सर्वनामों के कर्ता–कारक में केवल विकारी रूपों का ही प्रयोग किया है, जहाँ खडी बोली हिंदी के स्वभावानुसार उसके साथ ' ने ' का प्रयोग आवश्यक था । अतः यदि ' ने ' कोई विभक्ति-प्रत्यय था भी तो पुरानी हिंदी के काल तक वह लुप्त हो चुका था ।

यह बात मान्य करने में प्रायः आपत्ति नहीं है । आज भी देखा जाता है कि परिनिष्ठित हिंदी में कारक–चिह्नों का प्राचुर्य होते हुए भी उनका लोप करके व्यवहार किया जाता है, यथाः– (१) वह आम (को) खाता है।, (२) न आँखों (से) देखा न कानों (से) सुना।, (३) वह नदी में तैरने (को) गया ।, (४) इस साल (में) बहुत वर्षा हुई ।, (५) शाम तक मैं घर (पर) ही रहूँगा ।

उपर्युक्त कर्म, करण, संप्रदान तथा अधिकरण कारक-चिह्नों 'को, से, से, को, में, पर ' का लोप करके व्यवहार हुआ है (ऊपर कोष्ठक में सिर्फ दिखाने के लिए लिखा है)। इतना ही नहीं जहाँ ' ने ' प्रत्यय आवश्यक है वहाँ भी हिंदी में ' ने ' परसर्ग का लोप करके प्रयोग किया जाता है, यथाः– (६) राम (ने) आम लाया ।, (७) मैं (ने) तुम्हारी बात नहीं समझा (यहाँ ' ने ' प्रत्यय लुप्त होने के कारण ' समझी ' के बदले ' समझा ' हुआ है)।, (८) मैं (ने) तुम्हें कल मिला था । इन वाक्यों में ' ने ' का प्रयोग नहीं है ।

उपर्युक्त आठों वाक्यों में कोष्ठक में दिये प्रत्ययों का व्यवहार किये बिना भी सरलता से व्यवहार होता है । यह बात – जब हिंदी में कारक–चिह्न खचाखच भरे हुए हैं, और उठते–बैठते कारक–चिह्नों का प्रयोग करने का प्रयत्न करते हैं – आज भी जब होती हो तब इनका कोई महत्व नहीं था और इनके बिना संज्ञाओं का परस्पर संबंध जाना जाता था उस काल में ' ने ' प्रत्यय लुप्त मानना आवश्यक होगा । इसका अर्थ यह नहीं है कि लिखित स्वरूप में प्राप्त पुरानी हिंदी के सिवा अन्यत्र उसकी उपलब्धि ही नहीं थी । दक्खिनी हिंदी में आज से छः सौ वर्ष पहले से ' ने ' का प्रयोग पाया जाता है । इसके सिवा ' ने ' के रूप में क्यों न हो परंतु ' न ' के रूप में वह ' वर्णरत्नाकर ' में अपना एक बार दर्शन दे जाता है । यह ' न ' अपभ्रंश में प्राप्त ' ण ' का विकसित रूप है । यही ' न ' कोंकणी में प्राप्त है ।

इतने प्रदीर्घ विवेचन के उपरान्त ऐसा लगता है कि हिंदी ' ने ' अपभ्रंश 'इण (एण) < सं. इन (एन)' से विकसित मानने में अडचन नहीं होनी चाहिए।

' ने ' के संबंध में दूसरी एक संभावना हो सकती है। पूर्वी हिंदी में प्राप्त ' न्हिं, न्ह ' प्रत्यय दो अलग प्रत्ययों के संयोग माने जाते हैं [४५], यथा :– आनाम् > न् + भिः > न्हिं, न्ह। इसी प्रकार ' ओं (सं. आनाम् > आणं + हु > ओं) ' भी दो प्रत्ययों के संयोग से माना जाता है [४६]। डा. भांडारकर ने भी करण कारक एक. ' न ' तथा बहु. ' हिं ' के संयोग से करण कारक बहु. ' नीं ' का विकास दिखाया है [४७]। इसी प्रकार अपभ्रंश में प्राप्त करण कारक एक. ' ण ' तथा बहु. में प्राप्त ' हि ' के संयोग से ' ने ' का विकास भी संभव है, यथा :– ण+हि > नहि > नइ > ने।

इस प्रकार ' ने ' का विकास दो प्रत्ययों ' न + हि ' से माना जा सकता है।

तीसरी संभावना इस प्रकार हो सकती है। अपभ्रंश में करण कारक एक. में ' ण , ए, एं ' कारक-चिह्न प्राप्त हैं। इनमें ' ण ' तथा ' ए ' के संयोग से ' ने ' का विकास होने की संभावना है। इस दृष्टि से विद्वानों में विचार-मंथन आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१) डा. श. गो. राजवाडे (अनुवादक) – ग्रामातिका इन्दोस्ताना, पृ. २३

२) डा. धीरेंद्र वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २५२

३) श्री विनायक शंकर जोशी – कन्नड प्रबोध, पृ. १०;११

४) श्री भिक्षु जगदीश काश्यप – पालि महाव्याकरण, पृ. २४०

५) डा. देवेंद्रनाथ शर्मा – भाषाविज्ञान की भूमिका, पृ. २४३

६) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १५९, १६०

७) बीम्स – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द माडर्न आर्यन लैंग्वेजेस् भाग २, पृ. २६२
   डा. एस्. एच्. केलाग – ए ग्रामर आफ द हिंदी लैंग्वेज, पृ. १३१

८) डा. हार्नले – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ गौडियन लैंग्वेज, पृ. २१७

९) डा. चटर्जी – भारतीय आर्यभाषा और हिंदी, पृ. १३७

१०) श्री रा. भि. गुंजीकर – रामचंद्र भिकाजी गुंजीकर यांचे संकलित लेख, पृ. ३०९
   श्री कामताप्रसाद गुरु – हिंदी व्याकरण, पृ. २२२
   श्री म. मा. वासुतकर – '' हिंदी मराठी का ' ने ' परसर्ग '' शीर्षक लेख, गवेषणा (पत्रिका) १९७१ अंक १७, पृ. ४३

११) श्री किशोरीदास वाजपेयी – हिंदी शब्दानुशासन, पृ. २६, २७

१२) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १६७

१३) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. ४६६

१४) डा. वीरेंद्र श्रीवास्तव – अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ. १४३

१५) डा. भाण्डारकर – विल्सन फायलोलाजिकल लैक्चर्स, पृ. २०४

१६) श्री वालावलीकर – कोंकणिची व्याकरणी बांदावळ, पृ. ४२

१७) श्री गुंजीकर – रामचंद्र भिकाजी गुंजीकर यांचे संकलित लेख, पृ. ३०१
१८) डा. हार्नले – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द गौडियन लैंग्वेजेस्, अनुवाक ३७५
डा. चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज, पृ. ७६०
बीम्स – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द माडर्न आर्यन लैंग्वेजेस् आफ द इंडिया, भाग २, पृ. २५७
१९) डा. श्याम ुरदास – हिंदी भाषा, पृ. १३५
२०) डा. कत्रे – द फार्मेशन आफ कोंकणी, पृ. १२३
२१) श्री वालावलीकर – कोंकणीची व्याकरणी बांदावळ, पृ. ३६
२२) डा. भाण्डारकर – विल्सन फायलोलाजिकल लैक्चर्स, पृ. २४५, २४८
२३) श्री गुंजीकर – रामचंद्र भिकाजी गुंजीकर यांचे संकलित लेख, पृ. ३११
२४) बीम्स – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द माडर्न आर्यन लैंग्वेजेस् आफ इंडिया, भाग २, पृ. २८५
२५) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १७२
२६) डा. आर्. पिशेल – प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृ. २७१
२७) डा. चटर्जी – भारतीय आर्यभाषा और हिंदी, पृ. १३८
२८) प्रा. कुलकर्णी – मराठी भाषा : उद्गम आणि विकास, पृ. ३३७
२९) डा. तुळपुळे – यादवकालीन मराठी भाषा, पृ. २३९
३०) ब्लाख ज्यूल – द फार्मेशन आफ द मराठी लिंग्विस्टिक लैंग्वेज (हिंदी), पृ. २१४
३१) श्री वालावलीकर – कोंकणीची व्याकरणी बांदावळ, पृ. ६०
३२) श्री भट्टोजी दीक्षित – सिद्धान्तकौमुदी, पृ. १६७
३३) श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा एवं बीरबल शर्मा – कच्चायन व्याकरण, पृ. २११
३४) वही, पृ. २१२
३५) श्री वालावलीकर – कोंकणिची व्याकरणी बांदावळ, पृ. ६०
३६) वही, पृ. ५६
३७) वही, पृ. ५५
३८) वही,, पृ. ६७
३९) डा. देवेंद्रनाथ शर्मा – भाषाविज्ञान की भूमिका, पृ. १०८
४०) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १९४
४१) डा. श्रीराम शर्मा – दक्खिनी हिंदी का उद्भव और विकास,पूर्वपीठिका, पृ. २३
४२) वही, पृ. १८५
४३) डा. राजनारायण मौर्य – 'अमीर खुसरो की हिंदी भाषा ' शीर्षक लेख, डा. मोहम्मद मलिक द्वारा संपादित 'अमीर खुसरो ' पृ. ११६
प्रा. रामबहोरी शुक्ल और भगीरथ मिश्र – हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास, पृ. १०३, १०४
४४) डा. वीरेंद्र श्रीवास्तव – अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ. १४३, १५५
४५) डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास पृ. ४२६
डा. नामवरसिंह – हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान, पृ. १११
४६) डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४२७
४७) डा. भाण्डारकर – विल्सन फायलोलाजिकल लैक्चर्स, पृ. २०४

अध्याय ४

हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाएँ

इस अध्याय में हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त होने वाली संज्ञाओं की चर्चा क़ी है। चर्चा का दृष्टिकोण मुख्यतः हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं के अन्त में प्राप्त होने वाले वर्णों से संबंधित है। संज्ञाओं के अन्त में प्राप्त होने वाले वर्णों के विवरण से ज्ञात होता है कि प्रायः हिंदी की प्रवृत्ति आकारान्त तो कोंकणी की प्रवृत्ति ओकारान्त है। इसका मतलब यह नहीं है कि हिंदी तथा कोंकणी में अन्य स्वरान्त संज्ञाएँ नहीं हैं। दोनों में अन्य स्वरान्त शब्दों का प्राचुर्य होते हुए भी हिंदी में जहाँ आकारान्त शब्द मिलते हैं वहाँ कोंकणी में प्रायः ओकारान्त शब्द मिलते हैं। इसलिए यहाँ इनकी चर्चा करना आवश्यक है।

दूसरी एक बात है कि हिंदी वियोगात्मक भाषा मानी जाती है। परंतु ऐसा लगता है कि हिंदी को वियोगात्मक मानना एकदेशीय है। अत एव कोंकणी की तुलना में यहाँ इसकी चर्चा करना अनावश्यक नहीं होगा।

१) संज्ञाओं का इतिहास

संस्कृत में स्वरान्त और व्यंजनान्त दो प्रकार की संज्ञाएँ हैं, जैसे :– स्वरान्त संज्ञाएँ : ' राम, वन, हाहा, सीता, कवि, रुचि, वारि, भानु, धेनु, मधु, रै, गो, ग्लौ ' आदि; व्यंजनान्त संज्ञाएँ : ' वाक्(च्) , सुहृत् , विरुध् , आत्मन्, मनोहारिन् , अप् , तस्थिवस् , द्रुह् ' आदि।

पालि-काल में व्यंजनान्त शब्दों में प्रायः परिवर्तन हुआ। शब्दों के अन्त्य व्यंजन का लोप होकर अथवा अन्त्य व्यंजन में स्वरागम होकर व्यंजनान्त शब्द स्वरान्त होते चले आये। यही प्रवृत्ति प्राकृत-अपभ्रंश के द्वारा हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है। यद्यपि डा. भोलानाथ तिवारी आदि हिंदी के विद्वान तथा डा. सुमित्र मंगेश कत्रे आदि कोंकणी के विद्वान हिंदी तथा कोंकणी शब्दों के अन्त में प्राप्त ' अ ' स्वर के श्रवण-हीनता के कारण उसका लोप मानते हैं, और हिंदी तथा कोंकणी में व्यंजनान्त शब्दों का प्रतिपादन करते हैं [१]; फिर भी जहाँ तक लिखने का प्रश्न है हिंदी तथा कोंकणी में इस प्रकार अन्त्य ' अ ' का लोप करके नहीं लिखा जाता। अतः हिंदी तथा कोंकणी के तुलनात्मक अध्ययन में उपर्युक्त प्रवृत्ति को नहीं स्वीकारा है।

हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त अन्त्यस्वर

हिंदी तथा कोंकणी में ' ऋ ' स्वर छोडकर शेष सभी स्वर संज्ञाओं के अन्त्य में उपलब्ध होते हैं। ये स्वरान्त संज्ञाएँ हिंदी में पुल्लिग और स्त्रीलिंग में प्राप्त होती हैं तो कोंकणी में पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में प्राप्त होती हैं।

हिंदी की कुछ पुल्लिंग और स्त्रीलिंग संज्ञाओं के अन्त में अनुनासिक स्वर भी प्राप्त होते हैं, जैसेः– मियाँ, रोयाँ(वाँ), जुआँ, माँ, गेहूँ, जूँ, खडाऊँ, कोदों, सरसों ' आदि।

कोंकणी में भी कुछ पुल्लिंग और नपुंसकलिंग संज्ञाओं के अन्त में अनुनासिक स्वर प्राप्त होते हैं, जैसे :– ' बीं, मोतीं, पूं , जूं , गोरूं, चेडूं , आबोलें, केळें, कुवों ' आदि। इसमें स्त्रीलिंग संज्ञाओं के अन्त में अनुनासिक स्वर प्रायः प्राप्त नहीं है। नपुंसकलिंग संज्ञाओं के अन्त में केवल ' अ, ईं, ऊं, एं ' स्वर प्राप्त हैं।

इस दृष्टि से नीचे का हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं का तख्ता देखिए –

अन्त्यस्वर :	लिंग	हिंदी संज्ञाएँ	कोंकणी संज्ञाएँ
अ –	पु.	राम, बचपन, बैल, भाग्य, दावँ	बैल, तांदूळ, राम, मनीस
	स्त्री.	औरत, मिठास, पुस्तक, किताब	बुद्द, वस्त, बायल, शक्त
	नपुं.	———	घर, पुस्तक, झाड, दार
आ –	पु.	भतीजा , मामा , मियाँ , रोवाँ	राजा, मामा, काका
	स्त्री.	चिडिया , गंगा , जुआँ, माँ	गंगा, इत्सा, वान्सा, पिडा
इ –	पु.	कवि, रवि, शनि, हानि	हानि, कवि, शनि, रवि
	स्त्री.	मति, भक्ति, शक्ति	शक्ति, मति, भक्ति
ई –	पु.	आदमी, मोती, दही, हाथी	हती, रांदपी, दुदी, खारवी
	स्त्री.	घोडी, चींटी, मामी, कुर्सी	खुर्ची, मामी, घोडी, मेवणी
	नपुं.	———	शीं, मोतीं, बीं, तांतीं
उ –	पु.	साधु, पशु, गुरु	गुरु, शत्रु, साधु
	स्त्री.	धातु, ऋतु, वस्तु	वस्तु(स्त)
ऊ –	पु.	कोल्हू , भालू , चाकू, गेहूँ, बिच्छू	राजू , विंचू , भालू , चाकू , पूं
	स्त्री.	बहू , लू , झाडू , जूँ , खडाऊँ	जळू , ऊ , कुरू , ताळू, वाळू
	नपुं.	———	गोरूं, तारूं, चेडूं , वासरूं,जूं , रूं
ए –	पु.	दुबे, चौबे	फट्टे, गावडे
	स्त्री.	हर्ये	———
	नपुं.	———	आबोलें, सुणें, केळें, भुरगें, वजें
ऐ –	पु.	बरवै	शणै, पै (उपनाम)
	स्त्री.	जै, बर्रै, नै	पै(सिक्का), आवै
ओ –	पु.	रासो, कोदों	भुरगो, फट्टो, घोडो, गावडो, कुवों
	स्त्री.	सरसों	———
औ –	पु.	जौ,	———
	स्त्री.	लौ, पौ, गौ, भौं	———

(उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाएँ भिन्नार्थक हैं ।)

मैंने किये हुए हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं के अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित बातें स्पष्ट की जाती हैं –

(१) हिंदी तथा कोंकणी में अकारान्त संज्ञाएँ प्राप्त हैं । हिंदी में ये पुल्लिग और स्त्रीलिंग में प्राप्त होती हैं तो कोंकणी में ये पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में प्राप्त होती हैं ।

हिंदी में पुल्लिग में सानुनासिक अकारान्त संज्ञा प्राप्त है परंतु कोंकणी में इसकी प्राप्ति नहीं है ।

सभी स्वरान्त संज्ञाओं में अकारान्त संज्ञाएँ हिंदी तथा कोंकणी में काफी संख्या में प्राप्त होती हैं ।

(२) हिंदी तथा कोंकणी में आकारान्त संज्ञाएँ प्राप्त होती हैं । हिंदी तथा कोंकणी में ये संज्ञाएँ केवल पुल्लिग और स्त्रीलिंग में प्राप्त हैं ।

कोंकणी की अपेक्षा हिंदी में पुल्लिग आकारान्त संज्ञाएँ संख्या में बहुत प्राप्त होती हैं, यथाः– ' राजा, मामा, काका, बच्चा, दाना, चना, भतीजा, कौआ ' आदि । इस दृष्टि से कोंकणी में पुल्लिग आकारान्त संज्ञाएँ बहुत ही कम प्राप्त हैं । जैसे कि अभी-अभी यहाँ दी हुई हिंदी की आकारान्त संज्ञाओं में प्राप्त होने वाली ' राजा, मामा, काका ' संज्ञाएँ कोंकणी में भी आकारान्त हैं और शेष हिंदी की संज्ञाएँ कोंकणी में ओकारान्त बनती हैं, यथाः– ' भुरगो (= बच्चा), दाणो (= दाना), चणो (= चना), पुतण्यो (= भतीजा), कावळो (= कौआ)' आदि ।

हिंदी में पुल्लिग और स्त्रीलिंग में सानुनासिक आकारान्त संज्ञाएँ प्राप्त हैं परंतु कोंकणी में यह स्थिति नहीं है ।

(३) हिंदी तथा कोंकणी में इकारान्त और उकारान्त संज्ञाएँ प्राप्त हैं । ये संज्ञाएँ भी हिंदी तथा कोंकणी में केवल पुल्लिग और स्त्रीलिंग में प्राप्त हैं ।

हिंदी तथा कोंकणी में इकारान्त और उकारान्त संज्ञाएँ तत्सम शब्दों में प्राप्त होती हैं, यथाः– हिंदी : ' कवि, शनि, भक्ति, शक्ति, साधु, वस्तु, गुरु ' आदि ; कोंकणी : ' कवि, शनि, भक्ति, शक्ति, साधु, वस्तु, गुरु ' आदि । कभी–कभी कोंकणी में इकारान्त तथा उकारान्त संज्ञाओं में अन्त्य स्वर दीर्घ करके लिखा जाता है, यथा :– कवी, शनी, हानी, साधू , गुरू ' आदि । कभी–कभी कोंकणी में स्त्रीलिंग संज्ञाओं के अन्त्य ' इ ' तथा ' उ ' के स्थान 'अ ' प्राप्त होता है, यथाः– ' शक्ति > शक्त, बुद्धि > बुद्द, स्फूर्ति > स्फूर्त, वस्तु > वस्त ' आदि । इस प्रकार संस्कृत तत्सम संज्ञाओं में किंचित् फर्क होकर कोंकणी में प्राप्त होने वाली ईकारान्त (' कवी ' आदि), ऊकारान्त (' साधू ' आदि) और अकारान्त (' शक्त ' आदि) संज्ञाएँ हिंदी में प्राप्त नहीं हैं ।

(४) हिंदी तथा कोंकणी में ईकारान्त और ऊकारान्त संज्ञाएँ प्राप्त हैं। ये संज्ञाएँ हिंदी तथा कोंकणी में पुल्लिग और स्त्रीलिंग में प्राप्त हैं।

हिंदी में पुल्लिग और स्त्रीलिंग में सानुनासिक अकारान्त संज्ञाएँ भी प्राप्त होती हैं।

कोंकणी में सानुनासिक ईकारान्त और ऊकारान्त संज्ञाएँ नपुंसकलिंग में अनेक प्राप्त होती हैं। कोंकणी में अपवाद-स्वरूप पुल्लिग में एक सानुनासिक ऊंकारान्त संज्ञा मिलती है, जैसे :– 'पूं'।

(५) हिंदी में एकारान्त संज्ञाएँ केवल उपनामों में प्राप्त हैं, यथाः– 'दुबे, चौबे, पांडे' आदि। कोंकणी उपनामों में एकारान्त रूप प्राप्त न होकर ओकारान्त रूप प्राप्त होता है, यथाः– 'भरणो, म्हांबरो, फट्टो, गावडो' आदि। परंतु इसके बदले आज-कल एकारान्त संज्ञाओं का प्रयोग बढता जा रहा है, यथाः– 'भरणे, म्हांबरे, फट्टे, गावडे' आदि। यह शायद मराठी के प्रभाव के कारण है।

कोंकणी में नपुंसकलिंग एकारान्त संज्ञाएँ प्राप्त हैं, परंतु वे अनुनासिक–युक्त मिलती हैं, यथाः– 'केळें, भुरगें, सुणें, शेंवतें, आबोलें, भिरें, बकें, तवशें, गाराणें' आदि।

परंतु हिंदी में इस प्रकार की संज्ञाएँ नहीं हैं, इसका कारण यह है कि हिंदी में नपुंसकलिंग नहीं है।

(६) हिंदी तथा कोंकणी में ऐकारान्त संज्ञाएँ बहुत ही कम प्राप्त हैं, यथाः– हिंदी : 'बरवै, जै, बैरें' आदि; कोंकणी : 'शणै, पै, आवै' आदि। कोंकणी में ऐकारान्त संज्ञाओं को कभी–कभी अकारान्त रूप में भी लिखने की प्रवृत्ति है, यथाः– 'शणय, पय, आवय' आदि।

(७) हिंदी में ओकारान्त संज्ञाएँ अपवाद-स्वरूप में मिलती हैं, यथाः– 'रासो, कोदों, सरसों' आदि। परंतु कोंकणी में ओकारान्त संज्ञाएँ बहुत प्राप्त होती हैं, यथाः– 'घोडो (= घोडा), भुरगो (= बच्चा), कपडो (= कपडा), हिरो (= हीरा), कावळो (= कौआ)' आदि। इस संबंध में ऐसा कह सकते हैं कि जो शब्द हिंदी में आकारान्त दिखायी देते हैं वे शब्द कोंकणी में प्रायः ओकारान्त दिखायी देते हैं। यह बात उपर्युक्त क्रमांक (३) में दिये उदाहरणों से स्पष्ट होती है।

हिंदी में ओकारान्त संज्ञाएँ पुल्लिग और स्त्रीलिंग में प्राप्त हैं। इनमें सानुनासिक ओकारान्त संज्ञाएँ भी हैं। कोंकणी में ओकारान्त संज्ञाएँ केवल पुल्लिग में प्राप्त हैं। इसमें अपवाद-स्वरूप एक ही सानुनासिक ओकारान्त संज्ञा मिलती है, जैसे :– 'कुवों'।

(८) औकारान्त शब्द हिंदी में प्राप्त होते हैं और वे भी बहुत ही कम संख्या में, यथाः– 'जौ, लौ, पौ, गौ' आदि। कोंकणी में इस प्रकार औकारान्त शब्द उपलब्ध नहीं हैं। विशेषण के तौर पर औकारान्त 'भौ' शब्द यद्यपि कोंकणी में मिलता है फिर भी यह आज 'भोव' रूप में भी लिखा जाता है।

हिंदी में सानुनासिक औकारान्त पुल्लिग संज्ञा प्राप्त है। यह स्थिति कोंकणी में उपलब्ध नहीं है।

× × ×

हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त संज्ञाओं के उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं में प्राप्त होने वाली तत्सम इकारान्त, उकारान्त संज्ञाओं तथा बहुत ही कम संज्ञाओं में प्राप्त होने वाली अँकारान्त, आँकारान्त, एकारान्त, ऐकारान्त, ओकारान्त ओंकारान्त, औकारान्त, औंकारान्त, संज्ञाओं को छोड दिया जाए तो हिंदी में प्राधान्यतया संज्ञाओं के अन्त में ' अ, आ, ई, ऊ ' स्वर उपलब्ध होते हैं और कोंकणी में प्राधान्यतया संज्ञाओं के अन्त में ' अ, आ, ई, ईं, ऊ, ऊं, एं, ओ ' स्वर उपलब्ध होते हैं। ' ईं, ऊं, एं ' स्वर कोंकणी में प्रायः नपुंसकलिंग संज्ञाओं के अन्त में प्राप्त होते हैं। ' अ ' स्वर हिंदी के दोनों तथा कोंकणी के तीनों लिंगों की बहुत-सी संज्ञाओं के अन्त में प्राप्त होता है।

(२) हिंदी में जो संज्ञाएँ आकारान्त दीखती हैं वे संज्ञाएँ कोंकणी में प्रायः ओकारान्त दीखती हैं।

(३) कुछ संज्ञाएँ हिंदी में ओकारान्त तो कुछ संज्ञाएँ कोंकणी में आकारान्त भी मिलती हैं।

२) हिंदी की आकारान्त तथा कोंकणी की ओकारान्त प्रवृत्ति

हिंदी तथा कोंकणी में एक बात देखने को मिलती है कि हिंदी की प्रवृत्ति प्रायः आकारान्त तो कोंकणी की प्रवृत्ति प्रायः ओकारान्त है। इसका अर्थ यह नहीं है कि हिंदी तथा कोंकणी में इसके विपरीत प्रवृत्ति है ही नहीं। हिंदी में भी ओकारान्त (जैसे :– ' रासो ', ' कोदों ' आदि) तथा कोंकणी में आकारान्त (जैसेः– ' मामा ', ' चाचा ' आदि) शब्द प्राप्त हैं। फिर भी यह प्रवृत्ति हिंदी तथा कोंकणी में इतनी कम है कि एकदम दुर्लक्षित-सी होती है। परंतु इस संदर्भ में यहाँ यह कहा जा सकता है कि हिंदी में जहाँ आकारान्त प्रवृत्ति है वहाँ कोंकणी में साधारणतया ओकारान्त प्रवृत्ति है। इस दृष्टि से देखेंगे तो संज्ञाओं, उनके तथा सर्वनामों के संबंध कारकों, विशेषणों, कृदन्तों आदि के रूपों में हिंदी में जहाँ आकारान्त रूप उपलब्ध होते हैं वहाँ कोंकणी में ओकारान्त रूप प्राप्त होते हैं, यथा –

रूप	हिंदी	कोंकणी
संज्ञा :	घोडा, लडका, कपडा, पता	घोडो, भुरगो, कपडो, पत्तो
संज्ञा का संबंध कारक :	घोडे का, लडके का	घोड्याचो, भुरग्याचो
सर्व. का संबंध कारक :	मेरा, हमारा, अपना	म्हजो, आमचो, आपलो
विशेषण :	गोरा, काला, नीला	गोरो, काळो, निळो
कृदन्त :	दौडता, चलता, उडता	धांवतो, चलतो, उडतो
क्रिया :	आया, गया, बैठा	आयलो, गेलो, बसलो

इस प्रकार हिंदी में आकारान्त तथा कोंकणी में ओकारान्त प्रवृत्ति दिखायी देते हुए भी एक बात दोनों में समान है। हिंदी के आकारान्त तथा कोंकणी के ओकारान्त शब्दों से स्त्रीलिंग बनाते समय हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से ' ई ' प्रत्यय जोडा जाता है, जिससे हिंदी तथा कोंकणी के उपर्युक्त शब्दों में ईकारान्त रूपों से साम्य दीखता है, यथा –

हिंदी	**कोंकणी**
घोडी, घोडे की, मेरी	घोडी, घोड्याची, म्हजी
गोरी, दौडती, आयी	गोरी, धांवती, आयली

(यहाँ ऊपर के हिंदी तथा कोंकणी विभागों से पहला एक-एक उदाहरण लिया है।)

इस दृष्टि से एक प्रश्न उठता है। हिंदी तथा कोंकणी में आकारान्त तथा ओकारान्त प्रवृत्ति कैसे प्राप्त है ?

हिंदी तथा कोंकणी की ये भिन्न प्रवृत्तियाँ अपभ्रंश की देन है। अपभ्रंश में अकारान्त शब्द के कर्ता कारक एकवचन में पाँच रूप प्राप्त हैं [२], यथाः– ' पुत्त : पुत्तु, पुत्तउ, पुत्ता, पुत्त, पुत्तो '। इनमें से आकारान्त ' पुत्ता ' शब्द में प्राप्त ' आ ' हिंदी में ग्राह्य हुआ तो ओकारान्त ' पुत्तो ' शब्द में प्राप्त ' ओ ' कोंकणी में ग्राह्य हुआ। अपभ्रंश में विकसित इन ' आ ' तथा ' ओ ' की प्राप्ति हिंदी तथा कोंकणी की अनेक संज्ञाओं में स्पष्ट लक्षित होती है।

इस प्रकार अपभ्रंश में प्राप्त दो भिन्न प्रवृत्तियाँ दो प्रवाहों से मुडकर हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त हैं। अपभ्रंश में ये प्रवृत्तियाँ संस्कृत के स्वरान्त तथा व्यंजनान्त शब्दों के कारण प्राप्त हैं, जैसे –

संस्कृत में कुछ स्वरान्त तथा व्यंजनान्त शब्दों के कर्ता कारक एकवचन में आकारान्त रूप प्राप्त हैं, यथा :– ' कर्तृ : कर्ता '; ' सखि : सखा '; ' आत्मन् : आत्मा '; ' राजन् : राजा ' आदि। इसका प्रभाव पालि आदि भाषाओं में प्राप्त है जिससे ' अत्त, पुम, युव ' आदि अकारान्त शब्दों के कर्ता कारक एकवचन के अन्त्य में ' आ ' मिलता है [३]। यही आकारान्त प्रवृत्ति प्राकृत के द्वारा अपभ्रंश में प्राप्त है।

संस्कृत में कर्ता कारक एकवचन में एक ही ' ओ ' युक्त रूप है, जैसे :– ' दोः (कर्ता कारक एकवचन) ' [४]। वैसे तो यह ओकारान्त रूप नहीं है बल्कि सकारान्त ' दोस् ' संज्ञा का रूप है। इस दृष्टि से संस्कृत में ओकारान्त रूप नहीं है ; फिर भी संस्कृत संधि-वाक्यों में ओकारान्त रूप मिलते हैं, यथा :– ' देवो वदति। ' आदि। इसका प्रभाव पालि आदि भाषाओं में प्राप्त है जिससे ' बुद्ध ', ' देव ' आदि शब्दों के कर्ता कारक एकवचन में ' बुद्धो ', ' देवो ' रूप प्राप्त होते हैं। इसके सिवा ' सब्ब (सर्व), किं(किम्), त(तद्), गो, गच्छन्त (शतृ प्रत्ययान्त), मन (मनस्) ' आदि शब्दों के कर्ता कारक एकवचन में अन्त्य ' ओ ' मिलता है [५]। यही ओकारान्त प्रवृत्ति प्राकृत के द्वारा अपभ्रंश में प्राप्त है।

संस्कृत से अपभ्रंश में प्राप्त ' आ ' तथा ' ओ ' की प्रवृत्तियाँ हिंदी तथा कोंकणी में भी प्राप्त हुईं हैं। परंतु हिंदी ने ' आ ' को विशेष रूप से अपनाया, तो कोंकणी ने ' ओ ' को विशेष रूप से अपनाया। अर्थात् ये दोनों रूप संस्कृत अकारान्त पुल्लिग शब्दों की प्रथमा विभक्ति के एकवचनीय रूप में स्थित अन्त्य ' अः ' से विकसित हैं, यथा :–

संस्कृत >	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत >	हिंदी	कोंकणी
कलशः >	कलसा	कळसो	अंगारः >	अंगारा	विंगळो
पक्वः >	पका	पिको	घोटकः >	घोडा	घोडो
द्रोणः >	दोना	दोणो	चनकः >	चना	चणो
पारावतः>	परेवा	पारवो	चिपिटकः>	चिउडा	चिवडो
गलः >	गला	गळो	अरिष्टः >	रीठा	रिठो

इस प्रकार संस्कृत अकारान्त शब्दों के अन्त्य ' अः ' से हिंदी शब्दों के अंत में ' आ ' तथा कोंकणी शब्दों के अन्त में ' ओ ' विकसित है।

आकारान्त तथा ओकारान्त शब्दों की व्युत्पत्ति के संबंध में अनेक विवाद हैं।

डा. भोलानाथ तिवारी आदि विद्वान हिंदी आकारान्त शब्दों को व्युत्पन्न करते समय संस्कृत शब्दों में ' क ' जोडकर दिखाते हैं। यथाः– सं. स्कंधक > हिं. कंधा; सं. कुष्मांडक > हिं. कुम्हडा; सं. मह्यकृतक > हिं. मेरा; सं. पंचमक > हिं. पाँचवाँ; सं. चतुर्थक > हिं. चौथा; सं. कीदृशक > हिं. कैसा; आदि [६]।

डा. उदयनारायण तिवारी ' क ' जोडे बिना भी आकारान्त शब्द व्युत्पन्न करते हैं, यथा :– सं. चतुर्थ > हिं. चौथो; सं. पंचम > हिं. पाँचवाँ; सं. इयत्त या इयत्तक > हिं. इतना; सं. कियत्तक > हिं. कितना; आदि [७]।

श्री रा. भि. गुंजीकर आकारान्त शब्द संस्कृत के ' अंगुष्ठ ', ' कृष्ण ', ' स्कंध ' से सीधे विकसित मानते हैं। वे बीच में पालि, प्राकृत आदि भाषाओं का संबंध नहीं जोडते [८]।

डा. केलाग तथा डा. भाण्डारकर ' ओ ' की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्दों में ' कः ' जोडकर मानते हैं [९]।

वास्तव में आकारान्त तथा ओकारान्त शब्दों की व्युत्पत्ति के लिए संस्कृत के सभी शब्दों के अन्त में ' क ' जोडने की अथवा संस्कृत शब्दों से सीधा संबंध जोडने की आवश्यकता प्रायः दीखती नहीं। अत एव ऐसी स्थिति में संस्कृत अःकारान्त शब्दों से आकारान्त तथा ओकारान्त शब्दों का विकास मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि संस्कृत के जिन शब्दों में ' क ' मूलतः प्राप्त है (जैसे :– ' चनक ', ' घोटक ' आदि) वहाँ ' क ' का त्याग करके व्युत्पत्ति करें। जिन शब्दों में ' कः ' प्राप्त है वहाँ विसर्गयुक्त 'कः' के आधार पर ' आ ' तथा ' ओ ' की व्युत्पत्ति सिद्ध करें और जहाँ

'क' नहीं है वहाँ मूलतः प्राप्त अन्त्य विसर्गयुक्त 'अः' स्वर के आधार पर 'आ' तथा 'ओ' की व्युत्पत्ति सिद्ध करें।

यदि ऐसा न माना जाए तो ऋकारान्त तथा नकारान्त शब्दों में भी 'क' प्रत्यय जोडकर व्युत्पत्ति दिखाना आवश्यक होगा, यथा :– पितृक > पिता ; भ्रातृक > भ्राता ; दातृक > दाता; आत्मकन् > आत्मा; ब्रह्मकन् > ब्रम्हा ; राजकन् > राजा; आदि। और यदि ऐसा न करें तो 'पिता, भ्राता, दाता, आत्मा, ब्रम्हा, राजा' आदि शब्दों की सिद्धि नहीं होगी।

फिर भी 'पिता, भ्राता' आदि शब्द संस्कृत में कर्ताकारक एकवचन में आकारान्त रूपों में प्राप्त होने के कारण उन्हें उसी रूप में यहाँ स्वीकारा है ऐसा यदि प्रतिपादन किया जाए तो भी 'गर्भिनी' से 'गाभिन', 'चंचु' से 'चोंच', 'भगिनी' से 'बहन', 'अगरु' से 'अगर', 'श्वश्रु' से 'सास' आदि शब्दों में अन्त्य 'अ' प्राप्ति के लिए 'क' जोडना पडेगा।

संस्कृत 'मृत्तिका, बालुका, अम्लिका, भल्लूक, मौक्तिक' आदि संज्ञाओं में स्थित 'का, क' व्यर्थ होंगे।

संस्कृत 'पश्चात्' से हिंदी 'पीछे' शब्द सिद्ध करने के लिए किसी 'के' जैसे प्रत्यय को जोडना पडेगा।

संस्कृत 'कथानक' शब्द से हिंदी 'कहानी' शब्द की सिद्धि किसी 'की' प्रत्यय के बिना नहीं हो सकेगी। इसी प्रकार हिंदी 'मौसी' शब्द–सिद्धि के लिए संस्कृत 'मातृष्वसा' शब्द में 'कि' या 'की' जोडना आवश्यक होगा।

संस्कृत 'लोहित' से 'लोहू' शब्द सिद्ध करने के लिए कुछ अलग व्यवस्था करनी पडेगी, जो 'कू' के रूप में होगी।

संस्कृत 'पशु' से विकसित 'पोहे' के संबंध में विचार करने की आवश्यकता रहेगी।

इतना ही नहीं संस्कृत 'शाक, आभीर, गृह, अंगण' से विकसित 'साग, अहीर, घर, आँगन' में अन्त्य 'अ' बनाए रखने के लिए कोई व्यवस्था करनी पडेगी।

इस प्रकार आकारान्त तथा ओकारान्त शब्द निष्पन्न करने के लिए स्वार्थी 'क' प्रत्यय जोडने के संबंध में फिर से विचार–मंथन आवश्यक है। क्योंकि यह बात स्पष्ट ही दीखती है कि संस्कृत विसर्गयुक्त अकारान्त शब्द अपभ्रंश में अकारान्त के सिवा आकारान्त तथा ओकारान्त रूप में भी प्राप्त हैं। वहाँ से हिंदी तथा कोंकणी में आकारान्त तथा ओकारान्त शब्द प्राप्त हो सकते हैं। उसी प्रकार आकारान्त शब्द–सिद्धि के लिए संस्कृत के 'अंगुष्ठ', 'स्कंध' जैसे शब्दों से सीधा संबंध जोडने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। इनमें से 'अंगुष्ठ' शब्द का विकसित रूप पालि-प्राकृत में उपलब्ध न होता हो फिर भी

' स्कंधः ' से विकसित ' खंधो ' रूप तो प्राकृत में प्राप्त होता है[१०]। अर्थात् आकारान्त रूप-सिद्धि के लिए संस्कृत शब्दों से सीधा संबंध जोडने की आवश्यकता नहीं रहती।

अन्त में, अपभ्रंश में कर्ता कारक एकवचन में प्राप्त पाँच रूपों में से आकारान्त रूप हिंदी में तो ओकारान्त रूप कोंकणी में विशेषतया ग्राह्य हुआ और बहुत कम ही संख्या में हिंदी में ओकारान्त तो कोंकणी में आकारान्त रूप भी ग्राह्य हुआ। शेष तीन रूपों (पुत्त, पुत्तु, पुत्तउ) में से अकारान्त रूप हिंदी तथा कोंकणी में विषेशतया स्वीकृत हुआ। शेष उकारान्त रूप की प्रवृत्ति हिंदी तथा कोंकणी में पहले उपलब्ध थी, जैसे – ' देवु ' आदि ; परंतु आजकल यह प्रवृत्ति परिनिष्ठित हिंदी तथा कोंकणी में नहीं है। अर्थात् संस्कृत अकारान्त शब्दों से अपभ्रंश में वैकल्पिक रूप में विकसित अकारान्त, आकारान्त और ओकारान्त रूपों में से हिंदी ने सबसे अधिक संज्ञाओं में अकारान्त, उससे बहुत कम संख्या में आकारान्त और उससे भी बहुत ही कम संख्या में ओकारान्त तथा कोंकणी ने भी सबसे अधिक संज्ञाओं में अकारान्त, उससे बहुत कम संख्या में ओकारान्त और उससे भी बहुत ही कम संख्या में आकारान्त प्रवृत्ति स्वीकारी है।

यों तो ईकारान्त (हिं. ' हाथी, घोडी, मामी '; कों. ' हती, घोडी, मामी), ऊकारान्त (हिं. ' लड्डू, रज्जू, बिच्छू '; कों. ' लाडू, राजू, विंचू '), अकारान्त (हिं. ' बैल, तंडुल, मानुस '; कों. ' बैल, तांदूळ, मनीस ') आदि शब्द हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त हैं, फिर भी हिंदी में आकारान्त तथा कोंकणी में ओकारान्त प्रवृत्ति व्यापक है। हिंदी तथा कोंकणी में अकारान्त शब्दों की प्रवृत्ति भी अतीव व्यापक है, परंतु यह प्रवृत्ति हिंदी तथा कोंकणी में साधारण है। इससे हिंदी तथा कोंकणी में भिन्नता पैदा नहीं होती, लेकिन हिंदी की आकारान्त प्रवृत्ति तथा कोंकणी की ओकारान्त प्रवृत्ति से भिन्नता स्पष्ट ही दीखती है। हिंदी की आकारान्त प्रवृत्ति ' मराठी ' तो कोंकणी की ओकारान्त प्रवृत्ति ' व्रज, गुजराती ' से साम्य रखती है।

एवं पुल्लिंग आकारान्त तथा ओकारान्त शब्दों के कारण हिंदी तथा कोंकणी में अंतर आया है।

३) हिंदी की वियोगात्मकता तथा कोंकणी की संयोगात्मकता

संस्कृत के ' विभक्त्यन्त पद ' संयोगात्मक हैं। ' संयोगात्मक ' शब्द का अर्थ है कि विभक्ति-प्रत्यय मूल शब्दों को जोडकर लिखना, यथाः– ' रामेण, रामाभ्याम्, रामाय, रामस्य ' आदि। कुछ प्रत्यय मूल शब्दों में इतने घुल-मिल जाते हैं कि प्रत्ययों को अलग लिखा ही नहीं जा सकता। निम्नलिखित उदाहरण से यह बात स्पष्ट होगी –

' राम ' शब्द के तृतीया विभक्ति का एकवचनीय रूप सिद्ध करने के लिए राम शब्द में ' इन ' प्रत्यय जोडना आवश्यक है, यथा :– ' राम + इन '। यहाँ ' राम ' शब्द के अन्त्य ' अ ' तथा ' इन ' शब्द का आदि ' इ ' दोनों इतने एक रूप होते हैं कि दोनों अलग-अलग नहीं दिखायी देते, बल्कि इन दोनों वर्णों से एक स्वतंत्र ध्वनि विकसित होती

है, 'ए'। इससे 'रामेन' रूप सिद्ध होता है जो 'न' का 'ण' होने पर 'रामेण' रूप में परिवर्तित होता है। यदि 'इन' प्रत्यय स्वतंत्र लिखा जाता तो 'न' का 'ण' नहीं होता, जैसे:– 'रषाभ्यां नो णः समानपदे'[११]।

इस दृष्टि से देखा जाए तो हिंदी तथा कोंकणी में कारकीय रूपों और कारक-चिन्हों को जोडकर लिखने से कोई अलग कार्य संपन्न होने वाला नहीं है फिर भी हिंदी को वियोगात्मक माना है तो कोंकणी को संयोगात्मक मानना चाहिए। हिंदी में कारक – चिह्न संज्ञा से अलग लिखे जाते हैं तो कोंकणी में कारक-चिह्न संज्ञा में जोडकर लिखे जाते हैं। इस संबंध में डा. गुणे का मंतव्य उचित लगता है। वे लिखते हैं[१२], "कुछ भाषाओं में इन परसर्गों (= कारक-चिह्नों) को प्रायः शब्द का अंग ही माना जाता है, अर्थात् वे पुनः संश्लेषात्मक (= संयोगात्मक) अवस्था में जा रही हैं; अन्य भाषा में वे अब भी उस प्रातिपदिक से, जिससे कि वे जोडे जाते हैं, सर्वथा अलग माने जाते हैं।" फिर भी हिंदी तथा कोंकणी में कारक–चिह्न संज्ञा से अलग लिखें या संज्ञा में जोडकर लिखें, कोई अन्तर प्राप्त नहीं होता है। इसका कारण यह है कि संज्ञा के अन्त्य स्वर में कारक-चिह्नों का आदि स्वर घुल–मिल जाने का अथवा 'रषाभ्यां नो णः समानपदे' जैसे सूत्र से कोई कार्य कारक–चिह्नों में प्राप्त होने का संभव नहीं है। फिर भी हिंदी की वियोगात्मकता तथा कोंकणी की संयोगात्मकता ये उनकी अपनी–अपनी व्यवस्थाएँ हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित हिंदी तथा कोंकणी के अकारान्त 'राम' शब्द के कारक रूप देखिए –

	हिंदी		कोंकणी	
कारक	**एक.**	**बहु.**	**एक.**	**बहु.**
कर्ता	राम ने	रामों ने	रामान	रामांनी
कर्म	राम को	रामों को	रामाक	रामांक
करण	राम से	रामों से	बाणान *	बाणांनी *
संप्रदान	राम को	रामों को	रामाक	रामांक
अपादान	राम से	रामों से	रामासून	रामांसून
संबंध	राम का	रामों का	रामाचो	रामांचो
अधिकरण	राम में	रामों में	रामांत	रामांत
संबोधन	हे राम	हे रामो	हे रामा	हे रामांनो

(सूचना :– 'राम' जब साधन रूप में प्राप्त होगा तब 'रामाच्यान, रामकडच्यान' प्रयोग होगा। अतः ऐसा दीखता है कि कोंकणी में साधन याने करण रूप में स्थित संज्ञा 'न' परसर्ग-युक्त होने के लिए साधन अचेतन पदार्थवाची हो। इसलिए ऊपर 'राम' के बदले 'बाण' शब्द लेकर करण कारक का अर्थ स्पष्ट किया है।)

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी के उदाहरणों की तुलना से यह बात स्पष्ट होती है कि हिंदी वियोगात्मक है तो कोंकणी संगोयात्मक है। इस दृष्टि से हिंदी तथा कोंकणी में यह अन्तर है।

परंतु यह अन्तर गौण है। इसके कारण निम्नलिखित प्रकार से हैं –

(१) हिंदी की व्रजभाषा आदि बोलियों में संयोगात्मकता उपलब्ध होती है। इनमें कारक-चिह्न संज्ञाओं को जोडकर लिखे जाते हैं, यथाः– 'घरै (= घर को)', 'रामै (= राम को)' आदि।

(२) अभी थोडे वर्ष पूर्व हिंदी संयोगात्मक ही लिखी जाती थी। हिंदी की संयोगात्मकता देखने के लिए निम्नलिखित कुछ पुस्तकें द्रष्टव्य हैं –

(क) 'कहानी – संग्रह – भाग २' प्रकाशक – श्रीमन्नारायण अग्रवाल, राष्ट्रभाषा प्रचार समिती, वर्धा, पाँचवाँ संस्करण, ई. स. १९४२

(ख) गीता–प्रेस की सभी पुस्तकें तथा 'कल्याण' नामक मासिक पत्रिका और उसके विशेष अंक संयोगात्मक हिंदी में ही प्रसिद्ध होते हैं, यथा :– 'बालकोंकी बातें' आदि।

(ग) लगभग सौ वर्ष पूर्व लिखी हिंदी के एक पुस्तक में कारक-चिह्न संज्ञाओं में जोडकर लिखे हुए उदाहरण मिलते हैं, यथाः– 'संजयको, पांडुके, युद्धकी, श्लोकमें' आदि। पुस्तक का नाम है :– 'श्रीमद्भगवद्गीता वाक्यार्थ बोधिनी टीका', लेखक – पं. रघुनाथ प्रसाद सुकल, प्रकाशक – धोंडो बाबाजी शेट देवळेकर, मुंबई, ७ सप्टेंबर १८८८, पृ. ३

(घ) एक और पुस्तक उपलब्ध है जो लखनऊ में छियासी वर्ष पूर्व छपी है। इसमें कारक-चिह्न संज्ञाओं में जोडकर लिखे हैं तथा कभी–कभी संज्ञाओं से अलग भी लिखे हैं, यथाः– जमींदारको, जमींदार से; कामोंका, कामों का' आदि। पुस्तक का नाम है – 'ऐक्ट नंबर २ बाबत १९०१ ई.', मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) का छापखाना, लखनऊ, सन १९०६, पृ. ४ तथा ६

(ङ) 'मराठी की नयी कहानियाँ', संपादक : शैलेंद्र कुमार सिंह तथा प्रा. वसंत देव प्रकाशक – महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणें 2, प्रथम संस्करण, ई. स. १९५९

इस प्रकार हिंदी की संज्ञाओं में कारक-चिह्न जोडकर लिखने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

(३) हिंदी की संयोगात्मकता ढूँढने के लिए कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं। आज भी हिंदी में सर्वनामवाची शब्दों में कारक - चिह्न जोडकर ही लिखते हैं, जैसे :– 'मैंने, हमने, उसने, जिसको, किन्होंने, जिन्होंने, मुझे, हमें, मेरा, हमारा, अपना, उसे, उन्हें' आदि। 'मुझे, हमें' आदि १९ शब्द तो स्पष्ट ही संयोगात्मक रूप हैं।

हिंदी सर्वनामों में जो आज भी संयोगात्मकता का चिह्न उपलब्ध है वह इसका प्रमाण है कि हिंदी भी कुछ वर्ष पूर्व संयोगात्मक ही थी।

(४) हिंदी की वियोगात्मकता सहायक क्रियाओं के रूपों से भी सिद्ध की जाती है। इसलिए इस संबंध में विचार करने की आवश्यकता है।

ऐसी एक मान्यता है कि हिंदी में संस्कृत जैसी एक रूपात्मक क्रियाएँ नहीं है, बल्कि अन्य क्रियाओं की सहायता से काल-रचना बनायी जाती है, अतः हिंदी वियोगात्मक भाषा है। यह बात यद्यपि अनेक कालवाचक क्रियाओं के संबंध में मान्य की जाए तो भी यह स्वीकार करना पडता है कि हिंदी में भी छः काल ऐसे हैं जो संस्कृत के समान एक रूपात्मक हैं, यथा :– 'वर्तमान संभावनार्थ (तू चले)' और 'आज्ञार्थ (तू चल)' आदि (देखिए, 'क्रिया' शीर्षक अध्याय में 'काल – रचना का संक्षिप्त स्वरूप' पृ. ३६०)।

एक और बात स्पष्ट है कि हिंदी की संयुक्त क्रियाओं में भी प्रत्यय क्रियाओं से अलग नहीं लिखे जाते, जैसे :– 'सीता राम की कहानी सुनना चाहती है।'। इतना ही नहीं मुख्य धातुएँ भी कालार्थ-द्योतक कुछ प्रत्ययों को अपने में समा लेती हैं, यथा :– 'बैठ + आ = बैठा'। इसलिए हिंदी को वियोगात्मक कहने के संबंध में फिर से विचार करने की आवश्यकता है।

इस संबंध में अन्य एक बात पर ध्यान देने की भी आवश्यकता है। संस्कृत में भी संयुक्त क्रियाओं के रूप प्रचलित है, यथा :– 'पठितुं गच्छति', 'हसन् गच्छति', 'कृतं आसीत्', 'घटः कृतवान् अस्ति' आदि। फिर हिंदी में इस प्रकार संयुक्त क्रियाओं से कालार्थ द्योतन करने से हिंदी को वियोगात्मक कहें और संस्कृत को संयोगात्मक कहें यह बात विचारणीय है।

इस प्रकार हिंदी की कुछ क्रिया–रूपों में संयोगात्मकता स्पष्ट ही दीखती है।

(५) कृदन्त और तद्धितान्त शब्दों में प्रायः किसी को आपत्ति नहीं है, क्यों कि इनमें कृत् और तद्धित प्रत्यय जोडकर ही लिखे जाते हैं।

इतने विवेचन के उपरान्त ऐसा लगता है कि हिंदी के एकदेशीय भाग को लेकर उसकी वियोगात्मकता स्पष्ट करना उचित नहीं है।

यहाँ एक और विचार करना अनुचित नहीं होगा। ऐसा दीखता है कि हिंदी की वियोगात्मकता केवल संज्ञाओं में लगाये जाने वाले प्रत्ययों पर आधारित है। वरना सर्वनामों तथा क्रियाओं में हिंदी की संयोगात्मकता स्पष्ट ही नजर आती है। सर्वनामों में वियोगात्मक स्थिति प्राप्त हो सकती थी; पर हमने जान–बुझकर उसकी वियोगात्मकता को छोड दिया है और संयोगात्मकता को अपनाया है। 'मुझे, हमें, मेरा, हमारा, अपना, इसे, इन्हें' आदि १९ सर्वनामों में संयोगात्मकता प्राप्त होने के कारण अन्य कारकीय रूपों में भी संयोगात्मकता स्वीकार कर सर्वनामों के शेष कारकीय रूपों में प्रत्यय जोडकर लिखना ठीक जँचता नहीं। ऐसा यदि माना जाय तो सर्वनामों के कारकीय रूपों में जब दो–दो कारक प्रत्यय लगाये जाते हैं (जैसे – 'तुममें से कोई यह काम करेगा ?), तब उन दोनों प्रत्ययों को सर्वनामों के कारकीय रूपों में जोडकर लिखना उचित था (जैसे – 'तुममेंसे कोई यह काम करेगा ?); ताकि कम से कम सार्वनामिक कारकीय रूपों में कारक प्रत्यय लिखने की दृष्टि से एकात्मकता तो बनी रहती ! यदि ऐसा नहीं तो उपर्युक्त

संयोगात्मक ' मुझे, हमें ' आदि १९ रूपों को अपवादात्मक मानकर शेष कारकीय रूपों में कारक प्रत्यय अलग कर लिखा जा सकता था; और इसमें कोई गडबड होने की आशंका भी नहीं थी। क्योंकि ' ने ' आदि अन्य कारकीय प्रत्यय अलग हैं और ' मुझे, हमें, मेरा ' आदि रूपों में लगने वाले प्रत्यय अलग हैं। इसके सिवा इन रूपों के प्रयोग में कोई भी अव्यवस्था होने का भय नहीं है; क्यों कि ये रूप ऐसे हैं, जो साध्य करने के नहीं बल्कि साधित रूप में ही सिद्ध हैं। इन रूपों में प्राप्त प्रत्ययों को अलग करना मुश्किल है। फिर भी यदि इन रूपों में प्राप्त प्रत्ययों को अलग करना चाहें – जो कि यहाँ किया है (देखिए, पृ.' मुझे ' रूप , पृ. १९८) – तो इनकी रूप-रचना संस्कृत की रूप-रचना की तरह गुणात्मक या अकारलोपात्मक प्रकार की मानकर रूप-सिद्धि करनी पडती है। फिर भी इस प्रकार इन १९ रूपों में प्राप्त प्रत्ययों को अलग कर किसी संज्ञाओं या विशेषणों (जैसे :– ' संज्ञा : राम ने कहा। सीता को समझाया।'; ' विशेषण : एक ने कहा। दो – दो की पंक्ति में चलो। ' आदि में प्राप्त प्रत्ययों की तरह) में लगाने का अवकाश ही नहीं है। अतः इन १९ रूपों को अपवादात्मक – अर्थात् कारक प्रत्यय युक्त सिद्ध रूप मानकर छोड देना और शेष कारकीय प्रत्यय सहित रूपों में प्रत्ययों को वियोगात्मक रखना ही उचित था।

उपर्युक्त रूपों में एक और बात का वैशिष्ट्य है। ' मुझे, हमें ' आदि १९ रूप छोडकर सर्वनामों के शेष कारकीय रूप बनाते समय कुछ सार्वनामिक रूपों में दो–दो प्रत्यय लगते हैं, जैसे :– ' उसमें से, उनमें से ' आदि ; परंतु इस प्रकार के दो–दो प्रत्यय इन १९ सार्वनामिक रूपों में नहीं लगते, जैसे :– ' मुझेसे, हमेंसे, तुझेमें से, उन्हेंसे, उन्हेंमें से '। इन रूपों में दो-दो प्रत्यय लगाने की हिंदी की प्रवृत्ति नहीं है। अर्थात् इन १९ रूपों की अपनी एक विशिष्टता है। इन अपवादात्मक रूपों की विशिष्टता के आधार पर सभी सार्वनामिक रूपों को एक ही साँचे में ढालना ठीक नहीं लगता। एवं हिंदी की वियोगात्मकता निश्चित करने के लिए अपवादात्मक रूपों को छोडकर शेष सभी सर्वनामों में कारक प्रत्यय अलग से लिखना उचित है, तभी तो संज्ञाओं, सर्वनामों और विशेषणों में (संस्कृत के आधार पर एक ही शब्द में कहना चाहें तो 'नामों ' में) वियोगात्मकता स्पष्ट होती !

कोंकणी में कारक–चिह्न मूल शब्दों में जोडकर लिखे जाते हैं तथा काल-रचना में सत्रह कालों में से लगभग ग्यारह काल एक रूपात्मक अर्थात् सहायक क्रियाओं के बिना बनते हैं (देखिए, ' क्रिया ' शीर्षक अध्याय में ' काल–रचना का संक्षिप्त स्वरूप ' पृ. ३६०)। अतः कोंकणी को संयोगात्मक मानने में बिलकुल आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

ऊपर हिंदी तथा कोंकणी में वियोगात्मकता तथा संयोगात्मकता की दृष्टि से अन्तर माना है। परंतु यह अन्तर गौण है। अतः कोंकणी भाषा-भाषी विद्यार्थियों की कारक-चिह्नों को संज्ञाओं में जोडकर लिखने की प्रवृत्ति ध्यान में रखकर उन्हें हिंदी में भी कारक-चिह्न संज्ञाओं में जोडकर लिखने की सुविधा मिल जाए तो अच्छा होगा।

संक्षेप में –

(१) हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं के अंत में ' ऋ ' छोडकर प्रायः ' अ ' से लेकर ' औ ' तक स्वर प्राप्त हैं। फिर भी हिंदी में प्राप्त होने वाली पुल्लिग आकारान्त तथा कोंकणी में प्राप्त होने वाली पुल्लिग ओकारान्त संज्ञाओं के कारण हिंदी तथा कोंकणी में भिन्नता दीखती है। अर्थात् हिंदी की आकारान्तता तथा कोंकणी की ओकारान्तता स्पष्ट नजर आती है।

(२) सर्वनामों के ' मुझे, तुझे,इसे ' जैसे १९ विशिष्ट रूपों को छोडकर शेष रूपों में भी वियोगात्मकता मानते तो अधिक अच्छा होता।

(३) हिंदी में कारक-चिह्न संज्ञाओं में जोडकर लिखने की पद्धति शुरू हो जाती तो कोंकणी भाषा–भाषियों की दृष्टि से कारक-चिह्न लिखते समय गडबडी नहीं होती क्यों कि हिंदी की वियोगात्मकता गौण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १४८
श्री. कामताप्रसाद गुरु – हिंदी व्याकरण, पृ. ३६
डा. कत्रे –द फार्मेशन आफ कोंकणी, पृ. ९
श्री वालावलीकर – कोंकणी नादशास्त्र, पृ. ३
२) प्रा. शालिग्राम उपाध्याय (अनुवादक) – अपभ्रंश व्याकरण, वक्तव्य, पृ. ९
श्रीराम अवध पाण्डेय तथा रविनाथ मिश्र-पालि प्राकृत अपभ्रंश संग्रह, परिशिष्ट(ग), पृ. ४३
३) भिक्षु जगदीश काश्यप – पालि महाव्याकरण, पृ. ७५ से ९९ तक
४) कै. दिगंबर केशव राजगुरु व गोविंद विनायक राजगुरु – संस्कृत व्याकरण प्रबोध, पृ. ८४
५) भिक्षु जगदीश काश्यप – पालि महाव्याकरण, पृ. २ से ९९ तक
६) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. ५०, ८०, १८३, २३३, २३७
७) डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४४६, ४५७
८) श्री रा. भि. गुंजीकर – रामचंद्र भिकाजी गुंजीकर यांचे संकलित लेख, पृ. २८९ ते २९१ तक.
९) डा. एस्. एच्. केलाग – ए ग्रामर आफ हिंदी लैंग्वेज, पृ. १२५
डा. भाण्डारकर – विल्सन फायलालाजिकल लेक्चरर्स, पृ. १५८
१०) वररुचि प्रणीत – प्राकृत प्रकाश, पृ. ३६, सूत्रक्रमांक २९
११) पाणिनि महामुनि प्रणीत – अष्टाध्यायी सूत्रपाठ, पृ. २२०
१२) डा. पी. डी. गुणे – तुलनात्मक भाषा विज्ञान, पृ. २२५
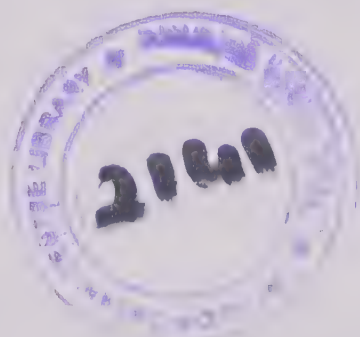
अध्याय ५
हिंदी तथा कोंकणी सर्वनाम

संस्कृत में ३५ सर्वनाम हैं। पालि में इनकी संख्या २६ हो गयी। इसी प्रकार प्राकृत में इनकी संख्या २४ हो गयी। अपभ्रंश में यह संख्या और भी कम हो गयी। 'अपभ्रंश भाषा का अध्ययन' के आधार पर यह संख्या १५ होती है; और आखिर हिंदी तथा कोंकणी में सर्वनामवाची शब्द थोडे ही शेष रह गये।

आगे हिंदी तथा कोंकणी सर्वनामों का विवरण प्रस्तुत है।

हिंदी सर्वनाम

डा. धीरेंद्र वर्मा के अनुसार हिंदी में निम्नलिखित सर्वनाम हैं[१] –

'मैं, तू, वह, यह, जो, सो, कौन, क्या, कोई, कुछ, आप (आदरवाचक)' और 'आप (निजवाचक)'। ये कुल मिलाकर बारह सर्वनाम हैं।

कोंकणी सर्वनाम

डा. एस्. एम्. कत्रे तथा श्री रा. भि. गुंजीकर ने कोंकणी में निम्नलिखित सर्वनामों का विवरण प्रस्तुत किया है[२] –

'हांव (=मैं), तूं (=तू), तो (=वह), हो (=यह), जो (=जो), कोण (=कौन), कितें (=क्या)' और 'आपुण (=निजवाचक 'आप')'। इस प्रकार उन्होंने कोंकणी में आठ सर्वनामों का विवरण प्रस्तुत किया है।

विशेष –

(१) हिंदी में दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम 'वह' तथा संबंधवाचक सर्वनाम 'सो' दो अलग-अलग सर्वनाम हैं। हिंदी 'वह' तथा 'सो' सर्वनामों के अर्थ में कोंकणी में 'तो' सर्वनाम का ही प्रयोग होता है, जैसे –

हिंदी		कोंकणी	
वह :	वह जाता है।	**तो** :	तो वता.
सो :	पानी में जो पडेगा सो डूबेगा।	**तो** :	उदकांत जो पडटलो तो बुडटलो.

इस प्रकार कोंकणी साहित्य में हिंदी 'सो' सर्वनाम के अर्थ में भी 'तो' का प्रयोग होता है।

(२) हिंदी में 'कोई' तथा 'कुछ' सर्वनाम हैं। इन सर्वनामों के अर्थों में उपर्युक्त कोंकणी सर्वनामों में कोई सर्वनामवाची शब्द नहीं है। परंतु मेरी दृष्टि में कोंकणी में उपलब्ध होने वाले 'कांय' शब्द को सर्वनाम मानना उचित होगा। यह शब्द हिंदी

' कुछ ' सर्वनाम का अर्थ द्योतन करता है, जैसे :– हिंदी का ' वहाँ कुछ नहीं है । ' वाक्य कोंकणी में ' थंय कांय ना. ' होगा । इसके उदाहरण भी कोंकणी साहित्य में उपलब्ध होते हैं, यथा :– ' हांव कांय विसरूंक पावूंक नाशिल्लों. [३] (=मैं कुछ भूल नहीं पाया था ।) '; ' तांतुतले कांय गेले. [४] (= उनमें से कुछ गए ।) '; आदि । इस प्रकार कोंकणी ' कांय ' शब्द हिंदी के ' कुछ ' सर्वनाम के अर्थ में प्रयुक्त होता है । अतः कोंकणी में ' कांय ' को सर्वनाम माना जाए ।

(३) हिंदी में ' आप ' आदरवाचक सर्वनाम है । कोंकणी में इस प्रकार आदर दिखाने के लिए ' आप ' जैसे किसी दूसरे शब्द का प्रयोग नहीं होता है । कोंकणी में आदर दिखाने के लिए ' तूं ' सर्वनाम के बहुवचन ' तुमी ' का प्रयोग होता है, जैसे :– ' कशे आसात तुमी (= कैसे हैं आप) ?'; ' राणीबागेंत तुमी कितें कितें पळेलें [५] (= रानीबाग में आपने क्या क्या देखा)? '; आदि ।

इस प्रकार के प्रयोग कोंकणी में केवल शिक्षित वर्ग ही करता है । अशिक्षित समाज में बडे से बडे व्यक्तियों के लिए भी एकवचन ' तूं ' का ही प्रयोग होता है, जैसे :– ' तूं कसो आसा (= तू कैसा है) ?'; ' तुका वचूंक जाय. (= तुझे जाना चाहिए ।) '; आदि ।

इस दृष्टि से श्री पु. ल. देशपांडे अपने ' कारवार ' निबंध में लिखते हैं [६] :– मुझे कोंकणी में प्रयुक्त एकवचन बहुत ही भाता है । हम केवल स्वामियों (मठाधिपतियों) के संबंध में ही बहुवचन का प्रयोग करते हैं, अन्यथा किसी का लडका बडा कलेक्टर होकर भी आये तो महामाया के मंदीर में वाद्य बजाने वाला मुरारी बजाते-बजाते रुककर उसे कहता :– ''यो पुता. घनुमामालो रुद्र मरे तूं ? कलेक्टर जालो ? जांव पुता. (= आ बेटे । घनुमामा का रुद्र तू ? कलेक्टर हुआ ? (अच्छा) हो बेटे ।)''।

उपर्युक्त कही –– स्वामियों याने मठाधिपतियों के संबंध में बहुवचन का प्रयोग करने की –– पद्धति केवल शिक्षित लोगों में ही दिखायी देती है । अन्यथा हम देखते हैं कि अशिक्षित वर्ग स्वामियों के संबंध में भी एकवचन का ही प्रयोग करता है, जैसे :– ' सा(स्वा)मी केन्ना येतलो (=स्वामी कब आयेगा)?'; ' सामी खंय गेलो (=स्वामी कहाँ गया)? ' इत्यादि । फिर भी उनके इन वाक्यों में तिरस्कार की भावना नहीं होती है ।

ऐसा ही हम और भी सुनते हैं कि कोंकणी बोलने वाले लोग नित्य के व्यवहार में एकवचनीय वाक्यों का प्रयोग बहुत करते हैं, जैसे :– ' गुरुजी आयलो. (=गुरुजी आया ।) '; ' बापूय पणजे वता. (=पिताजी पणजी जाता है ।) '; आदि ।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि गोवा में शिक्षित-अशिक्षित पत्नियाँ भी अपने पति के संबंध में बोलते समय प्रायः एकवचन का ही प्रयोग करती हैं, जैसे :– ' तूं बाजारांत वच. (= तू बाजार जा ।)'; ' तो भायर गेला. (=वह बाहर गया है ।) '; आदि ।

इस प्रकार कोंकणी में आदरवाचक शब्दों का प्रयोग प्रायः कम ही उपलब्ध होता है,

फिर भी यह प्रवृत्ति मराठी के कारण आज बढ रही है।

× × ×

उपर्युक्त तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

१) हिंदी में बारह तथा कोंकणी में नौ सर्वनाम हैं।

२) हिंदी के ' मैं, तू , वह, यह, जो, कौन, क्या, कुछ ' और निजवाचक ' आप ' सर्वनामों के अर्थ में कोंकणी में ' हांव, तूं , तो, हो, जो, कोण, कितें, कांय ' और निजवाचक ' आपुण ' सर्वनाम उपलब्ध हैं।

३) हिंदी के ' वह ' तथा ' सो ' सर्वनाम के अर्थ में कोंकणी में ' तो ' सर्वनाम का प्रयोग होता है।

४) हिंदी के आदरवाचक ' आप ' सर्वनाम से साम्य रखने वाला सर्वनाम कोंकणी में नहीं है। कोंकणी में आदर दिखाने के लिए भी अधिकतर ' तूं ' सर्वनाम का ही प्रयोग किया जाता है। कुछ अपवादात्मक प्रसंगों में ही ' तुमी ' का प्रयोग किया जाता है।

उत्तम पुरुष
(हिंदी ' मैं ' तथा कोंकणी ' हांव ')

उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम हिंदी ' मैं ' तथा कोंकणी ' हांव ' के निम्नलिखित मुख्य रूपान्तर होते हैं –

	हिंदी		कोंकणी	
	एक.	बहु.	एक.	बहु.
मूल रूप –	मैं	हम	हांव	आमी
विकृत रूप –	मुझ	हम	म्हा, म्ह, मा, म	आम
विशेष रूप –	मुझे	हमें	हांवें, म्हाका, माका	आमकां
संबंध कारक –	मेरा	हमारा	म्हजो, मजो	----

हिंदी ' मैं ' तथा कोंकणी ' हांव ' सर्वनामों के संबंध कारक रूपों को छोडकर शेष रूपों में लिंग के कारण परिवर्तन नहीं होता है। अतः उपर्युक्त हिंदी के रूप पुल्लिंग और स्त्रीलिंग में तथा कोंकणी के रूप पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में समान रूप से प्रयुक्त होते हैं।

संबंध कारक में प्राप्त हिंदी ' मेरा, हमारा ' तथा कोंकणी ' म्हजो, मजो ' रूपों पर केवल परवर्ती संबद्ध संज्ञा के लिंग का प्रभाव पडता है। फिर भी उत्तम पुरुष से जो व्यक्ति व्यवहार करता है उस व्यक्ति के लिंग का प्रभाव हिंदी ' मेरा, हमारा ' तथा कोंकणी ' म्हजो, मजो ' के विकृत रूपों (हिंदी : ' मे, हमा ' तथा कोंकणी : ' म्ह, म ') पर नहीं पडता। अर्थात् हिंदी ' मेरा, हमारा ' तथा कोंकणी ' म्हजो, मजो ' रूप उत्तम पुरुष से वाच्य स्त्रीत्व (कोंकणी में नपुंसकत्व भी) के संबंध में प्रयुक्त होते हैं। केवल इनमें हिंदी

का 'रा' तथा कोंकणी का 'जो' प्रत्यय परवर्ती संबद्ध संज्ञा के लिंगों से प्रभावित है।

वचन का प्रभाव तो हिंदी 'मैं' तथा कोंकणी 'हांव' सर्वनामों के प्रकृति-प्रत्ययों में दिखायी देता है।

नीचे हिंदी 'मैं' तथा कोंकणी 'हांव' के रूप क्रमशः स्पष्ट किये हैं।

हिंदी :–

मैं (मूल रूप एकवचन) :

डा. धीरेंद्र वर्मा आदि विद्वान हिंदी 'मैं' का विकास संस्कृत 'अस्मद्' शब्द के करण कारक एकवचन के 'मया' रूप से मानते हैं[७]। अर्थात् इसका विकास इस प्रकार होता है :– सं. मया > पा. मया > प्रा. मइ > अप. मइँ > हिं. मैं।

अपभ्रंश के 'मइँ' रूप में प्राप्त 'इँ' की अनुनासिकता के संबंध में डा. चटर्जी का विचार है कि यह संस्कृत तृतीया एकवचन के 'एन' अपभ्रंश 'एं' परसर्ग से प्रभावित है[८]।

डा. भोलानाथ तिवारी अपभ्रंश 'मइँ' में 'इँ' की अनुनासिकता पूर्ववर्ती 'म' के प्रभाव के कारण मानते हैं[९]।

डा. भोलानाथ तिवारी का मत उचित भी है। संस्कृत 'मया' में 'एन' परसर्ग नहीं दिखायी देता। पालि-प्राकृत में भी 'मया' से विकसित रूपों में 'एन' के प्रभाव के कारण अनुनासिकता नहीं दिखायी देती। अतः डा. भोलानाथ तिवारी के मत के संबंध में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

हम (मूल रूप बहुवचन) :

डा. श्यामसुंदर दास हिंदी 'हम' का विकास प्राकृत 'अम्हे' अपभ्रंश 'अम्हइँ' से मानते हैं। वे 'अम्हइँ' के 'म – ह' में विपर्यय मानते हैं तथा पूर्ववर्ती संस्कृत रूप के विषय में मौन हैं[१०]।

डा. भोलानाथ तिवारी ने वैदिक संस्कृत में प्राप्त 'अस्मे' रूप स्वीकारा है। इस रूप के आधार पर वे संस्कृत में कल्पित 'अस्मे' रूप विकसित मानकर पालि के 'अम्हे' रूप से संबंध जोडते हैं। वे 'म – ह' में विपर्यय न मानकर 'हड्डी, होंठ' आदि की भाँति 'ह' का आदि आगम मानते हैं[११]।

डा. वर्मा ने वैदिक भाषा के 'अस्मे' रूप से प्राकृत 'अम्हे, म्हे' रूपों का विकास माना है[१२]।

वस्तुतः वैदिक संस्कृत में 'अस्मे' रूप कर्ता कारक (अर्थात् प्रथमा विभक्ति) बहुवचन में प्राप्त नहीं है। यह वेद में अधिकरण और संप्रदान कारक के बहुवचन में प्रयुक्त है[१३]। इस 'अस्मे' रूप से पालि–प्राकृत के कर्ता कारक बहुवचन में 'अम्हे' रूप का

विकास नहीं माना जाना चाहिए; क्यों कि इस कल्पना में कारक-विपर्यय मानना पडता है। कारक-विपर्यय अथवा कल्पित रूप तभी मानना उचित होगा जब समुचित रूप का आधार प्राप्त न हो। अतः हिंदी 'हम' की व्युत्पत्ति के संबंध में निम्नलिखित दृष्टिकोण से विचार करना अनुचित नहीं होगा।

संस्कृत 'अस्मद्' शब्द का विकास पालि में अकारान्त 'अम्ह' रूप में होता है और उसके प्रथमा बहुवचन में 'अम्हे' होता है[१४]। इस 'अम्हे' से हिंदी 'हम' का विकास मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

पालि 'अम्हे' का विकास संस्कृत के 'वयं' रूप से नहीं है बल्कि 'वयं' रूप के मूल शब्द 'अस्मद्' से है। संस्कृत 'वयं' से पालि में 'मयं' रूप विकसित है[१५]।

इसलिए संस्कृत में कल्पित 'अस्मे' रूप मानकर तथा वैदिक संस्कृत में प्राप्त चतुर्थ्यंत और सप्तम्यंत 'अस्मे' रूप का कारक-परिवर्तन मानकर रूप-सिद्धि करने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

परंतु यदि पालि में एकारान्त 'अम्हे' रूप-सिद्धि के लिए संस्कृत या वैदिक संस्कृत में किसी एकारान्त रूप का आग्रह ही धरना चाहें तो पालि में 'तुम्हे' रूप-सिद्धि के लिए संस्कृत या वैदिक संस्कृत में 'तुष्मे' जैसे किसी तकारादि रूप का आग्रह धरना पडेगा। परंतु डा. भोलानाथ तिवारी ने पालि में तकारादि 'तुम्हे' रूप-सिद्धि के लिए पूर्ववर्ती भाषाओं में 'तुष्मे' जैसे कोई कल्पित रूप नहीं स्वीकारा है और बहुवचन के यकारादि रूपों पर एकवचन के तकारादि रूपों का सामूहिक प्रभाव माना है[१६]। इससे यह बात सिद्ध होती है कि उत्तरवर्ती भाषाओं में प्राप्त किसी रूप-सिद्धि के लिए पूर्ववर्ती भाषाओं में उस रूप से सादृश्य रखने वाले रूप की कल्पना स्वीकारने की आवश्यकता नहीं है। अन्यथा पालि में 'अम्हं' रूप की सिद्धि के लिए संस्कृत या वैदिक संस्कृत में 'अस्मं' जैसे किसी अन्य रूप की कल्पना करनी पडेगी।

हिंदी के रूपों का विकास दिखाने के लिए संस्कृत में रूप उपलब्ध न होने पर कल्पित रूप की सृष्टि करने की आवश्यकता नहीं है। हिंदी रूपों का विकास दिखाने के लिए पालि, प्राकृत या अपभ्रंश में यदि कोई रूप उपलब्ध होता हो तो उससे हिंदी रूप का विकास दिखाना उचित होगा। क्यों कि हिंदी अपनी पूर्व-पूर्ववर्ती भाषाओं (अपभ्रंश, प्राकृत, पालि, संस्कृत और वैदिक संस्कृत) पर ही निर्भर है। अतः हिंदी 'हम' का विकास पालि 'अम्हे' से दिखाना योग्य होगा, यथाः– पा. अम्हे > प्रा. अम्हे > अप. अम्हे, अम्हइँ > हिं. हम।

पालि 'अम्हे' का संबंध यदि संस्कृत से जोडना चाहते हैं तो केवल संस्कृत के मूल शब्द 'अस्मद्' से ही जोडे न उसके किसी दूसरे रूप से। अर्थात् हिंदी 'हम' का विकास इस प्रकार दिखाया जा सकता है :– सं. अस्मद् (मूल शब्द) > पा. अम्ह (मूल शब्द) > पा. अम्हे (कर्ता कारक बहु.) > प्रा. अम्हे > अप. अम्हे, अम्हइँ > हिं. हम। इस प्रकार

संस्कृत 'अस्मद्' को मूल आधार के रूप में लेकर पालि 'अम्हे' से हिंदी 'हम' रूप सिद्ध हो सकता है।

मुझ (विकृत रूप एक) :

हिंदी 'मुझ' का संबंध संस्कृत 'अस्मद्' शब्द के चतुर्थी के 'मह्यं' रूप से है, यथा :– सं. मह्यं > पा. मय्हं > प्रा. मज्झ > अप. मज्झु > हिं. मुझ।

डा. हार्नले संस्कृत 'मदीय' से हिंदी 'मुझ' का विकास मानते हैं [१७]।

वस्तुतः संस्कृत 'मह्यं' से इसका विकास दिखाना उचित है। संस्कृत 'मह्यं' से विकसित अपभ्रंश के 'मज्झु' से हिंदी 'मुझ' का संबंध जितनी सरलता से जोडा जा सकता है उतनी सरलता से संस्कृत 'मदीय' रूप से नहीं जोडा जा सकता। अन्य भी एक कारण है। संस्कृत 'मदीय' शब्द विशेषण है तो हिंदी 'मुझ' कारकीय रूप है। यह 'मुझ' रूप 'मदीय' से विकसित मानने में प्रायः लिंग का संबंध बना रहता जो वास्तव में उसमें नहीं दिखायी देता, परंतु कारकीय 'मह्यं' से विकसित मानने में लिंग के संबंध का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः हिंदी 'मुझ' का विकास संस्कृत के कारकीय रूप 'मह्यं' से दिखाने में औचित्य है।

यहाँ एक बात विचारणीय है। संस्कृत 'मह्यं' तथा पालि-प्राकृत-अपभ्रंश में विकसित होने वाले उसके रूपों में 'म' के साथ 'उ' स्वर नहीं है। परंतु संस्कृत 'मह्यं' से विकसित हिंदी 'मुझ' में 'म' के साथ 'उ' स्वर है।

इस संबंध में डा. चटर्जी आदि विद्वानों का विचार है कि संस्कृत 'तुभ्यं' से विकसित हिंदी 'तुझ' के सादृश्य के आधार पर 'मह्यं' से विकसित हिंदी 'मुझ' में 'उ' स्वर प्राप्त है [१८]।

वस्तुतः हिंदी 'मुझ' में 'उ' स्वर की प्राप्ति हिंदी 'तुझ' के प्रभाव के कारण नहीं है बल्कि इसका विकास अपभ्रंश में ही हो चुका था। इस संबंध में तीन संभावनाएँ हो सकती हैं –

(i) संस्कृत 'मह्यं' से विकसित अपभ्रंश 'मज्झु' शब्द में प्राप्त होने वाले 'अ' तथा 'उ' स्वरों में परस्पर विपर्यय होने से हिंदी 'मुझ' में 'म' के साथ 'उ' प्राप्त है। मेरी यह कल्पना डा. भोलानाथ तिवारी के विचार से मिलती-जुलती है।

(ii) हिंदी 'मुझ' में उकार की प्रवृत्ति अपभ्रंश में ही दिखायी देती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखित 'हिंदी साहित्य का इतिहास' पुस्तक में अपभ्रंश भाषा के कवियों के इतिहास में 'मुज्झु' रूप प्राप्त है [१९]। वहाँ अपभ्रंश के 'मज्झु' तथा 'तुज्झ' में प्राप्त होने वाले 'उ' ने परस्पर 'अ' को प्रभावित किया है, जैसे :–
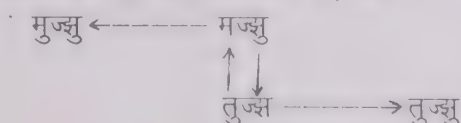
(।।) अपभ्रंश में तो स्पष्ट ही 'तुज्झु' रूप प्राप्त है[२०]। इसका प्रभाव 'मज्झु' पर पड़कर 'मुज्झु' विकसित हो सकता है। इसके अनन्तर 'तुज्झु' और 'मुज्झु' के अन्त्य 'उ' का अदर्शन होता है।

इस प्रकार अपभ्रंश ही में 'मज्झ' के साथ 'उ' प्राप्त है, जो हिंदी में दीखता है। अतः हिंदी 'मुझ' का विकास सस्कृत 'महयं' से मानना उचित है। साथ ही इसका उपयोग कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण कारकों के एकवचन में होता है।

हम (विकृत रूप बहु.) :

हिंदी में 'मैं' शब्द के विकृत रूप के बहुवचन में 'हम' रूप उपलब्ध है। यह मूल रूप 'हम' के सदृश है। अतः इसकी व्युत्पत्ति मूल रूप 'हम' के समान मानी जा सकती है। फिर भी इसका विकास पालि में प्राप्त कर्म कारक 'अम्हे, अम्हं' से मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्यों कि यह 'हम' कर्म आदि कारकों में प्रयुक्त होता है (विकास के लिए देखिए, हिंदी 'हम' मूल रूप बहुवचन, पृ. १९५)।

मुझे (विशेष रूप एक.) :

हिंदी 'मुझे' शब्द के संबंध में डा. वर्मा लिखते हैं[२१] – "यह 'ए' विकृत रूप का चिह्न है जो 'मुझ' में ऊपर से लगा है।" इस प्रकार वे 'मुझे, तुझे, उसे, इसे, किसे, जिसे' के 'ए' को विकृत मानते हैं तथा 'तिसे' के संबंध में मौन हैं[२२]। 'मुझे, तुझे' आदि रूपों के संबंध में उनका विचार होगा कि जिस प्रकार 'लडका : लडके को; घोडा : घोडे से' आदि रूपों में 'आ' का 'ए' होता है वैसा यहाँ भी होता हो।

वस्तुतः 'मुझे, तुझे, इसे' आदि विशेष रूपों में प्राप्त 'ए' तथा 'हमें, तुम्हें, इन्हें' आदि विशेष रूपों में प्राप्त 'एं' को विकृत रूप का चिह्न नहीं मानना चाहिए। क्यों कि इन रूपों के मूल में 'मुझा, तुझा, इसा' जैसा कोई आकारान्त शब्द नहीं है और 'मुझे, तुझे, इसे' आदि रूपों के अनन्तर अलग कारकीय चिह्न भी प्रयुक्त नहीं होते हैं, जैसे 'लडके को, घोडे से' शब्दों में अलग कारकीय चिह्न प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार 'लडके को, घोडे से' रूपों में 'ए' विकृत रूप का चिह्न है और 'मुझे, तुझे' आदि रूप कर्म तथा संप्रदान कारक के एक प्रकार के सिद्ध विशेष रूप हैं।

अत एव डा. भोलानाथ तिवारी 'मुझे' आदि रूपों के 'ए' का स्रोत कर्म या संप्रदान कारक के रूपों में खोजते हैं। उन्होंने प्राकृत के कर्म कारकीय 'तुज्झे' से 'तुझे' तथा इसके सादृश्य पर 'मुझे' का विकास माना है[२३]।

परंतु इस विकास-क्रम में डा. भोलानाथ तिवारी ने प्राकृत में प्राप्त बहुवचनीय 'तुज्झे' रूप का वचन-विपर्यय मानकर हिंदी 'तुझे' रूप सिद्ध किया है।

फिर भी हिंदी 'मुझे' रूप-सिद्धि के लिए प्राकृत में एकवचन तथा बहुवचन में 'मज्झे' जैसा रूप उपलब्ध नहीं है[२४]। अपभ्रंश के व्याकरण ग्रंथों में भी 'मुज्झे, तुज्झे' जैसा रूप नहीं मिलता है[२५]। अतः अपभ्रंश में कल्पित रूप मानना पडता है।

डा. भोलानाथ तिवारी ने उद्धृत किये प्राकृत-पैंगल के उदाहरण पुरानी हिंदी के हैं, क्यों कि उन्होंने ही प्राकृत-पैंगल को ' परवर्ती अपभ्रंश ' या ' पुरानी हिंदी ' कहा है [२६] । प्राकृत पैंगल की रचना भी १४ वीं, १५ वीं शताब्दी में अनुमित की गयी है [२७]।

हिंदी ' मुझ, तुझ, उस ' आदि रूपों का प्रयोग हिंदी के आदि-काल से ही प्राप्त है, परन्तु एकारान्त ' मुझे, तुझे, उसे ' आदि रूपों का प्रयोग लगभग १४ वीं सदी के अनन्तर मिलता है । गोरखबानी में ' हमें, हमैं ' और ' तुम्हैं ' रूप मिलते हैं तथा कबीर में ' तुझै ' रूप एक दो स्थलों पर मिलता है [२८] । डा. भोलानाथ तिवारी के इन विचारों के आधार पर यहाँ तीन संभावनाएँ हो सकती हैं –

(i) अपभ्रंश के कर्म कारकीय ' अम्हइँ , तुम्हइँ ' से अम्हैं – अम्हें, तुम्हैं – तुम्हें > हमैं – हमें, तुमैं– तुमें (शायद ' तुम्हें ' भी) > हिं. ' हमें, तुम्हें ' का विकास होता है । अर्थात् ' अम्हइँ, तुम्हइँ ' के ' इँ ' से ' ऐं ' तथा ' एं ' विकसित हुए । एकवचन की सामर्थ्य से इनके अनुनासिक का लोप होकर ' ऐ ' तथा ' ए ' का विकास हुआ । इनमें से ' ऐ ' कबीर के पद्य में ' तुझै ' रूप में प्राप्त है । ' ए ' मुज्झ, तुज्झ ' में प्राप्त होकर ' मुज्झे, तुज्झे ' रूप सिद्ध होते हैं जो प्राकृत-पैंगल में प्राप्त हैं । आगे चलकर इन्हीं से हिंदी में ' मुझे, तुझे ' रूप विकसित हुए हैं । यही ' ए ' अनन्तर के काल में ' उस, इस, जिस, तिस, किस ' में प्राप्त होकर ' उसे, इसे, जिसे, तिसे, किसे ' रूप सिद्ध होते हैं तथा उपर्युक्त ' हमें, तुम्हें ' में प्राप्त ' एं ' प्रत्यय ' उन्ह, इन्ह, जिन्ह, तिन्ह, किन्ह ' में प्राप्त होकर ' उन्हें, इन्हें, जिन्हें, तिन्हें, किन्हें ' रूप सिद्ध होते हैं ।

(ii) अपभ्रंश में कर्म कारक बहुवचन के ' अम्हे, तुम्हे ' रूपों में प्राप्त ' ए ' का प्रभाव एकवचन में होकर ' मुझे, तुझे ' रूप सिद्ध हो सकते हैं । ' ए ' का प्रभाव एकवचन में प्रायः इसलिए होता हो कि बहुवचन में ' अम्हइँ, तुम्हइँ ' से ' एं ' विकसित होकर ' हमें, तुम्हें ' रूप सिद्ध होते थे । वचन-विपर्यय के कारण यह बात मानने में आपत्ति नहीं होगी ।

(सूचना :– वचन-विपर्यय की प्रक्रिया पालि में ही शुरू हो गयी है । अत एव ' अस्मद्, युष्मद् ' के बहुवचन में प्राप्त होने वाले ' अम्हं, तुम्हं ' रूप एकवचन में भी उपलब्ध होते हैं । इसी प्रकार ' अस्मद् ' शब्द के एकवचन में प्राप्त मकारादि प्रवृत्ति बहुवचन में भी दिखायी देती है । यही प्रवृत्ति प्राकृत के इन शब्दों में और भी अधिक हुई दिखायी देती है।)

(iii) अपभ्रंश के करण तथा अधिकरण कारक ' हि, हिं ' कारक-चिह्नों का प्रयोग कालान्तर में कर्म, संप्रदान, अपादान तथा संबंध कारक में होने लगा । ' हि, हिं ' का विकास ' इ–ए–ऐ, इँ–एं–ऐं ' रूप में हुआ [२९] । कदाचित् इस विकास का पूर्व रूप ' इँ ' प्रत्यय ' अम्हइँ, तुम्हइँ ' में प्राप्त हुआ होगा । इसलिए ' ए, एं ' प्रत्यय ' उक्तिव्यक्ति प्रकरण ' में कर्म कारक बहुवचन में प्राप्त हैं, यथा :– ' भाँडे भाज (४१/२१) ', ' भलें निवाड (४८/२१) ' [३०]। इसी प्रकार उक्तिव्यक्ति प्रकरण में कर्म कारक एकवचन में ' एं ' प्रत्यय प्राप्त है ; यथा :– ' माथें करोअ (= मस्तकं करोति) [३१] । फिर निरनुनासिक ' ए '

तथा सानुनासिक ‘ एं ’ प्रत्यय क्रमशः एकवचन तथा बहुवचन में प्राप्त होकर ‘ मुझे ’ आदि एकवचनीय रूप तथा ‘ हमें ’ आदि बहुवचनीय रूप सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार हिंदी ‘ मुझे ’ रूप की सिद्धि भिन्न-भिन्न प्रकारसे हो सकती है। इसका प्रयोग कर्म तथा संप्रदान कारक के एकवचन में होता है।

हमें (विशेष रूप बहु.) :

हिंदी ‘ हमें ’ का विकास डा. भोलानाथ तिवारी अपभ्रंश में प्राप्त कर्मकारकीय ‘ अम्हे ’ रूप से मानते हैं [३२]।

वस्तुतः ‘ अम्हइँ ’ रूप अपभ्रंश में कर्म कारक में भी प्राप्त है। अतः ‘ हमें ’ का विकास ‘ अम्हइँ ’ से मानने में अडचन नहीं होनी चाहिए। ‘ अम्हे ’ से ‘ हमें ’ का विकास मानते समय अनुनासिक की कल्पना करनी पडती है, वह ‘ अम्हइँ ’ से विकास मानने में नहीं करनी पडती। गोरख में ‘ हमैं ’ रूप है। वह तो ‘ अम्हइँ ’ से ही सिद्ध करना पडता है (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी ‘ मुझे ’, पृ. १९८)।

इस प्रकार हिंदी ‘ हमें ’ का विकास कर्म कारक पालि ‘ अम्हे ’ और अपभ्रंश ‘ अम्हइँ ’ से माना जाए। इसका प्रयोग कर्म तथा संप्रदान कारक के बहुवचन में होता है।

मेरा (संबंध कारक एक.) :

हिंदी ‘ मेरा, हमारा, तेरा, तुम्हारा ’ रूप विशेषण के समान प्रयुक्त हैं और इनके ‘रा’ पर लिंग का प्रभाव है। अतः ऐसा मानना पडता है कि इनका विकास कारकीय रूपों से न होकर विशेषणात्मक प्रत्ययान्त रूपों से हुआ है। संस्कृत में ‘ अस्मद्, युष्मद् ’ शब्द के अनन्तर ‘ यह इसका ’ संबंध सूचित करने के लिए आने वाले विशेषणात्मक ‘ ईय ’ प्रत्यय के स्थान पर अपभ्रंश में ‘ आर (डार) ’ आदेश होता है [३३]। इससे ‘ महार, हमार, तुहार, तुम्हार ’ होकर ‘ मेरा, हमारा, तेरा, तुम्हारा ’ रूप सिद्ध होते हैं। प्राकृत में ‘आर(डार) ’ के बदले ‘ केर ’ प्रत्यय जुडता है [३४]।

प्रश्न उठता है। प्राकृत ‘ केर ’ तथा अपभ्रंश ‘ आर(डार) ’ किससे व्युत्पन्न हैं ?

डा. चटर्जी आदि कई विद्वान ‘ केर ’ का संबंध सं. ‘ कार्य ’ से जोडते हैं [३५]।

बीम्स आदि विद्वान सं. ‘ कृत ’ या ‘ कृतक ’ से प्राकृत ‘ केर (केरो) ’ का संबंध जोडते हैं [३६]।

डा. उदयनारायण तिवारी ‘मम-केर’ से ‘ मेरा ’; कल्पित ‘ अस्म+केर ’ से ‘हमारा’; ‘ तव + केर ’ से ‘ तेरा ’ तथा ‘ युष्म+केर ’ से ‘ तुम्हारा ’ रूपों का विकास मानते हैं [३७]।

डा. भोलानाथ तिवारी प्राकृत ‘ केर ’ का विकास संस्कृत ‘ कृत ’ से तथा अपभ्रंश

‘ आर ’ का विकास संस्कृत ‘ कार्य ’ से मानते हैं [३८] ।

इस प्रकार ‘ मेरा ’ आदि रूपों की व्युत्पत्ति के संबंध में मतभेद है । इन विविध व्युत्पत्ति में अर्थ का संबंध दूर से जोडना पडता है ।

अतः ऐसा लगता है कि ये रूप संस्कृत के ‘ यह इसका ’ संबंध सूचित करने वाले विशेषणात्मक ‘ ईन(ख) ’ प्रत्ययान्त ‘ मामकीनः, आस्माकीनः, तावकीनः, यौष्माकीणः (‘ ष् ’ के कारण ‘ न् ’ का ‘ ण् ’ हुआ है) ’ से विकसित मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए । पालि में ‘ न ’ का ‘ ल ’ होता है [३९], यथा :– सं. ‘ नैन ’ > पा. ‘ नेलं ’ (इन शब्दों के बारे में संशय है)। पालि ‘ ल ’ का प्राकृत में ‘ र ’ होता है, यथा :– सं. स्थूल > पा. थूल [४०] > प्रा. थोर [४१] । पालि में एक उदाहरण ऐसा भी मिलता है जिसमें ‘ न ’ का ‘ र ’ होता है, यथा :– सं. नीराजना > पा. नेरांजरा [४२]। हिंदी तथा कोंकणी में ‘ न ’ का ‘ ल ’ हुआ उदाहरण मिलता है, जैसे :– सं. जन्म > हिं. जलम, कों. जल्म । कोंकणी में एक और उदाहरण मिलता है जिसमें ‘ न ’ का ‘ र ’ होता है, जैसे :– आसनमांडी > आसरमांडी । इसके सिवा पालि में ‘ ण ’ का भी ‘ ळ ’ होता है, जैसे :– वेणु > वेळु, मृणालं > मुळालं । इस ‘ ळ ’ से ल > र होने की संभावना है ।

इसलिए संस्कृत ‘ मामकीन ’ आदि में प्राप्त ‘ न (‘ ण् ’ भी) ’ का विकास पालि में ‘ र ’ के रूप में माना जाए तो ‘ कीन (‘ कीण ’ भी) ’ से प्राकृत में स्वतंत्र ‘ केर ’ प्रत्यय विकसित मानने में सरलता दीखती है । यह प्रत्यय ‘ परकेरं, रायकेरं ’ शब्दों में भी प्राप्त होता है [४३] ।

परंतु एक बात स्पष्ट करना जरूर है कि संस्कृत ‘ मामकीन ’ आदि से विकसित रूप बहुत ढूँढने पर भी ‘ पालि महाव्याकरण ’ तथा ‘ कच्चायन व्याकरण ’ में उपलब्ध नहीं हुए । अतः इस संबंध में अधिक संशोधन करने की जरूरी है ।

हिंदी ‘ मेरा, हमारा, तेरा, तुम्हारा ’ रूपों पर लिंग-वचन का प्रभाव है, जैसे :– ‘ मेरा बेटा, मेरी बेटी ’; ‘ तेरा ग्रंथ, तेरी पुस्तक ’ आदि । इसके सिवा कारक-चिह्न युक्त परवर्ती संबद्ध संज्ञा के कारण भी इनमें परिवर्तन होता है, यथा :– ‘ मेरे बेटे ने/ बेटों ने ’; मेरी बेटी ने/बेटियों ने ’ आदि । संबंधबोधक अव्ययों के कारण भी इनमें रूपान्तर होता है, जैसे :– ‘ मेरे पास / लिए / बिना ’; ‘ मेरी ओर / तरफ / खातिर ’ आदि ।

हमारा (संबंध कारक बहु.) :

हिंदी ‘ हमारा ’ शब्द का विकास ‘ मेरा ’ शब्द की तरह संस्कृत के विशेषणवाची ‘ आस्मकीनः ’ शब्द से मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए (विस्तार के लिए देखिए हिंदी ‘ मेरा ’, पृ. २००) ।

कोंकणी :–

हांव (मूल रूप एक.) :

डा. कत्रे कोंकणी ' हांव ' का संबंध संस्कृत ' अहकं ' से जोडते हैं [४४] ।

इस व्युत्पत्ति में संस्कृत ' अहं ' रूप में प्रथम ' क ' जोडा जाता है, और अनन्तर ' अहकं ' से कोंकणी ' हांव ' का विकास माना जाता है । इसके बदले संस्कृत ' अस्मद् ' शब्द के कर्ता कारक के एकवचनीय ' अहं ' से कोंकणी ' हांव ' को विकसित मानने में अडचन नहीं होनी चाहिए, यथा :– सं. अहं > पा. अहं > प्रा. अहं, हं > अप. हउँ > कों. हांव । अपभ्रंश शब्दों में आदि स्थित ' अ ' कोंकणी के कुछ शब्दों में ' आ ' में परिवर्तित होता है, यथा :– अप. अंग > कों. आंग; अप. अंगुलिउ > कों. आंगूळ; अप. हसिउँ > कों. हांसता; आदि । अतः ' हउँ ' का ' हांव ' सरलता से हो सकता है । इस प्रकार कोंकणी ' हांव ' संस्कृत ' अहं ' से विकसित माना जा सकता है ।

कोंकणी ' हांव ' का साम्य व्रज ' हौं ' पुरानी अवधी ' हौं, हउँ ' तथा पुरानी बंगाली ' हउँ ' से स्पष्ट दिखायी देता है ।

आमी (मूल रूप बहु.) :

डा. कत्रे ने कोंकणी ' आमी ' का विकास वैदिक संस्कृत अस्मेभिः > प्रा. अम्हेहिं से माना है [४५] ।

वस्तुतः वैदिक संस्कृत तथा संस्कृत में ' अस्माभिः' रूप उपलब्ध है, न कि 'अस्मेभिः ' [४६] । अतः कोंकणी ' आमी ' का विकास हिंदी ' हम ' की तरह पालि ' अम्हे ' से मानना समीचीन होगा, जैसे :– पा. अम्हे > प्रा. अम्हे > अप. अम्हे, अम्हइँ > कों. आमी । (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी ' हम ' मूल रूप बहुवचन, पृ. १९५) ।

म्हा, म्ह, मा, म (विकृत रूप एक.) :

कोंकणी के इन चारों रूपों की व्युत्पत्ति संस्कृत के ' मह्यं ' से मानी जा सकती है, यथा :– सं. मह्यं > पा. मय्हं > प्रा. मज्झ > अप. महु > कों. म्हा, म्ह, मा, म । यहाँ अपभ्रंश और कोंकणी की बीच की अवस्था में ' महु ' के ' उ ' के स्थान ' अ ' होकर ' मह ' होता है । यह रूप कीर्तिलता में प्राप्त है (देखिए, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन – डा. वीरेंद्र श्रीवास्तव ; पृ. १६९) । कोंकणी में ' म ' और ' ह ' समीप आने के बाद प्रायः ' म ' के ' अ ' का लोप होने की प्रवृत्ति है, यथा :– सं. महार्घ > कों. म्हारग; सं. महादेव > कों. म्हादेव; सं. मधु > महु > कों. म्होव; आदि । इस प्रकार अपभ्रंश ' महु ' से कोंकणी में ' म्हा ', ' म्ह ' विकसित होते हैं । इसके सिवा कोंकणी में ' ह ' का लोप होने की भी प्रवृत्ति है, यथा :– सं. ग्रहण > कों. गिराण; सं. प्रहर > कों. पार; आदि । इसी प्रकार ' मह ' के ' ह् ' लोप से ' मा ' होता है और वह बाद में ह्रस्व होकर ' म ' में परिवर्तित होता है । इनके उदाहरण हैं :– ' म्हाका, माका(=मुझे, मुझको) '; ' म्हज्यांत (=मुझमें) '; ' म्हगेर (=मेरे यहाँ = मेरे घर) ' ;'म्हजो, मंजो(=मेरा)'।

कोंकणी 'मा, म' अन्य एक प्रकार से विकसित हो सकते हैं। पालि, प्राकृत अपभ्रंश में, कर्म कारक में 'मं' रूप प्राप्त है [४७]। शायद इसका विकास संस्कृत 'अस्मद्' शब्द के कर्मकारकीय 'मां' से होगा। इससे कोंकणी में 'म' विकसित हो सकता है। 'म(–का), मा(–का)' में पहला विकास शायद 'मका' और बाद में 'माका' का हुआ होगा। आज भी कोंकणी में अशिक्षित लोगों के बोलने में 'मका' रूप का प्रयोग प्रचलित है।

आम (विकृत रूप बहु.) :

कोंकणी विकृत रूप 'आम' तथा मूल रूप 'आमी' में अन्त्य 'अ' तथा 'ई' के कारण थोडा-सा अन्तर है। कोंकणी 'आम' की व्युत्पत्ति भी पालि में प्राप्त कर्म कारक 'अम्हे' से माना जाना चाहिए। यथा :– पा. अम्हे > प्रा. अम्हे > अप. अम्हे, अम्हइँ > आमी > कों. आम। 'आमी' से 'आम' होने का कारण कदाचित् यह भी होगा कि कोंकणी में ईकारान्त शब्द में परसर्ग जोडते समय 'ई' के स्थान 'अ' होता है, यथा :– 'दुदी (= कद्दू) : दुदयाक (=कद्दू को); हती (= हाथी) : हतयाक (= हाथी को); चली (=लडकी) : चलयेन (=लडकी ने)'; आदि। इसी प्रकार 'आमी (=हम) : आमकां (=हमको)' में परसर्ग जुडते समय 'आमी' का 'आम' होता है।

हांवें (विशेष रूप एक.) :

कोंकणी में 'हांवें (=मैंने)' रूप कर्ता कारक एकवचन में प्रयुक्त है। यह रूप 'हांव' शब्द में 'एं' प्रत्यय जुडकर सिद्ध होता है। 'एं' प्रत्यय संस्कृत 'इन (एन)' का ही रूपान्तर माना है (देखिए, पृ. १६०)। यह अपभ्रंश में तृतीया विभक्ति (करण कारक) के एकवचन में प्रयुक्त है। संस्कृत से लेकर अपभ्रंश तक तृतीया विभक्ति कर्ता तथा करण अर्थ में प्रयुक्त होती है, जैसे:– 'देवें, बालें, वरूणें'; 'कज्जें, जीभें, नाकें' आदि। इनमें से कर्ता अर्थ में 'हांव' सर्वनाम में 'एं' प्रत्यय जुडकर कोंकणी 'हांवें' रूप सिद्ध होता है। यह सविभक्तिक कर्ता कारक 'मैंने' अर्थ में प्रयुक्त होता है।

म्हाका, माका (विशेष रूप एक.) :

कोंकणी में 'हांव' सर्वनाम के कर्म तथा संप्रदान कारक के एकवचन में 'म्हाका (=मुझको)' तथा 'माका (=मुझको)' रूप प्राप्त हैं। 'म्हाका' तथा 'माका' में 'म्हा' तथा 'मा' विकृत रूप हैं और 'का' प्रत्यय है। कोंकणी सर्वनामों के रूपों में 'का' प्रत्ययान्त चार और रूप प्राप्त हैं, यथा :– 'तूं' का 'तुका (=तुझको)'; 'तो' का 'ताका (=उसको)'; 'हो' का 'हाका (=इसको)' और 'जो' का 'जाका (=जिसको)'। 'तो, हो, जो' में स्त्रीलिंग के कारण अंतर भी प्राप्त है, यथा:– 'तिका, हिका, जिका' ('मैं, तूं' में लिंग का संबंध नहीं है)। इन सभी रूपों में प्रत्यय के पूर्व जो विकृत रूप हैं वे सामान्य हैं और 'का' विशिष्ट प्रत्यय है। यह प्रत्यय उपर्युक्त पाँच सर्वनामों के सिवा अन्य सर्वनामों अथवा संज्ञाओं में प्राप्त नहीं है। अतः 'म्हाका, माका' आदि को विशेष रूप माना है। 'का' प्रत्यय का स्पष्टीकरण पूर्व दिया है(देखिए,कोंकणी : 'क, का, कां',पृ. १६२)।

आमकां (विशेष रूप बहु.) :

कोंकणी में 'हांव' सर्वनाम के कर्म तथा संप्रदान कारक के बहुवचन में 'आमकां (=हमको)' रूप प्राप्त है। 'आमकां' में 'आम' विकृत रूप है और 'कां' प्रत्यय है। कोंकणी सर्वनामों के रूपों में 'कां' प्रत्ययान्त चार और रूप प्राप्त हैं, यथा :– 'तूं' का 'तुमकां(= तुमको)'; 'तो' का 'तांकां(= उनको)'; 'हो' का 'हांकां(= इनको)' और 'जो' का 'जांकां (=जिनको)'। इन बहुवचनीय 'आमकां' आदि पाँचों रूपों पर लिंग का प्रभाव नहीं है। इन रूपों में प्रत्यय के पूर्व जो विकृत रूप हैं वे सामान्य हैं और 'कां' विशिष्ट प्रत्यय है। यह प्रत्यय उपर्युक्त पाँच सर्वनामों के सिवा अन्य सर्वनामों अथवा संज्ञाओं में प्राप्त नहीं है। अतः 'आमकां' आदि को विशेष रूप माना है। 'कां' प्रत्यय का स्पष्टीकरण पूर्व दिया है (देखिए, पृ. १६२ ; कोंकणी : 'क, का, कां')।

म्हजो, मजो (संबंध कारक एक.) :

कोंकणी में 'हांव' सर्वनाम के संबंध कारक एकवचन में 'म्हजो , मजो (=मेरा)' दो रूप प्राप्त हैं। 'म्हजो' तथा 'मजो' में 'म्ह' तथा 'म' विकृत रूप हैं और 'जो' प्रत्यय है। कोंकणी सर्वनामों के रूपों में 'जो' प्रत्ययान्त तीन और रूप प्राप्त हैं, यथा :– 'तूं' का 'तुजो (=तेरा)'; 'तो' का 'ताजो (=उसका)'; 'हो' का 'हाजो (=इसका)'। 'तो, हो' में स्त्रीलिंग के कारण अन्तर भी प्राप्त है, यथा :– 'तिजो, हिजो'। इन सभी रूपों में प्रत्ययपूर्व जो विकृत रूप हैं वे सामान्य हैं और 'जो' विशिष्ट प्रत्यय है। अतः 'म्हजो, मजो' आदि को विशेष रूप माना है। यह प्रत्यय उपर्युक्त चार सर्वनामों के सिवा अन्य सर्वनामों अथवा संज्ञाओं में प्राप्त नहीं है।

उपर्युक्त 'म्हजो (मजो), तुजो, ताजो, हाजो' रूप विशेषण के समान प्रयुक्त हैं और इनके 'जो' प्रत्यय पर लिंग का प्रभाव है। अतः इनका विकास संस्कृत सर्वनामों के कारकीय रूपों से न मानकर विशेषणात्मक रूपों से मानना आवश्यक है। अत एव 'म्हजो, तुजो' आदि का विकास संस्कृत के विशेषणात्मक 'मदीय, त्वदीय' से मानना उचित है। 'मदीय, त्वदीय' में प्राप्त 'ईय' से कोंकणी 'जो' का विकास माना है (देखिए, 'जो', पृ. १६८)।

हिंदी 'मेरा' आदि रूपों की तरह कोंकणी 'म्हजो, तुजो, ताजो, हाजो' रूपों पर लिंग, वचन का प्रभाव है, जैसे :– 'म्हजो चलो, म्हजी चली'; 'तुजो ग्रंथ, तुझें पुस्तक ('पुस्तक' हिंदी में स्त्रीलिंग तो कोंकणी में नपुंसकलिंग है अतः यहाँ 'तुझें' नपुंसक. हुआ है)'; आदि। इसके सिवा कारक-चिह्न युक्त परवर्ती संबद्ध संज्ञा के कारण भी इनमें परिवर्तन होता है, यथा :– 'म्हज्या चल्यान(= मेरे बेटे ने) / चल्यांनी (=मेरे बेटों ने)'; 'म्हजे चलयेक (= मेरी बेटी को)'; 'म्हज्या चलयांनी (= मेरी बेटियों ने)'; आदि। संबंधबोधक अव्ययों के कारण भी इनमें रूपान्तर होता है, जैसे :– 'म्हजे लागीं/खातीर/शिवाय'; 'म्हज्या मुखार/वांगडा' आदि।

कोंकणी में ' म्हजो(मजो), तुजो, ताजो, हाजो ' रूपों को संबंध कारक एकवचन के विशेष रूप माने हैं। परंतु 'आमचो,आमगेलो(बहु.)' सामान्य रूप हैं अतः यहाँ नहीं दिये हैं।

× × ×

यहाँ तक किये गये विवेचन के आधार पर हिंदी ' मैं ' और उसके रूपों तथा कोंकणी ' हांव ' और उसके रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

१) हिंदी ' मैं ' तथा कोंकणी ' हांव ' और उनके रूपों से जो व्यक्ति वाच्य है उसके लिंग का प्रभाव इन सर्वनामों और इनके रूपों पर नहीं होता है।

२) हिंदी ' मैं ' तथा कोंकणी ' हांव ' के संबंध कारक रूपों में जो कारक-चिह्न हैं उनमें परवर्ती संज्ञा के लिंग के कारण परिवर्तन होता है।

३) मूल रूप एकवचन में प्राप्त होने वाले हिंदी ' मैं ' सं. ' मया ' से तथा कोंकणी ' हांव ' सं. ' अहं ' से विकसित हैं। इस प्रकार हिंदी ' मैं ' तथा कोंकणी ' हांव ' संस्कृत ' अस्मद् ' शब्द के दो भिन्न रूपों से विकसित हैं। परिणामतः हिंदी ' मैं ' तथा कोंकणी ' हांव ' में अंतर प्राप्त है।

४) मूल रूप बहुवचन में प्राप्त होने वाले हिंदी ' हम ' तथा कोंकणी ' आमी ' का विकास पालि ' अम्हे ' से है। फिर भी इन दोनों के मूल में संस्कृत ' अस्मद् ' ही है। हिंदी ' हम ' तथा कोंकणी ' आमी ' का स्रोत एक होते हुए भी असमान विकास के कारण दोनों में अन्तर प्राप्त है।

५) विकृत रूप एकवचन में, हिंदी में ' मुझ ' तो कोंकणी में ' म्हा, म्ह, मा, म ' रूप प्राप्त हैं। इनका विकास संस्कृत ' मह्यं ' से है। फिर भी हिंदी ' मुझ ' तथा कोंकणी ' म्हा, म्ह, मा, म ' में अन्तर स्पष्ट है। इनमें से कोंकणी ' मा , म ' का विकास संस्कृत ' मां ' से भी हो सकता है। तभी तो कोंकणी रूपों का अंतर स्पष्ट हो जाता है।

६) विकृत रूप बहुवचन में, हिंदी में ' हम ' तथा कोंकणी में ' आम ' रूप प्राप्त हैं। इन दोनों का विकास पालि के कर्म कारक ' अम्हे ' से हुआ है। दोनों का विकास असमान होने के कारण इनमें थोडा-सा अन्तर आया है। हिंदी ' हम ' तथा कोंकणी ' आम ' में अन्त्य ' म ' की दृष्टि से साम्य है।

७) हिंदी ' मुझे (एक.) ',' हमें (बहु.) ' जैसे विशेष रूप कोंकणी में उपलब्ध नहीं हैं तो कोंकणी ' हांवें, म्हाका, माका (एक.)',' आमकां (बहु.) ' जैसे विशेष रूप हिंदी में नहीं हैं।

८) संबंध कारक में, हिंदी में ' मेरा (एक.) ', ' हमारा (बहु.) ' विशेष रूप हैं तो कोंकणी में ' म्हजो, मजो (एक.) ' विशेष रूप हैं।

विशेष –

यहाँ हिंदी ' मैं ' तथा कोंकणी ' हांव ' सर्वनामों के रूपों के संबंध में कुछ विशेष बातें स्पष्ट करना अनावश्यक नहीं होगा।

१) हिंदी में ' मैं ' के कर्ता कारक एकवचन में ' मैं ' और ' मैंने ' दो रूप प्राप्त हैं तथा कोंकणी में भी ' हांव ' के कर्ता कारक एकवचन में ' हांव ' और ' हांवें ' दो रूप प्राप्त हैं।

२) हिंदी में ' मैं ' के कर्ता कारक बहुवचन में ' हम ' और ' हमने ' दो रूप प्राप्त हैं तो कोंकणी में ' हांव ' के कर्ता कारक बहुवचन में केवल एक ही ' आमी ' रूप प्राप्त है जो हिंदी के ' हम ' और ' हमने ' अर्थ में प्रयुक्त होता है, यथा :–

हिंदी	**कोंकणी**
हम काम करते हैं।	आमी काम करतात.
हमने काम किया।	आमी काम केलें.

३) हिंदी में विकृत रूप के एकवचन में ' मुझ ' एक ही रूप है तो कोंकणी में विकृत रूप के एकवचन में चार रूप हैं, यथा :– ' म्हा, म्ह, मा, म '।

४) हिंदी में विकृत रूप के बहुवचन में एक ही ' हम ' रूप है तो कोंकणी में भी विकृत रूप के बहुवचन में एक ही ' आम ' रूप है।

५) हिंदी में कर्म-संप्रदान के एकवचन में ' मुझे ' और बहुवचन में ' हमें ' विशेष रूप मिलते हैं, साथ-साथ ' को ' प्रत्यय लगाये हुए एकवचन में ' मुझको ' और बहुवचन में ' हमको ' रूप मिलते हैं। इस दृष्टि से हिंदी में कर्म–संप्रदान के एकवचन में ' मुझे, मुझको ' और बहुवचन में ' हमें, हमको ' दो-दो रूप मिलते हैं। कोंकणी में कर्म-संप्रदान के एकवचन में विकृत रूप ' म्हा, मा ' में ही एकवचन का ' का ' प्रत्यय लगकर ' म्हाका, माका ' दो रूप प्राप्त होते हैं। परंतु इनमें हिंदी ' मुझे, मुझको ' में प्राप्त होने वाले प्रत्ययान्तर की तरह प्रत्ययान्तर नहीं है। हिंदी ' मुझे, मुझको 'में भिन्न-भिन्न प्रत्यय हैं परन्तु विकृत रूप एक ही हैं; तो कोंकणी ' म्हाका, माका ' में भिन्न-भिन्न प्रत्यय नहीं हैं, परंतु भिन्न-भिन्न विकृत रूप हैं। इस प्रकार कोंकणी में कर्म-संप्रदान के बहुवचन में विकृत रूप ' आम ' में बहुवचन का ' कां ' प्रत्यय जुडकर एक ही ' आमकां ' रूप प्राप्त होता है।

६) हिंदी में संबंध कारक एकवचन में ' मेरा ' और बहुवचन में ' हमारा ' एक-एक रूप प्राप्त है। परंतु ये रूप विकृत रूप ' मुझ ' तथा ' हम ' से नहीं बने हैं। बल्कि ' मेरा ' में ' मे ' तथा ' हमारा ' में ' हमा ' विकृत रूप हैं। कोंकणी में संबंध कारक एकवचन तथा बहुवचन के रूप विकृत रूप से बनते हैं। विकृत रूप एकवचन ' म्ह, म ' में ' जो ' प्रत्यय लगकर ' म्हजो, मजो ' तथा विकृत रूप बहुवचन ' आम ' में ' चो ' प्रत्यय लगकर ' आमचो ' रूप प्राप्त होते हैं। इसके सिवा इन्हीं विकृत रूपों में ' गेलो ' प्रत्यय लगकर ' म्हगेलो, मगेलो (एक.) ' तथा ' आमगेलो (बहु.) ' रूप भी प्राप्त हैं। इस प्रकार कोंकणी ' हांव ' शब्द के संबंध कारक एकवचन में ' म्हजो, मजो, म्हगेलो, मगेलो ' चार रूप प्राप्त हैं तो बहुवचन में ' आमचो, आमगेलो ' दो रूप प्राप्त हैं। कोंकणी में ये रूप विकृत रूपों से बनते हैं, परंतु हिंदी ' मेरा ', ' हमारा ' में ' मुझ ', ' हम ' से भिन्न ' मे ', ' हमा ' विकृत रूपों का प्रयोग प्राप्त है। हिंदी में ' मे ', ' हमा ' के साथ

रा ' के सिवा दूसरा प्रत्यय नहीं आता है परंतु कोंकणी में ' जो (एक. में) ', ' चो हु.में) ' के सिवा दूसरा प्रत्यय ' गेलो(एक. और बहु. में)' जुडता है। फिर भी हिंदी या कोंकणी के इन रूपों में एक बात समान है और वह है लिंग और वचन का प्रभाव। दी तथा कोंकणी के इन रूपों के कारक-चिह्नों में परवर्ती संज्ञा के लिंग तथा वचन के ारण परिवर्तन होता है।

७) शेष कारकों में, हिंदी में ' मुझ (एक. में) ' तथा ' हम (बहु. में) ' विकृत रूपों ा प्रयोग होता है और इनमें शेष कारकीय प्रत्यय जुड जाते हैं। परंतु कोंकणी में, धिकरण कारक में प्राप्त ' म्हगेर (एक.) ' तथा ' आमगेर (बहु.) ' रूप छोडकर शेष ारकों में संबंध कारक ' म्हजो, मजो (एक. में) ' तथा ' आमचो (बहु. में) ' रूप विकृत ोकर प्रयुक्त होते हैं और इनमें शेष कारकीय प्रत्यय जुड जाते हैं ,यथा :– करण कारक में – हिंदी : ' मुझ+से= मुझसे '; कोंकणी : ' म्हजो+न = म्हज्यान ' आदि।

८) हिंदी में संबंधबोधक अव्ययों के साथ संबंध कारक ' मेरा ', ' हमारा ' रूपों में रिवर्तन होता है, यथा :– ' मेरा : मेरे लिए '; ' हमारा : हमारे पास ' आदि। इसी प्रकार ोंकणी में भी संबंधबोधक अव्ययों के साथ संबंध कारक ' म्हजो ', ' आमचो ' रूपों में रिवर्तन होता है, यथा :– ' म्हजो : म्हजेसाटीं '; ' आमचो : आमचेलागीं ' आदि।

उपर्युक्त सभी विवरण निम्नलिखित रूपावली से स्पष्ट हो जाएगा –

	हिंदी		**कोंकणी**	
कारक	**एक.**	**बहु.**	**एक.**	**बहु.**
कर्ता –	मैं, मैंने	हम, हमने	हांव, हांवें	आमी
कर्म –	मुझको, मुझे	हमको, हमें	म्हाका	आमकां
करण –	मुझसे	हमसे	म्हज्यान,म्हजेकडेन	आमच्यानीं,आमचेकडेन
संप्रदान –	मुझको, मुझे	हमको, हमें	म्हाका	आमकां
अपादान –	मुझसे	हमसे	म्हजेसून	आमचेसून
संबंध –	मेरा	हमारा	म्हजो, म्हगेलो	आमचो, आमगेलो
अधिकरण –	मुझमें	हममें	म्हज्यांत	आमच्यांत
	मुझपर	हमपर	म्हजेर	आमचेर
	——	——	म्हगेर	आमगेर
संबंधबोधक अव्ययों के साथ प्रयोग –	मेरे लिए	हमारे लिए	म्हजेसाटीं	आमचेसाटीं
	मेरे खातिर	हमारे खातिर	म्हजेखातीर	आमचेखातीर
	मेरे सामने	हमारे सामने	म्हज्यामुखार	आमच्यामुखार

(उपर्युक्त कोंकणी रूपावली में ' म्हा ', ' म्ह ' के बदले ' मा ', ' म ' का भी प्रयोग किया जा सकता है।)

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी के संबंध कारक रूपों में परवर्ती संज्ञा के लिंग, वचन तथा कारक-चिह्न युक्त परवर्ती संबद्ध संज्ञा के कारण परिवर्तन होता है, यथा :–

हिंदी : ' मेरा लडका (पर. संज्ञा पु. एक. में) ', ' मेरे लडके / लडके ने / लडकों ने (पर. संज्ञा पु. बहु. में तथा कारक-चिह्न युक्त संबद्ध संज्ञा के पु. एक. और बहु. में) ', ' मेरी लडकी / लडकियाँ / लडकी ने / लडकियों ने (पर. संज्ञा स्त्री. एक. और बहु. में तथा परवर्ती कारक-चिह्न युक्त संबद्ध संज्ञा के स्त्री. एक. और बहु. में) ' ।

कोंकणी : ' म्हजो भुरगो (पु. एक.) ', ' म्हजे भुरगे (पु. बहु.) ', ' म्हजी चली (स्त्री. एक.) ', ' म्हज्यो चलयो (स्त्री. बहु.) ', ' म्हजें भुरगें (नपुं. एक.) ', ' म्हजीं भुरगीं (नपुं. बहु.) ', ' म्हजे चलयेक (परवर्ती कारक-चिह्न युक्त स्त्री. संबद्ध संज्ञा के एक. में) ', ' म्हज्या भुरग्याक / भुरग्यांक / चेडवाक / चेडवांक (परवर्ती कारक-चिह्न युक्त पु. और नपुं. संबद्ध संज्ञा के एक. और बहु. में) ' तथा ' म्हज्या चलयांक (परवर्ती कारक-चिह्न युक्त स्त्री. संबद्ध संज्ञा के बहु. में) ' ।

इस प्रकार हिंदी ' मैं ' तथा कोंकणी ' हांव ' सर्वनामों के रूप स्पष्ट होते हैं ।

मध्यम पुरुष
(हिंदी ' तू ' तथा कोंकणी ' तूं ')

मध्यम पुरुषवाचक सर्वनाम हिंदी ' तू ' तथा कोंकणी ' तूं ' के मुख्य रूपान्तर निम्नलिखित प्रकार से हैं –

	हिंदी		कोंकणी	
	एक.	बहु.	एक.	बहु.
मूल रूप –	तू	तुम	तूं	तुमी
विकृत रूप –	तुझ	तुम	तु	तुम
विशेष रूप –	तुझे	तुम्हें	तुंवें, तुका	तुमकां
संबंध कारक –	तेरा	तुम्हारा	तुजो	––

हिंदी ' तू ' तथा कोंकणी ' तूं ' सर्वनामों के संबंधकारक रूपों को छोडकर शेष रूपों में लिंग के कारण परिवर्तन नहीं होता है । अर्थात् उपर्युक्त हिंदी के रूप पुल्लिग और स्त्रीलिंग में तथा कोंकणी के रूप पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में समान रूप से प्रयुक्त हैं ।

संबंध कारक में प्राप्त हिंदी ' तेरा, तुम्हारा ' तथा कोंकणी ' तुजो ' रूपों पर केवल परवर्ती संबद्ध संज्ञा के कारण लिंग का प्रभाव पडता है । फिर भी मध्यम पुरुष से जिस व्यक्ति के साथ व्यवहार किया जाता है उस व्यक्ति के लिंग का प्रभाव हिंदी ' तेरा, तुम्हारा' तथा कोंकणी ' तुजो ' रूपों की प्रकृति (हिंदी : ' ते, तुम्हा ' तथा कोंकणी : ' तु ') पर नहीं पडता । अर्थात् हिंदी ' तेरा, तुम्हारा ' तथा कोंकणी ' तुजो ' रूप स्त्रीत्व (कोंकणी में नपुंसकत्व भी) को लक्ष्य करके भी प्रयुक्त होते हैं । केवल इनमें हिंदी का ' रा ' तथा कोंकणी का ' जो ' प्रत्यय परवर्ती संबद्ध संज्ञा के लिंगों से प्रभावित होते हैं ।

वचन का प्रभाव तो हिंदी ' तू ' तथा कोंकणी ' तूं ' सर्वनामों के प्रकृति-प्रत्ययों में दिखायी देता है ।

नीचे हिंदी ‘ तू ’ तथा कोंकणी ‘ तूं ’ के रूपों का विकास दिया है ।

हिंदी :–

तू (मूल रूप एक.) :

डा. वर्मा ने हिंदी ‘ तू ’ का संबंध संस्कृत करण कारक त्वया > प्रा. तुम, तुअं > अप. तुहं से जोडा है[४८] ।

उपर्युक्त विकास-क्रम में, अपभ्रंश में दिखाये ‘ तुहं ’ रूप के बारे में सोचना आवश्यक है । अपभ्रंश में करण कारक में ‘ तइँ, तइं, पइँ, पइं ’ चार रूप प्राप्त हैं[४९] । इनमें से ‘ तइँ ’ या ‘ तइं ’ से ‘ तैं ’ रूप विकसित होता है, जिस प्रकार संस्कृत ‘ मया ’ रूप अपभ्रंश में ‘ मइँ ’ या ‘ मइं ’ रूप में विकसित होकर हिंदी में ‘ मैं ’ रूप में विकसित होता है । अतः करण कारक ‘ त्वया ’ से हिंदी ‘ तू ’ का विकास सरल नहीं है । प्राकृत में करण कारक में ‘ तुमं ’ रूप है । परंतु इससे विकसित रूप अपभ्रंश में करण कारक में प्राप्त नहीं है । इसलिए हिंदी ‘ तू ’ का विकास संस्कृत ‘ त्वम् ’ से मानना उचित होगा, यथा :– सं. त्वम् > पा. त्वं, तुवं > प्रा. तुं, तुवं > अप. तुहुँ, तुहं > तूं > हिं. तू । व्रज आदि पुरानी हिंदी में सानुनासिक ‘ तूं ’ भी उपलब्ध है । यह कोंकणी ‘ तूं ’ से साम्य रखता है ।

इस प्रकार हिंदी ‘ तू ’ का विकास संस्कृत ‘ त्वम् ’ से है ।

तुम (मूल रूप बहु.) :

डा. श्यामसुंदर दास कर्ता कारक एकवचन ‘ त्वम् ’ प्राकृत ‘ तुमं ’ से हिंदी ‘ तुम ’ का विकास मानते हैं[५०] ।

डा. धीरेंद्र वर्मा ने हिंदी ‘ तुम ’ का विकास संस्कृत * तुष्मे > प्रा. तुम्हे, तुम्ह से माना है[५१] ।

डा. उदयनारायण तिवारी संस्कृत ‘ युष्मे ’ से हिंदी ‘ तुम ’ विकसित मानते हैं[५२] ।

डा. भोलानाथ तिवारी वैदिक संस्कृत में प्राप्त होने वाले ‘ युष्मे ’ रूप का आधार लेकर संस्कृत में * ‘ युष्मे ’ रूप स्वीकारते हैं, और इससे हिंदी ‘ तुम ’ का विकास मानते हैं[५३] ।

वास्तव में यहाँ संस्कृत में प्राप्त ‘ त्वं ’ अथवा कल्पित ‘ तुष्मे ’ या वैदिक संस्कृत में प्राप्त ‘ युष्मे ’ जैसे रूपों से हिंदी ‘ तुम ’ रूप का विकास मानने की आवश्यकता नहीं है । पालि से अपभ्रंश तक कर्ता कारक बहुवचन में स्पष्ट ही ‘ तुम्हे ’ रूप दिखायी देता है । संस्कृत ‘ युष्मद् ’ शब्द का पालि में ‘ तुम्ह ’ रूप में विकास होने पर कर्ता कारक बहुवचन में ‘ ए ’ प्रत्यय जुडकर ‘ तुम्हे ’ रूप सिद्ध होता है । पालि में तकारादि रूपों की प्राप्ति के लिए डा. भोलानाथ तिवारी ने ‘ युष्मद् ’ शब्द के बहुवचनीय यकारादि रूपों पर एकवचनीय तकारादि रूपों का प्रभाव माना है[५४] । इस प्रकार पालि ‘ तुम्हे ’ से हिंदी ‘तुम’

का विकास होने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए, यथा :– पा. तुम्हे > प्रा. तुम्हे, तुम्ह > अप
तुम्हे, तुम्हइँ > हिं. तुम ।

हिंदी का विकास दिखाने के लिए संस्कृत का आधार लेना आवश्यक है; परंतु यि
संस्कृत में आधार के स्वरूप में कोई रूप नहीं मिलता और संस्कृत के उत्तरकालीन भाषाअं
में आधार-स्वरूप कोई रूप मिलता है, तो हिंदी के रूप की सिद्धि के लिए कल्पित रूप क
कल्पना करने की आवश्यकता नहीं है । यह बात 'हम' रूप के विवरण में स्पष्ट की
(विस्तार के लिए देखिए, हिंदी 'हम', पृ. १९५) । यदि पालि 'तुम्हे' का संबं
संस्कृत शब्द से जोडना ही चाहते तो केवल संस्कृत के मूल शब्द 'युष्मद्' से जोडा ज
सकता है न कि उसके किसी दूसरे रूप से । अतः हिंदी 'तुम' का विकास इस प्रका
दिखाया जा सकता है :– सं. युष्मद् (मूल शब्द) > पा. तुम्ह (मूल शब्द) > पा. तुम्
(कर्ता कारक बहु.) > प्रा. तुम्हे, तुम्ह > अप. तुम्हे, तुम्हइँ > हिं. तुम । इसमें यकारा
रूप पर तकारादि आदेश एकवचनीय तकरादि के प्रभाव के कारण माना है (देखिए, ऊप
डा. भोलानाथ तिवारी का मत) ।

इस प्रकार संस्कृत 'युष्मद्' का मूल आधार लेकर हिंदी 'तुम' का संबंध पालि
'तुम्हे' से माना जाए ।

तुझ (विकृत रूप एक.) :

डा. धीरेंद्र वर्मा ने हिंदी 'तुझ' का संबंध प्राकृत में प्राप्त षष्ठी के 'तुह' के
रूपान्तर 'तुज्झ' तथा संस्कृत 'तुभ्यं' से माना है [५५] ।

डा. भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'तुह्य' रूप ऋग्वेद में उपलब्ध है । वे इस रूप
को कल्पित नहीं मानते । उनके कथनानुसार 'मह्यं' के साथ वैदिक साहित्य में इसी अर्थ
में 'मह्य' मिलता है । 'तुह्य' इसी का समकक्ष है । उन्होंने दिखाया हुआ विकास इस
प्रकार है :– वैदिक सं. तुह्य (संप्र.) > प्रा. तुज्झ (संप्र., अपा., संबंध) > अप. तुज्झ
(संप्र., अपा., संबंध) > हिं. तुझ[५६]।

वस्तुतः वैदिक संस्कृत 'तुह्य' रूप से हिंदी 'तुझ' का विकास नहीं माना जाना
चाहिए । डा. भोलानाथ तिवारी सर्वनामों के रूपों का विकास विस्तार से दिखाने का प्रयत्न
करते हैं (देखिए, 'मैं', 'हौं', 'मेरा' आदि रूप) [५७] । परंतु उन्होंने 'तुझ' का
विकास संकुचित रूप में दिखाया है । वे प्रायः रूप-सिद्धि के लिए वैदिक संस्कृत में रूप
उपलब्ध होने पर उससे सादृश्य रखने वाला रूप यदि संस्कृत में उपलब्ध नहीं होता हो तो
संस्कृत में कल्पित रूप की सृष्टि करते हैं (देखिए, 'हम', 'तुम', 'तुझे', 'मुझे'
आदि) [५८] । यहाँ वैदिक संस्कृत में 'तुह्य' रूप उपलब्ध होने पर 'तुह्य' से सादृश्य
रखने वाला रूप संस्कृत में उपलब्ध न होने के कारण संस्कृत में किसी कल्पित रूप की
योजना उन्हें करनी चाहिए थी, वह उन्होंने नहीं की है । अतः वैदिक संस्कृत 'तुह्य' रूप
से हिंदी 'तुझ' का विकास दिखाने में उन्हें कोई-न-कोई आपत्ति जरूर दीखती होगी जो

होंने स्पष्ट नहीं की है।

मैकडानल लिखित ' वैदिक व्याकरण ' तथा टी. बरो आदि विद्वानों के लिखित संस्कृत भाषा ' आदि भाषाशास्त्रीय ग्रंथों में ढूँढने पर भी ' तुह्य ' रूप नहीं मिलता [५९]। तः ' तुह्य ' रूप जिसमें है ऐसी ऋचा खोजना आवश्यक है।

कदाचित् ' तुह्य ' रूप मुद्रण दोष के कारण भी हो सकता है। क्यों कि डा. त्यपाल नारंग तथा टी. बरो लिखित ग्रंथों में ' तुभ्य ' रूप मिलता है; प्रायः यही रूप किसी ग्रंथ में तुह्य ' रूप में छपा होगा, जैसा कि मैकडानल के ' वैदिक व्याकरण ' में महृयम् ' के बदले ' मद्यम् ' छपा है [६०]।

पालि में ' भ् ' का ' ह् ' होने की प्रक्रिया है, जैसे :– सं. प्रभवति > पा. पहोति; सं. भूतः > पा. पहुतो। इसी प्रकार करण कारक बहुवचन ' भिस् ' प्रत्यय पालि में ' हि ' में परिवर्तित होता है। पालि में हकारादि संयुक्त व्यंजनों में स्थान-परिवर्तन भी हो जाता है, जैसे :– सं. जिह्वा (ह्वा) > पा. जिव्हा (व्हा); सं. दह्यते > पा. डय्हते; सं. मह्यम् > पा. मय्हं। इतना ही नहीं जिस संयुक्त व्यंजन में ' ह् ' नहीं होता है उसमें ' ह् ' प्राप्त होता है तथा दोनों वर्णों में विपर्यय होता है, यथा :– उष्ण > उह्ण > उण्ह; तूष्णीम् > तुह्णी >तुण्ही; ध्वे > ह्वे > व्हे [६१]; विष्णु > वेण्हु; उष्ट्र > ओट्ठ [६२]; क्रुध्यति > कुज्झति; बुध्यते > बुज्झते [६३]। इस प्रकार सं. ' तुभ्यम् ' में ' ह् ' आदेश होकर ' ह्य् ' में विपर्यय होता है और पालि में ' तुय्हं ' सिद्ध होता है। इसलिए हिंदी ' तुझ ' का विकास संस्कृत ' तुभ्यम् ' से मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। अर्थात् हिंदी ' तुझ ' का विकास इस प्रकार हो सकता है :– सं. तुभ्यम् > तुह्यम् > पा. तुय्हं > प्रा. तुज्झ > अप. तुज्झ > हिं. तुझ।

तुम (विकृत रूप बहु.) :

हिंदी ' तू ' शब्द के विकृत रूप के बहुवचन में भी ' तुम ' रूप प्रयुक्त है। यह रूप मूल रूप ' तुम ' के सदृश है। अतः इसकी व्युत्पत्ति मूल रूप ' तुम ' के समान मानी जा सकती है। फिर भी इसकी व्युत्पत्ति पालि में प्राप्त कर्म कारकीय ' तुम्हं, तुम्हे ' से मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्यों कि यह ' तुम ' कर्म (तथा करणादि) कारक में प्रयुक्त होता है (विकास के लिए देखिए, हिंदी ' तुम ' मूल रूप बहु., पृ. २०९)।

तुझे (विशेष रूप एक.) :

डा. धीरेंद्र वर्मा ' तुझे ' में ' ए ' को विकृत रूप का चिह्न मानते हैं [६४]।

डा. भोलानाथ तिवारी ने वैदिक संस्कृत में * तुह्ये ' रूप मानकर उससे हिंदी ' तुझे ' रूप व्युत्पन्न किया है, यथा :– वैदिकी * तुह्ये (चतुर्थी एक.) > सं. * तुह्ये (संप्रदान) > प्रा. तुज्झे (कर्म) > अप. तुज्झे > हिं. तुझे (कर्म-संप्रदान)[६५]।

वस्तुतः हिंदी ‘ तुझे ’ में विकृत रूप का ‘ ए ’ नहीं है क्यों कि विकृत रूप के ‘ ए में कर्म-संप्रदान का कारकत्व नहीं है । इसके सिवा वैदिक संस्कृत में कल्पित ‘ तुह्ये ’ रूप स्वीकार कर ‘ तुझे ’ का विकास मानने में वैदिक संस्कृत से लेकर पालि तक कल्पित रूपं की परंपरा माननी पडती है । अपभ्रंश के ‘ तुज्झे ’ रूप के बारे में भी संशय है । इसके सिवा डा. भोलानाथ तिवारी ने प्राकृत में प्राप्त बहुवचनीय ‘ तुज्झे ’ रूप में वचन-विपर्यय स्वीकारा है, यह बात अलग है ।

अतः स्वतंत्र रूप से ‘ ए ’, ‘ ऐ ’ कारक चिह्न विकसित मानना उचित है । इन दोनों में से ‘ ए ’ से हिंदी ‘ तुझे ’ तथा ‘ ऐ ’ से कबीर में प्राप्त ‘ तुझै ’ रूप सिद्ध होता है (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी ‘ मुझे ’ ,पृ.१९८) । इसका प्रयोग कर्म तथा संप्रदान कारक के एकवचन में होता है ।

तुम्हें (विशेष रूप बहु.) :

डा. धीरेंद्र वर्मा हिंदी ‘ तुम्हें ’ का विकास प्राकृत अपभ्रंश ‘ तुम्हइँ ’ से मानते हैं [६६] ।

डा. भोलानाथ तिवारी ने वैदिक संस्कृत युष्मे > पा. तुम्हे > प्रा. तुम्हे > अप. तुम्हे > हिं. ‘ तुम्हें ’ का विकास दिखाया है । ‘ तुम्हें ’ में अनुनासिकता ‘ म्ह ’ के कारण मानी है । फिर भी वे डा. वर्मा की दिखायी हुई अपभ्रंश ‘ तुम्हइँ ’ से हिंदी ‘ तुम्हें ’ की व्युत्पत्ति को अस्वीकार नहीं करते [६७] ।

वस्तुतः अपभ्रंश के कर्म कारकीय ‘ तुम्हइँ ’ से हिंदी ‘ तुम्हें ’ का विकास मानने में औचित्य दिखायी देता है । इससे ‘ तुम्हें ’ में अनुनासिकता का कारण बताने की आवश्यकता भी नहीं है । प्राचीन हिंदी में उपलब्ध होने वाला ‘ तुम्हैं ’ रूप भी इससे सिद्ध होता है; क्यों कि अपभ्रंश ‘ तुम्हइँ ’ से ‘ तुम्हैं ’ होकर ‘ तुम्हें ’ होने की बात डा. भोलानाथ तिवारी ने स्पष्ट की है । अत एव ‘ तुम्हैं ’ तथा ‘ तुम्हें ’ रूपों का विकास अलग अलग दो भिन्न रूपों ‘ तुम्हइँ ’ तथा ‘ तुम्हे ’ से दिखाने की आवश्यकता नहीं है ।

एक और बात यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है । डा. भोलानाथ तिवारी ने ‘ तुम्हें ’ का विकास वैदिक संस्कृत ‘ युष्मे ’ से माना है । परंतु इस प्रकार मानने की आवश्यकता नहीं है । इसका विकास पालि के कर्म कारक ‘ तुम्हे ’ से माना जा सकता है, यथा :– पालि तुम्हे > प्रा. तुम्हे > अप. तुम्हइँ > हिं. तुम्हें (विस्तार के लिए देखिए हिंदी ‘ हम ’, पृ. १९५) ।

फलतः हिंदी ‘ तुम्हें ’ का विकास पालि के कर्म कारकीय ‘ तुम्हे ’ से माना जाना चाहिए । इसका प्रयोग कर्म तथा संप्रदान कारक के बहुवचन में होता है ।

रा, तुम्हारा (संबंध कारक एक. तथा बहु.) :

हिंदी 'तेरा' तथा 'तुम्हारा' का विकास संस्कृत के विशेषणवाची 'तावकीनः' था 'यौष्माकीणः' से मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी 'मेरा', पृ. २००)।

कोंकणी :–

तूं (मूल रूप एक.) :

डा. शं. गो. तुळपुळे 'तूं' का विकास संस्कृत 'त्वया' से मानते हैं[६८]। परंतु हिंदी 'तू' की तरह कोंकणी 'तूं' का विकास संस्कृत 'त्वम्' से है, यथा :– सं. त्वम् > पा. त्वं, तुवं > प्रा. तुं, तुवं > अप. तुहुँ, तुहुं > कों. तूं। कोंकणी 'तूं' का साम्य व्रज, अवधी, राजस्थानी 'तूँ' से है।

तुमी (मूल रूप बहु.) :

डा. कत्रे कोंकणी 'तुमी' का विकास वैदिक संस्कृत * तुष्मेभिः > प्राकृत 'तुम्हेहिं' से मानते हैं[६९]।

वस्तुतः कोंकणी 'तुमी' का विकास कल्पित '*तुष्मेभिः' से मानने की आवश्यकता नहीं है। कोंकणी 'तुमी' तथा हिंदी 'तुम' में अन्त्य 'ई' तथा 'अ' स्वर के कारण अन्तर है। अन्यथा कोंकणी 'तुमी' तथा हिंदी 'तुम' समान है। अतः इसका विकास भी हिंदी 'तुम' की तरह माना जाना चाहिए, यथा :– पा. तुम्हे > प्रा. तुम्हे, तुम्ह > अप. तुम्हे, तुम्हइँ > कों. तुमी (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी 'तुम' मूल रूप बहु., पृ. २०९)।

तु (विकृत रूप एक.) :

कोंकणी 'तु' का विकास संस्कृत 'तुभ्यम्' से है, यथा :– सं. तुभ्यम् > पा. तुय्हं > प्रा. तुज्झ, तुह > अप. तुज्झ, तुह > कों. तु। 'ज्झ' तथा 'ह' के लोप से 'तु' विकसित है।

कोंकणी 'तु' के संबंध में एक और संभावना हो सकती है। संस्कृत तव > पा. तव > प्रा. तुव > अप. तउ > कों. तु। इस विकास में प्रा. 'तुव' का अप. में फिर से 'अ' युक्त 'तउ' रूप होता है। 'तु' का प्रयोग है :– 'तुका (=तुझको)' आदि।

इस प्रकार कोंकणी 'तु' का विकास संस्कृत 'तुभ्यम्' अथवा 'तव' से माना जाए।

तुम (विकृत रूप बहु.) :

कोंकणी विकृत रूप 'तुम' तथा मूल रूप 'तुमी' में अन्त्य 'अ' तथा 'ई' के

कारण थोडा-सा अन्तर है । कोंकणी ' तुम ' की व्युत्पत्ति भी पालि में प्राप्त कर्मकारक 'तुम्हे' से माना जाना चाहिए, यथा :– पा. तुम्हे > प्रा. तुम्हे > अप. तुम्हे, तुम्हइँ > तुमी > कों. तुम । ' तुमी ' का ' तुम ' होने का कारण कदाचित् यह भी होगा कि कोंकणी में ईकारान्त शब्द में परसर्ग जुडते समय ' ई ' के स्थान ' अ ' होता है, यथा :– ' दुदी (=कद्दू) : दुदयाक (= कद्दू को) ' ; ' चली (=लडकी) : चलयेन(=लडकी ने) ' आदि । इसी प्रकार ' तुमी (=तुम) : तुमकां (=तुमको) ' में परसर्ग जुडते समय ' तुमी ' का ' तुम ' होता है ।

तुंवें (विशेष रूप एक.) :

कोंकणी में ' तुंवें (=तूने) ' रूप कर्ता कारक एकवचन में प्रयुक्त है । यह रूप कोंकणी में दो प्रकार से प्राप्त है, यथा :– ' तुंवें ' और ' तुवें ' । प्रथम रूप में ' तुं ' सानुनासिक है तो द्वितीय रूप में ' तु ' निरनुनासिक है । कोंकणी में ' हांव ' मूल रूप में ' एं ' प्रत्यय जुडकर जैसे ' हांवें ' रूप सिद्ध होता है उसी प्रकार कोंकणी ' तूं ' मूल रूप में ' एं ' प्रत्यय जुडकर ' तुंवें ' प्रथम रूप सिद्ध होता है । इसमें ' तूं ' का ' तुं ' होता है और ' व् ' श्रुति है । द्वितीय रूप ' तुवें ' में ' एं ' प्रत्यय है और ' व् ' श्रुति है । इसमें ' तु ' एकवचनीय विकृत रूप है जो अभी ऊपर स्पष्ट किया है । ' एं ' प्रत्यय अपभ्रंश में तृतीया विभक्ति में प्रयुक्त है । संस्कृत से लेकर अपभ्रंश तक तृतीया विभक्ति कर्ता तथा करण अर्थ में प्रयुक्त है । इनमें से ' एं ' प्रत्यय कर्ता अर्थ में ' तूं ' और ' तु ' में जुडकर ' तुंवें ' तथा ' तुवें ' रूप सिद्ध होते हैं । इन ' तुंवें ' और ' तुवें ' रूपों में से ' हांवें ' के सादृश्य पर मूल रूप ' तूं ' से बना ' तुंवें ' रूप स्वीकारना उचित होगा ।

एक और प्रकार से कोंकणी मूल रूप ' तूं ' से ' तुंवें ' का विकास मानना उचित होगा । हिंदी ' मैं ' और ' तू ' मूल रूप में कर्ता कारक ' ने ' प्रत्यय जुडता है तथा ' वह ', ' यह ' और ' जो ' के विकृत रूप ' उस ', ' इस ' और ' जिस ' में कर्ता कारक ' ने ' प्रत्यय जुडता है । ' तूं ' मूल रूप में ' एं ' प्रत्यय मानने से कोंकणी में भी यह स्थिति दिखायी देती है, यथा:– कोंकणी ' हांव ' और ' तूं ' मूल रूप में कर्ता कारक ' एं ' प्रत्यय जुडता है तथा ' तो ', ' हो ' और ' जो ' के विकृत रूप ' ता (पु., नपुं.), ति (स्त्री.) '; ' हा (पु., नपुं.), हि (स्त्री.) ' और ' जो (पु., नपुं.), जि (स्त्री.) ' में भी कर्ता कारक ' णें ' प्रत्यय जुडता है । यहाँ प्रत्यय की दृष्टि से अन्तर है । कोंकणी में ' एं ' और ' णें ' दो प्रत्यय हैं तो हिंदी में केवल एक ही ' ने ' प्रत्यय है । विकृत रूप कोंकणी ' तु ' से ' एं ' प्रत्यय लगाकर ' तुवें ' रूप सिद्ध किया जाए तो उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी रूपों को सिद्ध करने की प्रक्रिया में थोडा-सा अन्तर प्राप्त होता है । अतः मूल रूप ' तूं ' में ' एं ' लगाकर ' तुंवें ' रूप सिद्ध करने में औचित्य है । फिर भी एकवचनीय विकृत रूप ' तु ' में ' एं ' प्रत्यय जोडकर कोई ' तुवें ' रूप सिद्ध करने का प्रयत्न करना चाहता है तो इसमें किसी को आपत्ति नहीं होगी ।

तुका (विशेष रूप एक.) :

कोंकणी में ‘ तूं ’ शब्द के कर्म तथा संप्रदान कारक के एकवचन में ‘ तुका ’ रूप प्राप्त है। ‘ तुका ’ में ‘ तु ’ विकृत रूप है और ‘ का ’ प्रत्यय है। ‘ का ’ प्रत्यय कोंकणी में केवल पाँच सर्वनामों में प्राप्त है। अतः ‘ का ’ युक्त रूप को विशेष रूप माना है (विस्तार के लिए देखिए, कोंकणी ‘ म्हाका ’, पृ. २०३)।

तुमकां (विशेष रूप बहु.) :

कोंकणी में ‘ तूं ’ शब्द के कर्म तथा संप्रदान कारक के बहुवचन में ‘ तुमकां ’ रूप प्राप्त है। ‘ तुमकां ’ में ‘ तुम ’ विकृत रूप है और ‘ कां ’ प्रत्यय है। ‘ कां ’ प्रत्यय की दृष्टि से ‘ तुमकां ’ को विशेष रूप माना है (देखिए, कोंकणी ‘ आमकां ’, पृ. २०४)।

तुजो (संबंध कारक एक.) :

कोंकणी में ‘ तूं ’ सर्वनाम के संबंध कारक एकवचनीय ‘ तुजो ’ में ‘ तु ’ विकृत रूप है और ‘ जो ’ प्रत्यय है। ‘ जो ’ प्रत्यय कोंकणी में केवल चार सर्वनामों के एकवचन में प्राप्त है, यथा :– ‘ म्ह(म)जो ’, ‘ तुजो ’, ‘ ताजो ’, ‘ हाजो ’। ‘ तुजो ’ विशेषण के समान प्रयुक्त है, अतः इसमें लिंग, वचन का प्रभाव प्राप्त होता है (विस्तार के लिए देखिए, कोंकणी ‘ म्हजो ’, पृ. २०४)।

× × ×

यहाँ तक किये गये विवेचन के आधार पर हिंदी ‘ तू ’ और उसके रूपों तथा कोंकणी ‘ तूं ’ और उसके रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

१) हिंदी ‘ तू ’ तथा कोंकणी ‘ तूं ’ और उनके रूपों से जो व्यक्ति वाच्य है उसके लिंग का प्रभाव इन सर्वनामों और इनके रूपों पर नहीं होता है।

२) हिंदी ‘ तू ’ तथा कोंकणी ‘ तूं ’ के संबंध कारक रूपों में जो कारक-चिह्न हैं उनमें परवर्ती संज्ञा के लिंग के कारण परिवर्तन होता है।

३) मूल रूप एकवचन में प्राप्त होने वाले हिंदी ‘ तू ’ तथा कोंकणी ‘ तूं ’ संस्कृत ‘ त्वम् ’ शब्द से विकसित हैं। परंतु संस्कृत ‘ त्वम् ’ शब्द में दिखायी देने वाली अनुनासिकता हिंदी ‘ तू ’ में प्राप्त नहीं है तो कोंकणी ‘ तूं ’ में वह उपलब्ध है। इस प्रकार हिंदी ‘ तू ’ तथा कोंकणी ‘ तूं ’ में निरनुनासिक और सानुनासिक की दृष्टि से थोडा-सा अन्तर है।

४) मूल रूप बहुवचन में प्राप्त होने वाले हिंदी ‘ तुम ’ तथा कोंकणी ‘ तुमी ’ का विकास पालि ‘ तुम्हे ’ से है। हिंदी ‘ तुम ’ तथा कोंकणी ‘ तुमी ’ का स्रोत एक होते हुए भी दोनों में अन्त्य ‘ अ ’ तथा ‘ ई ’ की दृष्टि से थोडा-सा अन्तर है।

५) हिंदी ‘ तू ’ के विकृत रूप एकवचन में ‘ तुझ ’ रूप प्राप्त है तो कोंकणी ‘ तूं ’ के विकृत रूप एकवचन में ‘ तु ’ रूप प्राप्त है। हिंदी ‘ तुझ ’ तथा कोंकणी ‘ तु ’ का संबंध संस्कृत ‘ तुभ्यम् ’ से है; फिर भी दोनों के विकास में अन्तर है। यदि संस्कृत ‘ तव ’ से कोंकणी ‘ तु ’ का संबंध माना जाए तो यह अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

६) हिंदी 'तू' के विकृत रूप बहुवचन में 'तुम' रूप प्राप्त है तथा कोंकणी 'तूं' के विकृत रूप बहुवचन में भी 'तुम' रूप प्राप्त है। इन दोनों का विकास पालि के कर्म कारक 'तुम्हे' से हुआ है। दोनों का विकास समान रूप से होने कारण दोनों में अन्तर नहीं है।

७) हिंदी 'तुझे (एक.)', 'तुम्हें (बहु.)' जैसे विशेष रूप कोंकणी में उपलब्ध नहीं हैं तो कोंकणी 'तुंवें, तुका (एक.)', 'तुमकां (बहु.)' जैसे विशेष रूप हिंदी में नहीं हैं।

८) संबंध कारक में, हिंदी में 'तेरा (एक.)', 'तुम्हारा (बहु.)' विशेष रूप हैं तो कोंकणी में 'तुजो (एक.)' विशेष रूप है।

विशेष –

यहाँ हिंदी 'तू' तथा कोंकणी 'तूं' सर्वनामों के रूपों के संबंध में कुछ विशेष बातें स्पष्ट करना अनावश्यक नहीं होगा।

१) हिंदी में 'तू' के कर्ता कारक एकवचन में 'तू' और 'तूने' दो रूप प्राप्त हैं तथा कोंकणी में भी 'तूं' के कर्ता कारक एकवचन में 'तूं' और 'तुंवें (तुवें)' दो रूप प्राप्त हैं।

२) हिंदी में 'तू' के कर्ता कारक बहुवचन में 'तुम' और 'तुमने' दो रूप प्राप्त हैं तो कोंकणी में 'तूं' के कर्ता कारक बहुवचन में केवल एक ही 'तुमी' रूप प्राप्त है जो हिंदी के 'तुम' और 'तुमने' अर्थ में प्रयुक्त होता है, यथा :–

हिंदी	**कोंकणी**
तुम भोजन करते हो ?	तुमी जेवण करतात ?
तुमने भोजन किया ?	तुमी जेवण केलें ?

३) हिंदी में विकृत रूप के एकवचन में 'तुझ' एक ही रूप है तो कोंकणी में भी विकृत रूप के एकवचन में एक ही 'तु' रूप है।

४) हिंदी में विकृत रूप के बहुवचन में 'तुम' और 'तुम्ह' दो रूप हैं तो कोंकणी में विकृत रूप के बहुवचन में एक ही 'तुम' रूप है।

५) हिंदी में कर्म-संप्रदान के एकवचन में 'तुझे' और बहुवचन में 'तुम्हें' विशेष रूप मिलते हैं; साथ-साथ 'को' प्रत्यय लगाये हुए एकवचन में 'तुझको' और बहुवचन में 'तुमको' रूप मिलते हैं। इस दृष्टि से हिंदी में कर्म–संप्रदान के एकवचन में 'तुझे', 'तुझको' और बहुवचन में 'तुम्हें', 'तुमको' दो-दो रूप मिलते हैं। कोंकणी में कर्म-संप्रदान के एकवचन में 'तुका' और बहुवचन में 'तुमकां' एक-एक रूप प्राप्त है।

६) हिंदी में संबंध कारक एकवचन में 'तेरा' और बहुवचन में 'तुम्हारा' एक-एक रूप प्राप्त है। परंतु ये रूप विकृत रूप 'तुझ' और 'तुम' से नहीं बने हैं। बल्कि 'तेरा' में 'ते' और 'तुम्हारा' में 'तुम्हा' विकृत रूप हैं। कोंकणी में संबंध कारक एकवचन तथा बहुवचन के रूप विकृत रूप से बनते हैं। विकृत रूप एकवचन 'तु' में 'जो' प्रत्यय लगकर 'तुजो' तथा विकृत रूप बहुवचन 'तुम' में 'चो' प्रत्यय लगकर

'तुमचो' रूप प्राप्त होते हैं। इसके सिवा इन्हीं विकृत रूपों में 'गेलो' प्रत्यय लगकर 'तुगेलो(एक.)' तथा 'तुमगेलो (बहु.)' रूप भी प्राप्त हैं। इस प्रकार कोंकणी 'तूं' शब्द के संबंध कारक एकवचन में 'तुजो', 'तुगेलो' दो रूप प्राप्त हैं तथा बहुवचन में 'तुमचो', 'तुमगेलो' दो रूप प्राप्त हैं। कोंकणी के ये रूप विकृत रूपों से बनते हैं, परंतु हिंदी 'तेरा', 'तुम्हारा' में 'तुझ', 'तुम' से भिन्न 'ते', 'तुम्हा' विकृत रूपों का प्रयोग प्राप्त है। हिंदी में 'ते, तुम्हा' के साथ 'रा' के सिवा दूसरा प्रत्यय नहीं आता है; परंतु कोंकणी में 'जो (एक. में)', 'चो (बहु. में)' के सिवा दूसरा प्रत्यय 'गेलो' एकवचनीय और बहुवचनीय विकृत रूपों में जुडता है। फिर भी हिंदी तथा कोंकणी के इन रूपों में एक बात समान है, और वह है लिंग और वचन का प्रभाव। हिंदी तथा कोंकणी के इन रूपों के कारक-चिह्नों में परवर्ती संज्ञा के लिंग तथा वचन के कारण परिवर्तन होता है।

७) शेष कारकों में, हिंदी में 'तुझ (एक. में)' तथा 'तुम (बहु. में)' विकृत रूपों का प्रयोग होता है और इनमें शेष कारकीय प्रत्यय जुड जाते हैं। परंतु कोंकणी में, अधिकरण कारक में प्राप्त 'तुगेर (एक.)' तथा तुमगेर (बहु.) रूप छोडकर शेष कारकों में संबंध कारक 'तुजो (एक. में)' तथा 'तुमचो (बहु. में)' रूप विकृत होकर प्रयुक्त होते हैं और इनमें शेष कारकीय प्रत्यय जुड जाते हैं, यथा :– करण कारक में : – हिंदी : 'तुझ+से = तुझसे'; कोंकणी : 'तुजो + न = तुज्यान' आदि।

८) हिंदी में संबंधबोधक अव्ययों के साथ संबंध कारक 'तेरा', 'तुम्हारा' रूपों में परिवर्तन होता है, यथा :– 'तेरा : तेरे लिए'; 'तुम्हारा : तुम्हारे पास' आदि। इसी प्रकार कोंकणी में भी संबंधबोधक अव्ययों के साथ संबंध कारक 'तुजो', 'तुमचो' रूपों में परिवर्तन होता है, यथा :– 'तुजो : तुजेसाटीं'; 'तुमचो : तुमचेलागीं' आदि।

उपर्युक्त सभी विवरण निम्नलिखित रूपांवली से स्पष्ट हो जाएगा –

	हिंदी		कोंकणी	
कारक	**एक.**	**बहु.**	**एक.**	**बहु.**
कर्ता –	तू , तूने	तुम, तुमने	तूं , तुंवें	तुमी
कर्म –	तुझको, तुझे	तुमको, तुम्हें	तुका	तुमकां
करण –	तुझसे	तुमसे	तुज्यान, तुजेकडेन	तुमच्यानीं, तुमचेकडेन
संप्रदान –	तुझको, तुझे	तुमको, तुम्हें	तुका	तुमका
अपादान –	तुझसे	तुमसे	तुजेसून	तुमचेसून
संबंध –	तेरा	तुम्हारा	तुजो, तुगेलो	तुमचो, तुमगेलो
अधिकरण –	तुझमें	तुममें	तुज्यांत	तुमच्यांत
	तुझपर	तुमपर	तुजेर	तुमचेर
	––	––	तुगेर	तुमगेर
संबंधबोधक अव्ययों के साथ प्रयोग –	तेरे लिए	तुम्हारे लिए	तुजेसाटीं	तुमचेसाटीं
	तेरे खातिर	तुम्हारे खातिर	तुजेखातीर	तुमचेखातीर
	तेरे साथ	तुम्हारे साथ	तुज्यावांगडा	तुमच्यावांगडा

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी के संबंध कारक रूपों में परवर्ती संज्ञा के लिंग, वचन तथा कारक-चिह्न युक्त परवर्ती संबद्ध संज्ञा के कारण परिवर्तन होता है, यथा :–

हिंदी : ' तेरा लडका (पर. संज्ञा पु. एक. में) ', ' तेरे लडके / लडके ने / लडकों ने (पर. संज्ञा पु. बहु. में तथा कारक चिह्न-युक्त संबद्ध संज्ञा के पु. एक. और बहु. में) ', ' तेरी लडकी / लडकियाँ / लडकी ने / लडकियों ने (पर. संज्ञा स्त्री. एक. और बहु. में तथा परवर्ती कारक-चिह्न युक्त संबद्ध संज्ञा के स्त्री. एक. और बहु. में) '।

कोंकणी : ' तुजो भुरगो (पु. एक.) ', ' तुजे भुरगे (पु. बहु.) ', ' तुजी चली (स्त्री. एक.) ', ' तुज्यो चलयो (स्त्री. बहु.) ', ' तुजें भुरगें (नपुं. एक.) ', ' तुजीं भुरगीं (नपुं. बहु.) ', ' तुजे चलयेक (परवर्ती कारक-चिह्न युक्त स्त्री. संबद्ध संज्ञा के एक. में) ', ' तुज्या भुरग्याक / भुरग्यांक / चेडवाक / चेडवांक (परवर्ती कारक-चिह्न युक्त पु. और नपुं. संबद्ध संज्ञा के एक. और बहु. में) ' तथा ' तुज्या चलयांक (परवर्ती कारक-चिह्न युक्त स्त्री. संबद्ध संज्ञा के बहु. में) '।

इस प्रकार हिंदी ' तू ' तथा कोंकणी ' तूं ' सर्वनामों के रूप स्पष्ट होते हैं।

निश्चयवाचक दूरवर्ती एवं अन्य पुरुष
(हिंदी ' वह ' तथा कोंकणी ' तो ')

हिंदी ' वह ' तथा कोंकणी ' तो ' निश्चयवाचक दूरवर्ती सर्वनामों के मुख्य रूपान्तर निम्नलिखित हैं –

	हिंदी		कोंकणी	
	एक.	बहु.	एक.	बहु.
मूल रूप –	वह	वे	तो, ती, तें	ते, त्यो, तीं
विकृत रूप –	उस	उन	ता, ति	तां
विशेष रूप –	उसे	उन्हें, उन्होंने	ताणें, तिणें, ताका, तिका	तांणीं, तांकां
संबंध कारक –	—	—	ताजो, तिजो	—

हिंदी ' वह ' सर्वनाम पुल्लिग और स्त्रीलिंग में समान रूप से व्यवहृत है परंतु कोंकणी ' तो ' सर्वनाम पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में भिन्न-भिन्न रूप में परिवर्तित होता है। अर्थात् हिंदी ' वह ' सर्वनाम और उसके रूपों पर लिंग का प्रभाव नहीं पडता। परंतु कोंकणी ' तो ' सर्वनाम और उसके रूपों पर लिंग का प्रभाव पडता है। अत एव कोंकणी में ' तो ' पुल्लिग में, ' ती ' स्त्रीलिंग में और ' तें ' नपुंसकलिंग में प्रयुक्त हैं। कोंकणी ' तो ' के और कुछ रूप भी लिंग के अनुसार परिवर्तित होते हैं।

नीचे हिंदी ' वह ' तथा कोंकणी ' तो ' और उनके रूप स्पष्ट किये हैं।

हिंदी :–

वह (मूल रूप एक.) :

हिंदी ' वह ' सर्वनाम की व्युत्पत्ति विवादास्पद है। श्री कामताप्रसाद गुरु इसका विकास सं. सः > प्रा. सो > हिं. ' वह ' रूप में मानते हैं [७०]।

डा. धीरेंद्र वर्मा इस मत को स्वीकारते नहीं। उन्होंने चटर्जी का मत ग्राह्य माना है [७१]।

डा. चटर्जी के अनुसार हिंदी ' वह ' संस्कृत के * अव > प्रा. * ओ से संबंध रखता है[७२]।

डा. भाण्डारकर सं. असौ > पा. असु > अहो, ओह > हिं. ' वह ' रूप में विकास मानते हैं [७३]।

डा. भोलानाथ तिवारी प्रथम डा. भाण्डारकर के मत से सहमत थे। बाद में उन्होंने चटर्जी का मत ग्राह्य मान कर उसे विस्तृत रूप में सामने रखा, यथा :– मूल भारोपीय मूल * अव > भारत-ईरानी मूल * अव > सं. * अवः (प्रथमा एक.) > पा. * अवो > प्रा. * वो > अप. वो, ओ, ओउ (उकार का प्रभाव) > ओहु (' ह ' का आगम) > प्राचीन हिंदी वहु > हिं. वह। इस प्रकार, इस रूप में वे ' वह ' के विकास की संभावना सर्वाधिक ग्राह्य मानते हैं तथा डा. भाण्डारकर वाले मत की संभावना कम ग्राह्य मानते हैं [७४]।

वस्तुतः हिंदी ' वह ' शब्द के विकास के लिए कल्पित रूपों की लम्बी परंपरा निर्माण करने की आवश्यकता नहीं है। डा. भोलानाथ तिवारी ने वैदिकी में प्राप्त ' अवोः ' रूप के आधार पर मूल में * अव रूप स्वीकारा है। परंतु मैकडानल के ' वैदिक व्याकरण ' के आधार पर ऐसा लगता है कि सं. *अव तथा हिं. ' वह ' में अर्थान्तर प्राप्त होता है [७५]।

अतः डा. भाण्डारकर दिग्दर्शित सं. ' असौ ' रूप से हिंदी ' वह ' के विकास की कल्पना सर्वाधिक युक्तिसंगत लगती है। संस्कृत में ' अदस् ' शब्द के कर्ता कारक एकवचन में दो रूप प्राप्त हैं, यथा :– सं. ' असौ, असुकौ ' [७६]। पालि में भी दो रूप प्राप्त हैं, यथा :– ' असु, असुको ' [७७]। प्राकृत में ' अमू ' और ' असुगो ' रूप प्राप्त हैं [७८]; तथा ' सुबन्त कौमुदी ' पुस्तक में ' अमू ' और 'अह ' दो रूप प्राप्त हैं [७९]। डा. पिशेल की पुस्तक में भी ये रूप प्राप्त हैं [८०]। डा. भाण्डारकर के मत में प्राकृत में ' असो ' रूप भी प्राप्त है (देखिए, डा. भोलानाथ तिवारी की पुस्तक ' हिंदी भाषा ' पृ. १९३)।

वास्तव में संस्कृत ' असौ ' से विकसित कर्ता कारक एकवचनीय रूप अपभ्रंश में उपलब्ध नहीं है, फिर भी डा. भाण्डारकर दिग्दर्शित प्रा. ' असो ' का ' अहो ' > ' ओह ' होना चाहिए जो ' उ ' मिलकर ' ओहु ' (यह रूप डा. भोलानाथ तिवारी को अपेक्षित है, देखिए ऊपर) रूप में परवर्ती अपभ्रंश ' कीर्तिलता ' में प्राप्त है [८१]। इससे यहाँ ' ह ' आगम मानने की आवश्यकता नहीं है, जिसे डा. भोलानाथ तिवारी ने माना है।

यहाँ और दो संभावनाएँ हो सकती हैं। (i) सुबंत कौमुदी में प्राप्त प्राकृत ‘ अह ’ रूप में अपभ्रंश में प्राप्त कर्ता कारक ‘ उ ’ मिलकर अहु, अहो > ओह > वोह > हिंदी ‘ वह ’ रूप सिद्ध हो सकता है। इससे यहाँ भी ‘ ह ’ आगम मानने की आवश्यकता नहीं होती। (ii) प्राकृत में कर्ता कारक एकवचन में ‘ अमू ’ रूप है। अपभ्रंश में ‘ म् ’ का ‘ व् ’ होता है। इससे प्राकृत अमू > अप. अव * अवु, * अवो > ओ, वो, वोह (‘ वोह ’ में ‘ ह ’ आगम है। डा. भोलानाथ तिवारी ने ये तीनों रूप मूल भारोपीय कल्पित ‘ अव ’ रूप से निष्पन्न किये हैं) > हिंदी ‘ वह ’ निष्पन्न हो सकता है। संस्कृत ‘ असौ ’ का प्राकृत में ‘ अमू ’ रूप में विकास शेष कारकीय रूपों में प्राप्त ‘ म ’ के प्रभाव के कारण है; जिस प्रकार पालि में ‘ युष्मद् ’ शब्द के यकारादि रूपों के स्थान तकारादि रूपों का प्रभाव माना है (देखिए हिंदी ‘ तुम ’, पृ. २०९); वैसा यहाँ भी हुआ है। एक और उदाहरण है। संस्कृत ‘ वयं ’ के स्थान पर अन्य कारकों में प्राप्त ‘ अम्ह ’ रूपों का प्रभाव पडकर पालि में ‘ अम्हे ’ रूप बनता है; और यह बात पूर्व सूचित की है, (देखिए हिंदी ‘ तुम ’, पृ. २०९)। इस प्रकार संस्कृत ‘ असौ ’ से प्राकृत में ‘ अमू ’ होता है। इस ‘ अमू ’ से अपभ्रंश में ‘ अवु ’ होने में किसी को दोष नहीं दिखायी देगा। फिर भी यह रूप अभी तक उपलब्ध नहीं है। परंतु परवर्ती अपभ्रंश (कीर्तिलता २/७१ और १/११) में कर्ता कारक एकवचन में ‘ ओ ’ रूप मिलता है। इसके सिवा ‘ ओ ’ में ‘ ह ’ आगम और कर्ता कारक का ‘ उ ’ प्रत्यय लगकर (‘ उ ’ प्रत्यय के लिए देखिए, डा. वीरेंद्र श्रीवास्तव ‘ अपभ्रंश भाषा का अध्ययन ’, पृ. १५४) ‘ ओहु ’ रूप होता है, जो कीर्तिलता (३।६०) में प्राप्त है। इस ‘ ओहु ’ से हिंदी ‘ वह ’ निष्पन्न होने में आसानी है। अपभ्रंश में संस्कृत ‘ अदस् ’ के रूप से विकसित ‘ ओइ ’ रूप कर्ता तथा कर्म कारक बहुवचन में तो स्पष्ट ही प्राप्त है [८२]; परंतु कर्ता तथा कर्म कारक एकवचन में संस्कृत ‘ अदस् ’ शब्द के रूप से विकसित ‘ अमु ’ या ‘ अवु ’ रूप अपभ्रंश में प्राप्त नहीं है। अतः अपभ्रंश में कर्ता कारक एकवचन में कल्पित रूप स्वीकारना पडेगा।

अन्त में, संस्कृत ‘ एषः ’ रूप से हिंदी ‘ यह ’ रूप व्युत्पन्न मानने में यदि कोई विवाद नहीं है तो संस्कृत ‘ असौ ’ रूप से हिंदी ‘ वह ’ रूप व्युत्पन्न मानने में भी कोई विवाद नहीं होना चाहिए।

वे (मूल रूप बहु.) :

डा. धीरेंद्र वर्मा ‘ वह ’ सर्वनाम के सभी रूपों की व्युत्पत्ति अनिश्चित मानते हैं [८३]।

डा. भोलानाथ तिवारी ने श्री कामताप्रसाद गुरु, डा. चटर्जी तथा डा. उदयनारायण तिवारी के मत देकर अपनी तीन संभावनाओं का उल्लेख किया है; फिर भी वे डा. चटर्जी के मत से सहमत हैं [८४]।

डा. चटर्जी * अव का करण कारक बहुवचन * अवेभिः > * अवहि से हिंदी ‘ वे ’ का विकास मानते हैं [८५]।

वस्तुतः इसकी व्युत्पत्ति सं. ' अदस् ' शब्द के रूप से मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए । अपभ्रंश में ' अदस् ' शब्द के कर्ता कारक बहुवचन में ' ओइ ' रूप प्राप्त है [८६] । ' ओइ ' में आदि ' व् ' आगम होकर वोइ > वइ > हिं. ' वे ' रूप सिद्ध होने में अडचन नहीं दिखायी देती । अपभ्रंश ' ओइ ' रूप प्रायः संस्कृत ' अमूनि 'से निष्पन्न हुआ होगा । अतः हिंदी ' वे ' का विकास इस प्रकार होगा :– सं. अमूनि > पा. अमू , अमूनि > प्रा. अमूइं, अमूणि > * अऊइं > अप. ओइ > * वोइ > * वइ > हिं. वे ।

अतः हिंदी ' वे ' का विकास संस्कृत ' अमूनि ' से माना जाए ।

उस (विकृत रूप एक.) :

डा. उदयनारायण तिवारी तथा डा. भोलानाथ तिवारी संस्कृत ' अमुष्य ' से हिंदी ' उस ' का विकास मानते हैं [८७] ।

डा. श्यामसुंदर दास प्रा. ' अमुस्स ' से हिंदी ' उस ' का संबंध मानते हैं [८८] ।

डा. उदयनारायण तिवारी ने प्राकृत में कल्पित ' अउस्स ' रूप माना है, परंतु प्राकृत में ' अउस्स ' के बदले ' अमुस्स ' रूप प्राप्त है [८९], जो लेने में आपत्ति नहीं है । यद्यपि अपभ्रंश में ' अवुस्स ' रूप उपलब्ध नहीं है, तथापि अपभ्रंश में ' म ' का ' व ' होने की प्रवृत्ति है, जिससे अपभ्रंश में ' अवुस्स ' रूप होगा । फिर भी यह रूप अपभ्रंश में उपलब्ध न होने के कारण कल्पित मानना पडेगा । अर्थात् हिंदी ' उस ' का विकास इस प्रकार होगा :– सं. अमुष्य > पा. अमुस्स > प्रा. अमुस्स > अप. * अवुस्स > * अउस्स > हिं. उस ।

अतः हिंदी ' उस ' का विकास संस्कृत ' अमुष्य ' से माना जाए ।

उन (विकृत रूप बहु.) :

डा. भोलानाथ तिवारी ने ' उन ' के संबंध में पाँच संभावनाएँ दिखायी हैं [९०] । इनमें से वे संस्कृत ' अमून् ' तथा कल्पित ' अवानां ' (अर्थात् तीसरी और पाँचवीं संभावनाओं) से हिंदी ' उन ' की व्युत्पत्ति अधिक उचित मानते हैं ।

डा. भोलानाथ तिवारी ने दिखायी तीसरी और पाँचवी व्युत्पत्ति में से तीसरी व्युत्पत्ति (सं. ' अमून् ' से हिं. ' उन ' की व्युत्पत्ति) अधिक उचित है । * अवानां ' से हिंदी 'उन' सिद्ध करने में अनेक कल्पित रूपों की सृष्टि करनी पडती है । सं. ' अमून् ' से हिं. ' उन ' व्युत्पन्न करने में पालि तथा अपभ्रंश में कल्पित रूप स्वीकारना पडता है । फिर भी सं. ' अमूनि ' से हिं. ' उन ' का विकास मानने में केवल अपभ्रंश में कल्पित रूप स्वीकारना पडता है । अतः डा. भोलानाथ तिवारी के कथनानुसार ' अमूनि (दूसरी संभावना) ' से हिंदी ' उन ' का विकास मानना सर्वाधिक उचित लगता है, यथा :– सं., पा. अमूनि (' अदस् ' का नपुंसकलिंग में कर्ता और कर्म कारक का बहु.) > प्रा. अमूणि > अप. * अउण > हिं. उन । फिर भी यहाँ कर्म कारक ' अमूनि ' से ' उन ' मानना उचित लगता

है । डा. भोलानाथ तिवारी * 'अउण' तथा 'उन' के बीच 'ह' युक्त 'उण्ह' रूप का विकास मानते हैं; और बाद में 'ह' का लोप करके हिंदी 'उन' विकसित करते हैं। परंतु हिंदी 'उन' रूप सिद्ध करने के लिए यह अनावश्यक है। 'उन्ह' रूप भी आदिकालीन हिंदी में प्राप्त नहीं है। अतः 'ह' आगम 'उन' रूप विकसित होने के अनन्तर मानना ही युक्तियुक्त लगता है। 'उन' के विकास के पूर्व 'ह' का आगम मानकर फिर उसका लोप करके 'उन' रूप विकसित मानना अधिक क्लिष्ट होता है।

उसे (विशेष रूप एक.) :

डा. धीरेंद्र वर्मा 'उसे' को विकृत रूप मानते हैं [९१]।

डा. भोलानाथ तिवारी का मत इस प्रकार है :– "प्राकृतों में संप्रदान आदि कारकों में 'तद्' का 'तीसे'; 'किम्' का 'कीसे'; 'युष्मद्' का 'तुज्झे (कर्म में)' आदि रूप मिलते हैं। ये वैदिक 'अस्मे', 'युष्मे' आदि की परंपरा में हैं। इन्हीं के सादृश्य पर प्रा. * अउस्स' का * अउस्से' बन सकता है, जिससे 'उसे' का संभव है [९२]।"

यहाँ एक संभावना हो सकती है। हिंदी 'उस' का विकास संस्कृत 'अमुष्य' से माना है (देखिए, पृ. २२१ ; हिंदी 'उस')। इस 'उस' में 'मुझे' के सादृश्य पर 'ए' प्रत्यय लगाकर 'उसे' रूप सिद्ध हो सकता है ('ए' प्रत्यय के लिए देखिए, हिंदी 'मुझे', पृ. १९८)। डा. भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'उसे' का प्रयोग गोरख, चंद, कबीर, सूर आदि पुराने कवियों में नहीं मिलता। इसका अर्थ यह है कि अपभ्रंश के 'हि' प्रत्यय से 'इ', 'ए', 'ऐ' विकसित होने में कुछ समय जरूर लगा होगा। इसी प्रकार 'हमें' के सादृश्य पर 'मुझे' का प्रयोग हुआ। इस आधार पर अनन्तर के काल में 'उसे' का प्रयोग होने लगा। 'मुझे' का प्रयोग १४०० ईसवी में मिलता है और 'उसे' का प्रयोग १६३६ ईसवी में मिलता है [९३]। अतः 'उस' में 'ए' प्रत्यय लगकर 'उसे' सिद्ध माना जा सकता है। इस प्रकार 'इसे, जिसे, किसे, तिसे' रूप 'इस, जिस, किस, तिस' में 'ए' लगाकर सिद्ध हो सकते हैं (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी 'मुझे', पृ. १९८)।

उन्हें (विशेष रूप बहु.) :

डा. भोलानाथ तिवारी के मत के अनुसार 'उन' शब्द का प्रथम विकास 'उण्ह' है, जिससे 'उन्ह' विकसित है, और 'हमें', 'तुम्हें' के सादृश्य पर 'उन्हें' का प्रचलन हुआ है [९४]।

वस्तुतः 'उन' का प्रथम विकास 'उन्ह' नहीं होना चाहिए। 'उन' में 'ह' आगम 'हिं, हूँ' प्रत्यय के कारण माना जा सकता है। कबीर में 'उनहूँ' जैसा प्रयोग मिलता है। अतः 'उन्ह' का विकास 'उन' के अनन्तर माना जाना चाहिए। (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी 'उन', पृ. २२१)।

अपभ्रंश ' अम्हइँ, तुम्हइँ ' से ' हमें, तुम्हें ' रूप विकसित हैं । यही ' एं ' स्वतंत्र माना जाए जिससे ' उन्हें, इन्हें, जिन्हें, किन्हें, तिन्हें ' रूप सिद्ध होते हैं ।

दूसरी एक संभावना हो सकती है । अपभ्रंश ' हिं ' का ' इं, एं, ऐं ' में विकास माना है । इनमें से ' एं ' प्रत्यय लगाकर ' उन्हें ' तथा ' ऐं ' प्रत्यय लगाकर ' उन्हैं ' रूप व्युत्पन्न हो सकता है (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी ' मुझे ', ' हमें ' पृ. १९८; २००) ।

उन्होंने (विशेष रूप बहु.) :

' उन्होंने ' रूप में स्पष्ट ही ' ने ' प्रत्यय है । ' ने ' प्रत्यय अलग करने से ' उन्हों ' शेष रहता है । यह रूप अकारान्त पुल्लिग शब्दों के बहुवचन में होने वाले विकृत रूप से साम्य रखता है, यथा :– ' बालक : बालकोंः '; ' घर : घरों ' आदि । ' उन्हों ' में भी अकारान्त ' उन्ह ' शब्द है । इसमें ' ने ' प्रत्यय लगकर ' उन्होंने ' रूप सिद्ध होता है । इसी प्रकार ' इन्होंने, जिन्होंने, तिन्होंने, किन्होंने ' में भी ' इन्ह, जिन्ह, तिन्ह, किन्ह ' मूल रूप हैं । इनमें ' ने ' प्रत्यय लगाने से ' इन्होंने, जिन्होंने, तिन्होंने, किन्होंने ' रूप सिद्ध होते हैं (' उन्ह ' के विकास के लिए देखिए हिंदी ' उन ' , पृ.२२१) ।

कोंकणी :–

तो, ती, तें (मूल रूप एक.) :

तो : यह रूप कोंकणी में पुल्लिग एकवचन में प्राप्त है । कोंकणी ' तो ' का संबंध संस्कृत ' सः ' से है, यथा :– सं. सः > पा., प्रा., अप. सो > कों. तो । कोंकणी ' तो ' में प्राप्त ' त् ' शेष सभी वचनों तथा कारकों के रूपों में प्राप्त ' त् ' के प्रभाव के कारण है । इस प्रकार की कल्पना इसके पूर्व भी की है (देखिए, हिंदी ' वह ', पृ. २१९)।

ती : यह रूप स्त्रीलिंग एकवचन में प्रयुक्त है । पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में स्त्रीलिंग ' सा ' के विकृत रूपों में ' ति, ती ' अंश प्राप्त है । इस विकृत रूप का प्रभाव अपभ्रंशीय कर्ता कारक ' त्या ' पर होकर कोंकणी में ' ता ' के बदले ' ती ' होने की संभावना है ।

तें : यह रूप नपुंसकलिंग एकवचन में प्रयुक्त है । संस्कृत नपुंसकलिंग ' तद् ' का पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में ' तं ' होता है । इससे कोंकणी ' तें ' विकसित हो सकता है ।

उपर्युक्त स्त्रीलिंग ' ती ' तथा नपुंसकलिंग ' तें ' के संबंध में एक दूसरी संभावना हो सकती है । पुल्लिग ओकारान्त शब्द स्त्रीलिंग में ईकारान्त तथा नपुंसकलिंग में एंकारान्त बनते हैं, यथा :– ' पु. चलो (= बच्चा) : स्त्री. चली (= बच्ची) '; ' पु. भुरगो (= बच्चा) : नपुं. भुरगें (= बच्चा / बच्ची) '; ' पु. गोरो (= गोरा) : स्त्री. गोरी तथा नपुं. गोरें ' । इसी प्रकार पुल्लिंग ' तो ' का स्त्रीलिंग में ' ती ' तथा नपुंसकल्लिंग में ' तें ' हो सकता है ।

ते, त्यो, तीं (मूल रूप बहु.) :

ते : संस्कृत से लेकर अपभ्रंश तक ' सः ' के बहुवचन में ' ते ' रूप प्राप्त है । यह
' ते ' रूप कोंकणी में पुल्लिग बहुवचन में प्राप्त है ।

त्यो : संस्कृत ' ताः (कर्ता कारक बहु.) ' का अपभ्रंश में ' ताउ ' रूप प्राप्त है
इसमें ' य् ' श्रुति प्राप्त होकर ' त्या + उ ' की संधि से ' त्यो ' रूप विकसित माना ज
सकता है, यथा :– सं. ताः > पा. ता, तायो > प्रा. तीओ > अप. ताउ > त्याउ('य'
आगम)> कों. त्यो । यह रूप स्त्रीलिंग बहुवचन में प्रयुक्त है ।

तीं : कोंकणी ' तीं ' < अप. ताइँ < प्रा. ताणि < पा., सं. तानि से संबंधित है । यह
' तीं ' रूप नपुंसकलिंग बहुवचन में प्रयुक्त है ।

उपर्युक्त कोंकणी ' ते, त्यो, तीं ' एक अन्य प्रकार से विकसित होने की संभावना है ।
कोंकणी ओकारान्त शब्द पु. बहु. में एकारान्त, स्त्री. बहु. में योकारान्त तथा नपुं. बहु. में
ईंकारान्त बनते हैं, यथा :– ' गोरो : गोरे (पु. बहु.), गोऱ्यो (स्त्री. बहु.), गोरीं (नपुं.
बहु.) ' । इसी प्रकार ओकारान्त ' तो ' के ' ते (पु. बहु.), त्यो (स्त्री. बहु.), तीं (नपुं.
बहु.) ' रूप प्राप्त होते हैं ।

ता, ति (विकृत रूप एक.) :

ता : यह रूप कोंकणी में पुल्लिग और नपुंसकलिंग एकवचन में प्रयुक्त है । अपभ्रंश में
पुल्लिग और नपुंसकलिंग ' तद् ' शब्द के अपादान कारक के एकवचन में ' ता ' रूप
मिलता है । संप्रदान तथा संबंध कारक के एकवचन में ' तासु ' रूप मिलता है ।
' संदेशरासक ' में ' तह ' रूप भी मिलता है । इन सभी का मूलाधार संस्कृत ' तस्य ' रूप
है । इससे कोंकणी ' ता ' विकसित माना जा सकता है । इसका प्रयोग ' ताका (= उसे),
' ताचेर (= उसके ऊपर)' आदि में प्राप्त है ।

इसके संबंध में एक और संभावना हो सकती है । कोंकणी में ' ता ' पुल्लिग और
नपुंसकलिंग में प्रयुक्त है । कोंकणी में पुल्लिग ओकारान्त शब्द विकृत रूप एकवचन में
याकारान्त होते हैं, यथा :– ' घोडो : घोड्या ' । इसी प्रकार नपुंसकलिंग एंकारान्त शब्द
भी विकृत रूप एकवचन में याकारान्त होते हैं, यथा :– ' भुरगें (= बच्चा / बच्ची) :
भुरग्या ' । अर्थात् पुल्लिग ' तो ' तथा नपुंसकलिंग ' तें ' के विकृत रूप एकवचन में
' त्या ' होना चाहिए । और यह रूप श्री रा. भि. गुंजीकर ने भी दिखाया है[९५], यथा :–
' त्याका (= उसे)', ' त्याणें (= उसने) '। इसके सिवा उन्होंने और एक–एक रूप
दिखाया है, यथा :– ' ताका (= उसे) ' , ' ताणें (= उसने) ' । ' त्या ' विकृत रूप का
प्रयोग आज भी अशिक्षित लोगों के व्यवहार में दिखायी देता है, यथा :– ' त्याका बरें ना
(= उसे अच्छा नहीं है).'। परंतु आजकल कोंकणी साहित्य में ' ता ' रूप ही उपलब्ध है,
यथा :– ' ताणें सगळ्यांक आपयल्यात[९६] (= उसने सभी को बुलाया है).'। ' त्या ' तथा

ता ' में पूर्व विकसित रूप ' त्या ' होगा, उसके अनन्तर ' ता ' का विकास हुआ होगा।

ति : कोंकणी में ' ति ' स्त्रीलिंग एकवचन में प्रयुक्त है। अपभ्रंश में ' तद् ' शब्द के स्त्रीलिंग में करण, संप्रदान और संबंध कारकों के विकृत रूपों में ' ति ' अंश दिखायी देता है, यथा :– ' तिए, तिहि '। यह ' ति ' अंश कोंकणी में प्रायः प्राप्त हुआ है। इसका प्रयोग ' तिका (= ' उसको ' स्त्री. में), तिणें (=' उसने ' स्त्री. में), तिचेर (= ' उसके ऊपर ' स्त्री. में) ' आदि रूपों में प्राप्त है।

इसके संबंध में एक अन्य संभावना भी हो सकती है। कोंकणी में एकाक्षरी दीर्घ ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दों में कारकीय प्रत्यय लगाते समय दीर्घ ' ई ' तथा ' ऊ ' प्रायः ह्रस्व ' इ ' तथा ' उ ' में परिवर्तित होते हैं, यथा :– ' बी (= बीज) : बियाक ', ' ऊ (= जूं) : उवांक ' आदि। इस प्रकार कोंकणी ' ती ' का ' ति ' होता है। यहाँ सर्वनामों के रूप–संरचना के वैशिष्ट्य के कारण ' बियाक ' शब्द में प्राप्त ' य ' जैसी श्रुति प्राप्त नहीं होती।

तां (विकृत रूप बहु.) :

कोंकणी ' तां ' पुल्लिग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग के बहुवचन में प्रयुक्त है। सं. तेषां (पु., नपुं.), तासां (स्त्री.) > पा. तेसं (पु., नपुं.), तासं (स्त्री.) > प्रा. तेसिं, तासं (पु., स्त्री., नपुं.) > अप. ताहं (पु., नपुं.), ताहिं (स्त्री.) > कों. ' तां (पु., स्त्री., नपुं.) '। ' तांका (= उनको), तांचो (=उनका) ' आदि में ' तां ' प्राप्त है।

कोंकणी ' तां ' के संबंध में एक अन्य व्युत्पत्ति संभव है। कोंकणी में प्रायः विकृत रूप के एकवचन में निरनुनासिक रूप उपलब्ध होते हैं तथा बहुवचन में सानुनासिक रूप उपलब्ध होते हैं, यथा – ' घोडो : घोड्या (एक.), घोड्यां (बहु.)'। इस प्रकार कोंकणी एकवचन ' ता ' का बहुवचन में ' तां ' हो सकता है।

कोंकणी में ओकारान्त ' घोडो ' शब्द के विकृत रूप बहुवचन में ' घोड्यां ' यांकारान्त होता है। अतः ' तो ' शब्द के विकृत रूप बहुवचन में उपर्युक्त ' तां ' के पूर्व ' त्यां ' होना चाहिए। श्री रा. भि. गुंजीकर ने ' त्यां ' तथा ' तां ' दो विकृत रूपों का व्यवहार किया है। अशिक्षित लोग आज भी बोलते समय ' त्यांका (= उन्हें) ', ' त्यांणीं (= उन्होंने) ' जैसे ' त्यां ' – युक्त रूपों का ही प्रयोग करते हैं। परंतु आधुनिक लिखित पुस्तकों में ' त्यां ' के बदले ' तां ' ही रूप मिलता है, यथा :– ' तांणीं हो देश पुराय भोंवन पळेल्लो[९७] (= उन्होंने यह देश संपूर्ण घूमके देखा था)'. आदि।

पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में एक ही ' तां ' रूप का व्यवहार होने का कारण यह होगा कि पुल्लिग ओकारान्त ' घोडो ', स्त्रीलिंग ईकारान्त ' चली ' तथा नपुंसकलिंग एकारान्त ' भुरगें ' शब्दों के विकृत रूप बहुवचन में यांकारान्त ' घोड्यां, चलयां, भुरग्यां ' होता है। इसी प्रकार पु. ' तो ', स्त्री. ' ती ' और नपुं. ' तें ' के विकृत रूप बहुवचन में ' त्यां ' होना चाहिए। अनन्तर ' त्यां ' का ' तां ' में परिवर्तन हुआ होगा।

संस्कृत ' तेषां (पु., नपुं.), तासां (स्त्री.) ' से ' त्यां ' का विकास सरल नहीं दीखता परंतु ' तां ' का विकास सरल दीखता है।

ताणें, तिणें (विशेष रूप एक.) :

' ताणें, तिणें ' में ' ता, ति ' विकृत रूप हैं तथा ' णें ' प्रत्यय है। यहाँ ' णें ' प्रत्यय की दृष्टि से ही ' ताणें, तिणें ' को ' विशेष रूप ' माना है; क्यों कि ' णें ' प्रत्यय कोंकणी में केवल ' तो, हो, जो ' सर्वनामों के कर्ता कारक एकवचन में प्राप्त होता है (' णें ' प्रत्यय के लिए देखिए, पृ. १६०)।

ताका, तिका (विशेष रूप एक.) :

' ताका, तिका ' रूपों को भी ' का ' प्रत्यय की दृष्टि से ' विशेष रूप ' स्वीकारा है (विस्तार के लिए देखिए, कोंकणी 'म्हाका, माका ', पृ. २०३)।

तांणीं (विशेष रूप बहु.) :

' तांणीं ' में ' णीं ' प्रत्यय विशेष है इसलिए इसे ' विशेष रूप ' माना है। यह ' णीं ' प्रत्यय कोंकणी में केवल ' तो, हो, जो ' सर्वनामों के कर्ता कारक बहुवचन में प्रयुक्त है (' णीं ' के लिए देखिए, पृ. १६०)।

तांकां (विशेष रूप बहु.) :

' तांका ' में ' कां ' विशिष्ट प्रत्यय है। इसलिए इसे ' विशेष रूप ' माना है (देखिए, कोंकणी ' आमकां ', पृ. २०४)।

ताजो, तिजो (संबंध कारक एक.) :

कोंकणी ' ताजो, तिजो ' रूपों में ' जो ' प्रत्यय है। यह प्रत्यय कोंकणी में केवल चार सर्वनामों में प्रयुक्त है (विस्तार के लिए देखिए, कोंकणी ' म्हजो, मजो ',पृ.२०४)।

' ताजो, तिजो ' में ' जो ' प्रत्यय विकल्प से प्रयुक्त होता है। अर्थात् ' जो ' के बदले चो का भी प्रयोग होता है, यथा :– ' ताजो / ताचो '; ' तिजो / तिचो '। परंतु यह विकल्प कोंकणी में ' हांव ' तथा ' तूं ' शब्द के ' म्हजो ' तथा ' तुजो ' शब्द में प्राप्त नहीं है। कोंकणी में ' हो ' शब्द के ' हाजो, हिजो ' में भी विकल्प से ' चो ' प्रत्यय प्राप्त है, यथा ' हाजो / हाचो '; ' हिजो / हिचो '।

' ताजो, तिजो ' में ' ता, ति ' विकृत रूप हैं, फिर भी ' जो ' प्रत्यय के कारण इन्हें अलग दिखाया है। इस प्रकार ' ताजो, तिजो ' रूप संबंध कारक एकवचन के विशिष्ट रूप हैं।

× × ×

यहाँ तक किये गये विवेचन के आधार पर हिंदी ' वह ' और उसके रूपों तथा कोंकणी ' तो ' और उसके रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी ' वह ' और उसके रूपों पर लिंग का प्रभाव नहीं है तो कोंकणी ' तो ' और इसके रूपों (' तां ' छोडकर) पर लिंग का प्रभाव स्पष्ट दीखता है।

(२) हिंदी ' वह ' तथा कोंकणी ' तो ' के संबंध कारक रूपों में जो कारक-चिह्न हैं उनमें परवर्ती संज्ञा के लिंग के कारण परिवर्तन होता है।

(३) मूल रूप एकवचन में प्राप्त होने वाला हिंदी ' वह ' संस्कृत ' असौ ' से तो कोंकणी ' तो, ती, तें ' क्रमशः संस्कृत के ' सः, सा, तद् ' से विकसित हैं। इस प्रकार हिंदी ' वह ' तथा कोंकणी ' तो, ती, तें ' का स्रोत मूलतः भिन्न है। (यहाँ कोंकणी की ओकारान्तता के कारण भी ' तो ' के ' ती ', ' तें ' रूप निष्पन्न हो सकते हैं।) अतः हिंदी तथा कोंकणी के इन रूपों में काफी अंतर है।

(४) मूल रूप बहुवचन में प्राप्त हिंदी ' वे ' को संस्कृत ' अमूनि ' से तो कोंकणी ' ते, त्यो, तीं ' को क्रमशः संस्कृत के ' ते, ताः, तानि ' से (अथवा ओकारान्त के कारण) विकसित माना गया है। परिणामतः दोनों के रूपों में अंतर स्पष्ट है।

(५) विकृत रूप एकवचन में प्राप्त हिंदी ' उस ' संस्कृत के ' अमुष्य ' से तो कोंकणी ' ता, ति ' संस्कृत के ' तस्य, तस्याः ' से विकसित हैं जिससे अंतर स्पष्ट होता है।

(६) विकृत रूप बहुवचन में, हिंदी में ' उन ' तो कोंकणी में ' तां ' रूप प्राप्त है। ' उन ' का विकास संस्कृत ' अमूनि ' से है तो ' तां ' का विकास संस्कृत ' तेषां, तासां ' से है। फलतः हिंदी ' उन ' तथा कोंकणी ' तां ' में अंतर स्पष्ट दीखता है।

(७) हिंदी ' उसे, उन्हें, उन्होंने ' जैसे विशेष रूप कोंकणी में उपलब्ध नहीं हैं तथा कोंकणी ' ताणें , तिणें, ताका, तिका, तांणीं, तांकां ' जैसे विशेष रूप हिंदी में उपलब्ध नहीं हैं।

(८) संबंध कारक में, हिंदी में विशेष रूप नहीं है, परंतु कोंकणी में ' ताजो, तिजो ' विशेष रूप उपलब्ध हैं।

विशेष –

नीचे हिंदी ' वह ' तथा कोंकणी ' तो ' और उनके रूपों के संबंध में कुछ विशेष चर्चा करना उचित होगा जो रूपावली के लिए उपयुक्त हो सकती है –

(१) हिंदी ' वह ' तथा कोंकणी ' तो ' में प्रमुख भेद यह है कि हिंदी ' वह ' पर लिंग का प्रभाव नहीं है परंतु कोंकणी ' तो ' पर लिंग (पु., स्त्री. और नपुं.) का प्रभाव है।

(२) हिंदी में ' वह ' के कर्ता कारक एकवचन में ' वह ' और ' उसने ' दो रूप प्राप्त हैं तो कोंकणी में पाँच रूप प्राप्त हैं, यथा :– ' तो, ती, तें (= वह) ' और ' ताणें, तिणें (= उसने) '। इनमें ' तो ' पुल्लिग में; ' ती ' स्त्रीलिंग में; ' तें ' नपुंसकलिंग में; 'ताणें' पुल्लिग और नपुंसकलिंग में और ' तिणें ' स्त्रीलिंग में प्रयुक्त हैं।

(३) हिंदी में 'वह' के कर्ता कारक बहुवचन में 'वे', 'उनने' और 'उन्होंने' तीन रूप प्राप्त हैं, तो कोंकणी में 'ते', 'त्यो', 'तीं (इन तीनों का अर्थ हैं 'वे')' और 'तांणीं (=उनने, उन्होंने)' चार रूप प्राप्त हैं। कोंकणी में 'ते' पुल्लिग में; 'त्यो' स्त्रीलिंग में; 'तीं' नपुंसकलिंग में और 'तांणीं' पु., स्त्री. और नपुं. में प्रयुक्त हैं।

(४) हिंदी में विकृत रूप के एकवचन में एक ही 'उस' रूप है तो कोंकणी में 'ता (पु., नपुं.)', 'ति (स्त्री.)' दो रूप हैं।

(५) हिंदी में विकृत रूप के बहुवचन में 'उन' और 'उन्ह' दो रूप हैं तो कोंकणी में 'तां' एक ही विकृत रूप है।

(६) हिंदी में कर्म–संप्रदान के एकवचन में विकृत रूप 'उस' में 'को' प्रत्यय लगाया हुआ 'उसको' तथा 'ए' प्रत्यय लगाया हुआ 'उसे' रूप प्राप्त हैं। इसी प्रकार कर्म–संप्रदान के बहुवचन में विकृत रूप 'उन' में 'को' प्रत्यय लगाया हुआ 'उनको' तथा 'एं' प्रत्यय लगाया हुआ 'उन्हें' रूप प्राप्त हैं। इस प्रकार हिंदी के कर्म–संप्रदान के एकवचन तथा बहुवचन में दो–दो रूप प्राप्त हैं। कोंकणी में कर्म–संप्रदान के एकवचन में विकृत रूप 'ता, ति' में 'का' प्रत्यय लगाया 'ताका (पु. और नपुं. में), तिका (स्त्री. में)' दो रूप मिलते हैं और बहुवचन में 'तां' विकृत रूप में 'कां' प्रत्यय जोडा हुआ 'तांकां (पु., स्त्री. और नपुं. में)' केवल एक ही रूप मिलता है। हिंदी में एकवचनीय 'उसको' और 'उसे' में प्रत्यय का अन्तर है विकृत रूप का नहीं ; तो कोंकणी में एकवचनीय 'ताका' और 'तिका' में विकृत रूपों का अन्तर है प्रत्यय का नहीं। हिंदी में बहुवचनीय 'उनको' और 'उन्हें' में प्रत्यय के अंतर के साथ-साथ विकृत रूपों में भी थोडा-सा अन्तर दीखता है तो कोंकणी में बहुवचनीय 'तांकां' में विकृत रूप या प्रत्यय का अन्तर नहीं दीखता।

(७) हिंदी में संबंध कारक एकवचन में 'उसका' तथा बहुवचन में 'उनका' एक – एक रूप है। ये विकृत रूप 'उस' तथा 'उन' से बने हैं। कोंकणी में संबंध कारक एकवचन में 'ताजो / ताचो (=उसका; पु. और नपुं. में)';' तिजो/तिचो (= उसका; स्त्री. में)' तथा बहुवचन में 'तांचो (=उनका; पु., स्त्री. और नपुं. में)' रूप मिलते हैं। ये रूप भी कोंकणी में विकृत 'ता', 'ति (एक.)' तथा 'तां (बहु.)' से बने हैं। इस प्रकार कोंकणी में प्रकृत्यन्तर तथा प्रत्ययान्तर के कारण संबंध कारक एकवचन में चार रूप होते हैं, यथा :– 'ताजो', 'ताचो', 'तिजो', 'तिचो'। इसके सिवा कोंकणी में संबंध कारक में 'गेलो' प्रत्यय लगता है। यह प्रत्यय भी विकृत रूप 'ता', 'ति' तथा 'तां' में प्रयुक्त है, यथा :– 'तागेलो' (= उसका; पुं. और नपुं. में)', 'तिगेलो (= उसका; स्त्री. में)' और 'तांगेलो (= उनका; पुं., स्त्री. और नपुं. में)'। इतना होते हुए भी हिंदी तथा कोंकणी के इन रूपों में एक बात समान है और वह है लिंग और वचन का प्रभाव। हिंदी तथा कोंकणी के इन रूपों के कारक-चिह्नों में परवर्ती संज्ञा के लिंग तथा वचन के कारण परिवर्तन होता है।

(८) शेष कारकों में, हिंदी में ' उस (एक. में) ' तथा ' उन (बहु. में) ' विकृत रूपों का प्रयोग होता है और इनमें शेष कारकीय प्रत्यय जुड जाते हैं। परंतु कोंकणी में अधिकरण कारक में प्राप्त होने वाले ' तागेर ', ' तांगेर ' रूप छोडकर शेष कारकों में संबंध कारक ' ताजो, ताचो, तिजो, तिचो (एक. में)' तथा 'तांचो (बहु. में) ' रूप ही विकृत होकर प्रयुक्त होते हैं, यथा :– करण कारक में :– हिंदी : ' उस+से = उससे '; कोंकणी : ' ताजो + न = ताज्यान, ताचो + न = ताच्यान, तिजो + न = तिज्यान, तिचो + न = तिच्यान '।

(९) हिंदी तथा कोंकणी में संबंधबोधक अव्ययों के साथ संबंध कारक रूपों का प्रयोग होता है; परंतु ऐसी स्थिति में संबंध कारक रूपों में परिवर्तन होता है, यथा :– हिंदी – ' उसका : उसके लिए '; कोंकणी – ' ताजो : ताजेसाटीं '; ' तिजो : तिजेसाटीं '; ' ताचो : ताचेसाटीं '; ' तिचो : तिचेसाटीं ' ।

उपर्युक्त सभी विवरण निम्नलिखित रूपावली से स्पष्ट हो जाएगा –

	हिंदी		कोंकणी	
कारक–	एक.	बहु.	एक.	बहु.
कर्ता –	वह, उसने	वे, उनने, उन्होंने	तो, ताणें	ते, तांणीं
कर्म –	उसको, उसे	उनको, उन्हें	ताका	तांकां
करण –	उससे	उनसे	ताज्यान, ताच्यान	तांच्यानीं
	–––	–––	ताजे(चे)कडेन	तांचेकडेन
संप्र. –	उसको, उसे	उनको, उन्हें	ताका	तांकां
अपा. –	उससे	उनसे	ताजे(चे)सून	तांचेसून
संबंध –	उसका	उनका	ताजो, ताचो	तांचो
	–––	–––	तागेलो	तांगेलो
अधि. –	उसमें	उनमें	ताज्यां(च्यां)त	तांच्यांत
	उसपर	उनपर	ताजे(चे)र	तांचेर
	–––	–––	तागेर	तांगेर
संबंध बोधक अव्ययों के साथ प्रयोग –	उसके लिए	उनके लिए	ताजेसाटीं	तांचेसाटीं
	उसके खातिर	उनके खातिर	ताजेखातीर	तांचेखातीर
	उसके साथ	उनके साथ	ताच्यावांगडा	तांच्यावांगडा

उपर्युक्त कोंकणी रूपावली पुल्लिंग ' तो ' शब्द से संबंधित है।

इसके सिवा कोंकणी में, स्त्रीलिंग में अप्रत्यय कर्ता कारक एकवचन में ' ती ' तथा बहुवचन में ' त्यो ' का प्रयोग होता है। ' ती ' में प्रत्यय जुडते समय ' ती ' का ' ति '

होता है । यथा :– 'तिणें, तिका, तिज्यान/तिच्यान, तिजो/तिचो ' आदि । परंतु स्त्रीलिंग बहुवचन में उपर्युक्त पुल्लिग ' तांणीं, तांकां, तांचो ' आदि रूपों का ही प्रयोग होता है ।

कोंकणी में, नपुंसकलिंग में भी अप्रत्यय कर्ता कारक एक. में ' तें ' तथा बहु. में ' तीं ' रूपों का प्रयोग होता है । शेष नपुंसक. रूपों --– अर्थात् सप्रत्यय कर्ता कारक एक. तथा बहु. और अन्य सभी कारकों के एक. तथा बहु. –- में उपर्युक्त पुल्लिग रूपों का ही प्रयोग होता है, यथा :– ' ताणें, ताका, ताज्यान (एक.) '; ' तांणीं, तांकां, तांच्यानीं (बहु.) ' आदि ।

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी के संबंध कारक रूपों में परवर्ती संज्ञा के लिंग, वचन तथा कारक-चिह्न युक्त परवर्ती संबद्ध संज्ञा के कारण परिवर्तन होता है । यह परिवर्तन हिंदी ' मैं ' तथा कोंकणी ' हांव ' शब्दों के संबंध कारक में प्राप्त होने वाले परिवर्तन के समान है (देखिए, हिंदी ' मैं ' तथा कोंकणी ' हांव ' रूपावली के निचले परिच्छेद, पृ. २०७) ।

निश्चयवाचक निकटवर्ती
(हिंदी ' यह ' तथा कोंकणी ' हो ')

निश्चयवाचक निकटवर्ती सर्वनाम हिंदी ' यह ' तथा कोंकणी ' हो ' के मुख्य रूपान्तर निम्नलिखित प्रकार से हैं –

	हिंदी		कोंकणी	
	एक.	बहु.	एक.	बहु.
मूल रूप –	यह	ये	हो, ही, हें	हे, ह्यो, हीं
विकृत रूप –	इस	इन	हा, हि	हां
विशेष रूप –	इसे	इन्हें, इन्होंने	हाणें, हिणें, हाका, हिका	हांणीं, हांकां
संबंध कारक –	––	––	हाजो, हिजो	––

हिंदी ' यह ' सर्वनाम और उसके रूपों पर लिंग का प्रभाव नहीं है, परंतु कोंकणी ' हो ' सर्वनाम और उसके रूपों पर लिंग का प्रभाव है । अत एव कोंकणी में ' हो ' पुल्लिग में, ' ही ' स्त्रीलिंग में और ' हें ' नपुंसकलिंग में प्रयुक्त हैं । कोंकणी ' हो ' के और कुछ रूप भी लिंग के अनुसार परिवर्तित होते हैं ।

नीचे हिंदी ' यह ' तथा कोंकणी ' हो ' और उनके रूप स्पष्ट किये हैं ।

हिंदी :–

यह (मूल रूप एक.) :

हिंदी ' यह ' की व्युत्पत्ति संस्कृत ' एषः ' से स्पष्ट दिखायी देती है । यथा :– सं. एषः > पा. एसो > प्रा. एसो > अप. एहो > हिं. यह । यहाँ ' य् ' श्रुति है ।

अपभ्रंश में भी स्त्रीलिंग में ' एह ' तथा नपुंसकलिंग में ' एहु ' रूप भी मिलते हैं [९८]। इन तीनों लिंगों के रूपों के साधारणीकरण से हिंदी में ' यह ' विकसित है । इससे ' यह ' में लिंग-भेद नहीं रहा है । ' यह ' पुल्लिग तथा स्त्रीलिंग में समान रूप से व्यवहृत है ।

ये (मूल रूप बहु.) :

हिंदी ' ये ' का विकास संस्कृत ' एते ' से है, यथा :– सं., पा. एते > प्रा. एते, एए > अप. एइ > हिं. ये । यहाँ ' इ ' का लोप तथा ' य् ' श्रुति है ।

इस (विकृत रूप एक.) :

डा. वर्मा हिंदी ' इस ' का संबंध प्राकृत ' एअस्स < सं. अस्य ' से मानते हैं[९९] ।

डा. भोलानाथ तिवारी ने सं. ' एतस्य ' से ' इस ' का संबंध जोडा है । उन्होंने पालि में ' एतिस ' रूप स्वीकारा हैं, जो उनके कथनानुसार अशोक के शहबाजगढी शिलालेख में उपलब्ध है[१००] ।

हिंदी ' इस ' का विकास संस्कृत ' इदम् ' शब्द के ' अस्य ' > पा., प्रा. ' इमस्स ' से भी दिखाया जा सकता है । परंतु हिंदी ' इस ' का विकास ' एतस्य ' से दिखाना उचित है; क्योंकि हिंदी ' यह ' का विकास संस्कृत ' एषः ' से हुआ है, और यह बात अभी ऊपर स्पष्ट की है । अतः ' इस ' का संबंध भी ' एषः ' से संबंधित किसी रूप से दिखाना योग्य होगा । इसका विकास इस प्रकार होगा :– सं. एतस्य > पा. एतस्स > प्रा. एअस्स > अप. एअस्स > हिं. इस (' ए ' का ' इ ' तथा ' अ ' और ' स् ' का लोप)।

इन (विकृत रूप बहु.) :

डा. वर्मा ' इन ' के ' न ' में संबंध कारक बहुवचन के चिह्न का प्रभाव मानते हैं[१०१] । वे हिंदी ' इन ' रूप का प्रा. एदिणा, एइणा < सं. एतेन से संबंध नहीं जोडते । शायद एकवचन के कारण वे ऐसा मानते होंगे ।

वस्तुतः वचन-विपर्यय की बात सभी विद्वानों ने मान ली है । अतः प्राकृत के एकवचनीय ' एदिणा (डा. वर्मा ने दिखाया यह रूप चिंत्य है), एइणा' से हिंदी इन का विकास मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

इस प्रकार रूप-सिद्धि होते हुए भी हिंदी ' इन ' का संबंध प्राकृत के संप्रदान तथा संबंध कारक के बहुवचन में प्राप्त ' एआणं, एयाणं ' से जोडा जाना उचित होगा ।

अत एव डा. भोलानाथ तिवारी प्राकृत के ' एआण, एआणं (मेरे मत से 'एयाणं' भी)' रूपों का संबंध संस्कृत के 'एषाम्', 'एतेषाम्' से जोडते हैं[१०२] । उनके कथनानुसार हिंदी ' इन ' की व्युत्पत्ति इस प्रकार है :– सं. एषाम् , एतेषाम् > पा. एसानं , एतेसानं > प्रा एआणं , एआण > अप. एण >* एण्ह (' ह ' आगम) >इन्ह > हिं. इन ।

इस विकास-क्रम में दिखाया अपभ्रंश 'एण' रूप करण कारक एकवचन का है[१०३]; और उसके पूर्ववर्ती भाषाओं में दिखाये रूप संबंध कारक बहुवचन के हैं । अतः उपर्युक्त विकास-क्रम में गडबडी दिखायी देती है । 'एतद्' शब्द के संबंध कारक बहुवचन में, अपभ्रंश में ' एयहँ ' रूप प्राप्त है । ऐसी अवस्था में ' इन ' के विकास-क्रम की कडी अपभ्रंश में टूटती है । इसके लिए अपभ्रंश में कल्पित रूप की सृष्टि करने की आवश्यकता होती है । अर्थात् अपभ्रंश में या तो कल्पित रूप स्वीकारना आवश्यक होगा या वचन-विपर्यय से संस्कृत तृतीया

विभक्ति के एकवचनीय ' एतेन ' से हिंदी बहुवचनीय ' इन ' का विकास स्वीकारना आवश्यक होगा ।

इसे (विशेष रूप एक.) :

डा. भोलानाथ तिवारी प्राकृत काल में ' तीसे, कीसे, तुज्झे ' आदि के सादृश्य पर * एइस्स का * एइस्से विकास मानकर ' इसे ' रूप विकसित मानते हैं [१०४] ।

वास्तव में परवर्ती अपभ्रंश काल में ' हि ' और ' हिं ' प्रत्यय से ' इ, ए, ऐ ' और ' इँ, एँ, ऐं ' प्रत्यय विकसित हुए थे जिनका प्रयोग संज्ञाओं में होता था । परंतु अनन्तर के काल में इनका प्रयोग सर्वनामों में भी होने लगा । इन प्रत्ययों का यदि विकास न माने तो गोरख में प्राप्त ' मुखि '; पद्मावत में प्राप्त ' राजै, सुऐं, बांभनै, तेइं, केइँ ' आदि रूपों को व्युत्पन्न करना कठिन होगा । इन प्रत्ययों में से ' ए, एं ' प्रत्यय कुछ सर्वनामों में ही अवशिष्ट रहे जो 'इसे, इन्हें' आदि रूपों में दिखायी देते हैं(विस्तार के लिए देखिए , हिंदी ' मुझे ',पृ. १९८)। अतः ' इसे ' रूप को कल्पित रूप से व्युत्पन्न न करके ' इस ' में ' ए ' प्रत्यय लगाकर सिद्ध करने में आपत्ति नहीं है । तभी तो डा. भोलानाथ तिवारी ने कही – गोरख, कबीर, चंद, सूर एवं प्राचीन दक्खिनी पुस्तकों आदि में ' इसे ' नहीं है – बात ठीक जँचती है । क्यों कि ' इसे ' का विकास अनन्तरकालीन है ।

इन्हें (विशेष रूप बहु.) :

हिंदी ' इन ' तथा ' इन्ह ' का प्रयोग हिंदी के आदिकाल से ही मिलने लगता है । इनमें से 'इन्ह ' में ' एं ' प्रत्यय जुडकर 'इन्हें' रूप सिद्ध होता है(देखिए, हिंदी ' उन्हें ', पृ.२२२)।

इन्होंने (विशेष रूप बहु.) :

इसमें ' इन्ह ' विशेष रूप है और ' ने ' प्रत्यय है । ' ने ' प्रत्यय लगने के समय ' इन्ह ' का ' इन्हों ' होता है (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी ' उन्होंने ', पृ. २२३) ।

कोंकणी :–

हो, ही, हें (मूल रूप एक.) :

हो : डा. कत्रे संस्कृत ' एषकः ' अथवा वैदिक ' असुकौ ' से कोंकणी ' हो ' की व्युत्पत्ति मानते हैं [१०५] ।

परंतु कोंकणी ' हो ' का विकास संस्कृत ' एषः ' से स्पष्ट है, यथा :– सं. एषः > पा., प्रा. एसो > अप. एहो > कों. हो । अपभ्रंश ' एहो ' के ' ए ' का लोप परवर्ती बलाघात के कारण हो सकता है । ' हो ' पुल्लिंग एकवचन में प्रयुक्त है ।

ही : ' भविसत्त कहा ' में स्त्रीलिंग में ' इह ' रूप है । ' इह ' में ' इ ' के विपर्यय तथा उसके दीर्घ होने से ' ही ' विकसित माना जा सकता है । ' पाउडदोहा ' में ' एही ' रूप भी मिलता है । इसमें ऊपर दिखाये हुए ' हो ' की तरह ' ए ' लोप से ' ही ' विकसित माना जा सकता है । ' ही ' स्त्रीलिंग एकवचन में प्रयुक्त है । अपभ्रंश ' इह ' और ' एही ' रूप संस्कृत ' एषा ' से विकसित हैं ।

हें : 'भविसत्त कहा' में नपुंसकलिंग में 'एयं' रूप मिलता है। इसमें आदि 'ह' आगम और 'य' लोप से 'हें' विकसित होने की संभावना है। 'हें' नपुंसकलिंग एकवचन में प्रयुक्त है। अपभ्रंश 'एयं' संस्कृत 'एतद्' से विकसित है।

उपर्युक्त स्त्री. 'ही' तथा नपुं. 'हें' रूप 'हो' के ओकारान्त के कारण भी माना जा सकता है (देखिए, कोंकणी 'तो, ती, तें' का अन्तिम परिच्छेद, पृ. २२३)।

हे, ह्यो, हीं (मूल रूप बहु.) :

हे : कोंकणी 'हे' का विकास संस्कृत 'एते' से माना जा सकता है, यथा :– सं. एते > पा. एते > प्रा. एते, एए > अप. एइ > कों. हे। यहाँ कोंकणी में आदि 'ह' आगम तथा 'इ' लोप से 'हे' रूप सिद्ध होता है। 'हे' पुल्लिंग बहुवचन में प्रयुक्त है।

ह्यो : अपभ्रंश में संस्कृत 'एतद्' शब्द का 'एहाऊ (स्त्री. में)' रूप मिलता है। इसमें आदि 'ए' का लोप तथा 'ऊ' का 'ओ' होकर 'ह्यो' रूप हो सकता है। इसमें 'य्' श्रुति है। 'ह्यो' स्त्रीलिंग बहुवचन में प्रयुक्त है।

हीं : अपभ्रंश में संस्कृत 'एतद्' शब्द के नपुंसकलिंग बहु. में 'एइ' रूप मिलता है। इसमें 'ह' आगम तथा 'ए' का लोप होकर 'ही' होता है। इसमें 'तीं' के सादृश्य पर अनुस्वार प्राप्त होकर 'हीं' व्युत्पन्न हो सकता है। 'हीं' रूप नपुंसकलिंग बहुवचन में प्राप्त है।

उपर्युक्त 'हे, ह्यो, हीं' के संबंध में एक और संभावना हो सकती है। 'हो' के ओकारान्त के कारण 'हे, ह्यो, हीं' रूप निष्पन्न हो सकते हैं (देखिए, कोंकणी 'ते, त्यो, तीं' का अंतिम परिच्छेद, पृ. २२४)।

हा, हि (विकृत रूप एक.) :

हा : संस्कृत 'एतस्य' का अपभ्रंश में, संबंध कारक में 'एयहो' होता है। इसमें 'ए' का लोप तथा 'य' के विपर्यय से 'ह्यो' रूप विकसित हो सकता है (ह्यो रूप बारदेश – पेडणे ताल्लुके में आज भी प्रचलित है)। इस 'ह्यो' से 'ह्या' होकर 'हा' होने की संभावना है। 'हा' रूप पुल्लिंग तथा नपुंसकलिंग एकवचन में प्रयुक्त है। इसका प्रयोग 'हाणें (=इसने), हाका(=इसको)' आदि में प्राप्त है।

'हा' के संबंध में एक और संभावना हो सकती है। कोंकणी में पुल्लिंग ओकारान्त तथा नपुंसकलिंग एंकारान्त शब्द विकृत रूप के एकवचन में याकारान्त होते हैं, यथा :– पु. 'घोडो : घोड्या'; नपुं. 'केळें : केळ्या'। इस प्रकार पुल्लिंग ओकारान्त 'हो' तथा नपुंसकलिंग एंकारान्त 'हें' का विकृत रूप एकवचन में 'ह्या' होना चाहिए। 'ह्या' का प्रयोग आज भी अशिक्षित लोगों के व्यवहार में दिखायी देता है, जैसे : 'ह्याका बाजारांत धाड. (=इसे बाजार भेज।)'। परंतु कोंकणी साहित्य में 'हा' रूप मिलता है, यथा :- 'हागेले सामान हाडून भायर उडयात[१०६] (=इसका असबाब लाकर बाहर फेंको).'। 'ह्या'

और ' हा ' में पूर्व विकसित रूप ' ह्या ' तथा अनन्तर विकसित रूप ' हा ' को माना जाना चाहिए।

हि : कोंकणी विकृत रूप ' हि ' स्त्रीलिंग एकवचन में प्रयुक्त है। ' हि ' रूप कोंकणी मूल रूप ' ही ' से बना है। कोंकणी में एकाक्षरी दीर्घ ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दों में कारकीय प्रत्यय लगाते समय दीर्घ ' ई ' तथा ' ऊ ' प्रायः ह्रस्व होते हैं, यथा :– ' बी (बीज) : बियाक '; ' ऊ (जूँ) : उवांक '। इस प्रकार कोंकणी ' ही ' का ह्रस्व ' हि ' होता है, यथा :– ' ही : हिका (= इसे) '। यहाँ सर्वनामों के रूप–संरचना का जो वैशिष्ट्य है उसके कारण ' बियाक ' शब्द में प्राप्त ' य ' जैसी श्रुति प्राप्त नहीं होती है।

हां (विकृत रूप बहु.) :

' हां ' का विकास संस्कृत ' एतेषाम् ' से संबंधित है, यथा :– सं. एतेषाम् > पा. एतेसानं, एतेसं > प्रा. एतेसिं, एएसिं > अप. एयहं > ह्यां > कों. हां।

' हां ' के संबंध में एक अन्य संभावना हो सकती है। कोंकणी में विकृत रूप बहुवचन में सानुनासिक रूप उपलब्ध होते हैं। इससे विकृत रूप के एकवचन में प्राप्त ' हा ' का विकृत रूप के बहुवचन में ' हां ' होता है (विस्तार के लिए देखिए, कोंकणी ' तां ', पृ. २२५)।

शेष ' विशेष रूप ' तथा ' संबंध कारक रूप ' :

कोंकणी ' हो ' के शेष विशेष रूपों ' हाणें, हिणें, हाका, हिका (एक.) '; ' हांणीं, हांकां (बहु.) '; तथा संबंध कारक रूपों ' हाजो, हिजो (एक.) ' में ' हा, हि, हां ' विकृत रूप हैं और ' णें, का, णीं, कां, जो ' प्रत्यय हैं। ये प्रत्यय सभी सर्वनामों में उपलब्ध नहीं होते हैं। अतः उपर्युक्त रूपों को विकृत रूपों से अलग दिखाया है (विस्तार के लिए देखिए, कोंकणी ' ताणें, तिणें ' आदि विशेष रूप और संबंध कारक रूप, पृ. २२६)।

× × ×

यहाँ तक किये गये विवेचन के आधार पर हिंदी ' यह ' और उसके रूपों तथा कोंकणी ' हो ' और उसके रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

१) हिंदी ' यह ' और उसके रूपों पर लिंग का प्रभाव नहीं दीखता तो कोंकणी ' हो ' और उसके रूपों (' हां ' छोडकर) पर लिंग प्रभाव स्पष्ट दीखता है।

२) हिंदी ' यह ' तथा कोंकणी ' हो ' के संबंध कारक रूपों में जो कारक-चिह्न हैं उनमें परवर्ती संज्ञा के लिंग के कारण परिवर्तन होता है।

३) मूल रूप एकवचन में प्राप्त होने वाला हिंदी ' यह ' तथा कोंकणी ' हो ' संस्कृत ' एषः ' से विकसित हैं। इसी प्रकार कोंकणी ' ही, हें ' को क्रमशः संस्कृत के ' एषा, एतद् ' से (अथवा ' हो ' की ओकारान्तता के कारण) विकसित माना गया है। हिंदी ' यह ' तथा कोंकणी ' हो ' का स्रोत एक होते हुए भी विकास-क्रम का प्रवाह मुड जाने के कारण दोनों में अन्तर आया है।

४) मूल रूप बहुवचन में प्राप्त हिंदी ' ये ' संस्कृत ' एते ' से तो कोंकणी ' हे ' भी संस्कृत ' एते ' से विकसित है। कोंकणी ' ह्यो, हीं ' संस्कृत के अन्य ' एता :, एतानि '

रूपों से अथवा ' हो ' की ओकारन्तता के कारण विकसित माने जा सकते हैं। हिंदी ' ये 'तथा कोंकणी ' हे ' में थोडा-सा अंतर दीखता है।

५) विकृत रूप एकवचन में प्राप्त हिंदी ' इस ' संस्कृत ' एतस्य ' से तथा कोंकणी ' हा ' भी ' एतस्य ' से विकसित है। ' हि ' कर्ता कारक दीर्घ ' ही (स्त्री.)' से विकसित माना जा सकता है।

६) विकृत रूप बहुवचन में, हिंदी में ' इन ' संस्कृत के ' एतेषाम् ' से अथवा वचन–विपर्यय के आधार पर ' एतेन ' से विकसित माना जा सकता है तो कोंकणी ' हां ' का विकास भी संस्कृत ' एतेषाम् ' से माना जा सकता है।

७) हिंदी ' इसे, इन्हें, इन्होंने ' जैसे विशेष रूप कोंकणी में नहीं हैं तथा कोंकणी ' हाणें, हिणें, हाका, हिका, हांणीं, हांकां ' जैसे विशेष रूप हिंदी में उपलब्ध नहीं हैं।

८) संबंध कारक में, हिंदी में विशेष रूप नहीं है तो कोंकणी में ' हाजो, हिजो ' विशेष रूप उपलब्ध हैं।

विशेष –

हिंदी ' यह ' तथा कोंकणी ' हो ' सर्वनामों के संबंध में जो विशेष बातें उपलब्ध होती हैं वे हिंदी ' वह ' तथा कोंकणी ' तो ' में प्राप्त होने वाली विशेष बातों के समान हैं। कोंकणी 'तो' की तरह ' हो ' में ' जो ' प्रत्यय भी विकल्प से प्राप्त होता है, यथा :– ' हाजो, हाचो(=इसका) ' आदि। अर्थात् हिंदी ' वह ' तथा कोंकणी ' तो ' सर्वनामों के ' विशेष ' उपशीर्षक में स्पष्ट की हुईं बातें यहाँ भी लागू होती हैं(देखिए, ' विशेष ' उपशीर्षक, पृ.२२७)।

यहाँ तक दी हुई हिंदी ' यह ' तथा कोंकणी ' हो ' के रूपों की जानकारी निम्नलिखित रूपावली से स्पष्ट हो जाएगी –

	हिंदी		**कोंकणी**	
कारक	**एक.**	**बहु.**	**एक.**	**बहु.**
कर्ता –	यह, इसने	ये, इनने, इन्होंने	हो, हाणें	हे, हांणीं
कर्म –	इसको, इसे	इनको, इन्हें	हाका	हांकां
करण –	इससे	इनसे	हाज्यान, हाच्यान	हांच्यानीं
	––	––	हाजे(चे)कडेन	हांचेकडेन
संप्र. ––	इसको, इसे	इनको, इन्हें	हाका	हांकां
अपा. –	इससे	इनसे	हाज्या(च्या)सून	हांच्यासून
	––	––	हाजे(चे)सून	हांचेसून
संबंध –	इसका	इनका	हाजो, हाचो	हांचो
	––	––	हागेलो	हांगेलो
अधि. –	इसमें	इनमें	हाज्यां(च्यां)त	हांच्यांत
	इसपर	इनपर	हाजे(चे)र	हांचेर
	––	––	हागेर	हांगेर

संबंध बोधक अव्ययों के साथ प्रयोग –	इसके लिए	इनके लिए	हाजे(चे)साटीं	हांचेसाटीं
	इसके खातिर	इनके खातिर	हाजेखातीर	हांचेखातीर
	इसके साथ	इनके साथ	हाज्यावांगडा	हांच्यावांगडा

उपर्युक्त कोंकणी रूपावली पुल्लिग ' हो ' शब्द से संबंधित है ।

इसके सिवा कोंकणी में, स्त्रीलिंग में अप्रत्यय कर्ता कारक एकवचन में ' ही ' तथा बहुवचन में ' ह्यो ' का प्रयोग होता है । ' ही ' में प्रत्यय जुडते समय एक. में ' ही ' का ' हि ' होता है, यथा :– ' हिणें, हिका, हिज्यान / हिच्यान, हिजो / हिचो ' आदि । परंतु स्त्रीलिंग बहुवचन में, उपर्युक्त पुल्लिग ' हांणीं, हांकां, हांच्यानीं, हांचो ' आदि रूपों का ही प्रयोग होता है ।

कोंकणी में, नपुंसकलिंग में अप्रत्यय कर्ता कारक एकवचन में ' हें ' तथा बहुवचन में ' हीं ' रूपों का प्रयोग होता है । शेष नपुंसक. रूपों –– अर्थात् सप्रत्यय कर्ताकारक एकवचन तथा बहुवचन और अन्य सभी कारकों के एकवचन तथा बहुवचन –– में उपर्युक्त पुल्लिग रूपों का ही प्रयोग होता है, यथा :– ' हाणें, हाका, हाज्यान (एक.) ' ; ' हांणीं, हांकां, हांच्यानीं (बहु.) ' आदि ।

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी के संबंध कारक रूपों में परवर्ती संज्ञा के लिंग, वचन तथा कारक-चिह्न युक्त परवर्ती संबद्धसंज्ञा के कारण परिवर्तन होता है । यह परिवर्तन हिंदी ' मैं ' तथा कोंकणी ' हांव ' शब्दों में प्राप्त होने वाले परिवर्तन के समान है (देखिए, हिंदी ' मैं ' तथा कोंकणी ' हांव ' रूपावली के निचले परिच्छेद , पृ. २०७)।

संबंधवाचक

(हिंदी ' जो ' तथा कोंकणी ' जो ')

हिंदी ' जो ' तथा कोंकणी ' जो ' संबंधवाचक सर्वनामों के मुख्य रूपान्तर निम्नलिखित प्रकार से हैं –

	हिंदी		**कोंकणी**	
	एक.	**बहु.**	**एक.**	**बहु.**
मूल रूप –	जो	जो	जो, जी, जें	जे, ज्यो, जीं
विकृत रूप –	जिस	जिन	जा, जि	जां
विशेष रूप–	जिसे	जिन्हें, जिन्होंने	जाणें, जिणें, जाका, जिका	जांणीं, जांकां

हिंदी ' जो ' सर्वनाम पर लिंग का प्रभाव नहीं है, परंतु कोंकणी ' जो ' सर्वनाम पर लिंग का प्रभाव है । अत एव कोंकणी में ' जो ' पुल्लिग में, ' जी ' स्त्रीलिंग में और ' जें ' नपुंसकलिंग में प्रयुक्त हैं । कोंकणी ' जो ' के और कुछ रूप भी लिंग के अनुसार परिवर्तित होते हैं ।

नीचे हिंदी 'जो' तथा कोंकणी 'जो' और उनके रूप स्पष्ट किये हैं।

हिंदी :–

जो (मूल रूप एक.) :

हिंदी 'जो' संस्कृत 'यः' से संबंधित है, यथा :– सं. यः > पा. यो > प्रा. जो > अप. जो > **हिं. जो ।**

जो (मूल रूप बहु.) :

हिंदी 'जो' सर्वनाम के मूल रूप के एकवचन तथा बहुवचन में समानता है, यथा :– एकवचन में 'जो' तथा बहुवचन में भी 'जो'। अतः इसकी व्युत्पत्ति एकवचन 'जो' के समान संस्कृत 'यः' से मानना चाहिए।

अपभ्रंश तथा परवर्ती अपभ्रंश में संबंधवाचक सर्वनाम 'जो' के मूल रूप एकवचन में 'जो' तथा बहुवचन में 'जे' रूप उपलब्ध होते हैं [१०७], परंतु हिंदी में 'जे' लुप्त हुआ और वचन-विपर्यय से एक. 'जो' का बहु. में प्रयोग होने लगा।

हिंदी 'नालंदा विशाल शब्द सागर' कोश में 'जे' रूप है जो 'जो' सर्वनाम का बहुवचन है। इस 'जे' को कविता तथा स्थानिक बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त होने वाला शब्द सूचित किया है। तब प्रश्न उठता है कि यह गद्य में प्रयुक्त था या नहीं ? यदि था तब उसका प्रयोग कब से बंद हुआ ? यदि हिंदी के गद्य में 'जे' का प्रयोग होता तो यह कोंकणी 'जे('जो' सवर्नाम का बहु.)' से साम्य रखता। 'जे' संस्कृत के पुल्लिग 'यत्' सर्वनाम के बहुवचनीय 'ये' से विकसित है।

जिस (विकृत रूप एक.) :

डा. उदयनारायण तिवारी सं. यस्य > पा. यस्स > प्रा. जस्स से हिंदी 'जिस' का विकास मानते हैं [१०८]।

डा. वर्मा सं. यस्य का प्रा. जस्स, जिस्स > हिंदी 'जिस' रूप में विकास मानते हैं [१०९]।

डा. भोलानाथ तिवारी ने डा. वर्मा का मत ग्राह्य माना है। उन्होंने 'जिस' का विकास -क्रम दिखाने के लिए प्राकृत में 'जिस्स' रूप स्वीकारा है (वास्तव में जो नहीं मिलता)। अतः उन्होंने दिखाया हुआ हिंदी 'जिस' का विकास-क्रम इस प्रकार है :– सं. यस्य > पा. यस्स > (पा. किस्स के सादृश्य पर) प्रा. जिस्स > अप. * जिस्स > हिं. जिस [११०]।

इस प्रकार हिंदी के सभी विद्वान संस्कृत पुल्लिग 'यस्य' शब्द से हिंदी 'जिस' का विकास दिखाने का प्रयत्न करते हैं।

वस्तुतः हिंदी 'जिस' का विकास संस्कृत के स्त्रीलिंग 'यस्याः' शब्द से दिखाना उचित लगता है। इससे प्राकृत में 'जिस्स' रूप स्वीकारने की आवश्यकता नहीं रहेगी। हिंदी सर्वनामों के रूपों में लिंग-भेद अप्राप्त होने के कारण उनका विकास संस्कृत में प्राप्त होने वाले पुल्लिग, स्त्रीलिंग या नपुंसकलिंग सर्वनाम के किसी एक रूप से दिखाने में आपत्ति नहीं है। प्राकृत में स्त्रीलिंग 'जो' सर्वनाम के 'जिस्सा, जीसे' रूप प्राप्त हैं [१११]। इनसे हिंदी 'जिस,

जिसे ' रूपों की व्युत्पत्ति सरल है । अर्थात् ' जिस ' का विकास-क्रम इस प्रकार होगा :– स यस्याः (स्त्री.) > पा. यस्सा (स्त्री.) > प्रा. जिस्सा (स्त्री.) > अप. * जिस्स > हिं. जिस (पु , स्त्री.) । इसी प्रकार प्राकृत ' जीसे (स्त्री.) ' से हिंदी ' जिसे (पु., स्त्री. में; जो अभी आ कहा जाएगा) ' भी विकसित माना जा सकता है ।

एक प्रश्न उठता है । सं. ' यस्याः ' का प्राकृत में ' जिस्सा ' तथा ' जीसे ' जैसे रूपों ' इ ' तथा ' ई ' कैसे प्राप्त हुईं ? इसका समाधान यह होगा कि ' जिस्सा, जीसे ' रूप प्राकृत स्त्रीलिंग ' तिस्सा, तीसे ' से प्रभावित हैं । प्राकृत ' तिस्सा, तीसे ' पालि के ' तिस्सा, तिस्साय (स्त्री.) ' से, और ' तिस्सा, तिस्साय (स्त्री.) ' पालि के एतिस्सा, एतिस्साय (स्त्री.) ' से प्रभावित हैं । पालि के ' एतिस्सा, एतिस्साय ' में ' इ पूर्ववर्ती स्वर ' ए ' अथवा बलाघात के कारण मानी जानी चाहिए । इस प्रकार यहाँ स्त्रीलिंग एतिस्साय ' की ' इ ' का स्त्रीलिंग ' तिस्सा, तिस्साय ' रूपों पर प्रभाव पडने के कारण , डा भोलानाथ तिवारी ने पालि में प्राप्त होने वाले पुल्लिग ' किस्स ' की ' इ ' का प्रभाव स्त्रीलिंग ' तिस्सा, तिस्साय ' रूपों पर जो माना है वह मानने की आवश्यकता नहीं होगी । (उपर्युक्त जिस ' तथा आगे दिये हुअे ' तिस ' रूप के संबंध में डा. भोलानाथ तिवारी का मत देखिए)।

एक और बात । ' अ ' का ' इ ' होने की प्रवृत्ति सहज है । मैं राजापूर जाता था । बीच में दूसरी बस हमारी बस से टकरा गयी । दोनों ड्रायव्हरों में वादविवाद होने लगा । अन्त में जिसकी गलती थीं उसने कहा :– ' अच्छा भाई, मैं मान गिया (गया) भाई; मैं मान गिया(गया) ' आदि । ' मैं मान गिया ' शब्द वह चार-पाँच बार दोहराया । अतः ऐसा लगता है कि ' अ ' के स्थान ' इ ' की प्राप्ति सहजता से होती है । अर्थात् सं. यस्य > पा. यस्स > प्रा. जस्स से हिंदी ' जिस ' होने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

एक अन्य संभावना हो सकती है । वचन-विपर्यय से प्राकृत के बहुवचन में प्राप्त जेसिं, जेसु आदि रूपों से हिंदी के एकवचनीय ' जिस ' रूप की व्युत्पत्ति के संबंध में भी विचार करना आवश्यक है । इसी प्रकार हिंदी में प्राप्त बहुवचनीय ' जिन ' रूप भी एकवचनीय ' जेण (प्रा.) < येन (सं.) ' से संबंधित होने के संबंध में विचार-मंथन आवश्यक है ।

अन्त में प्रा. ' जिस्स ' में ' इ ' की उपपत्ति लगाने के लिए डा. भोलानाथ तिवारी ने मूल भारोपीय भाषा में स्वीकारे हुए ' किम् ' के कल्पित तीन मूल शब्दों (कि, कु, को) को स्वीकारने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी 'किस ', पृ. २४९) ।

जिन (विकृत रूप बहु.) :

डा. चटर्जी, डा. वर्मा आदि विद्वान सं. येषां < * यानां से हिंदी ' जिन ' का विकास मानते हैं [११२] ।

डा. उदयनारायण तिवारी सं. येषां > जाणं से ' जिन, जिन्ह ' का विकास मानते हैं [११३] ।

डा. भोलानाथ तिवारी ने संस्कृत येषाम् > पा. येसानं > प्रा. जाणं, जाण > जिण, जिन, जेण्ह, जिन्ह (' किन ' का प्रभाव) > हिंदी ' जिन ' का विकास माना है[११४] ।

वास्तव में वचन-विपर्यय की बात डा. वर्मा, डा. भोलानाथ तिवारी आदि विद्वानों को स्वीकृत है । अतः हिंदी ' जिन ' का विकास अप. जेण (एक.) < प्रा. जेणं, जिणा < पा., सं. ' येन ' से माना जा सकता है (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी ' तिन ', पृ. २४६ तथा ' जिस ', पृ. २३७) ।

जिसे (विशेष रूप एक.) :

डा. भोलानाथ तिवारी प्राकृत ' जिस्स ' का ' तीसे, कीसे, तुज्झे ' के सादृश्य पर प्राकृत काल में कल्पित ' जिस्से ' रूप स्वीकार कर हिंदी ' जिसे ' विकसित मानते हैं । उन्होंने एक और संभावना व्यक्त की है । हिंदी काल में ' जिस ' का ' तुझे, मुझे ' के सादृश्य पर ' जिसे ' का विकास हो सकता है[११५] ।

वस्तुतः प्राकृत में ' जिस्स ' रूप नहीं है । अर्थात् ' जिस्से ' को कल्पित रूप मानना पडता है । अतः इसका विकास हिंदी काल में मानना उचित होगा । हिंदी ' जिस ' मे अपभ्रंशोत्तर कालीन विकसित ' ए ' प्रत्यय जुडकर ' जिसे ' रूप व्युत्पन्न मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए (' ए ' प्रत्यय के लिए देखिए, हिंदी ' मुझे ', पृ. १९८) ।

एक अन्य संभावना हो सकती है । प्राकृत में ' यद् ' शब्द के स्त्रीलिंग एकवचन मे ' जीसे ' रूप प्राप्त है[११६] । हिंदी सर्वनामों में लिंग–भेद न रहने के कारण प्राकृत में प्राप्त स्त्रीलिंग ' जीसे ' से हिंदी ' जिसे ' का विकास मानने में आपत्ति नहीं है (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी ' जिस ', पृ. २३७) । प्राकृत में ' जीसे, तीसे, कीसे ' में प्राप्त ' ए ' प्रायः पालि ' एतिस्साय, तिस्साय ' के ' य ' से विकसित हुआ होगा ।

जिन्हें (विशेष रूप बहु.) :

' जिन ' में ' ह ' आगम होकर ' जिन्ह ' रूप सिद्ध होता है । इसमें ' एं ' प्रत्यय जुडकर ' जिन्हें ' रूप विकसित होता है (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी 'उन्हें ', पृ. २२२)।

जिन्होंने (विशेष रूप बहु.)

(देखिए, हिंदी ' उन्होंने ', पृ. २२३) ।

कोंकणी :–

जो, जी, जें (मूल रूप एक.) :

जो : कोंकणी ' जो ' का विकास हिंदी ' जो ' की तरह संस्कृत ' यः ' से हुआ है, यथा :– सं. यः > पा. यो > प्रा. जो > अप. जो > कों. जो । ' जो ' पुल्लिग एकवचन में प्रयुक्त है ।

जी : संस्कृत ' या ' का प्राकृत तथा अपभ्रंश में ' जा ' रूप में विकास होता है । इसके विकृत रूप में ' जी, जि ' अंश प्राप्त हैं, यथा :– प्राकृत : ' जीअ, जीए, जिस्सा, जित्तो ' आदि ; अपभ्रंश : ' जिए ' । इनका प्रभाव अपभ्रंश से विकसित होने वाले ' जा ' पर पडकर कोंकणी में ' जी ' रूप विकसित है । सं. या >पा. या > प्रा. जा > अप. जा > कों. जी ।

' जी ' स्त्रीलिंग मूल रूप एकवचन में प्रयुक्त है।

जें : इसका विकास संस्कृत ' यद्(नपुं.) ' से है, यथा :– सं. यद् > पा. यं > प्रा., अप. जं > कों. जें। ' जें ' नपुंसकलिंग एकवचन में प्रयुक्त है।

उपर्युक्त कोंकणी ' जी(स्त्री.) ' तथा ' जें(नपुं.) ' ' जो ' सर्वनाम के ओकारान्त के कारण भी माना जा सकता है(देखिए, कोंकणी ' तो, ती, तें ' का अन्तिम परिछेद, पृ. २२३)।

जे, ज्यो, जीं (मूल रूप बहु.) :

जे : कोंकणी ' जे ' का संबंध सरलता से संस्कृत ' ये ' से जोडा जाता है, यथा :– सं. ये > पा. ये > प्रा., अप. जे > कों. जे। ' जे ' पुल्लिग मूल रूप बहुवचन में प्रयुक्त है।

ज्यो : अपभ्रंश में स्त्रीलिंग कर्ता कारक बहुवचन में ' जाउ ' रूप मिलता है। इससे कोंकणी में ' ज्यो ' विकसित हो सकता है। ' ज्यो ' में ' य् ' श्रुति है। अर्थात् ' ज्यो ' का विकास इस प्रकार होगा :– सं. याः > पा. या, यायो > प्रा. जीओ > अप. जाउ > कों. ज्यो (' य् ' श्रुति)। ' ज्यो ' स्त्रीलिंग मूल रूप बहुवचन में प्रयुक्त है।

जीं : सं. यानि > पा. यानि > प्रा., अप. जाइं > कों. जीं। यह नपुंसकलिंग मूल रूप बहुवचन में प्रयुक्त है।

उपर्युक्त ' जे, ज्यो, जीं ' रूप ' जो ' के ओकारान्त के कारण भी माना जा सकता है (विस्तार के लिए देखिए, कोंकणी ' ते, त्यो, तीं ' का अन्तिम परिछेद, पृ. २२४)।

जा, जि (विकृत रूप एक.) :

जा : कोंकणी ' जा ' संस्कृत के ' यस्य (पु., नपुं.) ' से संबंधित है, यथा :– सं. यस्य > पा. यस्स > प्रा. जस्स, जास > अप. जासु > कों. जा। ' जा ' रूप पुल्लिग और नपुंसकलिंग एकवचन में प्रयुक्त है।

जि : अपभ्रंश में स्त्रीलिंग ' यद् ' शब्द के करण कारक में ' जिए ' रूप है। अर्थात् कोंकणी ' जि ' < अप. जिए < सं. यया से संबंधित है। कोंकणी ' जि ' स्त्रीलिंग एकवचन में प्रयुक्त है।

उपर्युक्त ' जा, जि ' के संबंध में एक अन्य संभावना हो सकती है। ओकारान्त ' जो ' का ' ज्या ' होकर ' जा ' होता है; तथा ईकारान्त ' जी ' का ' जि ' होता है (विस्तार के लिए देखिए, कोंकणी ' ता, ति ' के अन्तिम परिच्छेद, पृ. २२४)।

जां (विकृत रूप बहु.) :

कोंकणी ' जां ' पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग बहुवचन में प्रयुक्त है। संस्कृत ' यद् ' शब्द का अपभ्रंश में ' जाहं (< सं. ' येषाम् ' पु., नपुं. बहु.) ' तथा ' जाहिं ' (< सं. ' यासाम् ' स्त्री. बहु.) ' होता है। ' जाहं ' तथा ' जाहिं ' के ' ह ' तथा ' हि ' के लोप से अनुस्वार पूर्ववर्ती होता है और ' जां ' रूप सिद्ध होता है।

उपर्युक्त ' जां ' रूप ' जो ' के ओकारान्त के कारण भी निष्पन्न हो सकता है (विस्तार

लिए देखिए, कोंकणी ' तां ', पृ. २२५)।

ष विशेष रूप :

कोंकणी ' जो ' के शेष विशेष रूपों ' जाणें, जिणें, जाका, जिका (एक.) ' तथा जांणीं, जांकां (बहु.) ' में ' जा, जि, जां ' विकृत रूप हैं और ' णें, का, णीं, कां ' प्रत्यय । ये प्रत्यय सभी सर्वनामों में उपलब्ध नहीं होते हैं। अतः उपर्युक्त रूपों को विकृत रूपों से लग दिखाया है (विस्तार के लिए देखिए, कोंकणी ' ताणें, तिणें ' आदि रूप, पृ. २२६)।

× × ×

यहाँ तक किये गये विवेचन के आधार पर हिंदी ' जो ' और उसके रूपों तथा कोंकणी जो ' और उसके रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

१) हिंदी ' जो ' और उसके रूपों पर लिंग का प्रभाव नहीं है तो कोंकणी ' जो ' और उसके रूपों (' जां ' छोडकर) पर लिंग का प्रभाव स्पष्ट दीखता है।

२) हिंदी ' जो ' तथा कोंकणी ' जो ' के संबंध कारक रूपों के कारक-चिह्नों में परवर्ती संज्ञा के लिंग के कारण परिवर्तन होता है।

३) मूल रूप एकवचन में प्राप्त होने वाला हिंदी ' जो ' संस्कृत ' यः' से तो कोंकणी ' जो, जी, जें ' क्रमशः संस्कृत के ' यः, या, यद् ' से विकसित हैं। हिंदी ' जो ' तथा कोंकणी ' जो ' में साम्य है; परंतु हिंदी ' जो ' तथा कोंकणी ' जी, जें ' में संस्कृत के भिन्न-भिन्न स्रोतों और लिंगों के कारण भेद प्राप्त है।

४) मूल रूप बहुवचन में प्राप्त हिंदी ' जो ' संस्कृत ' यः ' से तो कोंकणी ' जे, ज्यो, जीं ' क्रमशः संस्कृत के ' ये, याः, यानि ' से विकसित (अथवा ओकारान्त के कारण निष्पन्न) माने गये हैं। परिणामतः सभी रूपों में अंतर स्पष्ट है।

५) विकृत रूप एकवचन में प्राप्त हिंदी ' जिस ' संस्कृत स्त्रीलिंग ' यस्याः ' से तो कोंकणी ' जा, जि ' क्रमशः संस्कृत के ' यस्य, यया ' से विकसित हैं। अतः अंतर स्पष्ट ही दीखता है।

६) विकृत रूप बहुवचन में, हिंदी में ' जिन ' प्राप्त है तो कोंकणी में ' जां ' प्राप्त है। ' जिन ' का विकास संस्कृत ' येन ' (वचन-विपर्यय) से है तो ' जां ' का विकास संस्कृत ' येषां ' अथवा ' यासां ' से है।

७) हिंदी ' जिसे, जिन्हें, जिन्होंने ' जैसे विशेष रूप कोंकणी में उपलब्ध नहीं हैं तथा कोंकणी ' जाणें, जिणें, जाका, जिका, जांणीं, जांकां ' जैसे विशेष रूप हिंदी में उपलब्ध नहीं हैं।

८) हिंदी में संबंध कारक के विशेष रूप उपलब्ध नहीं हैं। इसी प्रकार कोंकणी में भी संबंध कारक के विशेष रूप नहीं हैं।

विशेष –

हिंदी ' जो ' तथा कोंकणी ' जो ' के संबंध में जो विशेष बातें उपलब्ध होती हैं वे प्रायः हिंदी 'वह ' तथा कोंकणी ' तो ' में प्राप्त होने वाली बातों के समान हैं। कोंकणी ' तो ' और

' जो ' में केवल एक ही भिन्नता है। कोंकणी ' तो ' सर्वनाम के संबंध कारक एकवचन में ' चो ' कारक-चिह्न विकल्प से प्रयुक्त है, यथा :– 'ताचो, ताजो '; परंतु कोंकणी ' जो ' सर्वनाम के संबंध कारक एकवचन में ' चो ' कारक-चिह्न नित्य प्रयुक्त होता है। अर्थात् कोंकणी ' जो ' कारक-चिह्न ' जो ' सर्वनाम में उपलब्ध नहीं है। यह एक बात छोडकर शेष सभी विशेष बातें हिंदी ' जो ' तथा कोंकणी ' जो ' सर्वनामों में लागू होती हैं (विशेष बातों के लिए देखिए, ' विशेष ' उपशीर्षक, पृ. २२७)।

उपर्युक्त हिंदी ' जो ' तथा कोंकणी ' जो ' के रूपों की जानकारी निम्नलिखित रूपावली से स्पष्ट हो जाएगी –

	हिंदी		**कोंकणी**	
कारक	**एक.**	**बहु.**	**एक.**	**बहु.**
कर्ता –	जो, जिसने	जो, जिनने, जिन्होंने	जो, जाणें	जे,जांणीं
कर्म –	जिसको, जिसे	जिनको, जिन्हें	जाका	जांकां
करण –	जिससे	जिनसे	जाच्यान	जांच्यानीं
	–––	–––	जाचेकडेन	जांचेकडेन
संप्र. –	जिसको, जिसे	जिनको, जिन्हें	जाका	जांकां
अपा. –	जिससे	जिनसे	जाच्या(चे)सून	जांच्या(चे)सून
संबंध –	जिसका	जिनका	जाचो, जागेलो	जांचो, जांगेलो
अधि. –	जिसमें	जिनमें	जाच्यांत	जांच्यांत
	जिसपर	जिनपर	जाचेर	जांचेर
	–––	–––	जागेर	जांगेर
संबंध बोधक अव्ययों के साथ प्रयोग –	जिसके लिए	जिनके लिए	जाचेसाटीं	जांचेसाटीं
	जिसके खातिर	जिनके खातिर	जाचेखातीर	जांचेखातीर
	जिसके साथ	जिनके साथ	जाच्यावांगडा	जांच्यावांगडा

उपर्युक्त कोंकणी रूपावली पुल्लिंग ' जो ' शब्द से संबंधित है।

इसके सिवा कोंकणी में, स्त्रीलिंग में अप्रत्यय कर्ता कारक एकवचन में ' जी ' तथा बहुवचन में ' ज्यो ' का प्रयोग होता है। ' जी ' में प्रत्यय जुडते समय एक. में ' जी ' का ' जि ' होता है, यथा :– ' जिणें, जिका, जिच्यान, जिचो ' आदि। परंतु स्त्रीलिंग बहुवचन में, उपर्युक्त पुल्लिंग ' जांणीं, जांकां, जांच्यानीं, जांचो ' आदि रूपों का ही प्रयोग होता है।

कोंकणी में, नपुंसकलिंग में अप्रत्यय कर्ता कारक एकवचन में ' जें ' तथा बहुवचन में ' जीं ' रूपों का प्रयोग होता है। शेष नपुंसक. रूपों––अर्थात् सप्रत्यय कर्ता कारक एकवचन तथा बहुवचन और अन्य सभी कारकों के एकवचन तथा बहुवचन –– में उपर्युक्त पुल्लिंग रूपों का ही प्रयोग होता है, यथा :– ' जाणें, जाका, जाच्यान (एक.) ' ; ' जांणीं, जांकां, जांच्यानीं (बहु.) ' आदि।

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी के संबंध कारक रूपों में परवर्ती संज्ञा के लिंग वचन तथा कारक-चिह्न युक्त परवर्ती संबद्ध संज्ञा के कारण परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन हिंदी ' मैं ' तथा कोंकणी ' हांव ' शब्दों के संबंध कारक में प्राप्त होने वाले परिवर्तन के समान है (देखिए, हिंदी ' मैं ' तथा कोंकणी ' हांव ' रूपावली के निचले परिच्छेद, पृ. २०७)।

नित्यसंबंधी
(हिंदी ' सो ' तथा कोंकणी ' तो ')

हिंदी में नित्यसंबंधी ' सो ' सर्वनाम उपलब्ध है, परंतु कोंकणी में इस प्रकार का भिन्न सर्वनाम नहीं है। हिंदी ' सो ' तथा उसके रूपान्तरों के स्थान पर कोंकणी ' तो ' तथा उसके रूपान्तर प्राप्त हो सकते हैं, यथा :–

हिंदी	**कोंकणी**
जो जागेगा सो पाएगा।[११७]	जो जागतलो तो पावतलो.
जो सोता है सो खोता है।[११८]	जो न्हिदता तो शेणता (फसता).
हुआ सो हुआ।	जालो तो जालो/जालें तें जालें.
– जिस तिस से कह देते हैं।[११९]	– जाका ताका सांगता.

इस दृष्टि से कोंकणी में ' तो ' को नित्यसंबंधी भी माना जा सकता है।

हिंदी नित्यसंबंधी ' सो ' तथा कोंकणी ' तो ' के मुख्य रूपान्तर निम्नलिखित प्रकार से हैं (कोंकणी ' तो ' के रूपान्तर पहले हिंदी ' वह ' सर्वनाम के साथ दिये हैं, अब हिंदी ' सो ' के साथ तुलना करने के लिए यहाँ फिर से दिये हैं)–

	हिंदी		**कोंकणी**	
	एक.	**बहु.**	**एक.**	**बहु.**
मूल रूप –	सो	सो	तो, ती, तें	ते, त्यो, तीं
विकृत रूप –	तिस	तिन	ता, ति	तां
विशेष रूप –	तिसे	तिन्हें, तिन्होंने	ताणें, तिणें, ताका, तिका	तांणीं, तांकां
संबंध कारक –	–––	–––	ताजो, तिजो	–––

हिंदी ' सो ' और उसके रूपों पर लिंग का प्रभाव नहीं है तो कोंकणी ' तो ' और उसके रूपों पर लिंग का प्रभाव है।

हिंदी :–

सो (मूल रूप एक.) :

डा. भोलानाथ तिवारी सं. ' सः ' से हिंदी ' सो ' का विकास मानते हैं[१२०]।

डा. सुनीतिकुमार चटर्जी ने हिंदी ' सो ' का विकास संस्कृत ' क ' युक्त ' सः(=सकः) ' से माना है[१२१]।

परंतु हिंदी के विद्वानों ने हिंदी ' जो ' का विकास संस्कृत के ' क ' युक्त ' यः(=यकः) से नहीं माना है। इसका अर्थ यह होता है कि संस्कृत शब्दों के अन्त में ' क ' जोडे बिना भ हिंदी के ' ओकारान्त ' शब्द निष्पन्न हो सकते हैं। अर्थात् हिंदी ' ओकारान्त (तथा कोंकणी ओकारान्त ' भी) ' शब्दों की निष्पत्ति के लिए संस्कृत शब्दों के अन्त में ' क ' जोडने क आवश्यकता नहीं है।

अतः हिंदी ' सो ' का विकास संस्कृत ' सः ' से माना जाए; क्यों कि संस्कृत ' सः' से विकसित ' सो ' रूप पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में अविकल रूप में प्राप्त है। यही ' सो ' रूप हिंदी में प्राप्त होने में अडचन नहीं दिखायी देती।

सो (मूल रूप बहु.) :

हिंदी ' सो ' सर्वनाम के मूल रूप एकवचन तथा बहुवचन में प्राप्त होने वाले ' सो ' रूप में समानता है, यथा :– एक. : ' सो ' तथा बहु. : ' सो '। अतः इसकी व्युत्पत्ति एक. ' सो ' के समान संस्कृत ' सः ' से मानना चाहिए।

परवर्ती अपभ्रंश में ' सो ' सर्वनाम के मूल रूप एक. में ' सो ' तथा बहु. में ' ते ' रूप उपलब्ध होते हैं [१२२]। परंतु हिंदी में ' ते ' लुप्त हुआ और वचन-विपर्यय के आधार पर एकवचनीय ' सो ' का बहुवचन में प्रयोग होने लगा।

हिंदी के ' नालंदा विशाल शब्द सागर ' कोश में ' ते ' रूप है जो ' सो ' सर्वनाम का बहुवचन है। इस ' ते ' का अर्थ है ' वे, वे लोग '। इस कोश के आधार पर कहा जा सकता है कि इसका प्रयोग गद्य में हैं। पर आज हिंदी में इसका प्रयोग नहीं है। अर्थात् इसके संबंध में अधिक शोध की आवश्यकता है। यदि हिंदी के गद्य में ' ते ' का प्रयोग आज चालू रहता तो वह कोंकणी ' ते(' तो ' सर्वनाम का बहुवचन) ' से साम्य रखता। यह ' ते ' संस्कृल ' तद् ' सर्वनाम के बहुवचनीय ' ते ' से संबंधित है।

तिस (विकृत रूप एक.) :

डा. वर्मा ने हिंदी ' तिस ' का संबंध प्रा. ' तस्स ' < सं. ' तस्य ' से माना है [१२३]।

डा. उदयनारायण तिवारी सं. तस्य > पा., प्रा. तस्स > हिं. ' तिस ' विकसित मानते हैं, और ' तिस ' में ' इ ' आगम ' जिस ' के सादृश्य पर मानते हैं [१२४]।

परंतु डा. भोलानाथ तिवारी को यह मान्य नहीं है। क्यों कि डा. उदयनारायण तिवारी ' तिस ' के ' त ' में ' इ ' आगम हिंदी काल में मानते हैं; और डा. भोलानाथ तिवारी का मत है कि प्राकृतों में षष्ठी आदि विभक्तियों में ' तिस्सा, तीसे ' आदि एकवचन के दर्जनों रूप ऐसे हैं, जिनमें ' त ' न होकर ' ति ' या ' ती ' है। अतः उन्होंने हिंदी ' तिस ' का विकास विस्तृत रूप में यों रखा :– सं. तस्य > पा. * तिस्स [पालि में, स्त्रीलिंग में ' तिस्साय, तिस्सां, तिस्सं ' आदि रूप हैं; यह ' इ ' पालि ' किस्स ' के सादृश्य पर (देखिए ' किस ')

भाई ज्ञात होती है] > प्रा. * तिस्स (प्रा. में ' तिस्सा, तीसे ' आदि रूप हैं) > अप. * तेस्स, तीसे > परवर्ती अपभ्रंश या अवहट्ट तिस, तिसु > हिंदी ' तिसु, तिस ' [१२५] ।

इस विकास-क्रम में डा. भोलानाथ तिवारी ने पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में कल्पित ' तिस्स ' रूप मानकर हिंदी ' तिस ' को व्युत्पन्न किया है।

वस्तुतः पालि-प्राकृत में कल्पित ' तिस्स ' रूप मानने की आवश्यकता नहीं है । पालि में स्त्रीलिंग ' तिस्साय, तिस्सा, तिस्सं ' तथा प्राकृत में स्त्रीलिंग ' तिस्सा, तीसे ' रूप मिलते हैं। इनसे हिंदी ' तिस ' का विकास मानने में आपत्ति नहीं है ।

पालि-प्राकृत में प्राप्त होने वाले उपर्युक्त रूप यद्यपि स्त्रीलिंग में हैं तथापि आखिर हिंदी के सर्वनामों से लिंग का संबंध छूट गया है । हिंदी सर्वनामों में लिंग का संबंध न रहने से हिंदी ' तिस ' रूप संस्कृत, पालि, प्राकृत के पुल्लिग रूप से सिद्ध करें, स्त्रीलिंग रूप से सिद्ध करें अथवा नपुंसकलिंग रूप से सिद्ध करें कोई अन्तर प्राप्त नहीं हो सकता । अतः हिंदी ' तिस ' रूप सिद्ध करने के लिए पालि में कल्पित ' तिस्स (यहाँ डा. भोलानाथ तिवारी ने लिंग का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है, परंतु मुझे लगता है कि वे पुल्लिग ' किस्स ' के सादृश्य पर * तिस्स ' को भी पुल्लिग मानते होंगे)' रूप की कल्पना अनावश्यक हो जाती है ।

प्रश्न उठता है, संस्कृत स्त्रीलिंग ' तस्याः ' के ' त ' का पालि ' तिस्साय, तिस्सा ' रूपों में ' इ '- युक्त ' त् ' कैसे प्राप्त है ? डा. भोलानाथ तिवारी ने पालि के पुल्लिग ' किस्स ' के सादृश्य पर ' त ' का ' ति ' माना है ।

वस्तुतः संस्कृत ' तस्याः(स्त्री.) ' के ' त ' के ' अ ' के स्थान पर ' इ ' पालि के स्त्रीलिंग ' एतिस्साय, एतिस्सा ' से प्रभावित है; क्यों कि पालि के पुल्लिग ' किस्स ' तथा स्त्रीलिंग ' तिस्साय, तिस्सा ' का संबंध जोडने के बदले पालि के स्त्रीलिंग ' एतिस्साय, एतिस्सा ' से संबंध जोडना उचित होगा ('एतिस्साय, एतिस्सा ' में प्राप्त होने वाली ' इ ' के लिए देखिए, हिंदी ' जिस ', पृ. २३७) । इस प्रकार पालि में ' एतिस्साय, एतिस्सा ' के प्रभाव से तिस्साय, तिस्सा ' रूप प्राप्त हैं । अतः हिंदी ' तिस ' का विकास संस्कृत के पुल्लिग ' तस्य ' से न मानकर (जो हिंदी के सभी विद्वान मानते हैं) संस्कृत के स्त्रीलिंग ' तस्याः ' से मानने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

स्त्रीलिंग रूपों से विकास दिखाते समय केवल अपभ्रंश में ' ति ' तथा ' स '- युक्त ' तिस ' रूप उपलब्ध न होने के कारण कल्पित रूप मानना पडेगा । अतः ' तिस ' का विकास-क्रम इस प्रकार होगा :– सं. तस्याः > पा. तिस्सा, तिस्साय > प्रा. तिस्सा, तीसे > अप. * तिस्स, तीसे > परवर्ती अपभ्रंश या अवहट्ट तिस, तिसु > हिं. तिस (अपभ्रंश में अधिकरण कारक बहुवचन का ' तेसु ' रूप प्राप्त है । शायद इसे भी लेकर रूप-सिद्धि की जा सकती है । इसके लिए वचन-विपर्यय मानना आवश्यक होगा । विस्तार के लिए नीचे ' तिन ' देखिए) ।

तिन (विकृत रूप बहु.) :

डा. वर्मा हिंदी ' तिन ' का संबंध प्राकृत तेणं < सं * तानां (' तेषां ' के स्थान पर) मानते हैं [१२६] ।

डा. उदयनारायण तिवारी सं. तेषां > * तानां > म. भा. आ. (=प्राकृत) ताणां – ता > तिन् – तिन्ह् (तिन्ह् पर करण कारक बहुवचन ' तेभिः > तेहि ' का प्रभाव) विकसि मानते हैं [१२७] ।

डा. भोलानाथ तिवारी सं. तेषाम् > * तेषानाम् [पु. अकारान्त षष्ठी बहुवचन व आनाम् (बालकानाम्) का प्रभाव] > पा. तेसानं > प्रा. * तिआणं (ए > इ) > * तिण > अप. * तिण > तिण, तिण्ह (महाप्राणीकरण) > हिं. ' तिन, तिन्ह ' विकसित मानते हैं [१२८]

उपर्युक्त विकास-क्रम में डा. भोलानाथ तिवारी ने संस्कृत के ' तेषाम् ' तथा पालि वे ' तेसानं ' रूप छोडकर शेष सभी रूप कल्पित माने हैं ।

डा. वर्मा ने हिंदी ' इन ' रूप सिद्ध करते समय प्राकृत ' एदिणा, एइणा ' से संबंध नहीं माना है [१२९] । शायद ' एइणा (' एदिणा ' रूप ' अभिनव प्राकृत व्याकरण ' में उपलब्ध नहीं है, देखिए, पृ. १९७) ' रूप एकवचन में होने के कारण ' इन ' से संबंध मानना उन्हें कठिन जान पडा होगा ।

परंतु डा. भोलानाथ तिवारी ने ' इन ' रूप की सिद्धि में अपभ्रंश एकवचन के ' एण ' रूप को स्वीकार कर वचन-विपर्यय की बात को मान्यता दी है । और यही बात डा. वर्मा हिंदी ' तिन ' रूप की सिद्धि में मानते हैं; क्यों कि उन्होंने दिखाया हुआ प्राकृत ' तेणं ' रूप एकवचन का है [१३०] तो हिंदी ' तिन ' रूप बहुवचन का है । अतः डा वर्मा तथा डा. भोलनाथ तिवारी दोनों को वचन-विपर्यय करने में औचित्य दिखायी देता है ।

और यदि वचन-विपर्यय की बात मान्य है तो कल्पित रूपों की परंपरा निर्माण करने की अपेक्षा एकवचनीय सं. तेन > पा. तेन > प्रा. तेण, तिणा > अप. तेण, तिणि > हिं. ' तिन ' का विकास मानने में कोई अडचन नहीं होनी चाहिए । इस अवस्था में ' तिन ' के ' न ' में महाप्राणीकरण (जैसा डा. भोलानाथ तिवारी ने माना है, देखिए ऊपर, डा. भोलानाथ तिवारी का मत) से ' तिन्ह ' रूप सिद्ध हो सकता है ।

इस प्रकार वचन-विपर्यय से प्राकृत के बहुवचन ' तेसिं ' तथा अपभ्रंश के ' तेसु ' से हिंदी ' तिस ' की व्युत्पत्ति हो सकती है ।

अन्त में, प्राकृत के बहुवचनीय ' जेसिं, जेसु ' तथा ' केसिं, केसु ' से हिंदी के एकवचनीय ' जिस ' तथा ' किस ' और प्राकृत के एकवचनीय ' जिणा, जेण ' तथा ' किणा, केण ' से हिंदी बहुवचनीय ' जिन ' तथा ' किन ' रूपों की व्युत्पत्ति हो सकती है । अतः इसके संबंध में विचार करना आवश्यक है ।

तेसे (विशेष रूप एक.) :

प्राकृत् में 'तद्' शब्द के स्त्रीलिंग में 'तीसे' रूप प्राप्त है। इसका यहाँ उपयोग किया जा सकता है (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी 'जिसे', पृ. २३९)।

तेन्हें (विशेष रूप बहु.) :

(विस्तार के लिए देखिए, हिंदी 'जिन्हें', पृ. २३९)।

तेन्होंने (विशेष रूप बहु.) :

(विस्तार के लिए देखिए, हिंदी 'उन्होंने', पृ. २२३)।

कोंकणी :–

'तो' और उसके रूप :

कोंकणी 'तो' सर्वनाम तथा उसके रूपों का विवरण पूर्व स्पष्ट किया है (देखिए, पृ. २२३ से २२६ तक)।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी 'सो' और उसके रूपों तथा कोंकणी 'तो' और उसके रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

हिंदी में प्राप्त होने वाला नित्यसंबंधी 'सो' जैसा सर्वनाम कोंकणी में उपलब्ध नहीं है। फिर भी नित्यसंबंधी 'सो' और उसके रूपों के अर्थ में कोंकणी में दूरवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम 'तो' और उसके रूपों का प्रयोग होता है (तुलना की अन्य बातों की जानकारी के लिए देखिए, हिंदी 'वह' तथा कोंकणी 'तो', पृ. २२३ से २२६ तक)। वहाँ हिंदी 'वह' और उसके रूपों के बदले 'सो' और उसके रूपों को लेना चाहिए।

विशेष –

हिंदी 'सो' तथा कोंकणी 'तो' सर्वनामों के संबंध में जो विशेष बातें उपलब्ध होती हैं वे हिंदी 'वह' तथा कोंकणी 'तो' सर्वनामों में प्राप्त होने वाली विशेष बातों के समान हैं। अर्थात् हिंदी 'वह' तथा कोंकणी 'तो' सर्वनामों के 'विशेष' उपशीर्षक में स्पष्ट की हुई बातें यहाँ भी लागू होती हैं (देखिए 'विशेष' उपशीर्षक, पृ. २२७)।

उपर्युक्त हिंदी 'सो' तथा कोंकणी 'तो' के रूपों की जानकारी निम्नलिखित रूपावली से स्पष्ट हो जाएगी –

	हिंदी		**कोंकणी**	
कारक	**एक.**	**बहु.**	**एक.**	**बहु.**
कर्ता –	सो, तिसने	सो, तिनने, तिन्होंने	तो, ताणें	ते, तांणीं
कर्म –	तिसको, तिसे	तिनको, तिन्हें	ताका	तांकां
करण –	तिससे	तिनसे	ताज्यान, ताच्यान	तांच्यानीं
	–––	–––	ताजे(चे)कडेन	तांचेकडेन
संप्र. –	तिसको, तिसे	तिनको, तिन्हें	ताका	तांकां

अपा. –	तिससे	तिनसे	ताज्या(च्या)सून	तांच्यासून
	----	----	ताजे(चे)सून	तांचेसून
संबंध –	तिसका	तिनका	ताजो, ताचो	तांचो
	----	----	तागेलो	तांगेलो
अधि. –	तिसमें	तिनमें	ताज्यां(च्यां)त	तांच्यांत
	तिसपर	तिनपर	ताजे(चे)र	तांचेर
	----	----	तागेर	तांगेर
संबंधबोधक अव्ययों के साथ प्रयोग –	तिसके लिए	तिनके लिए	ताजेसाटीं	तांचेसाटीं
	तिसके खातिर	तिनके खातिर	ताजेखातीर	तांचेखातीर
	तिसके साथ	तिनके साथ	ताच्यावांगडा	तांच्यावांगडा

(यहाँ जो कुछ विशेष बातें हैं उनके लिए देखिए, हिंदी ' वह ' तथा कोंकणी ' तो ' सर्वनामों की रूपावली के नीचे दी हुईं बातें, पृ. २२९)।

प्रश्नवाचक – १

(हिंदी ' कौन ' तथा कोंकणी ' कोण ')

हिंदी ' कौन ' तथा कोंकणी ' कोण ' प्रश्नवाचक सर्वनामों के मुख्य रूपान्तर निम्नलिखित प्रकार से हैं –

	हिंदी		**कोंकणी**	
	एक.	**बहु.**	**एक.**	**बहु.**
मूल रूप –	कौन	कौन	कोण	कोण
विकृत रूप –	किस	किन	कोणा	----
विशेष रूप –	किसे	किन्हें, किन्होंने	कोणें	----

हिंदी ' कौन ' सर्वनाम पुल्लिंग और स्त्रीलिंग में समान रूप से व्यवहृत है तथा कोंकणी ' कोण ' भी पुल्लिंग , स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में समान रूप से व्यवहृत है। अर्थात् हिंदी ' कौन ' तथा कोंकणी ' कोण ' पर लिंग का प्रभाव नहीं है।

हिंदी :–

कौन (मूल रूप एक.) :

हिंदी ' कौन ' के विकास के संबंध में विद्वानों ने भिन्न-भिन्न विचार प्रस्तुत किये हैं। श्री कामताप्रसाद गुरु तथा डा. श्यामसुंदरदास ' कौन ' का विकास संस्कृत ' कः ' से मानते हैं [१३१]।

डा. हार्नले इसका संबंध अपभ्रंश ' केवडु ' से जोडते हैं [१३२]।

डा. चटर्जी, डा. वर्मा, डा. भोलानाथ तिवारी आदि विद्वान इसका संबंध संस्कृत ' कः पुनः ' से जोडते हैं [१३३] । डा. भोलानाथ तिवारी ने ' कौन ' रूप का विकास विस्तृत रूप में इस प्रकार दिखाया है :– सं. कः पुनः > पा. को पन > प्रा. * कोवण > अप. कवण > परवर्ती अपभ्रंश कवँण, कउण, कमण > हिं. कउन, कौन, कवन ।

इसके सिवा ' कौन ' का विकास संस्कृत ' को नाम ' से विकसित मानने के संबंध में विचार करना आवश्यक है । ' को नाम ' का प्राकृत में ' को णाम ' रूप मिलता है [१३४] । ' को णाम ' के ' को ' का ' कव ' होकर अपभ्रंश में ' कवण ' रूप सिद्ध होने की संभावना है ।

यहाँ एक और संभावना हो सकती है । संस्कृत में ' को नु ' शब्द हैं । ' नु ' संस्कृत में ' वितर्क ' अर्थ में प्रयुक्त है । यह वितर्क हिंदी ' कौन ' में स्पष्ट दीखता है । अतः संस्कृत ' को नु ' से भी हिंदी ' कौन ' का विकास मानने के संबंध में विचार करना जरूरी है ।

कौन (मूल रूप बहु.) :

ऊपर हिंदी ' कौन ' का विकास स्पष्ट किया है । इसका प्रयोग मूल रूप बहुवचन में भी होता है ।

किस (विकृत रूप एक.) :

डा. वर्मा आदि प्रायः सभी विद्वान हिंदी ' किस ' का संबंध संस्कृत ' कस्य ' से जोडते हैं [१३५] ।

परंतु डा. भोलानाथ तिवारी हिंदी ' किस ' का संबंध संस्कृत ' कस्य ' से नहीं मानते । उन्होंने संस्कृत, अवेस्ता, प्राचीन फारसी, ग्रीक, लैटिन आदि प्राचीन भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करके मूल भारोपीय भाषा में प्रश्नवाचक सर्वनाम के मूल आधार के रूप में * को, * कि, * कु ' तीन रूप माने हैं । इनमें से उन्होंने * कि'से * किस्य ' रूप संस्कृत में स्वीकार कर के, उससे हिंदी ' किस ' का संबंध जोडा है । इस कल्पित ' किस्य ' रूप की पुष्टि के लिए उन्होंने पालि के पुल्लिंग ' किम् ' के ' किम्हि, किस्मा ' रूपों का आधार लिया है । इस प्रसंग में उन्होंने एक और बात स्पष्ट की है कि हिंदी ' इस, तिस, जिस ' आदि रूपों के विकास में ' अ ' का ' इ ' भी इस * किस्स > किस्स ' का ही प्रभाव है [१३६] ।

वस्तुतः मूल भारोपीय भाषा में कल्पित ' कि ' शब्द आधारभूत मानकर कल्पित ' किस्स ' रूप व्युत्पन्न करके पालि के ' किम्हि, किस्मा ' का आधार देने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए । यदि उत्तरवर्ती भाषा में दो रूपों का विकास हुआ है तो उनका विकास दिखाने के लिए पूर्ववर्ती भाषा में कल्पित भिन्न रूप स्वीकारने की आवश्यकता नहीं । और इस प्रकार कल्पित रूप स्वीकारते रहेंगे तो संस्कृत से विकसित पालि, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं में प्राप्त होने वाले दो-दो, तीन-तीन रूपों का विकास दिखाने के लिए पूर्ववर्ती

भाषाओं में उतने ही कल्पित रूप मानने पडेंगे; साथ-साथ उतने ही मूल शब्दों की कल्पना करनी पडेगी। उदाहरण के लिए अपभ्रंश में ' जो ' के विविध रूप प्राप्त हैं , जैसे :– ' जो, जे, जं, द्रुं, ध्रुं '। इनमें ' जो, जे, जं ' की उपपत्ति लगायी जा सकती है, परंतु ' द्रुं, ध्रुं ' के लिए कल्पित रूप मानने की व्यवस्था करनी पडेगी। नपुंसकलिंग ' तद् ' का प्राकृत में ' तं, णं ' तथा अपभ्रंश में ' तं, त्रं ' होता है। यहाँ ' णं, त्रं ' के लिए कल्पित रूप खोजना पडेगा। पालि में ' दुवे, द्वे ' दो रूप हैं। ' दुवे ' में ' द्वौ, द्वे ' के ' व ' का लोप न होने से ' उ ' की उपपत्ति के लिए वैदिक-काल में किसी उकारयुक्त रूप को मानना पडेगा। क्यों कि वैदिक संस्कृत में ' द्व ' जैसा रूप नहीं मिलता [१३७]। अर्थात् भारोपीय भाषाओं में से किसी एक भाषा में प्राप्त होने वाले उकारयुक्त रूप का आधार लेकर वैदिक काल में कल्पित उकारयुक्त रूप स्वीकार करके पालि के ' दुवे ' रूप को सिद्ध किया जा सकता है। और यदि ऐसा कोई सिद्ध करना चाहता है तो उसे ग्रीक में ' दुओ ' तथा लैटिन में ' दुओ ' रूप मिल सकता है [१३८]। क्या, इस प्रकार भारोपीय भाषाओं में प्राप्त रूपों के आधार पर वैदिक संस्कृत में कल्पित रूपों की सृष्टि करके पालि आदि उत्तरवर्ती भाषाओं के रूपों की सिद्धि करते ही रहेंगे ? क्या, इसी प्रकार पालि में प्राप्त ' केहि, केसं ' आदि रूप–सिद्धि के लिए मूल भारोपीय भाषाओं में ' एकार ' युक्त कल्पित रूप नहीं मानना पडेगा ?

इसी प्रकार संस्कृत ' सः, सा ' के लिए एक मूलाधार तथा नपुंसक. ' तद् ' के लिए दूसरा मूलाधार मानना पडेगा।

आज भी हम देखते हैं कि कोंकणी में ' इकरा (= ग्यारह)' और ' अकरा (= ग्यारह) ' शब्दों का प्रचलन है। ये दोनों शब्द मूलतः संस्कृत ' एकादश ' > अपभ्रंश ' इगारह ' से विकसित हैं। क्या कोंकणी के इन दोनों रूपों के स्रोतों को अलग–अलग ढूँढते रहेंगे ? या अपभ्रंश में किसी कल्पित रूप की सृष्टि करेंगे ? अथवा अपभ्रंश ' इगारह ' से इन दोनों रूपों को विकसित मानेंगे ?

अन्त में प्रश्न शेष रह जाता है कि संस्कृत ' कस्य ' का पालि में ' इ ' -युक्त ' किस्स ' रूप किस प्रकार विकसित है।

इसका समाधान इस प्रकार होगा। स्वर–परिवर्तन की प्रक्रिया से संस्कृत ' कस्य ' का पालि में ' किस्स ' होना चाहिए। भाषा में स्वर-परिवर्तन की प्रक्रिया बहुत आसानी से भी होती है। इसके लिए मैंने राजापूर जाते वक्त घटी घटना का उल्लेख किया है (देखिए, हिंदी ' जिस ', पृ. २३७)। यह उदाहरण देकर सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भाषा में परिवर्तन कितना सहज है, सरल है। फिर भी कल्पना करने की आवश्यकता ही हो तो निम्नलिखित प्रकार से भी की जा सकती है।

संस्कृत ' किम् ' शब्द पालि में ' किं ' रूप में विकसित होता है। ' किं ' का पुल्लिग में ' क (पालि महाव्या. पृ. २२, टिप्पणी क्र. ७) ' तथा नपुंसकलिंग में ' किं ' होता है।

नपुंसकलिंग में कर्ता तथा कर्म कारक के एकवचन में ' किं ' तथा ' कं ' दो रूप प्राप्त हैं [१३९]। प्रश्न यह है, नपुंसकलिंग में ये दो-दो रूप कैसे प्राप्त हुए हैं? इसका समाधान इस प्रकार होगा। नपुंसकलिंग में करणादि कारकों में पुल्लिग रूपों का ही प्रयोग होता है। इनका प्रभाव कर्ता तथा कर्म कारक में प्रयुक्त होने वाले नपुंसकलिंगीय ' किं ' पर पडकर कर्ता तथा कर्म कारक एकवचन में ' अ ' - युक्त ' क ' रूप विकसित हुआ होगा। और इसी आधार पर नपुंसकलिंगीय कर्ता तथा कर्म कारक ' किं ' का प्रभाव पुल्लिग ' अ' –युक्त ' क ' पर पडकर पुल्लिग में संप्रदान आदि कारकों में ' किं ' विकसित हुआ होगा।

अर्थात् नपुंसकलिंग ' किं ' में दिखायी देने वाले अनुनासिक का ' क ' पर पडे प्रभाव से नपुंसकलिंग में सानुनासिक ' कं ' विकसित मानने तथा पुल्लिग में निरनुनासिक ' क ' के प्रभाव से नपुंसकलिंग ' किं ' के अनुनासिक का लोप होकर निरनुनासिक ' कि ' पालि में विकसित मानने में मुझे कोई अडचन नहीं दिखायी देती। इस प्रकार सानुनासिक ' किं ' और ' कं ' नपुंसकलिंग में कर्ता तथा कर्म कारक में; तो निरनुनासिक ' क ' और ' कि ' पुल्लिग में संप्रदान आदि कारकों में प्रयुक्त हैं। पालि में, करण कारक में अभी तक ' कि ' युक्त उदाहरण नहीं मिला है।

अतः हिंदी ' किस ' का विकास संस्कृत ' कस्य ' से माना जाए। उपर्युक्त प्रकार से पालि में ' किस्स ' रूप प्राप्त है। परंतु प्राकृत में ' किस्स ' रूप उपलब्ध नहीं है [१४०]। प्राकृत में अपादान कारक(पंचमी) में ' कीस ' रूप है। अर्थात् हिंदी ' किस ' का विकास इस प्रकार होगा :– सं. कस्य > पा. किस्स > प्रा. कीस (अपादान कारक) अप. *किस > हिं. किस।

यहाँ एक अन्य संभावना हो सकती है। संस्कृत स्त्रीलिंग ' कस्याः ' से हिंदी ' किस ' का विकास माना जा सकता है, यथा :– सं. कस्याः > पा. कस्सा > प्रा. किस्सा, कीसे > अप. * किस, कीस, कीसे > हिं. किस, किसे।

इस प्रकार में संस्कृत ' कस्याः ' का पालि में ' कस्सा ' और प्राकृत में ' किस्सा, कीसे ' होता है। प्राकृत ' किस्सा, कीसे ' में ' इ ' पालि के स्त्रीलिंग ' एतिस्सा, एतिस्साय ', ' तिस्सा, तिस्साय ' से प्रभावित है (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी ' जिस, तिस ', पृ. २३७; २४४)। पालि ' एतिस्साय, तिस्साय ' में प्राप्त ' य ' ही प्रायः ' ए ' रूप में विकसित होकर प्राकृत ' तीसे, जीसे, कीसे ' आदि रूपों में प्राप्त होता होगा। इससे हिंदी ' तिसे, जिसे, किसे ' रूप सिद्ध होने में सरलता दीखती है (देखिए, हिंदी ' जिसे ', पृ. २३३)।

इस प्रकार हिंदी ' किस ' का विकास संस्कृत पुल्लिग ' कस्य ' अथवा स्त्रीलिंग ' कस्याः ' से मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

किन (विकृत रूप बहु.) :

डा. वर्मा के अनुसार हिंदी ' किन ' की व्युत्पत्ति प्रा. केणां < सं. * कानां (= केषां) से है [१४१] ।

डा. उदयनारायण तिवारी के अनुसार हिंदी ' किन ' की व्युत्पत्ति 'केषाम्' * काणं ' से हुई है । यह ' काणं ' बाद में ' काण ' में परिवर्तित हो गया, किंतु पालि किस्स < कस्य ' तथा ' किण (मेरे मत से शायद एकवचनीय)' के प्रभाव से यह ' काण ' रूप ' किण ' हो गया और इसी से हिंदी ' किन ' रूप सिद्ध हुआ है [१४२] ।

डा. भोलानाथ तिवारी के अनुसार इसकी दो और संभावनाएँ हैं, यथाः– (१) सं. * किषानां > पा. * किसानं > प्रा. * किणं > अप. * किण > हिं. किन । (२) सं. * केषानं > पा. केसानं > प्रा. * केणं, * केण > अप. * किण > हिं. किन [१४३] ।

डा. वर्मा का प्राकृत ' केणां ' रूप शायद कल्पित होगा, क्यों कि मैंने आधारभूत माने ग्रंथों में ' केणां ' रूप नहीं है ।

डा. भोलानाथ तिवारी ने दिखाये क्रमांक (१) विकास-क्रम में संस्कृत से लेकर अपभ्रंश तक की संपूर्ण परंपरा कल्पित रूपों से बनी है । क्रमांक (२) विकास-क्रम में केवल पालि का ही रूप साहित्य में उपलब्ध है; शेष सभी रूप संस्कृत से लेकर अपभ्रंश तक कल्पित हैं ।

वस्तुतः हिंदी ' किन ' का विकास संस्कृत ' केषाम् ' से है, यथा :– सं. केषाम् > पा. केसानं > प्रा. काणं > अप. * किण > किण > हिं. किन ।

एक अन्य संभावना भी हो सकती है । वचन-विपर्यय के आधार पर हिंदी ' किन ' का विकास अपभ्रंश एकवचनीय ' केण ' < प्रा. केण, किणा < पा., सं. ' केन ' से माना जा सकता है (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी ' तिन ', पृ.२४६) ।

किसे (विशेष रूप एक.) :

हिंदी ' किस ' में ' ए ' प्रत्यय जुडकर ' किसे ' होता है ; अथवा प्राकृत ' कीसे ' से हिंदी ' किसे ' विकसित माना जा सकता है (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी ' जिसे ', पृ. २३९) ।

किन्हें (विशेष रूप बहु.) :

(देखिए, हिंदी ' उन्हें ', पृ. २२२) ।

किन्होंने (विशेष रूप बहु.) :

(देखिए, हिंदी ' उन्होंने ' , पृ. २२३) ।

कोंकणी :–

कोण (मूल रूप एक.) :

डा. कत्रे तथा डा. तुळपुळे ' कोण ' का विकास अपभ्रंश ' कवण ' से मानते हैं [१४४] ।

प्रा. कृ. पा. कुलकर्णी सं. ' कश्चन ' से ' कोण ' का संबंध जोडते हैं [१४५] ।

हिंदी ' कौन ' की तरह कोंकणी ' कोण ' का विकास संस्कृत ' को नाम ' अथवा ' को नु ' से मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए (विस्तार के लिए देखिए, हिंदी ' कौन ', पृ. २४८) ।

कोण (मूल रूप बहु.) :

(देखिए, उपर्युक्त ' कोण ' रूप) ।

कोणा (विकृत रूप एक.) :

कोंकणी ' कोणा ' एकवचनीय विकृत रूप है । ' कोणा ' रूप अकारान्त ' राम ' आदि संज्ञाओं की तरह बनता है । कोंकणी में अकारान्त ' राम ' शब्द के विकृत रूप एकवचन में ' रामा ' होता है । इसी प्रकार ' कोण ' के विकृत रूप एकवचन में ' कोणा ' होता है ।

कोणें (विशेष रूप एक.) :

कोंकणी ' कोण ' में अपभ्रंश करण कारक एकवचन में प्राप्त ' एं ' प्रत्यय जुडकर ' कोणें ' रूप सिद्ध होता है (विस्तार के लिए देखिए, कोंकणी ' हांवें ', पृ. २०३) । इसके सिवा अपभ्रंश में, करण कारक में ' कवणें ' रूप उपलब्ध है । इस ' कवणें ' से भी कोंकणी में ' कोणें ' होता होगा । यही ' एं ' प्रत्यय कोंकणी ' हांवें, तुंवें ' में भी प्राप्त हो सकता है ।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी ' कौन ' और उसके रूपों तथा कोंकणी ' कोण ' और उसके रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी ' कौन ' तथा कोंकणी ' कोण ' पर लिंग का प्रभाव नहीं है ।

(२) हिंदी ' कौन ' तथा कोंकणी ' कोण ' के संबंध कारक रूपों में जो कारक–चिह्न हैं उनमें परवर्ती संज्ञा के लिंग के कारण परिवर्तन होता है ।

(३) हिंदी ' कौन ' तथा कोंकणी ' कोण ' का विकास-क्रम एक होते हुए भी दोनों रूपों में थोडा-सा अंतर है । इनका विकास ' कःपुनः ' अथवा ' को नाम, को नु ' से माना है ।

(४) मूल रूप एकवचन और बहुवचन में, हिंदी तथा कोंकणी में एक-एक रूप है, यथा :– हिं. ' कौन ' तथा कों. ' कोण ' । इनकी व्युत्पत्ति भी उसी प्रकार है ।

(५) विकृत रूप एकवचन में प्राप्त हिंदी ' किस ' संस्कृत ' कस्य ' से तो कोंकणी ' कोणा ' अकारान्त संज्ञाओं के विकृत रूप की तरह निष्पन्न होता है ।

(६) विकृत रूप बहुवचन में, हिंदी में प्राप्त ' किन ' रूप संस्कृत ' केषां ' से अथवा वचन -विपर्यय के आधार पर विकसित मानां है तो कोंकणी में प्रायः एकवचन ' कोणा ' का ही प्रयोग होता है ।

(७) हिंदी ' किसे, किन्हें, किन्होंने ' जैसे विशेष रूप कोंकणी में उपलब्ध नहीं हैं तो कोंकणी ' कोणें ' जैसा रूप हिंदी में नहीं है ।

(८) हिंदी ' कौन ' तथा कोंकणी ' कोण ' के संबंध कारक में विशेष रूप उपलब्ध नहीं है ।

विशेष –

यहाँ हिंदी ' कौन ' तथा कोंकणी ' कोण ' सर्वनामों के रूपों के संबंध में कुछ विशेष बातें स्पष्ट करना उचित होगा जो रूपावली के लिए उपयुक्त हैं ।

(१) कर्ता कारक एकवचन में, हिंदी में ' कौन ' और ' किसने ' दो रूप प्राप्त हैं तथा कोंकणी में भी ' कोण ' और ' कोणें ' दो रूप प्राप्त हैं ।

(२) कर्ता कारक बहुवचन में, हिंदी में ' कौन, किनने, किन्होंने ' तीन रूप हैं तो कोंकणी में ' कोण ' एक ही रूप है ।

(३) हिंदी में विकृत रूप एकवचन में एक ही ' किस ' रूप है तो कोंकणी में ' कोणा ' एक ही विकृत रूप है ।

(४) हिंदी में विकृत रूप बहुवचन में ' किन ' और ' किन्ह ' दो रूप हैं तो कोंकणी में विकृत रूप बहुवचन में प्रायः कोई रूप नहीं है । अर्थात् एकवचनीय ' कोणा ' का ही प्रयोग होता है ।

(५) हिंदी में कर्म–संप्रदान के एकवचन में ' किसको ' और ' किसे ' तथा बहुवचन में ' किनको ' और ' किन्हें ' दो–दो रूप प्राप्त हैं तो कोंकणी में कर्म–संप्रदान के एकवचन में ' कोणाक ' एक ही रूप प्राप्त है ।

(६) हिंदी में संबंध कारक एकवचन में ' किसका ' तथा बहुवचन में ' किनका ' एक-एक रूप प्राप्त है । ये विकृत रूप ' किस ' तथा ' किन ' से बने हैं । कोंकणी में संबंध कारक एकवचन में तीन रूप प्राप्त हैं (बहुवचन के रूप प्रायः नहीं मिलते), जैसे :– ' कोणालो, कोणाचो, कोणागेलो ' । कोंकणी के इन रूपों में प्रकृत्यन्तर नहीं है, बल्कि प्रत्ययान्तर है । इनमें प्रकृति ' कोणा ' है और प्रत्यय ' लो, चो, गेलो ' हैं । हिंदी तथा कोंकणी के इन शब्दों के विकृत रूपों में लिंग-भेद नहीं है फिर भी संबंध कारक रूपों पर परवर्ती संज्ञा के लिंग तथा वचन का प्रभाव स्पष्ट ही लक्षित होता है ।

(७) शेष सप्रत्यय कारक के एकवचन में, हिंदी में 'किस' तथा कोंकणी में 'कोणा' का प्रयोग होता है और बहुवचन में, हिंदी में 'किन, किन्ह' का प्रयोग होता है।

(८) हिंदी तथा कोंकणी में संबंधबोधक अव्ययों के साथ संबंध कारक रूपों का प्रयोग होता; परंतु ऐसी स्थिति में संबंध कारक रूपों में परिवर्तन होता है, यथा :– 'किसका : किसके साथ'; 'किनका : किनके साथ' आदि। इसी प्रकार कोंकणी में भी संबंधबोधक अव्ययों के साथ संबंध कारक रूपों में परिवर्तन होता है, यथा :– 'कोणाचो : कोणाच्या वांगडा' आदि। फिर भी कोंकणी में कारक-चिह्न का लोप करके व्यवहार करने की प्रवृत्ति अधिक है, जैसे :– 'कोणाचो : कोणावांगडा' आदि।

उपर्युक्त सभी विवरण निम्नलिखित रूपावली से स्पष्ट हो जाएगा।

	हिंदी		कोंकणी	
कारक –	**एक.**	**बहु.**	**एक.**	**बहु.**
कर्ता –	कौन, किसने	कौन, किनने, किन्होंने	कोण, कोणें	कोण
कर्म –	किसको, किसे	किनको, किन्हें	कोणाक	
करण –	किससे	किनसे	कोणाच्यान	
संप्र. –	किसको, किसे	किनको, किन्हें	कोणाक	
अपा. –	किससे	किनसे	कोणासून	
संबंध –	किसका	किनका	कोणालो, कोणाचो	
	–––	–––	कोणागेलो	
अधि. –	किसमें	किनमें	कोणां(णाच्यां)त	
	किसपर	किनपर	कोणाचेर	
	–––	–––	कोणागेर	
संबंध बोधक अव्ययों के साथ प्रयोग –	किसके लिए	किनके लिए	कोणा(चे)साटीं	
	किसके खातिर	किनके खातिर	कोणा(चे)खातीर	
	किसके साथ	किनके साथ	कोणा(च्या)वांगडा	

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी के संबंध कारक रूपों में परवर्ती संज्ञा के लिंग, वचन तथा कारक-चिह्न युक्त परवर्ती संबद्ध संज्ञा के कारण परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन हिंदी 'मैं' तथा कोंकणी 'हांव' शब्दों में प्राप्त होनेवाले परिवर्तन के समान है (देखिए, हिंदी 'मैं' तथा कोंकणी 'हांव' सर्वनाम की रूपावली के निचले परिच्छेद, पृ. २०७)।

प्रश्नवाचक – २

(हिंदी 'क्या' तथा कोंकणी 'कितें/किदें')

हिंदी 'क्या' तथा कोंकणी 'कितें/किदें' प्रश्नवाचक सर्वनामों के मुख्य रूपान्तर

निम्नलिखित प्रकार से हैं –

	हिंदी		कोंकणी	
	एक.	बहु.	एक.	बहु.
मूल रूप –	क्या	––	कितें/किदें	––
विकृत रूप –	क्या, काहे	––	कित्या	––

हिंदी ' क्या ' को डा. वर्मा नपुंसकलिंग मानते हैं [१४६]। परंतु यह चिंत्य है। हिंदी ' क्या ' प्रायः पुलिंग है कोंकणी ' कितें(दें) ' स्पष्ट ही नपुंसकलिंग है।

हिंदी :–

क्या (मूल तथा विकृत रूप एक.) :

डा. श्यामसुंदरदास हिंदी ' क्या ' का संबंध सं. किम् > अप. ' काइँ ' और ' काहि ' से मानते हैं [१४७]।

काहे (विकृत रूप एक.) :

हिंदी ' काहे ' का विकास भी अपभ्रंश ' काहि ' से माना जा सकता है।

कोंकणी :–

कितें/किदें (मूल रूप एक.) :

कोंकणी ' कितें ' का विकास संस्कृत ' किं तत् ' से माना जा सकता है, यथाः– सं. किं तत् > पा. किं तं > प्रा. किं तं > अप. किं तं > कों. कितें(दें)। इसका विकास एक अन्य प्रकार से संभव है, यथाः– सं. किमिति > पा., प्रा. किंति > अप. * किंति > कों. कितें (अनुनासिक का विपर्यय)। ' कितें ' का कभी–कभी ' किदें ' होता है।

कित्या (विकृत रूप एक.) :

कोंकणी ' कितें ' एंकारान्त नपुंसकलिंग है। एंकारान्त नपुंसकलिंग शब्दों के विकृत रूप याकारान्त बनते हैं, यथा :– ' केळें : केळ्या '। इसी प्रकार ' कितें (किदें) ' के विकृत रूप एकवचन में ' कित्या (किद्या) ' होता है।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी ' क्या ' और उसके रूपों तथा कोंकणी ' कितें ' और उसके रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

१) हिंदी ' क्या ' को नपुंसकलिंग माना है जो चिन्त्य है परंतु कोंकणी ' कितें(दें) ' स्पष्ट ही नपुंसकलिंग है।

२) मूल रूप एकवचन में, हिंदी में ' क्या ' तथा कोंकणी में कितें(दें) रूप प्राप्त हैं।

३) विकृत रूप एकवचन में हिंदी में ' क्या ' और ' काहे ' दो रूप हैं तो कोंकणी में ' कित्या(द्या) ' एक ही रूप है । विकृत रूप एकवचन में प्राप्त होने वाला ' क्या ' कर्म कारक में और ' काहे ' करण कारक से अधिकरण कारक तक प्राप्त होता है ।

उपर्युक्त बातें निम्नलिखित रूपावली से स्पष्ट होती हैं –

	हिंदी	**कोंकणी**
कारक –	**एक.**	**एक.**
कर्ता –	क्या	कितें(किदें)
कर्म –	क्या	कित्याक
करण –	काहेसे	कित्यान
संप्र. –	काहेको	कित्याक
अपा. –	काहेसे	कित्यासून
संबंध –	काहेका	कित्याचो
अधि. –	काहेमें, काहेपर	कित्यांत, कित्याचेर

(संबंध कारक में प्राप्त होने वाले विशेष के लिए देखिए हिंदी ' मैं ' तथा कोंकणी ' हांव ' सर्वनाम की रूपावली के नीचे दी हुई बातें, पृ. २०७) ।

अनिश्चयवाचक – १
(हिंदी ' कोई ' तथा कोंकणी –––)

हिंदी अनिश्चयवाचक सर्वनाम ' कोई ' के अर्थ में कोंकणी में स्वतंत्र सर्वनाम नहीं है । हिंदी ' कोई आता है । ' वाक्य कोंकणी में 'कोण येता. ' अथवा ' कोण तरी येता. ' शब्दों में अनूदित होगा । विशेषतः हिंदी ' कोई ' का अर्थ कोंकणी में ' कोण तरी ' शब्दों से जितना स्पष्ट होता है उतना ' कोण ' शब्द से स्पष्ट नहीं हो पाता । अतः यहाँ केवल हिंदी ' कोई ' का संक्षेप में विवरण प्रस्तुत किया है ।

हिंदी अनिश्चयवाचक सर्वनाम ' कोई ' के मुख्य रूपान्तर निम्नलिखित प्रकार से हैं –

	हिंदी		**कोंकणी**	
	एक.	**बहु.**	**एक.**	**बहु.**
मूल रूप –	कोई	कोई	––	––
विकृत रूप –	किसी	किन्हीं	––	––

कोई (मूल रूप एक. तथा बहु.) :

हिंदी ' कोई ' का विकास संस्कृत ' कोऽपि ' से माना गया है, यथाः– सं. कोऽपि > पा. कोपि > प्रा. कोवि > अप. कोइ > हिं. कोई ।

किसी (विकृत रूप एक.) :

हिंदी ' किसी ' का विकास संस्कृत ' कस्यापि ' से है, यथाः– सं. कस्यापि > पा. कस्सापि > प्रा. किस्सावि > अप. * किस्सइ > हिं. किसी । इसके विकास के संबंध में डा. भोलानाथ तिवारी ने एक और संभावना व्यक्त की है, यथा :– हिंदी ' किस + ही = किसी ' ।

किन्हीं (विकृत रूप बहु.) :

हिंदी ' किन्हीं ' का विकास संस्कृत ' केषामपि ' से माना जाए । अथवा उपर्युक्त डा. भोलानाथ तिवारी के मत के अनुसार ' किन + ही ' से ' किन्हीं (अनुनासिक ' न ' के प्रभाव के कारण है)' का विकास माना जा सकता है ।

× × ×

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित बात स्पष्ट होती है –

हिंदी ' कोई ' के अर्थ में कोंकणी में स्वतंत्र सर्वनाम नहीं है । हिंदी कोई अर्थ में कोंकणी में ' कोण ' अथवा ' कोण तरी ' शब्द प्रयुक्त है ।

हिंदी ' कोई ' की रूपावली नीचे दी है –

	हिंदी		**कोंकणी**	
कारक –	**एक.**	**बहु.**	**एक.**	**बहु.**
कर्ता –	कोई, किसीने	कोई, किन्होंने	----	----
कर्म –	किसीको	किन्हींको	----	----
करण –	किसीसे	किन्हींसे	----	----
संप्र. –	किसीको	किन्हींको	----	----
अपा. –	किसीसे	किन्हींसे	----	----
संबंध –	किसीका	किन्हींका	----	----
अधि. –	किसीमें, किसीपर	किन्हींमें, किन्हींपर	--	--

अनिश्चयवाचक – २

(हिंदी ' कुछ ' तथा कोंकणी ' कांय ')

डा. जयकृष्ण विद्यालंकार हिंदी ' कुछ ' को सर्वनाम नहीं मानते [१४८] । परंतु डा. भोलानाथ तिवारी, डा. वर्मा आदि विद्वान ' कुछ ' को सर्वनाम मानते हैं ।

डा. कत्रे, श्री गुंजीकर, श्री वालावलीकर आदि ने कोंकणी ' कांय ' का निर्देश सर्वनामों में नहीं किया है । फिर भी इसका अर्थ तथा रचना हिंदी ' कुछ ' के समान है

देखिए, पृ. १९२) । अतः यहाँ कोंकणी ' कांय ' शब्द की हिंदी ' कुछ ' शब्द के साथ तुलना की है ।

हिंदी ' कुछ ' तथा कोंकणी ' कांय ' के रूपान्तर निम्नलिखित प्रकार से हैं –

	हिंदी		**कोंकणी**	
	एक.	**बहु.**	**एक.**	**बहु.**
मूल रूप –	कुछ	कुछ	कांय	कांय
विकृत रूप –	कुछ	कुछ	कांय	कांय

हिंदी :–

हिंदी ' कुछ ' का विकास संस्कृत ' किंचित् ' से माना है[१४९] ।

कोंकणी :–

कोंकणी ' कांय ' का विकास संस्कृत ' कानि ' > अप. ' काइँ ' से है ।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी ' कुछ ' तथा कोंकणी ' कांय ' की तुलना से निम्नलिखित बात स्पष्ट होती है –

हिंदी ' कुछ ' संस्कृत ' किंचित् ' तथा कोंकणी ' कांय ' संस्कृत ' कानि ' से विकसित हैं । परिणामतः दोनों में अन्तर है ।

विशेष –

१) कर्ता कारक में हिंदी ' कुछ ' तथा कोंकणी ' कांय ' दोनों वचनों में प्रयुक्त है, यथा :-
हिंदी : ' बिस्तर पर कुछ नहीं है । (एक.) ' , ' ऐसा कुछ बोलते हैं । (बहु.)'; कोंकणी : ' हांतुळ(र)णाचेर कांय ना. (एक.) ' , ' अशें कांय उलैतात. (बहु.) ' ।

२) कर्म कारक में भी दोनों वचनों में हिंदी ' कुछ ' तथा कोंकणी ' कांय ' का प्रयोग होता है, यथाः– हिंदी : ' कुछ खरीद लो । (एक.) ', ' कुछको पूछो । (बहु.)', ' उसने कुछ नहीं किया । (एक.)'; कोंकणी : ' कांय (– तरी) विकत घे. (एक.) ' , ' कांयींक (= कांय जाणांक) विचारात. (बहु.) ' , ' ताणें कांय केलें ना. (एक.) ' ।

३) हिंदी ' कुछ ' में ' ने ' आदि कारक–चिह्न लगाये जाते हैं, परंतु कोंकणी ' कांय ' में ' नीं ' आदि कारक-चिह्न लगाते समय ' कांय ' के अनन्तर ' जाण (= लोग) ' शब्द का प्रयोग होता है, यथा :– हिंदीः ' कुछ ने चंदा दिया । '; कोंकणी : ' कांय जाणांनीं वर्गणी दिली. ' आदि । ऐसी स्थिति में कोंकणी ' कांय ' विशेषण माना जाएगा । फिर भी

' कांय ' को ' नीं, चो ' प्रत्यय लगाये रूप सुनायी देते हैं, जैसे :– ' कांयींनीं पैशे दिले नात. (=कुछने पैसे नहीं दिये।) '; ' कांयींचो आग्रह आसा. (कुछका आग्रह है।) ' आदि ।

आदरवाचक

(हिंदी ' आप ' तथा कोंकणी–––)

हिंदी आदरवाचक ' आप ' जैसा सर्वनाम कोंकणी में नहीं है । ' आप ' के बदले कोंकणी में ' तूं ' सर्वनाम के बहुवचन ' तुमी ' का प्रयोग होता है । अतः यहाँ कोंकणी विभाग रिक्त रखा है ।

हिंदी आदरवाचक सर्वनाम ' आप ' के निम्नलिखित रूपान्तर हैं –

	हिंदी		कोंकणी	
	एक.	बहु.	एक.	बहु.
मूल रूप –	–––	आप	––	––
विकृत रूप –	––	आप	––	––

हिंदी ' आप ' का विकास संस्कृत ' आत्मन् ' है, जैसे :–सं. आत्मन् > पा. अत्ता > प्रा. अप्पा>अप. अप्प > हिं. आप । इस ' आप ' में सभी कारक–चिह्न जुडते हैं जैसे :– ' आपने, आपको ' आदि ।

× × ×

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित बात स्पष्ट होती है –

कोंकणी में आदर दिखाने के लिए हिंदी ' आप ' जैसा सर्वनाम नहीं है ।

निजवाचक

(हिंदी 'आप' तथा कोंकणी 'आपु(पू)ण')

निजवाचक सर्वनाम हिंदी ' आप ' तथा कोंकणी ' आपुण ' के मुख्य रूपान्तर निम्नलिखित प्रकार से हैं –

	हिंदी	कोंकणी
	एक.	एक.
मूल रूप –	आप	आपु(पू)ण
विकृत रूप –	आप, अपने(–आप;आदि)	आपणा, आपल्या(–आपुण; आदि)
विशेष रूप –	–––	आपणें
संबंध कारक –	अपना	आपणालो, आपलो

हिंदी :–

आप (मूल रूप) :

इसका विकास संस्कृत 'आत्मन्' > अपभ्रंश 'अप्प' से है।

आप, अपने (विकृत रूप) :

आप : इसका विकास संस्कृत 'आत्मन्' शब्द से है।
अपने : हिंदी 'अपने' को डा. भोलानाथ तिवारी ने 'अपना' का विकृत रूप माना है [१५०]। हिंदी 'अपना' का विकास नीचे दिया है।

अपना (संबंध कारक) :

हिंदी 'अपना' का विकास डा. वर्मा ने प्रा. अप्पाणो > अप. अप्पाणु से माना है [१५१]।

डा. भोलानाथ तिवारी सं. आत्मनः > पा. अत्तनो > प्रा. अप्पणो, अप्पणा > अप. अप्पणउ, अप्पणा > हिंदी 'अपना' का विकास मानते हैं [१५२]।

वस्तुतः हिंदी के इस 'अपना' का विकास संस्कृत 'आत्मनः' से नहीं माना जाना चाहिए। 'आत्मनः' से विकास मानने से लिंग तथा वचन का संबंध हिंदी 'अपना' में प्राप्त नहीं हो सकता। अतः इसका विकास संस्कृत के तद्धितान्त 'आत्मनीन' से मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए, यथा :– सं. आत्मनीन > पा. अत्तनीय >प्रा. अप्पणयं > अप. अप्पणउ > हिं. अपना। जिस प्रकार 'मेरा, हमारा' आदि शब्दों का विकास तद्धित प्रत्ययान्त शब्दों से होकर उनका प्रयोग 'मैं' सर्वनाम के संबंध कारक में प्रयुक्त हुआ है, उसी प्रकार तद्धित प्रत्ययान्त 'आत्मनीन' से विकसित 'अपना' का प्रयोग भी 'आप' सर्वनाम के संबंध कारक में माना जाना चाहिए। इससे 'अपना' में लिंग-वचन का संबंध भी उपपन्न हो सकता है। इस प्रकार हिंदी 'अपना' का विकास संस्कृत 'आत्मनीन' से है।

कोंकणी :–

आपु(पू)ण (मूल रूप) :

कोंकणी 'आपुण' का विकास संस्कृत 'आत्मन्' से है, यथा :– सं. आत्मन् > पा. अत्ता > प्रा. अत्ताणो, अप्पाणो ('ण' पालि के अन्य कारकान्त रूपों के प्रभाव से है) > अप. अप्पणय (करण तथा संबंध कारक 'अप्पुणु' के 'उ' का प्रभाव) > कों. 'आपु(पू)ण'।

आपणा, आपल्या (विकृत रूप) :

आपणा : कोंकणी 'आपुण' सर्वनाम के विकृत रूप एकवचन में 'आपणा' होता है, जिस प्रकार 'तांदूळ' शब्द के विकृत रूप एकवचन में 'तांदळा' होता है।

आपल्या : कोंकणी ' आपल्या ' को ' आपलो ' का विकृत रूप माना जा सकता है। कोंकणी ' आपलो ' का विकास नीचे दिया है।

आपणें (विशेष रूप) :

कोंकणी में ' आपणें ' रूप कर्ता कारक एकवचन में प्रयुक्त है। यह रूप ' आपुण ' शब्द में ' एं ' प्रत्यय जुडकर सिद्ध होता है (विस्तार के लिए देखिए, कोंकणी ' हांवें ', पृ.)। इसके सिवा अपभ्रंश में करण कारक में 'अप्पणें ' शब्द भी है[१५३]। इस ' अप्पणें ' से भी कोंकणी ' आपणें ' हो सकता है। और यही ' एं ' प्रत्यय कोंकणी के ' हांव, तूं ' सर्वनामों में प्राप्त होता होगा (विशेष के लिए देखिए, कोंकणी ' कोणें ', पृ.)।

आपणालो, आपलो (संबंध कारक) :

आपणालो : कोंकणी के ' आपणा विकृत रूप में ' लो प्रत्यय जुडकर ' आपणालो ' रूप सिद्ध होता है। कोंकणी ' आपलो ' का विकास नीचे दिया है।

आपलो : कोंकणी ' आपलो ' का विकास श्री वालावलकर ने संस्कृत ' आत्मनः' से माना है। उनके कथनानुसार संस्कृत ' आत्मनः ' के ' नः ' का ' नो ' > णो ' होकर अन्त में ' लो ' होता है[१५४]।

वस्तुतः इसका विकास भी उपर्युक्त हिंदी ' अपना ' की तरह संस्कृत ' आत्मनीन ' से माना जाना चाहिए, यथा :– सं. आत्मनीन > पा. अत्तनिय > प्रा. अप्पणय > अप. अप्पणउ > कों. आपलो। अपभ्रंश ' अप्पणउ ' के ' ण ' और ' उ ' का ' णो ' होता है। ' णो ' का ' लो ' उपर्युक्त श्री वालावलकर के मत के अनुसार हो सकता है।

× × ×

उपर्युक्त निजवाचक हिंदी ' आप ' तथा कोंकणी ' आपुण ' की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

१) निजवाचक हिंदी ' आप ' तथा कोंकणी ' आपुण ' का विकास संस्कृत ' आत्मन् ' से है, फिर भी दोनों में थोडासा अन्तर है।

२) हिंदी ' आप ' तथा कोंकणी ' आपुण ' एकवचन में प्रयुक्त है।

३) विकृत रूप हिंदी में ' आप, अपने ' दो रूप हैं तथा कोंकणी में भी आपणा, आपल्या दो रूप हैं। विकास-क्रम भिन्न होने के कारण इनमें अन्तर आया है।

४) हिंदी में विशेष रूप नहीं है, परंतु कोंकणी में ' आपणें ' विशेष रूप है।

५) संबंध कारक में, हिंदी में ' अपना ' तथा कोंकणी ' आपणालो, आपलो ' प्रयुक्त हैं। इनका स्रोत एक है फिर भी विकास-क्रम भिन्न है। फलतः दोनों में अन्तर आया है।

विशेष –

यहाँ हिंदी निजवाचक 'आप' तथा कोंकणी निजवाचक 'आपुण' के रूपों के संबंध में कुछ विशेष बातें स्पष्ट करना उचित होगा –

१) कर्ता कारक एकवचन में, हिंदी में 'आप' एक ही रूप है (निजवाचक 'आप' में कर्ता कारक 'ने' चिह्न नहीं जुडता है) तो कोंकणी में 'आपुण' और 'आपणें' दो रूप हैं (यहाँ 'आपुण' में 'एं' प्रत्यय जुडता है)।

२) हिंदी में, संबंध कारक में 'अपना' एक ही रूप है। इसमें 'अप' प्रकृति और 'ना' प्रत्यय है। कोंकणी में, संबंध कारक में 'आपणालो' और 'आपलो' दो रूप हैं। इनमें 'आपणा' विकृत रूप है तो 'आप' उससे भिन्न विकृत रूप है। इन दोनों में 'लो' प्रत्यय लगा हुआ है। इसके सिवा कोंकणी में विकृत रूप 'आपणा' में 'चो' प्रत्यय लगाया हुआ 'आपणाचो' रूप भी प्राप्त होता है। परंतु यह 'चो' प्रत्यय 'आप' विकृत रूप में लगकर 'आपचो' जैसा रूप नहीं बनता। हिंदी तथा कोंकणी के इन संबंध कारक रूपों पर परवर्ती संबद्ध संज्ञा के लिंग और वचन का प्रभाव पडता है।

३) संबंध कारक में प्राप्त हिंदी 'अपना' तथा कोंकणी 'आपलो' शब्द 'स्वजन, नातेदार' अर्थ में स्वतंत्र शब्द के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं। तब हिंदी 'अपना' शब्द आकारान्त 'लडका' शब्द की तरह तथा कोंकणी 'आपलो' शब्द ओकारान्त 'भुरगो' शब्द की तरह प्रयुक्त होते हैं।

४) शेष कारकों में, हिंदी में 'आप, अपने' तथा कोंकणी में 'आपणा, आपल्या' दो–दो रूप प्राप्त हैं।

उपर्युक्त सभी विवरण निम्नलिखित रूपावली से स्पष्ट हो जाएगा –

	हिंदी	कोंकणी
कारक –	एक.	एक.
कर्ता –	आप	आपुण, आपणें
कर्म –	आपको, अपनेको	आपणाक, आपल्याक
करण –	आपसे, अपनेसे	आपणाच्यान, आपल्याच्यान
संप्र. –	आपको, अपनेको	आपणाक, आपल्याक
अपा. –	आपसे, अपनेसे	आपणासून, आपल्यासून
संबंध –	अपना	आपणालो, आपलो, आपणाचो
अधि. –	आपमें, अपनेमें	आपणांत, आपल्यांत
	आपपर, अपनेपर	आपणाचेर, आपल्याचेर
संबंधबोधक अव्ययों के साथ प्रयोग –	अपने लिए	आपणासाटीं, आपलेसाटीं
	अपने खातिर	आपणाखातीर, आपलेखातीर
	अपने पास	आपणाम्हर्‍यांत, आपल्याम्हर्‍यांत

इसके सिवा हिंदी में ' अपने–आप ', ' अपने–आपको ' जैसे प्रयोग संबंध कारक छोडकर सभी कारकों में उपलब्ध होते हैं। इसी प्रकार कोंकणी मे भी ' आपले(ल्या) – आपुण, आपले(ल्या)–आपणाक ' जैसे प्रयोग सभी कारकों (संबंध कारक छोडकर) में उपलब्ध होते हैं।

संबंध कारक ' अपना ' तथा कोंकणी ' आपणालो, आपलो, आपणाचो ' में परवर्ती संज्ञा के कारण परिवर्तन होता है (देखिए, पृ २०७ पर का निचला परिच्छेद)।

सार्वनामिक विशेषण

हिंदी तथा कोंकणी में प्रायः सार्वनामिक विशेषण दो प्रकार के हैं –
(१) परिमाणवाचक, तथा (२) गुणवाचक। नीचे दोनों का विवरण प्रस्तुत है –

(१) परिमाणवाचक

हिंदी तथा कोंकणी में निम्नलिखित सार्वनामिक परिमाणवाचक विशेषण उपलब्ध हैं –

हिंदी	**कोंकणी**
इतना, इत्ता	इतलो, ए(ये)दो
कितना , कित्ता	कितलो , केदो
जितना , जित्ता	जितलो, जेदो
तितना , तित्ता	तितलो, तेदो
उतना , उत्ता	–– ––

हिंदी :–

हिंदी ' इतना, इत्ता ' आदि रूपों ('उतना, उत्ता ' रूप छोडकर) का विकास संस्कृत के ' एतावत्, कियत्, यावत् , तावत् ' से प्राप्त है। यथा –

सं. एतावत् > पा. एत्तक > प्रा. इत्तिअ > अप. इत्तुल > हिं. इतना (' ना ' को बीम्स ने लघुतावाचक माना है; परंतु यह अर्थ अब उसमें नहीं रहा), इत्ता।

सं. कियत् > पा. कित्तक > प्रा. केत्तिअ > अप. कित्तुल > हिं. कितना, कित्ता।

सं. यावत् > पा. यत्तक > प्रा. जेत्तिल > अप. जेत्तुल > हिं. जितना, जित्ता।

सं. तावत् > पा. तत्तक > प्रा. तेत्तिल > अप. तेत्तुल > हिं. तितना, तित्ता।

उपर्युक्त रूपों के सादृश्य पर हिंदी के ' उतना ' और ' उत्ता ' रूप परवर्ती अपभ्रंश में

विकसित ' ओ (< सं. अदस्)' के लघुरूप ' उ ' में ' तना ' और ' त्ता ' प्रत्यय जुडकर सिद्ध होते हैं ।

उपर्युक्त ' इत्ता, कित्ता, जित्ता, तित्ता, उत्ता ' रूप आज के परिनिष्ठित हिंदी में प्राप्त नहीं है ।

कोंकणी :-

उपर्युक्त कोंकणी ' इतलो, एदो ' आदि का विकास भी संस्कृत ' एतावत् ' आदि रूपों से है । संस्कृत ' एतावत् ' का अपभ्रंश में ' इत्तुल ' होता है (देखिए ऊपर, हिंदी 'इतना ' आदि रूप) । ' इत्तुल ' से कोंकणी ' इतलो ' रूप स्पष्ट है । ' इत्तुल ' के ' ल ' लोप तथा ' त्त ' के ' द ' से ' एदो ' सिद्ध होता है । संस्कृत ' एतावत् ' का प्राकृत में ' एद्दह ' रूप है । इससे भी कोंकणी ' एदो ' रूप विकसित हो सकता है ।

इस प्रकार कोंकणी ' कितलो, केदो ' का विकास संस्कृत ' कियत् ' से, ' जितलो, जेदो ' का विकास संस्कृत ' यावत् ' से तथा ' तितलो, तेदो ' का विकास संस्कृत ' तावत् ' से प्राप्त है ।

उपर्युक्त ये दो-दो रूप आज भी कोंकणी में प्रचलित हैं ।

(२) गुणवाचक

हिंदी तथा कोंकणी में निम्नलिखित सार्वनामिक गुणवाचक विशेषण उपलब्ध हैं --

हिंदी	कोंकणी
ऐसा	असो, असलो
कैसा	कसो, कसलो
जैसा	जसो, जसलो
तैसा	तसो, तसलो
वैसा	-----

हिंदी :-

सं. ईदृश > पा. ईदिसो > प्रा. एरिसो > अप. अइसो > हिं. ' ऐसा ' ।

सं. कीदृश > पा. कीदिसो > प्रा. केरिसो > अप. कइसो > हिं. ' कैसा ' ।

सं. यादृश > पा. यादिसो > प्रा. जारिसो > अप. जइसो > हिं. ' जैसा ' ।

सं. तादृश > पा. तादिसो > प्रा. तारिसो > अप. तइसो > हिं. 'तैसा'।

हिंदी 'वैसा' रूप उपर्युक्त रूपों के सादृश्य पर 'व' से बना है।

कोंकणी :–

कोंकणी में 'असो, कसो, जसो, तसो' रूप उपर्युक्त हिंदी के रूपों की तरह 'ईदृश, कीदृश, यादृश, तादृश' रूपों से बने हैं। कोंकणी में एक दूसरे प्रकार के सार्वनामिक गुणवाचक विशेषण प्राप्त हैं, यथा :– 'असलो, कसलो, जसलो, तसलो'। ये रूप 'असो, कसो, जसो, तसो' में स्वार्थी 'लो' प्रत्यय जुटकर विकसित हुए हैं।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी सार्वनामिक विशेषणों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी 'इतना' आदि रूपों तथा कोंकणी 'इतलो' आदि रूपों में अन्त्य 'ना' तथा 'लो' के कारण थोडा–सा अंतर है।

(२) हिंदी 'उतना' सदृश रूप कोंकणी में नहीं है। 'उतना' अर्थ में कोंकणी 'तितलो' प्रयुक्त है।

(३) हिंदी के 'इत्ता' आदि रूप परिनिष्ठित हिंदी में उपलब्ध नहीं, परंतु कोंकणी के 'एदो' आदि रूप परिनिष्ठित कोंकणी में उपलब्ध हैं।

(४) हिंदी 'ऐसा' आदि रूपों तथा कोंकणी 'असो' आदि रूपों में अन्तर है।

(५) हिंदी 'वैसा' जैसा रूप कोंकणी में नहीं है। 'वैसा' अर्थ में कोंकणी 'तसो' प्रयुक्त है।

(६) कोंकणी 'असलो' आदि रूपों से सादृश्य रखनेवाले रूप हिंदी में नहीं है।

कोंकणी के विशेष सार्वनामिक विशेषण
(त्या/ते; ह्या/हे; ज्या/जे)

त्या/ते :

कोंकणी में 'त्या/ते' विशेष सार्वनामिक विशेषण हैं। 'त्या' प्रायः पुल्लिंग और नपुंसकलिंग में प्रयुक्त है तथा 'ते' प्रायः स्त्रीलिंग एकवचन में प्रयुक्त है। ये रूप तभी प्राप्त होते हैं, जब 'तो ती, तें (एक.)', 'ते त्यो, तीं (बहु.)' सर्वनाम विशेषणात्मक रूप में प्राप्त होते हैं। परंतु एक बात उल्लेखनीय है कि, जब विशेष्य मूल रूप में होता तब 'त्या, ते' का प्रयोग न होकर 'तो, ती, तें, ते, त्यो, तीं' का ही प्रयोग होता हैं; और जब विशेष्य कारक-चिन्ह युक्त अथवा विकृत रूप में होता है तब त्या/ते' का प्रयोग होता

है । यथा :– कारक-चिह्न युक्त विशेष्य : 'त्या भुरग्याक (पु. एक.), त्या भुरग्यांक (पु. बहु.), ते चलयेक (स्त्री. एक.), त्या चलयांक (स्त्री. बहु.), त्या पेराचो (नपुं. एक.), त्या पेरांचो (नपुं. बहु.)'; विकृत रूप में विशेष्य : 'त्या दिसा, ते राती' आदि ।

'तो' ओकारान्त, 'ती' ईकारान्त, 'तें' एंकारान्त है । कोंकणी ओकारान्त, ईकारान्त और एंकारान्त संज्ञाओं के विकृत रूपों को देखने पर सरलता से ध्यान में आता है कि कोंकणी 'त्या/ते' रूप किस प्रकार विकसित हैं, यथा –

	मूल रूप संज्ञा	विकृत (तथा कारक-चिह्न युक्त) रूप एक.	बहु.
ओकारान्त पुल्लिंग –	भुरगो :	भुरग्या(क)	भुरग्यां(क)
ईकारान्त स्त्रीलिंग –	चली :	चलये(क)	चलयां(क)
एंकारान्त नपुंसक.–	भुरगें :	भुरग्या(क)	भुरग्यां(क)

उपर्युक्त पुल्लिग और नपुंसकलिंग संज्ञा के एकवचन तथा बहुवचन में 'ग्या' तथा 'ग्यां' हुआ है तो स्त्रीलिंग संज्ञा के एकवचन में 'ये' तथा बहुवचन में 'यां' हुआ है । इनमें बहुवचनीय रूपों में प्राप्त अनुनासिक का लोप होने से प्रायः सर्वत्र 'ग्या (अर्थात् आकारान्त)' तथा स्त्रीलिंग एकवचन में 'ये (अर्थात् एकारान्त)' प्राप्त होता है । इसी प्रकार विशेषणात्मक 'तो' के रूपों से 'त्या/ते' विकसित होते हैं ।

एक अन्य संभावना भी हो सकती है । यह बात पूर्व स्पष्ट की है कि अशिक्षित लोग बोलते समय 'तो, तें' के विकृत रूपों में 'त्या' का व्यवहार करते हैं, तथा श्री गुंजीकर ने भी 'त्याका, ताका' दो रूप दिखाये हैं (देखिए, पृ. २२४) । शायद 'त्याका' का आदि अंश 'त्या' विशेषणात्मक रूप में प्राप्त होता होगा, जैसे:–

ओ. पु. एक.	गोरो भुरगो : गोऱ्या भुरग्याक	तो भुरगो : त्या भुरग्याक
एं. नपुं. एक	गोरें भुरगें : गोऱ्या भुरग्याक	तें भुरगें : त्या भुरग्याक
ई. स्त्री. एक.	गोरी बायल : गोऱ्या बायलेक	ती बायल : त्या बायलेक
ओ. पु. बहु.	गोरे भुरगे : गोऱ्या भुरग्यांक	ते भुरगे : त्या भुरग्यांक
एं. नपुं. बहु.	गोरीं भुरगीं : गोऱ्या भुरग्यांक	तीं भुरगीं : त्या भुरग्यांक
ई. स्त्री. बहु.	गोऱ्यो बायलो : गोऱ्या बायलांक	त्यो बायलो : त्या बायलांक

स्त्रीलिंग एकवचन विशेषण में ' ए ' भी होता है, यथाः– ' गोरी बायल : गोरे बायलेक ' । फिर भी स्त्रीलिंग में ' या ' – युक्त प्रवृत्ति कोंकणी में स्पष्ट ही नजर आती है ।

हिंदी में इनके लिए ' उस, उन ' विकृत रूपों का ही प्रयोग होता है, यथा :–

हिंदी	**कोंकणी**
उस आदमी को, उस औरत को	त्या मनशाक, त्या(ते) बायलेक
उन आदमियों को, उन औरतों को	त्या मनशांक, त्या बायलांक

विशेष –

इस प्रकार हिंदी में ' उस, उन ' विकृत रूपों के सार्वनामिक विशेषणों के प्रयोग में कोंकणी में ' त्या / ते ' सार्वनामिक विशेषणों का प्रयोग होता है । परंतु दोनों के व्यवहार में अन्तर है । हिंदी ' उस ' एकवचन में तो ' उन ' बहुवचन में प्रयुक्त है । परंतु कोंकणी ' त्या ' प्रायः सभी लिंगों और वचनों में प्राप्त है; फिर भी कभी-कभी स्त्रीलिंग एकवचन में ' ते ' का प्रयोग होता है ।

ह्या/हे :

कोंकणी में ' त्या/ते की तरह ' ह्या/हे ' भी सार्वनामिक विशेषण प्राप्त हैं । इनका विकास ऊपर बताये ' त्या/ते ' के समान ही है ।

कोंकणी ' ह्या / हे ' के लिए हिंदी में ' इस, इन ' विकृत रूपों का ही प्रयोग होता है, यथा :–

हिंदी	**कोंकणी**
इस घोडे को, इस घोडी को	ह्या घोड्याक, ह्या(हे) घोडयेक
इन घोडों को, इन घोडियों को	ह्या घोड्यांक, ह्या घोडयांक

अन्य बातें यहीं ऊपर ' विशेष ' उपशीर्षक में स्पष्ट की हैं ।

ज्या/जे :

कोंकणी में ' त्या/ते ' की तरह ' ज्या/जे ' भी सार्वनामिक विशेषण प्राप्त हैं । इनकी उपपत्ति भी ऊपर बताये ' त्या/ते ' के समान है ।

कोंकणी ' ज्या/जे ' के लिए हिंदी में ' जिस, जिन ' विकृत रूपों का ही प्रयोग होता है, यथा :–

हिंदी	कोंकणी
जिस भानजे ने, जिस भानजी ने	ज्या भाच्यान, ज्या(जे) भाचयेन
जिन भानजों ने, जिन भानजियों ने	ज्या भाच्यांनीं, ज्या भाचयांनीं

अन्य बातें यहीं पीछे ' विशेष ' उपशीर्षक में स्पष्ट की हैं(देखिए, पृ. २६८)।

× × ×

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) कोंकणी में ' त्या/ते; ह्या/हे; ज्या/जे ' विशेष सार्वनामिक विशेषण हैं। इनके अर्थ में हिंदी में ' उस, उन; इस, इन; जिस, जिन ' विकृत रूपों का प्रयोग होता है।

(२) स्त्रीलिंग में कभी-कभी ' ते, हे, जे ' प्रयुक्त हैं।

(३) ' त्या, ते ' आदि रूप संज्ञाओं के विकृत रूपों तथा कारक-चिह्न युक्त परवर्ती संज्ञाओं के साथ प्रयुक्त होते हैं।

संक्षेप में

(१) हिंदी में लगभग बाहर तो कोंकणी में प्रायः नौ सवंनाम हैं।
(२) हिंदी ' सो, कोई ' तथा आदरवाचक ' आप ' जैसे सर्वनाम कोंकणी में नहीं हैं।
(३) हिंदी तथा कोंकणी सर्वनामों के रूपों में साम्य तथा अंतर दीखता है।
(४) हिंदी तथा कोंकणी सर्वनामों के संबंध कारक के रूप प्रायः ' संस्कृत के तद्धिन्तात रूपों से विकसित हैं। अतः एव इनमें लिंग, वचन का प्रभाव है।
(५) हिंदी तथा कोंकणी सर्वनामों के शेष रूप प्रायः संस्कृत सर्वनामों के कारकीय रूपों से विकसित है। अतः इनमें लिंग, वचन का प्रभाव नहीं है।
(६) हिंदी तथा कोंकणी सर्वनामों का संबंधबोधक अव्ययों के साथ प्रयोग होते समय हिंदी तथा कोंकणी सर्वनामों के संबंध कारक रूपों में परिवर्तन होता है।
(७) हिंदी के सर्वनाम पुल्लिग और स्त्रीलिंग में समान रूप से प्रयुक्त हैं तो कोंकणी के ' तो, हो, जो ' सर्वनाम छोडकर शेष सर्वनाम पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में समान रूप से प्रयुक्त हैं। कोंकणी के ' तो, हो, जो ' सर्वनाम पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में भिन्न-भिन्न रूपों में प्रयुक्त हैं।
(८) प्रश्नवाचक सर्वनाम हिंदी ' कौन ' एकवचन तथा बहुवचन में प्रयुक्त है तो कोंकणी ' कोण ' प्रायः एकवचन में प्रयुक्त है। फिर भी कर्ता कारक में कोंकणी ' कोण ' का प्रयोग प्रायः दोनों वचनों में होता है।
(९) प्रश्नवाचक सर्वनाम हिंदी ' क्या ' तथा कोंकणी 'कितें(दें) ' एकवचन में प्रयुक्त हैं।
(१०) निजवाचक सर्वनाम हिंदी ' आप ' तथा कोंकणी ' आपुण ' प्रायः एकवचन में प्रयुक्त हैं तथा उनके रूप बनाने की प्रवृत्ति भी प्रायः समान है।
(११) हिंदी तथा कोंकणी में सार्वनामिक विशेषण भी प्राप्त हैं। ये हिंदी में प्रायः एक ही प्रकार के उपलब्ध हैं तो कोंकणी में दो प्रकार के उपलब्ध होते हैं।
(१२) कोंकणी में ' त्या/ते; ह्या/हे; ज्या/जे ' जैसे सार्वजनिक विशेषण प्राप्त हैं। हिंदी में इनके लिए ' उस, उन; इस, इन; जिस, जिन ' विकृत रूपों का ही प्रयोग होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूचा

१) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८०
२) डा. कत्रे – द फार्मेशन् आफ कोंकणी, पृ. १३५ से १३९ तक
श्री रा. भि. गुंजीकर – सरस्वती मंडळ, पृ. ६८ से ७० तक
३) श्री रवींद्र केळेकर – हिमालयांत, 'म्हाम्नी (भूमिका)', पृ. ६
४) "आमची भास – सातवें पुस्तक", पृ. १०
५) "आमची भास सवें पुस्तक", पृ. ५१ तथा ५९
६) "कोंकणी वाचनपाठ, यत्ता धावी (कक्षा १० के लिए)" . पृ. २२
७) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८१
८) डा. चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज, पृ. ८०८ परि. क्र. ५३९
९) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १७९
१०) डा. श्यामसुंदरदास – हिंदी भाषा, पृ. १४५
११) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १८४
१२) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८१
१३) मैकडानल – वैदिक व्याकरण, पृ. १४० तथा क्रमांक (३)की टिप्पणी
१४) श्री भिक्षु जगदीश काश्यप – पालि महाव्याकरण, पृ. ५४
१५) वही।
१६) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १९०
१७) डा. हार्नले – ए कम्पेरेटिव ग्रामर आफ द गौडियन लैंग्वेज, पृ २८२
१८) डा. चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज, पृ. ८१३ परि. क्र. ५४३
डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४५१
१९) आचार्य रामचंद्र शुक्ल – हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. २४
२०) पं. शालिग्राम उपाध्याय – अपभ्रंश का व्याकरण, वक्तव्य पृ. ११
डा. रामअवध पाण्डेय तथा रविनाथ मिश्र – पालि-प्राकृत-अपभ्रंश संग्रह, परिशिष्ट (ग), पृ. ४६
२१) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८१
२२) वही, पृ. २८१ से २८६ तक
२३) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १८१
२४) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. २०६
२५) पं. शालिग्राम उपाध्याय – अपभ्रंश का व्याकरण, वक्तव्य पृ. ११ तथा शब्दानुक्रमणिका पृ. १०६, १०७
डा. नामवरसिंह – हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ. ६४ से १२९ तक
डा. वीरेंद्र श्रीवास्तव – अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ. १०७ से १७१ तक
२६) डा. भोलानाथ तिवारी – भाषा विज्ञान कोश, पृ. ५०१, ५०२
२७) डा. हरिवंश कोछड – अपभ्रंश साहित्य, पृ, ३३०
डा. नेमिचंद्रशास्त्री – प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. ५२९
२८) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १८१ से २०७ तक
२९) डा. नामवरसिंह – हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ. ११०, १११
३०) वही, पृ. ८१
३१) डा. वीरेंद्र श्रीवास्तव – अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ. १३७
३२) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १८५
३३) पं. शालिग्राम उपाध्याय – अपभ्रंश का व्याकरण, पृ. ६६

३४) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. २५५
३५) डा. चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज, पृ. ७५३ परि. क्र. ५०३
३६) बीम्स – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द माडर्न आर्यन लैंग्वेजेस आफ इंडिया, भाग २, पृ. २८५
३७) डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४५१
३८) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १८३
३९) श्री अनोमदर्शी बरुआ (भिक्षु) – इंट्रोडक्शन टु पालि, पृ. ४
४०) श्री भिक्षु जगदीश काश्यप – पालि महाव्याकरण, पृ. १५८
४१) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. १२१
४२) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. ३०
४३) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. २५५
४४) डा. कत्रे – द फार्मेशन आफ कोंकणी, पृ. १३६
४५) वही, पृ. १३६
४६) मैकडानल – वैदिक व्याकरण, पृ. १४०, १४१
श्री भट्टोजी दीक्षित – सिद्धान्तकौमुदी, पृ. ३७
४७) डा. आर. पिशेल – प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृ. ६०९
४८) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८२
४९) डा. रामअवध पांडेय तथा रविनाथ मिश्र – पालि-प्राकृत-अपभ्रंश संग्रह, परिशिष्ट(ग), पृ. ४५
५०) डा. श्यामसुंदरदास – हिंदी भाषा, पृ. १४५
५१) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८३
५२) डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४५१
५३) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १८८ से १९० तक
५४) वही।
५५) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८२
५६) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १८७
५७) वही, पृ. १७९, १८०, १८१
५८) वही, पृ. १८४, १९०, १८७, १८१
५९) मैकडानल – वैदिक व्याकरण, पृ. १४०
डा. सत्यपाल नारंग – वैदिक व्याकरण, पृ. ३६
टी. बरो – संस्कृत भाषा, पृ. ३१८
डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४५
६०) मैकडानल – वैदिक व्याकरण, पृ. १४०
६१) अनोमदर्शी बरुआ (भिक्षु) – इन्ट्रोडक्शन टु पालि, पृ. ६, ४७
६२) मैक्समूलर – भाषा-विज्ञान, पृ. ४१७
६३) भिक्षु जगदीश काश्यप – पालि महाव्याकरण, पृ. बीस, इक्कीस
६४) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८२
६५) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १८७
६६) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८३
६७) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १९०
६८) डा. तुळपुळे – यादवकालीन मराठी भाषा, पृ. २५७
६९) डा. कत्रे – द फार्मेशन् आफ कोंकणी, पृ. १३७
७०) श्री कामताप्रसाद गुरु – हिंदी व्याकरण, पृ. ९९

७१) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८४
७२) डा. चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज, पृ. ८३५ , परि. क्र. ५७२
७३) डा. भाण्डारकर – विल्सन फिलोलोजिकल लैक्चर्स, पृ. २०६
७४) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १९४
७५) मैकडानल – वैदिक व्याकरण, पृ. १४८ (आ)
७६) प्रा. चिपळूणकर तथा शास्त्री रावरेकर – सुबंत कौमुदी, पृ. १०४
७७) भिक्षु जगदीश काश्यप – पालि महाव्याकरण, पृ. ६० तथा उसी पृष्ठ पर की टिप्पणी
७८) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. १९८, १०९
७९) प्रा. चिपळूणकर तथा शास्त्री रावरेकर–सुबंत कौमुदी, पृ. १८५
८०) डा. पिशेल – प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृ. ६४२
८१) डा. वीरेंद्र श्रीवास्तव – अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ. १८०
डा. नामवरसिंह – हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ. १२५
८२) पं. शालिग्राम उपाध्याय – अपभ्रंश का व्याकरण, पृ. २१
८३) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८४
८४) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १९६
८५) डा. चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज पृ. ८३५ परि. क्र. ५७२
८६) पं. शालिग्राम उपाध्याय – अपभ्रंश का व्याकरण, पृ. २१
८७) डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४५२
डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १९५
८८) डा. श्यामसुंदरदास – हिंदी भाषा, पृ. १४६
८९) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. १९८
९०) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १९७
९१) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८४
९२) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १९५
९३) वही, पृ. १८२ तथा १९५
९४) वही, पृ. १९७
९५) श्री रा. भि. गुंजीकर – सरस्वतीमंडळ, पृ. ६९
९६) श्री रवींद्र केळेकर – हिमालयांत, पृ. १५
९७) वही, पृ. १०
९८) डा. रामअवध पांडेय तथा रविनाथ मिश्र – पालि-प्राकृत-अपभ्रंश संग्रह, परिशिष्ट(ग), पृ. ४७
९९) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८४
१००) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १९८
१०१) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८४
१०२) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १९९
१०३) डा. वीरेन्द्र श्रीवास्तव – अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, पृ. १७९
१०४) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १९८
१०५) डा. कत्रे – द फार्मेशन आफ कोंकणी, पृ. १३८
१०६) ''आमची भास – सातवें पुस्तक'', पृ. ४५
१०७) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. ४७२
डा. नामवरसिंह – हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ. ८४
१०८) डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४५३

१०९) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८५
११०) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २०४
१११) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. २००
११२) डा. चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज , पृ. ८३९
डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८५
११३) डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४५३
११४) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २०५
११५) वही, पृ. २०४, २०५
११६) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. २००
११७) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा का सरल व्याकरण, पृ. ८४
११८) श्री खण्डेराव सुळे तथा नरेंद्र नायक – सुगम हिंदी व्याकरण, पृ. ५५
११९) ''लोकभारती – भाग २(हिंदी)'' , पृ. ६४
१२०) डा. भोलानाथ तिवारी, हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २०५
१२१) डा. चटर्जी– द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेण्ट आफ द बंगाली लैंग्वेज पृ. ८२१ परि. क्र. ५५५
१२२) डा. नामवरसिंह – हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ. ८३
१२३) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८५
१२४) डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४५४
१२५) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २०६
१२६) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८५
१२७) डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४५४
१२८) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २०७
१२९) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८४
१३०) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. १९६
१३१) श्री कामताप्रसाद गुरु – हिंदी व्याकरण, पृ. ९९
डा. श्यामसुंदरदास – हिंदी भाषा, पृ. १४७
१३२) डा. हार्नले – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द गौडियन लैंग्वेज , पृ. २९१ परि. क्र. ४३८
१३३) डा. चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज , पृ. ८४२ परि. क्र. ५८३
डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८६
डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २०१
१३४) डा. रामअवध पांडेय तथा रविनाथ मिश्र – पालि-प्राकृत-अपभ्रंश संग्रह, पृ. १३६
१३५) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८६
१३६) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २०२
१३७) मैकडानल – वैदिक व्याकरण, पृ. १३३, १३४
१३८) ब्लूमफील्ड – भाषा, पृ. ९
१३९) डा. राम अवध पांडेय तथा रविनाथ मिश्र–पालि-प्राकृत-अपभ्रंश संग्रह, परिशिष्ट (क), पृ २१
श्री भिक्षु जगदीश काश्यप – पालि महाव्याकरण, पृ. २३
१४०) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. १९७
१४१) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८६
१४२) डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४५५
१४३) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २०३

१४४) डा. कत्रे – द फार्मेशन आफ कोंकणी, पृ. १३९
डा. तुळपुळे – यादवकालीन मराठी भाषा, पृ. २६३
१४५) प्रा. कुळकर्णी – मराठी भाषा : उद्गम आणि विकास, पृ. ३४८
१४६) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८६
१४७) डा. श्यामसुंदरदास – हिंदी भाषा, पृ. १४७
१४८) डा. जयकृष्ण विद्यालंकार – ' हिंदी सर्वनाम ' शीर्षक लेख, गवेषणा (पत्रिका),अंक २०, पृ. ४०
१४९) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २०८
१५०) वही, पृ. २११
१५१) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८७
१५२) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २१०
१५३) पं. शालिग्राम उपाध्याय – अपभ्रंश का व्याकरण, सूत्र क्रमांक ४१६
१५४) श्री वालावलीकर – कोंकणिची व्याकरणी बांदावळ, पृ. ६०

अध्याय ६

हिंदी तथा कोंकणी विशेषण

१) विशेषणों में प्राप्त अन्त्य स्वर

संस्कृत में स्वरान्त तथा व्यंजनान्त विशेषण प्राप्त हैं, यथा :– स्वरान्त : ' सुंदर, विशाल, अंतर्वाणि, कट्ठु, पुरुहू , मंजु ' आदि; व्यंजनान्त : ' महत्, ज्यायस्, ज्योतिष्मत् , क्षमिन्, पटीयस् ' आदि । परंतु हिंदी तथा कोंकणी में व्यंजनान्त विशेषण प्राप्त नहीं है । स्वरान्त विशेषणों के अन्त में भी हिंदी में प्रायः ' अ, ई, ऊ ' और ' आ ' तथा कोंकणी में ' अ, ई, ऊ ' और ' ओ ' स्वर उपलब्ध हैं, यथा –

अन्त्य स्वर :		हिंदी	अन्त्य स्वर :		कोंकणी
अ	:	बहुत, गरम, गोल	अ	:	भोव, गरम, गोल
ई	:	मेहनती, पापी, रोगी	ई	:	म्हेनती, पापी, रोगी
ऊ	:	टिकाऊ, लडाकू, ढालू	ऊ	:	टिकाऊ, कोडू(= कट्ठु), चिकू(= कंजूस)
आ	:	गोरा, अच्छा, हलका	ओ	:	गोरो, बरो, हलको

× × ×

उपर्युक्त विवरण से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी तथा कोंकणी में ' अकारान्त, ईकारान्त ' और ' ऊकारान्त ' विशेषण प्राप्त हैं ।

(२) इसके सिवा हिंदी में जहाँ ' आकारान्त ' विशेषण प्राप्त हैं वहाँ कोंकणी में प्रायः ' ओकारान्त ' विशेषण प्राप्त हैं ।

२) विशेषणों का लिंग

संस्कृत पालि आदि भाषाओं में विशेषण विशेष्य के लिंग, वचन तथा कारक से प्रभावित हैं, यथा :– ' सुन्दरः पुरुषः, सुन्दरी स्त्री, सुन्दरं दृश्यम् '; ' बुद्धिमान् नरः, बुद्धिमती नारी, बुद्धिमत् अपत्यम् ' । परंतु हिंदी तथा कोंकणी में ' अकारान्त , ईकारान्त' और ' ऊकारान्त ' विशेषण विशेष्य के लिंग, वचन, तथा कारक–चिह्न युक्त विशेष्य से प्रभावित नहीं होते हैं , जैसे :–

हिंदी	:	सुंदर, मेहनती, लडाकू	लडका / लडके / लडके को / लडकों को ।
		,, ,, ,,	लडकी/लडकियाँ/लडकी को/लडकियों को ।
कोंकणी	:	सुंदर, म्हेनती, लढाऊ	भुरगो/ भुरगे / भुरग्याक / भुरग्यांक.
		,, ,, ,,	चली/ चलयो/चलयेक/चलयांक.
		,, ,, ,,	चेंडूं/चेडवां/चेडवाक/चेडवांक.

परंतु हिंदी के 'आकारान्त' तथा कोंकणी के 'ओकारान्त' विशेषण विशेष्य के लिंग वचन तथा कारक–चिह्न युक्त विशेष्य से प्रभावित होते हैं, यथा –

	हिंदी	कोंकणी
पु. एक. में विशेष्य –	अच्छा लडका	बरो भुरगो
पु. बहु. में विशेष्य –	अच्छे लडके	बरे भुरगे
स्त्री. एक. में विशेष्य –	अच्छी लडकी	बरी चली
स्त्री. बहु. में विशेष्य –	अच्छी लडकियाँ	बऱ्यो चलयो
नपुं. एक. में विशेष्य –	-- --	बरें भुरगें
नपुं. बहु. में विशेष्य –	-- --	बरीं भुरगीं
पु. एक. तथा बहु. में	अच्छे लडके ने	बऱ्या भुरग्यान
कारक–चिन्ह युक्त विशेष्य	अच्छे लडकों ने	बऱ्या भुरग्यांनीं
स्त्री. एक. तथा बहु. में	अच्छी लडकी ने	बऱ्या चलयेन
कारक–चिह्न युक्त विशेष्य	अच्छी लडकियों ने	बऱ्या चलयांनीं
नपुं. एक. तथा बहु. में	-- --	बऱ्या भुरग्यान
कारक–चिह्न युक्त विशेष्य	-- --	बऱ्या भुरग्यांनीं

हिंदी आकारान्त तथा कोंकणी ओकारान्त विशेषण स्त्रीलिंग में ईकारान्त होते हैं, परंतु इन विशेषणों का प्रयोग करते समय हिंदी तथा कोंकणी में अन्तर प्राप्त होता है। हिंदी में आकारान्त विशेषण ईकारान्त बनने पर विशेष्य के वचन तथा कारक–चिह्न युक्त विशेष्य से प्रभावित नहीं होता, यथाः– 'अच्छी औरत (एक.) / औरतें (बहु.) / औरत ने, औरतों ने (कारक–चिह्न युक्त विशेष्य, एक. और बहु. में)'। परंतु कोंकणी में स्त्रीलिंग विशेषण में परिवर्तन होता है, यथा :– 'बरी बायल (एक.)'; 'बऱ्यो बायलो (बहु.)'; 'बऱ्या बायलेन / बायलांनीं (कारक–चिह्न युक्त विशेष्य, एक. और. बहु. में)'। फिर भी कोंकणी में एक और बात दीखती है। स्त्रीलिंग में उपर्युक्त 'या'कारान्त के बदले 'ए' कारान्त रूप भी मिलता है, जैसे :– 'बरे चलयेन/बायलेन' आदि। यह स्थिति प्रायः स्त्रीलिंग एकवचन में प्राप्त है।

संस्कृत में संख्यावाचक आदि विशेषणों में लिंग का प्रभाव स्पष्ट दीखता है। हिंदी तथा कोंकणी में संख्यावाचक विशेषणों में लिंग का प्रभाव नहीं है। परंतु अपूर्ण संख्यावाचक विशेषणों में से हिंदी 'आधा' तथा कोंकणी 'अर्दो' में लिंग का प्रभाव है। हिंदी में क्रमवाचक और आवृत्तिवाचक विशेषणों में लिंग का प्रभाव है तो कोंकणी में केवल क्रमवाचक विशेषणों में लिंग का प्रभाव है। हिंदी 'पडवा' तथा कोंकणी 'पाडवो' पुल्लिंग है तो शेष क्रमवाचक तिथियाँ हिंदी तथा कोंकणी में प्रायः स्त्रीलिंग हैं।

× × ×

उपर्युक्त विवरण से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी आकारान्त तथा कोंकणी ओकारान्त विशेषणों में विशेष्य के लिंग, वचन

और कारक–चिह्न युक्त विशेष्य के कारण परिवर्तन होता है।

(२) हिंदी में ईकारान्त स्त्रीलिंग विशेषण में विशेष्य के वचन तथा कारक–चिह्न युक्त विशेष्य का प्रभाव नहीं होता; परंतु कोंकणी में ईकारान्त स्त्रीलिंग विशेषण में विशेष्य के वचन तथा कारक–चिह्न युक्त विशेष्य का प्रभाव स्पष्ट ही दिखायी देता है।

(३) हिंदी 'आधा' तथा कोंकणी 'अर्दो' पर लिंग का प्रभाव है।

(४) हिंदी 'पडवा' तथा कोंकणी 'पाडवो' पुल्लिंग है तो दोनों में शेष तिथियाँ प्रायः स्त्रीलिंग है।

३) तर–तमार्थी विशेषण

संस्कृत व्याकरण में विशेषण के तीन प्रकार हैं; जैसे – (१) मूलावस्था, (२) उत्तरावस्था और (३) उत्तमावस्था।

(१) मूलावस्था – विशेषण के जिस रूप से किसी वस्तु की तुलना का बोध नहीं होता, वह उस विशेषण की 'मूलावस्था' है, यथा :– 'सुंदर, नवीन, गुरु, लघु, महान् (महत्)' आदि।

(२) उत्तरावस्था – विशेषण के जिस रूप से दो वस्तुओं में तुलना की जाती है उस विशेषण के रूप को 'उत्तरावस्था' कहते हैं, यथाः– 'सुंदरतर, नवीनतर, लघीयस्, पटीयस्, महत्तर' आदि।

(३) उत्तमावस्था – विशेषण के जिस रूप से दो से अधिक वस्तुओं में से किसी एक के गुण की सर्वश्रेष्ठता अथवा सर्वाधिक न्यूनता का बोध होता है उस विशेषण के रूप को 'उत्तमावस्था' कहते हैं, यथाः– 'सुंदरतम, नवीनतम, ज्येष्ठ, पापिष्ठ, बलिष्ठ, महत्तम' आदि।

इस प्रकार संस्कृत में तुलनात्मक विशेषण बनाने के लिए कुल मिलाकर चार प्रत्यय हैं, जैसेः– 'तर', 'ईयस्', 'तम', 'इष्ठ'[१] (कहीं–कहीं 'श्रेष्ठतर, श्रेष्ठतम' आदि रूपों के प्रयोग मिलते हैं, परंतु 'श्रेष्ठ' में 'इष्ठ' प्रत्यय होने के कारण फिर से इस में 'तर', 'तम' प्रत्यय नहीं जोडना चाहिए)।

संस्कृत की तरह अंग्रेजी में भी यह पद्धति उपलब्ध है, यथाः– 'गुड (मूलावस्था)', 'बेटर (उत्तरावस्था)', 'बेस्ट (उत्तमावस्था)'[२]। परंतु हिंदी तथा कोंकणी में इस प्रकार की रचना नहीं है। कोंकणी में 'तर' और 'ईयस्' प्रत्ययान्त के रूप उपलब्ध नहीं हैं, परंतु हिंदी में कहीं–कहीं 'तर' प्रत्ययान्त 'सुंदरतर', 'लघुतर' जैसे कुछ विशेषण उपलब्ध होते हैं। इसी प्रकार हिंदी में 'तम ('सुंदरतम' आदि)', 'इष्ठ ('श्रेष्ठ, बलिष्ठ' आदि)' प्रत्ययान्त रूप प्राप्त हैं, परंतु कोंकणी में केवल 'इष्ट (' इष्ठ' का 'इष्ट', जैसेः– 'बळिष्ट, धारिष्ट ')' प्रत्ययांन्त रूप प्राप्त हैं। परंतु इनका उपयोग हिंदी तथा कोंकणी में तुलना के लिए नहीं किया जाता बल्कि विशेषण की मूलावस्था के सदृश किया जाता है। फिर भी हिंदी तथा कोंकणी में (क) 'दोनों में तुलना' और (ख)

'दो से अधिक में तुलना' करने की पद्धतियाँ हैं। ये पद्धतियाँ दो प्रकार की हैं, यथा –

(क) दोनों में तुलना

पहला प्रकार :

हिंदी में 'से' प्रत्यय तथा कोंकणी में 'कूय', 'परस' आदि अपादानार्थ बोधक अव्यय लगाकर तुलना की जाती है, यथा –

हिंदी : 'राम मोहन से सुंदर है।'
कोंकणी : 'राम मोहनाकूय / परस सुंदर आसा.'

दूसरा प्रकार :

दूसरे प्रकार में हिंदी में 'से' के अनन्तर 'कहीं', अधिक', 'ज्यादा', 'कहीं अधिक' आदि शब्दों का प्रयोग होता है तथा कोंकणी में 'कूय', 'परस' आदि अव्ययों के अनन्तर 'चड', 'जास्त', 'भोव' आदि शब्दों का प्रयोग होता है, यथा –

हिंदी : 'राम मोहन से कहीं / अधिक / ज्यादा / कहीं अधिक सुंदर है।'

कोंकणी : 'राम मोहनाकूय चड / जास्त / भोव सुंदर आसा.'

(ख) दो से अधिक में तुलना

पहला प्रकार –

इस प्रकार में हिंदी में 'सब' शब्द के अनन्तर 'से' अथवा 'में' प्रत्यय लगाया जाता है तथा कोंकणी में 'सगळो' शब्द के अनन्तर 'कूय', 'परस' अथवा 'ंत' जोडा जाता है, यथा –

हिंदी : 'राम सब से / में सुंदर है।'
कोंकणी : 'राम सगळ्यांकूय / परस / ंत सुंदर आसा.'

दूसरा प्रकार :

इस दूसरे प्रकार में हिंदी में 'सब से' शब्द के अनन्तर 'अधिक', 'ज्यादा', 'बढकर' आदि शब्दों का प्रयोग होता है तथा कोंकणी में 'सगळ्यांकूय / परस' आदि शब्दों के अनन्तर 'चड', 'जास्त', 'भोव' आदि शब्दों का प्रयोग होता है, यथा –

हिंदी : 'राम सब से अधिक / ज़्यादा / बढकर सुंदर है।'
कोंकणी : 'राम सगळ्यांकूय चड / जास्त / भोव सुंदर आसा.'

× × ×

उपर्युक्त विवरण से हिंदी तथा कोंकणी में निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी तथा कोंकणी में 'तर', 'तम' जैसे प्रत्यय–युक्त रूपों का प्रयोग तुलना

के लिए प्रायः नहीं होता है । 'तर', 'तम' प्रत्ययान्त कुछ शब्द केवल हिंदी में विशेषण की मूलावस्था के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं । इसी प्रकार हिंदी तथा कोंकणी में 'इष्ठ' (कों. में 'इष्ट') प्रत्ययान्त रूपों का भी प्रयोग प्रायः होता है ।

(२) हिंदी तथा कोंकणी में 'दोनों में तुलना' तथा 'दो से अधिक में तुलना' करने की पद्धति है । यह पद्धति हिंदी तथा कोंकणी में प्रायः समान है ।

४) सदृशतावाचक विशेषण

समानता या सादृश्य भाव प्रकट करने के लिए संज्ञा अथवा सर्वनाम पदों के साथ हिंदी में 'सरीखा, जैसा, सा' आदि पद जोडे जाते हैं तथा कोंकणी में 'सारको(खो), सो' आदि पद जोडे जाते हैं । हिंदी के 'सरीखा, जैसा, सा' आकारान्त है तो कोंकणी के 'सारको(खो), सो' ओकारान्त है । अतः इनके अन्त में हिंदी के आकारान्त तथा कोंकणी के ओकारान्त विशेषणों के समान परिवर्तन होता है, यथा –

हिंदी : पु. 'राम–सरीखा पुरुष' आदि; स्त्री. 'सीता–सरीखी स्त्री' आदि ।

कोंकणी : पु. 'रामासारको(खो) मनीस' आदि ; स्त्री. 'सीतेसारकी(खी) बायल' आदि ।

इसी प्रकार 'राम–सा(पु.), सीता–सी(स्त्री.)' हिंदी में प्रयुक्त हैं तो 'रामसो(पु.), सीताशी(स्त्री.), फूलशें (नपुं.)' कोंकणी में प्रयुक्त हैं । हिंदी 'सा' का स्त्रीलिंग में 'सी' तथा कोंकणी 'सो' का स्त्रीलिंग में 'शी' और नपुंसक लिंग में 'शें' होता है ।

कभी–कभी हिंदी 'सा' तथा कोंकणी 'सो' का प्रयोग अतिशयता या आधिक्य का भाव प्रकट करने के लिए विशेषण वाचक शब्द के साथ होता है । और तब भी उपर्युक्त प्रकार से उनमें परिवर्तन होता है, यथाः– हिंदी : 'बहुत–से आम, अच्छी–सी किताब, अच्छी–सी किताबें' आदि; कोंकणी : 'खूपशे आंबे, बरेंशें पुस्तक, बरींशीं पुस्तकां' आदि।

× × ×

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी तथा कोंकणी में सदृशतावाचक विशेषण बनाने की पद्धति है ।

(२) सदृशतावाचक विशेषण बनाने के लिए हिंदी में 'सरीखा, जैसा, सा' आदि प्रयुक्त हैं तो कोंकणी में 'सारको(खो), सो' आदि प्रयुक्त हैं ।

(३) कभी–कभी आधिक्य बताने के लिए भी इनका उपयोग हिंदी तथा कोंकणी में होता है ।

५) पूर्ण संख्यावाचक विशेषण

हिंदी 'एक' तथा कोंकणी 'एक'

हिंदी : एक

सं. एकः > पा. एको > प्रा. एक्को, एगो > अप. एक्क > हिं. एक। हिंदी की संयुक्त संख्याओं में 'एक' के कई रूप मिलते हैं, यथा :– 'इक, इक्क, इक्या, ग्या'।

इक : परवर्ती बलाघात के कारण हिंदी 'एक' का 'इक' होता है। यह रूप हिंदी में चार संयुक्त संख्याओं में उपलब्ध है, यथाः– इकतीस (३१), इकतालीस (४१), इकसठ (६१), इकहत्तर (७१)।

इक्क : हिंदी में केवल एक ही संख्या 'इक्कीस (२१)' में 'इक्क' रूप प्राप्त है। 'इक्क' में संयुक्त 'क्क' परवर्ती सम्पर्कित 'ईस (इक+ईस)' के 'ई' स्वर पर बलाघात होने के कारण है।

इक्या : यह रूप हिंदी में तीन संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथाः– इक्यावन (५१), इक्यासी (८१), इक्यानबे (९१)। 'इक्यावन, इक्यानबे' में संस्कृत 'द्वापंचाशत्, द्वानवति' के 'आ' का तथा 'इक्यासी' में संस्कृत 'एकाशीति' के 'आ' का प्रभाव माना है तथा 'इक्य' में 'य्' श्रुति मानी है[३]।

डा. भोलानाथ तिवारी ने 'दो' संख्या के विवरण में 'ब' तथा 'बा' अलग–अलग दो रूप माने हैं[४]। उसी प्रकार यहाँ भी 'इक्य' तथा 'इक्या' अलग–अलग दो रूप मानते तो अच्छा होता; अथवा 'दो' संख्या के विवरण में केवल एक ही 'ब' रूप मानकर 'बा' में 'आ' 'द्वादश, द्वाविंशति' से प्रभावित मानते तो अच्छा होता।

ग्या : हिंदी में एक ही संयुक्त संख्या 'ग्यारह (११)' में 'ग्या' प्राप्त है। 'ग्यारह' का 'ग्या' अंश प्राकृत के 'एग्यारह' के 'एगा' अंश से प्रभावित है। 'ग्या' में 'आ' संस्कृत 'एकादश' के 'आ' से प्रभावित है।

हिंदी में संयुक्त–असंयुक्त संख्याओं के सिवा अन्यत्र समास वृत्ति में 'एक' के 'एक, अक' रूप मिलते हैं, यथा –

एक : एकता, एकला, एकाकी, एकरस, एकहत्था
अक : अकेला, अकेहरा

कोंकणी : एक

कोंकणी 'एक' हिंदी 'एक' की तरह विकसित है, यथा :– सं. एकः> पा. एको > प्रा. एक्को > अप. एक > कों. एक। कोंकणी की संयुक्त संख्याओं में 'एक' के 'कई रूप मिलते हैं, यथा :– 'इक, एक, एका, एके, एक्य'।

इक : यह रूप कोंकणी में एक ही संयुक्त संख्या 'इकरा (११)' में प्राप्त है। कोंकणी 'इक' में 'इ' हिंदी 'इक' की तरह परवर्ती बलाघात के कारण माना जा सकता है।

इसके सिवा ' इक ' रूप ' इकु(को)णीस (१९)' आदि संयुक्त संख्याओं में भी प्राप्त है (देखिए, पृ. २९८)। ' इकरा ' के बदले कोंकणी में ' अकरा ' भी रूप मिलता है। अकरा में ' अक ' अंश संस्कृत ' एक ' का ही रूपान्तर है। यह अंश हिंदी में समास वृत्ति में प्राप्त होने वाले ' अकेला, अकेहरा ' में प्राप्त ' अक ' अंश से साम्य रखता है।

एक : यह रूप कोंकणी में तीन संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा :– एकवीस (२१), एकतीस (३१), एकसट(श्ट) (६१)। इन संयुक्त संख्याओं में प्राप्त होने वाला ' एक ' रूप तथा असंयुक्त संख्या ' एक (१) ' में प्राप्त होने वाला ' एक ' रूप समान है।

एका : यह रूप केवल एक ही संख्या ' एकावन(५१) ' में प्राप्त है। ' एकावन ' में ' आ ' संस्कृत ' द्वापंचाशत् ' से प्रभावित है।

एके : यह रूप केवल एक ही संख्या ' एकेचाळीस (' एकेचाळ ' भी ; ४१) ' में उपलब्ध है। ' एके ' में ' ए ' श्रुति है। यह ' ए ' श्रुति ' एकेचाळीस (४१)'से लेकर ' अठ्ठेचाळीस (४८)' तक की संख्या में प्राप्त है।

एक्य : यह रूप कोंकणी में तीन संयुक्त संख्याओं में उपलब्ध है, यथा :– एक्यात्तर (७१), एक्यांयशीं (८१), एक्याणव्वद (' एक्याण्णव ' भी; ९१)। ' एक्यात्तर ' में ' आ ' संस्कृत ' एकसप्तति ' के ' स् ' से प्राप्त है। ऊष्म (श्, ष्, स्) व्यंजनों के स्थान ' ह ' होकर ' आ ' में परिवर्तित होने की प्रवृत्ति कोंकणी में दिखायी देती है, यथा :– सं. एकादश > प्रा. एकारह > कों. इकरा; सं. दश > प्रा. दह > कों. धा। ' एक्यांयशीं ' तथा ' एक्याण्णव (एक्याणव्वद) ' में ' आ ' हिंदी ' इक्यासी ' तथा ' इक्यानबे ' की तरह संस्कृत ' एकाशीति ' तथा ' द्वानवति से प्रभावित है। हिंदी ' इक्य ' में प्राप्त ' य् ' श्रुति प्रायः उसके पूर्व-स्वर ' इ ' के कारण मानी गयी है। परंतु कोंकणी में यह कारण नहीं माना जाना चाहिए ; क्यों कि कोंकणी की ' एक्यात्तर (७१) ' संख्या से लेकर [शात्तर (७६), इकु(को)णऐंशीं (७९), ऐंशीं (८०), शांयशीं (८६), इकु(को)ण्णवद (८९), णव्वद (९०), शाण्णवद (शाण्णव, ९६) संख्याओं को छोडकर] ' नव्याण्णव (९९)' तक की संख्याओं में ' य् ' श्रुति उपलब्ध है। अतः इसे केवल श्रुति के रूप में मानना उचित होगा।

यहाँ एक और संभावना हो सकती है। संस्कृत ' द्विसप्तति, त्रिसप्तति, द्विनवति, त्रिनवति ' में प्राप्त ' इ ' से ' य् ' का विकास माना जाए। ' द्व्यशीति, त्र्यशीति ' में तो प्रत्यक्ष ' य् ' प्राप्त है। इस प्रकार इस ' य् ' का प्रभाव उपर्युक्त सभी संख्याओं में मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

कोंकणी में संयुक्त-असंयुक्त संख्याओं को छोडकर अन्यत्र समास वृत्ति में ' एक ' रूप भी मिलता है, यथा :–

एक : एकलो, एकटो, एकमुळो, एकसुरो, एकवट, एकदां

× × ×

उपर्युक्त हिंदी ' एक ' तथा कोंकणी ' एक ' और उनके रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं, यथा :–

१) ' एक ' रूप हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से उपलब्ध है। वह हिंदी की संख्या (एक) में तथा कोंकणी की चार संख्याओं (एक, एकवीस, एकतीस, एकसठ) में प्राप्त है।

२) इसी प्रकार ' इक ' रूप हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से उपलब्ध है। वह हिंदी की चार संख्याओं (इकतीस, इकतालीस इकसठ, इकहत्तर) में तथा कोंकणी की एक संख्या (इकरा) में प्राप्त है। इसके सिवा कोंकणी के ' इकु(को)णीस ' आदि में भी यह रूप प्राप्त है।

३) हिंदी ' इक्य ' तथा कोंकणी ' एक्य ' में थोडी–सी समानता है।

४) शेष हिंदी के ' इक्क ' और ' ग्या ' रूपों तथा कोंकणी के ' एका ' और ' एके ' रूपों में किसी प्रकार की समानता नहीं पायी जाती।

५) हिंदी की चार संयुक्त संख्याओं में प्राप्त होने वाले ' एक ' शब्द से बने रूपों में ' आ ' दिखायी देता है, यथा :– ग्यारह, इक्यावन, इक्यासी, इक्यानबे। इसी प्रकार कोंकणी की चार संयुक्त संख्याओं में भी ' आ ' प्राप्त है, यथा :– एकावन, एक्यात्तर, एक्यांयशीं, एक्याण्णव (एक्याणव्वद)। इन चारों में तीन संख्याओं में प्राप्त होने वाला ' आ ' हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से विकसित है।

६) हिंदी तथा कोंकणी की समास वृत्ति में ' एक ' रूप भी उपलब्ध है।

हिंदी ' दो ' तथा कोंकणी ' दोन '

हिंदी : दो

सं. द्वौ > पा. दुवे, द्वे > प्रा. दो, दोण्णि > अप. दो, * दोण्णि > हिं. दो। प्राकृत ' दोण्णि ' में संस्कृत नपुंसकलिंग के ' त्रीणि ' के ' णि ' का प्रभाव है। ' दोण्णि ' का ' दोन ' हिंदी के ' दोनों ' शब्द में प्राप्त है। यह हिंदी के ' तीनों ' शब्द के प्रभाव से भी माना जा सकता है। संस्कृत के ' द्वौ ' के ' व् ' लोप से हिंदी में ' दो ' रूप विकसित है जो हिंदी की असंयुक्त संख्या ' दो (=२) ' में प्राप्त है। परंतु संस्कृत ' द्वौ ' के ' द् ' का लोप होकर ' व ' अंश ' ब ' रूप में हिंदी की संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है। हिंदी की संयुक्त संख्याओं में ' ब ' के दो रूप माने हैं[६], यथा :– ' ब ' तथा ' बा '।

ब : यह रूप हिंदी में चार संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा :– बत्तीस (३२), बयालीस (४२), बहत्तर (७२), बयासी (८२)।

हिंदी ' ब ' संस्कृत के ' द्व्यशीति, द्विचत्वारिंशत् ' या ' द्वादश ' के ' द्व्य, द्वि ' या ' द्वा ' से विकसित माना जा सकता है। संस्कृत ' त्रिंशत् ' के ' र ' लोप से ' तीस ' रूप सिद्ध होता है जो ' तैंतीस, चौंतीस, पैंतीस, सैंतीस ' तथा ' अडतीस ' में प्राप्त है। परंतु ' द्वात्रिंशत् ' के ' द्वा ' से ह्रस्व ' ब ' निष्पन्न होता है जिससे क्षतिपूरक बलाघात के कारण ' बत्तीस ' में संयुक्त ' त्त ' प्राप्त है। इसका प्रभाव ' एकत्तीस (' इकतीस ' भी) ' में

हुआ है । 'छत्तीस' में 'षट्त्रिंशत्' के 'ष' का बलाघात कारण है । कदाचित् 'द्वात्रिंशत्' से 'बातीस' होकर 'बत्तीस' होने की भी संभावना है । 'बयालीस' तथा 'बयासी' में 'य्' श्रुति है ।

बा : यह रूप हिंदी में पाँच संयुक्त संख्याओं में उपलब्ध है, यथा :– बारह (१२), बाईस (२२), बावन (५२), बासठ (६२), बानबे (९२) । हिंदी 'बा' में 'आ' संस्कृत 'द्वादश, द्वाविंशति' आदि के 'आ' से प्राप्त है ।

हिंदी में संयुक्त-असंयुक्त संख्याओं के सिवा अन्यत्र समास वृत्ति में 'दो' के 'दु, दू, दो, दोन' रूप मिलते हैं, यथा :–

दु : दुभाषिया, दुधारी, दुगुना, दुदल, दुपहरी
दू : दूसरा, दूजा, दूना
दो : दोपहर, दोबारा, दो–एक, दो–चार
दोन : दोनों

यहाँ हिंदी 'दोनों' के संबंध में कुछ विचार करना जरूरी है । इस 'दोनों' में 'न' कहाँ से प्राप्त है ? संख्यावाची 'दो' शब्द में तो 'न' नहीं है । हिंदी समास वृत्ति में 'दोनों' के सिवा अन्यत्र 'दोन' शब्द उपलब्ध नहीं है । फिर भी 'दोन' शब्द माने बिना 'दोनों' रूप की सिद्धि नहीं हो सकती । जिस प्रकार 'तीन' में समुदायवाचक विशेषण का 'ओं' प्रत्यय लगाकर 'तीनों' रूप सिद्ध होता है उस प्रकार केवल 'दो' में 'ओं' जोडकर 'दोनों' रूप सिद्ध नहीं हो सकता ।

अत एव ऊपर 'दो' शब्द का विकास दिखाते समय प्राकृत, अपभ्रंश में प्राप्त 'दो' और 'दोण्णि' रूप दिखाये हैं । इनमें 'दोण्णि' से हिंदी में 'दोन' विकसित होने की बात स्पष्ट होती है । समुदाय संख्यावाचक विशेषण का 'ओं' प्रत्यय केवल 'तीनों' और 'दोनों' में प्राप्त नहीं है बल्कि 'चारों, छहों, सोलहों, हजारों' आदि रूपों में भी प्राप्त है । हिंदी के नालंदा विशाल शब्द सागर में 'दोन' शब्द के अनेक अर्थ हैं । उनमें 'दो वस्तुओं का मेल' भी अर्थ दिया है । अतः हिंदी में 'दोन' शब्द स्वीकृत होगा।

कोंकणी : दोन

सं. द्वौ > पा. दुवे, द्वे > प्रा. दोण्णि > अप. * दोण्णि > कों. दोन । प्रा. 'दोण्णि' में संस्कृत के नपुं. त्रीणि > पा. नपुं. तीणि > प्रा. तिण्णि के 'ण्णि' का प्रभाव है, जिससे अपभ्रंश के द्वारा कोंकणी में 'न' प्राप्त होकर 'दोन(२)' रूप विकसित है । परंतु 'द्वौ' के 'द्' का लोप होकर 'व्' अंश 'ब्' रूप में विकसित है, जो कोंकणी की संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है । कोंकणी की संयुक्त संख्याओं में 'ब' के कई रूप मिलते हैं, यथा :– 'ब, बा, बे, बैं, ब्य' ।

ब : यह रूप कोंकणी में एक ही संयुक्त संख्या 'बत्तीस (३२)' में प्राप्त है । इसमें

संयुक्त ' त्त ' हिंदी ' बत्तीस ' की तरह प्राप्त है ।

बा : यह रूप कोंकणी में तीन संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा :– बारा (१२), बावीस (२२), बावन (५२) ।

बे : कोंकणी में एक ही संख्या ' बेचाळीस (' बेचाळ ' भी; ४२) ' में ' बे ' रूप प्राप्त है । ' एकेचाळीस(ळ) ' आदि में प्राप्त ' ए ' का प्रभाव ' ब ' पर होकर ' बे ' हुआ है । कोंकणी में कभी-कभी ' बावेचाळ(ळीस) ' बोला जाता है । इसमें ' व् ' श्रुति ' चोवेचाळीस (४४) ' में प्राप्त ' व् ' से प्रभावित है । ' चोवेचाळीस ' में ' व् ' श्रुति संस्कृत ' चतुश्चत्वारिंशत् ' में प्राप्त ' उ ' के प्रभाव से प्राप्त है ।

बैं : यह रूप कोंकणी में एक ही संख्या ' बैंसट (' बैंसश्ट ' भी; ६२) ' में प्राप्त है । इसमें ' ऐं ' रूप ' पैंसट, त्रैंसट ' से प्रभावित है । ' बैंसट ' के बदले ' बांसट(श्ट) ' भी सुनायी पडता है ।

ब्य : यह रूप कोंकणी में तीन संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा :– ब्यात्तर (७२), ब्यांयशीं (८२), ब्याण्णव (९२) । ' ब्य ' में प्राप्त ' य् ' श्रुति को ' त्र्यात्तर (७३) ' आदि से प्रभावित माना गया है (देखिए, कोंकणी ' एक्य ', पृ. २८१) । इनमें प्राप्त ' आ ' की बात भी वहीं स्पष्ट की है ।

कोंकणी में संयुक्त–असंयुक्त संख्याओं को छोडकर अन्यत्र समास वृत्ति में 'दन, दु, दो, दोन ' रूप मिलते हैं, यथा:–

दन : दनपार (इसका ' दंपार ' भी होता है)

दु : दुसरो, दुप्पट, दुधारी, दुभाशी, दुतोंडी

दो : दोपदर, दोग, दो–दोग, दो–दोन

दोन : दोनदां, दोनशीं

× × ×

उपर्युक्त हिंदी ' दो ' तथा कोंकणी ' दोन ' और उनके रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) ' ब ' रूप हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से उपलब्ध है । वह हिंदी की चार संख्याओं (बत्तीस, बयालीस, बहत्तर, बयासी) में तथा कोंकणी की एक संख्या (बत्तीस) में प्राप्त है ।

(२) इसी प्रकार ' बा ' रूप हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से उपलब्ध है । वह हिंदी की पाँच संख्याओं (बारह, बाईस, बावन, बासठ, बानबे) में तथा कोंकणी की तीन संख्याओं (बारा, बावीस और बावन) में प्राप्त है ।

(३) शेष हिंदी का ' दो ' रूप तथा कोंकणी के ' दोन, बे, बैं, ब्य ' रूपों में कम समानता पायी जाती ।

(४) हिंदी तथा कोंकणी की समास वृत्ति में ' दु, दो, दोन ' रूप समान रूप से उपलब्ध हैं।

(५) समास वृत्ति में प्राप्त हिंदी ' दू ' रूप कोंकणी में उपलब्ध नहीं है तो कोंकणी ' दन ' रूप हिंदी में प्राप्त नहीं है।

हिंदी ' तीन ' तथा कोंकणी ' तीन '

हिंदी : तीन

हिंदी ' तीन ' का विकास संस्कृत ' त्रीणि ' से है। सं. त्रीणि > पा. तीणि > प्रा. तिण्णि > अप. तिण्णि > हिं. तीन। हिंदी की संयुक्त संख्याओं में ' तीन ' के कई रूप प्राप्त हैं, यथा :– ' ति, तिर, ते, तें (तैं) '।

ति : यह रूप हिंदी में एक ही संयुक्त संख्या ' तिहत्तर (७३) ' में प्राप्त है। यह संस्कृत ' त्रि ' से विकसित है।

तिर : यह रूप हिंदी में चार संयुक्त संख्याओं में उपलब्ध है, यथा :– तिरपन (५३), तिरसठ (६३), तिरासी (८३), तिरानबे (९३)। संस्कृत के ' त्रि ' रूप में स्वरागम होकर ' तिर ' विकसित है। बीम्स ने ' र ' को आगम माना है [७]।

डा. चटर्जी ने ' तिरासी ' में ' र ' आगम ' चौरासी ' के प्रभाव से माना है [८]।

परंतु डा. भोलानाथ तिवारी प्राकृत–अपभ्रंश काल में फिर से संस्कृत ' त्रि ' का प्रभाव मानते हैं [९]।

अत एव कोंकणी में संस्कृत ' त्रि ' के स्पष्ट ही ' त्रे, त्रें, त्रैं ' और ' त्र्य ' रूप दिखायी देते हैं। इतना ही नहीं, प्राकृत–अपभ्रंश काल में फिर से संस्कृत ' त्रि ' का प्रभाव मानने के लिए कोंकणी के ' त्रे, त्रें ' आदि रूप प्रमाण हो सकते हैं। अतः हिंदी में ' तिरपन, तिरसठ ' के बदले ' त्रेप्पन, त्रेसठ ' रूपों का भी प्रयोग होता है [१०]। ये रूप कोंकणी के ' त्रेप्पन, त्रेंसट ' रूपों से साम्य रखते हैं।

ते : यह रूप हिंदी में दो संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा :– तेरह (१३), तेईस (२३)। ' त्रि ' के ' र् ' लोप तथा ' इ ' का ' ए ' होने से ' ते ' रूप विकसित है।

तें (तैं) : यह रूप हिंदी में दो संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा :– तें (तैं) तीस (३३), तें (तैं) तालीस (४३)। ' तें ' या ' तैं ' में अनुनासिकता संस्कृत ' त्रयस्त्रिंशत् ' तथा ' त्रिचत्वारिंशत् ' से प्रभावित मानी जा सकती है। एक अन्य संभावना भी हो सकती है। डा. भोलानाथ तिवारी ने ' चौं ' में अनुनासिकता ' पैंतीस, पैंसठ ' के प्रभाव–स्वरूप मानी है [११]। यही प्रभाव ' तें(तैं)तीस, तें(तैं)तालीस ' में भी माना जा सकता है। इससे ' तैंतीस, तैंतालीस ' में भी ' ऐं ' की उपपत्ति हो सकती है। ' ऐं ' का ' एं ' होने से ' तेंतीस, तेंतालीस ' भी निष्पन्न हो सकते हैं।

हिंदी में संयुक्त-असंयुक्त संख्याओं के सिवा अन्यत्र समास वृत्ति में 'तीन' के 'ति, तिन, ती, तीन, ते' रूप मिलते हैं, यथा –

ति : तिपाई, तिगुना, तिमाही, तिपुरी, तिकोना

तिन : तिनतरफा, तिनपह़ला

ती : तीसरा, तीज

तीन : तीनों, तीनलडी

ते : तेहरा, तेहराना

कोंकणी : तीन

सं. त्रीणि > पा. तीणि>प्रा. तिण्णि > अप. तिण्णि > कों. तीन। कोंकणी की संयुक्त संख्याओं में 'तीन' के विभिन्न रूप प्राप्त हैं, यथा :– 'ते, त्रे, त्रें (त्रैं), त्र्या'।

ते : यह रूप कोंकणी में तीन संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा :– तेरा (१३), तेवीस (२३), तेत्तीस(३३)।'तेवीस' को कभी-कभी 'त्रेवीस' भी कहा जाता है।'तेत्तीस' में संयुक्त 'त्त' बत्तीस से प्रभावित है। कोंकणी की 'एकतीस, चौतीस' और 'पस्तीस' संख्याओं को छोड दिया जाए तो 'बत्तीस, तेत्तीस, छत्तीस, सात्तीस' और 'आट्टी(ठ्ठी)स' संख्याओं में संयुक्त 'त्त' और 'ट्ट' प्राप्त है। 'छत्तीस, सात्तीस, आट्टीस' में प्राप्त संयुक्त 'त्त , ट्ट' प्रायः संस्कृत 'षड्त्रिंशत्, सप्तत्रिंशत्, अष्टत्रिंशत्' के प्रथम अक्षर पर होने वाले बलाघात से माना जा सकता है।

त्रे : यह रूप कोंकणी में दो संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा :– त्रेप्पन (५३), त्रेचाळीस (४३)। कभी-कभी 'त्रेचाळीस' के बदले 'त्रे(ते)वेचाळीस' का भी प्रयोग होता है। 'त्रेवेचाळीस' में 'व' अंश 'चोवेचाळीस (४४)' से प्रभावित है। 'वे' में 'ए' श्रुति है (देखिए, कोंकणी 'एके',पृ. २८१)।

त्रें (त्रैं) : यह रूप कोंकणी में एक ही संयुक्त संख्या 'त्रें (त्रैं)सट (६३)' में प्राप्त है। 'त्रें' या 'त्रैं' में अनुनासिकता 'पैंसट' के 'ऐं' से प्रभावित मानी जा सकती है।

त्र्या : कोंकणी में तीन संयुक्त संख्याओं में 'त्र्या' रूप प्राप्त है, यथा :– त्र्यात्तर (७३), त्र्या(त्र्यां)यशीं (८३), त्र्याण्णवद (९३)। इनमें 'आ' स्वर तथा 'य' व्यंजन प्राप्त है (देखिए, कोंकणी 'एक्य',पृ. २८१)।

कोंकणी में संयुक्त–असंयुक्त संख्याओं को छोडकर अन्यत्र समासवृत्ति में 'तीन' के कई रूप मिलते हैं, यथा :– 'ति, तिन ('तिळ' भी), तिर, ती'

ति : तिप्पट, तिसरो, तिमाही, तिकोनी, तिसाल, तिपेट

तिन : तिनकातर, तिनपार, तिनपानी , तिनसांज ('तिनसांज' के बदले 'तिळसांज' तथा 'तिळसान' भी कोंकणी में प्राप्त है।)

तिर : तिरकूट, तिरफळ, तिरजटा, तिरोदस।

ती : तीग

ते : तेग, तेफळ।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी ' तीन ' तथा कोंकणी ' तीन ' और उनके रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) ' तीन ' रूप हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से उपलब्ध है। वह हिंदी तथा कोंकणी की एक ही संख्या (तीन) में प्राप्त है।

(२) इसी प्रकार ' ते ' रूप हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से उपलब्ध है। वह हिंदी की दो संख्याओं (तेरह, तेईस) में तथा कोंकणी की तीन संख्याओं (तेरा, तेवीस, तेत्तीस) में प्राप्त है।

(३) शेष हिंदी के ' ति, तिर ' और ' तें(तैं) ' रूपों तथा कोंकणी के ' त्रे, त्र्या ' और ' त्रें (त्रैं) ' रूपों में कम समानता पायी जाती है।

साधारणतया डा. उदयनारायण तिवारी के द्वारा संगृहीत ' त्रेप्पन, त्रेसठ ' रूपों को स्वीकार किया जाए तो इनमें प्राप्त ' त्रे ' रूप तथा कोंकणी में प्राप्त ' त्रे ' रूप में समानता पायी जाती है।

(४) हिंदी तथा कोंकणी की समास वृत्ति में ' ति, तिन, ती, ते ' रूप समान रूप से उपलब्ध हैं।

(५) समास वृत्ति में प्राप्त शेष हिंदी का ' तीन ' रूपों तथा कोंकणी के ' तिर ' रूपें में कम समानता प्राप्त है।

हिंदी ' चार ' तथा कोंकणी ' चार '

हिंदी : चार

सं. चत्वारि > पा., प्रा. चत्तारि > अप. चयारि, चारि > हिं. चार। हिंदी की संयुक्त संख्याओं में ' चार ' के अर्थ में संस्कृत ' चतुर् ' से विकसित कई रूप मिलते हैं, यथा :– ' चौ, चौं, चौर '।

चौ : यह हिंदी में पाँच संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा :– चौदह (१४), चौबीस (२४), चौवालीस (४४), चौवन (५४) , चौहत्तर (७४)। ' चौवालीस ' में ' व् ' श्रुति है। संकृत ' चतुर् ' का अपभ्रंश में ' चउ ' होता है[१२]। इसका ' चौ ' होता है। ' चौ ' के उच्चारण के अन्त में श्रवण होने वाले ' व् ' में संस्कृत ' चत्वारिंशत् ' से विकसित ' आलीस ' मिलकर ' चौवालीस ' होता है, जिसमें ' व् ' स्पष्ट सुनायी पडता है। अत एव हिंदी में ' चवालीस ' भी प्राप्त है जो ' चौ ' का ' चव् ' रूपान्तर है।

चौं : यह रूप हिंदी में दो संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा :– चौंतीस (३४), चौंसठ (६४)। इनमें अनुनासिकता 'पैंतीस, पैंसठ' के प्रभाव–स्वरूप मानी है[13]।

चौर : यह रूप हिंदी में दो संयुक्त संख्याओं में उपलब्ध है, यथा :– चौरासी (८४), चौरानबे (९४)।

हिंदी में संयुक्त–असंयुक्त संख्याओं के सिवा अन्यत्र समास वृत्ति में 'चार' के 'चार, चौ' रूप मिलते हैं, यथा –

चार : चारपाई, चारखाना, चारगुना
चौ : चौकन्ना, चौखट, चौगुना, चौथा

कोंकणी : चार

सं. चत्वारि > पा., प्रा. चत्तारि > अप. चयारि, चारि > कों. चार। कोंकणी की संयुक्त संख्याओं में चार के अर्थ में संस्कृत 'चतुर्' से विकसित कई रूप प्राप्त हैं, यथा :– 'चो, चौ, चौं, चौद्'।

चो : कोंकणी में दो संयुक्त संख्याओं में 'चो' प्राप्त है, यथा :– चोवीस (२४), चोवेचाळीस (४४)। चोवेचाळीस में 'व्' श्रुति है जिस प्रकार हिंदी 'चौवालीस' में प्राप्त है। यहाँ 'ए' भी श्रुति मानी है (देखिए, कोंकणी 'एके' पृ. २८१)।

चौ : यह रूप कोंकणी में तीन संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथाः – चौदा (१४), चौतीस (३४), चौपन (५४)। कभी–कभी इनका 'चवदा, चवतीस, चवपन' भी होता है।

चौं : कोंकणी में केवल एक ही संयुक्त संख्या 'चौंसट (६४)' में 'चौं' रूप उपलब्ध है। इसमें अनुनासिकता हिंदी 'चौंसठ' की तरह 'पैंसट (६५)' के प्रभाव–स्वरूप है।

चौद् : यह रूप कोंकणी में तीन संयुक्त संख्याओं में उपलब्ध है, यथाः– चौद्यात्तर (७४), चौद्यांयशीं (८४), चौद्याणव (९४)। संस्कृत 'चतुर्' से विकसित 'चउर्' में 'र्' के स्थान 'ल्' होकर पश्चात् 'चौद्' में 'द्' होने की संभावना है। इसलिए कोंकणी में 'चौऱ्यात्तर, चौल्यात्तर' भी बोला जाता है।

कोंकणी में संयुक्त–असंयुक्त संख्याओं के सिवा अन्यत्र समास वृत्ति में 'चार' के 'चार, चौ, चव, चवा' रूप मिलते हैं, यथा –

चार : चारपट, चारदां, चारचौग, चारपेडी
चौ : चौकोनी, चौखट, चौपट, चौथो, चौक, चौपदरी
चव : चवथ, चवदांडी, चवड ($४\frac{१}{२}$)
चवा : चवाय, चवाठो, चवाळ.

× × ×

उपर्युक्त हिंदी ' चार ' तथा कोंकणी ' चार ' और उनके रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) ' चार ' रूप हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से उपलब्ध है। वह हिंदी की एक संख्या (चार) में तथा कोंकणी की एक संख्या (चार) में प्राप्त है।

(२) ' चौ ' रूप हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से प्राप्त है। वह हिंदी की पाँच संख्याओं (चौदह, चौबीस, चौवालीस, चौवन, चौहत्तर) में तथा कोंकणी की तीन संख्याओं (चौदा, चौतीस, चौपन) में प्राप्त है।

(३) इसी प्रकार ' चौं ' रूप हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से उपलब्ध है। वह हिंदी की दो संख्याओं(चौंतीस,चौंसठ) में तथा कोंकणी की एक ही संख्या(चौंसट) में प्राप्त है।

(४) शेष हिंदी के ' चौर् ' तथा कोंकणी के ' चो(चोवे) ' और ' चौद् ' में असमानता कम पायी जाती है।

साधारणतया कोंकणी ' चौऱ्यात्तर ' आदि संख्याओं में प्राप्त ' चौर् ' रूप स्वीकारा जाए तो हिंदी ' चौर् ' तथा कोंकणी ' चौर् ' में समानता पायी जाती है।

(५) समास वृत्ति में प्राप्त होने वाले ' चार ' और ' चौ ' रूप हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से प्राप्त हैं।

(६) कोंकणी की समास वृत्ति में प्राप्त ' चव , चवा ' रूप हिंदी में उपलब्ध नहीं हैं।

हिंदी ' पाँच ' तथा कोंकणी 'पांच'

हिंदी : पाँच

सं. पञ्च > पा., प्रा., अप. पंच > हिं. पाँच। हिंदी की संयुक्त संख्याओं में संस्कृत ' पञ्च ' से विकसित कई रूप प्राप्त हैं, यथा :– ' पन् , पैं, पच '।

पन् : हिंदी में एक ही संयुक्त संख्या ' पन्द्रह (१५) ' में ' पन् ' रूप प्राप्त है। ' पन्द्रह ' में ' द ' आगम माना है [१४]।

पैं : हिंदी में तीन संयुक्त संख्याओं में ' पैं ' रूप प्राप्त है। यथा :– पैंतीस (३५), पैंतालीस (४५), पैंसठ (६५)। ' पैं ' का विकास संस्कृत ' पञ्च ' में ' च ' लोप, उसके स्थान ' अ ' , फिर वहाँ ' य ' श्रुति (पँयँ > पैं) से माना गया हैं [१५]। परंतु यहाँ ' य ' श्रुति के बिना भी ' पञ्च ' के ' च ' लोप से ' पञ् ' से ' पैं ' रूप विकसित होने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

पच : यह रूप हिंदी में पाँच संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा :– पचीस (२५), पचपन (५५), पचहत्तर (७५), पचासी (८५), पचानबे (९५)। ' पच ' ' पंच ' का अनुनासिकता-विहीन रूप है।

हिंदी में संयुक्त–असंयुक्त संख्याओं के सिवा अन्यत्र समास वृत्ति में ' पाँच ' के ' पन्(पं), पच , पाँच, पंच ' रूप मिलते हैं, यथा –

पन्(पं) : पन्सेरी (पंसेरी)
पच : पचगुना, पचमेल, पचलोना, पचहरा
पाँच : पाँचगुना, पाँचवाँ, पाँचक
पंच : पंचगुना, पंचमेल, पंचबटी, पंचमेवा, पंचरंगा
डा. भोलानाथ तिवारी हिंदी ' पाँच ' में परवर्ती स्वराघात का कारण मानकर हिंदी ' पंच ' विकसित मानते हैं [१६]।

डा. उदयनारायण तिवारी स्वराघात के निर्बल पडने के कारण ' पंच ' विकसित मानते हैं [१७]।

डा. वर्मा ' पञ्च ' से ' पँच ' का विकास मानते हैं [१८]।

कोंकणी : पांच

सं. पञ्च > पा., प्रा., अप. पंच > कों. पांच । कोंकणी की संयुक्त संख्याओं में संस्कृत ' पञ्च ' से विकसित कई रूप मिलते हैं, यथाः– ' पं, पैं, पंच, पंचा, पंचे, पंच्या, पस् ' ।

पं : कोंकणी में एक ही संयुक्त संख्या ' पंद्रा (१५) ' में ' पं ' रूप प्राप्त है ।

पैं : यह रूप कोंकणी में केवल एक ही संयुक्त संख्या ' पैंसट (' पैंसश्ट ' भी ; ६५) ' में प्राप्त है । ' पैंसट(श्ट) ' के बदले ' पांसट(श्ट)' भी सुनायी पडता है ।

पंच : कोंकणी में एक ही संयुक्त संख्या ' पंचवीस (२५) ' में ' पंच ' रूप प्राप्त है ।

पंचा : यह रूप भी कोंकणी में केवल एक ही संयुक्त संख्या ' पंचावन(५५)' में प्राप्त है । इसमें ' आ ' स्वर ' छाप्पन (छप्पन) , सत्तावन, अट्ठावन ' से प्रभावित माना जा सकता है।

पंचे : यह रूप भी कोंकणी में केवल एक ही संयुक्त संख्या ' पंचेचाळीस (४५) ' में प्राप्त है । इसमें ' ए ' स्वर ' एके ' रूप में प्राप्त ' ए ' के समान प्राप्त है ।
पंच्या : यह रूप कोंकणी में तीन संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथाः– पंच्यात्तर (७५), पंच्यायशीं (८५), पंच्याण्णव (९५) ।

पस् : यह रूप केवल एक ही संख्या ' पस्तीस (३५) ' में प्राप्त है । प्रश्न उठता है, इसमें ' स् ' कहाँ से प्राप्त है ?

यहाँ तीन संभावनाएँ दीखती हैं :– (i) ' पंच ' के अनुस्वार और ' च ' के ' अ ' का लोप तथा ' च् ' का ' स् '; (ii) प्रथम कोंकणी में ' पचतीस ' रूप विकसित हुआ होगा, तदनन्तर अन्त्य ' स् ' के प्रभाव के कारण ' च् ' का ' स् ' (इस स्थिति में भी ' च् ' के ' अ ' का लोप); (iii) ' बत्तीस, तेत्तीस, चौतीस, छत्तीस ' आदि संख्याओं में प्राप्त गुरुत्व (= बलाघात) के कारण ' च ' लोप के अनन्तर ' स् ' श्रुति ।

मंगळूर (कर्नाटक) में ' पस्तीस ' के बदले ' पांतीस ' रूप का व्यवहार होता है । प्रायः इसमें ' पां ' के दीर्घत्व के कारण ' स ' श्रुति नहीं होती है । वस्तुतः कोंकणी में

पस्तीस ' के बदले ' पांतीस ' रूप स्वीकारने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

कोंकणी में संयुक्त–असंयुक्त संख्याओं के सिवा अन्यत्र समास वृत्ति में ' पाँच ' के पांच, पंच ' रूप मिलते हैं, यथा –

पांच : पांचवो, पांचपट, पांच–परतवण

पंच : पंचकोण, पंचरंग, पंचखाद्य, पंचकादाय

× × ×

उपर्युक्त हिंदी ' पाँच ' तथा कोंकणी ' पांच ' और उनके रूपों की तुलना से म्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी ' पाँच ' तथा कोंकणी ' पांच ' रूप में केवल लिखने की दृष्टि से ही अन्तर ; अन्यथा दोनों में साम्य है। वह हिंदी की एक संख्या (पाँच) में तथा कोंकणी की एक ख्या (पांच) में प्राप्त है।

(२) हिंदी ' पन् ' तथा कोंकणी ' पं ' रूप में केवल ' न् ' तथा ' ं ' का भेद है। हिंदी में ' न् ' के बदले ' ं ' लिखा जाता है, यथाः– ' पंद्रह '। तब हिंदी ' पंद्रह ' तथा कोंकणी ' पंद्रा ' में प्राप्त ' पं ' में अन्तर नहीं रहता। हिंदी ' पन् ' एक ही संख्या (पन्द्रह) ं तथा कोंकणी ' पं ' एक ही संख्या (पंद्रा) में प्राप्त है।

(३) ' पैं ' रूप हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से उपलब्ध है। वह हिंदी की तीन ंख्याओं (पैंतीस, पैंतालीस, पैंसठ) में तथा कोंकणी की एक संख्या (पैंसट या पैंसश्ट) में ाप्त है।

(४) शेष हिंदी का ' पच ' रूप तथा कोंकणी के ' पंच, पंचा, पंचे, पंच्या, पस् ' रूपों में समानता कम पायी जाती है।

(५) हिंदी की समास वृत्ति में ' पाँच, पंच ' तथा कोंकणी की समास वृत्ति में ' पांच, ंच ' समान रूप से उपलब्ध हैं।

(६) हिंदी की समास वृत्ति में प्राप्त ' पन् , पच ' रूप कोंकणी की समास वृत्ति में प्राप्त नहीं हैं।

हिंदी ' छः ' तथा कोंकणी ' स '

हिंदी : छः

हिंदी ' छः ' की व्युत्पत्ति में अनेक मतभेद हैं। डा. वर्मा सं. षट् > प्रा. छ से हिंदी ' छः ' का विकास मानते हैं। फिर भी उन्होंने लिखा है कि प्राकृत रूप संस्कृत रूप से कैसे हो गया स्पष्ट नहीं होता [१९]।

डा. चटर्जी ने प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के * क्षष् ' या * क्षक् ' से ' छः ' का संबंध जोडा है [२०]।

डा. भोलानाथ तिवारी सं. ' षट् ' से हिंदी ' छः ' का विकास मानते हैं, यथाः– सं. षट् > पा., प्रा. छ > अप. छह > हिं. छः [२१]।

वस्तुतः सं. ' षट् ' से हिंदी ' छः ' का विकास मानने में किसी को भी आपत्ति अथवा इसके लिए किसी कल्पित रूप को मानने की आवश्कता नहीं होनी चाहिए। सं. ' षट् ' पालि में लिखित रूप में विकसित होने के पूर्व बीच की अवस्था में ' शट् (श्) ' रूप में परिवर्तित हुआ होगा जिसका आगे चलकर पालि में ' छः ' रूप होना संभव है। क्यों कि पालि में ' श् ' व्यंज़न रहा ही नहीं। संस्कृत ' शकट, शिक्य ' शब्दों में ' श् ' का ' छ् ' स्पष्ट दीखता है, जैसे :– ' छकडा, छी(छीं) का '। हाल ही में एक विद्यार्थी ने तो इस प्रकार वाक्य पढा :– ' पतंग उडाने में खुछी(शी) होती है (कक्षा – छठी अ, क्रमांक ३२; ई. स. १९९० – ९१)'। इस वाक्य में ' शी ' के बदले ' छी ' उच्चारण किया गया है। इसी प्रकार कुछ विद्यार्थी संयुक्ताक्षर ' क्ष्(क् + ष्)' का ' छ् ' कर देते हैं, जैसे :– '' छण(क्षण) को छुद्र (क्षुद्र) न समझो भाई ''। इसमें दुर्बलता के कारण ' क् ' का लोप और ' ष् ' का ' छ् ' हुआ है। अर्थात् संस्कृत और पालि के बीच की स्थिति में सं. ' षट् ' से ' शट् ' विकसित हुआ होगा। और उसी ' शट् ' से पालि में ' छ ' विकसित होने की संभावना है।

आज भी हम देखते हैं कि ' ष् ' और ' श् ' में अन्तर करके नहीं बोला जाता। इतना ही नहीं पढे–लिखे आदमी भी ' ष् ' और ' श् ' के उच्चारण में भिन्नता नहीं रखते। अत एव भाषा–भाशा, विषय–विशय, विशेषण–विशेशण आदि शब्द युग्मों के उच्चारण में उनकी दृष्टि से कोई भेद नहीं है। यही स्थिति संस्कृत और पालि के बीच के समय रही होगी। वैदिक काल में ही कुछ वैदिक परंपराओं में ' ष् ' के बदले ' ख् ' उच्चारण करने की प्रथा रही है और वह आजतक चलती आ रही है, जैसे :– ' सहस्रशीर्षा पुरुषः ' के बदले ' सहस्रशीर्खा पुरुखः '। अर्थात् पालि विकसित होने के पूर्व काल में ' ष् ' का ' श् ' होना अशक्य नहीं है। इसी ' शट् (श्) ' से पालि ' छ ' होना आसान है।

डा. भोलानाथ तिवारी पालि–प्राकृत में ' छ ' के उच्चारण में अति–ह्रस्व ' अ ' युक्त अर्थात् * छअ ' जैसे रूप की कल्पना करते हैं [२२]। यदि वे हिंदी ' छः ' में प्राप्त ':(विसर्ग)' आगम के लिए ऐसा मानते हो तो इस प्रकार मानने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। हिंदी में ' लहशून, चूल्हा, दूल्हा, कुल्हाडी ' में ' ह ' आगम की प्राप्ति जिस प्रकार होती है उसी प्रकार ' छ ' में भी ' ह ' आगम प्राप्त होगा। इस ' ह ' का विकल्प से ':(विसर्ग) ' होकर ' छः ' रूप सिद्ध होगा। हिंदी ' छे ' रूप भी हिंदी की उच्चारण – पद्धति (जैसे :– ' कहना – केहना, रहना – रेहना ' आदि) के अनुसार ' छह ' से विकसित है [२३]।

हिंदी की संयुक्त संख्याओं में संस्कृत ' षट् ' से विकसित कई रूप प्राप्त हैं, यथा :– ' सो, छ, छा, छि, छिया '।

सो : हिंदी में एक ही संख्या ' सोलह (१६)' में ' सो ' रूप प्राप्त है। ' सो ' का संबंध सं. ' षोडश ' के ' षो ' से है।

छ : यह रूप हिंदी में तीन संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा :– छब्बीस (२६),

त्तीस (३६), छप्पन (५६)। 'षट्' के 'ट्' लोप से तथा 'छ' के बलाघात के कारण न रूपों में 'ब, त, प' का द्वित्व होता है।

अन्य एक संभावना भी हो सकती है। 'ट्' के समीकरण रूप प्रवृत्ति से भी उपर्युक्त यंजनों में द्वित्व प्राप्त हो सकता है।

छा : यह रूप हिंदी में दो संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा :– छासठ (६६), छानबे (९६)। 'षट्' के 'ट्' लोप तथा क्षतिपूरक दीर्घीकरण से पूर्व–स्वर दीर्घ होकर 'छा' वेकसित होता है। 'छासठ, छानबे' के लिए 'छिया' – युक्त रूपों का भी प्रयोग होता है, यथा :– 'छियासठ, छियानबे'।

छि : हिंदी में एक ही संयुक्त संख्या 'छिहत्तर (७६)' में 'छि' रूप प्राप्त है। 'छिहत्तर' में 'छि' की 'इ' परवर्ती 'ह' के कारण मानी है।

छिया : यह रूप हिंदी में दो संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा:– छियालीस (४६), छियासी (८६)। उपर्युक्त प्रकार से 'छियासठ, छियानबे' में भी 'छिया' स्वीकारा जाए तो यह रूप चार संख्याओं में प्राप्त मानना होगा।

हिंदी में संयुक्त-असंयुक्त संख्याओं के सिवा अन्यत्र समास वृत्ति में 'छ' रूप प्राप्त है, यथा –

छ : छठ, छमाशी, छमुख

कोंकणी : स

सं. षट् > पा., प्रा. छ > अप. छह > कों. स। कोंकणी की संयुक्त संख्याओं में संस्कृत 'षट्' से विकसित कई रूप प्राप्त हैं, यथा :– 'सो, छ, स, सवे, शा, सैं'।

सो : कोंकणी में एक ही संयुक्त संख्या 'सोळा (१६)' में 'सो' रूप प्राप्त है। 'सो' का संबंध सं. 'षोडश' के 'षो' से है।

छ : यह रूप कोंकणी में दो संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा :– छत्तीस (३६), छप्पन (५६)। 'छप्पन' के बदले 'छाप्पन' भी बोला जाता है।

स : यह रूप कोंकणी में एक ही संयुक्त संख्या में प्राप्त है, यथा :– सव्वीस (२६)। हिंदी 'छब्बीस' की तरह कोंकणी के 'सव्वीस' में संयुक्त 'व्व' प्राप्त है।

सवे : कोंकणी में एक ही संख्या 'सवेचाळीस (४६)' में 'सवे' रूप प्राप्त है। 'सवे' में 'ए' तथा 'व्' आगम है। इसके बदले 'शेचाळीस' भी रूप प्राप्त है।

शा : यह रूप कोंकणी में तीन संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा :– शात्तर (७६), शांयशीं (८६), शाण्णव ('शाण्णवद' भी ; ९६)। 'शात्तर' के बदले 'छात्तर' का भी प्रयोग होता है; तब 'छा' रूप हिंदी 'छा' (छासठ) से साम्य रखता है।

सैं : यह रूप कोंकणी में एक ही संख्या 'सैंसट (६६)' में प्राप्त है। 'सैंसट' रूप 'पैंसट' से प्रभावित है। 'सैं' के बदले 'सां' का प्रयोग करके 'सांसट (सांसश्ट)' रूप भी व्यवहृत होता है।

कोंकणी में संयुक्त–असंयुक्त संख्याओं के सिवा अन्यत्र समास वृत्ति में ' स ' रू
प्राप्त है, यथाः–

स : समाही, सवो, सपट ।

× × ×

उपर्यक्त हिंद्री ' छः ' तथा कोंकणी ' स ' और उनके रूपों की तुलना
निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं, यथाः–

(१) ' सो ' रूप हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से उपलब्ध है । वह हिंदी की ए
संख्या (सोलह) में तथा कोंकणी की एक संख्या (सोळा) में प्राप्त है ।

(२) इसी प्रकार ' छ ' रूप हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से उपलब्ध है । वह हिंद
की तीन संख्याओं (छब्बीस, छत्तीस, छप्पन) में तथा कोंकणी की दो संख्याओं (छत्तीस,
छप्पन) में प्राप्त है ।

(३) शेष संख्याओं में प्राप्त होने वाले हिंदी के ' छः, छा, छि ' और ' छिया ' रूपो
तथा कोंकणी के ' स, सवे , शा ' और ' सैं ' रूपों में किसी प्रकार की समानता नहीं पायी
जाती ।

साधारणतया कोंकणी में ' शात्तर ' के बदले ' छात्तर ' रूप स्वीकारा जाए तो इसमें
प्राप्त ' छा ' रूप तथा हिंदी में प्राप्त ' छा ' रूप में समानता दीखती है ।

(४) हिंदी की समास वृत्ति में प्राप्त ' छ ' रूप कोंकणी में उपलब्ध नहीं है तो कोंकणी
की समास वृत्ति में प्राप्त ' स ' रूप हिंदी में उपलब्ध नहीं है ।

हिंदी ' सात ' तथा कोंकणी ' सात '

हिंदी : सात

सं. सप्त > पा., प्रा., अप. सत्त > हिं. सात । हिंदी की संयुक्त संख्याओं में इसके
विभिन्न रूप प्राप्त हैं, यथा :– ' सत, सत्ता, सैं, सड(सर) ' ।

सत : हिंदी में दो संयुक्त संख्याओं में ' सत ' रूप प्राप्त है, यथा :– सतरह(' सत्रह'
भी ; १७), सतहत्तर (७७) । परवर्ती स्वराघात के कारण ' सात ' का ' सत ' विकास
माना है [२४] ।

सत्ता : यह रूप हिंदी में चार संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथाः– सत्ताईस (२७),
सत्तावन (५७), सत्तासी (८७), सत्तानबे (९७) । ' सत्ताईस, सत्तावन, सत्तानबे ' में
' आ ' प्राकृत काल में ही ' अट्ठावीसा, अट्ठावण्ण, अट्ठाणउइ ' के प्रभाव से प्राप्त है; तो
' सत्तासी ' में ' अस्सी ' से विकसित ' आसी ' का ' आ ' प्राप्त है । यह ' आ ' इक्यासी
से लेकर नवासी तक के रूपों में प्राप्त है ।

सैं : यह रूप हिंदी में दो संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथाः– सैंतीस (३७), सैंतालीस (४७)।

सड (सर) : हिंदी में एक ही संयुक्त संख्या 'सड(सर)सठ (६७)' में 'सड' या 'सर' रूप प्राप्त है। डा. भोलानाथ तिवारी 'सप्त' के 'त' का 'र' में विकास मानते हैं[२५]। परंतु यह प्राकृत में प्राप्त 'अडसट्ठि' के 'ड' से प्रभावित माना जा सकता है।

हिंदी में संयुक्त-असंयुक्त संख्याओं के सिवा अन्यत्र समास वृत्ति में 'सात, सत' रूप मिलते हैं, यथा –

सात : सातवाँ, सातगुना, सातफेरी, सात–पाँच
सत : सतसई, सतफेरा, सतमासा, सतरंगी

कोंकणी : सात

सं. सप्त > पा., प्रा., अप. सत्त > कों. सात। कोंकणी की संयुक्त संख्याओं में इसके कई रूप उपलब्ध हैं, यथा :– 'सत, सत्त, सत्ते, सत्या, सात्'।

सत : यह रूप कोंकणी की एक ही संयुक्त संख्या 'सतरा (१७)' में प्राप्त है। इसका विकास हिंदी 'सत' की तरह परवर्ती स्वराघात के कारण माना जा सकता है।

सत्त : यह रूप कोंकणी में दो संख्याओं में प्राप्त है, यथा :– सत्तावीस (२७), सत्तावन (५७)। इनमें 'आ' संस्कृत 'अष्टाविंशति, अष्टापंचाशत्' से प्रभावित है।

सत्ते : कोंकणी में एक ही संयुक्त संख्या 'सत्तेचाळीस (४७)' में 'सत्ते' रूप प्राप्त है।

सत्या : यह रूप कोंकणी में तीन संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथाः– सत्यात्तर (७७), सत्यांयशीं (८७), सत्याण्णव (९७)। 'सत्यात्तर' में 'आ' संस्कृत 'सप्तसप्तति' में प्राप्त 'स' के स्थान हुए 'ह' के कारण है। 'सत्यांयशीं' में संस्कृत 'सप्ताशीति' से तथा 'सत्याण्णव' में संस्कृत 'अष्टानवति' से 'आ' प्राप्त है। 'य्' श्रुति है।

सात् : यह रूप कोंकणी में दो संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथाः– सात्तीस (३७), सात्सट ('सात्सश्ट' भी ; ६७)। 'सात' में 'सा' पर बलाघात होने के कारण 'सात्' विकसित है।

कोंकणी में संयुक्त–असंयुक्त संख्याओं के सिवा अन्यत्र समास वृत्ति में 'सात' रूप मिलता है, यथा –
सात : सातवो, सातपट, सात-पांच, सातपुती, सातवीण

× × ×

उपर्युक्त हिंदी ' सात ' तथा कोंकणी ' सात ' और उनके रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) ' सात ' रूप हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से उपलब्ध है। वह हिंदी की एक संख्या (सात) में तथा कोंकणी की एक संख्या (सात) में प्राप्त है।

(२) ' सत ' रूप हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से उपलब्ध है। वह हिंदी की दो संख्याओं (सतरह, सतहत्तर) में तथा कोंकणी की एक ही संख्या (सतरा) में प्राप्त है।

(३) इसी प्रकार ' सत्ता ' रूप भी हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से उपलब्ध है। वह हिंदी की चार संयुक्त संख्याओं (सत्ताईस, सत्तावन, सत्तासी, सत्तानबे) में तथा कोंकणी की दो संयुक्त संख्याओं (सत्तावीस, सत्तावन) में प्राप्त है।

(४) शेष हिंदी के ' सैं ' और ' सड(सर) ' रूपों तथा कोंकणी के ' सत्ते, सत्या ' और ' सात् ' रूपों में किसी प्रकार की समानता नहीं पायी जाती।

(५) हिंदी तथा कोंकणी की समास वृत्ति में ' सात ' रूप भी उपलब्ध है।

(६) हिंदी की समास वृत्ति में उपलब्ध होनेवाला ' सत ' रूप कोंकणी की समास वृत्ति में उपलब्ध नहीं।

हिंदी ' आठ ' तथा कोंकणी ' आठ '

हिंदी : आठ

सं. अष्ट > पा., प्रा., अप. अट्ठ > हिं. आठ। हिंदी की संयुक्त संख्याओं में संस्कृत ' अष्ट ' से विकसित कई रूप प्राप्त हैं, यथाः– ' अठ, अठा, अट्ठा, अड '।

अठ : हिंदी में ' अठ ' रूप एक ही संयुक्त संख्या ' अठहत्तर(७८) ' में प्राप्त है। परवर्ती बलाघात के कारण ' आठ ' का ' अठ ' होता है।

अठा : यह रूप हिंदी में दो संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथाः– अठारह (१८), अठासी (८८)। ' अठा ' में ' आ ' संस्कृत ' अष्टादश, अष्टाशीति ' से प्रभावित है।

अट्ठा : यह रूप हिंदी में तीन संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथाः– अट्ठाईस (२८), अट्ठावन (५८), अट्ठानबे (९८)।

अड : यह रूप हिंदी में तीन संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथाः– अडतीस (३८), अडतालीस (४८), अडसठ (६८)।

हिंदी में संयुक्त-असंयुक्त संख्याओं के सिवा अन्यत्र समास वृत्ति में ' आठ, अठ ' रूप प्राप्त हैं, यथा –

आठ : आठवाँ, आठों

अठ : अठगुना, अठन्नी, अठवारा, अठवाँसा

कोंकणी : आठ

सं. अष्ट > पा., प्रा. , अप. अट्ठ > कों. आठ । कोंकणी की संयुक्त संख्याओं में संस्कृत ' अष्ट ' से विकसित कई रूप प्राप्त हैं, यथा:– ' अठ, अट्ठा, अट्ठे, अट्ठ्या, आड, आट् ' ।

अठ : यह रूप कोंकणी में एक ही संयुक्त संख्या ' अठरा (१८) ' में प्राप्त है । पूर्ववर्ती बलाघात के कारण ' अठ ' विकसित है ।

अट्ठा : यह रूप कोंकणी में दो संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा:– अट्ठावीस (२८), अट्ठावन (५८) ।

अट्ठे : यह रूप कोंकणी की एक ही संयुक्त संख्या ' अट्ठेचाळीस (४८) ' में प्राप्त है ।

अट्ठ्या : यह रूप कोंकणी में तीन संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा:– अट्ठ्यात्तर (७८), अट्ठ्यांयशी (८८), अट्ठ्याण्णव (९८) ।

आड : यह रूप कोंकणी में एक ही संयुक्त संख्या ' आडसट (६८) ' में प्राप्त है । ' आडसठ ' के बदले ' आठसठ ' रूप भी प्रचलित है, परंतु कम ।

आट् : यह रूप भी कोंकणी में एक ही संयुक्त संख्या ' आट्टीस (' आट्ठीस ' भी ; ३८) ' में प्राप्त है । कदाचित् ' आठ ' के ' आ ' पर बलाघात होने के कारण ' ठ ' के ' अ ' का लोप तथा ' ठ ' में अल्पप्राणत्व प्राप्त होता होगा । ' ट् ' के संयोग से ' तीस ' के ' त् ' का भी ' ट् ' होता है, जैसे :– आट्टीस ।

कोंकणी में संयुक्त–असंयुक्त संख्याओं के सिवा अन्यत्र समास वृत्ति में ' आठ ' रूप मिलता है, यथा:–

आठ : ' आठवो, आठपट, आठवडो

× × ×

उपर्युक्त हिंदी ' आठ ' तथा कोंकणी ' आठ ' और उनके रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) ' आठ ' रूप हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से उपलब्ध है । वह हिंदी की एक संख्या (आठ) में तथा कोंकणी की एक संख्या (आठ) में प्राप्त है ।

(२) ' अठ ' रूप भी हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से उपलब्ध है । वह हिंदी की एक संख्या (अठहत्तर) में तथा कोंकणी की एक संख्या (अठरा) में प्राप्त है ।

(३) इसी प्रकार ' अट्ठा ' रूप हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से उपलब्ध है । वह हिंदी की तीन संख्याओं (अट्ठाईस, अट्ठावन, अट्ठानबे) में तथा कोंकणी की दो संख्याओं (अट्ठावीस, अट्ठावन) में प्राप्त है ।

(४) शेष हिंदी के ' अठा ' और ' अड ' रूपों तथा कोंकणी के ' अट्ठे, अट्ठ्या, आड ' और ' आट् ' रूपों में असमानता कम पायी जाती है ।

(५) हिंदी तथा कोंकणी की समास वृत्ति में ' आठ ' रूप प्राप्त है ।

(६) हिंदी की समास वृत्ति में प्राप्त ' अठ ' रूप कोंकणी की समास वृत्ति में उपलब्ध नहीं है ।

हिंदी ' नौ ' तथा कोंकणी ' णव '

हिंदी : नौ

हिंदी ' नौ ' का विकास संस्कृत ' नव ' से है, यथाः– सं. नव > पा. नव > प्रा. णव, नव > अप. णव, नव > हिं. नौ । हिंदी की संयुक्त संख्याओं ' नवासी (८९)' तथा ' निन्यानबे (९९)' में ही संस्कृत ' नव ' के रूप प्राप्त हैं । ये रूप दो हैं, यथाः– ' नव ' तथा ' निन्या (' निना ' या ' निन्ना ' भी) ' ।

नव : हिंदी में एक ही संयुक्त संख्या ' नवासी (८९) ' में ' नव ' रूप प्राप्त है ।

निन्या : यह रूप भी हिंदी में एक ही संयुक्त संख्या ' निन्यानबे (९९)' में प्राप्त है ।
डा. भोलानाथ तिवारी ने ' निन्या ' रूप का विकास संस्कृत नव(९)वाली संख्याओं के शब्दों में प्राप्त दो परंपराओं के परस्पर मिलाप से माना है[२६] ।

हिंदी की शेष संयुक्त संख्याओं में ' नव ' के रूप नहीं मिलते हैं । शेष संयुक्त संख्याएँ बनाते समय हिंदी में ' उन ' शब्द संख्या के पूर्व जोडा जाता है, यथाः– उन्नीस (१९), उन्तीस (२९), उन्तालीस (३९), उनचास(४९), उनसठ(५९), उनहत्तर (६९), उनासी (७९) । हिंदी ' उन ' संस्कृत ' ऊन ' से विकसित है ।

हिंदी में संयुक्त–असंयुक्त संख्याओं के सिवा अन्यत्र समास वृत्ति में ' नौ, न ' रूप मिलते हैं, यथा –

नौ : नौवाँ, नौगुना, नौरतन, नौलखा

न : नहला (' दहला ' के सादृश्य पर)

कोंकणी : णव

सं. नव > पा. नव > प्रा. णव > अप. णव > कों. णव । कोंकणी की संयुक्त संख्या में संस्कृत ' नव ' से विकसित एक रूप प्राप्त है, यथा :– ' णव्या ' ।

णव्या : यह रूप कोंकणी में एक ही संयुक्त संख्या ' णव्याण्णव (९९) ' में प्राप्त है । कोंकणी ' णव्याण्णव ' >अप. णवणवइ < सं. ' नवनवति ' से विकसित है । ' य् ' श्रुति है ।

कोंकणी की शेष संयुक्त संख्याओं में सं. ' नव ' से विकसित कोई रूप नहीं मिलता है । शेष संयुक्त संख्याएँ बनाते समय कोंकणी में ' इकुण ' शब्द असंयुक्त संख्याओं के पूर्व जोडा जाता है, यथाः– इकुणीस (१९) , इकुणटीस (२९), इकुणचाळीस (३९), इकुणपन्नास (४९), इकुणसाठ (५९), इकुणसत्तर (६९), इकुणअंयशीं (७९),

इकुणणव्वद (८९) । इन संख्याओं में ' इकुण ' के बदले ' इकोण ' का भी प्रयोग होता है, यथा :– ' इकोणीस ' आदि । ' इकुणिसाव्या ' के बदले ' युकणिसाव्या ' शब्द भी प्राप्त है [२७]। इसी प्रकार ' इकुणणव्वद ' के बदले ' इकण्याण्योय(८९) ' भी प्राप्त है [२८] । ' इकुणीस ' आदि सभी रूपों में ' एकुण ' का भी प्रचलन है , जैसे :– ' एकुणीस ' आदि । कोंकणी ' इकुण, इकोण , युकण, इकण ' आदि संस्कृत ' एकोन ' से विकसित हैं ।

कोंकणी में संयुक्त-असंयुक्त संख्याओं के सिवा अन्यत्र समास वृत्ति में ' ण ',' णव ' रूप मिलता है, यथा –

ण, णव : णवो, णववो, णवपट

× × ×

उपर्युक्त हिंदी ' नौ ' तथा कोंकणी ' णव ' और उनके रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी की संयुक्त-असंयुक्त संख्याओं में प्राप्त ' नौ, नव ' और ' निन्या ' रूपों तथा कोंकणी की संयुक्त-असंयुक्त संख्याओं में प्राप्त ' णव ' और ' णव्या ' रूपों में समानता नहीं पायी जाती ।

साधारणतया हिंदी ' नव ' तथा कोंकणी ' णव ' से समानता दिखायी जा सकती है, यदि हम ' न ' तथा ' ण ' के उच्चारण स्थान की ओर थोडा दुर्लक्ष करें ।

(२) दहाई में एक कम ऐसी बहुत सी हिंदी संख्याओं में ' उन् , उन , उन्न ' जैसे रूपों का प्रचलन है तो कोंकणी में ' इकुण , इकोण , एकूण ' जैसे रूपों का प्रचलन है । हिंदी तथा कोंकणी के ये रूप संयुक्त संख्याओं में समान पद्धति से जुड जाते हैं । फिर भी हिंदी तथा कोंकणी के इन रूपों में समानता नहीं है ।

(३) हिंदी में तद्भव शब्दों में आदि ' ण् ' प्राप्त नहीं है, परंतु कोंकणी में केवल संख्यावाचक तद्भव शब्दों में आदि ' ण् ' प्राप्त है (विशेष जानकारी के लिए देखिए ' ण् ' व्यंजन , पृ. २९) ।

हिंदी ' दस ' तथा कोंकणी ' धा '

हिंदी : दस

हिंदी ' दस ' का विकास इस प्रकार है :– सं. दश > पा. दस > प्रा. दस, दह > अप. दस, दह > हिं. दस । संस्कृत ' दश ' के विभिन्न रूप हिंदी की संयुक्त संख्याओं में मिलते हैं, यथा :– ' दह, रह, लह, द्रह ' ।

दह : हिंदी में एक ही संयुक्त संख्या ' चौदह (१४)' में ' दह ' रूप प्राप्त है ।

रह : यह रूप हिंदी की पाँच संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथा:– ग्यारह (११), बारह (१२), तेरह (१३), सतरह (१७), अठारह (१८) । संस्कृत ' दश ' के ' द ' का ' ड ' होकर पालि में ही ' र ' हुआ है ।

लह : यह रूप हिंदी में एक ही संयुक्त संख्या 'सोलह (१६)' में प्राप्त है। इसमें 'ल' संस्कृत 'षोडश' के 'ड' से माना जाना चाहिए।

द्रह : यह रूप भी हिंदी में एक ही संयुक्त संख्या 'पन्द्रह (१५)' में प्राप्त है।

डा. भोलानाथ तिवारी ने 'पन्द्रह' में 'वानर > बन्दर' की तरह 'द्' आगम माना है [२९]।

हिंदी में संयुक्त-असंयुक्त संख्याओं को छोडकर अन्यत्र समास वृत्ति में 'दस, दह' रूप प्राप्त हैं, यथा –

दस : दसवाँ, दसों, दसमाथ, दससीस

दह : दहला, दहाई

कोंकणी : धा

सं. दश > पा. दस > प्रा. दस, दह > अप. दस, दह > कों. धा। 'दह' के 'ह्' का लोप होता है। इससे पूर्व व्यंजन महाप्राण बन जाता है, और दोनों 'अ' स्वरों के संयोग से 'आ' होकर कोंकणी में 'धा' रूप विकसित है। इसके लिए बलाघात कारण है। कोंकणी में हिंदी की तरह 'दस' शब्द भी प्राप्त है, जैसे :– दस सल्ले पांच उल्ले.(= जीवन का थोडा ही समय रह गया)। संस्कृत 'दश' के विभिन्न रूप कोंकणी की संयुक्त संख्याओं में उपलब्ध होते हैं, यथाः– 'दा, रा, ळा, दरा'।

दा : यह रूप कोंकणी में एक ही संयुक्त संख्या 'चौदा (१४)' में प्राप्त है। 'चौदा' में 'धा' का रूपान्तर 'दा' हुआ होगा। इसके संबंध में एक और संभावना हो सकती है। 'चौदह' रूप बनने पर 'ह्' का लोप तथा स्वरों के दीर्घीकरण से 'चौदा' हो सकता है।

रा : यह रूप कोंकणी में पाँच संयुक्त संख्याओं में प्राप्त है, यथाः– इकरा (११), बारा(१२), तेरा (१३), सतरा (१७), अठरा (१८)। अपभ्रंश में प्राप्त 'रह' के 'ह्' का लोप होता है और स्वरों का दीर्घीकरण होकर 'रा' विकसित होता है।

ळा : यह रूप कोंकणी में एक ही संयुक्त संख्या 'सोळा(१६)' में प्राप्त है। इसकी व्युत्पत्ति हिंदी 'सोलह' की तरह है। 'लह' के 'ह्' का लोप तथा 'ल' का 'ळ' होने से 'ळा' होता है।

दरा : यह रूप कोंकणी में एक ही संयुक्त संख्या 'पंदरा (१५)' में प्राप्त है। यहाँ 'द्' हिंदी की तरह प्राप्त है। कोंकणी में कभी-कभी 'पंद्रा' भी लिखा जाता है।

कोंकणी में संयुक्त-असंयुक्त संख्याओं को छोडकर अन्यत्र समास वृत्ति में 'धा, दस' रूप मिलते हैं, यथा –

धा : धावो, धापट, धा-धा, धाजाण

दस : दसपट, दसक, दसम, दसरो

× × ×

उपर्युक्त हिंदी ' दस ' तथा कोंकणी ' धा ' और उनके रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी ' दह, रह, लह ' और ' द्रह ' तथा कोंकणी ' दा, रा, ळा ' और ' दरा(द्रा)' में अन्तर है। यह अंतर हिंदी ' दह ' आदि में प्राप्त अन्त्य ' ह ' तथा कोंकणी ' दा ' आदि में प्राप्त अन्त्य ' आ ' के कारण है। उपर्युक्त रूपों के अन्त में ' ह ' अपभ्रंश में मिलता है। यह ' ह ' हिंदी में कायम बना रहा तो कोंकणी में ' ह ' का लोप हुआ और दोनों स्वर दीर्घ ' आ ' में परिवर्तित होकर रहे।

(२) शेष हिंदी ' दस ' तथा कोंकणी ' धा ' में भी अन्तर है। अपभ्रंश में ' दस, दह ' रूप मिलते हैं। इनमें से ' दस ' रूप हिंदी ने जैसे-के-तैसे अपनाया तो कोंकणी ने द्वितीय रूप ' दह ' को परिवर्तित करके अपनाया।

(३) हिंदी तथा कोंकणी समास वृत्ति में ' दस ' रूप प्राप्त है।

(४) हिंदी की समास वृत्ति में ' दह ' रूप प्राप्त है तो कोंकणी की समास वृत्ति में ' धा ' रूप प्राप्त है।

हिंदी ' बीस , तीस ' तथा कोंकणी ' वीस, तीस 'आदि

हिंदी ' बीस ' तथा कोंकणी ' वीस '

हिंदी ' बीस ' तथा कोंकणी ' वीस ' का संबंध संस्कृत ' विंशति ' से है , जैसे :– सं. विंशति > पा. वीसति > प्रा. वीसा > अप. वीस > हिं. बीस तथा कों. वीस। हिंदी में ' व् ' का प्रायः ' ब् ' होता है। अतः हिंदी में ' बीस ' हो गया।

हिंदी में ' चौबीस ' और ' छब्बीस ' को छोडकर ' उन्नीस, इक्कीस ' आदि संयुक्त संख्याओं में ' बीस ' का ' ईस ' रूप मिलता है।

कोंकणी की ' इकुणीस ' संख्या में हिंदी की तरह ' वीस ' का ' ईस ' रूप मिलता है। ' एकवीस ' आदि संयुक्त संख्याओं में 'वीस ' रूप जैसे–के–वैसे मिलता है।

हिंदी ' तीस ' तथा कोंकणी ' तीस '

इनका संबंध संस्कृत ' त्रिंशत् ' से है, जैसे :– सं. त्रिंशत् > पा. तिंसति >प्रा. तीसा > अप. तीस > हिं. तीस तथा कों. तीस।

हिंदी की संयुक्त संख्याओं में ' तीस ' रूप प्राप्त है, जैसे :– ' उन्तीस, इकतीस ' आदि।

कोंकणी की संयुक्त संख्याओं में प्रायः ' तीस ' रूप मिलता है। केवल ' आट्टीस ' में ' त् ' का ' ट् ' होता है। यदि ' आड ' पूर्ण उच्चरित हो जाए तो

' त् ' का ' ट् ' नहीं होता है, जैसे :– ' आडतीस ' । ' इकुणटीस ' में कभी–कभी ' त् ' का ' ट् ' होता है ।

हिंदी ' चालीस ' तथा कोंकणी ' चाळीस '

ये दोनों रूप संस्कृत ' चत्वारिंशत् ' से विकसित हैं, जैसे :– सं. चत्वारिंशत् > पा. चत्ताळीसति > प्रा. चत्तालीसा > अप. चालीस > हिं. चालीस तथा कों. चाळीस ।

हिंदी की संयुक्त संख्याओं में ' चालीस ' के अन्य रूप प्राप्त हैं । प्राकृत ' चत्तालीसा ' के ' चत् ' लोप से ' तालीस ' होता है । ' चालीस ' या ' तालीस ' के ' च ' या ' त् ' लोप से ' आलीस ' रूप प्राप्त होता है । इसमें ' य् ' और ' व् ' श्रुति होकर ' बयालीस, छियालीस ' और ' चवालीस ' रूप प्राप्त हैं ।

कोंकणी की संयुक्त संख्याओं में प्रायः ' चाळीस ' रूप प्राप्त है, जैसे :– ' इकुणचाळीस, एकेचाळीस ' आदि । कभी–कभी इनमें अन्त्य ' ईस ' का लोप होता है और ' इकुणचाळ, एकेचाळ ' आदि रूप भी विकसित होते हैं ।

हिंदी ' पचास ' तथा कोंकणी ' पन्नास '

हिंदी ' पचास ' तथा कोंकणी ' पन्नास ' का विकास संस्कृत ' पञ्चाशत् ' से हुआ है, जैसे :– सं. पञ्चाशत् > पा. पञ्ञासा > प्रा. पण्णासा > अप. पण्णास > हिं. पचास तथा कों. पन्नास । यहाँ हिंदी ' पचास ' में फिर से ' पञ्च ' का प्रभाव दीखता है । इसका कारण अपभ्रंश में ' एक्कूणपच्चास ' रूप प्राप्त है ।

हिंदी की संयुक्त संख्या ' उनचास ' में ' पचास ' का ' चास ' रूप मिलता है । अन्य संयुक्त संख्याओं में ' पचास ' के स्थान में ' पन, वन, अन ' रूप मिलते हैं, जैसे:– ' तिरपन, इक्यावन, चौअन ' आदि । इनका विकास संस्कृत के ' एकपञ्चाशत् ' आदि में प्राप्त ' पञ्च ' से होता है ।

कोंकणी की ' इकुणपन्नास ' में ' पन्नास ' ही रूप प्राप्त है । ' एकावन, त्रेपन ' आदि में ' वन, पन ' प्राप्त हैं जो संस्कृत के ' एकपञ्चाशत् ' आदि में प्राप्त ' पञ्च ' से प्रभावित हैं ।

हिंदी ' साठ ' तथा कोंकणी ' साठ '

इन दोनों का संबंध संस्कृत ' षष्टि ' से है,जैसे :– सं. षष्टि > पा. सट्ठि > प्रा. सट्ठि > अप. सट्ठि > हिं. साठ तथा कों. साठ ।

हिंदी की संयुक्त संख्याओं में ' षष्टि ' का ' सठ ' रूप मिलता है, जैसे :– ' उनसठ, इकसठ ' आदि ।

कोंकणी की संयुक्त संख्याओं में हिंदी की तरह ' षष्टि ' का ' सठ (ट) ' रूप मिलता

है, जैसे :– ‘ एकसठ, बांसठ ’ आदि। कभी–कभी इनमें ‘ सश्ट ’ भी मिलता है, जैसे :– ‘ एकसश्ट, बांसश्ट ’ आदि। ‘ इकुणसाठ ’ में तो ‘ साठ ’ ही रूप मिलता है।

हिंदी ‘ सत्तर ’ तथा कोंकणी ‘ सत्तर ’

ये दोनों संस्कृत ‘ सप्तति ’ से जोडे जाते हैं, जैसे :– सं. सप्तति > पा. सत्तति > प्रा. सत्तरि > अप. सत्तर > हिं. सत्तर तथा कों. सत्तर। ‘ सत्तर ’ में ‘ र ’ प्राकृत से प्राप्त है।

हिंदी की संयुक्त संख्याओं में ‘ हत्तर ’ रूप प्राप्त है जो ‘ स ’ का ‘ ह ’ होने से प्राप्त है।

कोंकणी की संयुक्त संख्या ‘ एकुणसत्तर ’ में ‘ सत्तर ’ रूप प्राप्त है। परंतु अन्य संयुक्त संख्याओं में ‘ स् ’ का ‘ ह ’ होकर ‘ अ ’ होता है। बाद में दोनों स्वर ‘ आ ’ में परिवर्तित होते हैं, जैसे :– ‘ एक्यात्तर, ब्यात्तर ’ आदि। कभी–कभी ‘ सत्तर ’ के ‘ स् + अ ’ में विपर्यय होकर पूर्व स्वर दीर्घ होता है और ‘ स् ’ जैसे–के–वैसे श्रवण होता है, जैसे :– ‘ एक्यास्त्तर, ब्यास्त्तर ’ आदि।

हिंदी ‘ अस्सी ’ तथा कोंकणी ‘ ऐंशीं (अंयशीं)

इनका विकास संस्कृत ‘ अशीति ’ से है, जैसे :– सं. अशीति > पा. असीति > प्रा. असीइ > अप. असी > हिं. अस्सी तथा कों. ऐंशी। हिंदी ‘ अस्सी ’ में शायद बलाघात के कारण संयुक्त ‘ स् ’ प्रभावित है।

हिंदी की संयुक्त संख्याओं में ‘ आसी ’ या ‘ यासी ’ रूप मिलता है, जैसे :– ‘ उनासी, इक्यासी ’ आदि।

कोंकणी की संयुक्त संख्याओं में ‘ अंयशीं ’ रूप प्राप्त है। बहुत सी संख्याओं में ‘ य् ’ श्रुति है, जैसे :– ‘ एक्यांयशीं, ब्यांयशीं ’ आदि। ‘ शांयशीं ’ के ‘ शा ’ में ‘ य् ’ श्रुति नहीं है।

हिंदी ‘ नब्बे ’ तथा कोंकणी ‘ णव्वद ’

इनका विकास संस्कृत ‘ नवति ’ से होता है, जैसे :– सं. नवति > पा. नवुति > प्रा. णवइ > अप. णवइ, णवदि > हिं. नब्बे तथा कों. णव्वद।

हिंदी की संयुक्त संख्याओं में ‘ नबे (नब्बे, नवे)’ रूप मिलते हैं, जैसे :– ‘ एकानबे, बानबे ’ आदि।

कोंकणी की संयुक्त संख्या ‘ इकुण्णव्वद ’ में यह रूप प्राप्त है। अन्य संयुक्त संख्याओं में ‘ ण्णवद ’ या ‘ ण्णव ’ रूप मिलता है, जैसे :– ‘ एक्याणव्वद (एक्याणव) ’ आदि।

हिंदी ' सौ ' तथा कोंकणी ' शें, शंबर '

सं. शतं > पा. सतं > प्रा. सयं, सअं > हिं. सौ तथा कों. शें। हिंदी ' सौ ' के अर्थ कोंकणी ' शें ' का व्यवहार असंयुक्त संख्या में बहुत कम पाया जाता है। इसके लि कोंकणी में ' शंब(भ)र ' शब्द प्रचलित है। शायद यह ' शतं बिभर्ति ' से विकसित हुअ होगा। फिर भी **इसके** संबंध में कल्पना के आधार पर ही रहना पडता है।

संयुक्त **संख्याओं** में, हिंदी में ' सौ ' तो कोंकणी में ' शें ' रूप मिलता है, जैसे : हिंदी : दो सौ, तीन सौ ' आदि ; कोंकणी : ' दोनशें , तीनशें ' आदि। कोंकणी में ' शें के बदले ' शीं ' रूप भी प्रयुक्त है, जैसे :– ' दोनशीं, तीनशीं ' आदि। हिंदी में ' सैकड़ ' तथा कोंकणी में ' शेंकडो ' रूप प्राप्त है। यह प्रायः समुदायवाचक शब्द है।

हिंदी ' हजार ' तथा कोंकणी ' हजार '

यह फारसी से आगत है।

हिंदी ' लाख ' तथा कोंकणी ' लाख '

संस्कृत लक्ष > प्रा. लक्ख > अप. लक्ख से हिंदी तथा कोंकणी ' लाख ' शब्द विकसित है।

× × ×

उपर्युक्त विवरण से निम्नलिखित बात स्पष्ट होती है –

हिंदी ' बीस, तीस ' तथा कोंकणी ' वीस, तीस ' आदि पूर्ण संख्यावाचक विशेषणों में प्रायः समानता पायी जाती है।

६) अपूर्ण संख्यावाचक विशेषण

अपूर्ण संख्यावाचक विशेषण से पूर्ण संख्या के किसी भाग का बोध होता है। हिंदी तथा कोंकणी के अपूर्ण संख्यावाचक विशेषण और उनके प्राचीन रूपों का संबंध नीचे दिखाया है।

हिंदी ' पाव ' तथा कोंकणी ' पाव ' ($\frac{१}{४}$)

सं. पादः > प्रा. पाओ > अप. पाउ > हिं. पाव तथा कों. पाव। हिंदी के संयुक्त रूपों में संस्कृत ' पादिका ' से निष्पन्न ' पई ' रूप मिलता है, यथा :– ' अधपई '। परंतु इस शब्द के लिए कोंकणी में ' पाव ' शब्द का ही प्रयोग होता है, यथाः– ' अर्दपाव, अदपाव'।

हिंदी ' चौथाई ' तथा कोंकणी ' चौथाय ' ($\frac{१}{४}$)

एक वस्तु के चौथे भाग के लिए हिंदी में ' चौथाई ' तथा कोंकणी में ' चौथाय ' शब्द

ा प्रयोग होता है । यह संस्कृत ' चतुर्थिका ' से विकसित है ।

ंदी ' तिहाई ' तथा कोंकणी ' तिहाय ' ($\frac{1}{3}$)

हिंदी ' तिहाई ' तथा कोंकणी ' तिहाय ' शब्द सं. त्रिभागिका > प्रा. तिहाइआ से ंबंधित है ।

हेंदी ' आधा ' तथा कोंकणी ' अर्दो ' ($\frac{1}{2}$)

सं. अर्द्ध > प्रा. अद्ध > अप. अद्ध > हिं. आधा तथा कों. अर्दो । अर्द्ध का ' अध ' ूप हिंदी तथा कोंकणी के संयुक्त शब्दों में आता है, यथा :– हिंदी : अधेला, अधपई, अधसेरा; कोंकणी : अधेलो, अधेलीं । कोंकणी ' अदपाव, अदशेर ' में ' अध ' का ' अद ' रूप मिलता है । कोंकणी ' अदनाटी ' के ' अद ' का ' अद् ' होकर कभी-कभी ' अन्नाटी (=पाव शेर ; अद् + नाठवो) ' हो जाता है । और इसी ' अद् ' का ' अत् > अच् ' होकर ' अच्छेर (= आधा शेर) ' शब्द विकसित होता है । इसी ' अत् ' का ' आ ' रूप कोंकणी ' आदेस (= आधा दिवस) ' शब्द में दिखायी देता है । कोंकणी ' एकाद्रो ' में तो संस्कृत ' अर्द्ध ' से विकसित ' अद्रो ' रूप भी मिलता है । कोंकणी ' एकाद्रो ' के अर्थ में हिंदी में ' एक आध(द) ' या ' एकाध(द) ' शब्द का प्रयोग होता है ।

हिंदी ' पौन ' तथा कोंकणी ' पावूण ' ($\frac{3}{4}$)

हिंदी 'पौन' तथा कोंकणी 'पावूण' शब्द ($\frac{3}{4}$) के लिए प्रयुक्त होते है । इसके सिवा ये शब्द किसी संख्या के पूर्व लगा देने से वह संख्या ($\frac{1}{4}$) से कम होती है । ऐसे समय हिंदी ' पौन ' तथा कोंकणी ' पावूण ' के अन्त्य ' अ ' का ' ए ' होता है और कोंकणी 'पावूण' के ' वू ' का ' व ' होता है, यथा –

संख्या : ($1\frac{3}{4}$) = हिंदी ' पौने दो ' तथा कोंकणी ' पावणे दोन '

संख्या : ($6\frac{3}{4}$) = हिंदी ' पौने सात ' तथा कोंकणी ' पावणे सात '

संख्या : ($13\frac{3}{4}$) = हिंदी ' पौने चौदह ' तथा कोंकणी ' पावणे चौदा '

हिंदी ' पौन ' तथा कोंकणी ' पावूण ' का विकास संस्कृत ' पादोन ' से है, यथा :– सं. पादोन > प्रा. पाओण > अप. पाउण > हिं. पौन तथा कों. पावूण ।

हिंदी ' सवाया ' तथा कोंकणी ' सवाय ' ($+\frac{1}{4}$)

सं. सपाद > प्रा. सवायो > अप. सवाय > हिं. सवाया तथा कों. सवाय । हिंदी में ' सवाया ' के बहुत रूपान्तर होते हैं, यथा :– सवा, सवाई, सवाये । कोंकणी में भी ' सवाय ' के ' सवा , सव्वा ' रूप उपलब्ध हैं, यथा :– सवा / सव्वा रुपयो ।

हिंदी ' साढे ' तथा कोंकणी ' साडे ' (+$\frac{१}{२}$)

सं. सार्द्ध > प्रा. सड्ढ > अप. साड्ढ > हिं. साढे तथा कों. साडे ।

हिंदी ' डेढ ' तथा कोंकणी ' देड ' (१$\frac{१}{२}$)

सं. द्व्यर्द्ध > पा. दिवड्ढ > प्रा. दिअड्ढ > हिं. डेढ तथा कों. देड । ' डेढ ' के व्युत्पत्ति के संबंध में भिन्न–भिन्न मत प्रदर्शित किये हैं । डा. उदयनारायण तिवारी संस्कृत ' द्वि + अर्द्ध (+ क) ' से ' डेढ ' व्युत्पन्न मानते हैं [३०] । डा. भोलानाथ तिवारी संस्कृत ' द्विकार्द्ध ' से ' डेढ ' का विकास मानते हैं [३१] ।

वास्तव में ' द्वि + अर्द्ध(द्व्यर्द्ध) ' से ' डेढ ' की व्युत्पत्ति मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए । ' द्वि ' का ' व् ' ' अर्द्ध ' में मिलकर ' दिवर्द्ध ' हुआ होगा जिसका पालि में ' दिवड्ढ ' हुआ है । फिर भी इनमें से कोई भी व्युत्पत्ति संतोषप्रद नहीं है ।

हिंदी ' अढाई , ढाई ' तथा कोंकणी ' अडेच ' (२$\frac{१}{२}$)

सं. अर्द्धतृतीय > पा. अड्ढतियो > प्रा. अड्ढाइज्ज > हिं. अढाई, ढाई तथा कों. अडेच । हिंदी ' ढाई ' में ' अ ' का लोप बलाघात के कारण हुआ है ।

हिंदी ' अहुठ ' तथा कोंकणी ' औट ' (३$\frac{१}{२}$)

सं. अर्द्धचतुर्थ > पा. अड्ढुड्ढो > अप. आउट्ठ > हिं. अहुठ तथा कों औट । कोंकणी ' औट ' का विवरण डा. कत्रे ने किया है [३२]। इनका प्रयोग अब प्रायः नहीं होता ।

× × ×

उपर्युक्त विवरण से निम्नलिखित बात स्पष्ट होती है –

हिंदी तथा कोंकणी के अपूर्ण संख्यावाचक विशेषणों में प्रायः समानता पायी जाती है ।

७) क्रम संख्यावाचक विशेषण

हिंदी ' पहला ' तथा कोंकणी ' पैलो '

संस्कृत ' प्रथम ' से विकसित होने वाले ' पढम ' शब्द में स्वार्थी ' इल्ल ' जुडकर ' पढमिल्ल ' रूप प्राप्त होता है । इससे हिंदी में ' पहला ' तथा कोंकणी में ' पैलो ' विकसित हैं ।

तिथि के लिए संस्कृत ' प्रतिपदा ' से हिंदी में ' परिवा, पडवा ' तथा कोंकणी में ' पाडवो ' शब्द विकसित हैं ।

हिंदी ' दूसरा ' तथा कोंकणी ' दुसरो '

बीम्स हिंदी ' दूसरा ' का संबंध संस्कृत ' द्विसृत ' से मानते हैं [३३] ।

डा. भोलानथ तिवारी ने हिंदी ' तीसरा ' शब्द कल्पित ' त्रिसृतीय ' से विकसित माना है और इसके सादृश्य पर ' दूसरा ' शब्द भी इसी प्रकार विकसित माना है [३४]।

डा. कत्रे ने भी कोंकणी ' दुसरो ' की व्युत्पत्ति * सरा से मानी है [३५] ।

यहाँ एक संभावना हो सकती है । मराठी में, ' श्री लक्ष्मी व्यंकटेश विजय ' ग्रंथ में ' एकसरा ' रूप प्राप्त है [३६] । वहाँ टिप्पणी में ' एकसरा ' का अर्थ ' सर्वांना सारखा (= सबको समान) ' दिया है । मराठी में ' सर्वांना सारखा ' का अर्थ ' एक सारखा (= एक समान)' भी होता है जो मूल शब्द ' एकसरा ' से प्राप्त होता है । अर्थात् ' एकसरा ' में ' सरा ' रूप संस्कृत ' सदृश ' से विकसित होना चाहिए । इस आधार पर संस्कृत ' द्विसदृश ' और ' त्रिसदृश ' से हिंदी में ' दूसरा ' और ' तीसरा ' तथा कोंकणी में ' दुसरो ' और ' तिसरो ' का विकास मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए । हिंदी में ' दूसरा ' अर्थ के लिए ' दूजा ' तथा कोंकणी में ' दुसरो ' अर्थ के लिए ' दुजो ' शब्द भी हैं । इनका विकास संस्कृत ' द्वितीय ' से हुआ है ।

तिथि के लिए संस्कृत ' द्वितीया ' से हिंदी में ' दूज ' तथा कोंकणी में ' बी ' का विकास होता है ।

हिंदी ' तीसरा ' तथा कोंकणी ' तिसरो '

इनका विकास ऊपर हिंदी ' दूसरा ' तथा कोंकणी ' दुसरो ' में स्पष्ट किया है ।

तिथि के लिए संस्कृत ' तृतीया ' से विकसित हिंदी में ' तीज ' तथा कोंकणी में ' तय ' रूप प्राप्त हैं ।

हिंदी ' चौथा ' तथा कोंकणी ' चौथो '

सं. चतुर्थ > पा. चतुत्थ > प्रा. चउत्थ > अप. चउथ > हिं. चौथा तथा कों. चौथो, चवथो ।

तिथि के लिए हिंदी में ' चौथ , चौथी ' तथा कोंकणी में ' चवथ(त) ' शब्द व्यवहृत होते हैं । इनका विकास संस्कृत ' चतुर्थी ' से है ।

हिंदी ' पाँचवाँ ' तथा कोंकणी ' पांचवो '

संस्कृत ' पञ्चम ' से हिंदी ' पाँचवाँ ' तथा कोंकणी ' पांचवो ' का विकास हुआ है । हिंदी ' पाँचवाँ ' में प्राप्त ' वाँ ' तथा कोंकणी ' पांचवो ' में प्राप्त ' वो ' प्रत्यय संस्कृत ' म ' प्रत्यय से विकसित हैं । हिंदी में ' छः ' छोडकर शेष ' सात ' संख्या से ' वाँ '

प्रत्यय जुडता है तो कोंकणी में 'पाँच' संख्या से ही 'वो' प्रत्यय जुडता है।

हिंदी 'छठा' तथा कोंकणी 'सवो'

हिंदी 'छठा' में 'छः' पूर्ण संख्यावाचक विशेषण है और 'ठा' क्रम संख्यावाचक विशेषण का प्रत्यय है। कोंकणी 'सवो' में 'स' पूर्ण संख्यावाचक विशेषण है और 'वो' क्रम संख्यावाचक विशेषण का प्रत्यय है। इस दृष्टि से हिंदी 'छठा' रूप 'वाँ' प्रत्यय का अपवादात्मक रूप है जब कि कोंकणी 'सवो' रूप 'वो' प्रत्यय का अपवादात्मक रूप नहीं है। कोंकणी में 'वो' प्रत्यय 'पाँच' संख्या से ही शेष सभी संख्याओं में जुटता है तो हिंदी में 'वाँ' प्रत्यय 'पाँच' में तथा 'सात' संख्या से शेष सभी संख्याओं में जुडता है। अर्थात् 'छः' में 'वाँ' प्रत्यय नहीं जुडता है।

हिंदी 'छठा' का विकास सं. 'षष्ठ' से है। कोंकणी 'सवो' में 'वो' प्रत्यय है जो संस्कृत 'म' से विकसित है (देखिए, हिंदी 'पाँचवाँ' तथा कोंकणी 'पांचवो')।

हिंदी में कुछ लोग 'छठवाँ' बोलते हैं [३७]। इसी प्रकार कोंकणी में भी 'सटवो' बोलते हैं। इस दृष्टि से हिंदी 'छठवाँ' तथा कोंकणी 'सटवो' में साम्य है। इन दोनों में दो–दो प्रत्यय लगे हैं, जैसे :– हिंदी : ठ और वाँ ; कोंकणी : ट और वो। कोंकणी में प्रायः अपनी प्रवृत्ति के अनुसार 'ठ' का महाप्राणत्व लुप्त हुआ है। पालि में 'छट्ठो, छट्ठमो' रूप उपलब्ध हैं [३८], अर्थात् दो प्रत्यय जुडकर व्यवहार होने की प्रवृत्ति पालि में ही दिखायी देती है। इस प्रकार हिंदी में 'छठा, छठवाँ' दो रूप प्राप्त होते हैं तो कोंकणी में भी 'सवो, सटवो' दो रूप प्राप्त होते हैं। परंतु हिंदी 'छठा' के सादृश्य पर कोंकणी में 'सटो(ठो)' रूप नहीं होता है तथा कोंकणी 'सवो' के सादृश्य पर हिंदी में 'छवाँ' रूप नहीं होता है। कोंकणी में स्त्री. 'सटी' शब्द है जो संस्कृत 'षष्ठी' से विकसित है। कोंकणी 'सटी' के लिए हिंदी में 'छठी' शब्द है। इन दोनों के अर्थ हैं, 'बालक के जन्म से छठे दिन होने वाली पूजा और उत्सव ; एक देवी जो उस दिन पूजी जाती है' आदि। इसके सिवा कोंकणी में 'सटी' शब्द से एक अलग देवी का भी परिचय होता है जो 'सटी देवूळ' शब्द में प्राप्त है।

तिथि के लिए हिंदी में 'छठ' तथा कोंकणी में 'सस्ट, सस्टी' शब्दों का व्यवहार होता है। इनका विकास संस्कृत 'षष्ठी' से ही है।

हिंदी तथा कोंकणी के शेष 'क्रम संख्यावाचक विशेषण'

हिंदी में 'छः' संख्यावाचक विशेषण छोडकर 'पाँच, सात, आठ, नौ' आदि संख्यावाचक विशेषणों में 'वाँ' तथा कोंकणी में 'पाँच, स, सात, आठ, णव' आदि संख्यावाचक विशेषणों में 'वो' प्रत्यय जुडकर शेष 'क्रम संख्यावाचक विशेषण' बनते हैं, यथा –

हिंदी	**कोंकणी**
'पाँचवाँ,(छठा), सातवाँ, आठवाँ' आदि	'पाँचवो, सवो, सातवो, आठवो' आदि

हिंदी ' वाँ ' तथा कोंकणी ' वो ' का विकास संस्कृत ' म ' से है।

× × ×

उपर्युक्त क्रम संख्यावाचक विशेषणों के विवरण से निम्नलिखित बात स्पष्ट होती है –

हिंदी ' छठा ' तथा कोंकणी ' सवो ' रूप छोडकर शेष हिंदी तथा कोंकणी के क्रम संख्यावाचक विशेषणों में प्रायः समानता दीखती है। यहाँ हिंदी की आकारान्त तथा कोंकणी की ओकारान्त प्रवृत्ति भी दिखायी देती है।

८) आवृत्ति संख्यावाचक विशेषण

हिंदी में आवृत्ति संख्या वाचक विशेषण ' गुना ' लगाकर किया जाता है, यथाः – ' दुगुना, तिगुना चौगुना, छगुना, नौगुना ' आदि। कभी–कभी ' दो ' में ' उना ' जोडकर ' दूना ' का प्रयोग किया जाता है। ' गुना ' का संबंध सं. ' गुणक ' से माना जाता है [३९]।

कोंकणी में ' गुना ' के बदले ' पट ' लगाकर आवृत्ति संख्यावाचक विशेषण बनाया जाता है, यथा :– ' दोनपट, तीनपट, चारपट, सपट, णवपट ' आदि। कभी–कभी 'दोन' और ' तीन ' में ' प्पट ' लगाकर ' दुप्पट ' और ' तिप्पट ' का प्रयोग किया जाता है ' चौपट ' में ' प ' का संयुक्त ' प्प ' नहीं होता। कोंकणी ' पट ' या ' प्पट ' का विकास संस्कृत ' पट ' या ' पुट ' से हो सकता है।

इसके सिवा हिंदी में ' हरा ' शब्द है, यथा :– ' इकहरा, दुहरा, तिहरा, चौहरा, पचहरा '। डा. भोलानाथ तिवारी सं. ' हरक ' से इसका विकास मानते हैं। यह ' हरा ' शब्द प्रायः ' पाँच (पच)' संख्या तक प्राप्त है।

× × ×

उपर्युक्त आवृत्ति संख्यावाचक विशेषणों के विवरण से निम्नलिखित बात स्पष्ट होती है –

हिंदी तथा कोंकणी आवृत्ति संख्यावाचक विशेषणों में भिन्नता है।

९) समुदाय संख्यावाचक विशेषण

नीचे हिंदी तथा कोंकणी के कुछ समुदाय संख्यावाचक विशेषण दिखाये हैं, यथा –

चार का समूह

हिंदी में ' गंडा ' शब्द ' चार का समूह ' के लिए प्रयुक्त है। डा. भोलानाथ तिवारी यह शब्द मुण्डा भाषा से आगत मानते हैं [४०]। यह शब्द कोंकणी में नहीं है।

पाँच का समूह

हिंदी में ' पाँच का समूह ' के लिए ' पंजा, गाही ' शब्दों का व्यवहार होता है।

संस्कृत 'पञ्चक' से हिंदी 'पंजा' विकसित है। डा. भोलानाथ तिवारी हिंदी 'गाही को द्रविड के 'ग्वाइ' से विकसित मानते हैं[४१]।

हिंदी 'पंजा' से सादृश्य रखनेवाला कोंकणी में 'पंजो' शब्द है, परंतु वह 'हथेली के लिए प्रयुक्त है। हिंदी में 'पंजा' शब्द भी 'हथेली' के लिए भी प्रयुक्त है। 'हथेली अर्थ में हिंदी 'पंजा' तथा कोंकणी 'पंजो' शब्द में साम्य है। कोंकणी में 'पाँच क समूह' अर्थ में 'फाडें' शब्द है जिससे तरकारी या लकडी आदि वस्तुएँ गिनीं जाती हैं। बीस 'फाडें' गिनने से सौ संख्या होती है। परंतु इस प्रकार गिनना अब कम होता चला है। कोंकणी में 'फाडें' शब्द एक और अर्थ में प्रयुक्त है, अर्थात् जिस संख्या को दो से भाग देने पर कुछ नहीं बचता, जैसे :– २, ४, ६, ८, १० आदि। इस प्रकार 'पाँच का समूह' अर्थ में हिंदी में पंजा, गाही' शब्द प्राप्त हैं जो कोंकणी में उपलब्ध नहीं और कोंकणी में ' फाडें' शब्द प्राप्त हैं जो हिंदी में उपलब्ध नहीं।

बीस का समूह

हिंदी में 'बीस' संख्या के लिए 'कोडी' शब्द प्रयुक्त है। 'कोडी' शब्द मूलतः कोल भाषा से विकसित माना जाता है[४२]।

कोंकणी में 'खांडी' शब्द है। यह सस्य गिनने के काम में आता है। इसकी व्युत्पत्ति प्रायः संस्कृत 'खंड' से है।

पचास का समूह

'पचास का समूह' अर्थ में हिंदी में 'कँवरी' तथा कोंकणी में 'क(कं)वळी' शब्द व्यवहृत होते हैं। हिंदी 'कँवरी' तथा कोंकणी 'क(कं)वळी' संस्कृत 'कबरी' से विकसित हैं। प्रायः बीडे के पत्तों को गिनते समय इसका प्रयोग होता है। इसी प्रकार कोंकणी में 'पचास का समूह' अर्थ में 'गांठ' शब्द भी है जो संस्कृत 'ग्रंथि' से विकसित है। कोंकणी में यह नारियलों की गिनती करते समय प्रयुक्त होता है।

बारह का समूह

'बारह का समूह' अर्थ में हिंदी में 'दर्जन' तो कोंकणी में 'डझन' शब्द प्रयुक्त है। यह आधुनिक काल में अंग्रेजी 'डझन (Dozen)' से प्राप्त है। कोंकणी में 'डझन' के बदले 'डूज, दूज' शब्दों का भी प्रयोग होता है जो प्रायः पुर्तगाली शब्द से विकसित है।

हिंदी तथा कोंकणी में 'बारह दर्जन' के लिए 'ग्रोस' प्रचलित है। यह भी अंग्रेजी से प्राप्त है जो प्रायः पुर्तगाली शब्द से विकसित है।

× × ×

उपर्युक्त समुदाय संख्यावाचक विशेषणों के विवरण से निम्नलिखित बात स्पष्ट होती है –

हिंदी तथा कोंकणी समुदाय संख्यावाचक विशेषणों में प्रायः भिन्नता है।

संक्षेप में –

(१) हिंदी तथा कोंकणी में अपनी-अपनी प्रवृत्ति के कारण आकारान्त तथा ओकारान्त विशेषण प्राप्त हैं। इसके सिवा दोनों भाषाओं में अकारान्त, ईकारान्त तथा ऊकारान्त विशेषण प्राप्त हैं।

(२) हिंदी के आकारान्त तथा कोंकणी के ओकारान्त विशेषणों पर लिंग का प्रभाव है।

(३) हिंदी तथा कोंकणी विशेषणों में संस्कृत के तर तम' अर्थ में दूसरे शब्दों से तुलना करने की पद्धति है और वह प्रायः दोनों में समान है।

(४) हिंदी तथा कोंकणी में सदृशतावाचक विशेषण बनाने के लिए 'सा' तथा 'सो' लगाया जाता है। परंतु लिंग के कारण कोंकणी 'सो' में व्यंजन परिवर्तन होता है।

(५) पूर्ण संख्यावाचक विशेषणों में कुछ विशेषणों का रूप समान है तो कुछ विशेषणों का रूप असमान है।

(६) अपूर्ण संख्यावाचक विशेषण हिंदी तथा कोंकणी में प्रायः समान है।

(७) क्रम संख्यावाचक विशेषण बनाने की पद्धति भी प्रायः समान है।

(८) आवृत्ति संख्यावाचक तथा समुदाय संख्यावाचक विशेषण हिंदी तथा कोंकणी में प्रायः भिन्न दिखायी देते हैं।

परिशिष्ट

दूसरे अध्याय में कहा था कि संख्यावाचक विशेषणों में जहाँ तक हो सके संख्याओं क विकास क्रमशः दिखाने का प्रयत्न करेंगे (देखिए, पृ. ४८) । इस दृष्टि से नीचे पूर्ण संख्यावाचक तथा तिथिवाचक संज्ञाओं का यथासंभव विकास दिखाने का प्रयत्न किया है ।

पूर्ण संख्यावाचक विशेषण

अंक	संस्कृत	पालि	प्राकृत	अपभ्रंश	हिंदी	कोंकणी
१	एकः	एको	एक्को, एगो	एक्क, एक	एक	एक
२	द्वौ, द्वे	दुवे, द्वे,	दो,दोण्णि, वे	दो, वे	दो	दोन, बे
३	त्रीणि (नपुं.)	तीणि,	तिण्णि	तिण्ण	तीन	तीन
४	चत्वारि(,,)	चत्तारि	चत्तारि	चयारि	चार	चार
५	पञ्च (न्)	पञ्च	पंच	पंच	पाँच	पांच
६	षट(ष्)	छ	छ	छ, छह	छः	स
७	सप्त (न्)	सत्त	सत्त	सत्त, सात	सात	सात
८	अष्ट (न्)	अट्ठ	अट्ठ	अट्ठ	आठ	आठ
९	नव (न्)	नव	नव,णव	णव	नौ	णव
१०	दश (न्)	दस	दस, दह	दस, दह	दस	धा
११	एकादश (न्)	एकाद (र) स	एगारह	ए(इ)गारह	ग्यारह	इ(अ)करा
१२	द्वादश (न्)	द्वादस, बारस	बारह	बारह	बारह	बारा
१३	त्रयोदश (न्)	तेरस	तेरह	तेरह	तेरह	तेरा
१४	चतुर्दश (न्)	चतुद्दस	चउद्दह	चउदह	चौदह	चौ(चव)दा
१५	पञ्चदश (न्)	पञ्चद (न्नर)स	पण्णरह	पण्णरह	पन्द्रह	पंद्रा(दरा)
१६	षोडश (न्)	सोळस	सोलह	सोलह	सोलह	सोळा
१७	सप्तदश (न्)	सत्तरस	सत्तरह	सत्तारह	सत्रह	सतरा
१८	अष्टादश (न्)	अट्ठारस	अट्ठारह	अट्ठारह	अठारह	अठरा
१९	ऊनविंशतिः	––	––	––	उन्नीस	––
	एकोनविंशतिः	एकूनवीसति	एगूणवीसा	एक्कूणवीस	––	ए(इ)कुणीस
२०	विंशतिः	वीसति	वीसा	बीस, वीस	बीस	वीस
२१	एकविंशतिः	एकवीसति	एगवीसा	एक्कवीस	इक्कीस	एकवीस
२२	द्वाविंशतिः	बावीसति	दु(बा)वीसा	बाई(वी)स	बाईस	बावीस
२३	त्रयोविंशतिः	तेवीसति	तेवीसा	तेइ(वी)स	तेईस	तेवीस
२४	चतुर्विंशतिः	चतुवीसति	चउवीसा	चउवीस	चौबीस	चोवीस
२५	पञ्चविंशतिः	पञ्चवीसति	पण्णवीसा	पंचवीस	पची(च्ची)स	पंचवीस
२६	षड्विंशतिः	छव्वीसति	छव्वीसा	छव्वीस	छब्बीस	सव्वी(वी)स
२७	सप्तविंशतिः	सत्तवीसति	सत्तवीसा	सत्ताइ(वी)स	सत्ताईस	सत्तावीस
२८	अष्टाविंशतिः	अट्ठवीसति	अट्ठावीसा	अट्ठाइ(वी)स	अट्ठाईस	अट्ठावीस
२९	ऊनत्रिंशत्	––	––	––	उन्तीस	––
	एकोनत्रिंशत्	एकूनतिंसति	एगूणतीसा	एकूणतीस	––	ए(इ)कुणतीस

३०	त्रिंशत्	तिंसति	तीसा	तीस	तीस	तीस
३१	एकत्रिंशत्	एकतिंसति	एगतीसा	एक्कतीस	इकतीस	एकतीस
३२	द्वात्रिंशत्	बत्तिंसति	दुतीसा	बत्तीस	बत्तीस	बत्तीस
३३	त्रयस्त्रिंशत्	तेत्तिंसति	तेतीसा	तेत्तीस	तैंतीस	तेत्तीस
३४	चतुस्त्रिंशत्	चतुत्तिंसति	चउतीसा	चउतीस	चौंतीस	चौ(चव)तीस
३५	पञ्चत्रिंशत्	पञ्चतिंसति	पण्णतीसा	पंचतीस	पैंतीस	पस्तीस
३६	षट्त्रिंशत्	छत्तिंसति	छत्तीसा	छत्तीस	छत्तीस	छ(श)त्तीस
३७	सप्तत्रिंशत्	सत्ततिंसति	सत्ततीसा	सततीस	सैंतीस	सात्तीस
३८	अष्टात्रिंशत्	अट्ठतिंसति	अडतीसा	अट्ठतीस	अडतीस	आट्ठीस
३९	ऊनचत्वारिंशत्	––	––	––	उनतालीस	––
	एकोनचत्वारिंशत्	एकूनचत्ताळीसति	एगूणचत्तालीसा	एक्कूणचालीस	––	एकुणचाळीस
४०	चत्वारिंशत्	चत्ताळीसति	चत्तालीसा	चालीस	चालीस	चाळीस
४१	एकचत्वारिंशत्	एकचत्ताळीसति	एगचत्तालीसा	एक्कचालीस	इकतालीस	एकेचाळीस
४२	द्वाचत्वारिंशत्	द्वाचत्ताळीसति	बायालीसा	बाआलीस	बयालीस	बावेचाळीस
४३	त्रयश्चत्वारिंशत्	तेचत्ताळीसति	तेआलीसा	तियालीस	तैंतालीस	त्रेवेचाळीस
४४	चतुश्चत्वारिंशत्	चतुचत्ताळीसति	चउआलीसा	चउआलीस	चौवालीस	चोवेचाळीस
४५	पञ्चचत्वारिंशत्	पञ्चचत्ताळीसति	पण्णचत्तालीसा	पंचचालीस	पैंतालीस	पंचेचाळीस
४६	षट्चत्वारिंशत्	छचत्ताळीसति	छचत्तालीसा	छायालीस	छियालीस	सवेचाळीस
४७	सप्तचत्वारिंशत्	सत्तचत्ताळीसति	सत्तचत्तालीसा	सत्तचालीस	सैंतालीस	सत्तेचाळीस
४८	अष्टचत्वारिंशत्	अट्ठचत्ताळीसति	अडआलीसा	अठतालीस	अडतालीस	अट्ठेचाळीस
४९	ऊनपञ्चाशत्	––	––	––	उनचास	–––
	एकोनपञ्चाशत्	एकूनपञ्ञासा	एगूणवन्ना	एक्कूणपण्णास	––	एकुणपन्नास
५०	पञ्चाशत्	पञ्ञासा	पन्नासा	पण्णास	पचास	पन्नास
५१	एकपञ्चाशत्	एकपञ्ञासा	एगावन्ना	एक्कवण्णास	इक्या(का)वन	एकावन
५२	द्वापञ्चाशत्	द्वेपञ्ञासा	दोवन्ना	दुवण्णास	बावन	बावन
५३	त्रिपञ्चाशत्	तेपञ्ञासा	तेवन्ना	तिवण्णास	तिरपन	त्रेपन
५४	चतुःपञ्चाशत्	चतुपञ्ञासा	चउवन्ना	चउण्णास	चौवन	चौ(चव)पन
५५	पञ्चपञ्चाशत्	पञ्चपञ्ञासा	पणवन्ना	पंचवण्णास	पचपन	पंचावन
५६	षट्पञ्चाशत्	छपञ्ञासा	छपन्ना	छप्पण(णास)	छप्पन	छ(श)प्पन
५७	सप्तपञ्चाशत्	सत्तपञ्ञासा	सत्तावन्ना	सत्तवण्णास	सत्तावन	सत्तावन
५८	अष्टापञ्चाशत्	अट्ठपञ्ञासा	अट्ठावन्ना	अट्ठावण्णास	अट्ठावन	अट्ठावन
५९	ऊनषष्टि	––	––	––	उनसठ	–––
	एकोनषष्टि	एकूनसट्ठि	एगूनसट्ठि	एकूणसट्ठि	–––	एकुणसाठ
६०	षष्टि	सट्ठि	सट्ठि	सट्ठि	साठ	साठ
६१	एकषष्टि	एकसट्ठि	एगसट्ठि	एक्कसट्ठि	इकसठ	एकसठ(श्ट)
६२	द्वाषष्टि	द्वासट्ठि	दोसट्ठि	बासट्ठि	बासठ	बासठ
६३	त्रि(त्रयः)षष्टि	ति(ते)सट्ठि	तेसट्ठि	तिसट्ठि	तिरसठ	त्रेंसठ
६४	चतुष्षष्टि	चतुसट्ठि	चउसट्ठि	चउसट्ठि	चौंसठ	चौंसठ
६५	पञ्चषष्टि	पञ्चसट्ठि	पणसट्ठि	पंच(ण)सट्ठि	पैंसठ	पांसठ

६६	षट्षष्टि	छसट्ठि	छसट्ठि	छसट्ठि	छियासठ	सांसठ
६७	सप्तषष्टि	सत्तसट्ठि	सत्तसट्ठि	सत्तसट्ठि	सडसठ	सातसठ
६८	अष्ट(ष्टा)षष्टि	अट्ठसट्ठि	अडसट्ठि	अट्ठसट्ठि	अडसठ	आड(ठ)सठ
६९	ऊनसप्तति	--	--	--	उनहत्तर	---
	एकोनसप्तति	एकूनसत्तति	एगूनसत्तरि	एक्कूणहत्तरि	---	एकुणसत्तर
७०	सप्तति	सत्तति	सत्तरि	सत्तरि	सत्तर	सत्तर
७१	एकसप्तति	एकसत्तति	एगसत्तरि	एकहत्तरि	इकहत्तर	एक्या(का)त
७२	द्वासप्तति	द्वासत्तति	दोसत्तरि	बाहत्तरि	बहत्तर	ब्यात्तर
७३	त्रि(त्रयः)सप्तति	तिसत्तति	तेसत्तरि	तेहत्तरि	तिहत्तर	त्र्यात्तर
७४	चतुस्सप्तति	चतुसत्तति	चउसत्तरि	चउहत्तरि	चौहत्तर	चौद्यात्तर
७५	पञ्चसप्तति	पञ्चसत्तति	पणसत्तरि	पंचहत्तरि	पचहत्तर	पंच्यात्तर
७६	षट्सप्तति	छसत्तति	छसत्तरि	छहत्तरि	छिहत्तर	छा(शा)त्तर
७७	सप्तसप्तति	सत्तसत्तति	सत्तसत्तरि	सत्तहत्तरि	सतहत्तर	सत्यात्तर
७८	अष्ट(ष्टा)सप्तति	अट्ठसत्तति	अडसत्तरि	अट्ठहत्तरि	अठहत्तर	अट्ठ्यातर
७९	ऊनाशीति	--	--	--	उनासी	---
	एकोनाशीति	एकूनासीति	एगूणासीइ	एक्कूणासी	---	एकुणअंयशीं
८०	अशीति	असीति	असीइ	असीति	अस्सी	अंयशीं(ऐंशीं)
८१	एकाशीति	एकासीति	एगासीइ	एक्कासी	इक्यासी	एक्यांयशीं
८२	द्व्यशीति	द्वा(द्वे)सीति	दोसीइ	बेआसी	बयासी	ब्यांयशीं
८३	त्र्यशीति	तेअसीति	तेसीइ	तियासी	तिरासी	त्र्यांयशीं
८४	चतुरशीति	चतुरासीति	चउरासीइ	चउरासी	चौरासी	चौऱ्यांशीं
८५	पञ्चाशीति	पञ्चासीति	पणसीइ	पंचासी	पचासी	पंच्यांयशीं
८६	षडशीति	छासीति	छासीइ	छयासी	छियासी	शांयशीं
८७	सप्ताशीति	सत्तासीति	सत्तासीइ	सत्तासी	सत्तासी	सत्यांयशीं
८८	अष्टाशीति	अट्ठासीति	अठासीइ	अट्ठासी	अट्ठा(ठा)सी	अट्ठ्यांयशीं
८९	नवाशीति	--	--	--	नवासी	---
	एकोननवति	एकूननवुति	एगूणणवइ	एक्कूणणवदि	--	एकुणणव्वद
९०	नवति	नवुति	णवइ	णवइ,णवदि	नब्बे	णव्वद
९१	एकनवति	एकनवुति	एगणवइ	एक्कणवइ(दि)	इक्यानबे	एकाण्णव(द)
९२	द्वानवति	द्वानवुति	दोणवइ	बाणवइ(दि)	बानबे	ब्याण्णवद
९३	त्रि(त्रयो)नवति	ति(ते)नवुति	तेणवइ	तिणवइ(दि)	तिरानबे	त्र्याणव
९४	चतुर्नवति	चतुनवुति	चउणवइ	चउणवइ(दि)	चौरानबे	चौऱ्याणव
९५	पञ्चनवति	पञ्चनवुति	पंचणवइ	पंचणवइ(दि)	पंचानबे	पंचाणव
९६	षण्णवति	छन्नवुति	छण्णवइ	छाणवइ	छियानबे	शाण्णव
९७	सप्तनवति	सत्तनवुति	सत्ताणवइ	सत्ताणवइ	सत्तानबे	सत्याणव
९८	अष्टानवति	अट्ठनवुति	अट्ठाणवइ	अट्ठणवइ	अट्ठानबे	अट्ठ्याणव
९९	नवनवति	नवनवुति	नवणवइ	नवणवइ	निन्या(न्ना)नबे	णव्याणव
१००	शतम्	सतं	सयं	सय,सउ	सौ	शें(शंबर)

(१) हिंदी के ' उन्नीस ' तथा कोंकणी के ' एकोणीस ' संख्या वाचक शब्दों का स्रोत अलग-अलग है। इसी प्रकार हिंदी ' उन्तीस ' आदि तथा कोंकणी ' एकुणतीस ' आदि संख्यावाचक शब्दों का स्रोत भी अलग-अलग है।

यहाँ दिये संख्यावाचक शब्दों के कोंकणी विभाग में ' एकोणीस ' , ' एकोणतीस ' आदि हो गया है। वास्तव में यहाँ ' इकुणीस ' जैसे शब्द प्रचलित हैं। ' इकुणीस ' जैसे संख्याओं में संस्कृत ' एक ' का ' इक ' होता है। वालावलीकर लिखित 'भुरग्यांलो इष्ट ' पुस्तक में तो ' योकणिसावो ' भी प्राप्त है (पृ. १९)। ' कोंकणी नादशास्र ' में तो 'योकणीस ' भी है (पृ. १७)।

(२) अपभ्रंश के ' दुवण्णास (५२) ' से हिंदी तथा कोंकणी में ' बावन ' होना कठिन है। इसके लिए अर्धमागधी के ' बावण्ण ' रूप का आधार लेना चाहिए। जिससे रूप-सिद्धि आसानी से हो सकती है।

(३) हिंदी ' तिरपन ' तथा कोंकणी ' त्रेपन ' में फिर से ' र् ' का आगम दिखायी देता है।

(४) हिंदी तथा कोंकणी की शेष संख्याओं में क्वचित् साम्य तथा क्वचित् वैषम्य दिखायी देता है। इन सभी का विकास पूर्व स्पष्ट किया जा चुका है।

तिथिवाचक संज्ञाएँ

संस्कृत	पालि	प्राकृत	अपभ्रंश	हिंदी	कोंकणी
प्रतिपदा	--	प(पा)डिवआ	--	पड(रि)वा	पाडवो
द्वितीया	दुतिया	विइज्जा,बीया	दुज्जा,विअ	दूज	बी
तृतीया	ततिया	तइज्जा	तिज्ज,तज्य	तीज	तय
चतुर्थी	चतुत्थी	चोत्थी,चउत्थी	चोत्थ,चउथ	चौथ	चवथ
पञ्चमी	पञ्चमी	--	पंचम	पाँचै	पंचम
षष्ठी	छट्ठी	छट्ठी	छट्ठ	छठ	सस्ट/स्टी
सप्तमी	सत्तमी	सत्तमी	सत्तम	सातवीं	सप्तम
अष्टमी	अट्ठमी	अट्ठमी	अट्ठम	आठवीं	अस्ट(श्ट)म
नवमी	नवमी	--	णवम	नौवीं	नम,नवम
दशमी	दसमी	--	दसम	दसवीं	दसम
एकादशी	एकादसी	--	एकारह	ग्यारस	एकादस
द्वादशी	द्वादसी	--	--	बारस(हवीं)	दुवादस
त्रयोदशी	तेरसी	--	--	तेरस	तिरोदस
चतुर्दशी	चतुद्दसी	चउद्दसी	--	चौदस	चतुर्दस
पूर्णिमा	पूणिमा	--	--	पूनों,पूनियाँ	पुनव,पुर्णिमा
अमावस्या	अमावस्सा	--	--	अमावस	अ(उ)मास

संदर्भ ग्रंथ सूची

१) श्री भट्टोजी दीक्षित – सिद्धान्तकौमुदी, पृ. १७३, सू.क्र. ५।३।५५, ५।३।५७
२) प्रा. द्वा. रा. तर्खडकर – भाषान्तर पाठमाला, भाग २, पृ. ३३
३) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २१५
४) वही, पृ. २१६
५) वही, पृ. २१५
६) वही, पृ. २१६
७) बीम्स – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द माडर्न आर्यन लैंग्वेजेस् आफ इंडिया, भाग २, पृ. १३९ परि. क्र. २६
८) डा.चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज पृ. ७९९, परि. क्र. ५२९
९) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २१७
१०) डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४३९
११) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २१८
१२) पं. शालिग्राम उपाध्याय – अपभ्रंश व्याकरण, पृ. ९१
१३) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २१८
१४) वही।
१५) वही।
१६) वही।
१७) डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४४३
१८) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २६८
१९) वही।
२०) डा. चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज, पृ. ७८९, परि. क्र. ५१७
२१) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २१८
२२) वही, पृ. २१९
२३) वही, पृ. २१८
२४) वही, पृ. २२०
२५) वही।
२६) वही, पृ. २२१
२७) श्री चंद्रकांत केणी – आशाढ पांवळी, पृ. १०७
२८) श्री शणैमाम – आमची भास, पृ. २३
२९) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ.२२२
३०) डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४४८
३१) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २३१
३२) डा. कत्रे – द फार्मेशन आफ कोंकणी, पृ. ११३
३३) बीम्स – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द माडर्न आर्यन लैंग्वेजेस् आफ इंडिया, भाग २, पृ. १४३, परि. क्र. २७
३४) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २३२
३५) डा. कत्रे – द फार्मेशन आफ कोंकणी, पृ. १३५
३६) श्री नृसिंहाचार्य विरचित – श्रीलक्ष्मीव्यंकटेश विजय, पृ. ८०
३७) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २३३
३८) श्री भिक्षु जगदीश काश्यप – पालि महाव्याकरण, पृ. १७५
३९) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २३३
४०) वही, पृ. २३५
४१) वही।
४२) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, भूमिका, पृ. ७१

अध्याय ७

क्रिया

१) क्रिया का इतिहास

संस्कृत में दस लकारों(= तिङन्तों), दो पदों, तीन पुरुषों, तीन वचनों, पाँच प्रयोगों (= तीन वाच्यों) , प्रेरणार्थक आदि में मिलकर प्रत्येक धातु के अनेक रूप होते हैं। ये रूप डा. धीरेंद्र वर्मा के अनुसार ५४० होते हैं[१] तो डा. भोलानाथ तिवारी के अनुसार सामान्यतः ४३४० होते हैं[२]।

संस्कृत में प्राप्त होने वाली धातु की रूप–संख्या पालि आदि भाषाओं के द्वारा हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त होते हुए कम होती गयी। प्रत्येक लकार के अर्थ को व्यक्त करने के लिए धातु के पृथक्–पृथक् रूप नहीं रहे। एवं भिन्न–भिन्न कालों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए नये प्रकार से नये रूपों को बना लेना आवश्यक हो गया। इसके लिए प्राकृत से प्राप्त कृदन्त रूपों के प्रणयन की पद्धति को विशेष रूप से अपनाया गया। इन कृदन्त रूपों के साथ हिंदी में संस्कृत √अस्,√भू (अथवा√स्था) ' तथा कोंकणी में संस्कृत √अस् ,√जन् ' से विकसित रूपों का प्रयोग होने लगा। इनसे हिंदी तथा कोंकणी काल–रचना का विस्तार हुआ। काल–रचना का विवरण आगे ' काल–रचना ' उपशीर्षक में स्पष्ट किया है (देखिए, पृ. ३४१ से ३६३ तक)।

संस्कृत तिङन्त रूपों से विकसित हिंदी में दो तो कोंकणी में तीन काल हैं, यथा –

काल–संख्या :	**हिंदी**	**कोंकणी**
१.	संभाव्य भविष्य	सादो भविश्य
२.	वर्तमान आज्ञार्थ	आज्ञार्थ
३.	––– –––	रीतिभूतकाळ , दुसरी तरा

हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त होने वाले शेष सभी काल कृदन्त अथवा कृदन्त + सहायक क्रियाओं से बनते हैं।

हिंदी तथा कोंकणी क्रियाओं में द्विवचन नहीं है। परस्मैपद–आत्मनेपद जैसा भेद नहीं रहा। गणों के अभाव में धातुओं के रूपान्तरों का ढंग भी सरल हो गया। विद्वानों के हिसाब के अनुसार हिंदी में कालों की संख्या लगभग पंद्रह है तो कोंकणी में लगभग बीस है। फिर भी आधुनिक कालों के मिलान से इनकी संख्या अधिक होती है। हिंदी तथा कोंकणी कालवाचक क्रियाओं की रचना संस्कृत की अपेक्षा सरल है।

२) धातु

धातु क्रिया का वह अंश है जो उक्त क्रिया से बने सभी रूपों एवं शब्दों में किसी – न – किसी रूप में अंशतः प्राप्त हो, यथा :– हिंदी : ' चलना, चलता, चलेगा, चलाना चला, चाल ' में ' चल '; ' हँसना, हँसता, हँसेगा, हँसाना, हँसाई(= हँसी) , हँसा, हँसे (भूतकाल में) ' में ' हँस ' ।

इसी प्रकार कोंकणी में भी प्राप्त होता है, यथा :– कोंकणी : ' चलप, चलता, चलतलो, चलौप (चलोवप), चलली, चाल ' में ' चल ' ; ' हांसप, हांसता, हांसतलो, हांसौप (हांसोवप), हांशें(सो), हांसलो, हांसली ' में ' हांस ' ।

संस्कृत धातुओं की संख्या लगभग २००० (सिद्धान्त कौमुदी के अनुसार १९६८) है ।

डा. हार्नले के अनुसार हिंदी धातुओं की संख्या लगभग ५८२ है[३] ।

डा. भोलानाथ तिवारी के मन्तव्य के अनुसार हिंदी धातुओं की पूरी संख्या २००० के लगभग है[४] ।

डा. हरदेव बाहरी के गणना के अनुसार हिंदी में लगभग ३६०० धातुएँ हैं[५] ।

परंतु एक बात स्पष्ट है कि हिंदी धातुओं की संख्या के संबंध में उपर्युक्त विद्वानों में मत–भेद है जिससे हिंदी धातुओं की संख्या निश्चित बताना असंभव है ।

कोंकणी में इस प्रकार धातुओं की गणना नहीं हो पायी । इससे कोंकणी धातुओं की संख्या का निर्देश करना असंभव है । फिर भी आधारभूत शब्दों के परिगणन से ऐसा लगता है कि इनकी संख्या २००० के लगभग है ।

३) हिंदी तथा कोंकणी धातु

साधारणतया ऐतिहासिक दृष्टि से प्रमुख तत्वों के आधार पर हिंदी तथा कोंकणी धातुओं को मुख्य चार श्रेणियों में विभक्त किया गया है, यथा :– (क) मूल धातु, (ख) यौगिक धातु, (ग) संदिग्ध धातु और (घ) विदेशी धातु ।

(क) मूल धातु –

मूल धातुएँ वे हैं, जो प्राचीन भारतीय आर्यभाषा काल से परंपरागत या विकसित रूप में हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त हैं, यथा –

परंपरागत धातुएँ				विकसित धातुएँ			
संस्कृत		हिंदी	कोंकणी	संस्कृत		हिंदी	कोंकणी
चल्	>	चल	चल	कृ	>	कर	कर
चर्	>	चर	चर	कम्प्	>	काँप	कांप

जप् > जप जप   उद्+स्था > उठ उठ
भज् > भज भज   नृत्य > नाच नाच
रच् > रच रच   खाद् > खा खा

उपर्युक्त विभाग में 'परंपरागत धातुएँ' इसलिए कहा गया है कि 'चल्, चर्' ादि संस्कृत धातुओं और हिंदी तथा कोंकणी 'चल, चर' आदि धातुओं में फर्क नहीं है; द्यपि हिंदी तथा कोंकणी धातुएँ लिखते समय अकारान्त दीखती हैं फिर भी उच्चारण के ताबिक अकारान्त नहीं है। अतः यहाँ संस्कृत की 'चल्, चर्' धातुएँ हिंदी तथा ोंकणी में परंपरा से प्राप्त मानी हैं।

उपर्युक्त विभाग में 'विकसित धातुएँ इसलिए कहा है कि हिंदी तथा कोंकणी की 'र, काँप (कों. कांप), उठ' आदि धातुएँ स्पष्ट रूप से संस्कृत की 'कृ, कम्प, उद्+स्था' ादि धातुओं से विकसित दिखायी देती हैं।

ख) यौगिक धातु –

यौगिक धातुएँ शब्द (धातु तथा संज्ञा आदि) + प्रत्यय के योग से बनती हैं, यथा –

हिंदी	कोंकणी
शब्द + प्रत्यय = धातु	**शब्द + प्रत्यय = धातु**
पढ + आ = पढा	शिक + अय, ऐ = शिकय, शिकै
सो + ला = सुला	न्हिद + अय, ऐ = न्हिदय, न्हिदै
गांठ + इया = गँठिया	गांठ + अय, ऐ – गांठय, गांठै
दुःख + आ = दुखा	दुःख + अय, ऐ = दुखय, दुखै
आप + ना = अपना	आपुण + आय = आपणाय

(ग) संदिग्ध धातु –

जिन धातुओं की व्युत्पत्ति अज्ञात है अथवा जिनके व्युत्पत्ति के संबंध में संशय है उन्हें संदिग्ध धातु कहा जाता है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
√झाँक, √झाड, √पटक, √टोक,	√झांक, √झाड, √पटक, √टोंच
√हाँक, √टाँग, √अँट	√हांक, √टांग, √दवर (= रख)

(घ) विदेशी धातु –

कुछ विदेशी भाषाओं की धातुएँ और शब्द हिंदी तथा कोंकणी में धातु के रूप में स्वीकृत हैं जो क्रियाओं के काम में आते हैं, यथा–

हिंदी	कोंकणी
√बदल, √खरीद, √खर्च	√बदल, √खरीद, √खर्च

√दाग,√फर्मा,√आजमा √दाग,√फर्मा,√अजमा
फिल्म :√फिल्मिया

उपर्युक्त मूल धातुओं तथा यौगिक धातुओं में अनेक भेदोपभेद किये जा सकते यथा :– मूल धातुओं में ' तत्सम , अर्धतत्सम, तद्भव, प्रेरणार्थक तद्भव ' तथा यौगि धातुओं में ' प्रेरणार्थक , नामधातु , संयुक्त , ध्वन्यात्मक ' आदि । इसी प्रकार म धातुओं तथा यौगिक धातुओं में ' मूल, उपसर्गयुक्त, प्रत्यययुक्त, संयुक्त, कर्तृवाच कर्तृवाच्येतर, प्रेरणार्थक ' आदि अनेक प्रकार किये जा सकते हैं । इसी प्रकार इनमें से कु प्रकार ' परवर्ती तद्भव धातु ' में भी प्राप्त हो सकते हैं । फिर भी यहाँ धातुओं के केव प्रमुख भेदों को लेकर हिंदी तथा कोंकणी की तुलना की है ।

× × ×

उपर्युक्त विवेचन से हिंदी तथा कोंकणी धातुओं के संबंध में निम्नलिखित बात स्प होती है –

हिंदी तथा कोंकणी धातुओं का विकास भिन्न–भिन्न प्रकार से उपलब्ध है । इ धातुओं में से कुछ संस्कृत के मूल धातुओं, कुछ प्रेरणार्थक धातुओं, कुछ यौगिक धातुओं, कुछ देशी धातुओं, कुछ विदेशी धातुओं तथा कुछ अन्य शब्दों से विकसित हैं ।

४) धातु का स्वरूप

संस्कृत में प्रथम गण की धातुओं में ' अ ' विकरण लगने के अनन्तर उस धातु में विकार होता है, यथा :– बुध् + अ = बोध । यहाँ ' बुध ' के ' उ ' का ' ओ ' हुआ है षष्ठ गण की धातुओं में ' अ ' विकरण लगने पर धातु में कोई विकार नहीं होता है, यथ :– तुद् + अ = तुद । यहाँ ' तुद् ' के ' उ ' में बदल नहीं होता है । तृतीय गण की धातुओं में कोई विकरण नहीं लगता फिर भी उनमें द्वित्व होता है, यथा :– दा = दादा > ददा द्वितीय गण की धातुओं में कोई विकरण नहीं लगता और धातु जैसे- के- वैसे बनी रहती है, यथा :– अद् = अद् । इस प्रकार संस्कृत के दस गणों में कोई–न–कोई भिन्नता है ।

परंतु हिंदी तथा कोंकणी धातुओं में इस प्रकार के भेद नहीं हैं जिससे कठिनाई पैदा हो सके । अर्थात् हिंदी तथा कोंकणी धातुओं के रूपों में सरलता है । फिर भी हिंदी की पाँच धातुओं [कर, जा, दे, ले, हो] तथा कोंकणी की सात धातुओं [कर , वच, (= जा), व्हर (= ले जा), यो (= आ) , घे (= ले), म्हण (= बोल), मर] की काल-रचना के रूपों में भिन्नता प्राप्त है । इन्हें छोड प्रायः शेष हिंदी तथा कोंकणी धातुओं में संस्कृत के गणों के समान किसी प्रकार का श्रेणी–विभाग नहीं है ।

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी धातुओं का स्वरूप सरल बन गया है ।

५) धातुओं में उपलब्ध अन्त्य स्वर

हिंदी धातुओं के अन्त में ' अ, आ, ई, ऊ, ए ' और ' ओ ' स्वर प्राप्त हैं, तो कोंकणी धातुओं के अन्त में ' अ, आ, इ, उ, ए ' और ' ऐ ' स्वर प्राप्त हैं, यथा –

अन्त्यस्वर	– हिंदी	अन्त्यस्वर	कोंकणी
अ	– सीख, कर, हँस	अ	– शिक(=सीख), कर, हांस
आ	– खा, गा, जा	आ	– खा, गा, जा(=हो)
ई	– पी, सी, जी	इ	– पि(=पी), दि(=दे)
ऊ	– छू, चू	उ	– धु(=धो)
ए	– ले, दे, खे	ए	– घे (= ले), ये(=आ)
ओ	– हो, सो, धो, रो, बो	ऐ	– उलै(उलय), शिकै, पळै, बरै

कोंकणी में (उलय) की तरह 'शिकय , पळय , बरय' भी क्वचित् होता है।

उपर्युक्त हिंदी की मूल धातुओं के स्वरूप में कुछ भी परिवर्तन किये बिना 'आज्ञार्थ' के मध्यम पुरुष एकवचन में इन्हें काम में लाया जाता है, परंतु कोंकणी के उपर्युक्त धातुओं में से 'शिक, पि, दि, धु, ये' छोडकर अन्य धातुओं की स्थिति हिंदी की तरह ही होती है, यथा :–

हिंदी	कोंकणी
तू कर।	तूं कर.
तू हँस।	तूं हांस.
तू यहाँ बैठकर खा।	तूं हांगा बसून खा.
तू जाकर बोल।	तूं वचून उलै (उलय).

उपर्यक्त कोंकणी विभाग में दिये 'शिक, पि, दि, धु, ये' धातुओं का स्वरूप 'आज्ञार्थ' के मध्यम पुरुष एकवचन में थोडा-सा बदलता है, जैसे :– 'शिक : शीक; पि : पी; दि : दी; धु : धू; ये : यो'। परंतु इन धातुओं के अर्थ में प्राप्त होने वाली हिंदी धातुओं का स्वरूप नहीं बदलता, जैसे :–

हिंदी	कोंकणी
तू सीख।	तूं शीक.
तू पानी पी।	तूं उदक पी.
तू रुपया दे।	तूं रुपयो दी.
तू कपडे धो।	तूं कपडे धू.
तू यहाँ आ।	तूं हांगा यो.

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी धातुओं के मध्यम पुरुष एकवचन का रूप बनाते समय कुछ धातुओं में साम्य तो कुछ धातुओं में वैषम्य प्राप्त होता है।

६) क्रियाओं की व्याकरणिक कोटियाँ

हिंदी तथा कोंकणी क्रियाओं द्वारा निम्नलिखित व्याकरणिक कोटियाँ प्रगट की जाती हैं, जैसे –

'अर्थ, लिंग, संख्या (वचन), पुरुष, वृत्ति, पक्ष, काल' और 'वाच्य'। उदाहरण के लिए हिंदी के 'वह आया था।' वाक्य में 'आया था' तथा कोंकणी के 'तो आयिल्लो.' वाक्य में 'आयिल्लो' क्रियाओं से 'आने की क्रिया, पुल्लिग, एकवचन, अन्य पुरुष, निश्चयार्थक वृत्ति, पूर्णतावाची पक्ष, भूतकाल और कर्तृवाच्य कोटियाँ मिलती हैं।

(सूचना : – एक और बात यहाँ उल्लेखनीय है कि हिंदी तथा कोंकणी क्रियाओं से इन व्याकरणिक कोटियों के सिवा दूसरे रूप–प्रक्रियात्मक और वाक्य–विन्यास संबंधी अर्थ प्रगट किये जाते हैं, जैसे :– 'प्रेरणार्थक, सकर्मक, अकर्मक' आदि।)

क्रियाओं की इन व्याकरणिक कोटियों का नीचे परिचय दिया है।

अर्थ – हिंदी तथा कोंकणी क्रियाओं के अर्थ के बारे में यहाँ चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है, क्यों कि क्रियाओं की मूल धातुओं का अर्थ कोश में स्पष्ट ही दिखाया जाता है। परंतु इनके अर्थ करने की प्रक्रिया में जो सूक्ष्मता है वह संस्कृत के व्याकरण ग्रंथों में देखना ही उचित होगा।

लिंग – संस्कृत क्रियाओं में लिंग का संबंध नहीं है। परंतु हिंदी तथा कोंकणी के कुछ कालवाचक क्रियाओं पर लिंग का प्रभाव दिखायी देता है, यथाः– हिंदी : 'आया (पु.)', 'आयी (स्त्री.)', 'आयेगा (पु.)', 'आयेगी (स्त्री.)'; कोंकणी : 'आयलो (पु.)', 'आयली (स्त्री.)', 'आयलें (नपुं.)', 'येतलो (पु.)', 'येतली (स्त्री.)', 'येतलें (नपुं.)'। परंतु हिंदी तथा कोंकणी में कुछ कालवाचक क्रियाएँ ऐसी भी हैं जिनपर लिंग का प्रभाव नहीं दीखता, जैसे :–

हिंदी में : 'वर्तमान संभावनार्थ (= संभाव्य भविष्य, जैसे :– वह चले)' तथा 'वर्तमान आज्ञार्थ (= आज्ञार्थ के दोनों प्रकार : प्रत्यक्ष और परोक्ष विधि, जैसे :– तू चल और तू चलना)'।

कोंकणी में : 'सादो भविष्य (= संभाव्य भविष्य, जैसे :– तो/ती/तें चलत)', 'आज्ञार्थ (= वर्तमान आज्ञार्थ – प्रत्यक्ष, जैसे :– तूं चल)', 'रीतिभूतकाळ, दुसरी तरा (= भूत अपूर्ण निश्चयार्थ या अपूर्ण भूत, जैसे :– तो/ती/तें चलें)', 'वर्तमानकाळ (=सामान्य वर्तमान, जैसे :– तो/ती/तें चलता)', 'अपूर्ण वर्तमान काळ (= अपूर्ण वर्तमान, जैसे :– तो/ती/तें चलत आसा)', 'दुबावी वर्तमान भविष्याची दुसरी तरा (= संभाव्य वर्तमान जैसे :– तो/ती/तें चलता जायत)' और 'प' – प्रत्ययान्त विध्यर्थ (= भविष्य आज्ञार्थ या परोक्ष विधि, जैसे :– ताणें/तिणें चलप)।

हिंदी तथा कोंकणी के इन कालों की क्रियाओं में लिंग का संबंध दृग्गोचर नहीं होता है। इन काल-रचनाओं की क्रियाओं में अप्राप्त लिंग की कोटि उस कर्ता के द्वारा सूचित की जाती है जिसका प्रयोग विधेय क्रिया के साथ होता है।

वचन – हिंदी तथा कोंकणी क्रियाओं में दो वचन हैं, एकवचन और बहुवचन। इनके संबंध में पहले बात की जा चुकी है (देखिए, पृ. १४६)।

पुरुष – पुरुष के बारे में भी पहले लिखा जा चुका है (देखिए, पृ. १७१)। हिंदी में आदर दिखाने के लिए 'तुम' के स्थान 'आप' का प्रयोग किया जाता है। परंतु कोंकणी में ऐसा अलग सर्वनाम नहीं है। एक बात यहाँ ध्यान में रखना आवश्यक है कि हिंदी 'आप' के साथ 'तुम' सर्वनाम के साथ आने वाली क्रिया का प्रयोग नहीं किया जाता बल्कि अन्य पुरुष 'वे' के साथ आनेवाली क्रिया का प्रयोग होता है, जैसे :– 'तुम हो। : आप हैं।' ; 'तुम खाते हो। : आप खाते हैं।' आदि।

वृत्ति – हिंदी तथा कोंकणी क्रियाओं के भिन्न-भिन्न रूपों से बोलने वाले के मन के भाव प्रगट होते हैं। भाव प्रगट करने की रीति क्रिया के जिस रूप से व्यक्त होती है उसे 'अर्थ' कहा जाता है। ये अर्थ पाँच प्रकार के हैं, जैसे –

(i) निश्चयार्थ: क्रिया के रूप से जब कार्य की निश्चितता का अनुभव होता है तब उसे निश्चयार्थ कहा जाता है, जैसेः– हिंदी : 'मैं खाता हूँ।, वह कारवार गया।'; कोंकणी : 'हांव खाता., तो कारवाराक गेलो.'।

(ii) **संभावनार्थ** : जिन क्रियाओं से संभव, आशीर्वाद, इच्छा, कर्तव्य आदि का बोध होता है उसे संभावनार्थ कहा जाता है, जैसे :–

संभव अर्थ में :– हिंदी : 'उसने काम पूरा किया हो।'; कोंकणी : 'ताणें काम पुराय केलें आसत (जायत.)'।

आशीर्वाद अर्थ में : – हिंदी : 'ईश्वर तुम्हारा भला करे।'; कोंकणी : 'देंव तुमचें बरें करूं.'।

कर्तव्य अर्थ में :– हिंदी : 'विद्यार्थी जल्द उठें।, विद्यार्थियों को जल्द उठना चाहिए।'; कोंकणी : 'भुरगे बेगीन उठतीत (वा 'भुरग्यांनी बेगीन उठप') . ; भुरग्यांक बेगीन उठपाक जाय.'।

(iii) **संदेहार्थ** : क्रियाओं से अनिश्चितता या संशय का बोध होता है तब संदेहार्थ हो जाता है, जैसे :– हिंदी : 'इस समय लडका आता होगा।'; कोंकणी : 'ह्या वेळार भुरगो येता आसतलो.'।

(iv) **आज्ञार्थ** : आज्ञार्थ क्रियाओं से आज्ञा, प्रवर्तना (प्रेरणा), प्रार्थना, निषेध, अनुमति आदि का बोध होता है, जैसे :–

आज्ञा :– हिंदी : 'तुम यह पत्र पढो।'; कोंकणी : 'तुमी हें पत्र वाचात.'।
निषेध :– हिंदी : 'अभी मत खावो।'; कोंकणी : 'आतां खावूं नाकात.'।
अनुमति :– हिंदी : 'हाँ, काम करो।'; कोंकणी : 'हां, काम करात.'।

(v) **संकेतार्थ** : संकेतार्थ में दो क्रियाएँ होती हैं। एक कारण रूप होती है तो दूसरी कार्य रूप होती है। कारण रूप क्रिया की असिद्धि के कारण कार्य रूप क्रिया की भी असिद्धि होती है, जैसेः– हिंदी : वह आ जाता तो मैं उसके साथ जाता।'; कोंकणी : 'तो येता जाल्यार हांव ताज्याबराबर वतां .'। संकेतार्थ को संस्कृत में 'हेतुहेतुमद्भूत' कहा जाता है।

पक्ष – इसमें तीन प्रकार आते हैं, जैसे :– सामान्य, अपूर्ण और पूर्ण। सामान्य में

क्रिया के सामान्य काल का बोध होता है, जैसे :– हिंदी : ' राम उठा । '; कोंकणी : ' राम उठलो '।

अपूर्ण में क्रिया की अपूर्णता का याने क्रिया के प्रचलन का बोध होता है , जैसे :– हिंदी : ' राम उठ रहा है । '; कोंकणी : ' राम उठत आसा . ' ।

पूर्ण में क्रिया की पूर्णता याने समाप्ति का बोध होता है, जैसे :– हिंदी : ' राम उठा है । '; कोंकणी : ' राम उठला. ' ।

काल – हिंदी तथा कोंकणी में प्रमुख तीन काल हैं, जैसे :– (१) वर्तमान, (२) भूत और (३) भविष्य । इन तीनों को वृत्ति और पक्ष के साथ जोडकर काल-रचना का विस्तार किया जाता है ।

वाच्य – हिंदी तथा कोंकणी में तीन ' वाच्य ' हैं, जैसे :– (१) कर्तृवाच्य, (२) कर्मवाच्य और (३) भाववाच्य । वाच्य को ' प्रयोग ' भी कहा जा सकता है । हिंदी के व्याकरण ग्रंथों में वाच्य और प्रयोग को अलग-अलग मानकर गडबड कर दी है जो कि नहीं होनी चाहिए थी । इस संबंध में आगे ' वाच्य ' उपशीर्षक में थोडा-सा विचार किया है ।

उपर्युक्त सारी जानकारी आगे स्पष्ट की जाने वाली काल–रचना में सहायक होती है ।

× × ×

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर ये बातें सिद्ध होती हैं –

(१) हिंदी तथा कोंकणी क्रियाओं से अर्थ, लिंग, संख्या (वचन), पुरुष, वृत्ति, पक्ष, काल और वाच्य स्पष्ट होते हैं ।

(२) हिंदी की दो तथा कोंकणी की सात काल–रचना में लिंग का संबंध नहीं है ।

(३) संस्कृत की अपेक्षा हिंदी तथा कोंकणी काल–रचना से कालवाचक अर्थ में अधिक सूक्ष्मता प्राप्त हुई है ।

७) काल-रचना में उपयुक्त सहायक क्रियाएँ

हिंदी तथा कोंकणी काल–रचना में सहायक क्रियाओं तथा कृदन्त रूपों का विशेष महत्व है । इनके बिना हिंदी तथा कोंकणी काल–रचना का पूरा विस्तार संभव नहीं है । इनके कारण हिंदी तथा कोंकणी कालवाचक क्रियाओं में अर्थ की दृष्टि से काफी सूक्ष्मता आयी है । संस्कृत काल–रचना में इस प्रकार क्रियाओं के अर्थ में सूक्ष्मता नहीं है । परंतु यहाँ एक बात ध्यातव्य है कि हिंदी तथा कोंकणी क्रियाएँ प्रायः संयुक्त क्रिया के रूप में प्रयुक्त होती हैं, तो संस्कृत क्रियाएँ प्रायः एक ही शब्दात्मक रूप में प्रयुक्त होती हैं । अतः संस्कृत क्रियाओं में हिंदी तथा कोंकणी क्रियाओं जैसी कालवाचक अर्थ की सूक्ष्मता नहीं है । कुछ अपवादात्मक स्थिति में संस्कृत में संयुक्त क्रियाओं प्रयोग होता है जिसमें अर्थ की

थोड़ी-सी सूक्ष्मता होती है, जैसे :– 'पशूनां वधं कुर्वन् आस्ते (= पशुओं का वध करता हुआ रहता है)।', 'गतोऽस्मि (= मैं गया हूँ)।' आदि।

हिंदी तथा कोंकणी काल-रचना पर विचार प्रस्तुत करने के पूर्व काल–रचना में प्रयुक्त सहायक क्रियाओं तथा कृदन्त रूपों पर विचार प्रस्तुत करना योग्य होगा।

हिंदी काल–रचना में √ हो और √ रह के रूप अन्य क्रियाओं के साथ सहायक रूप में प्रयुक्त होते हैं। इसी प्रकार कोंकणी काल–रचना में √ आस तथा √ जा के रूप अन्य क्रियाओं के साथ सहायक रूप में प्रयुक्त होते हैं। हिंदी √ हो और √ रह तथा कोंकणी √ आस और √ जा के रूप भिन्न–भिन्न अर्थों तथा कालों में पृथक्–पृथक् होते हैं। इनके मुख्य रूप नीचे दिये हैं।

अ) हिंदी √ हो तथा कोंकणी √ आस

(i) वर्तमान निश्चयार्थ–

हिंदी 'हो' तथा कोंकणी 'आस' धातु के वर्तमान निश्चयार्थ के रूप मुख्य तथा सहायक क्रिया के रूप में प्रयुक्त होते हैं, यथा –

क्रिया	**हिंदी 'हो'**	**कोंकणी 'आस'**
मुख्य रूप में –	राम है।	राम आसा.
सहायक रूप में –	राम जा रहा है।	राम वचत आसा.

हिंदी 'हो' तथा कोंकणी 'आस' धातु के रूपों का प्रयोग किसी अन्य क्रिया के बिना हो तब उन्हें अस्तित्ववाची क्रिया कहते हैं। तब ऐसे वाक्यों में ये रूप सहायक रूप में नहीं आते, यथा :– हिंदी 'राम है।' तथा कोंकणी 'राम आसा.'। परंतु हिंदी के 'राम जा रहा है।' तथा कोंकणी के 'राम वचत आसा.' वाक्य में 'है' तथा 'आसा' सहायक क्रियाएँ हैं। हिंदी 'हो' तथा कोंकणी 'आस' धातु के विभिन्न रूप एवं उनकी व्युत्पत्तियाँ निम्नलिखित प्रकार से हैं –

	हिंदी		**कोंकणी**	
पुरुष	**एक.**	**बहु.**	**एक.**	**बहु.**
उ. पु.	हूँ	हैं	आसां	आसांत
म. पु.	है	हो	आसा	आसात
अ. पु.	है	हैं	आसा	आसात

इन रूपों को देखने के बाद ज्ञात होता है कि आकृति-साम्य की दृष्टि से हिंदी में चार रूप हैं तो कोंकणी में भी चार रूप हैं।

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी रूपों पर लिंग का प्रभाव नहीं है। परंतु वचन और पुरुष का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। नीचे इनका विकास दिखाया है।

हिंदी –

डा. धीरेंद्र वर्मा, डा. उदयनारायण तिवारी आदि विद्वान हिंदी √ हो के रूपों
विकास संस्कृत √ अस् के रूपों से मानते हैं [६], यथा –

सं. अस्मि > प्रा. अम्हि > हिंदी बो. हौं > हिं. हूँ ।

सं. अस्ति > प्रा. अत्थि, अहि > हिं. है ।

कोंकणी –

श्री वालावलीकर ने कोंकणी √ आस का विकास संस्कृत √ अस् से माना है त
इसमें वर्तमानकाल के प्रत्यय जुडाकर कोंकणी के उपर्युक्त रूप सिद्ध किये हैं [७] ।

इस दृष्टि से संस्कृत की एक ही 'अस्' धातु से व्युत्पन्न हिंदी 'हो' तथा कोंकण
'आस' और उनके रूपों में अन्तर प्राप्त है । प्रश्न है, यह अन्तर क्यों प्राप्त है ?

इस अन्तर का समाधान निम्नलिखित प्रकार से हो सकता है –

हिंदी 'हो' धातु की व्युत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में मतभेद है । डा. भोलाना
तिवारी, डा. श्मामसुंदर दास आदि विद्वान √ हो की व्युत्पत्ति संस्कृत √ अस् से निष्प
मानने के बदले संस्कृत √ भू से मानते हैं [८] । डा. हरदेव बाहरी हिंदी 'हूँ' आदि कु
रूपों का विकास संस्कृत √ अस् से तो 'हो' रूप का विकास संस्कृत √ भू से मानते हैं
। एवं हिंदी √ हो का विकास संस्कृत √ भू से माना जाए तो इसके रूप निम्नलिखि
प्रकार से सिद्ध होते हैं, यथा–

१) सं. भवामि > पा. होमि > प्रा. होमि > हौं > हिं. हूँ ।
२) सं. भवामः > पा. होम > प्रा. होम > ('इ' का प्रभाव) होइं > हिं. हैं ।
३) सं. भवति > पा. होति > प्रा. होइ > हवइ > हिं. है ।
४) सं. भवथ > पा. होथ > प्रा. होइ > हिं. हो ।

इस प्रकार हिंदी √ हो की व्युत्पत्ति संस्कृत √ भू तथा कोंकणी √ आस की व्युत्पत्ति
संस्कृत √ अस् से मानी जाए तो उपर्युक्त अन्तर स्पष्ट होता है ।

× × × ×

उपर्युक्त हिंदी√हो तथा कोंकणी√आस और उनके रूपों से निम्नलिखित बातें स्पष
होती हैं –

(१) हिंदी√हो तथा कोंकणी√आस के रूप मुख्य तथा सहायक क्रिया के रूप में प्रयुक्त है

(२) हिंदी√हो तथा कोंकणी√आस के चार–चार रूप प्राप्त हैं ।

(३) हिंदी तथा कोंकणी के इन रूपों पर लिंग का प्रभाव नहीं है ।

(४) हिंदी√हो तथा कोंकणी√आस के रूपों में भिन्नता है । यह भिन्नता इसलिए प्राप्त है कि हिंदी√हो तथा कोंकणी√आस का विकास संस्कृत की दो भिन्न धातुओं से हुआ है ।

कोंकणी में √आस के एक दूसरे प्रकार के रूप प्राप्त होते हैं , जिनका उपयोग सहायक क्रिया के रूप में प्राप्त होता है । ये रूप नीचे दिये हैं –

	कोंकणी	
	एक .	बहु.
उ . पु.	आसतां	आसतात(तांव)
म . पु.	आसता	आसतात
अ . पु.	आसता	आसतात

कोंकणी के ये रूप वचन और पुरुष से प्रभावित हैं ।

हिंदी में इस प्रकार हो के दूसरे रूप प्राप्त नहीं हैं । ' मैं होता हूँ । ' में ' होता ' रूप है परंतु वह मुख्य क्रिया का रूप है और इसके साथ जो ' हूँ ' रूप है वह सहायक क्रिया का रूप है । यहाँ ' होता ' रूप उत्पत्तिवाचक है । यह सहायक क्रिया के रूप में प्राप्त नहीं होता है । कोंकणी ' आसतां ' आदि रूप अस्तित्ववाची ही हैं न तु उत्पत्तिवाचक । हिंदी ' होता ' अस्तित्ववाची है तब उसका उपयोग मुख्य और सहायक क्रिया के रूप में होता है । इस सहायक रूप में प्राप्त होने वाले ' होता ' का स्पष्टीकरण आगे पृष्ठ ३३२ पर दिया है ।

(ii) भूत निश्चयार्थ

हिंदी में √हो के भूतकालिक रूप केवल लिंग तथा वचन से प्रभावित हैं, न कि पुरुष से । इनकी संख्या चार है, यथाः– ' था, थे, थी, थीं ' ।

कोंकणी में √आस (=हो) के भूतकालिक रूप लिंग तथा वचन से प्रभावित हैं, साथ–साथ पुरुष से भी प्रभावित हैं । इससे इसके रूपों की संख्या में वृद्धि हो गई है । इनकी संख्या सात है, यथा :– ' आसलों, आसले, आसलीं, आसल्यो, आसलें, आसलो, आसली ' ।

हिंदी तथा कोंकणी के ये रूप निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट होते हैं ।

	हिंदी				कोंकणी					
	एक.		बहु.		एक.			बहु.		
	पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री.	नपुं.	पु.	स्त्री.	नपुं.
उ. पु.	था	थी	थे	थीं	आसलों	-लीं	-लें	आसले	-ल्यो	(-लीं)
म. पु.	,,	,,	,,	,,	आसलो	-ली	,,	,,	,,	,,
अ. पु.	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,

(कोष्ठक में दिया हुआ रूप स्पष्टता के लिए दुबारा दिखाया है।)

हिंदी –

हिंदी 'था' आदि का संबंध डा. धीरेंद्र वर्मा ने संस्कृत √ स्था के 'स्थित' रूप से माना है, यथा :– सं. स्थितः > प्रा. थाइ, ठाइ > हिं. था।

कई विद्वान इसे संस्कृत √ अस् के वर्तमानकाल मध्यम पुरुष बहुवचन के 'स्थ' रूप से व्युत्पन्न मानते हैं। परंतु डा. श्यामसुंदर दास इस मत से सहमत नहीं हैं। वे 'स्था' धातु के सामान्य भूत (लुङ्) के 'अस्थात्' रूप से 'था' का विकास मानते हैं[११]।

डा. भोलानाथ तिवारी कल्पित 'भवन्तक' से 'था' का विकास मानते हैं[१२]।

डा. उदयनारायण तिवारी 'असन्त > अहन्त > हन्तौ > हतौ > हिं. था विकसित मानते हैं[१३]।

कुछ विद्वानों के अनुसार 'अभूत्' से 'था' का विकास होता है।

वस्तुतः संस्कृत 'भूतः' से भी हिंदी 'था' का विकास मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। सं. 'भूतः' का पालि में 'हुतो' रूप प्राप्त है[१४]। [पालि 'हुतो' में प्राप्त 'हु' धातु दो प्रकार से प्राप्त है। कच्चायन व्याकरण में 'हु' ह्रस्व रूप में प्राप्त है (देखिए, पृ. ३७९ श्लोक संख्या ९६) तथा पालि महाव्याकरण में 'हु' दीर्घ (हू) रूप में प्राप्त है (देखिए, पृ. ४११)। दोनों ग्रंथों में 'हु' तथा 'हू' धातु 'सत्तायं' अर्थ में ही दिया है।] पालि 'हुतो' या 'हूतो' का प्राकृत में 'हूतो' होता है[१५]। 'हूतो' के 'हू' लोप तथा 'तो' के महाप्राणीकरण से 'थो' होकर 'था' विकसित हो सकता है। अथवा डा. भोलानाथ तिवारी ने दिखाये (* भवन्तक : > * होन्तओ > हूँतउ, होता > हुतौ, हुतो (ब्रज), हतो, हता > अथा) व्युत्पत्ति के अनुसार संस्कृत 'भूतः (> हूतो > हुतो (ब्रज) > हतो, हता > अथा)' से 'था' विकसित माना जा सकता है। इससे लिंग, वचन और काल का संबंध जुड जाता है।

यहाँ निम्नलिखित प्रकार से भी मन्तव्य हो सकता है। संस्कृत में अदादि (द्वितीय) गण में 'आस्' धातु है। इसका पाणिनीय धातुपाठ में यद्यपि 'उपवेशने' अर्थ दिया है तो भी श्री आपटे कृत 'संस्कृत हिंदी कोश में इसके अनेक अर्थ दिये हैं। इनमें 'होना, अस्तित्व या विद्यमानता होना' अर्थ भी है। इनका उदाहरण दिया है :– 'जगन्ति यस्या सविकाशमासत (= जिसमें जग विद्यमान हैं)'। और एक अर्थ दिया है जो अतिशय महत्व का है, 'अनवरत या निर्बाध क्रिया को प्रकट करने के लिए बहुधा वर्तमानकालिक कृदन्त प्रत्ययों के साथ इस धातु का प्रयोग होता है'। इसका उदाहरण दिया है :– 'विदारयन् प्रगर्जश्चास्ते [= फाडता रहा और गरजता रहा। (पंचतंत्र १)]'। इस आस् धातु का कर्मणि भूतकाल में 'आसित' रूप होता है[१६]। इससे 'था' का विकास इस प्रकार होगा :– सं. आसित > आसितो > आहितो > हतो > हता > अथा > था। सं. 'आसित' से विकसित रूप पालि आदि भाषाओं में उपलब्ध नहीं है। इसलिए डा. नामवर सिंह ने स्पष्ट

लिखा है कि भाषा में 'था' के पूर्वरूप की ये सभी अवस्थाएँ मिलती नहीं [१७]। अत एव डा. भोलानाथ तिवारी ने 'था' की व्युत्पत्ति कल्पित 'भवन्तक' से सिद्ध की है।

इस प्रकार हिंदी 'था' का विकास संस्कृत 'आसितः' से मानने के संबंध में विचार-मंथन आवश्यक है।

कोंकणी –

कोंकणी 'आसलों' रूप '√ आस + लो' से सिद्ध होता है ('आस' के विकास के लिए देखिए, पृ. ३२६ तथा 'लो' के विकास के लिए देखिए, पृ. ३३८)। गोवा के बारदेश विभाग में 'आसलों' के बदले 'आहलों' अथवा 'आहालों' रूपों का भी प्रयोग होता है।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी √ हो तथा कोंकणी √ आस के भूतकालिक रूपों को देखने से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी √ हो तथा कोंकणी √ आस के भूतकालिक रूपों की संख्या में समानता नहीं है। हिंदी में चार तो कोंकणी में सात रूप हैं।

(२) हिंदी √ हो के भूतकालिक रूपों पर लिंग और वचन का प्रभाव है तो कोंकणी √ आस के भूतकालिक रूपों पर लिंग, वचन और पुरुष का प्रभाव है।

(३) हिंदी √ हो तथा कोंकणी √ आस के भूतकालिक रूपों में अन्तर है।

(iii) भविष्य निश्चयार्थ –

हिंदी में √ हो के 'भविष्य निश्चयार्थ' के रूप लिंग, वचन तथा पुरुष से प्रभावित हैं। इससे 'वर्तमान निश्चयार्थ' तथा 'भूत निश्चयार्थ' की अपेक्षा 'भविष्य निश्चयार्थ' के रूपों में वृद्धि हो गयी है। श्री कामताप्रसाद गुरु के अनुसार ये रूप १२ हैं [१८]; तो डा. भोलानाथ तिवारी के अनुसार ये रूप ११ हैं [१९]। यथा :– 'होऊँगा, हूँगा, होगा, होवेंगे, होंगे, होगे, होऊँगी, हूँगी, होगी, होवेंगी, होंगी।

कोंकणी में √ आस के 'भविष्य निश्चयार्थ' के रूप लिंग, वचन तथा पुरुष से प्रभावित हैं। इनकी संख्या सात हैं, यथा :– आसतलों, आसतलो, आसतले, आसतलीं, आसतली, आसतल्यो, आसतलें'।

हिंदी तथा कोंकणी के ये रूप निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट होते हैं –

	हिंदी				कोंकणी					
	एक.		बहु.		एक.			बहु.		
	पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री.	नपुं.	पु.	स्त्री.	नपुं.
उ.पु.	होऊँगा	– गी	होवेंगे	– गी	आसतलों	– लीं	– लें	आसतले	-ल्यो	(–लीं)
	हूँगा	–गी	होंगे	–गी						

म.पु.	होगा	–गी होगे	(–गी)	आसतलो –ली	,,	,,	,,	,,
अ.पु.	,,	,,(होंगे)	(–गी)	,,	,,	,, ,,	,,	,,

(कोष्ठक में दिये हुए रूप स्पष्टता के लिए दुबारा दिखाये हैं ।)

हिंदी –

हिंदी √हो के ' भविष्य निश्चयार्थ ' में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न रूपों का संबंध संस्कृत √भू से जोडा जाता है, साथ–साथ इनमें संस्कृत कृदन्त ' गत ' रूप से विकसित ' -गा ' रूप भी जोडा जाता है ।

डा. भोलानाथ तिवारी ' होऊँगा ' आदि रूपों में प्राप्त ' होऊँ ' आदि रूप संस्कृत ' भविष्यामि ' आदि भविष्यकालीन रूपों से विकसित मानते हैं [२०] ।

कोंकणी

कोंकणी √आस के ' भविष्य निश्चयार्थ ' में प्रयुक्त विभिन्न रूपों का संबंध संस्कृत √अस् से है । सं. √अस् > कों. √आस > √आस + त (' अत् ' प्रत्यय) > आसत + लो = ' आसतलो ' । इसमें ' लो ' मराठी ' ल ' की तरह स्वार्थी माना जा सकता है । मराठी में ' ल ' स्वार्थी माना है [२१] ।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी √हो तथा कोंकणी √आस के भविष्य निश्चयार्थ के रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी √हो तथा कोंकणी √आस के भविष्य निश्चयार्थ के रूपों में समानता नहीं है । हिंदी में ग्यारह तो कोंकणी में सात रूप हैं ।

(२) हिंदी भविष्य निश्चयार्थ √हो का विकास सं. √भू से है, तो कोंकणी √आस का विकास सं. √अस् से है । फलतः हिंदी √हो तथा कोंकणी √आस और उनके रूपों में अंतर है ।

(iv) वर्तमान आज्ञा

' वर्तमान आज्ञा ' को डा. भोलानाथ तिवारी ने ' संभाव्य वर्तमान ' कहा है [२२] । एक दूसरी पुस्तक में उन्होंने ही इसे ' वर्तमान आज्ञार्थ ' या ' वर्तमान संभावनार्थ ' संज्ञा से परिचित किया है [२३]। डा. धीरेंद्र वर्मा के अनुसार ' संभाव्य वर्तमान ' ही ' वर्तमान आज्ञा ' है [२४] ।

हिंदी ' वर्तमान आज्ञा ' की तुलना प्रायः कोंकणी में भविष्यकाल के दूसरे प्रकार के

' सादो भविश्य (= सादा भविष्य) ' **के साथ हो सकती है।** इसका कारण यह है कि हिंदी के ' वर्तमान आज्ञा ' में प्राप्त सहायक √हो के रूपों से जो अर्थ स्पष्ट होता है वही अर्थ कोंकणी के ' सादो भविश्य ' में प्राप्त सहायक √आस के रूपों से व्यक्त होता है, यथा :– ' यदि वे खेत काट रहे हों तो रोक दो। ' वाक्य कोंकणी में ' जर ते शेत कापता आसतीत तर (तांका)आडायात. ' होगा। मुख्य क्रिया के रूप में ' मैं लिखता होऊँ।' वाक्य का कोंकणी में ' हांव बरैत आसन. ' होगा। यहाँ कोंकणी ' आसतीत, आसन ' रूप ' सादो भविश्य ' के हैं।

अतः हिंदी ' वर्तमान आज्ञा ' के साथ तुलना करने के लिए कोंकणी ' सादो भविश्य ' लिया है।

वास्तव में यहाँ ' संभाव्य भविष्य ' शीर्षक देना उचित था। ऐसा लगता है कि हिंदी में सहायक क्रिया के रूप में ' हो ' धातु के ' संभाव्य भविष्य ' के ही रूप प्रयुक्त होते हैं, न कि वर्तमान आज्ञा के। क्यों कि वहाँ ' वर्तमान आज्ञा ' के अर्थ की कोई संभावना नहीं है। फिर भी डा. धीरेंद्र वर्मा के अनुसार यहाँ ' वर्तमान आज्ञा ' शीर्षक दे दिया है।

सूक्ष्मता से देखा जाए तो ' वर्तमान आज्ञा ' और ' संभाव्य भविष्य ' के रूपों में विशेष अन्तर नहीं है। केवल मध्यम पुरुष एकवचन में ही फर्क दीखता है, जैसे :– वर्तमान आज्ञा में ' चल ' तो संभाव्य भविष्य में ' चले '। यह अन्तर भी ' हो ' धातु छोडकर शेष धातुओं में दिखायी देता है। ' हो ' धातु के रूप तो ' वर्तमान आज्ञा ' और ' संभाव्य भविष्य ' में समान ही होते हैं। केवल ' वर्तमान आज्ञा ' में ' हो ' धातु के रूप कुछ अधिक होते हैं, जो ' संभाव्य भविष्य ' के रूपों से भिन्न होते हैं।

अतः आगे पृ. ३४२ तथा ३६१ पर हिंदी में ' वर्तमान आज्ञा ' न लेकर ' संभाव्य भविष्य ' संज्ञा ले ली है और उसके साथ कोंकणी ' सादो भविष्य ' की तुलना की है।

डा. भोलानाथ तिवारी के अनुसार ' वर्तमान आज्ञा ' में √हो के नौ रूप प्राप्त हैं, यथा :– ' होऊँ, हो, होवे, होए, हों, होवें, होएँ, होओ, होवो '।

डा. धीरेंद्र वर्मा के अनुसार ' वर्तमान आज्ञा ' में √हो के पाँच रूप होते हैं, यथा :– ' होऊँ, हो, हों, होओ, होवें '। हिंदी के इन सभी रूपों पर लिंग का प्रभाव नहीं है।

कोंकणी ' सादो भविश्य ' में √आस के प्रायः छः रूप प्राप्त हैं, यथा :– ' आसन, आसशी(शीत), आसत, आसूं, आसशात, आसती(ति)त '। कोंकणी के इन रूपों पर भी लिंग का प्रभाव नहीं है।

	हिंदी		**कोंकणी**	
	एक.	**बहु.**	**एक.**	**बहु.**
उ. पु.	होऊँ	हों	आसन	आसूं
म. पु.	हो	होओ	आसशी(शीत)	आसशात
अ. पु.	,,	होवें	आसत	आसती(ति)त

आजकल हिंदी में ' होवें ' के बदले ' हों ' रूप अधिक प्रचलित है।

हिंदी तथा कोंकणी के इन रूपों पर वचन और पुरुष का प्रभाव स्पष्ट दीखता है।

हिंदी √हो के रूपों का संबंध सं.√भू से है तो कोंकणी √आस के रूपों का संबंध सं. √अस् से है।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी ' वर्तमान आज्ञा ' के √हो तथा कोंकणी ' सादो भविश्य ' के √आस के रूपों को देखने से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी ' वर्तमान आज्ञा ' तथा कोंकणी ' सादो भविश्य ' के रूपों पर लिंग का प्रभाव नहीं है ; परंतु वचन और पुरुष का प्रभाव है।

(२) हिंदी ' वर्तमान आज्ञा ' तथा कोंकणी ' सादो भविश्य ' के रूपों में समानता नहीं है। हिंदी में नौ या पाँच तो कोंकणी में छः रूप हैं। इसके सिवा रूपों की आकृति में भी भिन्नता है।

(v) भूत संभावनार्थ

हिंदी में ' भूत संभावनार्थ ' में लिंग और वचन के अनुसार हो के चार रूप होते हैं यथा :– ' होता, होते, होती, होतीं ' । इन पर पुरुष का प्रभाव नहीं है।

हिंदी ' भूत संभावनार्थ ' का अर्थ कोंकणी में प्राप्त ' भूतकाळी निमती भविश्य, पैली तरा (=पहला प्रकार) ' से मिलता-जुलता है। अतः कोंकणी के ' भूतकाळी निमती भविष्य, पैली तरा ' की तुलना हिंदी के ' भूत संभावनार्थ ' से की है।

कोंकणी में ' भूतकाळी निमती भविश्य, पैली तरा ' में लिंग, वचन और पुरुष के अनुसार√आस के सात रूप प्राप्त हैं, यथा :– ' आसतों, आसतो, आसतीं, आसती, आसते, आसत्यो, आसतें [ये रूप ' कोंकणी व्याकरणी बांदावळ ' में स्पष्ट नहीं है। परंतु उसी पुस्तक में पृ. ११३ पर ' नासतों (न + आसतों)' रूप प्राप्त है। इसी आधार पर उपर्युक्त रूप देने का प्रयत्न किया हैं। फिर भी इसके सिवा साहित्य में ढूँढने के बाद इन रूपों के उदाहरण मिले – जो वास्तव में कम हैं – नीचे कोंकणी विभाग में दिये हैं]।

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी रूपों का स्पष्टीकरण निम्नलिखित प्रकार से है –

	हिंदी				कोंकणी					
	एक.		बहु.		एक.			बहु.		
	पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री.	पु.	स्त्री.	नपुं.	पु.	स्त्री.	नपुं.
उ.पु.	होता	–ती	होते	–तीं	आसतों	–तीं	–तें	आसते	–त्यो	(–तीं)
म.पु.	,,	,,	,,	,,	आसतो	–ती	,,	,,	,,	,,
अ.पु.	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,	,,

(कोष्ठक में दिया हुआ रूप स्पष्टता के लिए दुबारा दिखाया है।)

हिंदी

हिंदी ' होता ' रूप का संबंध सं. ' भवन्तः ' रूप से है। ' भवन्तः ' रूप ' अत् (शतृ) ' प्रत्ययान्त है।

कोंकणी

संस्कृत √अस् से विकसित कोंकणी √आस में ' अत् (शतृ) ' प्रत्यय से विकसित ' तो ' प्रत्यय जुडकर कोंकणी में ' आसतो ' रूप सिद्ध होता है।

यहाँ एक बात उल्लेखनीय है। हिंदी में ' होता ' आदि रूप मुख्य क्रिया (जैसे :– ' मैं होता। ') तथा सहायक क्रिया (जैसे :– ' मैं लिखता होता। ', ' मैंने लिखा होता।') के रूप में प्राप्त होते हैं; परंतु कोंकणी में ' आसतो ' आदि रूप प्रायः मुख्य क्रिया के रूप में प्राप्त होते हैं [जैसे :– ' हांव आसतों जाल्यार .....(= मैं होता तो ......)'; ' ताका पळोवपाक थंय कोणूय आसतो तर ... (= उसे देखने के लिए वहाँ कोई होता तो ...) ']। परंतु इस प्रकार के क्रियाओं का व्यवहार कोंकणी में कम है। इसके बदले ' भूतकाळी निमती भविश्य, दुसरी तरा ' की प्रवृत्ति अधिक है। यह ' दुसरी तरा (=दूसरा प्रकार) ' संयुक्त क्रिया से बनती है (देखिए पृ. ३५८ ; कोंकणी : क्रमांक ७)।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी ' भूत संभावनार्थ ' √हो तथा कोंकणी 'भूतकाळी निमती भविष्य, पैली तरा ' √आस के रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) ' भूत संभावनार्थ ' में हिंदी √हो के रूपों पर लिंग तथा वचन का प्रभाव है तो कोंकणी में ' भूतकाळी निमती भविश्य, पैली तरा ' में √आस के रूपों पर लिंग, वचन तथा पुरुष का प्रभाव है।

(२) ' भूत संभावनार्थ ' में, हिंदी में चार रूप हैं तो कोंकणी में सात रूप हैं।

(३) हिंदी तथा कोंकणी ' भूत संभावनार्थ ' के रूपों में प्रत्यय की दृष्टि से साम्य है, क्यों कि हिंदी ' ता ' तथा कोंकणी ' तो ' संस्कृत ' अत् ' प्रत्यय से विकसित हैं। परंतु ये प्रत्यय जिनमें जुडते हैं, वे √हो तथा √आस भिन्न-भिन्न हैं। हिंदी ' ता ' में ' आ ' हिंदी की आकरान्त तथा कोंकणी ' तो ' में ' ओ ' कोंकणी की ओकारान्त प्रवृत्ति के कारण है।

(आ) कुछ अन्य सहायक क्रियाएँ

हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त होने वाली उपर्युक्त सहायक क्रियाओं के सिवा हिंदी में √रह तथा कोंकणी में √जा (= होना) के रूप भी सहायक क्रिया के रूप में प्रयुक्त होते हैं। अतः नीचे इनकी जानकारी दे दी है।

हिंदी : √रह

हिंदी में √रह से बने भूतकालिक कृदन्त 'रहा' रूप का प्रयोग अपूर्ण वर्तमानकाल तथा अपूर्ण भूतकाल में सहायक क्रिया के रूप में होता है, यथा :– 'मैं जा रहा हूँ। (अपूर्ण वर्तमानकाल)'; 'मैं जा रहा था। (अपूर्ण भूतकाल)'। यह 'रहा' रूप लिंग तथा वचन से प्रभावित है, यथाः– 'रहा (पु. एक.)', 'रहे (पु. बहु.)' और 'रही (स्त्री. एक. तथा बहु.)'। 'रही' जब सहायक क्रिया के रूप में होती तब उसके बहुवचन में 'ही' पर अनुस्वार नहीं होता है, परंतु मुख्य क्रिया के रूप में होती तब उसपर अनुस्वार होता है, जैसे :– 'हम रहीं।'; 'वे रहीं।' आदि।

कोंकणी में हिंदी √रह धातु के अर्थ का धातु है √राव। परंतु इसका उपयोग सहायक क्रिया में नहीं होता है। हिंदी 'मैं जा रहा हूँ।' का रूपान्तरण कोंकणी में 'हांव वचत आसां.' होगा।

कोंकणी : √जा (= होना)

कोंकणी में √जा के (१) भूतकाळ (= भूत निश्चयार्थ), (२) नित्शायी भविश्य (= भविष्य निश्चयार्थ) तथा (३) सादो भविश्य (= संभाव्य भविष्य) में जो रूप प्राप्त हैं वे सहायक क्रिया के लिए भी उपयुक्त होते हैं। इन कालों में व्यवहृत कोंकणी 'जा' धातु के रूप नीचे दिये हैं।

(१) भूतकाळ (= भूत निश्चयार्थ) –

कोंकणी में √जा का भूतकालिक रूप 'जालो' सहायक क्रिया के रूप में प्रयुक्त है, यथा :– 'तो तें काम करिना जालो.' आदि। 'जालो' रूप प्रायः निषेधार्थक वाक्य में प्रयुक्त है, यथा :– 'तो वचना जालो.' आदि। 'जालो' के सात रूप प्राप्त होते हैं। ये रूप लिंग, वचन तथा पुरुष से प्रभावित हैं, यथा –

	एक.			बहु.		
	पु.	स्त्री.	नपुं.	पु.	स्त्री.	नपुं.
उ. पु.	जालों	–लीं	–लें	जाले	–ल्यो	(–लीं)
म. पु.	जालो	–ली	,,	,,	,,	,,
अ. पु.	,,	,,	,,	,,	,,	,,

(कोष्ठक में 'लीं' स्पष्टता के लिए दुबारा दिखाया है।)

(२) नित्शायी भविश्य (= भविष्य निश्चयार्थ) –

कोंकणी में √जा के ' नित्शयी भविश्य ' के रूप सहायक क्रिया के रूप में प्राप्त हैं, यथा :– ' तो धांवता जातलो. ', ' ती धांवता जातली. ' आदि । ' जातलो ' के भी सात रूप प्राप्त होते हैं । ये रूप लिंग, वचन तथा पुरुष से प्रभावित हैं, यथा –

	एक.			बहु.		
	पु.	स्त्री.	नपुं.	पु.	स्त्री.	नपुं.
उ. पु.	जातलों	– लीं	– लें	जातले	– ल्यो(– लीं)	
म. पु.	जातलो	– ली	,,	,,	,,	,,
अ. पु.	,,	,,	,,	,,	,,	,,

(यहाँ भी कोष्ठक में ' लीं ' स्पष्टता के लिए दुबारा दिखाया है !)

(३) सादो भविश्य (= संभाव्य भविष्य) –

कोंकणी में √जा के ' सादो भविश्य ' के रूप भी सहायक क्रिया के रूप में प्राप्त हैं, यथा :– तो धांवता जायत. ', ' तो धांवलो जायत. ' आदि । इसके प्रायः छः रूप प्राप्त हैं जो पुरुष तथा वचन से प्रभावित हैं, यथा :–

	एक.	बहु.
उ. पु.	जायन	जावूं
म. पु.	जाशी(शीत)	जाशात
अ. पु.	जायत	जाती(ति)त

उपर्युक्त रूप कोंकणी में पुल्लिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग में प्रयुक्त हैं ।

ऊपर उल्लिखित कोंकणी के सभी रूपों का संबंध कोंकणी √जा से है । कोंकणी √जा संस्कृत √जन् से विकसित है । इस संस्कृत √जन् से हिंदी में √जा विकसित नहीं है । हिंदी √जा संस्कृत √या से विकसित है जिसका अर्थ है ' गमन ' । इस हिंदी √जा का अर्थ कोंकणी √वच से बोधित है । कोंकणी का यह √वच शायद संस्कृत √वा अथवा √व्रज से विकसित होगा ।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी की कुछ अन्य सहायक क्रियाओं के विवरण से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी में √रह के भूतकालिक रूप सहायक क्रिया के रूप में प्रयुक्त है, परंतु कोंकणी में इस प्रकार √रह का प्रयोग नहीं है ।

(२) कोंकणी में √जा के ' भूतकाळ, नित्शयी भविश्य ' तथा ' सादो भविश्य ' के रूप सहायक क्रिया के रूप में भी प्रयुक्त हैं, परंतु हिंदी में √जा के रूप सहायक क्रिया के रूप में प्राप्त नहीं । इसका कारण यह है कि संस्कृत √जन् से विकसित धातु हिंदी में उपलब्ध नहीं हैं ।

(३) हिंदी √रह के रूप वचन तथा लिंग से प्रभावित हैं । परंतु कोंकणी में ' भूतकाळ (= भूत निश्चयार्थ)' तथा ' नित्शयी भविश्य (= भविष्य निश्चयार्थ)' में प्रयुक्त √जा के

रूपों पर लिंग, वचन तथा पुरुष का प्रभाव है तो 'सादो भविश्य (= संभाव्य भविष्य)' प्रयुक्त √जा के रूपों पर केवल लिंग का प्रभाव नहीं है।

८) काल–रचना में उपयुक्त कृदन्त

हिंदी तथा कोंकणी काल-रचना में (i) वर्तमानकालिक कृदन्त, (ii) भूतकालि कृदन्त तथा (iii) भविष्य आज्ञार्थक (कोंकणी में 'विध्यर्थक') कृदन्त रूपों का व्यवहा होता है। इनका विकास निम्नलिखित प्रकार से है।

(i) वर्तमानकालिक कृदन्त –

वर्तमानकालिक कृदन्त बनाने के लिए धातु के अन्त में, हिंदी में 'ता' प्रत्यय जोड जाता है तो कोंकणी में 'तो, ता' प्रत्यय जोडा जाता है।

हिंदी 'ता'

हिंदी 'ता' पुल्लिग एकवचनीय प्रत्यय है। इसका पुल्लिग बहुवचन, एवं विकारी रूप में 'ते' होता है तथा स्त्रीलिंग एकवचन तथा बहुंवचन एवं विकारी रूप में 'ती' होता है।

डा. चटर्जी आदि विद्वान 'ता' का विकास संस्कृत 'कुर्वन्त् (शतृ प्रत्ययान्त)' रू से मानते हैं [२५]।

कोंकणी 'तो, ता'

कोंकणी में वर्तमानकालिक कृत् प्रत्यय 'तो', 'ता' दो हैं। इनमें से 'तो' पर लिंग तथा वचन का प्रभाव है, यथा :– 'तो' का पु. बहु. में 'ते', स्त्री. एक. में 'ती' स्त्री. बहु. 'त्यो', नपुं. एक. में 'तें' और नपुं. बहु. में 'तीं'। इसके सिवा उत्तम पुरुष में 'तो' पर अनुनासिक का प्रभाव पडता है, यथा :– 'करतों, करतीं, करतें' आदि। कोंकणी 'ता' पर लिंग का प्रभाव नहीं है परंतु वचन तथा पुरुष का प्रभाव है।

श्री वालावलीकर ने 'तो, ता' का विकास उपर्युक्त हिंदी 'ता' की तरह संस्कृत शतृ प्रत्ययान्त रूप से माना है।

यह बात यद्यपि 'तो' के बारे में मान ली जाए तो भी कोंकणी 'ता' के बारे में नहीं मानी जा सकती। क्यों कि इस 'ता' पर लिंग का प्रभाव नहीं है। अतः इसका विकास संस्कृत 'भवति' आदि में प्राप्त 'ति' प्रत्यय से मानना उचित है। 'अपभ्रंश भाषा का अध्ययन' ग्रंथ में एकवचन में 'दि' और बहुवचन में 'न्ति' प्रत्यय मिलते हैं (देखिए, पृ. २०४)। इनसे 'ता' का विकास हो सकता है।

हिंदी 'ता' तथा कोंकणी 'तो, ता' प्रत्ययान्त कृदन्तों का व्यवहार निम्नलिखित शब्द-भेदों में प्राप्त है, यथा –

शब्द-भेद	: प्रत्यय	हिंदी	प्रत्यय	कोंकणी
संज्ञा	: ता –	मरते को क्या मरना? (' ता ' का ' ते ' विकारी रूप)	तो –	हांगा घेतो आसा, पुण दितो कोण ना.
विशेषण	: ,,	दौडता घोडा।	,,	धांवतो घोडो
क्रिया	: ,,	वह आता है।	ता –	तो येता.

(उपर्युक्त संज्ञा भेद–में दिया हिंदी तथा कोंकणी का वाक्य भिन्नार्थक है। कोंकणी के पहले वाक्य में ' घेतो ' का अर्थ ' लेने वाला ' तथा ' दितो ' का अर्थ ' देने वाला ' है। परंतु कोंकणी में इस प्रकार वाक्य–रचना करने की प्रवृत्ति क्वाचित्क है। इसके बदले ' हांगा घेवपी आसा, पुण दिवपी कोण ना .' वाक्य अधिक प्रचलित है।)

यहाँ कुछ बातें उल्लेखनीय हैं। ' हिंदी में ' ता ' प्रत्यय संज्ञा, विशेषण और क्रिया में प्राप्त है तो कोंकणी में ' तो ' प्रत्यय संज्ञा और विशेषण में तथा ' ता ' प्रत्यय क्रिया में प्राप्त है। इसके सिवा कोंकणी में ' तो ' प्रत्यय ' भूतकाळी निमती भविश्य, पैली तरा ' में भी प्राप्त होता है, यथा :– पावस पट्टो (पडतो) जाल्यार सुकळ जातो. '। हिंदी में भूत संभावनार्थ के लिए ' ता ' प्रत्यय का ही प्रयोग होता है (देखिए पृ. ३३२)। अतः कोंकणी के ' पावस पट्टो जाल्यार सुकळ जातो. ' वाक्य हिंदी में ' यदि पावस गिरती तो सुकाल होता।' रूप में अनूदित होगा।

उपर्युक्त हिंदी के संज्ञा और विशेषण में प्राप्त ' ता ' प्रत्यय पर लिंग और वचन का प्रभाव पडता है तो कोंकणी में संज्ञा और विशेषण में प्राप्त ' तो ' पर लिंग और वचन का प्रभाव पडता है; साथ-साथ ' भूतकाळी निमती भविश्य, पैली तरा ' में प्राप्त ' तो ' पर पुरुष का भी प्रभाव पडता है।

वर्तमानकालिक क्रिया में, हिंदी में ' ता ' प्रत्यय ही प्राप्त है तो कोंकणी में उपर्युक्त ' तो ' प्रत्यय का रूपान्तर ' ता ' प्रत्यय प्राप्त है (इस संबंध में नया दृष्टिकोण ऊपर दिया है)। हिंदी ' ता ' पर लिंग तथा वचन का प्रभाव है तो कोंकणी ' ता ' पर वचन तथा पुरुष का प्रभाव है।

× × ×

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) वर्तमानकालिक कृदन्त का, हिंदी में ' ता ' एक ही प्रत्यय है तो कोंकणी में दो प्रत्यय हैं – ' तो ', ' ता '।

(२) हिंदी में ' ता ' प्रत्यय संज्ञा, विशेषण और क्रिया में प्रयुक्त होता है तो कोंकणी में ' तो ' प्रत्यय संज्ञा, विशेषण और क्रिया (' भूतकाळी निमती भविश्य , पैली तरा ') में प्राप्त है। दूसरा ' ता ' प्रत्यय केवल क्रिया में प्राप्त है।

(३) हिंदी ' ता ' पर लिंग तथा वचन का प्रभाव है, तो कोंकणी ' तो ' पर लिंग,वचन तथा पुरुष का प्रभाव है और ' ता ' पर वचन तथा पुरुष का प्रभाव है।

(४) हिंदी 'ता' तथा कोंकणी 'तो', 'ता' संस्कृत 'अत् (शतृ)' प्रत्ययान्त रू
से विकसित हैं।

(ii) भूतकालिक कृदन्त

भूतकालिक कृदन्त बनाने के लिए धातु के अन्त में हिंदी में 'आ' अथवा 'या
प्रत्यय जोडा जाता है तो कोंकणी में 'लो', 'इल्लो (लिल्लो)' अथवा 'लेलो (ललो)
प्रत्यय जोडे जाते हैं।

हिंदी : 'आ', 'या'

हिंदी 'आ', 'या' पुल्लिंग एकवचनीय प्रत्यय हैं। इनका पुल्लिग बहुवचन ए
विकारी रूप में 'ए', 'ये' तथा स्त्रीलिंग एक., बहु. एवं विकारी रूपों में 'ई', 'यी
होता है।

हिंदी 'आ' का विकास संस्कृत 'त' से प्राप्त है। 'आ' में 'य्' श्रुति है। इससे
'या' होता है।

कोंकणी : 'लो', 'इल्लो (लिल्लो)', 'लेलो (ललो)'

कोंकणी 'लो' पुल्लिग एकवचनीय प्रत्यय है। इसका पुल्लिग बहु. में 'ले', स्त्री
एक. में 'ली', स्त्री. बहु. में 'ल्यो', नपुं. एक में 'लें' और नपुं. बहु. में 'लीं' होता है
। इसके सिवा तीनों लिंगों के एक. और बहु. के विकारी रूपों में 'ल्या' होता है। 'लो'
पर उत्तम पुरुष का भी प्रभाव है अतः उत्तम पुरुषीय 'लो' सानुनासिक(लों) बनता है।

प्रा. कुलकर्णी ने भूतकालिक 'ल' को स्वार्थी माना है[२६]। इसी प्रकार भूतकाल का
पूर्णत्व दिखाने के लिए वे 'ल' का दोबारा प्रयोग मानते हैं[२७], जैसे :– 'लल'।

डा. तुळपुळे 'ल' का विकास प्राकृत 'अल्ल' अथवा 'इल्ल (विशेषणात्मक
प्रत्यय)' से मानते हैं[२८]।

भूतकालिक 'लो' प्रत्यय संस्कृत 'त(क्त)' से विकसित मानने में आपत्ति नहीं
होनी चाहिए (विस्तार के लिए देखिए, 'लो' पृ. ४१२)।

हिंदी 'आ' तथा कोंकणी 'लो' में भिन्नता है, तथापि कोंकणी 'ल' प्रत्यय का
साम्य भोजपुरी आदि बिहारी बोलियाँ में प्राप्त भूतकालिक कृत् 'ल' प्रत्यय से है।

कोंकणी में प्राप्त होने वाले उपर्युक्त 'इल्लो (लिल्लो)', 'लेलो(ललो)' रूप 'ल'
के ही विस्तारित रूप हैं।

हिंदी 'आ', 'या' तथा कोंकणी 'लो', 'इल्लो (लिल्लो)', 'लेलो(ललो)'
कृत् प्रत्ययों का प्रयोग निम्नलिखित शब्द-भेदों में प्राप्त है, यथा :–

ाब्द–भेद :	हिंदी	कोंकणी
ंज्ञा :	मरे को क्या मारना।	मेलिल्याक कितें मारप.
वेशेषण :	बैठे लडके को खाना दो।	बसलेल्या भुरग्याक खांवक दी.
,, :	खाया आम मीठा था।	खालिल्लो आंबो गोड आशिल्लो.
क्रेया :	वह बाजार गया।	तो बाजारांत गेलो.
,, :	राम सोया था।	राम न्हिदिल्लो.
,, :	मैं गया था।	हांव गेल्लों (गेलिल्लों).

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी 'आ', 'या' तथा कोंकणी 'लो', 'इल्लो', 'लेलो' प्रत्यय संस्कृत भूतकालिक कृत् 'त' से निष्पन्न हैं।

(२) हिंदी तथा कोंकणी के इन प्रत्ययों में काफी अन्तर है।

(३) हिंदी 'आ', 'या' तथा कोंकणी 'लो', 'इल्लो(लिल्लो)', 'लेलो(ललो)' में लिंग तथा वचन का प्रभाव है। इसके सिवा कोंकणी के इन प्रत्ययों में पुरुष का भी प्रभाव है।

(४) शब्द-भेद दृष्टि से हिंदी 'आ', 'या' संज्ञा, विशेषण और क्रिया में प्रयुक्त हैं तो कोंकणी 'लो' केवल क्रिया में तथा 'इल्लो', 'लेलो' संज्ञा, विशेषण और क्रिया में प्रयुक्त हैं।

(iii) भविष्य आज्ञार्थक कृदन्त (= परोक्ष विधि; कोंकणी में विध्यर्थक कृदन्त)

हिंदी में भविष्य आज्ञार्थ बनाने के लिए धातुओं के अन्त में 'ना' जोडा जाता है, तो कोंकणी में विध्यर्थक कृदन्त बनाने के लिए धातुओं के अन्त में 'चो,प' जोडा जाता है।

हिंदी : 'ना'

हिंदी 'ना' पुल्लिंग एकवचनीय प्रत्यय है। इसका बहुवचन, एवं विकारी रूप में 'ने' तथा स्त्रीलिंग एक., बहु. एवं विकारी रूपों में 'नी' होता है। परंतु संज्ञा में यह विकारी है और भविष्य आज्ञार्थक क्रिया में अविकारी है। इस काल में यह मध्यम पुरुष में ही प्राप्त है।

डा. हार्नले आदि विद्वानों ने 'ना' का संबंध संस्कृत भविष्य कृदन्त 'खेलनीय' एवं 'अनीय' कृत् प्रत्यय से माना है [२९]।

डा. भोलानाथ तिवारी संस्कृत 'अन' से हिंदी 'ना' की व्युत्पत्ति मानते हैं, यथा:– कथन > कहना [३०]।

वस्तुतः हिंदी भविष्य आज्ञार्थ (=विध्यर्थ) के कृत् 'ना' प्रत्यय का विकास संस्कृत 'अनीय' से माना जाना चाहिए। हिंदी की कुछ बोलियों में 'ब' जोडकर 'भविष्य कृदन्त' का रूप बनाया जाता है। डा. भोलानाथ तिवारी ने इस 'ब' प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत भविष्य कृदन्त 'खेलितव्यं, पठितव्यं, कर्तव्यं' एवं 'तव्य' प्रत्यय से मानी है [३१]।

समान न्याय से हिंदी 'ना' प्रत्यय भी भविष्य कृदन्त 'खेलनीयं, पठनीयं करणीयं' एवं अनीय' प्रत्यय से व्युत्पन्न मानने में आपत्ति नहीं है।

हाँ, क्रियार्थक संज्ञा (जैसे :– सं. कथन > हिं. कहना) में जो 'ना' प्रत्यय है वह संस्कृत भाववाचक संज्ञार्थक 'अन(ल्युट्)' से माना जाए। इसलिए आगे रचनात्मक अध्याय में यही बात स्पष्ट की है कि हिंदी तथा कोंकणी के प्रत्यय संस्कृत के अलग-अलग प्रत्ययों से विकसित मानना जरूरी है।

कोंकणी : 'चो'

कोंकणी 'चो' पुल्लिंग एकवचनीय प्रत्यय है। इसका पुल्लिग बहुवचन में 'चे', स्त्री. एक. में 'ची', स्त्री. बहु. में 'च्यो', नपुं. एक. में 'चें' और नपुं. बहु. में 'चीं' होता है। इसके सिवा तीनों लिंगों के एक. और बहु. के विकारी रूपों में 'च्या' होता है।

कोंकणी विध्यर्थ (=भविष्य आज्ञार्थ) के 'चो' का विकास संस्कृत 'खेलितव्यं, पठितव्यं, कर्तव्यं' में प्राप्त 'तव्य' प्रत्यय से माना है[३२]।

हिंदी 'ना' तथा कोंकणी 'चो' प्रत्ययान्त रूप का प्रयोग निम्नलिखित शब्द-भेदों में प्राप्त है –

शब्द-भेद		**हिंदी**	**कोंकणी**
संज्ञा	:	राम को खेलना है।	रामाक खेळचें आसा.
क्रिया	:	तुम चलना(भविष्य आज्ञार्थ)।	तुमी वचचें (विध्यर्थक).
विशेषण	:	—— ——	खावचे दांत वेगळे आनी दाखौवचे दांत वेगळे.

उपर्युक्त कोंकणी का तीसरा वाक्य इस प्रकार भी होता है :– 'खावपाचे दांत वेगळे आनी दाखोवपाचे दांत वेगळे.' आदि। इस दृष्टि से विध्यर्थक प्रत्यय के संबंध में यहाँ एक और बात का उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा।

कोंकणी में धातु के अन्त में 'प' जोडकर क्रियार्थक संज्ञा तथा क्रिया की रचना होती है, यथा :– संज्ञा : एकदां खंय तुकारामान शेत राखपाचें काम पतकरलें (= कभी एक बार तुकाराम ने खेत के रक्षण करने का काम स्वीकारा।).[३३], 'आतां गोरवां भितर दुडवांचें दिवप-घेवप नाशिल्यान .... (= अब पशुओं में पैसों की लेन-देन न होने के कारण .....).[३४]; क्रिया : 'तांका कित्याक आमडप (= उन्हें क्यों हाँकना) ?[३५], 'आमी हें काम करप (= हमें यह काम करना है) ?' आदि। इस प्रकार 'प' प्रत्ययान्त धातु का क्रियार्थक संज्ञा तथा क्रिया के रूप में व्यवहार किया जाता है।

इस 'प' प्रत्ययान्त रूपों का कोंकणी में बहुत प्रयोग होता है।

परिनिष्ठित हिंदी में इस प्रकार का कोई प्रत्यय नहीं है; परंतु हिंदी की कुछ बोलियों में 'ब' प्रत्यय जोडा जाता है। इस 'ब' का व्यवहार धीरेंद्र वर्मा 'भविष्यकाल' में

[अ]र्थात् क्रिया में मानते हैं [३६]। हिंदी 'ब' का विकास संस्कृत 'तव्य' से माना जाता है, [य]था :– सं. तव्य, इतव्य > प्रा. अव्व, इअव्व > अब्ब, इअब्ब, एब्ब > ब।

यह 'ब' रूप अपभ्रंश में प्राप्त है। परंतु आगे चलकर 'ब' हिंदी की कुछ बोलियों [मे]ं जैसे–के–वैसे बना रहा तो कोंकणी में इसका 'प' रूप में विकास हुआ। अर्थात् [क]ोंकणी 'प' प्रत्यय का विकास संस्कृत 'तव्य' प्रत्यय से माना जा सकता है।

× × ×

उपर्युक्त विवरण से हिंदी तथा कोंकणी में निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी 'ना' तथा कोंकणी 'चो' में अन्तर है। यह अन्तर संस्कृत के भिन्न-भिन्न [प्र]त्ययों से विकसित होने के कारण है।

(२) अर्थ की दृष्टि से देखें तो हिंदी में 'ना' प्रत्यय संज्ञा तथा क्रिया (भविष्य आज्ञार्थ) में व्यवहृत है तो कोंकणी में 'चो' प्रत्यय संज्ञा, क्रिया (विध्यर्थ) तथा विशेषण में प्रयुक्त है।

(३) हिंदी 'ना' तथा कोंकणी 'चो' पर लिंग-वचन का प्रभाव है।

(४) 'प' प्रत्यय हिंदी में प्राप्त नहीं है, परंतु कोंकणी में प्राप्त है। कोंकणी में यह संज्ञा तथा क्रिया में प्राप्त है।

९) काल–रचना

हिंदी तथा कोंकणी में प्रमुख तीन काल हैं :– (१) भूत, (२) वर्तमान और (३) भविष्य। किसी भी काल की क्रिया का व्यापार (१) अपूर्ण, (२) पूर्ण या (३) सामान्य हो सकता है। क्रिया के अर्थ की दृष्टि से क्रिया (१) निश्चयार्थ, (२) संभावनार्थ, (३) संदेहार्थ, (४) आज्ञार्थ और (५) संकेतार्थ में व्यवहृत होती है। इनकी चर्चा पूर्व की जा चुकी है (देखिए, पृ. ३२३)। इस प्रकार व्यापारों, अर्थो और आधुनिक साहित्य में प्राप्त कालों की गणना के आधार पर हिंदी कालों की संख्या प्रायः सत्रह तथा कोंकणी कालों की संख्या प्रायः इक्कीस होती है।

रचना के दृष्टि से काल दो प्रकार के हैं , जैसे :– मूल काल तथा यौगिक काल।

मूल काल :– इसमें सहायक क्रिया का प्रयोग न होकर केवल मूल क्रिया (अर्थात् 'तिङन्त' या 'कृदन्त' रूप) का प्रयोग होता है, जैसे :– 'मैं चलूँ (तिङन्त)।', 'मैं चलता (कृदन्त)।' आदि।

यौगिक काल :– इसमें कृदन्त रूप मुख्य क्रिया के रूप में होता है तथा साथ में सहायक क्रिया का रूप होता है, यथा :– 'राम काम करता है ('करता' मुख्य क्रिया और 'है' सहायक क्रिया)।', 'मैं चला था ('चला' मुख्य क्रिया और 'था' सहायक क्रिया)।' आदि।

इन दोनों विभागों का विवरण नीचे दिया है।

१०) मूल काल

हिंदी तथा कोंकणी में मूल काल दो प्रकार के हैं :– (क) संस्कृत तिङन्त रूपों से विकसित तथा (ख) संस्कृत कृदन्त रूपों से विकसित। नीचे इनका विवरण प्रस्तुत है –

(क) संस्कृत तिङन्त रूपों से विकसित मूल काल –

हिंदी तथा कोंकणी में संस्कृत तिङन्त रूपों से विकसित मूल काल प्राप्त हैं। हिंदी में इस प्रकार के दो तो कोंकणी में तीन काल हैं, जैसे :–

क्रमांक	हिंदी	कोंकणी
(१)	संभाव्य भविष्य	सादो भविष्य
(२)	वर्तमान आज्ञार्थ	आज्ञार्थ
(३)	—— ——	रीति भूतकाळ, दुसरी तरा

नीचे इनका स्पष्टीकरण दिया है।

(१) हिंदी ' संभाव्य भविष्य ' तथा कोंकणी ' सादो भविश्य '

डा. धीरेंद्र वर्मा ने ' संभाव्य भविष्य ' को ' वर्तमान संभावनार्थ ' से परिचित कराया है[१]।

डा. भोलानाथ तिवारी ने अपनी ' हिंदी भाषा ' पुस्तक में इसकी संज्ञा ' वर्तमान संभावनार्थ ' अथवा ' भविष्य संभावनार्थ ' दी है। परंतु उन्होंने ही अपनी दूसरी पुस्तक ' हिंदी भाषा का सरल व्याकरण' में वर्तमान संभावनार्थ को ' संभाव्य भविष्य ' अथवा ' सामान्य वर्तमान निश्चयार्थ ' कहा है[३]। यहाँ कोंकणी के साथ तुलना के लिए ' संभाव्य भविष्य ' संज्ञा स्वीकारी है। इसका कारण यह है कि हिंदी का संभाव्य भविष्य अर्थ की दृष्टि से कोंकणी के ' सादो भविश्य ' से मिलता-जुलता है। और हिंदी के ' संभाव्य भविष्य ' में तथा कोंकणी के ' सादो भविश्य ' में ' भविष्य ' पद समान है। अतः ऊपर उपशीर्षक में ' संभाव्य भविष्य ' संज्ञा ले ली है। फिर भी इसे ' भविष्य संभावनार्थ ' से परिचित कराने में आपत्ति नहीं है। कुल मिलाकर अर्थ की दृष्टि से हिंदी ' संभाव्य भविष्य ' के साथ कोंकणी के ' सादो भविष्य ' की तुलना की है (विस्तार के लिए देखिए , पृ. ३३०)।

' संभाव्य भविष्य ' के रूप हिंदी में कुल मिलाकर चार हैं, यथा :– ' चलूं, चले, चलें ' और ' चलो '; तो कोंकणी के ' सादो भविष्य ' में प्रायः छः रूप हैं, यथा :– ' चलन, चलशी(शीत), चलत, चलूं, चलशात ' और ' चलती(ति)त '। इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी के इन रूपों में भेद है। यह भेद वचन तथा पुरुष के आधार पर निम्नलिखित प्रकार से है –

	हिंदी		कोंकणी	
	एक.	बहु.	एक.	बहु.
उ. पु.	चलूं	चलें	चलन	चलूं
म. पु.	चले	चलो	चलशी (शीत)	चलशात
अ. पु.	चले	चलें	चलत	चलती(ति)त

हिंदी तथा कोंकणी के उपर्युक्त रूपों पर लिंग का प्रभाव नहीं है।

हिंदी 'संभाव्य भविष्य'

हिंदी 'संभाव्य भविष्य' के रूपों का संबंध संस्कृत के वर्तमानकाल के तिङन्त रूपों से माना जाता है। ग्रियर्सन के अनुसार तुलनात्मक कोष्ठक नीचे दिया है –

पुरुष	वचन	संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश	हिंदी
उ. पु.	एक.	चलामि	चलामि	चलउँ	चलूँ(मैं)
	बहु.	चलामः	चलामो	चलहुँ	चलें(हम)
म. पु.	एक.	चलसि	चलसि	चलहि, चलइ	चले (तू)
	बहु.	चलथ	चलह	चलहु	चलो (तुम)
अ. पु.	एक.	चलति	चलइ	चलइ	चले (वह)
	बहु.	चलन्ति	चलन्ति	चलहिं	चलें (वे)

उपर्युक्त मध्यम तथा अन्य पुरुष के रूपों में संशय नहीं है, परंतु उत्तम पुरुष के एकवचन तथा बहुवचन के रूपों में संदेह पैदा होता है।

डा. धीरेंद्र वर्मा तथा डा. उदयनारायण तिवारी आदि ने इन रूपों को संदिग्ध माना है [४०] ।

बीम्स उत्तम पुरुष के एकवचन तथा बहुवचन के रूपों का आपस में परिवर्तन मानते हैं [४१] ।

डा. भोलानाथ तिवारी 'चलामि' से 'चलूं' तथा संस्कृत 'चलामः' से प्राकृत में कल्पित 'चलामे' रूप स्वीकार कर 'चलें' रूप विकसित मानते हैं [४२]।

इस संबंध में निम्नलिखित प्रकार से भी विचार किया जा सकता है।

हिंदी के उत्तम पुरुष के एकवचन के 'चलूँ' रूप के विकास में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। क्यों कि संस्कृत 'चलामि' रूप से 'चलूं' रूप सरलता से विकसित होता है। 'चलामि' का विकास अपभ्रंश तक पहुँचते ही इकारान्त से उकारान्त हो जाता है, जिससे अपभ्रंश 'चलउँ' से हिंदी 'चलूं' विकसित हो सकता है। कठिनता है हिंदी के उत्तम पुरुष बहुवचन के 'चलें' रूप की सिद्धि में। उपर्युक्त तालिका में उत्तम पुरुष बहुवचन का अपभ्रंशीय रूप 'चलहुँ' दिया है जिससे हिंदी 'चलें' रूप सिद्ध नहीं हो सकता। परंतु अपभ्रंश में वर्तमान काल के उत्तम पुरुष बहुवचन में एक और रूप प्राप्त है,

यथा :– 'करिमु'[४३]। प्राकृत में तो उत्तम पुरुष बहुवचन में कई रूप प्राप्त हैं[४४]। इनमें हसिमो, हसिमु, हसिम, हसेमो, हसेम, हसेमु ' जैसे रूप भी प्राप्त हैं। इनसे अपभ्रंश में ' करिमु (हसिमु) ' रूप भी प्राप्त है। इस रूप में ' उ ' का लोप, ' इ ' का ' ए ' तथा ' म् ' का अनुस्वार होने से ' करें ' रूप सिद्ध होने में आपत्ति नहीं है। अर्थात् संस्कृत ' चलें ' रूप का विकास इस प्रकार होगा :– सं. चलामः > प्रा. चलामो, चलिमु > अप. चलिमु > हिं. चलें।

शेष मध्यम तथा अन्य पुरुष के एकवचन तथा बहुवचन के रूपों के विकास में कोई बाधा नहीं है।

कोंकणी : ' सादो भविश्य '

कोंकणी ' सादो भविश्य ' के रूप श्री वालावलीकर ने संस्कृत ' वर्तमानकाल (= लट्) ' प्रत्ययों के आगे ' भविष्यकाल (=लुट्) ' के ' त(तृ) ' प्रत्यय को जोडकर व्युत्पन्न करने का प्रयत्न किया है[४५]।

फिर भी ऐसा लगता है कि कोंकणी ' सादो भविश्य ' के रूप केवल ' वर्तमानकाल ' से विकसित नहीं हैं। एवं निम्नलिखित दृष्टि से भी विचार होना आवश्यक है।

उत्तम पुरुष –

कोंकणी उत्तम पुरुष एकवचन का ' चलन ' रूप संस्कृत आज्ञार्थ (= लोट्) के उत्तम पुरुष एकवचन के ' चलानि ' से विकसित माना जाए, अथवा अपभ्रंश में वर्तमानकाल में प्राप्त ' चलउं (<सं. चलामि) ' के अनुस्वार का ' न ' विकसित माना जाए ; जिससे कोंकणी ' चलन ' रूप सिद्ध हो सके। उत्तम पुरुष बहुवचन के ' चलूं ' रूप का विकास वर्तमानकाल के उत्तम पुरुष बहुवचन के ' चलाम ' > अप. ' चलहुं ' से हो सकता है।

मध्यम पुरुष –

मध्यम पुरुष के एकवचन में ' चलशी(–त) ' तथा बहुवचन में ' चलशात ' रूप हैं। इनका विकास भविष्यकाल के मध्यम पुरुष एकवचन के ' चलिष्यसि ' तथा बहुवचन के ' चलिष्यथ ' से माना जा सकता है। एकवचन ' चलशीत (वैकल्पिक रूप) ' में बहुवचन में प्राप्त ' त ' का प्रभाव होगा।

अन्य पुरुष –

अन्य पुरुष एकवचन में ' चलत ' रूप संस्कृत वर्तमानकाल के ' चलति ' अथवा आज्ञार्थ के ' चलतु ' रूप से विकसित हुआ होगा।

अन्य पुरुष बहुवचन में ' चलती(ति)त ' रूप संस्कृत वर्तमानकाल के ' चलन्ति ' अथवा आज्ञार्थ के ' चलन्तु ' रूप से विकसित हुआ होगा; जो विकसित होते समय मध्यम पुरुष के बहुवचन में प्राप्त ' त ' के साहचर्य से ' चलतीत ' में विकसित है।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी ' संभाव्य भविष्य ' तथा कोंकणी ' सादो भविश्य ' के विवेचन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

१) हिंदी ' संभाव्य भविष्य ' तथा कोंकणी ' सादो भविश्य ' के रूपों पर लिंग का प्रभाव नहीं है परंतु वचन और पुरुष का प्रभाव है ।

२) हिंदी ' संभाव्य भविष्य ' में चार रूप प्राप्त हैं तो कोंकणी ' सादो भविश्य ' में छः रूप प्राप्त हैं ।

(३) हिंदी ' चलूँ ' तथा कोंकणी ' चलूं ' रूप में प्रायः साम्य है । परंतु हिंदी ' चलूँ ' रूप उत्तम पुरुष एकवचन में तो कोंकणी ' चलूं ' रूप उत्तम पुरुष बहुवचन में प्रयुक्त होता है । इस प्रकार वचन की दृष्टि से दोनों में अन्तर है । हिंदी तथा कोंकणी के शेष रूपों में किसी प्रकार की समानता नहीं पायी जाती ।

(२) हिंदी ' वर्तमान आज्ञार्थ (= आज्ञार्थ) ' तथा कोंकणी ' आज्ञार्थ '

हिंदी ' वर्तमान आज्ञार्थ ' को डा. भोलानाथ तिवारी ने ' भविष्य आज्ञार्थ ' भी कहा है[४६], यथा :– ' तू चल, तुम चलो ' आदि । इसके सिवा उन्होंने ' तुम चलना ' में प्राप्त ' ना ' प्रत्ययान्त रूप को भी ' भविष्य आज्ञार्थ ' ही कहा है[४७]।

इस संबंध में ' सुगम हिंदी व्याकरण ' में दो भेद माने हैं[४८], जैसे :–(१) ' प्रत्यक्ष विधि ' और (२) ' परोक्ष विधि ' । डा. धीरेंद्र वर्मा के अनुसार ' प्रत्यक्ष विधि ' याने ' वर्तमान आज्ञार्थ ' तथा ' परोक्ष विधि ' याने ' भविष्य आज्ञार्थ ' होता है[४९] । ' सुगम हिंदी व्याकरण ' पुस्तक में हिंदी के प्रत्यक्ष विधि को ' आज्ञार्थ ' तथा परोक्ष विधि को ' विध्यर्थ ' कहा गया है[५०]।

कोंकणी में ' आज्ञार्थ ' और ' विध्यर्थ ' दोनों प्राप्त हैं, इससे हिंदी ' वर्तमान आज्ञा ' के साथ कोंकणी ' आज्ञार्थ ' की तथा हिंदी ' भविष्य आज्ञार्थ ' के साथ कोंकणी ' विध्यर्थ ' की तुलना की है ।

हिंदी में ' वर्तमान आज्ञार्थ ' के कुल मिलाकर पाँच रूप हैं, यथा :– ' चलूँ , चल , चले, चलें, चलो ' ; तो कोंकणी में ' आज्ञार्थ ' के चार रूप होते हैं , यथा :– ' चलूं , चल, चलात , चलूंत ' । हिंदी तथा कोंकणी के इन रूपों में प्रथम दो–दो रूप समान हैं और शेष रूप भिन्न हैं । इस संबंध में निम्नलिखित तालिका दृष्टव्य है –

	हिंदी		कोंकणी	
	एक.	बहु.	एक.	बहु.
उ. पु.	चलूँ	चलें	चलूं	चलूं
म. पु.	चल	चलो	चल	चलात
अ. पु.	चले	चलें	चलूं	चलूंत

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी के रूपों पर लिंग का प्रभाव नहीं है परंतु वचन और

पुरुष का प्रभाव है।

एक बात यहाँ उल्लेखनीय है। हिंदी के 'संभाव्य भविष्य (जो अभी इसके पहले स्पष्ट किया है)' के रूप और 'वर्तमान आज्ञार्थ' के रूप प्रायः समान है। अन्तर केवल मध्यम पुरुष एकवचन में है। संभाव्य भविष्य में 'चले' तो वर्तमान आज्ञार्थ में 'चल' रूप होता है।

हिंदी : 'वर्तमान आज्ञार्थ'

हिंदी 'वर्तमान आज्ञार्थ' के रूप संस्कृत से लेकर प्राकृत तक प्रायः आज्ञार्थ के रूपों तथा तदनन्तर अपभ्रंश के वर्तमानकाल में रूपों से विकसित हैं, यथा –

उत्तम पुरुष –

सं. चलानि > पा. चलामि > प्रा. चलमु > अप. चलउं (वर्त.) > हिं. चलूँ (मैं)
सं. चलाम > पा. चलाम > प्रा. चलिमो > अप. चलिमु (वर्त.) > हिं. चलें (हम)

मध्यम पुरुष –

सं. चल > पा. चल, चलाहि > प्रा. चल, चलहि > अप. चलहि (वर्त.) > हिं. चल (तू)

सं. चलत > पा. चलथ > प्रा. चलिमो > अप. चलिमु (वर्त.)> हिं. चलो (तुम)

अन्य पुरुष –

सं. चलतु > पा. चलतु > प्रा. चलउ, चलेउ > अप. चलइ, चलेइ(वर्त.) > हिं. चले(वह)

सं. चलन्तु > पा. चलन्तु > प्रा. चलन्तु, चलेन्तु > अप. चलहिं (वर्त.) > हिं. चलें(वे)

(सूचना :– कोष्ठक में दिये 'वर्त.' शब्द का स्पष्टीकरण 'वर्तमानकाल' है।)

कोंकणी : 'आज्ञार्थ'

कोंकणी 'आज्ञार्थ' के कुछ रूप उपर्युक्त प्रकार से सिद्ध होते हैं। नीचे सभी रूपों का विकास दिखाया है --

उत्तम पुरुष –

सं. चलानि > पा. चलामि > प्रा. चलमु > अप. चलउं (वर्त.) > कों. चलूं (हांव)
सं. चलाम > पा. चलाम > प्रा. चलमु > अप. चलहुं (वर्त.) > कों. चलूं (आमी)

मध्यम पुरुष –

सं. चल > पा. चल, चलाहि > प्रा. चल, चलाहि > अप. चलहि (वर्त.) > कों. चल (तूं)

सं. चलत > पा. चलथ > प्रा. चलह > अप. चलह (वर्त.) > कों. चलात (तुमी)

'चलात' में अपभ्रंश 'चलह' के 'ह' का 'अ' होकर दीर्घ स्वर होता है, जैसेः– 'चला'। इसमें 'त' प्रायः अन्य पुरुष के 'त' से प्रभावित है।

अन्य पुरुष –

सं. चलतु > पा. चलतु > प्रा. चलउ > अप. चलउ (विध्यर्थ)> कों. चलूं (तो)

इसमें अपभ्रंश 'चलउ' रूप विध्यर्थक है। 'अपभ्रंश भाषा का अध्ययन' पुस्तक के पृष्ठ २११ पर 'चलउ' के समान 'करउ' रूप प्राप्त होता है। उसी के आधार पर यहाँ 'चलउ' रूप लिया है। 'चलूं' में 'ऊं' कदाचित् कोंकणी के उत्तम पुरुष के 'चलूं' से प्रभावित है।

सं. चलन्तु > पा. चलन्तु > प्रा. चलन्तु > अप. चलन्तु (विध्यर्थ) > कों. चलूंत (ते)

अप. 'चलन्तु' विध्यर्थक है (देखिए, 'करंतु' रूप; अपभ्रंश भाषा का अध्ययन पृ. २१२)।

यहाँ अपभ्रंश 'चलन्तु' रूप में 'उ' का वर्ण-विपर्यय मानकर 'चलूंत' रूप विकसित माना जा सकता है। यह दूसरी एक संभावना है।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी 'वर्तमान आज्ञार्थ' तथा कोंकणी 'आज्ञार्थ' के रूपों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी 'वर्तमान आज्ञार्थ' तथा कोंकणी 'आज्ञार्थ' के रूपों में लिंग का संबंध नहीं है। परंतु इनपर वचन और पुरुष का प्रभाव है।

(२) हिंदी 'वर्तमान आज्ञार्थ' में पाँच रूप हैं तो कोंकणी 'आज्ञार्थ' में चार रूप हैं।

(३) आज्ञार्थ के उत्तम पुरुष एकवचन में प्राप्त 'चलूं' और मध्यम पुरुष एकवचन में प्राप्त 'चल' रूप हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से प्राप्त है। शेष हिंदी के 'चले, चलें' और 'चलो' तथा कोंकणी के 'चलात' और 'चलूंत' रूपों में समानता नहीं पायी जाती।

(४) हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त 'चल' रूप मध्यम पुरुष के एकवचन में प्रयुक्त है। 'चलूं' रूप हिंदी में केवल उत्तम पुरुष के एकवचन में प्राप्त है तो कोंकणी में उत्तम पुरुष के एकवचन तथा बहुवचन में और अन्य पुरुष के एकवचन में प्राप्त है।

हिंदी तथा कोंकणी आज्ञार्थ की कुछ विशेषताएँ

हिंदी –

हिंदी आज्ञार्थ के मध्यम पुरुष बहुवचन में आदर दिखाने के लिए आदरार्थ 'आप' के साथ आज्ञा का विशेष रूप मिलता है, यथा :– 'आप दीजिए / कीजिए / लीजिए / पीजिए / हूजिए'। अर्थात् 'दे, कर, ले, पी, हो' इन पाँच धातुओं में 'जिए' लगता

है तथा शेष धातुओं में ' इए ' लगता है , जैसे :– ' आप खाइए / चलिए / लिखिए ' आदि ।

इनकी व्युत्पत्ति संस्कृत आशीर्लिङ् के चिह्न ' या (जैसे :– ' भूयात् , दद्यात् ' में प्राप्त ' या ') ' से मानी जाती है ।

विशेष आदर दिखाने के लिए ' आप ' के साथ उपर्युक्त ' जिए , इए ' में ' गा ' जोडा जाता है, जैसे :– ' आप दीजिएगा / कीजिएगा / खाइएगा / चलिएगा ' आदि ।

इस प्रकार हिंदी के ' आप ' शब्द के साथ क्रिया के जो विशेष रूप प्राप्त हैं उस प्रकार के विशेष रूप कोंकणी आज्ञार्थ में उपलब्ध नहीं हैं । कोंकणी के आज्ञार्थ क्रियाओं में भी विशेष रूप उपलब्ध होता है परंतु वह हिंदी जैसा नहीं है । इसका विवरण नीचे दिया है ।

कोंकणी –

कर्ता किसी कृति को निश्चयपूर्वक तथा खुशी के साथ करना चाहता है और अपनी कृति के संबंध में पूर्ण आचरण–स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहता है अथवा पूछना चाहता है तब कोंकणी में आज्ञार्थ के उत्तम पुरुष बहुवचन के क्रिया रूप में ' या ' जोडा जाता है[५१] । ' या ' जुडते समय क्रिया के अन्त्य ' ऊं स्वर का ' उं ' हो जाता है , यथा :– ' खेळूं (उ.पु., बहु.) + या = खेळुंया; ' करूं + या = करुंया ' आदि ।

आचरण स्वतंत्रता : (१) ' आमी काम करुंया. = हम काम करें । '
पूछना : (२) 'आमी काम करुंया ? = हम काम करें ?'

वाक्य क्रमांक (१) में कर्ता निश्चयपूर्वक तथा खुशी के साथ खुद की कृति के संबंध में पूर्ण आचरण–स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते हैं, तो वाक्य क्रमांक (२) में कर्ता निश्चयपूर्वक तथा खुशी के साथ खुद की कृति के संबंध में अपने–आपसे प्रश्न पूछते हैं ।

कोंकणी ' या ' की व्युत्पत्ति संस्कृत के लिङ् (विधिलिङ्) उत्तम पुरुष बहुवचन के ' याम ' से मानी है[५२]।

इस प्रकार कोंकणी के उत्तम पुरुष बहुवचन में क्रिया का जो विशेष रूप उपलब्ध है वे हिंदी के आज्ञार्थ में प्राप्त नहीं है ।

× × ×

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी आज्ञार्थ में ' आप ' शब्द के साथ प्राप्त ' लीजिए, जाइए, चलिए, लीजिएगा ' जैसे रूप कोंकणी आज्ञार्थ में प्राप्त नहीं है ।

(२) कोंकणी आज्ञार्थ के उत्तम पुरुष बहुवचन में प्राप्त ' करुंया, शिकुंया, खेळुंया ' जैसे रूप हिंदी आज्ञार्थ में प्राप्त नहीं है ।

(३) कोंकणी : ' रीतिभूतकाळ, दुसरी तरा (=रीतिभूतकाल का दूसरा प्रकार) '

कोंकणी में प्राप्त ' सादो भविश्य ' तथा ' आज्ञार्थ ' के सिवा ' रीतिभूतकाळ ' नामक काल प्राप्त है जो संस्कृत तिङन्त रूपों से विकसित है। हिंदी में इस प्रकार का काल नहीं है। हिंदी में जो अर्थ ' भूत अपूर्ण निश्चयार्थ (= अपूर्ण भूतकाल) ' में दिखायी देता है प्रायः वही अर्थ कोंकणी में ' रीतिभूतकाळ ' से स्पष्ट होता है, यथा :– हिंदी का ' वह काम करता था। ' वाक्य कोंकणी में ' तो काम करी.' होता है। इस काल से कोंकणी में कर्ता की क्रिया करने की पद्धति, आदत या अभ्यास का आभास मिलता है। यही आभास हिंदी के प्रायः ' अपूर्ण भूतकाल ' से प्राप्त होता है[५३]।

हिंदी के ' अपूर्ण भूतकाल ' में एक प्रकार तो कोंकणी के ' रीतिभूतकाळ ' में दो प्रकार प्राप्त हैं, यथा –

प्रकार :	**हिंदी**	**कोंकणी**
पहला :	वह काम करता था।	तो काम करतालो.
दूसरा :	———————	तो काम करी .

(सूचना :– इन प्रकारों के सिवा हिंदी तथा कोंकणी में इस काल का और एक -एक प्रकार प्राप्त होता है जो आधुनिक साहित्य में बहुत प्रचलित हो गया है। इनका निर्देश आगे पृष्ठ ३५९ पर (ग) विभाग में किया है।)

उपर्युक्त हिंदी का पहला प्रकार कृदन्त + सहायक क्रिया से बनता है। अतः इसका विवरण ' यौगिक काल ' उपशीर्षक में दिया है (देखिए, पृ. ३५८ तथा ३६०)

उपर्युक्त कोंकणी का पहला प्रकार कृदन्त से बनने के कारण इसका विवरण आगे (ख) विभाग में ' संस्कृत कृदन्त रूपों से विकसित कोंकणी के मूल काल ' उपशीर्षक में स्पष्ट किया है (दे.पृ. ३५५, क्र. ७)। दूसरा प्रकार संस्कृत तिङन्त रूपों से विकसित है। अतः नीचे कोंकणी में प्राप्त ' रीतिभूतकाल का दूसरा प्रकार (= रीतिभूतकाळ , दुसरी तरा) ' का विवरण प्रस्तुत किया है।

संस्कृत तिङन्त रूपों से विकसित ' रीतिभूतकाल का दूसरा प्रकार ' कोंकणी में दो प्रकार का है :– (i) सकर्मक धातुओं से बनने वाला तथा (ii) अकर्मक धातुओं से बनने वाला।

(i) सकर्मक धातुओं से बनने वाला ' रीतिभूतकाल का दूसरा प्रकार '

कोंकणी में सकर्मक धातुओं से बनने वाले रीतिभूतकाल के दूसरे प्रकार में कुल मिलाकर पाँच रूप हैं, यथा :– ' करीं, करीय, करी, करींव, करीत '। इन रूपों पर वचन

तथा पुरुष का प्रभाव है, परंतु लिंग का प्रभाव नहीं है। ये रूप निम्नलिखित प्रकार से प्राप्त हैं –

	कोंकणी	
	एक.	**बहु.**
उ. पु.	करीं	करीं(करींव
म. पु	करी(करीय)	करी(करीत
अ. पु.	करी	करी(करीत

इनका विकास प्रायः संस्कृत वर्तमानकाल के रूपों से माना जा सकता है, यथा –

उत्तम पुरुष –

सं. करोमि > प्रा. करमि, करेमि > अप. करिमि > कों. करीं (हांव)
सं. कुर्मः > प्रा. करमि, करेमि > अप. करिमु > कों. करीं, करींव (आमी)

मध्यम पुरुष –

सं. करोषि > प्रा. करसि, करेसि > अप. करसि, करहि > कों. करी, करीय(तूं)
सं. कुरुथ > प्रा. करह, करित्था > अप. करह, करिद्ध > कों. करी, करीत (तुमी)
(प्रायः ' द्ध ' से ' द ' और ' द ' से ' त ' की प्राप्ति अथवा अन्य पुरुष बहुवचन के प्रभाव से ' त ' की प्राप्ति।)

अन्य पुरुष –

सं. करोति > प्रा. करइ, करेइ > अप. करइ, करेइ > कों. करी (तो)
सं. कुर्वन्ति > प्रा. करन्ति, करेन्ते > अप. करहिं,करन्ति > कों. करी, करीत (ते)
इनमें जो कोंकणी के दूसरे रूप हैं वे प्रायः अब अप्रयुक्त हैं।

प्राकृत में भूतकाल के रूपों में ' ईअ ' प्रत्यय प्राप्त है और यह तीनों पुरुषों के दोनों वचनों में प्राप्त है [५४]। फिर भी इस प्रत्यय से कोंकणी के उपर्युक्त रूपों की सिद्धि करना चाहें तो इन रूपों में अनुस्वार तथा ' त 'प्रत्यय की उपपत्ति लगाना कठिन है। अतः यदि कोई प्राकृत के ' वर्तमानकाल ' तथा ' भूतकाल ' के कुछ विशिष्ट रूपों से कोंकणी के उपर्युक्त रूपों का विकास दिखाना चाहे तो इसमें आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

(ii) अकर्मक धातुओं से बनने वाला ' रीतिभूतकाल का दूसरा प्रकार '

कोंकणी में अकर्मक धातुओं से बनने वाले रीतिभूतकाल के दूसरे प्रकार में उपर्युक्त प्रकार से पाँच ही रूप प्राप्त हैं, यथा :– ' धांवं, धांव, धांवय, धांवंव, धांवत '। इन रूपों पर भी वचन तथा पुरुष का प्रभाव है, परंतु लिंग का प्रभाव नहीं है। ये रूप निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट होते हैं –

कोंकणी

	एक.	**बहु.**
उ. पु.	धांवँ	धांवँव
म. पु.	धांवँ, धांवँय,	धांवँत
अ. पु.	धांवँ	धांवँत

इन रूपों का विकास भी उपर्युक्त प्रकार से माना जा सकता है।

यहाँ एक बात स्पष्ट करना आवश्यक है। कोंकणी में इस संस्कृत तिङन्त रूपों से विकसित 'रीतिभूतकाल के दूसरे प्रकार' के रूप प्रायः बहुत कम प्रयुक्त हैं, परंतु 'रीतिभूतकाल के पहले प्रकार (= रीतिभूतकाळ, पैली तरा)' के रूपों का प्रयोग ही अधिक प्रयुक्त है[55]। ये रूप कृदन्त से बनते हैं, जैसे :– 'धांवतालो, जेवतालो' आदि। इसके संबंध में आगे स्पष्टीकरण दिया है (देखिए, पृ. ३५५ क्रमांक ७)।

× × ×

उपर्युक्त कोंकणी 'रीतिभूतकाल के दूसरे प्रकार (= रीतिभूतकाळ, दुसरी तरा)' के विवेचन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) कोंकणी 'रीतिभूतकाळ, दुसरी तरा' के समान हिंदी में संस्कृत तिङन्त रूपों से विकसित काल प्राप्त नहीं है।

(२) कोंकणी के 'रीतिभूतकाळ, दुसरी तरा' में सकर्मक तथा अकर्मक धातुओं से बनने वाले रूप भिन्न–भिन्न हैं।

(३)संस्कृत तिङन्त रूपों से विकसित रीतिभूतकाल के रूपों का प्रयोग कोंकणी में कम है बल्कि कृदन्त रूपों से विकसित रीतिभूतकाल के रूपों का प्रयोग अधिक है।

(ख) संस्कृत कृदन्त रूपों से विकसित मूल काल –

हिंदी तथा कोंकणी में संस्कृत कृदन्त रूपों से विकसित मूल काल प्राप्त हैं। हिंदी में इस प्रकार के तीन काल हैं तो कोंकणी में आठ काल हैं। इन सभी कालों का विवरण नीचे प्रस्तुत है।

हिंदी

संस्कृत कृदन्त रूपों से विकसित हिंदी के मूल काल –

कृदन्तों से बनने वाले मूल काल हिंदी में केवल तीन हैं :– (१) भूत निश्चयार्थ, (२) भूत संभावनार्थ और (३) भविष्य आज्ञार्थ।

(१)भूत निश्चयार्थ :– 'मैं चला', 'हम चले' आदि। 'चला' में प्राप्त 'आ' का विकास संस्कृत भूतकालिक 'त' से है (देखिए, पृ. ३३८)। इस पर लिंग एवं वचन का प्रभाव होता है परंतु पुरुष का नहीं। 'आ' का दूसरा रूप 'या' है। इसकी प्रवृत्ति 'आ' की तरह है।

(२)भूत संभावनार्थः– 'यदि में चलता', 'यदि हम चलते' आदि। इसमें केव
लिंग और वचन के कारण रूपान्तर होता है। 'ता' का विकास संस्कृत के 'अत् (शतृ)
प्रत्ययान्त रूप से माना है (देखिए, पृ. ३३६)।

(३) भविष्य आज्ञार्थ :– 'तू चलना', 'तुम चलना' आदि। 'भविष्य आज्ञार्थ
का प्रयोग केवल मध्यम पुरुष में प्राप्त है। इसके 'ना' प्रत्यय पर लिंग, वचन और पुर
का प्रभाव नहीं है। 'ना' का विकास संस्कृत 'अनीय' प्रत्यय से माना
(देखिए, पृ.३३९)।

कोंकणी

संस्कृत कृदन्त रूपों से विकसित कोंकणी के मूल काल –

कृदन्तों से बनने वाले मूल काल कोंकणी में आठ प्राप्त हैं :– (१)भूतकाळ, (२
भूतकाळी निमती भविश्य, पैली तरा, (३) विध्यर्थ, (४)वर्तमानकाळ, (५) वर्तमा
भूतकाळ, (६) भूतभूतकाळ, (७) रीतिभूतकाळ, पैली तरा ('दुसरी तरा' के लि
देखिए, पृ. ३४९) और (८) भविष्यकाळ। नीचे क्रमशः इनका विवरण प्रस्तुत है।

(१) भूतकाळ (हिंदी में 'भूत निश्चयार्थ') :– 'हांव चललों. (= मैं चला)'
'आमी चलले (=हम चले)' आदि। इस 'लो' पर लिंग, वचन तथा पुरुष का प्रभा
पडता है। 'लो' का विकास संस्कृत भूतकालिक कृत् 'त(क्त)' से माना है (देखिए,
पृ. ३३८)।

इसका साम्य उपर्युक्त (ख) विभाग में दिये हिंदी कालों के क्रमांक (१) के 'भू
निश्चयार्थ' से है।

(२) भूतकाळी निमती भविश्य, पैली तरा (हिंदी में 'भूत संभावनार्थ') :– कोंकण
में 'भूतकाळी निमती भविश्य' दो प्रकार का है :– (१) केवल कृदन्त से बनने वाला तथ
(२) कृदन्त + सहायक क्रिया से बनने वाला। यहाँ केवल कृदन्त से बनने वाला का
दिया है, जिसे 'भूतकाळी निमती भविश्य, पैली तरा' कहते हैं। 'दुसरा प्रकार (
दुसरी तरा)' आगे 'कृदन्त + सहायक क्रियाओं से बनने वाले काल' उपशीर्षक में दिय
है (देखिए, पृ. ३५८)

'भूतकाळी निमती भविश्य, पैली तरा' के उदाहरण हैं :– 'पावस पट्टो जाल्या
सुकळ जातो.[५६] (= पावस गिरती तो सुकाल होता।)'; 'ताका पळोवपाक थंय कोणू
आसतो तर ताजी काकुळट करून सांगले बगर न रावतो.[५७] (= उसे देखने के लिए वह
कोई होता तो उसकी(पर) दया करके बताये बगैर नहीं रहता।)'; आदि। इस 'तो
प्रत्ययान्त कृदन्त पर लिंग, वचन तथा पुरुष का प्रभाव है। 'तो' का विकास संस्कृ
'अत् (शतृ)' से माना है (देखिए, पृ. ३३६)।

इसका साम्य उपर्युक्त (ख) विभाग में दिये हिंदी कालों के क्रमांक (२) के ' भूत भावनार्थ ' से है ।

इस काल के प्रयोग कोंकणी में बहुत ही कम प्राप्त हैं । इसके बदले भविष्यकालिक क्रिया के साथ सहायक क्रिया ' आसलो ' से बनने वाला प्रयोग अधिक उपलब्ध है, यथा :– ' तो आयल्यार हांव वतलों आसलों .'[५८]; ' शाणू धांवल्यार बेगीन पावतलो आसलो'[५९] । यह ' भूतकाळी निमती भविश्य ' का दूसरा प्रकार (= दुसरी तरा) है जो आगे दिखाया है (देखिए, पृ. ३५८, कोंकणी : क्रमांक ७)।

कोंकणी के उपर्युक्त दोनों प्रकार की रचनाओं में काफी अन्तर है ।

(३) **विध्यर्थ** (हिंदी में ' भविष्य आज्ञार्थ ') :– ' हांवें आंबो मागचो.'; ' तुंवें आंबे मागचे. ' ; ' ताणें गोष्ट सांगची. '; आदि । इसपर लिंग–वचन का प्रभाव है । विध्यर्थक कृत् ' चो ' का विकास संस्कृत कर्मणि ' तव्य ' से विकसित है (देखिए, पृ. ३४०) ।

इसका साम्य उपर्यक्त (ख) विभाग में दिये हिंदी कालों के क्रमांक (३) के ' भविष्य आज्ञार्थ ' से है । फिर भी इन दोनों की वाक्य–रचना में काफी अन्तर है । यह अन्तर यहाँ स्पष्ट किया है, जैसे –

क्रमांक	हिंदी		कोंकणी	
(१)	तू जाना	(म.पु.एक.)।	तुंवें वचचें	(म.पु.एक.).
(२)	तुम जाना	(म.पु.बहु.)।	तुमी वचचें	(म.पु.बहु.).
(३)	तुम खुशी से रहना	(म.पु.बहु.)।	तुमी आनंदान रावचें	(म.पु.बहु.).
(४)	तुम काम करना	(म.पु.बहु.)।	तुंवें काम करचें	(म.पु.एक.).
(५)			तुमी काम करचें	(म.पु.बहु.).
(६)			हांवें काम करचें	(उ.पु.एक.).
(७)			आमी काम करचें	(उ.पु.बहु.).
(८)			ताणें काम करचें	(अ.पु.एक.).
(९)			तांणीं काम करचें	(अ.पु.बहु.).

हिंदी तथा कोंकणी के इन उदाहरणों में पुरुषों की दृष्टि से अन्तर है । हिंदी में भविष्य आज्ञार्थ केवल मध्यम पुरुष में ही प्राप्त है तो कोंकणी में विध्यर्थ तीनों पुरुषों में प्राप्त है ।

उपर्युक्त कोंकणी के क्रमांक (१), (२) और (३) में भावे प्रयोग है तो क्रमांक (४) से (९) तक के वाक्यों में कर्मणि प्रयोग है । अतः ' करचें ' क्रिया पर कर्म का अधिकार है । अर्थात् उपर्युक्त कोंकणी के क्रमांक (४) से (९) तक के वाक्यों में ' चो ' प्रत्ययान्त क्रिया का रूप ' काम ' के अनुसार नपुंसकलिंग एकवचन अन्य पुरुष में है ।

इस ' चो ' प्रत्यायन्त क्रिया पर जो लिंग आदि का प्रभाव है उसके लिए कुछ औ उदाहरण दृष्टव्य हैं, जैसे –

कोंकणी

(१) उ. पु. : – हांव (पु.) शीत जेवचों पुण जेवलों (पु.) ना.
(२) ,, ,, : – हांव (स्त्री.) शीत जेवची पुण जेवलीं (स्त्री.) ना.
(३) अ. पु. : – ताणें आंबो(आमो)(पु.) मागचो (पु.).
(४) ,, ,, : – तुंवें गोष्ट (स्त्री.) सांगची (स्त्री.).

इस प्रकार की वाक्य-रचना उपर्युक्त हिंदी ' भविष्य आज्ञार्थ ' में उपलब्ध नहीं है ।

कोंकणी में एक और प्रकार से विध्यर्थ बनाया जाता है, यथा :– ' तुमी हें काम करप. '; ' आतां ताणें गोष्ट सांगप. '; आदि । इस ' प ' पर लिंग, वचन तथा पुरुष का प्रभाव नहीं होता है । विध्यर्थक कृत् ' प ' का विकास भी ' तव्य ' से माना है (देखिए, पृ. ३४० , कोंकणी ' चो ')।

कोंकणी में ' प ' प्रत्यय से बनने वाले विध्यर्थ क्रिया पर लिंग आदि का प्रभाव नही है, जैसे :– ' हांवे / तुंवें (कर्ता पु. , स्त्री. , नपुं. एक.) वचप '; ' ताणें (कर्ता पु. और नपुं. एक.) / तिणें (कर्ता स्त्री. एक.) वचप '; ' आमी / तुमी / तांणीं (कर्ता पु. , स्त्री. , नपुं. बहु.) वचप '; ' हांवें / तुंवें / ताणें आंबो (कर्म एक.) मागप. '; ' हांवें / तुंवें / ताणें आंबे (कर्म बहु.) मागप. ' ।

(४) वर्तमानकाळ (हिंदी में ' वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ ') :– ' हांव चलतां. '; (= मैं चलता हूँ ।) ' ; ' ती वता. (= वह जाती है ।) '; आदि । ' ता ' पर वचन तथा पुरुष का प्रभाव है परंतु लिंग का प्रभाव नहीं है । ' ता ' का विकास भी उपर्युक्त ' तो ' की तरह संस्कृत ' अत् (शतृ) ' से विकसित माना है (देखिए, पृ. ३३६) ।

यह काल हिंदी में कृदन्त + सहायक क्रिया से बनता है [देखिए, पृ. ३५८ (ख) (i), (१), वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ :– ' वह चलता है ।'] .

(५) वर्तमान भूतकाळ (हिंदी में ' वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ ') :– ' हांव चललां. (= मैं चला हूँ ।) ' ; ' ताणें मारला. (= उसने मारा है ।) '; आदि । भूतकालिक लो ' प्रत्यय में परिवर्तन होकर ' लां ', ' ला ' आदि विकसित हैं । ' लो ' का विकास संस्कृत भूतकालिक ' त(क्त) ' से माना है (देखिए, पृ. ३३८) । इस पर लिंग, वचन तथा पुरुष का प्रभाव है ।

यह काल हिंदी में कृदन्त + सहायक क्रिया से बनता है [देखिए , पृ. ३५८) (ख), (ii), (१), वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ :– ' वह चला है ।'] ।

(६) **भूतभूतकाळ** (हिंदी में 'भूत पूर्ण निश्चयार्थ') 'हांव धांवलेलों / धांविल्लो. मैं दौडा था।)'; 'हांवें मारलेलो / मारिल्लो (= मैंने मारा था।)'; आदि। इन योगों में भूतकालिक 'लो' का दो बार प्रयोग हुआ है और 'ल्लो' में 'इ' आगम हुआ। अर्थात् कोंकणी में केवल प्रत्यय की द्विरुक्ति से हिंदी के 'भूत पूर्ण निश्चयार्थ' के अर्थ को स्पष्ट किया जाता है। इस 'लेलो', 'इल्लो' पर लिंग, वचन तथा पुरुष का प्रभाव है 'लेलो', 'इल्लो' के बदले 'लिल्लो (गेलिल्लो, खालिल्लो)' भी कुछ धातुओं में युक्त है।

यह काल हिंदी में कृदन्त + सहायक क्रिया से बनता है, [देखिए, पृ. ३५८ (ख), (ii), (२), भूत पूर्ण निश्चयार्थ :– 'वह चला था।']।

(७) **रीति भूतकाळ, पैली तरा** (हिंदी में भूत अपूर्ण निश्चयार्थ) :– 'हांव चलतालों. (= मैं चलता था।)'; 'तो मारतालो. (= वह मारता था।)'; आदि। इस पर लिंग, वचन तथा पुरुष का प्रभाव है। इसका विकास श्री वालावलीकर ने संयुक्त क्रियाओं से माना है, [१०]। यथा :– 'चलत + आसत = चलतालों, मारत + आसत = मारतालों'; आदि।

इसका विकास एक अन्य प्रकार से माना जा सकता है, यथा :– वर्तमानकालिक 'चलता' में भूतकालिक 'लों, लो' आदि प्रत्यय जोडकर 'चलतालों, चलतालो' रूप सिद्ध हो सकते हैं। इस प्रकार इन दो प्रत्ययों से भूतकालिक वर्तमानकाल का अर्थ भी स्पष्ट होता है। अर्थात् यहाँ दो प्रत्ययों का संबंध मानना होगा। और इस प्रकार दो कृदन्त प्रत्ययों का संबंध श्री वालावलीकर ने 'नित्शयी भविश्य (= भविष्य निश्चयार्थ)' में माना है[११]। इसके संबंध में यहीं नीचे क्रमांक (८) में विवरण दिया है।

यह काल हिंदी में कृदन्त + सहायक क्रिया से बनता है [देखिए. पृ. ३५८ (ख), (i), (२), भूत अपूर्ण निश्चयार्थ :– 'वह चलता था।']।

(८) **नित्शयी भविश्य** (हिंदी में 'भविष्य निश्चयार्थ') :– हांव चलतलों. (= मैं चलूँगा।)'; 'तो मारतलो. (= वह मारेगा।)'; आदि। इस पर लिंग, वचन तथा पुरुष का प्रभाव है। 'चलतलो' आदि रूप श्री वालावलीकर ने 'अत् (शतृ)' प्रत्ययान्त अपूर्ण धातुविशेषण 'चलत' में 'लो', 'ली' आदि प्रत्यय जोडकर सिद्ध किये हैं[१२]।

कोंकणी 'नित्शयी भविष्य' के साथ हिंदी 'भविष्य निश्चयार्थ' की तुलना होती है। हिंदी में 'भविष्य निश्चयार्थ' काल संस्कृत तिङन्त रूप से विकसित क्रिया-रूप + संस्कृत कृदन्त 'गत' से विकसित 'गा' रूप के संयोग से सिद्ध किया है[१३] [देखिए,पृ. ३५७ ;यौगिक काल, (क), जैसे :– 'वह चलेगा।' आदि।)

× × ×

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी में कृदन्त रूपों से बनने वाले कालों की तुलना से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं।

(१) केवल कृदन्त रूपों से बनने वाले काल हिंदी में तीन हैं तो कोंकणी में आठ हैं।

(२) हिंदी के (१) भूत निश्चयार्थ , (२) भूत संभावनार्थ और (३) भविष्य आज्ञार्थ के अर्थ में कोंकणी में (१) भूतकाळ , (२) भूतकाळी निमती भविश्य, पैली तरा और (३) विध्यर्थ प्रयुक्त हैं।

(३) हिंदी ' भूत निश्चयार्थ ' में ' आ (कुछ क्रियाओं में ' या ') 'प्रत्यय जोडा जाता है, तो कोंकणी ' भूतकाळ ' में ' लो ' प्रत्यय जोडा जाता है।

(४) हिंदी ' भूत संभावनार्थ ' में ' ता ' तो कोंकणी ' भूतकाळी निमती भविष्य, पैली तरा ' में ' तो (कुछ क्रियाओं में ' तो ' का ' टो ' होता है) ' प्रत्यय जोडा जाता है।

(५) हिंदी ' भविष्य आज्ञार्थ ' में ' ना ' तो कोंकणी ' विध्यर्थ ' में ' चो ' अथवा ' प ' जोडा जाता है। हिंदी ' भविष्य आज्ञार्थ ' तथा कोंकणी ' विध्यर्थ ' में एक और अन्तर प्राप्त है। हिंदी ' भविष्य आज्ञार्थ ' का रूप केवल मध्यम पुरुष में प्राप्त है तो कोंकणी विध्यर्थ के रूप उत्तम, मध्यम तथा अन्य पुरुष में प्राप्त हैं। इसके सिवा हिंदी ' भविष्य आज्ञार्थ ' के ' ना ' पर लिंग-वचन का प्रभाव नहीं है, परंतु कोंकणी ' विध्यर्थ ' के ' चो ' पर लिंग–वचन का प्रभाव है और साथ साथ पुरुष का भीं प्रभाव है। कोंकणी ' विध्यर्थ ' के ' प ' पर लिंग, वचन और पुरुष में से किसी का भी प्रभाव नहीं है।

(६) केवल कृदन्त रूपों से बनने वाले उपर्युक्त तीन कालों के सिवा कोंकणी में और पाँच काल प्राप्त हैं, जैसे :– (१) वर्तमान काळ, (२) वर्तमान भूतकाळ, (३) भूतभूतकाळ, (४) रीतिभूतकाळ, पैली तरा और (५) नित्शयी भविश्य। हिंदी में इन्हें क्रमशः (१) वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ, (२) वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ, (३) भूत पूर्ण निश्चयार्थ, (४) भूत अपूर्ण निश्चयार्थ और (५) भविष्य निश्चयार्थ कहा जाता है। इनमें से प्रथम चार काल हिंदी में कृदन्त + सहायक क्रिया से बनते हैं (देखिए, पृ. ३५८) और पाँचवाँ (भविष्य निश्चयार्थ) तिडन्त तथा कृदन्त रूपों के संयोग से बनता है। इसका विवरण यहाँ नीचे इस विषय के समाप्ति के अनन्तर ही दिया है (देखिए , पृ. ३५७)।

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी की कृदन्त काल–रचना में अर्थ की दृष्टि से साम्य होते हुए भी रूपों की दृष्टि से भिन्नता है।

११) यौगिक काल

यौगिक काल भी दो प्रकार के हैं :– (क) संस्कृत से विकसित तिङन्त + कृदन्त रूपों के संयोग से बनने वाला काल तथा (ख) संस्कृत से विकसित कृदन्त रूप + सहायक क्रिया से बनने वाला काल। नीचे इनका विवरण प्रस्तुत है।

(क) संस्कृत से विकसित तिङन्त + कृदन्त रूपों के संयोग से बनने वाला काल –

इस प्रकार का काल हिंदी में प्राप्त है परंतु कोंकणी में प्राप्त नहीं है। हिंदी में यह 'भविष्य निश्चयार्थ' नाम से पहचाना जाता है। हिंदी 'भविष्य निश्चयार्थ' की स्थिति असामान्य है। यह काल न केवल संस्कृत तिङन्त रूप से विकसित है, तथा न केवल संस्कृत कृदन्त रूप से। इसी प्रकार यह काल कृदन्त रूप + सहायक क्रिया से भी नहीं बना है। इसमें संस्कृत तिङन्त रूप से विकसित संभाव्य भविष्य की मूल क्रिया के रूप + भूतकालिक कृदन्त 'गतः' से विकसित 'गा' के रूप हैं, यथा :– 'मैं चलूँगा (चलूँ + गा)।'; मैं चलूँगी (चलूँ + गी)।'; 'वह चलेगा (चले + गा)।'; आदि। इस प्रकार यह काल यौगिक है। 'भविष्य निश्चयार्थ' में प्राप्त 'गा' लिंग–वचन के अनुसार परिवर्तित है और इसके पूर्वस्थित 'चलूँ' रूप पुरूष, वचन के अनुसार परिवर्तित हैं।

कोंकणी में हिंदी के समान तिङन्त रूप + कृदन्त 'गा' से बनने वाले काल के समान काल नहीं है। हिंदी के 'मैं चलूँगा।'; 'वह चलेगा।' आदि वाक्यों में प्राप्त अर्थ कोंकणी में 'नित्शयी भविश्य' से स्पष्ट होता है, यथा :– 'हांव चलतलों.'; 'तो चलतलो.' आदि। कोंकणी 'नित्शयी भविश्य' कृदन्त से बनने के कारण इसका विवरण पूर्व स्पष्ट किया है (देखिए, पृ. ३५५ क्रमांक ८)।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी 'भविष्य निश्चयार्थ' के विवरण से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी 'भविष्य निश्चयार्थ' की स्थिति असामान्य है।

(२) इसका निर्देश करने के लिए काल–रचना के विभाजन में एक अन्य विभाग आवश्यक है जो यहाँ किया गया है।

(३) हिंदी 'भविष्य निश्चयार्थ' 'तिङन्त रूप + गा' से बनता है। कोंकणी में इस प्रकार बनने वाली काल–रचना नहीं है।

(४) हिंदी 'भविष्य निश्चयार्थ' के अर्थ में कोंकणी में 'नित्शयी भविश्य' का प्रयोग होता है।

(५) हिंदी 'गा' पर लिंग तथा वचन का प्रभाव है और 'चलूँ' रूप पर पुरुष तथा वचन का प्रभाव है

(ख) संस्कृत से विकसित कृदन्त + सहायक क्रिया से बनने वाला काल –

हिंदी तथा कोंकणी में कृदन्त + सहायक क्रिया से काल–रचना होती है । इसके उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं ।

हिंदी :

(i) वर्तमानकालिक कृदन्त + सहायक क्रिया –

(१) वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ – वह चलता है ।
(२) भूत अपूर्ण निश्चयार्थ – वह चलता था ।
(३) भविष्य अपूर्ण निश्चयार्थ – वह चलता होगा ।
(४) वर्तमान अपूर्ण संभावनार्थ – यदि वह चलता हो ।
(५) भूत अपूर्ण संभावनार्थ – यदि वह चलता होता ।

(ii) भूतकालिक कृदन्त + सहायक क्रिया –

(१) वर्तमान पूर्ण निश्चयार्थ – वह चला है ।
(२) भूत पूर्ण निश्चयार्थ – वह चला था ।
(३) भविष्य पूर्ण निश्चयार्थ – वह चला होगा ।
(४) वर्तमान पूर्ण संभावनार्थ – यदि वह चला हो ।
(५) भूत पूर्ण संभावनार्थ – यदि वह चला होता ।

कोंकणी :

श्री वालावलीकर ने कोंकणी काल-रचना का विवरण प्रस्तुत किया है [६४] । इसके आधार पर कोंकणी में प्राप्त होने वाले कृदन्त रूप + सहायक क्रियाओं से बनने वाले काल नीचे दिये हैं ।

(१) दुबावी वर्तमान भविश्य – (१) तो धांवता जातलो. (२) तो धांवता जायत.
(२) दुबावी वर्तमानभूत भविश्य – (१) तो धांवला जातलो. (२) तो धांवला जायत.
(३) दुबावी भूत भविश्य – (१) तो धांवलो जातलो. (२) तो धांवलो जायत.
(४) दुबावी रीतिभूत भविश्य – (१) तो धांवतालो जातलो. (२) तो धांवतालो जायत.
(५) दुबावी भूतभूत भविश्य – (१) तो धांवले(ल)लो जातलो. (२) तो धांवले(ल)लो जायत.
(६) दुबावी भविश्य भविश्य – (१) तो धांवतलो जातलो. (२) तो धांवतलो जायत.
(७) भूतकाळी निमती भविश्य,दुसरी तरा– (१) तो धांवतलो आसलो.

× × ×

ऊपर हिंदी तथा कोंकणी में दी हुई कृदन्त + सहायक क्रिया से बनने वाली काल–रचना के उदाहरणों से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी तथा कोंकणी में कृदन्त + सहायक क्रिया से काल–रचना होती है।

(२) हिंदी में वर्तमानकालिक कृदन्त + सहायक क्रिया से बनने वाले काल पाँच हैं, और भूतकालिक कृदन्त + सहायक क्रिया से बनने वाले काल पाँच हैं। कोंकणी में कुछ भिन्नता है। कोंकणी में वर्तमान, वर्तमानभूत, भूत, रीतिभूत और भूतभूत कालिक कृदन्त + सहायक क्रिया से दो-दो प्रकार की काल-रचना होती है, तो भविष्य कालिक कृदन्त + सहायक क्रिया से कुल मिलाकर तीन (दो और एक) प्रकार की काल-रचना होती है।

(३) हिंदी के 'भविष्य अपूर्ण निश्चयार्थ' के 'वह दौडता होगा।' का कोंकणी के 'दुबावी वर्तमा भविश्य' के पहले प्रकार के 'तो धांवता जातलो.' से प्रायः साम्य बताया जा सकता है। इसी प्रकार हिंदी के 'वर्तमान अपूर्ण संभावनार्थ' के 'वह दौडता हो।' का कोंकणी के 'दुबावी वर्तमान भविश्य' के दूसरे प्रकार के 'तो धांवता जायत.' से प्रायः साम्य ीखता है।

(४) हिंदी के 'भविष्य पूर्ण निश्चयार्थ' के 'वह दौडा होगा।' का कोंकणी के 'दुबावी भूत भविश्य' के पहले प्रकार के 'तो धांवलो जातलो.' से प्रायः साम्य बताया जा सकता है। इसी प्रकार हिंदी के 'वर्तमान पूर्ण संभावनार्थ' के 'वह दौडा हो।' का कोंकणी के 'दुबावी भूत भविश्य' के दूसरे प्रकार के 'तो धांवलो जायत.' से प्रायः साम्य दीखता है।

(५) उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी की शेष काल-रचना में साम्य नहीं है।

अन्य कुछ कालों के संबंध में –

उपर्युक्त कृदन्त + सहायक क्रियाओं से बनने वाली काल–रचना के सिवा हिंदी तथा कोंकणी में और भी कुछ काल–रचना दीखती है।

हिंदी के व्याकरण ग्रंथों में 'वह जा रहा है।(अपूर्ण वर्तमानकाल)'; 'वह जा रहा था। (अपूर्ण भूतकाल)' जैसे प्रयोग प्राप्त हैं [६५]। ये प्रयोग आधुनिक साहित्य में बहुत प्रचलित हैं।

कोंकणी में भी 'बदलत आसता', 'चाबीत आसता', 'जातलें आशिल्लें' [६६]; 'दीत आसतालो' [६७]; 'तें सरत आसा', 'लासता आसतलें' [६८]; 'म्हाका खोस जातली आशिल्ली', 'थंयचे वकील पळयले आसतले', 'कसलो खेळ खेळचें तें आपशींच धारतलें आशिल्लें', '... कारण बरी मुमताज जाल्ली आसत', '... दुकां सारली आसतलीं' [६९] जैसे प्रयोग कोंकणी में प्राप्त हैं।

× × ×

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित बात स्पष्ट होती है –

१) हिंदी तथा कोंकणी में अन्य कुछ काल प्राप्त हैं।

काल-रचना का संक्षिप्त स्वरूप –

यहाँ तक हिंदी तथा कोंकणी काल-रचना की दृष्टि से जो कुछ विवरण प्रस्तुत किया है उसे थोडे में नीचे देने का प्रयत्न किया है। इसके लिए भाषा विज्ञान में काल-रचना को परिचित करा देने के लिए जिन संज्ञाओं का व्यवहार किया है उनका उपयोग यहाँ नहीं किया है, जैसे :– भाषा विज्ञान में उक्त ' वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ ' संज्ञा के लिए यहाँ ' सामान्य वर्तमान ' संज्ञा का व्यवहार किया है। इसी प्रकार अन्य कालों के संबंध में भी भाषा वैज्ञानिक संज्ञाओं के बदले परिचित संज्ञाओं का उल्लेख किया है।

क्र.	हिंदी √दौड	क्र.	कोंकणी √धांव
१)	सामान्य वर्तमान– वह दौडता है।	१)	वर्तमानकाळ – तो धांवता.
२)	संदिग्ध वर्तमान – वह दौडता होगा।	२)	दुबावी वर्तमान भविश्य (i) – तो धांवता आसतलो/जातलो.
३)	अपूर्ण वर्तमान – वह दौड रहा है।	३)	अपूर्ण वर्तमानकाळ – तो धांवत आसा (आसता).
४)	प्रत्यक्ष विधि (आज्ञार्थ) – तुम दौडो।	४)	आज्ञार्थ – तुमी धांवात.
५)	संभाव्य वर्तमान – वह दौडता हो।	५)	दुबावी वर्तमान भविश्य (ii)– तो धांवता आसत/जायत.
६)	सामान्य भूत – वह दौडा।	६)	भूतकाळ – तो धांवलो.
७)	आसन्नभूत – वह दौडा है।	७)	वर्तमान भूतकाळ – तो धांवला.
८)	पूर्ण भूत – वह दौडा था।	८)	भूतभूतकाळ – तो धांवले(ल)लो (धांविल्लो).
९)	अपूर्णभूत – (i) वह दौडता था। (ii) ----- (iii) वह दौड रहा था।	९)	रीतिभूतकाळ – तो धांवतालो. तो धांव (वं). तो धांवत आसलो.
१०)	संदिग्ध भूत – वह दौडा होगा।	१०)	दुबावी भूत भविश्य (i) – तो धांवलो आसतलो/जातलो.
११)	संभाव्य भूत – वह दौडा हो।	११)	दुबावी भूत भविश्य (ii) – तो धांवलो आसत/जायत.
१२)	सामान्य संकेतार्थ (हेतुहेतुमद्भूत) –	१२)	भूतकाळी निमती भविश्य–

(i) (यदि) वह दौडता।	(जर)तो धांवतो.
(ii) ------	तो धांवतलो आसलो.
१३) अपूर्ण संकेतार्थ – वह दौडता होता।	१३) (यह कोंकणी में उपलब्ध नहीं।) -----
१४) पूर्ण संकेतार्थ – वह दौडा होता।	१४) (यह कोंकणी में उपलब्ध नहीं।) -----
१५) सामान्य भविष्य – वह दौडेगा।	१५) नित्शयी भविश्य – तो धांवतलो.
१६) संभाव्य भविष्य – वह दौडे।	१६) सादो भविश्य – तो धांवत.
१७) भविष्य आज्ञार्थ (परोक्षविधि)– तुम दौडना।	१७) विध्यर्थ – तुमी धांवचें, तुमी धांवप

उपरोल्लिखित हिंदी तथा कोंकणी काल-रचना के सिवा केवल कोंकणी में निम्नलिखित प्रकार से काल प्राप्त हैं जो हिंदी में प्राप्त नहीं हैं, यथा –

(कोंकणी के क्रमांक १८, १९, २०, २१ के काल हिंदी में उपलब्ध नहीं।)	१८) दुबावी वर्तमानभूत भविश्य – (i) तो धांवला जातलो. (ii) तो धांवला जायत.
	१९) दुबावी रीतभूत भविश्य – (i) तो धांवतालो जातलो. (ii) तो धांवतालो जायत.
	२०) दुबावी भूतभूत भविश्य – (i) तो धांवलेलो जातलो. (ii) तो धांवलेलो जायत.
	२१) दुबावी भविश्य भविश्य – (i) तो धांवतलो जातलो. (ii) तो धांवतलो जायत.

यहाँ उपर्युक्त क्रमांक (२), (५), (१०) और (११) में मुख्य क्रिया के साथ 'आस' और 'जा' सहायक धातु के रूप दिये हैं। वालावलीकर ने मुख्य क्रिया के साथ केवल सहायक 'जा' धातु के रूप दिये हैं, जैसे :– (i) तो धांवता जातलो. ; (ii) तो धांवता जायत.। परंतु ऐसी स्थिति में 'आस' धातु के रूप भी प्राप्त होते हैं, जैसे :– (i) तो धांवता आसतलो.; (ii) तो धांवता आसत.। पृष्ठ ३५९ पर (ग) विभाग के तृतीय परिच्छेद में दिये उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होती है कि कोंकणी में 'आस' धातु का भी सहायक क्रिया के रूप में प्रयोग होता है। अतः इसके संबंध में किसी को दुविधा नहीं होगी। अत एव हिंदी की सहायक 'हो' धातु के रूपों के विवरण के साथ–साथ कोंकणी की सहायक 'आस' धातु का भी विवरण दिया है

(देखिए,पृ. ३२५ से ३३३ तक)। 'आस' धातु की सहायक क्रिया के रूप में प्राप्त होने वाली यह स्थिति उपर्युक्त अन्य कुछ कालों में भी दिखायी देती है।

इसके सिवा यह स्थिति उपर्युक्त क्रमांक (१८), (१९), (२०) और (२१) में भी प्राप्त होती है। वहाँ भी प्राप्त होने वाली हर एक मुख्य क्रिया के साथ 'आसतलो' तथा 'आसत' और इनके अन्य रूपों का प्रयोग दुविधा व्यक्त करने के लिए किया जाता है, जैसे –

१८) (i) तो धांवला आसतलो.
(ii) तो धांवलो आसत.

इस प्रकार शेष क्रमांकों में भी 'आसतलो' तथा 'आसत' और इनके अन्य रूपों का प्रयोग होता है।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी काल-रचना के नामों एवं उनके उदाहरणों के तुलनात्मक अध्ययन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी में क्रमांक (१) से (१७) तक बताये कालों के नामों तथा कोंकणी में क्रमांक (१) से (२१) तक बताये कालों के नामों में प्रायः अंतर है।

(२) यद्यपि हिंदी तथा कोंकणी कालों के नामों में अन्तर है फिर भी अर्थ की दृष्टि से हिंदी तथा कोंकणी के क्रमांक (१) से (१७) तक कालों में अन्तर नहीं है।

(३) क्रमांक (३) अपूर्ण वर्तमान तथा क्रमांक (९) अपूर्ण भूत का तीसरा प्रकार अर्थात् ये दोनों काल यहाँ हिंदी तथा कोंकणी में आधुनिकता के रूप में स्वीकारे हैं। अर्थात् अपूर्ण वर्तमान में, हिंदी तथा कोंकणी में एक-एक प्रकार प्राप्त है; तथा अपूर्ण भूत में, हिंदी में दो तो कोंकणी में तीन प्रकार प्राप्त हैं।

(४) हिंदी में क्रमांक (१२) 'सामान्य संकेतार्थ' एक ही प्रकार का प्राप्त है तो कोंकणी में क्रमांक (१२) 'भूतकाळी निमती भविश्य' दो प्रकार का उपलब्ध है। यह बात पूर्व ही स्पष्ट की है कि कोंकणी में प्राप्त इन दोनों प्रकारों में से पहला प्रकार बहुत ही कम उपलब्ध होता है तो दूसरा प्रकार अधिक प्राप्त होता है (देखिए, पृ. ३५२ पर, क्रमांक(२) 'भूतकाळी निमती भविश्य, पैली तरा')।

(५) हिंदी में क्रमांक (१), (७), तथा (८) के कालों में सहायक क्रिया का प्रयोग किया जाता है जब कि कोंकणी में इन क्रमांकों के कालों में सहायक क्रिया का प्रयोग नहीं होता है।

(६) हिंदी में क्रमांक (९) के दोनों प्रकारों में सहायक क्रिया का प्रयोग उपलब्ध है तो कोंकणी में उसी क्रमांक के तीनों प्रकारों में से दो प्रकारों में सहायक क्रिया का प्रयोग नहीं होता है।

(७) कोंकणी में हिंदी के अनुकूल क्रमांक (१३) ' अपूर्ण संकेतार्थ ' तथा क्रमांक (१४) ' पूर्ण संकेतार्थ ' काल उपलब्ध नहीं हैं; तो हिंदी में कोंकणी के अनकूल क्रमांक (१८) से (२१) तक के ' दुबावी वर्तमानभूत भविश्य ', ' दुबावी रीतिभूत भविश्य ', ' दुबावी भूतभूत भविश्य ' तथा ' दुबावी भविश्य भविश्य ' काल उपलब्ध नहीं हैं ।

१२) वाच्य

संस्कृत में तीन वाच्य हैं :– (१) कर्तृ, (२) कर्म और (३) भाव । इन्हें प्रयोग भी कहते हैं, जैसे :– (१) कर्तरि प्रयोग, (२) कर्मणि प्रयोग और (३) भावे प्रयोग । हिंदी में इन शब्दों को लेकर बहुत कुछ गडबडी की है । संस्कृत के ' कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य , भाववाच्य ' शब्दों का अर्थ ठीक तरह से ज्ञात न होने के कारण यह गडबडी है और साथ–साथ ' ने ' प्रत्यय के संदर्भ में ' कर्तृवाच्य कर्तरि, कर्तृवाच्य कर्मणि , कर्मवाच्य कर्तरि , कर्मवाच्य कर्मणि ' आदि संज्ञाएँ देकर बहुत कुछ उलट–पुलट कर दी है । यहाँ इसे थोडा सा सुलझाने का प्रयास किया है ।

संस्कृत में क्रियाओं के रूपों के आधार पर उपर्युक्त तीनों प्रयोगों के दो–दो प्रकार होते हैं : – (i) ' तिङन्त रूपों के आधार पर ' और (ii) ' कृदन्त रूपों के आधार पर ' । हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त होने वाला इनका विकास नीचे प्रस्तुत है ।

(१) कर्तरि प्रयोग

(i) तिङन्त रूपों के आधार पर –

संस्कृत में तिङन्त रूपों के आधार पर सभी कालों में कर्तरि प्रयोग होता है, यथा :– ' रामः पूजां करोति । (वर्तमान काल) ', ' रामः पूजां अकरोत् । (भूतकाल)', ' रामः पूजां करिष्यति । (भविष्यकाल) '; आदि । परंतु हिंदी में ' संभाव्य भविष्य ' और ' वर्तमान आज्ञार्थ (प्रत्यक्ष विधि) ' तथा कोंकणी में ' सादो भविश्य ', ' आज्ञार्थ ' और ' रीतिभूतकाळ , दुसरी तरा ' में संस्कृत तिङन्त रूपों का विकास हुआ है । इन कालों में हिंदी तथा कोंकणी में कर्तरि प्रयोग होता है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
राम पूजा करे (संभाव्य भविष्य) ।	राम पूजा करी(र)त (सादो भविश्य).
राम, पूजा कर (वर्तमान आज्ञार्थ) ।	राम, पूजा कर (आज्ञार्थ).
– – – – –	राम पूजा करी (रीतिभूतकाळ , दुसरी तरा).

संस्कृत के शेष कालों में प्राप्त तिङन्त रूपों का विकास हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त नहीं है । अतः हिंदी तथा कोंकणी के शेष कालों में तिङन्त रूपों के आधार पर कर्तरि प्रयोग उपलब्ध नहीं है ।

हिंदी तथा कोंकणी के उपर्युक्त क्रिया–रूपों का विकास संस्कृत के कर्तरि प्रयोग के तिङन्त रूपों से हुआ है । संस्कृत में इन प्रयोगों में तृतीया–विभक्ति का कर्तृकारक इन

(एन) का संबंध नहीं है । अत एव उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी की काल–रचनाओं में हिंदी 'ने' तथा कोंकणी 'न/नीं आदि कर्तृवाचक कारक-चिह्न प्राप्त नहीं हैं ।

(ii) कृदन्त रूपों के आधार पर –

संस्कृत में भूतकालिक कृदन्त रूपों के आधार पर कर्तरि प्रयोग होता है, यथा :– 'रामः आपणे गतः ।', 'रामः पूजां कृतवान् ।'; आदि । अर्थात् भूतकालिक 'त(=तः)' और 'तवत्(= तवान्)' प्रत्ययों के योग से संस्कृत में कर्तरि प्रयोग उपलब्ध है । शेष कृदन्त रूपों के योग से संस्कृत में कर्तरि प्रयोग उपलब्ध नहीं है । संस्कृत 'त' का विकास हिंदी में 'आ', 'या' तो कोंकणी में 'लो' रूप में हुआ है । अतः संस्कृत 'रामः आपणे गतः ।' वाक्य हिंदी तथा कोंकणी में कर्तरि प्रयोग में रूपान्तरित होता है, यथा :– हिंदी : 'राम बाजार गया ।'; कोंकणी : 'राम बाजारांत गेलो.'; आदि । परंतु संस्कृत 'तवत्' प्रत्यय का विकास हिंदी तथा कोंकणी में अनुपलब्ध है । अतः उपर्युक्त संस्कृत 'रामः पूजां कृतवान् ।' वाक्य हिंदी तथा कोंकणी में कर्मणि प्रयोग में अनूदित करना पडता है, यथा :– हिंदी : 'राम ने पूजा की ।'; कोंकणी : 'रामान पूजा केली.'; आदि । अतः ऐसा लगता है कि भूतकालिक कृत् प्रत्यय 'त' से विकसित रूप और साथ–साथ उसके आधार पर बनने वाला कर्तरि प्रयोग हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है परंतु संस्कृत 'तवत्' प्रत्यय का विकसित रूप अनुपलब्ध होने के कारण उसके आधार पर बनने वाला कर्तरि प्रयोग हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त नहीं है ।

इसके सिवा हिंदी तथा कोंकणी में संस्कृत के वर्तमानकालिक कृत् प्रत्यय 'अत् (शतृ)' के योग से कर्तरि प्रयोग का विकास हुआ जो नया है, जैसेः – हिंदी : 'राम पूजा करता है ।'; कोंकणी : 'राम पूजा करता.' ;आदि । इन वाक्यों में हिंदी 'करता' तथा कोंकणी 'करता' वर्तमानकालिक कृदन्त रूप है और हिंदी में 'है' सहायक क्रिया है । इस प्रकार का प्रयोग संस्कृत में उपलब्ध नहीं है । अतः हिंदी तथा कोंकणी में 'वर्तमानकालिक कृदन्त' प्रत्यय के योग से बनने वाले इस कर्तरि प्रयोग को सर्वथा नयी विधा मानी जाती है ।

वास्तव में जिसे नयी विधा मानते हैं वह नयी नहीं है । इसका मूल भी संस्कृत में है, जैसे :– 'विदारयन् आस्ते ।'; 'प्रतिपालयन् तस्थौ ।'; आदि । इनमें 'विदारयन्, प्रतिपालयन्' आदि 'अत्' प्रत्ययान्त रूप हैं तो 'आस्ते' √आस की वर्तमानकालिक और 'तस्थौ' √स्था की भूतकालिक सहायक क्रियाएँ हैं । इन्हीं का विदारयता (=फाडता) है ।'; 'प्रतिपालयता (=पालन करता) रहा ।'; आदि रूप हुए हैं । सहायक क्रिया से युक्त वाक्य-रचना संस्कृत में उपलब्ध होने के कारण इस प्रकार की वाक्य-रचना को हिंदी की नयी विधा मानना दुर्धर हो जाता है । संस्कृत वाक्य रचना में केवल 'अत्' प्रत्ययान्त 'विदारयन्, प्रतिपालयन्' जैसे रूपों से वाक्य–समाप्ति और काल–रचना नहीं होती है । परंतु हिंदी में इस प्रकार की वाक्य–रचना होती है । और उससे वाक्य–समाप्ति और काल–रचना का बोध होता है, जैसे :– 'अनिल बाहर जाता तो काम होता ।';

आदि। अतः इस प्रकार की वाक्य–रचना को शायद नयी विधा माना जा सकता है। अर्थात् कर्तरि प्रयोग में सहायक क्रिया का प्रयोग हो या न हो उसमें कर्तवाचक 'ने' आदि (आदि शब्द कोंकणी की दृष्टि से है) प्रत्यय प्राप्त नहीं होते। यह प्रवृत्ति संस्कृत से ही प्राप्त है।

यद्यपि यहाँ ऊपर कोंकणी 'करता' को वर्तमानकालिक कृदन्त कहा है फिर भी इसके बारे में जो संशय है वह पूर्व स्पष्ट किया है (देखिए, कोंकणी 'तो, ता'; पृ. ३३६)।

(२) कर्मणि प्रयोग

(i) तिङन्त रूपों के आधार पर –

इतिहास की दृष्टि से 'कर्मणि' तथा 'भावे' प्रयोग का महत्व है; और कोंकणी की अपेक्षा हिंदी में अधिक है; क्योंकि हिंदी में 'ने' प्रत्यय के संबंध में बहुत कुछ गडबडी की है। यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है कि संस्कृत में 'कर्मणि' तथा 'भावे' प्रयोग के रूप बनाना कर्तरि प्रयोग की अपेक्षा सरल है। धातु चाहे परस्मैपद हो या आत्मनेपद, कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में, धातु में केवल आत्मनेपद के ही प्रत्यय जुडते हैं तथा धातु और प्रत्यय के बीच 'य (केवल सार्वधातुक प्रत्यय के समय)' जोडा जाता है, यथा :– 'दीयते, क्रियते, भूयते, स्थीयते' आदि। पालि में 'य' का 'इय', 'इय्य', 'ईय' हो गया तथा प्राकृत-अपभ्रंश में 'इज्ज', 'ईअ' हुआ। कुछ आधुनिक भाषाओं में संस्कृत कर्मवाच्य के रूप अवशिष्ट रूप में दिखायी देते हैं, यथा :– सिंधी : 'करीजे, दीजे'; मारवाडी : 'पढीजे, करीजणो'; नेपाली : 'पढिए'; पंजाबी : 'पढिए'; अवधी : 'दीजिए'।

हिंदी की दृष्टि से विचार किया जाए तो हिंदी में भी 'कीजिए, लीजिए, पीजिए, दीजिए, हूजिए' रूप प्राप्त हैं तथा शेष सभी धातुओं में 'इए (जैसे :– लिखिए, पढिए)' प्रत्यय प्राप्त हैं; फिर भी इन्हें डा. उदयनारायण तिवारी ने कर्मवाच्य नहीं माना है[७०]। परंतु उन्होंने 'चाहिए' में कर्मवाच्य 'य(जो ऊपर दिया है)' का विकसित 'इए' रूप माना है[७१]। यह रूप मान्य किया जाए तो भी शेष धातुओं से हिंदी में कर्मवाच्य के रूप नहीं बनते हैं। अर्थात् तिङन्त रूप से विकसित कर्मणि प्रयोग हिंदी में नहीं है।

कोंकणी में भी संस्कृत कर्मवाच्य 'यं' से विकसित 'इए, जिए' जैसे प्रत्यय जोडकर कर्मवाच्य बने रूप प्राप्त नहीं है। अर्थात् तिङन्त रूप के आधार पर बनने वाला कर्मणि प्रयोग कोंकणी में भी नहीं है। अर्थात् 'ने' प्रत्यय के संबंध में यहाँ कुछ कहने की गुंजाइश ही नहीं है।

(ii) कृदन्त रूपों के आधार पर –

संस्कृत में भूतकालिक तथा विध्यर्थक कृदन्त रूपों के आधार पर कर्मणि प्रयोग होता है। इसमें कर्म वाच्य होता है। अर्थात् क्रिया कर्म के अनुसार होती है। अतः संस्कृत में

'रामेण पुस्तकं पठितम् ।', 'रामेण ग्रंथाः पठिताः ।', 'विष्णुना प्रपंचः कृतः ।', 'त्वया गीता पठनीया ।', 'त्वया गीता पठितव्या ।' आदि वाक्यों में निष्ठा 'त' प्रत्ययान्त कृदन्त रूप कर्मवाचक 'पुस्तक', 'ग्रंथ', 'प्रपंच', 'गीता' के अनुसार बने हैं। यही परंपरा हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
राम ने पुस्तक (स्त्री., एक.) पढी।	रामान पुस्तक (नपुं., एक.) वाचलें.
राम ने ग्रंथ (पु., बहु.) पढे।	रामान ग्रंथ (पु., बहु.) वाचले.
राम ने प्रपंच (पु., एक.) किया।	रामान प्रपंच (पु., एक.) केलो.
तू/तुम गीता(स्त्री. एक.) पढना।	तुंवें गीता (स्त्री. एक.) वाचची.

एक बात यहाँ उल्लेख्य है। संस्कृत में तिङन्त रूपों से होने वाला कर्मणि प्रयोग सभी कालों में प्रयुक्त होता है। परंतु कृदन्त रूपों से बननेवाला कर्मणि प्रयोग केवल भूतकालिक 'त' और विध्यर्थक कृत्य 'अनीय, तव्य' प्रत्ययान्त के साथ प्रयुक्त है।

हिंदी तथा कोंकणी में संस्कृत तिङन्त रूपों से बनने वाला कर्मणि प्रयोग विकसित नहीं है (यह बात अभी ऊपर स्पष्ट की है) तो संस्कृत भूतकालिक 'त' प्रत्ययान्त कृदन्त रूपों से बनने वाला कर्मणि प्रयोग विकसित है और वह हिंदी तथा कोंकणी में भूतकालिक कृदन्त रूपों के साहचर्य से ही बनता है। अतः हिंदी तथा कोंकणी में शेष वर्तमानकाल तथा भविष्यकाल में कर्मणि प्रयोग क्यों नहीं होता इसका समाधान आप–ही–आप मिल जाता है।

अत एव हिंदी में 'ने' प्रत्यययुक्त वाक्य को शुद्ध कर्मणि प्रयोग का मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए और इसमें कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य जैसी गडबड नहीं करनी चाहिए।

अभी विध्यर्थक कृत्य 'तव्य, अनीय' प्रत्ययान्त रूपों से बननेवाले कर्मणि प्रयोग के बारे में सोचें। संस्कृत में 'तव्य, अनीय' प्रत्ययान्त कृदन्त रूपों से कर्मणि प्रयोग होता है, यथा :– 'रामेण आम्रः खादितव्यः /खादनीयः ।'; आदि। इनमें से 'तव्य' प्रत्यय से कोंकणी में 'चो' प्रत्यय का विकास हुआ है (देखिए, पृ. ३४०)। अर्थात् कोंकणी में 'चो' प्रत्ययान्त कृदन्त से कर्मणि प्रयोग होता है, यथा :– 'रामान आंबो खावचो/रोटी खावची / तोर खावचें.' आदि। कोंकणी में इसे विध्यर्थ माना जाता है। परंतु हिंदी में इसके समानार्थक 'भविष्य आज्ञार्थ' में कर्मणि प्रयोग विकसित नहीं है, जैसे :– 'तू आम खाना ।'; 'तू रोटी खाना ।'; 'तुम पत्र लिखना ।'; आदि। इन 'खाना'; और 'लिखना' में जो 'ना' है वह संस्कृत 'तव्य' प्रत्ययार्थक 'अनीय' से विकसित है (देखिए, पृ. ३३९)। फिर भी हिंदी में इसका व्यवहार कर्तरि प्रयोग में और वह भी केवल मध्यम पुरुष में ही होता है। यह कोंकणी के 'रामान आंबो खावचो / रोटी खावची / तोर खावचें' की तरह कर्मणि प्रयोग में नहीं होता है। अर्थात् 'तू आम खाना।' आदि

उपर्युक्त वाक्य हिंदी की नयी विधा है । इसकी क्रिया कर्ता या कर्म के अनुसार नहीं बदलती । अर्थात् इसे भावे प्रयोग भी नहीं कह सकते । इसी प्रकार इसे कर्तरि प्रयोग भी कहना मुश्किल है तथा कर्मणि प्रयोग भी ।

यही स्थिति कोंकणी में ' प ' प्रत्ययान्त क्रिया के साथ होती है, जैसे :– ' हांवें आंबो (मो) खावप. ' ; ' हांवें रोटी खावप. ' ; ' हांवें पेर खावप. ' ; ' तुवें आंबो खावप. ' ; ' ताणें आंबो खावप. ' ; आदि । यह ' प ' प्रत्ययान्त रूप कोंकणी ' चो ' प्रत्ययान्त की तरह तीनों लिंगों, तीनों पुरुषों और दोनों वचनों में प्राप्त है । फर्क यह है कि ' प ' का स्वरूप बदलता नहीं तो ' चो ' का स्वरूप बदलता है ।

हिंदी की दृष्टि से सोचें तो हिंदी ' ना ' की तरह ' प ' पर लिंग, वचन एवं पुरुष का प्रभाव नहीं है । यहाँ कोंकणी के उपर्युक्त वाक्यों को केवल कर्तृवाचक कारक-चिह्न लगने के कारण कर्मणि प्रयोग माना जाता है । अन्यथा इसे भी हिंदी के ' तू आम खाना ।' की तरह एक अलग विधा मानना उचित था । इस ' प ' प्रत्यय का विकास भी संस्कृत ' तव्य ' से माना है (देखिए, पृ. ३४०)। इस ' प ' प्रत्ययान्त के साथ कारक-चिह्न विरहित कर्तृवाचक शब्द का प्रयोग कभी प्राप्त नहीं होता है । अत एव ' हांव रोटी खावप. ' ; ' तो रोटी खावप. ' आदि प्रयोग कोंकणी में अशुद्ध हैं ।

इस प्रकार संस्कृत ' त ' से विकसित हिंदी ' आ (/ या) ' तथा कोंकणी ' लो (/इल्लो / लेलो / लिल्लो) ' प्रत्ययान्त के साथ हिंदी तथा कोंकणी में कर्मणि प्रयोग होता है और इनके साथ ' ने (हिं.) ' तथा ' न / नी (कों.) ' आदि का प्रयोग होता है ।

संस्कृत 'तव्य' से विकसित 'चो' प्रत्ययान्त के साथ कोंकणी में कर्मणि प्रयोग प्राप्त है जो संस्कृत की पुरानी परिपाटी से चला आया है । इसमें ' न / नी ' आदि प्राप्त होते हैं ।

संस्कृत के 'अनीय ' से विकसित ' ना ' प्रत्ययान्त क्रिया के साथ हिंदी में एक अलग प्रयोग विकसित है जो हिंदी की सर्वथा नयी विधा है । इसके साथ ' ने ' होना चाहिए था परंतु नहीं होता है । इसी प्रकार संस्कृत के ' तव्य ' से विकसित ' प ' प्रत्ययान्त क्रिया के साथ कोंकणी में एक अलग प्रयोग विकसित है जो कोंकणी की सर्वथा नयी विधा है । इसके साथ ' न / नी ' का प्रयोग होता है परंतु कर्म के अनुसार ' प ' प्रत्ययान्त क्रिया नहीं बदलती ।

(३) भावे प्रयोग –

(i) तिङन्त रूपों के आधार पर –

संस्कृत में ' भावे प्रयोग ' खूब प्रचलित है । यह अकर्मक धातुओं से बनता है, फिर भी यह कर्मणि प्रयोग की तरह आत्मनेपद प्रत्ययों और भाववाच्य ' य ' से युक्त होता है, यथा :– ' रामेण स्थीयते ।', ' रामेण सुप्यते ।' आदि । इस प्रयोग में केवल कर्म नहीं होता है ।

हिंदी तथा कोंकणी में इसका ठीक शब्दशः अनुवाद नहीं हो सकता । उपर्युक्त संस्कृ वाक्यों का अनुवाद हिंदी में ' राम से खडा रहा जाता है (या ' राम से ठहरा जाता है)। ' राम से सोया जाता है । ' जैसे हो सकता है । परंतु कोंकणी में उपर्युक्त संस्कृत वाक्यों स्पष्ट होनेवाला अर्थ अनूदित नहीं हो सकता । कोंकणी में उपर्युक्त संस्कृत वाक्यों व अनुवाद ' रामाच्यान उबो राबूं येता. '; ' रामाच्यान निदूं येता. ' जैसा हो सकता है । परं एक बात स्पष्ट है कि उपर्युक्त भावे प्रयोग में प्राप्त संस्कृत वाक्यों का अर्थ हिंदी तथ कोंकणी वाक्यों में स्पष्ट नहीं होता है । इसके लिए हिंदी तथा कोंकणी में कर्तरि प्रयो करना आवश्यक होता है, यथा –

संस्कृत	**हिंदी**	**कोंकणी**
रामेण स्थीयते ।	राम खडा रहता (रह सकता) है ।	राम उबो रावता (रावं शकत
रामेण सुप्यते ।	राम सोता (सो सकता) है ।	राम न्हिदता (न्हिदूं शकता) .

इस प्रकार संस्कृत तिङन्त रूपों से विकसित भावे प्रयोग हिंदी तथा कोंकणी में प्राप नहीं है ।

(ii) कृदन्त रूपों के आधार पर –

संस्कृत में भूतकालिक कृदन्त से ' भावे प्रयोग ' बनता है, यथा :– ' रामेण स्थितं ', ' रामेण सुप्तं । '; आदि । परंतु इससे विकसित कोई प्रयोग हिंदी तथा कोंकणी में प्राप नहीं है । इन वाक्यों के अर्थ में, हिंदी तथा कोंकणी में कर्तरि प्रयोग होता है, जैसे :– हिंद : ' राम रहता है । ', ' राम सोया । '; कोंकणी : ' राम रावता. ', ' राम न्हिदलो . ' आदि ।

(फिर भी कुछ विशिष्ट अकर्मक धातुओं के भूतकालिक कृदन्त रूपों के साथ हिंदी में भावे प्रयोग प्राप्त है , जैसे :– ' राम ने नहाया है । ' ; ' सीता ने छींका । ' ; आदि ।)

संस्कृत में ' तव्य ' प्रत्ययान्त कृदन्त से बनने वाला भावे प्रयोग मिलता है । जैसे:– रामेण स्थातव्यं ।', ' रामेण सुप्तव्यं । ' ; आदि । ये वाक्य हिंदी में शब्दशः अनूदित नहं होंगे परंतु कोंकणी में विध्यर्थ के भावे प्रयोग में अनूदित होंगे , यथा :– ' रामान रावचें. ' ' रामान न्हिदचें '; आदि ।

इस प्रकार कृदन्त 'त' प्रत्ययान्त रूपों से विकसित भावे प्रयोग प्रायः हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त नहीं है । परंतु संस्कृत ' तव्य ' प्रत्ययान्त रूपों से विकसित भावे प्रयोग केवल कोंकणी में प्राप्त है । इसमें संस्कृत की तरह कोंकणी के कर्तृवाचक ' न / नी ' आदि प्रत्यय प्राप्त होते हैं ।

संस्कृत के शेष ' कृत् ' प्रत्ययान्त रूप क्रियात्मक न होने के कारण कर्तरि आदि प्रयोगों से उनका कुछ भी संबंध नहीं है ।

शेष :

तृवाचक कारक-चिह्नों के बारे में –

यहाँ तक की गयी कर्तरि आदि प्रयोगों की चर्चा के संबंध में एक बात ध्यान में खना आवश्यक है। हिंदी 'ने' तथा कोंकणी 'न/नी' आदि कर्तृवाचक कारक-चिह्न यम के अनुसार जहाँ लगाना आवश्यक होते हैं वहाँ कुछ विशिष्ट क्रियाओं के कारण प्त नहीं होते हैं। तब उन वाक्यों की स्थिति कर्मणि या भावे प्रयोग के बदले कर्तरि योग में होती है, जैसे –

	हिंदी	**कोंकणी**
(१)	मैं बहुत शब्द बोला(कर्तरि प्र.)।	हांव खूप शब्द उलैलों(कर्तरि प्र.).
(२)	अनिल बात भूला(,, ,,)।	अनिल गोष्ट विसरलो (,, ,,).

यहाँ कर्तृवाचक कारक-चिह्न नियम के अनुसार प्राप्त होते हुए भी नहीं लगते। र्थात् यहाँ कर्मणि प्रयोग के बदले कर्तरि प्रयोग हुआ है।

	हिंदी	**कोंकणी**
(३)	अनिल आम लाया(कर्तरि प्र.)।	अनिलान आमो हाडलो(कर्मणि प्र.).

इस तीसरे वाक्य-युग्म में स्थिति थोडी अलग है। हिंदी में 'ने' नहीं है तो उसी अर्थ के कोंकणी वाक्य में 'न' प्राप्त है। साथ ही प्रयोगों की संज्ञाओं में भी अन्तर प्राप्त हुआ है।

	हिंदी	**कोंकणी**
(४)	अनिल ने भात खाया(कर्मणि प्र.)।	अनिल शीत जेवलो(कर्तरि प्र.).

इस चौथे वाक्य-युग्म में भी स्थिति थोडी अलग है जो तीसरे वाक्य के संदर्भ में उल्टी है। यहाँ हिंदी में 'ने' है तो उसी अर्थ के कोंकणी वाक्य में 'न' प्राप्त नहीं है। साथ ही प्रयोगों की संज्ञाओं में भी अन्तर आया है।

	हिंदी	**कोंकणी**
(५)	मैं हँसा(कर्तरि प्र.)।	हांव हांसलो(कर्तरि प्र.).

यहाँ हिंदी में 'ने' तथा कोंकणी में 'न' के अर्थ में 'एं' कारक-चिह्न लगना चाहिए था और इसकी स्थिति भावे प्रयोग की होनी चाहिए थी। परंतु कारक-चिह्न न लगने के कारण दोनों में यहाँ अकर्मक कर्तरि प्रयोग हुआ है।

	हिंदी	**कोंकणी**
(६)	अनिल ने छींका (भावे प्र.)।	अनिल शिंकलो (अ. कर्तरि प्र.).
(७)	वीणा ने छींका (,, ,,)	वीणा शिंकलें (,, ,, ,,).
(८)	संध्या ने छींका(,, ,,)।	संध्या शिंकलें (,, ,, ,,).

इन वाक्य-युग्मों में अन्तर है। हिंदी में 'ने' है तो कोंकणी में कारक-चिह्न नहीं है अतः प्रयोग की संज्ञाओं में भी अंतर है।

इस प्रकार यहाँ कर्तृवाचक कारक-चिह्न के वितरण में अन्तर है।

इतना कहने के उपरान्त भी हिंदी की प्रयोग-रचना की समस्या हल नहीं हो सकत और न ही प्रयोगों को दी हुई संज्ञाओं की गडबडी। क्यों कि उपर्युक्त प्रयोगों के बिना भ अन्य प्रकार की प्रयोग-रचना हिंदी में प्राप्त होती है जो संस्कृत के प्रयोगों के आधार प सिद्ध नहीं की जा सकती, जैसे :– 'राम ने सीता को देखा।'; 'सीता ने राम को देख।'; 'अनिल ने मोहन को पढाया था।'; 'राम ने संध्या को पढाया।'; 'अंजनी वीणा को बुलाया।'; 'अनिल से आम खाया जाता है।'; 'अनिल से रोटी खायी गय।';'मुझसे यह बात नहीं की जाएगी।'; 'उनसे हम (पु.) बुलाये जाएँगे।'; 'उन हम (स्त्री.) बुलायी जाएँगी।'; 'राम से घडी को लाया जाता है।'; 'राम से नौकरान को भेजा जाता है।'; 'चोर पकडा जाता है।'; 'सिपाही मारा गया।'; 'सभ सिपाही मारे गये।'; 'तुझसे चला जाता है।'; 'राम से हँसा जाता है।'; आदि इनके बारे में इसी अध्याय के अन्त में दिये हुए परिशिष्ट में कुछ बातें स्पष्ट करने का प्रयास किया है (देखिए, 'परिशिष्ट', पृ. ३८०)।

वाच्य विषय में एक बात निश्चित है कि हिंदी तथा कोंकणी में कर्तरि प्रयोग ह विशेष प्राप्त है।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी वाच्य के विवरण के आधार पर निम्नलिखित बातें स्पष होती हैं –

(१) हिंदी तथा कोंकणी में तीन वाच्य हैं – कर्तृ, कर्म और भाव।

(२) हिंदी तथा कोंकणी में कर्तरि प्रयोग संस्कृत तिङन्त रूपों से विकसित क्रिया रूप में प्राप्त है।

(३) संस्कृत कृदन्त रूपों से विकसित क्रियात्मक (क्यों कि ये विशेषणात्मक भी होते हैं) रूपों से भी हिंदी तथा कोंकणी में कर्तरि प्रयोग होता है। परंतु यह कर्तरि प्रयोग हिंद तथा कोंकणी में सभी कालों और अर्थो में प्रयुक्त नहीं है।

(४) संस्कृत के वर्तमानकालिक 'अत् (शतृ)' प्रत्यय से विकसित 'ता (कोंकण 'तो' भी)' प्रत्ययान्त रूप से होने वाली काल-रचना हिंदी तथा कोंकणी में नयी विध है।

(५) हिंदी तथा कोंकणी में संस्कृत की तरह तिङन्त रूपों से होने वाला कर्मणि प्रयोग प्राप्त नहीं है परंतु भूतकालिक कृदन्त रूपों से होने वाला कर्मणि प्रयोग प्राप्त है।

(६) कोंकणी 'विध्यर्थ' में कर्मणि प्रयोग होता है जो हिंदी 'भविष्य आज्ञार्थ (कोंकणी में इसे विध्यर्थ माना है।)' में नहीं होता है। इस काल में हिंदी में कर्तरि प्रयोग होता है।

(७) संस्कृत में तिङन्त से बनने वाले भावे प्रयोग का विकास हिंदी तथा कोंकणी में लब्ध नहीं है।

(८) संस्कृत भूतकालिक कृत् 'त' प्रत्यय से विकसित 'आ (/या)' प्रत्ययान्त ों के साथ हिंदी में भावे प्रयोग दीखता है, परंतु यह बात 'नहा', 'छींक' आदि छ थोडी ही धातुओं के संबंध में प्राप्त होती है। कोंकणी में तो इस प्रकार की धातुएँ नहीं । हिंदी के शेष धातुओं के साथ भावे प्रयोग नहीं दीखता। कोंकणी में ये दोनों स्थितियाँ हीं हैं।

(९) संस्कृत कृत् 'तव्य' प्रत्यय से विकसित 'चो' प्रत्ययान्त रूपों के साथ ोंकणी 'विध्यर्थ' में भावे प्रयोग होता है। इस प्रकार का भावे प्रयोग हिंदी में उपलब्ध हीं है।

(१०) कुछ विशिष्ट क्रियाओं के साथ हिंदी तथा कोंकणी वाक्य रचना में कर्तृवाचक ारक चिह्नों का अभाव होता है, जिससे प्रयोग रचना में अन्तर आता है और प्रयोग की ज्ञा भी बदलती है।

१३) प्रेरणार्थक धातु

प्रेरणार्थक धातुएँ भारतीय आर्य भाषाओं में प्राचीन काल से पायी जाती हैं। संस्कृत में प्रेरणार्थक (णिजन्त) रूपों की रचना धातु में 'अय् (णिच्)' प्रत्यय जोडकर होती है, यथा :– √कृ : कारयति; √खाद् : खादयति; √बुध् : बोधयति ; आदि। संस्कृत में कुछ धातुओं में 'अय्' के पूर्व 'प्' जोडा जाता है, यथा :– √स्ना : स्नापयति; √दा : दापयीति; √स्था : स्थापयति ; आदि।

पालि में 'प्'–युक्त प्रत्यय का प्रयोग भी होने लगा। प्रायः धातुओं में 'ए, अय, आपे, आपय' प्रत्यय विकल्प से प्रयुक्त होने लगे, यथा :– √अच्च : अच्चेति, अच्चयति, अच्चापेति, अच्चापयति। इन प्रत्ययों से प्राकृत में 'अ, ए, आव, आवे' प्रत्ययों का विकास हुआ, जैसे :– √हस : हासइ, हासेइ, हसावइ, हसावेइ।

इन्हीं प्रत्ययों से हिंदी में 'आ', 'वा' प्रत्ययों का विकास हुआ है। इनमें प्रायः 'आ' प्रथम प्रेरणा में तथा 'वा' द्वितीय प्रेरणा में जोडा जाता है।

कोंकणी में 'अय/ऐ' प्रत्ययों का विकास हुआ है। कोंकणी में हिंदी की तरह प्रथम प्रेरणा में अलग तथा द्वितीय प्रेरणा में अलग प्रत्यय नहीं जोडे जाते। अतः कोंकणी में प्रथम तथा द्वितीय प्रेरणा के रूप समान ही उपलब्ध होते हैं। यह प्रवृत्ति संस्कृत में ही दीखती है, यथा :– 'यज्ञदत्तः देवदत्तं गमयति (प्र. प्रेरणा)।'; 'विष्णुदत्तः यज्ञदत्तेन देवदत्तं गमयति (द्वि. प्रेरणा)।'; आदि। यहाँ दोनों वाक्यों में 'गमयति' समान रूप से प्रयुक्त हैं। नीचे हिंदी तथा कोंकणी के कुछ प्रेरणार्थक धातुओं के रूप स्पष्ट किये हैं –

हिंदी			कोंकणी	
धातु	प्र. प्रे. धातु	द्वि. प्रे. धातु.	धातु	प्रे. धातु.
हँस :	हँसा	हँसवा	हांस :	हांसय/हांसै
सीख :	सिखा	सिखवा	शीक :	शिकय/शिकै
उड :	उडा	उडवा	उड :	उडय/उडै
बैठ :	बिठा	बिठवा	बस :	बसय/बसै

हिंदी के कुछ धातुओं में प्रथम प्रेरणा में ' ला ' तथा द्वितीय प्रेरणा में ' लवा ' जुडता है तो कोंकणी के दोनों प्रेरणाओं में ' वय/वै ' जुडते हैं, यथा –

दे :	दिला	दिलवा	दि :	दिवय/दिवै
खा :	खिला	खिलवा	खा :	खावय/खावै
पी :	पिला	पिलवा	पि :	पिवय/पिवै

प्रेरणार्थक धातु में एक और बात की विशेषता प्राप्त होती है जिससे हिंदी तथा कोंकणी में अन्तर प्राप्त है।

हिंदी में प्रेरणार्थक धातु में क्रियार्थक संज्ञा का ' ना ' प्रत्यय जोडते समय धातु के अन्त में परिवर्तन नहीं होता, यथा :– √हँसा : हँसाना ; √हँसवा : हँसवाना ; √सिखा : सिखाना; √सिखवा : सिखवाना 'आदि।

परंतु कोंकणी में प्रेरणार्थक धातु में क्रियार्थक संज्ञा का ' प ' प्रत्यय जोडते समय धातु के अन्त में ' अव/औ ' रूप में परिवर्तन होता है, यथा :– √हांसय/हांसै हांसवप/हांसौप ; √शिकय/शिकै : शिकवप/शिकौप ; आदि। कभी-कभी ' हांसोवप, शिकोवप ' भी होता है।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी प्रेरणार्थक धातु के विवेचन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं–

(१) हिंदी ' आ ' और ' वा ' तथा कोंकणी ' अय/ऐ ' का विकास संस्कृत ' अय् (णिच्) ' प्रत्यय से है।

(२) हिंदी में प्रथम तथा द्वितीय प्रेरणार्थक में दो भिन्न प्रत्यय प्राप्त हैं तो कोंकणी में प्रथम तथा द्वितीय प्रेरणा के लिए एक ही प्रत्यय प्राप्त है ; परंतु इसके दो रूप हैं।

(३) हिंदी में प्रथम प्रेरणा में ' आ ' और द्वितीय प्रेरणा में ' वा ' जोडा जाता है तो कोंकणी में प्रथम और द्वितीय प्रेरणा में ' अय ' या ' ऐ ' जोडा जाता है। इनमें कभी-कभी हिंदी में ' ल् ' तो कोंकणी में ' व् ' आगम होता है।

(४) हिंदी की दोनों प्रेरणार्थक धातुओं में क्रियार्थक संज्ञा का ' ना ' प्रत्यय जोडते समय प्रेरणार्थक धातु के अन्त में विकार नहीं होता, तो कोंकणी में क्रियार्थक संज्ञा का ' प ' प्रत्यय जोडते समय ' अय ', ' ऐ ' का ' अव ', ' औ ' होता है।

१४) नामधातु

प्रेरणार्थक धातु की तरह नामधातु भी भारतीय आर्य भाषाओं में प्राचीन काल से पाये जाते हैं। संज्ञा, सर्वनाम तथा विशेषण में क्रियाबोधक प्रत्यय जोडने से नामधातु बनते हैं। मुख्यतः हिंदी में 'आ' प्रत्यय तथा कोंकणी में 'आय' प्रत्यय जोडकर नामधातु बनाये जाते हैं, यथा –

शब्द-भेद –	हिंदी		कोंकणी	
संज्ञा –	दुःख	√दुखा	फातर	√फातराय
	लाज	√लजा	धुमको	√धुमकाय
विशेषण –	बिलग	√बिलगा	पिसो	√पिसाय
	गर्म	√गर्मा	वेगळो	√वेगळाय
सर्वनाम –	आप	√अपना	आपुण	√आपणाय

(हिंदी तथा कोंकणी के उपर्युक्त शद्बों में से हिंदी 'आप' तथा कोंकणी 'आपुण' छोडकर अन्य शब्द भिन्नार्थक हैं। हिंदी अपना में 'न्' आगम है जो 'आ' प्रत्यय के पूर्व प्राप्त है। फिर भी इसे 'आप' से मानने के बदले 'अपना' से बना नामधातु मानने में हर्ज नहीं होगा।)

इसके सिवा हिंदी में 'इया ('बात : बतिया', 'हाथ : हथिया)'; 'ला (झूठ : झुठला)' प्रत्यय लगाकर नामधातु बनाये जाते हैं। ये प्रत्यय 'आ' के रूपान्तर हैं।

इसी प्रकार कोंकणी में 'ऐ/अय ('दुःख : √दुखै/दुखय', 'गांठ : √गांठै/गांठय'); 'ए ('धुंवर : √धुंवरे', 'मूय : √मुये', 'सपन : √सपने')' प्रत्यय लगाकर नामधातु बनाये जाते हैं। ये प्रत्यय भी 'आय' के रूपान्तर हैं।

संस्कृत में नामधातु बनाने के लिए मुख्यतः 'य' प्रत्यय जोडा जाता है। उसके पूर्व 'ई' अथवा 'आ' प्राप्त होता है, यथा :– 'पुत्र : √पुत्रीय', 'अशन : √अशनाय' आदि। इनसे हिंदी में 'आ' तथा कोंकणी में 'आय' का विकास प्राप्त है।

हिंदी के इस 'आ' पर संस्कृत के प्रेरणार्थक 'आपय' का प्रभाव माना जाता है। परंतु इस प्रकार मानने की आवश्यकता नहीं है। क्यों कि संस्कृत में नामधातु बनाने वाले प्रत्यय से हिंदी 'आ' प्रत्यय का विकास सरल है। दूसरी एक बात है। संस्कृत में 'आपय' जैसा कोई प्रेरणार्थक प्रत्यय धातु बनाने के लिए नहीं है। 'स्थापयति, दापयति में 'पय' प्रत्यय है न कि 'आपय'। ऐसी स्थिति में संस्कृत प्रेरणार्थक 'आपय' से इसका विकास सरल नहीं है।

यहाँ अन्य एक संभावना हो सकती है। सिद्धान्त कौमुदी में पृष्ठ २७१ पर पाणिनि के ३।१।२१ सूत्र पर 'अर्थवेदयोरप्यापुग्वक्तव्यः' वार्तिक है। इससे 'अर्थापयति, वेदापयति' रूप बनते हैं। इस 'आपय' का प्रभाव हिंदी के नामधातु पर माना जा सकता है। फिर भी यह 'आपय' प्रत्यय नामधात्वर्थक है न कि प्रेरणार्थक। यदि इसे नामधात्वर्थक 'आपय' का प्रभाव मानते तो ठीक था, परंतु प्रेरणार्थक 'आपय' का प्रभाव मानना उचित नहीं लगता।

× × ×

उपर्युक्त नामधातु के विवेचन से निम्नलिखित बात स्पष्ट होती है –

(१) नामधातु बनाने के लिए हिंदी में 'आ, इया, ला' प्रत्यय प्राप्त हैं तो कोंकणी में 'आय, ऐ, अय, ए' प्रत्यय प्राप्त हैं।

१५) अनुकरणमूलक धातु

अनुकरण वाचक शब्दों से धातु बनाने की प्रवृत्ति भी प्राचीन है। वैदिक साहित्य में ऐसे शब्द मिलते हैं, यथा :– 'अललाभवत्, हिङ्कृण्वती, भर्भराभवत्, किकिराकृणु'; आदि। संस्कृत में भी ऐसे शब्द प्राप्त हैं, यथा :– 'पटपटाकरोति, खटखटाकरोति' आदि। मध्य भारतीय आर्यभाषा में इस प्रकार की क्रियाएँ प्राप्त हैं 'तडप्फडइ, थरथरइ' आदि। इस प्रकार शब्द दोहरा कर बनी हुई क्रियाएँ हिंदी तथा कोंकणी में पायी जाती हैं, यथा –

हिंदी		कोंकणी	
खटखट :	√खटखटा	खटखट :	√खटखट
फडफड :	√फडफडा	फडफड :	√फडफड
थरथर :	√थरथरा	थरथर :	√थरथर
खडखड :	√खडखडा	खडखड :	√खडखड

संस्कृत में अनुकरणमूलक शब्द के अन्त में 'कृ' धातु के रूपों का प्रयोग होता है और इसके पहले 'आ(डाच्)' प्रत्यय जोडा जाता है, यथा :– 'पटपटाकरोति, खटखटाकरोति' आदि। परंतु हिंदी तथा कोंकणी में 'कर' धातु के रूपों का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है, तो उपरोल्लिखित धातुओं में प्रत्यय जोडकर व्यवहार किया जाता है, यथा :– हिंदी : 'खटखटाता' आदि ; कोंकणी : 'खटखटता' आदि। वैसे तो 'खटखट' शब्द के आगे हिंदी तथा कोंकणी में 'कृ' धातु के रूपों का प्रयोग मिलता है, यथा :– हिंदी : 'खटखट करता है।'; कोंकणी : 'खटखट करता.'; आदि। परंतु इन्हें अनुकरणमूलक धातु नहीं कह सकते; क्यों कि इस प्रकार अलग लिखने में ये शब्द स्वतंत्र माने जाते हैं। संस्कृत की तरह ये शब्द जोडकर नहीं लिखे जाते तथा 'करता' क्रिया के कारण पूर्व शब्द में कुछ परिवर्तन नहीं होता है।

हिंदी ' खटखटा ' आदि में ' आ ' प्रत्यय है तो कोंकणी ' खटखट ' आदि में कोई प्रत्यय नहीं है।

हिंदी ' आ ' का विकास संस्कृत ' आ (डाच्) ' से है तो कोंकणी में संस्कृत ' आ ' प्रत्यय का लोप ही विकास के रूप में प्राप्त है।

हिंदी तथा कोंकणी अनुकरणमूलक धातुओं में एक और अन्तर प्राप्त है –

हिंदी में ' आ ' प्रत्यय लगायी धातुओं में से कुछ धातुएँ सकर्मक, तो कुछ धातुएँ अकर्मक तथा कुछ धातुएँ सकर्मक और अकर्मक रूपों में प्राप्त हैं, यथा :– √खटखटा सकर्मक है ; √थरथरा, √झनझना, √बडबडा अकर्मक हैं : √खडखडा , √खनखना सकर्मक और अकर्मक है।

परंतु कोंकणी में यह स्थिति नहीं है। कोंकणी में ' खटखट, थरथर, झणझण, बडबड, खडखड (उपर्युक्त प्रकार से इनमें कोई प्रत्यय नहीं है) ' धातुएँ अकर्मक हैं। इन्हें यदि सकर्मक बनाना चाहते हैं तो इनमें ' करता ' अर्थ में नामधातु का ' आय ' या ' ऐ ' प्रत्यय जोडना पडता है, यथा :– √खटखटाय या खटखटै, √थरथराय या थरथरै,√ खडखडाय या खडखडै ; आदि। परंतु हिंदी में एक ही ' आ ' प्रत्यय से अनुकरणमूलक धातु सकर्मक, अकर्मक अथवा सकर्मक और अकर्मक रूप में प्रयुक्त है।

× × ×

उपर्युक्त विवेचन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी तथा कोंकणी में अनुकरणमूलक शब्दों से धातुएँ बनती हैं।

(२) ऐसी धातुएँ बनाते समय हिंदी में ' आ ' प्रत्यय जुडता है तो कोंकणी में कोई प्रत्यय नहीं जुडता।

(३) हिंदी में ' आ ' संस्कृत ' आ (डाच्) ' से विकसित है तो कोंकणी में संस्कृत ' आ ' का लोप होता है।

(४) हिंदी में अनुकरणमूलक शब्दों में ' आ ' प्रत्यय जुडने के बाद कुछ क्रियाएँ सकर्मक, तो कुछ क्रियाएँ अकर्मक तथा कुछ क्रियाएँ सकर्मक और अकर्मक दोनों होती हैं। कोंकणी में प्रत्यय के सिवा प्राप्त अनुकरणमूलक धातुएँ अकर्मक में प्राप्त हैं तथा इन्हें सकर्मक बनाने के लिए ' आय ' या ' ऐ ' प्रत्यय जोडा जाता है।

१६) संयुक्त क्रिया

हिंदी तथा कोंकणी में संयुक्त क्रियाओं का बहुत उपयोग होता है। दो या दो से अधिक क्रियाओं के एकत्र आने से जो क्रिया बनती है उसे ' संयुक्त क्रिया ' कहते हैं [७३]। इसमें अर्थ की विशेषता भी होती है। ' संयुक्त क्रिया ' मुख्य क्रिया तथा सहायक क्रिया के योग से बनती है। नीचे इसके उदाहरण दिये हैं –

हिंदी	**कोंकणी**
मैं आम खा सकता हूँ।	हांव आंबो खावं शकता.
वह गाता गया।	तो गायत गेलो.
वह किताब पढ रही है।	ती पुस्तक वाचत आसा.
वह आँखें मूँदते हँसता है।	तो दोळे धांपून हांसता.

'संयुक्त क्रिया' का विवेचन करते समय श्री सुळे तथा नायक लिखते हैं कि रूप के अनुसार संयुक्त क्रियाएँ आठ प्रकार की हैं [७४]। इन रूपों को देखकर ऐसा लगता है कि संस्कृत में भी संयुक्त क्रियाओं का व्यवहार होता है, यथा –

(१) वर्तमानकालिक कृदन्त के योग से बनी संयुक्त क्रिया –
संस्कृत : सः गायन् अगच्छत्। हिंदी : वह गाता गया।
(२) तुमन्त कृदन्त के योग से बनी संयुक्त क्रिया–
संस्कृत : अहं धावितुं शक्नोमि। हिंदी : मैं दौड सकता हूँ।
(३) पूर्वकालिक कृदन्त के योग से बनी संयुक्त क्रिया –
संस्कृत : सः नेत्रे निमील्य हसति। हिंदी : वह आँखें मूँदकर हँसता है।

अन्य एक उदाहरण देखिए। संस्कृत के 'स्मारंस्मारं नमति शिवं।' वाक्य में 'स्मृ' धातु से बना 'स्मारंस्मारं' रूप पूर्वकालिक कृदन्त है जिसका संबंध 'नम्' धातु से है। पंचतंत्र १ में कृदन्त और तिङन्त रूप मिलकर वाक्य–रचना बनी दिखायी देती है, जैसे :– 'विदारयन् प्रगर्जश्चास्ते (= फाडता रहा और गरजता रहा)'। यहाँ 'विदारयन्' और 'प्रगर्जः' दोनों वर्तमानकालिक कृदन्त रूप हैं। 'आस्ते' तिङन्त रूप हैं। इन उदाहरणों से संस्कृत में 'संयुक्त क्रिया' का रूप मानने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

(सूचना :– यहाँ 'प्रगर्जः के बारे में यद्यपि संशय दीखता है फिर भी इसे पाणिनीय सूत्र 'उणादयो बहुलम् ३ । ३ । १' के आधार पर वर्तमानकालिक कृदन्त मानने में आपत्ति नहीं है। वैसा तो यह 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः(३ । १ ।१३४ पा. सू.)के आधार पर भी सिद्ध किया जा सकता है।)

इसके संबंध में डा. धीरेंद्र वर्मा का मन्तव्य विचारणीय है। वे लिखते हैं कि प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं में जो काम प्रत्यय आदि लगाकर किया जाता था वह काम अब बहुत कुछ संयुक्त क्रियाओं के द्वारा लिया जाता है [७५]। यह उनका मत 'मैं दौड सकता हूँ।'; 'वह खा चुका है।' जैसे वाक्यों में ठीक दिखायी देता है। फिर भी 'वह गाता गया।'; 'वह हँसते हुए जाता है।' जैसे वाक्यों में प्रथम क्रिया में कोई–न–कोई प्रत्यय है। ऐसी स्थिति में भी एक बात मानना आवश्यक है कि हिंदी की संयुक्त क्रियाओं में अर्थ की जो सूक्ष्मता प्राप्त है वह संस्कृत की संयुक्त क्रियाओं में प्रायः उपलब्ध नहीं है। यही सूक्ष्मता हिंदी की संयुक्त क्रियाओं में विकास के रूप में स्वीकार्य है।

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी में संयुक्त क्रियाएँ उपलब्ध हैं।

एक बात यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि हिंदी में संयुक्त क्रियाओं की जितनी भरमार होती है उतनी कोंकणी में नहीं, जैसे :–

हिंदी	कोंकणी
(१) वह नीचे गिर पडा।	तो सकयल पडलो.
(२) बालक खेलते हैं।	भुरगे खेळटात.
(३) वह पहुँच गया।	तो पावलो.
(४) वह सब समझ गया।	तो सगळे समजलो.
(५) बरसात आ गयी।	पावस आयलो.
(६) मैं सबेरे ही उठ जाता हूँ।	हांव सकाळींच उठतां.
(७) मुझे उसने किताब दे दी।	म्हाका ताणें पुस्तक दिलें.
(८) वह लिख चुका।	ताणें बरयलें.

उपर्युक्त हिंदी के वाक्यों का कोंकणी में शब्दशः अनुवाद करें तो गलत साबित होगा, जैसे वाक्य क्रमांक (१) में हिंदी वाक्य में 'गिरना, पडना' क्रियाएँ हैं। कोंकणी में इनका अनुवाद करे तो 'तो सकयल पडून पडलो.' होगा जो कोंकणी की वाक्य-रचना के विरुद्ध होगा। यहाँ कोंकणी में 'तो सकयल पडलो.' ही वाक्य रचना ठीक है। वाक्य क्रमांक (५) का एक और उदाहरण लीजिए। हिंदी के 'बरसात आ गयी' का अर्थ कोंकणी में 'पावस येवन गेलो.' नहीं होगा बल्कि 'पावस आयलो.' होगा। यहाँ अपनी-अपनी प्रकृति विशेष के कारण हिंदी तथा कोंकणी में भिन्नता प्राप्त हुई है।

परंतु कुछ ऐसे उदाहरण हैं जहाँ दोनों वाक्यों में संयुक्त क्रिया का प्रयोग होने पर अर्थ साम्य भी प्राप्त होता है और वाक्य भी भद्दा नहीं लगता, जैसे :–

हिंदी	कोंकणी
(१) सीता पढती रहती है।	सीता वाचत रावता.
(२) वह काम करने लगा।	तो काम करूंक लागलो.
(३) उसे आम खाना पडा।	ताका आमो खावचो पडलो.
(४) राम निबंध लिख सकता है।	राम निबंध बरौंक शकता.

इस प्रकार कुछ संयुक्त क्रियाएँ हिंदी तथा कोंकणी में समान हैं।

× × ×

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी की संयुक्त क्रियाओं की विवेचन से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी तथा कोंकणी में संयुक्त क्रियाएँ उपलब्ध हैं।
(२) हिंदी में संयुक्त क्रियाओं की मुख्य क्रियाओं में कभी–कभी प्रत्यय नहीं लगता

(जैसे :– ' वह दौड सकता है । ' आदि) तो कोंकणी में सभी संयुक्त क्रियाओं के मुख्य क्रिया में प्रायः प्रत्यय लगता है (जैसे :– ' तो धांवूं शकता.' आदि) ।

(३) हिंदी तथा कोंकणी संयुक्त क्रियाओं का विकास संस्कृत से प्राप्त है ।

संक्षेप में –

(१) हिंदी तथा कोंकणी में तत्सम, तद्भव, देशी, विदेशी धातुएँ प्राप्त हैं ।
(२) काल–रचना में, हिंदी में √हो, √रह तो कोंकणी में √आस, √जा के रूपों का सहायक रूप में प्रयोग होता है ।
(३) काल–रचना में कृदन्त रूपों का प्रयोग होता है । इसलिए हिंदी में ' ता, आ, या, ना' आदि तो कोंकणी में ' तो, ता, लो, चो, प ' आदि प्रत्ययों का उपयोग किया जाता है ।
(४) संस्कृत तिङन्त रूपों से विकसित मूल काल हिंदी में दो तो कोंकणी में तीन हैं ।
(५) हिंदी तथा कोंकणी के आज्ञार्थ में विशेष रूप प्राप्त हैं जो आपस में भिन्न हैं ।
(६) केवल कृदन्त रूपों से बननेवाले हिंदी में तीन काल हैं तो कोंकणी में आठ काल हैं ।
(७) हिंदी के भविष्यकाल के समान कोंकणी में कोई काल नहीं है । यदि इसकी तुलना करना ही चाहे तो दो प्रत्ययों के आधार पर बने कोंकणी ' नित्शयी भविष्य ' के साथ की जा सकती है ।
(८) कृदन्त और सहायक क्रियाओं से बननेवाले काल हिंदी में दस हैं तो कोंकणी में सात हैं जिनके तेरह प्रकार होते हैं ।
(९) कुल मिलाकर हिंदी में सत्रह काल है तो कोंकणी में इक्कीस ।
(१०) संस्कृत तिङन्त रूपों से विकसित कर्तरि प्रयोग हिंदी में दो कालों तो कोंकणी में तीन कालों में प्राप्त है ।
(११) संस्कृत में भूतकालिक ' त ' से कर्तरि प्रयोग होता है , इससे विकसित कर्तरि प्रयोग हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है ।
(१२) वर्तमानकालिक कृदन्त से होने वाला कर्तरि प्रयोग हिंदी तथा कोंकणी में नयी विधा है ।
(१३) संस्कृत में भूतकालिक ' त ' से कर्मणि प्रयोग होता है, उससे विकसित कर्मणि प्रयोग हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है । अर्थात् ' ने ' प्रत्यय के विकास के संबंध में जो गडबडी है वह इससे दूर होती है ।
(१४) कर्मणि ' तव्य ' प्रत्ययार्थक ' अनीय ' से विकसित ' ना ' प्रत्ययान्त क्रिया के साथ हिंदी में कर्मणि प्रयोग के बदले कर्तरि प्रयोग विकसित है तो कोंकणी में संस्कृत के कर्मणि ' तव्य ' से विकसित ' चो ' प्रत्ययान्त क्रिया के साथ कर्मणि प्रयोग ही होता है ।
(१५) संस्कृत के भावे प्रयोग हिंदी तथा कोंकणी में नहीं है । इनमें जो भावे प्रयोग विकसित हुए हैं वे अपनी–अपनी पद्धति से ; अर्थात् नये हैं । फिर भी कुछ अवस्था में कोंकणी ने संस्कृत का अनुसरण किया है परंतु हिंदी ने नहीं ।
(१६) कर्मवाच्य और भाववाच्य में हिंदी तथा कोंकणी की अपनी अपनी विशेषताएँ हैं ।

(१७) हिंदी तथा कोंकणी के प्रेरणार्थ रूपों में अंतर है।
(१८) नामधातु बनाने की पद्धति में भी अंतर है।
(१९) अनुकरणमूलक धातु के रूप में भी अंतर है, साथ–साथ सकर्मक और अकर्मक की दृष्टि से कुछ भिन्नता है।
(२०) हिंदी तथा कोंकणी की संयुक्त क्रिया की रचना में थोडा–सा अंतर है।
(२१) एवं हिंदी तथा कोंकणी की काल–रचना आदि में क्वचित् साम्य प्राप्त होते हुए भी अंतर प्राप्त है।

परिशिष्ट

कर्तरि , कर्मणि और भावे प्रयोगों के संदर्भ में

कर्तरि,कर्मणि और भावे प्रयोग के संदर्भ में पृ.३६३-३७१ पर की गयी चर्चा के उपरांत ऐसा लगता है कि इन प्रयोगों की संज्ञाओं तथा ' ने ' प्रत्यय के संबंध में जो गडबडी हुई है उसका कोई कारण नहीं है । तिङन्त और कृदन्त रूपों के आधार पर होने वाले संस्कृत के कर्तरि, कर्मणि और भावे प्रयोगों की यदि ठीक तरह से जाँच करें तो यह प्रश्न सरलता से हल हो सकता है । अर्थात् हिंदी में ' कर्तृवाच्य कर्तरि, कर्तृवाच्य कर्मणि, कर्तृवाच्य भावे, कर्मवाच्य कर्मणि , कर्तृवाच्य भावे ' आदि नाम देकर प्रयोगों का भेद दिखाने की आवश्यकता नहीं रह जाती ।

यह बात पहले ही स्पष्ट की जा चुकी है कि संस्कृत के तिङन्त रूपों से विकसित काल हिंदी में दो तो कोंकणी में तीन हैं । परंतु ये सभी काल कर्तरि प्रयोग के तिङन्त रूपों से विकसित हैं । अर्थात् इनका संबंध ' ने ' के साथ नहीं है, क्यों कि संस्कृत में भी इनके साथ कर्तृवाचक ' इन ' प्रत्यय नहीं है । इसके सिवा दूसरी एक बात है कि संस्कृत में सभी कालों में तिङन्त रूपों के साथ व्यवहृत होने वाले कर्मणि और भावे प्रयोग हिंदी तथा कोंकणी में विकसित नहीं हुए हैं । जो ' ने ' से संबंधित होने योग्य हैं ।

संस्कृत ' अत् ' प्रत्ययान्त से विकसित वर्तमानकालिक कृदन्त से बनने वाली वाक्य-रचना हिंदी तथा कोंकणी में कर्तरि प्रयोग में होती है । इसमें भी हिंदी में ' ने ' तथा कोंकणी में ' न / नी ' आदि कारक-चिन्हों का संबंध नहीं है ।

संस्कृत में भूतकालिक ' त ' प्रत्यायान्त कृदन्त की स्थिति तीन प्रकार से प्राप्त होती है :– अकर्मक कर्तरि प्रयोग, कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग । इनमें से हिंदी तथा कोंकणी में पहले दो प्रकार प्राप्त होते हैं :– अकर्मक कर्तरि प्रयोग और कर्मणि प्रयोग । तीसरा प्रकार केवल हिंदी में प्राप्त है तो कोंकणी में प्राप्त नहीं । अकर्मक कर्तरि प्रयोग में, हिंदी में ' ने ' तथा कोंकणी में ' न / नी ' आदि कारक-चिह्न प्राप्त नहीं हैं; क्यों कि संस्कृत के इस प्रयोग में भी कर्तृवाचक ' इन ' कारक-चिह्न प्राप्त नहीं है । हिंदी तथा कोंकणी के कर्मणि प्रयोग में कर्तृवाचक कारक-चिह्न (हिं. ' ने ' तथा कों. ' न/नी ' आदि) जो प्राप्त हैं, मूलतः संस्कृत से विकसित हैं । कुछ अपवादात्मक प्रसंग में हिंदी में ' ने ' तथा कोंकणी में ' न / नी ' आदि का प्रयोग नहीं होता है । तब इसका सकर्मक कर्तरि प्रयोग में रूपान्तर होता है । हिंदी में भावे प्रयोग प्राप्त होने वाली बात जो ऊपर कही है वह कुछ ही अपवादात्मक धातुओं के संबंध में, अर्थात् यहाँ कर्तृवाचक ' ने ' चिह्न प्राप्त होता है, जैसे :– ' राम ने नहाया । '; ' हरि ने खाँसा । '; आदि । कोंकणी में तो इस प्रकार का भावे प्रयोग प्रायः प्राप्त नहीं है, अर्थात् यहाँ कर्तृवाचक ' न / नी ' आदि का प्रश्न ही नहीं उठता ।

विध्यर्थक ' अनीय ' प्रत्ययान्त से विकसित ' ना ' प्रत्यायान्त रूपों के साथ हिंदी में कर्मणि या भावे प्रयोग होना चाहिए था वहाँ कर्तरि प्रयोग हुआ है जो हिंदी में नये रूप में विकसित है । कोंकणी में इसका अभाव है ।

विध्यर्थक ' तव्य ' प्रत्ययान्त से विकसित ' चो ' या ' प ' प्रत्ययान्त रूपों के साथ कोंकणी में कर्मणि और भावे दोनों प्रयोग विकसित हैं जो मूलतः संस्कृत में भी ' तव्य ' प्रत्ययान्त के साथ प्राप्त हैं । इन दोनों प्रयोगों में कोंकणी में ' न ' आदि कारक-चिह्न प्राप्त होते हैं । हिंदी में इनका अभाव है ।

अत एव ' ने ' आदि कारक-चिह्न युक्त वाक्य-रचना कर्मणि तथा भावे प्रयोग की मानने में आपत्ति नहीं होगी ।

अत एव ' ने ' को अन्य किसी शब्द से व्युत्पन्न करने के बदले उसका विकास संस्कृत के कर्तृवाचक तृतीया विभक्ति के ' इन(एन) ' से दिखाना आवश्यक है और यह बात पूर्व ही स्पष्ट की जा चुकी है (देखिए, पृ. १५९ तथा परिशिष्ट पृ. १७२) ।

रही बात ' राम ने सीता को देखा । ' आदि वाक्य-रचनाओं की (देखिए पृ. ३७० पर तीसरा परिच्छेद) । हिंदी के इन प्रयोगों की स्थिति असामान्य है । फिर भी इनमें से ' राम ने सीता को देखा । ' ; ' सीता ने राम को देखा । ' ; ' अनिल ने मोहन को पढाया था । ' ; ' राम ने संध्या को पढाया । ' ; ' अंजनी ने वीणा को बुलाया । ' वाक्यों को नयी विधा के रूप में स्वीकार कर केवल ' भावे प्रयोग ' संज्ञा से पहचाना जा सकता है । इसके लिए ' कर्तृवाच्य भावे प्रयोग ' नाम से पहचानने की आवश्यकता नहीं दीखती, क्यों कि यहाँ भी ' कर्तृवाच्य ' शब्द अर्थ की दृष्टि से ज्ञान नहीं करा देता ।

इतने प्रदीर्घ विवेचन के उपरांत भी हिंदी में वाच्यों और प्रयोगों के लेकर निर्माण की हुई गडबडी समाप्त नहीं हो जाती । अतः निम्नलिखित बात पर भी अवश्य सोचना चाहिए ।

ऊपर कथित प्रयोगों के सिवा हिंदी में एक दूसरे प्रकार के प्रयोग का विकास हुआ जो ' से ' कारक-चिह्न युक्त है , जैसे :– ' राम से पुस्तक पढी जाती है । ' ; ' सीता से खत भेजा गया है । ' ; ' हरि से खत भेजे जाएँगे । ' ; ' नरसिंह से कहानी बतायी जाएगी । ' (और उदाहरणों के लिए देखिए पृ. ३७० , परिच्छेद ३ , :– ' अनिल से आम खाया जाता है । ' ; आदि) । अतः इस ' से ' प्रत्यय तथा इससे बनने वाले प्रयोगों का विचार करना आवश्यक है ।

बीम्स के अनुसार ' से ' का विकास ' समं ' से है । संस्कृत में ' समं ' का संबंध तृतीया विभक्ति से है, जैसे :– ' सीता रामेण समं वनं गच्छति (= सीता राम के साथ वन जाती है)।' ; ' आहो निवत्स्यति समं हरिणाङ्गनाभिः (= ऐं, वह हरिण स्त्रियों के साथ वास करेगा)।'; आदि । इन वाक्यों में ' रामेण ' और ' हरिणाङ्गनाभिः ' शब्द तृतीया विभक्ति के रूप हैं । यहाँ पाणिनीय ' सहयुक्तेऽप्रधाने (२।३।१९)' सूत्र के आधार पर

‘ अप्रधान कर्ता ’ के अर्थ में तृतीया विभक्ति हुई है । इससे स्पष्ट है कि ‘ समं ’ अव्यय क संबंध ‘ अप्रधान कर्ता ’ के साथ होता है । परंतु ‘ समं ’ से ‘ से ’ कारक-चिह्न विकसि होने के बाद उसका व्यवहार प्रायः करण कारक में होने लगा । इसका प्रारंभ अपभ्रंश दीखता है । इसके लिए अपभ्रंश का एक उदाहरण देखिए :– ‘ काइसउ झांखइ (= किर से झंखती है) ’। करण कारक में विकसित इस ‘ से ’ के कारण संस्कृत के कर्ता तथ करण कारक में प्रयुक्त होने वाली तृतीया विभक्ति के ‘ इन ’ से विकसित ‘ ने ’ क व्यवहार केवल कर्ता कारक में होने लगा । अर्थात् करण कारक ‘ से ’ के कारण ‘ ने ’ क करण कारकत्व छुट गया । इस प्रकार हिंदी में कर्ता कारक के लिए ‘ ने ’ तो करण कारव के लिए ‘ से ’ अलग-अलग दो कारक-चिह्न विकसित हुए जो हिंदी के अपने हो गये परंतु यहाँ हम एक बात भूल गये जिससे प्रयोगों के नामाभिधान में गडबडी शुरू हुई संस्कृत के ‘ सीता रामेण समं वनं गच्छति । ’ वाक्य में ‘ रामेण ’ शब्द में जो अप्रधान कर्तृत्व था वह ‘ इन (एन)’ प्रत्यय का लोप होने पर ‘ राम ’ शब्द से भी लुप्त होने दिया । परंतु ‘ समं ’ से विकसित ‘ से ’ के कारण उसका अप्रधान कर्तृत्व जैसे-के-वैसे बन रखना चाहिए था । क्यों कि उपर्युक्त संस्कृत वाक्य में ‘ समं ’ के कारण ‘ राम ’ शब्द में जो अप्रधान कर्तृत्व आया था उसके लिए ‘ इन ’ प्रत्यय द्योत्य था । अतः संस्कृत ‘ समं ’ से विकसित ‘ से ’ के कारण हिंदी वाक्य रचना में स्थित ‘ राम ’ शब्द में भी अप्रधान कर्तृत्व बनाये रखने के लिए ‘ से ’ को अधिकार देना चाहिए था । मतलब यह है कि ‘ से ’ को अप्रधान कर्तृत्व के रूप में स्वीकारना आवश्यक था । यहाँ ‘ ने ’ प्रत्यय नहीं आ सकता क्यों कि ‘ ने ’ प्रत्यय ‘ स्वतंत्रः कर्ता (पा. सू. क्र. १।४।५४) ’ और ‘ स्वातंत्र्यमिह प्राधान्यमिति भाष्ये ’ के आधार पर प्राधान्य जहाँ है वहीं होने लगा था । अतः ‘ से ’ युक्त वाक्य रचना को हिंदी की नयी विकसित धारा मानकर उपर्युक्त ‘ राम से पुस्तक पढी जाती है । ’ आदि वाक्यों की उपपत्ति लगायी जा सकती है । यहाँ ‘ राम से ’ शब्द में अप्रधान कर्तृत्व है , जो संस्कृत में ‘ समं ’ के साथ था । इससे ‘ ने ’ युक्त और ‘ से ’ युक्त वाक्य-रचनाओं में प्राप्त क्रियाओं का फर्क भी अच्छी तरह से समझाया जा सकता है ।

इस प्रकार हिंदी में कर्ता कारक में दो कारक-चिह्न मानना चाहिए ‘ ने ’ और ‘ से ’ । इनमें प्रधान कर्ता के अर्थ में ‘ ने ’ और अप्रधान कर्ता के अर्थ में ‘ से ’ को मानना आवश्यक है । इसके सिवा इस ‘ से ’ में एक दूसरा भी अर्थ होगा (जो अपभ्रंश काल में ‘ से ’ में प्राप्त हुआ था) वह है ‘ करण कारकत्व ’ । यह ‘ ने ’ से छुटा था । ‘ से ’ का तीसरा अर्थ एक और होगा ‘अपादान कारकत्व ’ । इसमें कारकान्तर होने के कारण अपादान कारक ‘ से ’ की उत्पत्ति अन्य किसी शब्द से सोचना आवश्यक है । इसके लिए ‘ तस् (तः) ’ का विचार होना चाहिए ।

परंतु कोंकणी में बात अलग हुई । संस्कृत के कर्ता और करण कारक में स्थित तृतीया विभक्ति के ‘ इन(एन)’ प्रत्यय से ‘ न ’ विकसित हुआ और उसका व्यवहार कोंकणी में

कर्ता और करण कारक में होने लगा । हिंदी की तरह कोंकणी में कर्ता और करण रक के लिए अलग-अलग कारक-चिह्न विकसित नहीं हुए हैं , देखिए :–

हिंदी :– राम ने बाण से वृक्ष काटा ।
कोंकणी :– रामान बाणान रूख कापलो.

अर्थात् कोंकणी में संस्कृत ' समं ' से विकसित कारक-चिह्न नहीं है ।

उपर्यक्त विवेचन से यह बात निश्चित है कि संस्कृत में ' इन ' प्रत्यय कर्ता और रण कारक में जिस प्रकार प्रयुक्त है उसी प्रकार ' समं ' से विकसित ' से ' को केवल रण कारक अर्थ में ही जोडने के साथ-साथ कर्ता कारक के नये अर्थ में भी जोड देते तो दी में ' वाच्य ' और ' प्रयोग ' को लेकर निर्माण की गयी सारी कठिनाइयाँ आसानी से न हो जातीं । अतः लगता है कि ' से ' का विकास ' समं ' से मानें और उसका संबंध र्ता और करण कारक अर्थ के साथ जोडने का अवश्य प्रयत्न करें, जिससे ' से ' ारक-चिह्न युक्त वाक्य कर्मणि प्रयोग में मानने में किसी प्रकार की दुविधा नहीं रहेगी । ' ' को केवल करण कारक का कारक-चिह्न मानने से यह आपत्ति प्राप्त है । इस आपत्ति ो दूर करने के लिए संस्कृत ' इन ' की तरह ' से ' को भी कर्ता और करण कारक ानना चाहिए । अर्थात् ' राम ने बाण से रावण मारा । ' वाक्य में ' राम ने ' कर्ता कारक ो ' बाण से ' करण कारक है । इसी प्रकार ' राम से बाण से रावण मारा गया । ' वाक्य ं ' राम से ' कर्ता कारक तो ' बाण से ' करण कारक होगा । इसके लिए संस्कृत उदाहरण भी देखिए :– ' रामेण बाणेन रावणः हतः । ' ; आदि । इस वाक्य में एक ही इन ' प्रत्यय कर्ता कारक ' रामेण ' और करण कारक ' बाणेन ' में दिखायी देता है ।

' राम ने पुस्तक पढी । ' और ' राम से पुस्तक पढी गयी । ' वाक्यों में ' राम ने ' और ' राम से ' दोनों कर्ता कारक हैं । अतः दोनों वाक्यों को कर्मणि प्रयोग में मानना उचित है । यहाँ कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य जैसी गडबड नहीं करनी चाहिए । क्यों कि इन दोनों वाक्यों में ' पढी ' और ' पढी गयी ' क्रियाओं से कर्म ही वाच्य है न तु कर्ता । अतः ' राम ने पुस्तक पढी । ' वाक्य को ' कर्तृवाच्य कर्मणि प्रयोग ' बताना ठीक नहीं लगता । इस वाक्य को संस्कृत के आधार पर केवल ' कर्मणि प्रयोग ' में मानना ही उचित है ; क्यों कि इस प्रकार की वाक्य-रचना संस्कृत की परंपरा से ही प्राप्त है । इसी प्रकार ' राम से पुस्तक पढी गयी । ' वाक्य को ' कर्मवाच्य कर्मणि प्रयोग ' में मानना ठीक जँचता नहीं । इस 'से' प्रत्यय युक्त वाक्य को भी केवल ' कर्मणि प्रयोग ' ही मानें ; इसलिए कि यह हिंदी की अपनी विधा है जो सर्वथा नयी है ।

अत एव ' अनिल ने मोहन को बुलाया । ' वाक्य, जो हिंदी में भावे प्रयोग के उदाहरण में दिया जाता है, ठीक जँचता है; क्यों कि यह प्रयोग हिंदी का अपना है जो सर्वथा नये रूप में विकसित है । इस भावे प्रयोग को संस्कृत के भावे प्रयोग के आधार पर सिद्ध नहीं किया जा सकता । संस्कृत में तो तिडन्त तथा कृदन्त रूपों के आधार पर एक ही

प्रकार से भावे प्रयोग होता है , जैसे :– ' रामेण सुप्यते / सुप्तम् । ' ; ' कृष्णेन स्थीयते / स्थितम् ।' ; आदि । हिंदी में तो भावे प्रयोग चार प्रकार से प्राप्त है, जैसे :– (i) राम ने नहाया । ; (ii) राम ने मोहन को बुलाया । ; (iii) राम से हँसा जाता है । ; (iv) राम से मोहन को बुलाया गया । ; आदि । इनमें क्रमांक (i) का वाक्य ही केवल संस्कृत की परंपरा से प्राप्त है । शेष तीनों प्रकारों में से वाक्य क्रमांक (iii)और (iv) को थोडे समय के लिए दूर रखा जाए (क्यों कि इन ' से ' युक्त वाक्यों के बारे में हम अभी तक दुविधा में हैं) तो भी क्रमांक (ii) के वाक्य को हिंदी में भावे प्रयोग में नयी विधा के रूप में स्वीकारना आवश्यक है और ऐसा स्वीकृत भी है । अत एव ' राम ने सीता को देखा । ' ; ' सीता ने राम को देखा । ' ; ' अनिल ने मोहन को पढाया । ' ; ' राम ने संध्या को पढाया । ' ; ' अंजनी ने वीणा को बुलाया । ' आदि वाक्य भावे प्रयोग में उपपन्न होते हैं । अतः ' राम से रावण मारा गया । ' वाक्य भी कर्मणि प्रयोग में नयी विधा के रूप में स्वीकारना आवश्यक है । अत एव ' अनिल से आम खाया जाता है । ' ; ' अनिल से रोटी खायी गयी । ' ; ' मुझसे यह बात नहीं की जाएगी । '; ' उनसे हम (पु.) बुलाये जाएँगे । ' ; ' उनसे हम (स्त्री.) बुलायी जाएँगी । '; ' गीता से मैं (स्त्री.) बुलायी जाऊँगी ।'; ' राम से बाण से रावण मारा गया । ' आदि वाक्य कर्मणि प्रयोग में उपपन्न होते हैं ।

इससे ' कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य, भाववाच्य ' शब्दों को ' कर्तरि प्रयोग, कर्मणि प्रयोग, भावे प्रयोग ' शब्दों के पूर्व जोडने की आवश्यकता नहीं रहती ।

उपर्युक्त बात ठीक तरह से समझ में आने के लिए निम्नलिखित कुछ वाक्यों और उनके स्पष्टीकरण पर गौर करना जरूरी है –

(१) ' राम सीता को देखता है । ' ; ' राम सीता को देख रहा है ।'; ' राम सीता को देखेगा । ' जैसे वाक्य हिंदी में ' कर्तृवाच्य कर्तरि प्रयोग ' के कहे जाते हैं । परंतु इन वाक्यों में प्राप्त ' देख ' धातु की क्रिया-रूपों से कर्ता ' राम ' उक्त है , अर्थात् वही वाच्य है । इसलिए ' राम ' शब्द और ' देखता है ' , ' देख रहा है ' , ' देखेगा ' में परस्पर संबंध है । इसी कारण कर्तृवाचक ' राम ' के अनुरूप क्रियाएँ पुल्लिंग एकवचन में हैं और क्रियाओं के अनुरूप ' राम ' शब्द पुल्लिग एकवचन में है । इसे ही ' वाच्य कर्ता ' कहना चाहिए न कि ' कर्तृवाच्य ' ।(वास्तव में यहाँ ' कर्तृवाच्य ' शब्द का व्यवहार गलत है जिसका इस संदर्भ में ठीक तरह से अर्थ-बोध नहीं होता है।) इस प्रकार कर्ता जब वाच्य होता है तभी उसे ' कर्तरि प्रयोग ' कहा जाता है । अतः उपर्युक्त वाक्यों को ' कर्तृवाच्य कर्तरि प्रयोग ' कहना ठीक जँचता नहीं । इनके लिए केवल ' कर्तरि प्रयोग ' शब्दों का ही उपयोग करना ठीक लगता है ।

(२) ' राम ने सीता देखी । ' ; ' राम ने सीता देखी है । ' ; ' राम ने सीता देखी थी । ' जैसे वाक्य हिंदी में ' कर्तृवाच्य कर्मणि प्रयोग ' के कहे जाते हैं । परंतु इन वाक्यों में प्राप्त ' देख ' धातु की क्रियाओं से कर्म ' सीता ' उक्त है , अर्थात् वही वाच्य है । इसलिए ' सीता ' शब्द और ' देखी ' , ' देखी है ' , ' देखी थी ' का आपस में संबंध है । इसी

कारण कर्म वाचक ' सीता ' के अनुरूप क्रियाएँ स्त्रीलिंग एकवचन में हैं और क्रियाओं के अनुरूप ' सीता ' शब्द स्त्रीलिंग एकवचन में है । इसे ही ' वाच्य कर्म ' कहना चाहिए । अतः ' सीता ' शब्द को यहाँ ' वाच्य कर्म ' कहना चाहिए न तु ' कर्मवाच्य '।(वास्तव में यहाँ ' कर्मवाच्य ' शब्द का व्यवहार गलत है क्यों कि इस संदर्भ में उसका ठीक तरह से अर्थ-बोध नहीं हो पाता।) इस प्रकार कर्म जब वाच्य होता है तभी उसे ' कर्मणि प्रयोग ' कहा जाता है । अतः ' राम ने सीता देखी । ' जैसे वाक्यों को ' कर्तृवाच्य कर्मणि प्रयोग ' कहने की कोई आवश्यकता नहीं है । ऐसे वाक्यों को केवल ' कर्मणि प्रयोग ' शब्दों से पहचानना ठीक जँचता है । हिंदी का यह कर्मणि प्रयोग संस्कृत के कृदन्त से बनने वाले कर्मणि प्रयोग से विकसित है ।

(३) इसी प्रकार ' राम से सीता देखी गयी । ' ; ' राम से सीता देखी गयी है । ' ' राम से सीता देखी गयी थी । ' ; ' राम से सीता देखी जाती है । ' ; ' राम से सीता देखी जाएगी । ' जैसे वाक्य हिंदी में ' कर्मवाच्य कर्मणि प्रयोग के ' माने जाते हैं । परंतु ये वाक्य भी ' कर्मणि प्रयोग ' के ही हैं । क्यों कि इन वाक्यों में स्थित क्रियाओं ' देखी गयी ' , ' देखी गयी है ' , ' देखी जाएगी ' से ' सीता 'ही उक्त है , अर्थात् वही वाच्य है । यहाँ भी उपर्युक्त ' राम ने सीता देखी । ' आदि वाक्यों की तरह कर्म ' सीता ' और ' देखी जाती है ' आदि क्रियाओं का आपस में संबंध है । अतः दोनों में लिंग और वचन की दृष्टि से एकरूपता है । अतः यहाँ भी ' सीता ' शब्द को ' वाच्य कर्म ' कहना चाहिए न कि ' कर्मवाच्य ' । अतः उपर्युक्त प्रकार से जब यहाँ भी क्रिया से कर्मवाचक ' सीता ' शब्द वाच्य होता है तब उसे ' कर्मणि प्रयोग ' कहना ही उचित लगता है । अतः ' राम से सीता देखी गयी । ' जैसे वाक्यों को ' कर्मवाच्य कर्मणि प्रयोग ' और ' राम ने सीता देखी । ' जैसे वाक्यों को ' कर्तृवाच्य कर्मणि प्रयोग ' कहना उचित नहीं है ।

उपर्युक्त परिच्छेद क्रमांक (२) में दिखाये ' राम ने सीता देखी ।' आदि और परिच्छेद क्रमांक (३) में दिखाये ' राम से सीता देखी गयी ।' आदि वाक्यों में ' ने ' और ' से ' का फर्क है । इन वाक्यों में ' देखी ' और ' देखी गयी ' आदि क्रियाओं में यद्यपि रचना की दृष्टि से भिन्नता है फिर भी इसमें कोई विवाद नहीं होगा कि दोनों क्रियाएँ ' सीता ' शब्द को ही प्राधान्य देती हैं । अतः ' सीता ' शब्द ही इन क्रियाओं से वाच्य है । यहाँ भी ' ने ' की तरह ' से ' को भी कर्ता का कारक-चिह्न मान लिया जाए तो ' राम ने सीता देखी । ' वाक्य की तरह ' राम से सीता देखी गयी । ' वाक्य भी कर्मणि प्रयोग में मानना सर्वथा संभव है । इसीलिए यह मानना आवश्यक हो जाता है कि कर्तृवाचक ' से ' कारक-चिह्न युक्त वाक्य का प्रयोग हिंदी की अपनी रचना है जो शुद्ध नयी है । यह वाक्य-रचना संस्कृत से विकसित है परंतु भिन्न प्रकार से ।

इसलिए हिंदी में दो प्रकार का कर्मणि प्रयोग मानना आवश्यक है , :– (i) ' ने ' कारक–चिह्न युक्त और (ii) ' से ' कारक-चिह्न युक्त । पहला कर्मणि प्रयोग केवल ' आ ' अथवा ' या ' प्रत्ययान्त भूतकालिक क्रियाओं से संबंधित होता है जो केवल छह

कालों में प्राप्त होता है ; परंतु इसमें ' जाना ' सहायक क्रिया के रूप नहीं होते हैं , जैसे :– ' राम ने ग्रंथ पढा/पढा है /पढा था / पढा होगा ' ; आदि । दूसरा कर्मणि प्रयोग सब कालों में होता है जिसमें ' जाना ' क्रिया के सभी कालों के रूप सहायक क्रिया में प्रयुक्त होते हैं और मुख्य क्रिया के रूप में ' आ ' अथवा ' या ' प्रत्ययान्त भूतकालिक रूप का प्रयोग होता है , जैसे :– ' राम से ग्रंथ पढा जाता है / पढा गया / पढा गया है / पढा गया था / पढा गया होगा / पढा गया हो / पढा जाएगा / पढा जा रहा है / पढा जा रहा था । '; आदि । इनमें प्राप्त भूतकालिक ' पढा ' रूप भी इसका प्रमाण है कि ' राम से रावण मारा गया । ' वाक्य कर्मणि प्रयोग का ही है । केवल इस कर्मणि प्रयोग का स्वरूप थोडा-सा अवश्य बदला है फिर भी इसे कर्मणि प्रयोग माने बिना नहीं रहा जाता ।

जब कर्तृवाचक ' से ' युक्त वाक्य में कर्म में ' को ' प्रत्यय लगेगा तब उस वाक्य को ' भावे प्रयोग ' के मानने में किसी को आपत्ति नहीं होगी , जैसे :– ' राम से सीता को बुलाया जाता है (नया ' भावे प्रयोग ')।

इससे ' वाच्य ' और ' प्रयोग ' को लेकर निर्माण की गयी कठिनाइयाँ समाप्तप्राय हो जाती हैं ।

अर्थात् ' से ' प्रत्यय युक्त कर्मणि प्रयोग हिंदी की अपनी कृति है जो कोंकणी में प्राप्त नहीं है । अत एव ' रामान सीता पळेली वता . '; ' रामान सीतेक पळेली गेली. ' ; ' रामाकडच्यान सीता पळेली वता / गेली ' सदृश प्रयोग कोंकणी में उपलब्ध नहीं है ।

' राम ने सीता को देखा । ' वाक्य हिंदी में भावे प्रयोग का है जो ऊपर ' अनिल ने मोहन को बुलाया । ' वाक्य के समान है ।

अभी रह जाती है बात इन वाक्यों के संबंध में :– ' सिपाही मारा जाता है ।'; ' सभी सिपाही मारे गये । ' ; ' राम से हँसा जाता है । ' ; ' तुझसे चला जाता है । '; आदि । इनमें प्रथम दो वाक्यों को ' कर्मवाच्य ' तो अन्तिम दो वाक्यों को ' भाववाच्य भावे प्रयोग ' के माना जाता है ।

इस प्रकार ' वाच्य ' शब्द को लेकर यहाँ भी कोई गडबडी करने की आवश्यकता नहीं है । अतः उपर्युक्त चारों वाक्यों में से प्रथम दो वाक्यों के बारे में पहले सोचें ।

ऐसा लगता है कि ' सिपाही मारा जाता है । ' और ' सभी सिपाही मारे गये । ' दोनों वाक्य ' कर्मकर्तरि प्रयोग ' के हैं ; और इसके लिए हिंदी में ' कर्मकर्तरि ' नामक प्रयोग को स्वीकारना नितांत आवश्यक है । वैसा तो यह नया नहीं है । यह संस्कृत में भी रूढ है ।

संस्कृत में, कर्मकर्तरि प्रयोग में मूल कर्ता अविवक्षित होता है और तब अन्य कारकान्त शब्द भी कर्तृ-संज्ञा को प्राप्त होकर अपना कर्तृकारक रूप धारण करते हैं (यदा सौकर्यातिशयं द्योतयितुं कर्तृव्यापारो न विवक्ष्यते तदा कारकान्तराण्यपि कर्तृसंज्ञां लभन्ते स्वव्यापारे स्वतन्त्रत्वात्) । इसमें कर्म को भी कर्तृ-संज्ञा प्राप्त होती है । फिर भी वह नया

र्तृसंज्ञक शब्द कभी-कभी कर्मवत् होता है। जब ऐसा होता है तब भी क्रिया और कर्मवत् र्ता का संबंध कायम बना रहता है जिससे क्रिया का रूप कर्म के अनुसार होता है , जैसे – ' रामः ओदनं पचति । ' वाक्य के मूल कर्ता ' राम ' की अविवक्षा होने से कर्मवाचक ' ओदन ' को अपने व्यापार में स्वातंत्र्य मिलने के कारण (स्वव्यापारे स्वतन्त्रत्वात्) कर्तृत्व ाप्त होता है ; फिर जब उसका कर्तृत्व अबाधित रखेंगे तो ' ओदनः पचति (अकर्मक कर्तरि प्रयोग) । ' होगा और जब उसके कर्तृत्व को ' कर्मवत्व (कर्मवत्कर्मणा तुल्यक्रियः पा. सू. ३।१।८७) ' प्राप्त होगा तो ' ओदनः पच्यते । ' वाक्य होगा, जो ' कर्मकर्तरि ायोग ' में होता है।

इसी प्रकार ' सिपाही मारा गया । ' और ' सभी सिपाही मारे गये । ' वाक्य ' कर्मकर्तरि प्रयोग ' के मानने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

अन्तिम दो वाक्यों ' राम से हँसा जाता है । ' और ' तुझसे चला जाता है । ' को केवल ' भावे प्रयोग ' के माना जा सकता है ; क्यों कि ' राम से सीता देखी जाती है । ' आदि उपर्युक्त प्रकार के वाक्यों में ' से ' युक्त संज्ञा या सर्वनाम को जिस प्रकार कर्तृवाचक माना है उसी प्रकार यहाँ भी ' राम से ' और ' तुझसे ' शब्दों को कर्तृवाचक मानने में आपत्ति नहीं है । इन कर्तृवाचक शब्दों का क्रिया से संबंध नहीं है । अर्थात् यहाँ क्रिया केवल ' भाववाच्य ' होकर स्वतंत्र रूप में प्राप्त है। यहाँ ' भाववाच्य ' शब्द को लेकर फिर से कोई गडबड न करें ; क्यों कि ' भाववाच्य ' होने का तात्पर्य ही ' भावे प्रयोग ' है। अत एव लगता है कि ' वाच्य ' शब्द का हमें ठीक तरह से अर्थ समझ लेना चाहिए, ताकि इसी शब्द के कारण सारी गडबडी शुरू हो गयी है।

अत एव हिंदी के वाक्य-रचनाओं के प्रयोगों को दिये हुए नामों तथा उनकी रूपरेखाओं के संबंध में फिर से विचार करना नितान्त आवश्यक है । जिस प्रकार वर्तमानकालिक शतृ प्रत्ययान्त कृदन्त ' चलता , करता ' से विकसित प्रयोग को हिंदी की अपनी नयी विधा मानी जाती है उसी प्रकार कर्मणि तथा भावे प्रयोगों की विशिष्ट वाक्य-रचनाओं को भी हिंदी की नयी विधाएँ मान लेना उचित है। उससे लगता है कि यह गडबडी प्रायः समाप्त हो जाएगी।

प्रयोगों के संदर्भ में एक और बात कहना उचित लगता है। हिंदी के ' लडके को आम चाहिए । ' वाक्य के संबंध में भी फिर से सोचना चाहिए। यहाँ ' लडके को ' कर्ता कारक तो ' आम ' को कर्म कारक मानते हैं परंतु लगता है कि यहाँ ' आम ' कर्ता है तो ' लडको को ' कर्म कारक है।

इसी प्रकार हिंदी के और कुछ वाक्य हैं, जैसे :– (१) ' राम को घर जाना चाहिए ।'; (२) ' राम को जाना है ।' ; (३) ' उसको खाँसी थी । '; आदि। इन वाक्यों को लेकर नये सिरे से कुछ विचार प्रस्तुत करना चाहता हूँ। परंतु ' ईश्वरेच्छा बलीयसी ' न्याय के अनुसार यह बात भगवान के भरोसे पर ही छोड देता हूँ ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २८८
२) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. ३३७
३) डा. हार्नले – 'हिंदी रूट्स', जर्नल आफ द एशियाटिक सोसायटी आफ् बंगाल १८८०, भाग १, पृ. ४१ से ८० तक
४) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २४०
५) डा. हरदेव बाहरी – हिंदी : उद्भव, विकास और रूप, पृ. १७७
६) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २९३
डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४८९, परि. क्र. ४०१
७) श्री वालावलीकर – कोंकणिची व्याकरणी बांदावळ, पृ. ७
८) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २५१
डा. श्यामसुंदरदास – हिंदी भाषा, पृ. १५१
९) डा. हरदेव बाहरी – हिंदी : उद्भव, विकास और रूप, पृ. १८०
१०) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २९४
११) डा. श्यामसुंदर दास – हिंदी भाषा, पृ. १५२
१२) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २५२
१३) डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४८९
१४) श्री लक्ष्मीनारायण शर्मा एवं बीरबल शर्मा – कच्चायन व्याकरण, पृ. ३१० सू. क्र. ५५७
१५) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. ३२१
१६) श्री वामन शिवराम आपटे – संस्कृत-हिंदी-कोश, पृ. १६६
१७) डा. नामवरसिंह – हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ. १३७
१८) श्री कामताप्रसाद गुरु – हिंदी व्याकरण, पृ. २८३
१९) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २५२
२०) वही, पृ. २५३
२१) प्रा. कृष्णाजी पां. कुळकर्णी – भाषाशास्त्र आणि मराठी भाषा, पृ. २१९
२२) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २५४
२३) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा का सरल व्याकरण, पृ. ११७
२४) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २९३
२५) डा. चटर्जी – भारतीय आर्यभाषा और हिंदी, पृ. १४०
२६) प्रा. कृष्णाजी पां. कुळकर्णी – भाषाशास्त्र आणि मराठी भाषा, पृ. २१९
२७) वही, पृ. २२०
२८) डा. तुळपुळे – यादवकालीन मराठी भाषा, पृ. २९३
२९) डा. हार्नले – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द गौडियन लैंग्वेजेस्, पृ. १५३
३०) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २४८
३१) वही, पृ. २४८
३२) श्री वालावलीकर – कोंकणिची व्याकरणी बांदावळ, पृ. १५४
३३) "आमची भास – चवथें पुस्तक", पृ. ४०
३४) वही, पृ. ४१
३५) वही, पृ. ४०
३६) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २९७
३७) वही, पृ. २९८
३८) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २५६
३९) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा का सरल व्याकरण, पृ. १४३, १४०

०) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. ३००
डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४८६
१) बीम्स – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द मार्डर्न आर्यन लैंग्वेजेस् आफ इंडिया, भाग ३,परि. क्र. ३३
२) डा. भोलानाथ तिवारी हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २५७
३) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. ४८०
डा. रामअवध पांडेय तथा श्री रविनाथ मिश्र – पालि-प्राकृत-अपभ्रंश, परिशिष्ट ग, पृ. ४९
४४) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. २६८
४५) श्री वालावलीकर – कोंकणिची व्याकरणी बांदावळ, पृ. २५७
४६) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २५७
४७) वही, पृ. २५९
४८) श्री खण्डेराव सुळे तथा श्री नरेंद्र नायक – सुगम हिंदी व्याकरण, पृ. १२७, १४१
४९) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २९८
५०) श्री खण्डेराव सुळे तथा श्री नरेंद्र नायक – सुगम हिंदी व्याकरण, पृ. १२७, १४१
५१) पेलु पाद्री थोमझ(स्) इस्तेव्ह – ग्रामातिक द लिंगु कोंकानी, पृ. ३९
रिटा ई. सौझा – एलिमेन्टास ग्रामातिसैस् द लिंगु कोंकानी, पृ. ११३
५२) श्री वालावलीकर – कोंकणिची व्याकरणी बांदावळ, पृ. १४७
५३) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा का सरल व्याकरण, पृ. १३१
५४) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. २६८
५५) श्री वालावलीकर – कोंकणिची व्याकरणी बांदावळ, पृ. ११२
५६) वही, पृ. १३१
५७) "आमची भास – सवें पुस्तक", पृ. २८
५८) 'कुळागर (पत्रिका)', वर्स १, अंक ३, पृ. ६
५९) श्री वालावलीकर – कोंकणिची व्याकरण बांदावळ, पृ. १३४
६०) वही, पृ. १०८
६१) वही, पृ. ११९
६२) ज्झूल ब्लाक – भारतीय आर्यभाषा ('ल आँदो इरिया' का हिंदी अनुवाद), पृ. ३११
श्री वालावलीकर – कोंकणिची व्याकरणी बांदावळ, पृ. ११९, १२०
६३) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २६०
६४) श्री वालावलीकर – कोंकणिची व्याकरणी बांदावळ, पृ. ७६ से १४१ तक
६५) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा का सरल व्याकरण, पृ. १२३, १३२
श्री खण्डेराव सुळे तथा श्री नरेंद्र नायक – सुगम हिंदी व्याकरण, पृ. १३०, १३४
६६) "आमची भास – चवथें पुस्तक", पृ. ४१, २३, २३
६७) 'कुळागर (पत्रिका)', वर्स १, अंक ३, पृ. २३
६८) "आमची भास – सवें पुस्तक", पृ. २७
६९) "आमची भास – सातवें पुस्तक", पृ. ९, २३, ३१, ५९, ६२
७०) डा. उदयनारायण तिवारी – हिंदी भाषा का उद्गम और विकास, पृ. ४८७
७१) वही, पृ ४८३
७२) श्री भट्टोजी दीक्षित – सिद्धान्त कौमुदी, पृ. ५७, सू. क्र. १।४।५२
७३) श्री कांतिलाल जोशी तथा श्री जेठालाल जोशी – राष्ट्रभाषा रचना और व्याकरण, भाग ३–४, पृ. ८१
७४) श्री खण्डेराव सुळे तथा श्री नरेंद्र नायक – सुगम हिंदी व्याकरण, पृ. १५०
७५) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. ३०६

अध्याय ८
उपसर्ग तथा प्रत्यय

हिंदी तथा कोंकणी में उपसर्गों तथा प्रत्ययों की सहायता से विभिन्न प्रकार के व्याकरणिक शब्द एवं रचनात्मक रूप बनते हैं। इस अध्याय में ऐतिहासिक दृष्टि से हिंदी तथा कोंकणी के कुछ उपसर्गों तथा प्रत्ययों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

१) उपसर्ग

'उपसर्ग' उस वर्ण या वर्णसमूह को कहते हैं, जिसका स्वतंत्र प्रयोग न होता हो और जो किसी शब्द के पूर्व, कुछ आर्थिक विशेषता लाने के लिए जोडा जाता है, यथा :– 'हार' शब्द के पूर्व 'प्र, आ, सम् , वि, परि' आदि जोडने से 'प्रहार, आहार, संहार, विहार, परिहार' आदि शब्द बनते हैं। इन शब्दों में मूल 'हार' शब्द में प्राप्त होने वाले अर्थ की अपेक्षा विशेष अर्थ प्राप्त होता है।

संस्कृत में 'प्र , परा' आदि बाईस उपसर्ग हैं। इसके सिवा 'अ, स्वी , पुरः, स, कु' आदि गतिवाचक अव्ययों का भी उपसर्ग रूप में व्यवहार होता है।

संस्कृत में प्राप्त उपसर्ग कुछ परिवर्तन के साथ पालि– प्राकृत–अपभ्रंश में प्राप्त हैं, यथा :– 'प (सं. प्र.), ओ (सं. अप), उ (सं. उत्), अणु (सं. अनु)' आदि।

हिंदी तथा कोंकणी में ऐतिहासिक दृष्टि से तीन प्रकार के उपसर्ग प्राप्त हैं, यथाः– (अ) तत्सम, (आ) तद्भव और (इ) विदेशी।

(अ) तत्सम उपसर्ग –

हिंदी तथा कोंकणी में संस्कृत तत्सम शब्दों का व्यवहार होता है। इन तत्सम शब्दों के साथ-साथ संस्कृत उपसर्गों का भी व्यवहार हिंदी तथा कोंकणी में होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इन तत्सम उपसर्गों में कोई विशेषता नहीं दिखायी देती; फिर भी हिंदी तथा कोंकणी की तुलना की दृष्टि से दो-चार तत्सम उपसर्गों के उदाहरण नीचे दिये हैं –

उपसर्ग –	हिंदी	कोंकणी
प्रति –	प्रतिक्रिया, प्रतिकूल	प्रतिक्रिया, प्रतिकूल
प्र –	प्रकार, प्रसाद	प्रकार, प्रसाद
सम् –	संसार, संकल्प	संसार, संकल्प
आ –	आदर, आकार	आदर, आकार

अ –	अचल, अमान्य	अचल, अमान्य
कु –	कुरूप, कुकर्म	कुरूप, कुकर्म

(आ) तद्भव उपसर्ग –

हिंदी तथा कोंकणी में प्रचलित कुछ तद्भव उपसर्ग व्युत्पत्तिसहित नीचे दिये हैं –

सं. ' अ ' > हिं. तथा कों. ' अ (अभाव, हीनता आदि अर्थ में) '

संस्कृत ' अ ' उप्रसर्ग हिंदी तथा कोंकणी में ' अ ' रूप में ही प्राप्त है। परंतु इसका प्रयोग संस्कृत तत्सम शब्दों में तो प्राप्त है ही (जैसे :– ' अभाव, अज्ञान, अप्रतिष्ठा ' आदि), साथ-साथ इसका तद्भव शब्दों में भी स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग होता है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
अजान, अचूक, अबेर, अटल	अजाण, अचूक, अवेळां, अटळ

सं. ' अन् ' > हिं. तथा कों. ' अन (निषेध, अभाव आदि अर्थ में) '

संस्कृत में स्वर से आरंभ होने वाले शब्दों के पूर्व प्रायः ' अ ' के स्थान ' अन् ' होता है, यथा :– ' अनेक, अनिच्छा, अनारोग्य, अनावश्यक ' आदि। इसी प्रकार व्यंजनों से आरंभ होने वाले शब्दों के पूर्व ' अ(जो अभी ऊपर स्पष्ट किया है) ' मिलता है, यथा :– ' अभाव, अप्रत्यय, अहित, अमान्य ' आदि। परंतु हिंदी तथा कोंकणी में व्यंजन से प्रारंभ होने वाले शब्दों के पूर्व ' अन ' भी प्राप्त होता है, यथा –

हिंदी	कोंकणी
अनमोल, अनगिनती, अनमना	अनवळखी, अनभावार्थी, अनमनप

(उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी शब्द भिन्नार्थक हैं।)

सं ' उद् ' > हिं. तथा कों. ' उ (ऊपर, ऊँचा अर्थ में) '

हिंदी	कोंकणी
उसाँस, उतरना, उथला	उस्वास, उतरप, उथळ

सं. ' अव ' > हिं. तथा कों. ' औ (हीन, नीचे, दूर आदि अर्थ में) '

हिंदी	कोंकणी
औदसा, औगुन	औदिसा, औगुण, औचिन्न

फिर भी परिनिष्ठित हिंदी तथा कोंकणी में ' औ ' के बदले सं. ' अव ' का प्रयोग होता है, यथाः– हिंदी : अवदशा, अवगुण; कोंकणी :अवदिसा, अवगुण, अवचिन्न 'आदि।

सं. ' कु ' > हिं. तथा कों. ' कु (बुरा अर्थ) '

हिंदी	कोंकणी
कुठाँव, कुचाल	कुतर्क, कुचित्री

(उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी शब्द भिन्नार्थक हैं।)

सं. ‘ दुर् ’ > हिं. तथा कों. ‘ दु (बुरा, हीन अर्थ में) ’

हिंदी	**कोंकणी**
दुबला, दुकाल	दुबळो, दुकोळ (दुकळ)

सं. ‘ निर् ’ > हिं. तथा कों. ‘ नि (विना, रहित अर्थ में) ’

हिंदी	**कोंकणी**
निकम्मा, निडर, निहत्था	निवळ, निरसो, निलाजरो

(उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी शब्द भिन्नार्थक हैं ।)

इसके सिवा हिंदी में ‘ क (< सं. कु) : कपूत ’; ‘ पर (< सं. प्र) : परदादा, परनाना (कभी-कभी ‘ पर ’ के स्थान पर ‘ पड ’ होता है, जैसेः– पडपोता)’; स (< सं. सु) : सपूत ’ आदि उपसर्ग प्राप्त हैं ।

इसी प्रकार कोंकणी में ‘ अण (< सं. अनु) : अणभव, अणकार ’; ‘ पड (< सं. प्रति) : पडबिंब, पडसाद ’ आदि उपसर्ग प्राप्त हैं ।

हिंदी ‘ पड ’ तथा कोंकणी ‘ पड ’ में साम्य दीखता है, परंतु दोनों में अर्थान्तर है । क्यों कि दोनों का विकास मूलतः दो भिन्न रूपों से है । हिंदी ‘ पड ’ संस्कृत ‘ प्र ’ तो कोंकणी ‘ पड ’ संस्कृत ‘ प्रति ’ से विकसित है ।

(इ) विदेशी उपसर्ग –

विदेशी उपसर्गों में (१) फारसी – अरबी तथा (२) अंग्रेजी उपसर्ग आते हैं । दोनों के उदाहरण नीचे दिये हैं –

(१) फारसी-अरबी उपसर्ग –

फा. ‘ दर ’ > हिं. तथा कों. ‘ दर (‘ में ’ अर्थ में) ’

हिंदी	**कोंकणी**
दर असल, दर हकीकत, दरमाहा	दरमहा, दरसाल, दरएक

फा. ‘ ना ’ > हिं. तथा कों. ‘ ना (अभाव अर्थ में) ’

हिंदी	**कोंकणी**
नापसंद, नालायक, नाखुश	नापसंत, नालायक, नाखुश

फा. ‘ बद ’ > हिं. तथा कों. ‘ बद (‘ बुरा ’ अर्थ में)’

हिंदी	**कोंकणी**
बदमाश, बदनाम	बदमाश, बदनाम

फा. ' बे ' > हिं. तथा कों. ' बे (' बिना ' अर्थ में) '

हिंदी	कोंकणी
बेईमान, बेकार, बेचैन, बेदम	बे(य)मान, बेकार, बेचैन, बेदम

कभी-कभी कोंकणी में ' बे ' का ' बि ' होता है, यथा:– हिंदी ' बेचारा '; कोंकणी: ' बिचारो ' ।

फा. ' सर ' > हिंदी तथा ' कों. ' सर (मुख्य अर्थ में) '

हिंदी	कोंकणी
सरकार, सरपंच, सरहद्द	सरकार, सरपंच, सरहद्द

अ. ' ला ' > हिं. तथा कों. ' ला (बिना, अभाव अर्थ में) '

हिंदी	कोंकणी
लाचार, लावारिस, लाजबाब	लाचार

इसके सिवा फारसी-अरबी से हिंदी में प्राप्त ' अल, ब, बा, हर, हम ' आदि उपसर्ग कोंकणी में उपलब्ध नहीं ।

अरबी का ' ऐन ' शब्द कोंकणी में उपसर्ग रूप में दिखाया है [1] । परंतु यह शब्दों के पूर्व जोडकर नहीं आता, अतः इसे यहाँ उपसर्ग के रूप में नहीं लिया है ।

उपर्युक्त फारसी-अरबी उपसर्गों में से कोंकणी में ' बे ' उपसर्ग का ही अधिक प्रयोग दिखायी देता है ।

(२) अंग्रेजी उपसर्ग :

डा. भोलानाथ तिवारी ने हिंदी में अंग्रेजी के पाँच शब्द उपसर्ग के रूप में माने हैं [2], यथा :– ' डिप्टी ', ' वाइस ', ' हाफ ', ' हेड ', ' सब ' ।

कोंकणी में डिप्टी का डेप्युटी होता है ।

हिं. ' डिप्टी ' तथा कों. ' डेप्युटी (उप अर्थ में) '

हिंदी	कोंकणी
डिप्टी कलेक्टर, डिप्टी डायरेक्टर	डेप्युटी कलेक्टर, डेप्युटी डायरेक्टर

हिं. ' वाइस ' तथा कों. ' व्हायस (उप अर्थ में) '

हिंदी	कोंकणी
वाइस चान्सलर, वाइस प्रिन्सिपल	व्हायस चान्सलर, व्हायस प्रिन्सिपल

हिं. तथा कों. ' सब (गौण, अप्रधान अर्थ में) '

हिंदी	कोंकणी
सब रजिस्ट्रार, सब जज	सब रजिस्टार, सब जज्ज

हिं. तथा कों. ' हाफ (आधा अर्थ में) '

हिंदी	**कोंकणी**
हाफ पेंट, हाफ कमीज	हाफ पेंट, हाफ शर्ट

हिं. तथा कों. ' हेड (प्रधान अर्थ में) '

हिंदी	**कोंकणी**
हेडमास्टर, हेडक्लर्क	हेडमास्टर, हेडक्लार्क

उपर्युक्त हिंदी के उदाहरण डा. भोलानाथ तिवारी के अनुसार दिये हैं। इनके समानार्थक कोंकणी में व्यवहृत होने वाले शब्द ऊपर कोंकणी विभाग में दिये हैं।

यहाँ प्रश्न उठता है। डा. भोलानाथ तिवारी ने हिंदी में उपसर्ग के रूप में माने पाँचों शब्दों में से ' वाइस, हाफ, हेड ' (' डिप्टी ' को उन्होंने ही त्याज्य ठहराया है) को स्वतंत्र शब्द मानकर उपसर्ग में से बाहर क्यों न रखें ? इसका कारण यह है कि उन्होंने ' कम ', ' खुश ', ' हर ' आदि शब्दों को उपसर्गों से हटाकर स्वतंत्र शब्द के रूप में माना है [३]। इसका कारण देते हुए उन्होंने लिखा है कि ' कम ', ' खुश ', ' हर ' आदि अनेक शब्द जो उपसर्ग माने हैं, स्वतंत्र शब्द हैं। अतः इन शब्दों के योग से बनने वाले शब्दों को सामासिक शब्द माना जाना चाहिए। विस्तार के लिए देखिए, डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. ११९, १२०)।

यही कारण ' वाइस, हाफ, हेड ' के संबंध में लागू होता है। ' वाइस ' को कदाचित् उपसर्ग माना जा सकता है, क्योंकि अंग्रेजी में ' वाइस ' शब्द ' नाउन् ' तथा ' प्रीफिक्स ' है; परंतु ' हाफ ', ' हेड ' तो पूर्णतया ' नाउन् ' हैं [४]। अतः इन शब्दों के योग से बनने वाले शब्दों को सामासिक शब्द मानकर उत्पन्न किया जा सकता है। अतः ' हाफ ', ' हेड ' को उपसर्ग मानने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।

अंग्रेजी में ' सब ' उपसर्ग है, और यह हिंदी तथा कोंकणी में मिलता है, यथा :– ' सब रजिस्ट्रार, सब ओवरसियर ' आदि।

× × ×

उपर्युक्त उपसर्गों के विवरण से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं –

(१) हिंदी तथा कोंकणी में संस्कृत तत्सम और तद्भव उपसर्ग प्राप्त हैं।

(२) हिंदी तथा कोंकणी में फारसी तथा अरबी उपसर्ग प्राप्त हैं। इनमें भी ' बे ' उपसर्ग हिंदी तथा कोंकणी में अधिक उपलब्ध होता है। शेष उपसर्ग कोंकणी में बहुत ही कम उपलब्ध होते हैं।

(३) क्वचित् अंग्रेजी उपसर्ग भी हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है।

२) प्रत्यय

'प्रत्यय' उस वर्ण या वर्णसमूह को कहते हैं, जिसका स्वतंत्र प्रयोग न होता हो, परंतु किसी शब्द या धातु के अन्त में, अर्थ परिवर्तन की दृष्टि से जोडा जाता है, यथा :– 'कवि : कवित्व' ; 'सुंदर : सौंदर्य ; 'लिखना : लिखावट'।

संस्कृत प्रत्ययों में दो भेद मिलते हैं : (अ) 'तद्धित' और (आ) 'कृत्'। जो प्रत्यय संज्ञाओं, सर्वनामों, विशेषणों में जोडे जाते हैं वे तद्धित हैं और जो धातूओं में जोडे जाते हैं वे कृत् कहलाये जाते हैं।

हिंदी तथा कोंकणी में भी तद्धित और कृत् दोनों प्रकार के प्रत्यय उपलब्ध हैं। कुछ प्रत्यय ऐसे भी हैं जो तद्धित और कृत् दोनों में समान रूप से दिखायी देते हैं, यथा –

प्रत्यय :	हिंदी	कोंकणी
तद्धित :	आ – भूख : भूखा	ओ – दोर : दोरो
	प्यार : प्यारा	पाट : पाटो
कृद् :	आ – घेर : घेरा	ओ – तेंक : तेंको
	झगड : झगडा	पीक : पिको
तद्धित :	आन – लंबा : लंबान	आव – उणो : उणाव
कृद् :	आन – उठ : उठान	आव – उठ : उठाव

फिर भी तद्धित और कृत् प्रत्ययों में प्राप्त होने वाले समान आनुपूर्वी वाले प्रत्ययों की व्युत्पत्ति अलग-अलग हो सकती है। अतः वस्तुनिष्ठ ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त होने के लिए यहाँ तद्धित और कृत् प्रत्ययों के अलग-अलग विभाग किये हैं।

अ. तद्धित प्रत्यय

हिंदी तथा कोंकणी में तद्धित प्रत्यय ऐतिहासिक दृष्टि से चार प्रकार के प्राप्त हैं, यथा :– (१) तत्सम, (२) तद्भव, (३) देशज और (४) विदेशी।

(१) तत्सम तद्धित प्रत्यय –

हिंदी तथा कोंकणी में संस्कृत तत्सम शब्दों का व्यवहार होता है। इन तत्सम शब्दों के साथ संस्कृत प्रत्ययों का व्यवहार हिंदी तथा कोंकणी में होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इन तत्सम प्रत्ययों में कोई विशेषता नहीं दीखती। फिर भी हिंदी तथा कोंकणी तद्धित प्रत्ययों की तुलना की दृष्टि से दो–चार तत्सम प्रत्ययों के उदाहरण नीचे दिये हैं –

प्रत्यय –	हिंदी	कोंकणी
ता –	देवता, कविता, जनता	देवता, कविता, जनता
त्व –	कवित्व, गुरुत्व	कवित्व, गुरुत्व
य –	चातुर्य, सौंदर्य, स्वातंत्र्य	चातुर्य, सौंदर्य, स्वातंत्र्य

(२) तद्भव तद्धित प्रत्यय –

हिंदी तथा कोंकणी में प्रचलित कुछ तद्भव तद्धित प्रत्यय नीचे दिये हैं –

हिंदी ' आ ' तथा कोंकणी ' ओ '

हिंदी ' आ ' तथा कोंकणी ' ओ ' के स्वरूप में भिन्नता है फिर भी दोनों के अर्थ में साम्य है। हिंदी ' आ ' तथा कों. ' ओ ' प्रत्यय विशेषण तथा संज्ञा अर्थ में प्रयुक्त हैं, यथा–

अर्थ –	हिंदी ' आ '	कोंकणी ' ओ '
विशेषण :	प्यास : प्यासा	पिशें : पिसो
	भूख : भूखा	मस्ती : मस्तो
संज्ञा :	लकडी : लकडा	पाट : पाटो
	बोझ : बोझा	दोर : दोरो

(उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी के शब्द भिन्नार्थक हैं।)

डा. हार्नले हिंदी ' आ ' की व्युत्पत्ति संस्कृत के स्वार्थी ' क ' प्रत्यय से मानते हैं [५]।

बीम्स ने संस्कृत अकारान्त संज्ञाओं के अन्त में प्राप्त अ > ओ > आ में परिवर्तित माना है। फिर भी वे उपर्युक्त डा. हार्नले के मत से सहमत हैं [६]।

डा. तगारे ' क ' प्रत्यय–युक्त ' अक ' से हिंदी ' आ ' विकसित मानते हैं [७]।

वास्तव में हिंदी के आकारान्त शब्दों की व्युत्पत्ति दिखाने के लिए किसी अन्य प्रत्यय की कल्पना करने की आवश्यकता नहीं। संस्कृत पुल्लिंग अकारान्त शब्द अपभ्रंश में ही आकारान्त होते हैं। हेमचंद्र ने अपने प्राकृत व्याकरण में संस्कृत पुल्लिंग अकारान्त शब्दों के वैकल्पिक रूप दिये हैं। इनमें आकारान्त रूप भी हैं [८]। और यह प्रवृत्ति अपभ्रंश की अपनी निजी संपत्ति नहीं है; बल्कि संस्कृत से बिरासत के रूप में मिली संपत्ति का विकसित रूप है। इससे हिंदी में पुल्लिंग आकारान्त शब्द उपलब्ध हैं (विस्तार के लिए देखिए, पृ. १८२)।

हिंदी में जिस प्रकार अपभ्रंश से ' आ ' विकसित हुआ है उसी प्रकार कोंकणी में भी अपभ्रंश से ' ओ ' विकसित हुआ है। इसलिए इन दोनों प्रत्ययों के प्रचलन में साम्य दिखाई देता है।

इस स्पष्टीकरण के पश्चात् भी उपर्युक्त हिंदी ' आ ' तथा कोंकणी ' ओ ' की व्युत्पत्ति अधूरी रह जाती है। इसलिए निम्नलिखित बात ध्यान में रखना आवश्यक है।

संस्कृत में अकारान्त तद्धित प्रत्यय बहुत प्राप्त हैं। इनमें विशेषणवाची मत्वर्थीय ' अच् ' प्रत्यय भी प्राप्त है, यथा :– अर्श आदिभ्योऽच् [९]। इससे उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी विशेषणवाची ' आ ' तथा ' ओ ' प्रत्यय विकसित मानना आवश्यक है। स्थूलतावाची हिंदी ' आ ' तथा कोंकणी ' ओ ' प्रत्यय भी किसी अन्य संस्कृत प्रत्यय से

व्युत्पन्न मानना चाहिए। संस्कृत के एक ही प्रत्यय से विशेषणवाची और स्थूलतावाची हिंदी 'आ' तथा कोंकणी 'ओ' प्रत्ययों की व्युत्पत्ति मानी जाए तो उससे भिन्न-भिन्न अर्थ प्राप्त होना कठिन हो जाएगा। अतः संस्कृत के भिन्न-भिन्न प्रत्ययों से हिंदी तथा कोंकणी के भिन्न-भिन्न अर्थ वाले प्रत्ययों की व्युत्पत्ति मानना उचित लगता है।

अर्थात् केवल तद्धित 'क'; केवल कृदन्त 'घञ्, अच्, अक्' अथवा केवल प्रथमा बहुवचन में प्राप्त 'आः' से हिंदी 'आ' प्रत्यय विकसित मानने के संबंध में विचार करना आवश्यक है।

हिंदी 'आई' तथा कोंकणी 'आय'

हिंदी 'आई' तथा कोंकणी 'आय' प्रत्यय जोडकर भाववाचक संज्ञा बनायी जाती है। हिंदी 'आई' तथा कोंकणी 'आय' में थोडासा अन्तर है; परंतु अर्थ की दृष्टि से दोनों में साम्य है, यथा –

हिंदी 'आई'	कोंकणी 'आय'
महंगा : महंगाई	म्हारग : म्हारगाय
लंबा : लंबाई	लांब : लांबाय

डा. चटर्जी के अनुसार 'आई' प्रत्यय मध्य भारतीय आर्यभाषा काल का है और इसका संबंध धातु के प्रेरणार्थक रूप से बनी हुई स्त्रीलिंग क्रियार्थक संज्ञाओं से है, यथा :– आप + इका > आविका > आई [१०]।

डा. हार्नले संस्कृत 'तिका' प्राकृत 'दिया' अथवा 'इया' से हिंदी 'आई' की व्युत्पत्ति मानते हैं [११], जैसे :– मिष्टतिका > मिट्टतिया > मिठाई।

कैलाग इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत 'त्व' अथवा 'त्वन' से मानते हैं [१२]।

यह प्रत्यय पालि के भाववाचक 'णेय्य' प्रत्यय से विकसित मानने में आपत्ति नहीं है। पालि में 'एय्य (णेय्य)' प्रत्यय है [१३]। इस 'एय्य' का हिंदी में 'आई' तथा कोंकणी में 'आय' हो सकता है। संस्कृत में 'एय' प्रत्यय भाववाचक में प्राप्त है [१४]। इसका पालि में 'एय्य' होता है। इस संबंध में एक और संभावना हो सकती है। संस्कृत में 'होत्रादि' शब्दों में होने वाले 'ईय' प्रत्यय से भाववाचक संज्ञा बनती है [१५]। इससे हिंदी 'आई' तथा कोंकणी 'आय' का विकास माना जा सकता है।

हिंदी 'आन' तथा कोंकणी 'आण'

हिंदी के 'आन' तथा कोंकणी के 'आण' में 'न्' तथा 'ण्' का ही अन्तर है। हिंदी तथा कोंकणी के इन प्रत्ययों से भाववाचक संज्ञा बनती है, यथा –

हिंदी 'आन'	कोंकणी 'आण'
लम्बा : लम्बान	दर्बट : दर्बटाण
ऊँचा : ऊँचान	आमट : आमटाण

(उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी शब्द भिन्नार्थक हैं।)

डा. चटर्जी 'आन' की व्युत्पत्ति क्रियाद्योतक संज्ञार्थक 'अन' से मानते हैं[१६]।
डा. हार्नले इसकी व्युत्पत्ति सं. कृत्य प्रत्यय 'अनीय' से मानते हैं[१७]।

यह व्युत्पत्ति भाववाचक कृत् 'आन' प्रत्यय के संबंध में लागू हो सकती है; परंतु तद्धित 'आन' प्रत्यय संस्कृत तद्धित प्रत्यय से व्युत्पन्न मानना उचित होगा।

पालि में तद्धित भाववाचक संज्ञा के रूप में 'त्तन' प्रत्यय है[१८]। इसका विकास वैदिक 'त्वन' से है। वैदिक संस्कृत में 'त्वन' प्रत्यय भाववाचक संज्ञा के रूप में प्राप्त है[१९], यथा :– 'जनित्वन', 'सखित्वन'। वैदिक संस्कृत में उपलब्ध होने वाले इस प्रत्यय को संस्कृत ने नहीं अपनाया, परंतु पालि ने इसे विकसित रूप में सिर पर उठा लिया। फिर भी वैदिक संस्कृत का आधार न लेकर पालि 'त्तन' से भी इसका विकास माना जाना उचित है; क्यों कि हिंदी तथा कोंकणी अपनी पूर्व-पूर्ववर्ती भाषाओं पर ही निर्भर है (विस्तार के लिए देखिए, पृ. १९८)। पालि 'त्तन' का प्राकृत–अपभ्रंश में 'त्तण' रूप मिलता है[२०]। इससे हिंदी 'आन (या अन)' तथा कोंकणी में 'आण (या अण)' का विकास माना जा सकता है।

अर्थात् हिंदी तद्धित 'आन' प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत कृत् 'अन' या 'अनीय' से मानने की आवश्यकता नहीं है। अत एव यहाँ तद्धित और कृत् प्रत्ययों को अलग-अलग विभागों में बाँटने का प्रयत्न किया है जिससे हर प्रत्यय की व्युत्पत्ति ठीक दिखायी जा सके।

हिंदी 'आर' तथा कोंकणी 'आर'

हिंदी 'आर' तथा कोंकणी 'आर' अर्थ तथा आनुपूर्वी में साम्य रखते हैं। 'आर' के उदाहरण हैं –

हिंदी 'आर'	**कोंकणी 'आर'**
सोना : सुनार	सोनें : सोनार
चाम(=चर्म) : चमार	चाम(=चर्म) : चामार

डा. हार्नले 'आर' की व्युत्पत्ति संबंध कारक प्रत्यय से जोडते हैं, प्रा. केरं > कर, करा, करो > आरा > हिं. 'आर'[२१]।

डा. चटर्जी, बीम्स आदि विद्वान 'आर' का विकास सं. 'कार' से मानते हैं[२२]।

हिंदी 'आरी' तथा कोंकणी 'आरी'

हिंदी 'आरी'	**कोंकणी 'आरी'**
पूजा : पुजारी	पूजा : पुजारी
भीख : भिखारी	भीक : भिकारी

इसकी व्युत्पत्ति सं. 'पूजाकारिन्', 'भिक्षाकारिन्' के 'कारिन् (कारी)' से मानने में आपत्ति नहीं है।

हिंदी 'आल' तथा कोंकणी 'आळ'

हिंदी 'आल' तथा कोंकणी 'आळ' में अन्त्य अक्षर के कारण अन्तर है। हिंदी 'आल' तथा कोंकणी 'आळ' प्रत्यय से तद्धित संज्ञाएँ तथा विशेषण बनते हैं, यथा –

	हिंदी ' आल '	**कोंकणी ' आळ '**
संज्ञा –	ससुर : ससुराल	ऊब : उबाळ
	नाना : ननिहाल	बोब : बोवाळ
विशेषण –	छिन्न : छिनाल	म्होव : म्होवाळ
	रस : रसाल	रस : रसाळ

(हिंदी ' रसाल ' तथा कोंकणी ' रसाळ ' समानार्थक हैं तो शेष शब्द भिन्नार्थक हैं।)
डा. हार्नले, डा. चटर्जी इसकी व्युत्पत्ति सं. ' आलय ' शब्द से मानते हैं [२३]।

हिंदी ' आल ' की तरह कोंकणी तद्धित संज्ञावाची ' आळ ' प्रत्यय की व्युत्पत्ति यद्यपि सं. ' आलय ' से मानी जाए तो भी विशेषणवाची हिंदी ' आल ' तथा कोंकणी ' आळ ' प्रत्यय संस्कृत मत्वर्थीय ' आलच् ' से अथवा ' चूडाल (चूडा+ल) ' में प्राप्त ' आल ' से विकसित माना जा सकता है [२४]। इससे हिंदी ' आल ' तथा कोंकणी ' आळ ' प्रत्ययान्त शब्दों में विशेषणत्व की उपपत्ति हो सकती है। अत एव यह आग्रह है कि हिंदी तथा कोंकणी प्रत्यय अर्थानुसंधान के द्वारा भिन्न-भिन्न प्रत्ययों से विकसित मानना ही उचित है।

हिंदी ' ई ' तथा कोंकणी ' ई '

यह प्रत्यय हिंदी तथा कोंकणी में भिन्न-भिन्न अर्थों में उपलब्ध है। इसका विकास संस्कृत के भिन्न-भिन्न प्रत्ययों से हुआ है, यथा –

प्रत्यय का अर्थ	**हिंदी ' ई '**	**कोंकणी ' ई '**
संज्ञा अर्थ में –	मालिन् : माली	मालिन् : माळी
	हस्तिन् : हाथी	हस्तिन् : हत्ती(ती)

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी उदाहरणों में ' ई ' संस्कृत ' इन् ' से विकसित है।

संज्ञा अर्थ में –	तैलिक : तेली	तैलिक : तेली
	कार्पटिक : कापडी	कार्पटिक : कापडी

यहाँ ' ई ' सं. ' इक ' से विकसित है।

विशेषण अर्थ में –	देशीय : देशी	देशीय : देशी
	ऊन : ऊनी	लोंकर : लोंकरी

यहाँ हिंदी तथा कोंकणी ' ई ' प्रत्यय संस्कृत ' ईय ' से विकसित है।

स्त्रीलिंग अर्थ में –	घोडा : घोडी	घोडा : घोडी
	अच्छा : अच्छी	बरो : बरी

इस ' ई ' की व्युत्पत्ति संस्कृत ' इका ' से मानी जाती है [२५]। परंतु संस्कृत में प्राप्त स्त्रीलिंग ' ई ' प्रत्यय से भी रूप-सिद्धि होने में अडचन नहीं होनी चाहिए।

भाववाचक संज्ञा	चोर : चोरी	चोर : चोरी
के अर्थें में –	खेत – खेती	शेत : शेती

इसकी 'व्युत्पत्ति संस्कृत भाववाचक 'ईय' अथवा 'य' से माना जाना चाहिए।

लघुतादर्शक	टोप : टोपी	तोप : तोपी
अर्थ में –	टोकरा : टोकरी	टोपलो : टोपली

इस 'ई' का संबंध संस्कृत 'इका' से जोडा जाता है[२६]।

हिंदी 'का' तथा कोंकणी 'को'

हिंदी 'का'	**कोंकणी 'को'**
लाड : लडका	तोड:तोडको
माँ : मैका	पै : पैको

(उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी शब्द भिन्नार्थक हैं।)

कोंकणी 'को' प्रत्यय लघुता दिखाने के लिए भी प्रयुक्त होता है, यथा :– 'पाडो : पाडको'; 'मोटो : मोटको'; 'पेटो : पेटको' आदि। इसके सिवा कोंकणी में 'दो' से 'दस' संख्यावाचक शब्दों में भी 'को' प्रत्यय दिखायी देता है, यथा :– 'दुको, तिको, चौको, दसको'।

हिंदी 'कार' तथा कोंकणी 'कार'

यह कर्तृवाचक अर्थ में प्रयुक्त है।

हिंदी 'कार'	**कोंकणी 'कार'**
कहानी कहानीकार	काणी : काणयेकार
नाटक : नाटककार	नाटक : नाटककार

यह प्रत्यय तत्सम 'कार' रूप में प्राप्त है। फारसी से भी हिंदी तथा कोंकणी में 'कार' प्रत्यय प्राप्त है (देखिए, पृ. ४०५)।

हिंदी 'डा, डी' तथा कोंकणी 'डो, डी, डें'

हिंदी 'डा, डी'	**कोंकणी : 'डा, डी, डें'**
टूक : टुकडा-डी	तूक : तुकडो-डी
आंक : आंकडा	आंक : आंकडो
चाम : चमडा-डी	चाम : चामडी-डें

हिंदी 'त' तथा कोंकणी 'त'

हिंदी 'त'	**कोंकणी 'त'**
संग : संगत	संग : संगत
रंग : रंगत	रंग : रंगत

डा. चटर्जी भाववाचक संज्ञाओं में प्राप्त 'त' का संबंध संस्कृत त्व > प्रा. त्त से मानते हैं[२७]।

डा. धीरेंद्र वर्मा इसकी व्युत्पत्ति संदिग्ध मानते हैं। इसका कारण देते हुए वे लिखते हैं के हिंदी में ' त ' प्रत्यय से ब[illegible] स्त्रीलिंग हो जाते हैं, इस कारण ' त्व ' से ' त ' की व्युत्पत्ति संदिग्ध है [२८]।

अत एव ' त ' प्रत्यय का विकास सस्कृत स्त्रीलिंग भाववाचक ' ता ' से मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। उसी प्रकार इस ' त ' का संबंध कृदन्त शब्दों (खपना : खपत आदि) में प्राप्त ' त ' से नहीं जोडना चाहिए।

हिंदी ' ता ' तथा कोंकणी ' ताय '

हिंदी ' ता '	**कोंकणी ' ताय '**
शांत : शांतता	शांत : शांतताय
अस्मि : अस्मिता	अस्मि : अस्मिताय

हिंदी में ' ता ' तत्सम रूप में प्राप्त है। कोंकणी ' ता ' में ' य ' श्रुति है। हिंदी ' ता ' तथा कोंकणी ' ताय ' से भाववाचक संज्ञा बनती है। इन दोनों में ' य ' के कारण अन्तर है।

हिंदी ' पन ' तथा कोंकणी ' पण '

हिंदी ' पन '	**कोंकणी ' पण '**
लडका : लडकपन	भुरगो : भुरगपण
पागल : पागलपन	पिसो : पिशेपण

हिंदी ' पन ' तथा कोंकणी ' पण ' का विकास पालि ' त्तन ' से है। पालि त्तन > प्रा. त्तण > अप. प्पण > हिं. ' पन ' तथा कों. ' पण '। यदि वैदिक संस्कृत ' त्वन ' से संबंध जोडना चाहें तो संस्कृत में कल्पित रूप स्वीकारना पडेगा।

हिंदी ' ला ' तथा कोंकणी ' लो '

हिंदी ' ला '	**कोंकणी ' लो '**
पीछा : पिछला	फाटीं : फाटलो
आगे : अगला	फुडें : फुडलो

उपर्युक्त हिंदी ' ला ' तथा कोंकणी ' लो ' प्रत्यय विशेषणात्मक हैं। हिंदी ' ला ' तथा कोंकणी ' लो ' प्रत्यय स्वार्थ में भी प्रयुक्त हैं, यथा –

बक : बगला	व्हड : व्हडलो
डफ : डफला	एक : एकलो

(उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी शब्द भिन्नार्थक हैं।)

हिंदी ' ली ' तथा कोंकणी ' ली ' प्रत्यय लघुतादर्शक हैं, यथा –

टीका : टिकली	टीका : टिकली
खाज : खुजली	–– ––
–– ––	सूप : सुपली

हिंदी ' ला, ली ' तथा कोंकणी ' लो, ली ' का विकास संस्कृत ' ल ' से है ।

हिंदी ' वाँ ' तथा कोंकणी ' वो '

हिंदी ' वाँ '	**कोंकणी ' वो '**
पाँच : पाँचवाँ	पांच : पांचवो
सात : सातवाँ	सात : सातवो

हिंदी ' वाँ ' तथा कोंकणी ' वो ' का विकास संस्कृत ' पञ्चम ' में प्राप्त ' म ' से है ।

हिंदी ' वंत ' तथा कोंकणी ' वंत '

हिंदी ' वंत '	**कोंकणी ' वंत '**
गुण : गुणवंत	बुद्द : बुदवंत
धन : धनवंत	दया : दयावंत

(उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी शब्द भिन्नार्थक हैं । यहाँ दिये हुए हिंदी के दोनों शब्द ' नालन्दा विशाल शब्दसागर ' में उपलब्ध हैं ।)

यह प्रत्यय संस्कृत के ' मतुप् ' प्रत्ययान्त के बहुवचनीय रूप से विकसित है, जैसे :- ' गुणवान् : गुणवन्तः ' । इस ' गुणवन्तः ' से हिंदी तथा कोंकणी में ' गुणवंत ' शब्द विकसित है । आगे चलकर यही ' वंत ' कोंकणी ' बुदवंत ' शब्द में रूढ हुआ ।

हिंदी ' वान ' तथा कोंकणी ' वान '

हिंदी ' वान '	**कोंकणी ' वान '**
गुण : गुणवान	गुण : गुणवान
धन : धनवान	धन : धनवान

इस ' वान ' प्रत्यय का संबंध भी संस्कृत ' वत् (मतुप्) ' प्रत्यय से है । संस्कृत ' वत् ' का ' वान् ' होता है । इसमें अन्त्य ' अ ' का आगम होकर ' वान ' होता है ।

हिंदी ' वाला ' तथा कोंकणी ' वालो '

हिंदी ' वाला '	**कोंकणी ' वालो '**
गाडी : गाडीवाला	गाडी : गाडीवालो
टोपी : टोपीवाला	टोपी : टोपीवालो

हिंदी ' वाला ' की व्युत्पत्ति संस्कृत ' पाल ' से मानी जाती है, परंतु संस्कृत मत्वर्थीय ' वल ' से ' वाला ' की व्युत्पत्ति मानने में आपत्ति नहीं है ।

हिंदी में ' वाला ' प्रत्यय प्रायः शब्द से अलग लिखा जाता है । परंतु जब इस प्रकार लिखा जाता है तब उसे प्रत्यय मानने में आपत्ति होती है । अतः इस संबंध में सोचना आवश्यक है । यही बात निम्नलिखित हिंदी ' सा ' के बारे में भी दिखायी देती है । वास्तव में इस ' सा ' को प्रत्यय मानने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हिंदी-लेखन में उसे भी

अलग ही लिखने का प्रयत्न होता है।

कोंकणी में इन प्रत्ययों के संबंध में कोई आपत्ति नहीं है। कोंकणी में ये प्रत्यय शब्दों में जोडकर ही लिखे जाते हैं।

हिं. ' सा ' तथा कों. ' सो '

हिंदी ' सा '	**कोंकणी ' सो '**
हाथी : हाथीसा	हत्ती : हत्तीसो
पीला : पीलासा	पिवळो : पिवळोसो

हिंदी ' सा ' तथा कोंकणी ' सो ' प्रत्यय विशेषण अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। इनसे साधारणतया सादृश्य अर्थ प्राप्त होता है।

हिंदी ' सा ' का स्त्रीलिंग में ' सी ' होता है तो कोंकणी ' सो ' का स्त्रीलिंग में ' शी ' होता है, यथा :– हिंदी : ' हाथीसी, पीलीसी ' आदि; कोंकणी : ' हतीशी, पिवळीशी ' आदि। इसी प्रकार कोंकणी ' सो ' का नपुंसकलिंग में ' शें ' होता है, यथा :– ' हतीशें, पिवळेंशें ' आदि।

हिंदी ' सा ' तथा कोंकणी ' सो ' की व्युत्पत्ति संस्कृत ' सदृश ' से है।

उपर्युक्त विवेचित हिंदी तथा कोंकणी तद्धित प्रत्ययों के सिवा हिंदी तथा कोंकणी में अनेक प्रत्यय ऐसे हैं जो हिंदी में प्राप्त हैं वे कोंकणी में प्राप्त नहीं हैं; और जो कोंकणी में प्राप्त हैं वे हिंदी में प्राप्त नहीं हैं, यथा

हिंदी में प्राप्त होने वाले और कुछ तद्धित प्रत्यय –

आइन्द –	कपडाइन्द, घिनाइन्द, सडाइन्द
आस –	खटास, मिठास, निंदास
आहट –	कडुआहट, घबराहट, चिकनाहट
इया –	चुहिया, रसोइया, पर्वतिया
ऊ –	बाजारू, गरजू, घरू
एरा –	ममेरा, सँपेरा, चचेरा, अंधेरा
ऐत –	डकैत, लठैत, अकडैत
ऐला –	विषैला, वनैला
औत –	जिठौत, बहनौत
औती –	बपौती, बुढौती, कठौती
पा –	बुढापा, मुटापा, अपनापा, बहिनापा

कोंकणी में प्राप्त होने वाले और कुछ तद्धित प्रत्यय –

आवण –	आडावण
आवत –	रूपावत, तांबावत

आवळ –	जिवावळ, तारवावळ, नक्षत्रावळ, गिरावळ ,फळावळ
आवो –	ओलावो, घरावो, मुळावो
ईक –	सोयरीक, मेकळीक, रुचीक, खर्चीक
ईत –	रंगीत, खंडीत
उलो –	सोनुलो, कोळसुलो, शाणुलो, माणकुलो
एल –	नारलेल, करंजेल, तिळेल, मुखेल
एस्त –	गिरेस्त, मायेस्त, दुखेस्त, रूपेस्त, गुणेस्त
वळ –	रासवळ, पानवळ, घडवळ
साण –	हरवसाण, धवसाण, निबरसाण, थंडसाण
सार –	कोडसार, आमटसार, बेगीनसार, लागसार

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी में और भी अनेक तद्भव तद्धित प्रत्यय प्राप्त हैं।

(३) देशज तद्धित प्रत्यय

हिंदी ' आका ' तथा कोंकणी ' आको '

हिंदी ' आका ' तथा कोंकणी ' आको ' प्रत्यय अनुकरण-वाचक शब्दों में जुडते हैं, यथा :–

हिंदी : ' आका '	**कोंकणी ' आको '**
धड : धडाका	धड : धडाको
तड : तडाका	तड : तडाको

हिंदी ' अड ' तथा कोंकणी ' अड '

हिंदी ' अड ' तथा कोंकणी ' अड ' संज्ञा में जुडने पर संज्ञा तथा विशेषण बनता है, यथा –

	हिंदी : ' अड '	**कोंकणी : ' अड '**
संज्ञा से संज्ञा –	अन्ध : अन्धड	रेबो : रेबड
		खत : खातड
संज्ञा से विशेषण –	भूख : भुक्खड	वात : वातड

(उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी शब्द भिन्नार्थक हैं।)

हिंदी तथा कोंकणी में कुछ देशज तद्धित प्रत्यय ऐसे भी हैं, जो हिंदी में प्राप्त हैं वे कोंकणी में प्राप्त नहीं हैं; और जो कोंकणी में प्राप्त हैं वे हिंदी में प्राप्त नहीं हैं,यथाः–

हिंदी में प्राप्त होने वाले देशज तद्धित प्रत्यय –

आक –	फटाक, चटाक, खटाक, धडाक
इयल –	मटियल, दढियल, पनियल
आटा –	सन्नाटा, घर्राटा

ोंकणी में प्राप्त होने वाले देशज तद्धित प्रत्यय –

आट –	सकलाट, उंचाट
आंट –	गोलांट, खोलांट
आडो –	धवाडो, सुराडो, वाटाडो, गराडो

(४) विदेशी तद्धित प्रत्यय

फारसी-अरबी से हिंदी तथा कोंकणी में निम्नलिखित प्रत्यय प्राप्त हैं, यथा –

हिंदी: ' आना '	**कोंकणी ' आणें ', ' आणो '**
घर : घराना	घर : घराणें
नजर : नजराना	नजर : नजराणो
हिंदी ' ई '	**कोंकणी ' ई '**
खुश : खुशी	खुश : खुशी
दोस्त : दोस्ती	दोस्त : दोस्ती
हिंदी : ' कार '	**कोंकणी ' कार '**
काश्त : काश्तकार	कास्त : कास्तकार
पेश : पेशकार	–– ––

हिंदी तथा कोंकणी में संस्कृत से भी ' कार ' प्रत्यय प्राप्त है (देखिए, पृ. ४००)।

हिंदी : ' गार '	**कोंकणी : ' गार '**
मदद : मददगार	मदत : मदतगार
गुनहा : गुनहगार	गुन्हो : गुन्हेगार
हिंदी : ' दार '	**कोंकणी : ' दार '**
दूकान : दूकानदार	दुकान : दुकानदार
जमीं : जमींदार	जमीन : जमीनदार
हिंदी : ' बाज '	**कोंकणी : ' बाज '**
दगा : दगाबाज	दगो : दगाबाज
धोखा : धोखेबाज	धोको : धोकेबाज
हिंदी ' वान '	**कोंकणी ' वान '**
गाडी : गाडीवान	गाडी : गाडीवान
पहल : पहलवान	पैल : पैलवान

हिंदी तथा कोंकणी में संस्कृत से भी ' वान ' प्रत्यय प्राप्त है (देखिए, पृ. ४०२)।

हिंदी ' वार '	**कोंकणी ' वार '**
तारीख : तारीखवार	तारीख : तारीखवार
उम्मीद : उम्मीदवार	उमेद : उमेदवार

इसके सिवा हिंदी में फारसी-अरबी से निम्नलिखित प्रत्यय भी प्राप्त हैं, यथा –

इयत –	खैरियत, इन्सानियत, असलियत
ईन –	रंगीन, संगीन, नमकीन
खोर –	हरामखोर, रिश्वतखोर, घूसखोर
गर –	सौदागर, जादूगर, कारीगर
गाह –	ईदगाह, बंदरगाह, शिकारगाह
गी –	ताजगी, बंदगी, जिंदगी
ची –	तबलची, नकलची, बंदूकची
जादा –	शाहजादा, हरामजादा, साहबजादा
दान –	कलमदान, फूलदान, पानदान
नाक –	खौफनाक, खतरनाक, दर्दनाक
बारी –	गोलाबारी, बमबारी, बर्फबारी
बीन –	दूरबीन, तमाशबीन, खुर्दबीन
मंद –	अक्लमंद, दौलतमंद, जरूरतमंद
वर –	हिम्मतवर, नामवर

उपर्युक्त प्रत्ययों तथा उनके रूपों में से कोंकणी में ' खोर , ची, बीन ' प्रत्ययों के रूप उपलब्ध हैं, जैसे :– ' हरामखोर, तबलजी, दुर्बीण ' आदि । ' तबलजी, दुर्बीण ' शब्दों के प्रत्ययों में थोडा सा बदल हुआ है । ' तबलजी ' में ' ची ' का ' जी ' हुआ है तो ' दुर्बीण ' में ' न ' का ' ण ' हुआ है ।

आ. कृत् प्रत्यय :

कृत् प्रत्यय भी हिंदी तथा कोंकणी में चार प्रकार के उपलब्ध हैं, यथा :– (१) तत्सम, (२) तद्भव, (३) देशज और (४) विदेशी ।

(१) तत्सम कृत् प्रत्यय –

हिंदी तथा कोंकणी में तत्सम शब्दों के साथ तत्सम कृत् प्रत्ययों का भी व्यवहार दीखता है, यथा –

प्रत्यय	–	हिंदी	कोंकणी
अन	–	वाचन, वचन, पठन	वाचन, वचन, पठन
त्र	–	अस्त्र, शस्त्र, शास्त्र	अस्त्र, शस्त्र, शास्त्र
त	–	चरित, मत, स्वागत, गीत	चरित, मत, स्वागत, गीत
अ	–	विचार, विकास, आभास	विचार, विकास, आभास

ऐतिहासिक दृष्टि से इन तत्सम कृत् प्रत्ययों में कोई विशेषता नहीं दीखती; फिर भी हिंदी तथा कोंकणी की तुलना की दृष्टि से ऊपर चार प्रत्यय तथा उनके उदाहरण दिये हैं ।

(२) तद्भव कृत् प्रत्यय –

हिंदी तथा कोंकणी में प्रचलित कुछ तद्भव कृत् प्रत्यय नीचे दिये हैं –

हिंदी ' अ ' तथा कोंकणी ' अ '

हिंदी ' अ ' तथा कोंकणी ' अ ' से कृदन्त भाववाचक संज्ञा बनती है, यथा –

हिंदी ' अ '	**कोंकणी ' अ '**
देख : देख	देख : देख
चल : चाल	चल : चाल
मिल : मेल	पिक : पीक

(उपर्युक्त हिंदी ' मेल ' तथा कोंकणी ' पीक ' शब्द भिन्नार्थक हैं)

यह ' अ ' प्रत्यय संस्कृत भाववाचक ' घञ् ' से विकसित है।

हिंदी ' अंत ' तथा कोंकणी ' अंत '

हिंदी ' अंत '	**कोंकणी ' अंत '**
रट : रटंत	चाल : चालंत
भिड : भिडंत	ऊब : उबंत

(उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी शब्द भिन्नार्थक हैं।)

हिंदी ' अंत ' से बनने वाले शब्दों को डा. भोलानाथ तिवारी ने विशेषण माना है [२९]। फिर भी हिंदी में ' रटंत, भिडंत, लडंत ' शब्द कृदन्त संज्ञा के रूप में भी प्राप्त हैं। परंतु कोंकणी में ' चालंत, उबंत ' शब्द कृदन्त विशेषण के रूप में प्राप्त हैं। ' अंत ' प्रत्यय का विकास संस्कृत ' अत् (शतृ) ' प्रत्ययान्त शब्द के बहुवचनीय रूप से हुआ है।

हिंदी ' आ ' तथा कोंकणी ' ओ '

हिंदी ' आ ' तथा कोंकणी ' ओ ' प्रत्यय भिन्न-भिन्न अर्थ में प्रयुक्त हैं, यथा :–

	हिंदी ' आ '	**कोंकणी ' ओ '**
(१) **भाववाचक संज्ञा के अर्थ में**	घेर : घेरा	घेर : घेरो
	फेर : फेरा	फेर : फेरो

इसी प्रकार हिंदी में ' जोडा, झगडा ' तथा कोंकणी ' भुरको, थारो, हांसो ' आदि शब्द प्राप्त हैं। हिंदी ' आ ' तथा कोंकणी ' ओ ' प्रत्यय का विकास संस्कृत भाववाचक कृत् ' घञ्, अच् ' आदि से विकसित माना जा सकता है।

(२) **भूतकालिक अर्थ में**	सूख : सूखा	सुक : सुको
	पक : पका	पिक : पिको

हिंदी का उपर्युक्त आकारान्त रूप भूतकालिक विशेषण के रूप में (यथा :– मैंने पका आम ले लिया। ') और भूतकालिक क्रिया के रूप में (यथा :– ' यह आम पका है। ') प्रयुक्त होता है। इन दोनों अर्थों में यह ' आ ' प्रत्यय हिंदी की अन्य धातुओं में भी दिखायी देता है, जैसे :– ' पढ : पढा; लग : लगा ; गिर : गिरा; देख : देखा; सह : सहा ' आदि। इसके सिवा भूतकालिक विशेषण तथा क्रिया बनाने के लिए कुछ धातुओं में इस

'आ' के बदले 'या' प्रत्यय जोडा जाता है (देखिए, पृ. ३३८)।

कोंकणी में उपर्युक्त ओकारान्त 'सुको, पिको' रूप विशेषण के रूप में (यथा :– 'सुको जागर', 'पिको आंबो') प्रयुक्त है, परंतु 'सुको, पिको' रूप भूतकालिक क्रिया के रूप में प्रयुक्त नहीं है। कोंकणी 'सुको, पिको' शब्द प्रायः संस्कृत में प्राप्त 'शुष्कः, पक्वः' से विकसित हैं। पाणिनि ने इन दो रूपों को साध्य करने के लिए स्वतंत्रता से दो सूत्रों का प्रणयन किया है, यथा :– 'शुषः कः (८।२।५१), पचो वः (८।२।५२)'। कोंकणी में यह 'ओ' प्रत्यय प्रायः 'सुक' और 'पिक' दो धातुओं में दिखायी देता है। शेष धातुओं में भूतकालिक विशेषण तथा क्रिया बनाने के लिए 'लो, इल्लो' आदि प्रत्यय जोडे जाते हैं (देखिए, पृ. ३३८)।

हिंदी के इन भूतकालिक 'आ' की व्युत्पत्ति उपर्युक्त भाववाचक संज्ञा के अर्थ में प्राप्त 'आ' की तरह नहीं मानी जाए। इस 'आ' की व्युत्पत्ति संस्कृत भूतकालिक 'त' से विकसित मानी जानी चाहिए जिससे अर्थ में सादृश्य प्राप्त हो सकता है।

कोंकणी का उपर्युक्त भूतकालिक 'ओ' संस्कृत के 'शुष्कः, पक्वः' के 'अ' अथवा भूतकालिक 'त' से विकसित माना जाए। इससे इसमें भूतकालिक अर्थ प्राप्त होता है।

(३) करणवाचक संज्ञा के अर्थ में	झूल : झूला	झूल : झो(झू)लो
	पोत : पोता	तेंक : तेंको

(उपर्युक्त हिंदी का 'पोता' तथा कोंकणी का 'तेंको' शब्द भिन्नार्थक हैं।

इन हिंदी 'आ' तथा कोंकणी 'ओ' प्रत्यय की व्युत्पत्ति 'अकर्तरिच कारके संज्ञायाम् (पा. सू. ३।३।१९)' में कथित 'घञ्' प्रत्यय से मानी जाए।

हिंदी 'आ' तथा कोंकणी 'ओ' तद्धित और कृत् दोनों में प्राप्त हैं। अत एव इनका विकास संस्कृत के तद्धित और कृत् प्रत्ययों से अलग-अलग मानना उचित है। यदि हिंदी 'आ' प्रत्यय केवल तद्धित या केवल कृत् प्रत्यय से व्युत्पन्न मानकर उसका संबंध नाम (अर्थात् संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण) तथा क्रिया से जोडा जाए तो अर्थ की दृष्टि से असामंजस्य प्राप्त होता है। अतः तद्धित और कृत् प्रत्ययों का अलग-अलग विभाग करके संस्कृत के भिन्न-भिन्न प्रत्ययों से इनका विकास मानना उचित होगा।

इसीलिए हिंदी 'आ' तथा कोंकणी 'ओ' को अर्थ के अनुसार संस्कृत के भिन्न-भिन्न प्रत्ययों से विकसित मानने में औचित्य है।

हिंदी 'आई' तथा कोंकणी 'आय'

हिंदी 'आई' तथा कोंकणी 'आय' प्रत्यय तद्धित और कृत् दोनों में प्राप्त हैं। तद्धित हिंदी 'आई' तथा कोंकणी 'आय' प्रत्ययों का विवरण करते समय संस्कृत के तद्धित प्रत्यय के आधार पर इनका विवेचन किया है (देखिए, पृ. ३९७)। यहाँ संस्कृत

कृत् प्रत्यय के आधार पर हिंदी ' आई ' तथा कोंकणी ' आय ' का विकास प्रस्तुत है –

हिंदी ' आई '	**कोंकणी ' आय '**
लड : लडाई	लड : लडा(ढा)य
चढ : चढाई	चढ : चढाय

' आई ' का विकास कैलाग संस्कृत ' त्व ' या ' त्वन ' से मानते हैं [३०]।

डा. हार्नले ' तिका ' से इसका विकास मानते हैं। वे संस्कृत स्त्रीलिंग ' ता ' > में निरर्थक ' क ' जोडकर ' तिका ' रूप बनाते हैं, और इससे ' आई ' का विकास मानते हैं, यथा:– सं. मिष्टतिका > प्रा. मिट्ठइया > हिं. मिठाई [३१]।

डा. चटर्जी ने काल्पनिक प्रेरणार्थक रूप से बनी स्त्रीलिंग क्रियार्थक संज्ञा से ' आई ' का विकास माना है [३२]।

वस्तुतः इसका विकास अन्य प्रकार से सिद्ध हो सकता है। संस्कृत में पाणिनि ने स्त्रीलिंग भाववाचक संज्ञा के समय ' अक(ण्वुल्) ' प्रत्यय का निर्देश किया है [३३]। ' अक ' स्त्रीलिंग होने के कारण ' इका ' होता है जो डा. हार्नले को अभिप्रेत है। इस प्रकार तिका ' से ' आई ' व्युत्पन्न मानने के बदले ' इका ' से ' आई ' व्युत्पन्न मानने में आपत्ति नहीं होगी। इतना ही नहीं हिंदी में द्योत्य क्रिया का सामान्य अर्थ इस ' इका ' से भी प्रतीत होता है।

इस ग्रंथ में तद्धित और कृत् प्रत्ययों के अलग-अलग विभाग इसलिए किये हैं कि प्रत्ययों का विकास ठीक तरह से दिखाया जा सके। अत एव संस्कृत तद्धित ' त्व ' आदि से इस ' आई ' का विकास नहीं माना जा सकता है। ' चमार, सुनार ' आदि में यद्यपि कृत् प्रत्यय है फिर भी इनमें प्राप्त ' आर ' प्रत्यय कृदन्त ' कार ' से विकसित है, न कि ' कार ' में प्राप्त कृत् ' अ ' प्रत्यय से। अतः ' कार ' कृत् प्रत्यय न होने के कारण ' कार ' से विकसित ' आर ' प्रत्यय तद्धित प्रत्ययों के विभाग में निर्दिष्ट किया है।

हिंदी ' आऊ ' तथा कोंकणी ' आवू '

हिंदी ' आऊ '	**कोंकणी ' आवू '**
टिक : टिकाऊ	टिक : टिकावू
जल : जलाऊ	जळ : जळावू

डा. हार्नले ने इसका विकास संस्कृत ' तृ ' या स्वार्थी ' क ' जोडे ' तृक ' से माना है [३४]।

डा. चटर्जी इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत ' उ ' के साथ ' क ' जोडकर मानते हैं [३५]।

' आऊ ' का विकास ' सं. ' आरु ' से मानने में आपत्ति नहीं है। ' आरु ' प्रत्यय का निर्देश पाणिनि ने अपने सूत्र ३।२।१७३ में किया है [३६]।

हिंदी ' आन ' तथा कोंकणी ' आण '

हिंदी ' आन '	**कोंकणी ' आण '**
उड : उडान	उड : उड्डाण
मिल : मिलान	बुड्ड : बुड्डाण

(उपर्युक्त हिंदी ' मिलान ' तथा कोंकणी ' बुड्डाण ' भिन्नार्थक हैं ।)

हिंदी ' आव ' तथा कोंकणी ' आव '

हिंदी ' आव '	**कोंकणी ' आव '**
उठ : उठाव	उठ : उठाव
चढ : चढाव	चढ : चढाव

डा. हार्नले ' आव ' का विकास सं. ' त्व ' या ' त्वन ' से जोडते हैं [३७] ।

इस प्रत्यय की व्युत्पत्ति तद्धित ' आव ' प्रत्यय के समान दिखाने के बदले भाव-वाचक प्रत्यय से दिखाना समीचीन है । इसलिए ' अ(घञ्) ' प्रत्यय से बने कृदन्त भाववाचक संज्ञा के अन्तिम ' आव ' रूप से हिंदी ' आव ' प्रत्यय का विकास मानने में आपत्ति नहीं होगी । संस्कृत में उकारान्त तथा ऊकारान्त धातुओं में ' अ(घञ्) ' प्रत्यय जोडने से शब्द के अन्त में ' आव ' ध्वनि श्रुत होती है, यथा :– ' संराव, विराव, आप्लाव, भाव, प्रभाव, विक्षाव, विश्राव, संस्ताव ' आदि । इस प्रकार के शब्दों के अन्त में सुनाई पडने वाली ' आव ' ध्वनि हिंदी में स्वतंत्र ' आव ' प्रत्यय के रूप में विकसित मानी जा सकती है ।

अन्य एक संभावना हो सकती है । संस्कृत में कुछ धातुओं से कृदन्त भाववाचक संज्ञा बनाते समय ' अथु ' प्रत्यय जोडा जाता है, यथा :– ' वेपथु, श्वपथु ' [३९] । इस ' अथु ' से ' आव ' का विकास माना जा सकता है ।

हिंदी ' ई ' तथा कोंकणी ' ई '

हिंदी ' ई '	**कोंकणी ' ई '**
बोल : बोली	बोल : बोली
धमक : धमकी	धमक : धमकी

' ई ' प्रत्यय स्त्रीलिंग ' इन्, इण्, इक् ' प्रत्ययों के ' इ ' से विकसित है । ये प्रत्यय पाणिनि के ३।३।१०८ सूत्र की पूर्ति के लिए दिये वार्तिक में निर्दिष्ट हैं [४०] ।

हिंदी ' कर, के.करके ' तथा कोंकणी ' ऊन, वन '

हिंदी ' कर, के, करके '	**कोंकणी ' ऊन, वन '**
खा : खाकर, खाके	खा : खावून, खावन
हँस : हँसकर, हँसके	हांस : हांसून

हिंदी ' कर, के, करके ' का विकास संस्कृत ' कृत्वा ' रूप से माना हैं [४१] । कोंकणी ' ऊन, वन ' का विकास प्रा. तूण, तुआण < पा. तून, त्वान से है ।

हिंदी ' ता ' तथा कोंकणी ' ता '

हिंदी ' ता ' तथा कोंकणी ' ता ' में रूप तथा अर्थ की दृष्टि से समानता है । यह क्रिया तथा विशेषण अर्थ में प्रयुक्त होता है, यथा :–

क्रिया अर्थ में :–

हिंदी ' ता '	**कोंकणी ' ता '**
कर : करता	कर : करता
खा : खाता	खा : खाता

' ता ' प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत ' अत् (शतृ) ' प्रत्यय से मानी है । ' ता ' प्रत्ययान्त रूप हिंदी तथा कोंकणी में क्रिया के लिए प्रयुक्त है । हिंदी में ' ता ' प्रत्यय कृदन्त विशेषण के लिए भी प्रयुक्त है ऐसे समय कोंकणी में ' ता ' का ' तो ' होता है, यथा :–

विशेषण अर्थ में :–

हिंदी	**कोंकणी**
दौडता घोडा	धांवतो घोडो
चमकता तारा	चमकतो तारो

कृदन्त विशेषणात्मक ' ता ' प्रत्यय का हिंदी में स्त्रीलिंग करते समय ' ती ' होता है । उसी प्रकार कोंकणी में ' तो ' का स्त्रीलिंग में ' ती ' और नपुंसकलिंग में ' तें ' होता है, यथा –

हिंदी स्त्रीलिंग	**कोंकणी स्त्रीलिंग**	**कोंकणी नपुंसकलिंग**
बहती नदी	व्हांवती न्हंय	व्हांवतें उदक
डूबती नौका	बुडती होडी	बुडतें होडें

हिंदी ' ती ' तथा कोंकणी ' ती '

हिंदी ' ती '	**कोंकणी ' ती '**
बढ : बढती	सूक : सुकती
भर : भरती	भर : भरती

(हिंदी ' बढती ' तथा कोंकणी ' सुकती ' भिन्नार्थक है ।)

इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत स्त्रीलिंग भाववाचक ' ति ' से मानी जाए ।

हिंदी ' ते ' तथा कोंकणी ' त '

हिंदी ' ते ' तथा कोंकणी ' त ' अर्थ की दृष्टि से समान है, यथा :– हिंदी का ' वह हँसते जाता है । ' वाक्य कोंकणी में ' तो हांसत वता. ' होगा ।

हिंदी ' ते '	**कोंकणी ' त '**
डूब : डूबते	बूड : बुडत
गिर : गिरते	पड : पडत

उपर्युक्त हिंदी का ' वह हँसते जाता है । ' वाक्य संस्कृत में ' सः हसन् गच्छति ।' होगा । ' हसन् ' रूप ' अत् (शतृ) ' प्रत्ययान्त है । हिंदी ' ते ' तथा कोंकणी ' त ' का विकास ' अत्(शतृ) ' से माना जा सकता है ।

हिंदी ' न ' तथा कोंकणी ' ण '

हिंदी ' न ' तथा कोंकणी ' ण ' में दन्त्य तथा मूर्द्धन्य की दृष्टि से अंतर है ।

हिंदी ' न '	**कोंकणी ' ण '**
बेल : बेलन	धांक : धांकण (झांकण)
कह : कहन	न्हा : न्हाण

(उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी शब्द भिन्नार्थक हैं ।)

डा. हार्नले ने ' न ' का विकास संस्कृत अनीय > प्रा. ' अणीय ' अथवा ' अणिय ' अथवा ' अणअ ' से माना है[४२]।

श्री कामताप्रसाद गुरु ' न ' का विकास कृदन्त ' अन ' प्रत्यय से मानते हैं [४३] ।

इनकी व्युत्पत्ति संस्कृत भाववाचक नपुं. ' अन (ल्युट्) ' प्रत्यय से मानना उचित है । हिंदी ' बेलन ' तथा कोंकणी ' धांकण (झांकण) ' वस्तुविषयक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हैं । पाणिनि के 'करणाधिकरणयोश्च (३।३।११७) ' सूत्र से हिंदी ' बेलन ' तथा कोंकणी ' धां (झां)कण ' की उपपत्ति ठीक होती है । अतः ' न ' तथा ' ण ' करणवाचक साधन अर्थ में भी प्रयुक्त माना जा सकता है ।

हिंदी ' नी ' तथा कोंकणी ' णी '

हिंदी ' नी '	**कोंकणी ' णी '**
कर : करनी	कर : करणी
माँग : मँगनी	माग : मागणी

कोंकणी ' णी ' की तरह ' गोरख–बानी ' में ' णी ' युक्त शब्द मिलता है, यथा :– तिस मरणी मरौ [४४] ।

इनकी व्युत्पत्ति ' न ' तथा ' ण ' की तरह है ।

हिंदी ' या ' तथा कोंकणी ' लो, इल्लो (लिल्लो), लेलो(ललो) '

हिंदी ' या '	**कोंकणी ' लो, इल्लो ' लेलो**
खा : खाया	खा : खालो, खालिल्लो, खालेलो
कर : किया	कर : केलो, केलिल्लो, केलेलो

इसके सिवा हिंदी में ' या ' के बदले ' आ ' का प्रयोग होता है । इसका स्पष्टीकरण पूर्व दिया है (देखिए, पृ. ३३८) ।

हिंदी ' या ' और ' आ ' प्रत्यय अपूर्ण भूतकाल छोडकर शेष सामान्य भूत तथा

भूतकालिक कृदन्त विशेषण के लिए प्रयुक्त हैं। कोंकणी में 'लो' सामान्य भूत के लिए तथा 'इल्लो (जेविल्लो)' और 'लेलो (जेवलेलो)' पूर्ण भूतकाल तथा भूतकालिक कृदन्त विशेषण के लिए प्रयुक्त हैं।

हिंदी 'या' प्रत्यय की व्युत्पत्ति संस्कृत 'त(क्त), इत(इ+क्त)' से विकसित हैं।

प्रा. कुलकर्णी ने मराठी में भूतकालीन 'ल' प्रत्यय को स्वार्थ में माना है[४५]।

कोंकणी के उपर्युक्त 'लो, इल्लो' संस्कृत 'त(क्त), इत (इ+क्त)' से विकसित हैं। प्राकृत में 'त' के 'अ, द, त, य' प्राप्त होते हैं[४६]। संस्कृत में 'त' का 'ल' हुए उदाहरण तीन प्राप्त हैं। एक उदाहरण सूत्रकार पाणिनि ने बताया है तथा दो वार्तिककार ने बताये हैं[४७], यथा :– 'फुल्ल, संफुल्ल, उत्फुल्ल'। पालि में 'रुहादि' धातुओं से 'त' का 'ळ' विधान किया है[४८]। 'त' प्रत्यय का 'ल' हुआ एक ही उदाहरण प्राकृत में प्राप्त है[४९], यथाः–सं. पलितं>प्रा. पलिलं। 'त' तथा 'द' का 'ल' होने की प्रवृत्ति प्राकृत में प्राप्त है[५०]। प्रा. चिपळूणकर भी मराठी में भूतकालिक 'ल' का विकास संस्कृत 'त(क्त)' से मानते हैं[५१]। अर्थात् कोंकणी 'ल' का विकास सं. 'त' से मानने में आपत्ति नहीं है।

हिंदी 'नेवाला' तथा कोंकणी 'णारो'

हिंदी 'नेवाला' तथा कोंकणी 'णारो' प्रत्यय संज्ञा तथा विशेषण रूप में प्रयुक्त है। हिंदी 'नेवाला' में 'ना' का विकृत रूप 'ने' और 'वाला' (ने+वाला) तथा कोंकणी 'णारो' में 'ण+आरो' है।

हिंदी 'नेवाला'	**कोंकणी 'णारो'**
गा : गानेवाला	गा : गाणारो
खा : खानेवाला	खा : खाणारो

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी कृत् प्रत्ययों के सिवा हिंदी तथा कोंकणी में अनेक प्रत्यय ऐसे हैं, जो हिंदी में प्राप्त हैं वे कोंकणी में प्राप्त नहीं हैं, और जो कोंकणी में प्राप्त हैं वे हिंदी में प्राप्त नहीं हैं, यथा :–

हिंदी में प्राप्त होने वाले और कुछ कृत् प्रत्यय –

आप, आपा – मिलाप, पुजापा, जलापा
आवना – डरावना, सुहावना, लुभावना
आवा – भुलावा, डरावा, बुलावा, दिखावा
आस, आसा – ऊँघास, प्यास, रुँआसा
आहट – मुस्कराहट, घबराहट, चिरचिराहट
इया – जडिया, लखिया, धुनिया
ऊ – खाऊ, रट्टू, बिगाड़ू, काटू
एरा – लुटेरा, बसेरा, कमेरा

औता – चुकौती, चुनौती
औना – बिछौना, खिलौना
औवल – बुझौवल, मिचौवल

कोंकणी में प्राप्त होने वाले और कुछ कृत् प्रत्यय –

आणें – दुखाणें, उठाणें, फुटाणें
आवळ – बांदावळ, मांडावळ, मोडावळ,
आवो – न्हिदावो, देखावो
ईक – सोशीक, त्रासीक, सडीक
ईत – सोबीत, बुडीत, पडीत, कळीत
उं – करुं, धरुं, विचारुं
उंक – करुंक, धरुंक
को – पोसको, कुसको, तुटको, मोडको
गो – नावडगो, बाटगो, नाडगो
णूक – फ़िडणूक, वागणूक, चलणूक
णें – देणें, घेणें, पेटणें, गाळणें, लाटणें
णो – देखणो, राखणो, जळवणो, नागवणो
प – शिकप, करप, वाचप, वचप
पी – शिकपी, करपी, वाचपी, वचपी
वंक – जेवंक, खावंक, उलोवंक

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी में और भी अनेक तद्भव कृत् प्रत्यय प्राप्त हैं।

(३) देशज् कृत् प्रत्यय

हिंदी तथा कोंकणी में कुछ देशज कृत् प्रत्यय प्राप्त हैं, यथा :–

हिंदी में प्राप्त होने वाले देशज कृत् प्रत्यय –

अक्कड – पियक्कड, भुलक्कड, घुमक्कड
अंकू – डरंकू, लडंकू, पढंकू
आक – वैराक, लडाक
आकू – लडाकू, उडाकू
इयल – अडियल, मरियल, सडियल

कोंकणी में प्राप्त होने वाले देशज कृत् प्रत्यय –

आट – चकचकाट, लखलखाट, गडगडाट
आडी – नासाडी
आडो – चुराडो
ईव – जाणीव
ओव – जळोव, चरोव

४) विदेशी कृत् प्रत्यय

हिंदी में विदेशी कृत् प्रत्यय अत्यल्प है, यथा :–

हिंदी –

गाह – चरागाह

गी – देनगी

दार – खरीददार

हिंदी ' देनगी ' शब्द कोंकणी में ' देणगी ' रूप में प्राप्त है। कोंकणी ' पोटगी ' में भी ' गी ' प्रत्यय है।

संक्षेप में –

(१) हिंदी तथा कोंकणी में तत्सम, तद्भव और विदेशी उपसर्ग प्राप्त हैं। कोंकणी की अपेक्षा हिंदी में विदेशी उपसर्ग अधिक हैं।

(२) हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त बहुत से उपसर्ग प्रायः समान है, फिर भी कुछ उपसर्ग असमान है।

(३) हिंदी तथा कोंकणी में तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी प्रत्यय प्राप्त हैं।

(४) हिंदी तथा कोंकणी में कुछ प्रत्यय समान हैं तो कुछ प्रत्यय असमान हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१) श्री बा. भ. बोरकर – कोंकणिची उतरावळ, पृ. १८
२) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १२५
३) वही, पृ. ११९, १२०
४) आर. जी. भार्गव (कम्पाइल्ड) – पाप्युलर माडर्न डिक्शनरी पृ. ९४६, ९४७, ३६९, ३७६
५) डा. हार्नले – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द गौडियन लैंग्वेजस्, पृ. १०५
६) बीम्स – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द माडर्न आर्यन लैंग्वेजेस् आफ इंडिया भाग २, पृ. ७
७) डा. तगारे – हिस्टारिकल ग्रामर आफ अपभ्रंश, पृ. ११०
८) पं. शालिग्राम उपाध्याय (अनुवादक) – अपभ्रंश व्याकरण, पृ. १, सू. क्र. ३३०
९) पाणिनि महामुनि विरचित – अष्टाध्यायी सूत्रपाठ, पृ. ११९, सू. क्र. ५/२/१२७
१०) डा. चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज्, पृ. ६६१
११) डा. हार्नले – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द गौडियन लैंग्वेजस्, पृ. ११२
१२) एस्. एच्. केलाग – ए ग्रामर आफ द हिंदी लैंग्वेज, पृ. ३५३
१३) भिक्षु जगदीश काश्यप – पालि महाव्याकरण, पृ. २०५
१४) श्री भट्टोजी दीक्षित – सिद्धान्त कौमुदी, पृ. १५९, स्. क्र. ५/१/१२७ (भाव अर्थ के लिए देखिए, वही, पृ. १६०, सू. क्र. ५/१/११९)
१५) वही, पृ. १६०, सू. क्र. ५/१/१३५
१६) डा. चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज्, पृ. ६५६
१७) डा. हार्नले – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द गौडियन् लैंग्वेजेस्, पृ. १५३
१८) भिक्षु जगदीश काश्यप – पालि महाव्याकरण, पृ. २०४
१९) आर्थर एन्थोनी मैकडानल – वैदिक व्याकरण (हिंदी अनुवाद), पृ. ३४५, ३४६
२०) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. २५६, ४७७
२१) डा हार्नले – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द गौडियन् लैंग्वेजेस्, पृ.
२२) डा. चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज, परिच्छेद क्रमांक – ४१६ – ४१७
२३) डा. हार्नले – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द गौडियन लैंग्वेजेस्, परिच्छेद क्रमांक – २४४–२४८; डा. चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज, परिच्छेद क्रमांक – ४१६ – ४१७
२४) श्री भट्टोजी दीक्षित – सिद्धान्त कौमुदी, पृ. १६९, सू. क्र. ५/२/१२५ तथा पृ. १६७, सू. क्र. ८/२/९६
२५) डा. चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलमेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज, पृ. ६७२
२६) वही, परिच्छेद क्रमांक ४१८

२७) वही – परिच्छेद क्रमांक ४४२
२८) डा. वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. २३९
२९) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. १२९
३०) एस्. केलाग – ए ग्रामर आफ द हिंदी लैंग्वेज् पृ. ३५३
३१) डा. हार्नले – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द गौडियन लैंग्वेजस्, पृ. ११२
३२) डा. चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज् पृ. ६६१
३३) श्री भट्टोजी दीक्षित – सिद्धान्त कौमुदी, पृ. ३४७ सू. क्र. ३/३/१०८
३४) डा. हार्नले – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द गौडियन् लैंग्वेजेस्, पृ. १५६
३५) डा. चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज्, पृ. ६६९
३६) पाणिनि महामुनिविरचित – अष्टाध्यायी सूत्रपाठ, पृ. ५२, सू. क्र. ३/२/१७३
३७) डा. हार्नले – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द गौडियन लैंग्वेजस्, पृ. ११३
३८) बीम्स – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द माडर्न आर्यन लैंग्वेजेस् आफ इंडिया, भाग २, पृ. ६३
३९) श्री भट्टोजी दीक्षित – सिद्धान्त कौमुदी, पृ. ३४५
४०) वही, पृ. ३४७
४१) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २४९
४२) डा. हार्नले – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द गौडियन लैंग्वेजस, पृ. १५३
४३) श्री कामता प्रसाद गुरु – हिंदी व्याकरण, पृ. ३६३
४४) डा. पीतांबर दत्त बडथ्वाल – गोरखावानी, पृ. ११
४५) प्रा. कुलकर्णी – भाषाशास्त्र आणि मराठी भाषा, पृ. २१९
४६) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. ३१९ से ३२२ तक
४७) श्री भट्टोजी दीक्षित–सिद्धान्त कौमुदी, पृ. ३०६, सू. क्र. ८/२/५५, ७/४/८९
४८) भिक्षु जगदीश काश्यप – पालि महाव्याकरण, पृ. १४६
४९) डा. नेमिचंद्र शास्त्री – अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृ. ११४
५०) वही, पृ. ११४, ११६
५१) प्रा. कृष्णशास्त्री चिपळूणकर – मराठी व्याकरणावर निबंध, पृ. ९४

अध्याय ९

अव्यय

संस्कृत में 'अव्यय' के संबंध में कहा है :– "सदृशं त्रिषु लिंगेषु सर्वासु च विभक्तिषु। वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥" अर्थात् जो शब्द लिंग, विभक्ति तथा वचन के अनुसार विकार को प्राप्त नहीं होता वह 'अव्यय' है। पाणिनि ने अपने ग्रंथ में अव्ययों के भेद नहीं दिखाये हैं। वहाँ 'स्वरादि' शब्दों तथा 'निपातों' को 'अव्यय' संज्ञा दी है[१]। इसके सिवा अन्य कुछ शब्दों को अव्ययत्व प्राप्त करा देनेवाले सूत्र कहे हैं[२]। फिर भी उन्होंने अव्ययों का विभाजन नहीं किया है। परंतु आधुनिक व्याकरण ग्रंथों में अव्यय चार भागों में विभक्त किये जाते हैं, जैसे :–'(१) क्रियाविशेषण अव्यय, (२) संबंधबोधक अव्यय, (३) समुच्चयबोधक अव्यय' और (४) 'विस्मयादिबोधक अव्यय'[३]।

यहाँ नीचे उपर्युक्त चारों भेदों के आधार पर यथाक्रम कुछ अव्ययों का परिचय प्रस्तुत किया है।

(१) क्रियाविशेषण अव्यय

हिंदी तथा कोंकणी में (अ) तत्सम, (आ) अर्द्धतत्सम, (इ) तद्भव और (ई) विदेशी क्रियाविशेषण प्राप्त हैं। नीचे क्रमशः कुछ क्रियाविशेषणों का विवरण प्रस्तुत है।

(अ) तत्सम क्रियाविशेषण अव्यय –

आजकल हिंदी में संस्कृत तत्सम क्रियाविशेषण अव्यय बहुत प्रयुक्त हैं, यथा :– 'सदा, सदैव, सर्वदा, सर्वत्र, बहुधा, अति, किंचित्, प्रायः, बहुत, सहसा, स्वतः, स्वयम्, यथाशक्ति, कदापि, अकस्मात्, वस्तुतः, कदाचित्, संभवतः, न, सर्वथा, यथार्थतः, अतः, क्रमशः, अत एव' इत्यादि।

परंतु इस प्रकार परिनिष्ठित हिंदी में प्राप्त होने वाले संस्कृत तत्सम क्रियाविशेषण अव्यय कोंकणी में प्रायः प्राप्त नहीं हैं।

(आ) अर्द्धतत्सम क्रियाविशेषण अव्यय –

संस्कृत के कुछ अव्ययों के अंतिम स्वर में बदल अथवा अंतिम व्यंजन का लोप होकर अर्द्धतत्सम रूप में प्रयोग होता है, यथा :– 'समीप(सं. समीपे)', 'दूर (सं. दूरे)',

' नित्य (सं. नित्यम्) ', ' सतत (सं. सततम्) ', ' निरंतर (सं. निरंतरम्) ', अधि
(सं. अधिकम्) ' आदि ।

कोंकणी में भी अर्द्धतत्सम रूप में क्रियाविशेषण अव्यय प्राप्त होते हैं, यथा :– ' स
(सं. सदा) ', ' अती (सं. अति) ', ' स्वता (सं. स्वतः) ', ' सतत (सं. सततम्) '
' नित्य (सं. नित्यम्) ' आदि ।

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी में अर्धतत्सम क्रियाविशेषण अव्यय प्राप्त होते हैं ।

(इ) तद्भव क्रियाविशेषण अव्यय --

नीचे हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त कुछ तद्भव क्रियाविशेषणों का विवरण प्रस्तुत कि
है –

हिंदी तथा कोंकणी ' अचानक '

हिंदी ' अचानक ' के संबंध में डा. धीरेंद्र वर्मा लिखते हैं [३] :– ''अचानक की व्युत्पा
स्पष्ट नहीं है । कुछ लोग इसका संबंध सं. अ + चित् ' बिना सोचे ' से जोडते हैं और कु
सं. चमत्कार > हिं. चौंक के निकट इसे बताते हैं, किंतु दोनों व्युत्पत्तियाँ अत्यन्त संदि
हैं ।''

हिंदी ' अतरसों ' या ' तरसों ' तथा कोंकणी ' अवेरां ' और ' अवेर '

डा. धीरेंद्र वर्मा ' अतरसों ' का विकास सं. ' अन्तर् + श्वस् ' से तथा ' तरसों ' व
विकास सं. ' त्रि + श्वस् ' से मानते हैं [४]।

डा. भोलानाथ तिवारी सं. ' अति + परश्वस् ' से हिं. ' अतरसों ' का तथा
अतरसों ' से ' तरसों ' का विकास मानते हैं [५]।

हिंदी ' अतरसों ' के अर्थ में, कोंकणी में ' अवेरां ' और ' अवेर ' अव्ययों का प्रयो
होता है । ये दोनों रूप सं. ' अ + परश्वस् ' से विकसित माने जा सकते हैं ।

हिंदी ' अब, कब, जब, तब ' तथा कोंकणी ' येन्ना (एन्ना, यन्ना), केन्ना, जेन्ना, तेन्ना '

डा. चटर्जी ' अब ' आदि में प्राप्त ' ब ' का संबंध वैदिक सं. एव, एवा > सं. एवं >
प्रा. एव्वं, एब्बं ' से मानते हैं [६]।

बीम्स के अनुसार ' ब ' अंश सं. ' बेला ' से विकसित है [७]। डा. भोलानाथ तिवारी
भी इस मन्तव्य में अपनी सहमति प्रगट की है [८]।

कोंकणी ' येन्ना ' तथा ' तेन्ना ' अव्यय संस्कृत ' इदानीं ' तथा ' तदानीं ' से

त्पन्न माना जा सकता है। संस्कृत में जिस प्रकार ' इदानीं, तदानीं ' शब्द हैं वैसे कदानीं, यदानीं ' शब्द नहीं है, परंतु ' कदा, यदा ' शब्द उपलब्ध हैं। इन ' कदा, दा ' से कोंकणी में ' केन्ना, जेन्ना ' अव्यय विकसित होना संभव नहीं है। फिर भी स्कृत के ' इदानीं, तदानीं ' से विकसित ' न्ना ' प्रत्यय ' केन्ना, जेन्ना ' में भी माना जा कता है। आज भी गोवा के क्रिश्चन व्यक्तियों की बोली में ' येदना, केदना, जेदना, दना ' अव्ययों का व्यवहार पाया जाता है।

हिंदी ' आगे ' तथा कोंकणी ' फुडें '

हिंदी ' आगे ' अव्यय के अर्थ में कोंकणी में ' फुडें ' अव्यय है। हिंदी ' आगे ' तथा कोंकणी ' फुडें ' शब्द अर्थ की दृष्टि से समान होते हुए भी रूप की दृष्टि से भिन्न हैं। इन दोनों के विकास के स्रोत अलग-अलग हैं।

हिंदी ' आगे ' संस्कृत ' अग्रे ' > प्रा. ' अग्गे ' से विकसित है।

कोंकणी ' फुडें ' संस्कृत ' प्रथमम् ' > प्रा. ' पुढुम् ' से विकसित है। इसका विकास शायद संस्कृत ' पुरतस् ' से भी माना जा सकता है।

हिंदी ' आज ' तथा कोंकणी ' आज ' या ' आयज '

हिंदी तथा कोंकणी ' आज ' का संबंध संस्कृत ' अद्य ' > पा., प्रा. ' अज्ज ' से है।

कोंकणी में ' आज ' के बदले ' आयज ' अव्यय का भी प्रयोग किया जाता है, जिसका संबंध संस्कृत ' अद्य ' से है। ' आज ' में ' य ' आगम होकर ' आयज ' हुआ है। कोंकणी में एक विशेष प्रवृत्ति दिखायी देती है कि कुछ शब्दों के मध्य में ' य ' आगम प्राप्त होता है, यथा :– ' येता : येयलो '; ' घेता : घेयलें '; ' वता : वयता '; ' जाता : जायना '; ' धुता : धुयता ' आदि। इसी प्रकार ' आज ' का ' आयज ' हुआ है।

हिंदी ' ऊँच ' तथा कोंकणी ' ऊंच, उंच '

इनका विकास संस्कृत ' उच्चैस् ' से हुआ है।

हिंदी ' ऊपर ' तथा कोंकणी ' वैर ' या ' वयर '

संस्कृत ' उपरि ' से हिंदी ' ऊपर ' तथा कोंकणी ' वैर ' या ' वयर ' अव्यय विकसित हैं। अर्थ की दृष्टि से हिंदी ' ऊपर ' तथा कोंकणी ' वैर ' या ' वयर ' में समानता है, परंतु हिंदी तथा कोंकणी में विकसित रूपों में अन्तर है। इनका विकास इस प्रकार है , यथा :– सं. ' उपरि ' > पा. ' उप्परि ' > प्रा. ' उप्परि, उवरि ' > अप.

‘ उप्परि, उवरि ’ > हिंदी ‘ ऊपर ’ तथा कोंकणी ‘ वैर ’ या ‘ वयर ’ ।

हिंदी ‘ कल ’ तथा कोंकणी ‘ काल ’ और ‘ फाल्यां ’

हिंदी ‘कल’ तथा कोंकणी ‘ काल ’ अव्यय < प्रा. कल्ल < पा. कल्लं < सं. कल्यं से संबंधित है। हिंदी ‘ कल ’ तथा कोंकणी ‘ काल ’ में अकार तथा आकार की दृष्टि से अन्तर है। इतना ही नहीं, तो हिंदी ‘ कल ’ तथा कोंकणी ‘ काल ’ में अर्थ की दृष्टि से भी अन्तर है। संस्कृत में ‘ कल्यं ’ शब्द का अर्थ है ‘ उषःकाल ’। इस ‘ कल्य ’ से निष्पन्न हिंदी ‘ कल ’ शब्द अर्थ-परिवर्तन के सार्थ गुजरे हुए तथा आने वाले दोनों दिनों के लिए प्रयुक्त होता है; परंतु कोंकणी ‘ काल ’ शब्द केवल गुजरे हुए दिन के लिए प्रयुक्त है और आने वाले दूसरे दिन के लिए कोंकणी में ‘ फाल्यां ’ शब्द है जो प्रायः संस्कृत ‘प्रातःकाल शब्द से निष्पन्न माना जा सकता है।

यहाँ हिंदी ‘ कल ’ शब्द में प्राप्त होने वाले दो अर्थों के संबंध में एक कल्पना की जा सकती है। हिंदी ‘ कल ’ शब्द संस्कृत ‘ कल्यं ’ से विकसित है। संस्कृत ‘ कल्य ’ शब्द का अर्थ है ‘ तडका, सबेरा ’। इस प्रकार ‘ कल्य ’ शब्द संस्कृत में दो दिनों के संधिकाल में व्यवहृत है। कोंकणी में इसे ‘ पाडसावेलो कुंवाळो ’ कह सकते हैं। इसका अर्थ है ‘ जहाँ दो छत ऊपरी भाग में इकट्ठे जोडे जाते हैं उसी ऊपरी भाग पर स्थित कुम्हडा ’। अर्थात् छतों के ऊपरी मध्यभाग में स्थित कुम्हडा दोनों बाजू में से किसी भी ओर लुढक सकता है। परंतु यह कुम्हडा अभी तक लुढका नहीं है। और लुढक जाने की आशंका में दोनों ओर स्थित लोगों को उसने उसी स्थिति में दबाये रखा है। इस प्रकार दो दिनों की पूर्वसंध्या में स्थित ‘ कल्य ’ शब्द अपने से विकसित हिंदी ‘ कल ’ शब्द को दो अर्थ देता है, जैसे :– ‘ गया दिन ’ तथा ‘ आने वाला दिन ’। अर्थात् इन दो अर्थों में हिंदी ‘ कल ’ शब्द का प्रयोग होता है। परंतु कोंकणी में संस्कृत ‘ कल्य ’ शब्द से विकसित ‘ काल ’ शब्द एक ही ओर लुढक जाने के कारण केवल एक ही ‘गया दिन ’ के अर्थ में प्रयुक्त है; और ‘ आने वाला दिन ’ के अर्थ में कोंकणी में ‘ फाल्यां ’ शब्द है जिसका विकास संस्कृत ‘प्रातःकाल’ शब्द से माना है, (देखिए ऊपर का परिच्छेद)।

इस प्रकार हिंदी ‘ कल ’ तथा कोंकणी ‘ काल ’ में रूप तथा अर्थ की दृष्टि से थोडा-सा अन्तर प्राप्त है।

हिंदी ‘जहाँ, तहाँ, कहाँ, यहाँ, वहाँ ’ तथा कोंकणी ‘ जैं ’ या ‘ जंय ’, ‘ थैं ’ या ‘ थंय ’, ‘ खैं ’ या ‘ खंय ’, ‘हांगा (हंय)’

हिंदी ‘ जहाँ, कहाँ ’ आदि में प्राप्त ‘ हाँ ’ अंश की व्युत्पत्ति के संबंध में मतभेद हैं।

डा. चटर्जी सं. ‘ यत्र, तत्र, अत्र ’ में प्राप्त ‘ त्र ’ से ‘ हां ’ का विकास मानते हैं[९]।

बीम्स संस्कृत ‘ स्थाने ’ से ‘ हाँ ’ विकसित मानते हैं[१०]।

डा. भोलानाथ तिवारी ने ' स्मिन् ' प्रत्यय से ' हाँ ' का विकास माना है। हिंदी वहाँ ' के संबंध में उनकी कल्पना है कि यह कल्पित ' अवस्मिन् ' से विकसित माना ाए। इस प्रकार उन्होंने संस्कृत ' यस्मिन्, तस्मिन्, कस्मिन्, अस्मिन् ' तथा कल्पित ' वस्मिन् ' से हिंदी ' जहाँ, तहाँ, कहाँ, यहाँ ' तथा ' वहाँ ' का विकास माना है[११]।

इस प्रकार डा. भोलानाथ तिवारी ने कल्पित ' अवस्मिन् ' रूप से ' वहाँ ' का विकास ाना है। परंतु इसकी अपेक्षा संस्कृत ' अदस् ' शब्द के ' अमुष्मिन् ' रूप से ' वहाँ ' का कास मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इसका स्पष्टीकरण ' वह ' की व्युत्पत्ति को ष्ट करते समय दिया है (देखिए, पृ. २१९)। अतः ' वहाँ ' का विकास संस्कृत अमुष्मिन् ' से माना जाना चाहिए।

इन रूपों के संबंध में एक और संभावना हो सकती है। संस्कृत में प्राप्त पंचम्यर्थ देने ाले ' यस्मात्, तस्मात्, कस्मात् ' रूपों से अपभ्रंश में ' जहाँ, तहाँ, कहाँ ' रूप विकसित ै। इन अपभ्रंश शब्दों से हिंदी में ' जहाँ, तहाँ, कहाँ ' तथा इनके प्रभाव से ' यहाँ, वहाँ ' वेकसित मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इस कल्पना में अपभ्रंश तथा हिंदी में प्राप्त रूपों में अर्थान्तर प्राप्त होता है, वह अर्थ-परिवर्तन के आधार पर स्वीकारा जा सकता है।

कोंकणी ' जैं, थैं, खैं ' का विकास उपर्युक्त हिंदी के ' जहाँ, तहाँ, कहाँ ' की तरह ' यस्मात्, तस्मात्, कस्मात् ' से माना जा सकता है। फिर भी रूप तथा अर्थ की दृष्टि से ' यस्मिन्, तस्मिन्, कस्मिन् ' से ' जैं, थैं, खैं ' की व्युत्पत्ति मानना अधिक युक्तियुक्त होगा। संस्कृत ' यस्मिन् , तस्मिन् , कस्मिन् ' से अपभ्रंश में ' जहिं, तहिं, कहिं ' रूप विकसित हैं। इन रूपों में प्राप्त ' ह ' का लोप होकर ' जइं, तइं, कइं ' होता है। हकार-लोप होते समय ' तइं, कइं ' का पूर्व व्यंजन महाप्राण बनता है, जैसे :– ' थइं, खइं '। शायद ' जइं ' से भी ' झइं ' >' झैं ' होकर फिर ' झ ' का अल्पप्राण ' ज ' होकर ' जंय ' हुआ होगा। ' जइं, थइं, खइं ' से ' जैं, थैं, खैं ' होकर ' जंय, थंय, खंय ' हुआ होगा। श्री वालावलकर लिखित पुस्तकों में ' जैं, थैं, खैं, रूप मिलते हैं तो आधुनिक कोंकणी पुस्तकों में प्रायः ' जंय, थंय, खंय ' रूप मिलते हैं।

'हांगा (हंय) ' अव्यय के संबंध में नीचे अलग से विचार किया है।

कोंकणी ' हांगा ' रूप ' जैं ' या ' जंय ' आदि रूपों के समान नहीं है। कोंकणी ' जंय, थंय, खंय ' से सादृश्य रखने वाला दूसरा रूप कोंकणी में उपलब्ध है, जैसे ' हंय '। ' हंय ' रूप संस्कृत ' अस्मिन् ' से विकसित हो सकता है। यह शब्द गोवा में पेडणें की ओर बोला जाता है, तथा वहाँ के लेखकों के लेखन में प्राप्त होता है। परंतु कोंकणी में प्रायः ' हांगा ' शब्द का प्रयोग मिलता है। इतना ही नहीं गोवा के खिश्चन समाज की बोली में ' हांगा ' के बदले ' हिंगा, इंगा ' तथा ' थंय ' के बदले ' तिंगा ' का प्रयोग होता है।

प्रश्न है, ' हांगा ' आदि में ' गा ' कहाँ से आ टपका ? ऐसा लगता है, शायद सं. ' अस्मिन् ' > अप. ' आयहिं ' में प्राप्त ' ह ' का ' घ् ' > ' ग् ' तथा अन्त में ' आ '

स्वर प्राप्त होकर ' गा ' का विकास हुआ होगा। फिर भी यह व्युत्पत्ति संतोषप्रद नहीं है।

एक और बात यहाँ दृष्टव्य है। ' नालंदा विशाल शब्द-सागर ' कोश में ' यहाँ ' अर्थ में, हिंदी में ' ईंघे ' शब्द मिलता है[१२]। यह क्रिश्चन समाज की बोली में प्राप्त ' हिंगा, इंगा ' से साम्य रखता है। अतः हिंदी ' ईंघे ' में प्राप्त ' घ ' के संबंध में भी विचार-मंथन आवश्यक है जो कोंकणी को भी लाभप्रद होगा।

हिंदी ' तुरंत ' तथा कोंकणी ' तूर्त '

संस्कृत ' त्वरितम् ' से हिंदी ' तुरंत ' तथा कोंकणी ' तूर्त ' विकसित हैं।

हिंदी ' नहीं ' तथा कोंकणी ' न्हय '

हिंदी ' नहीं ' तथा कोंकणी ' न्हय ' का विकास संस्कृत ' नहि ' से है।

हिंदी ' मत ' तथा कोंकणी ' नाका '

हिंदी ' मत ' तथा कोंकणी ' नाका ' निषेधार्थक है। हिंदी ' मत ' का विकास ' मा+अति ' से संभावित माना गया है।

कोंकणी ' नाका ' संस्कृत ' नकिस् ' से विकसित माना जा सकता है। ' नकिस् ' रूप ' सिद्धान्त कौमुदी ' में पृष्ठ ४६ पर है। ' नकिस् ' शब्द का अर्थ ' वैदिक ग्रामर ' में पृष्ठ ६५९ पर ' कोई नहीं, बिल्कुल नहीं ' दिया है।

हिंदी ' मत ' तथा कोंकणी ' नाका ' में रूपभेद है परंतु अर्थभेद नहीं है। हिंदी में ' नाका ' संज्ञावाची शब्द है, परंतु उसका अर्थ है ' चौकी '। कोंकणी में यह ' नाको ' रूप में व्यवहृत है।

हिंदी ' परसों ' तथा कोंकणी ' परां ' और ' पैर(पयर) '

हिंदी ' परसों ' तथा कोंकणी ' परां ' अव्यय संस्कृत ' परश्वः ' से विकसित हैं। हिंदी बोलियों में ' परौं ' रूप अधिक प्रचलित है। इसका साम्य कोंकणी के ' परां ' रूप से अधिक दिखायी देता है।

संस्कृत में ' परश्वः ' शब्द का अर्थ ' आने वाला दूसरा दिन ' होता है। परंतु हिंदी में ' परसों ' शब्द आनें वाले दूसरे दिन तथा गुजरे हुए दूसरे दिन के लिए प्रयुक्त होता है तो कोंकणी में ' परां ' शब्द आने वाले दूसरे दिन के लिए प्रयुक्त है और ' पैर ' या ' पयर ' शब्द गुजरे हुए दूसरे दिन के लिए प्रयुक्त हैं। ' पैर ' या ' पयर ' का विकास भी सं. ' परश्वः ' से माना जा सकता है।

संस्कृत ' परश्वः ' से विकसित हिंदी ' परसों ' शब्द में दो अर्थ प्राप्त होने के लिए कोई कारण नहीं दिखायी देता फिर भी ' कल ' शब्द के दो अर्थों (इसके लिए देखिए, हिंदी ' कल ', पृ. ४२०) का आधार लेकर परसों शब्द ने भी शायद अपने में बदल कर लिया

होगा जिससे परसों शब्द में भी दो अर्थ प्राप्त हुए :– ' आने वाला हुआ दूसरा दिन ' तथा ' गुजरा हुआ दूसरा दिन '। परंतु कोंकणी में संस्कृत ' परश्वः ' से दो शब्द विकसित हुए, जैसे :– ' पैर(पयर) ' और ' परां '। इन दोनों शब्दों ने एक एक अर्थ ले लिया। पैर ' गुजर हुए दूसरे दिन ' के लिए तो परां ' आनेवाले दूसरे दिन ' के लिए प्रयुक्त है। कोंकणी में ' परां ' के बदले ' परवां ' शब्द का भी प्रयोग होता है जो संस्कृत ' परश्वः ' अथवा ' परवासरे ' से निष्पन्न हो सकता है।

हिंदी ' भी ' तथा कोंकणी ' बी '

हिंदी ' भी ' तथा कोंकणी ' बी ' का विकास संस्कृत 'अपि ' से हुआ है। सं. ' अपि > पि > हिं. ' भी ' तथा कोंकणी ' बी '।'पि ' से कोंकणी में ' य ' का भी विकास होता है, यथा :– ' रामूय(= राम भी) '; ' तोय(= वह भी) ' आदि।

हिंदी ' बाहर ' तथा कोंकणी ' भायर '

हिंदी ' बाहर ' तथा कोंकणी ' भायर ' का विकास संस्कृत ' बहिर् ' से है। हिंदी ' बाहर ' में ' ह ' लुप्त न होने के कारण ' ब ' जैसे के वैसे रहा, परंतु कोंकणी ' भायर में ' ह ' का महाप्राणत्व अंश लुप्त होने के कारण ' ब् ' का ' भ् ' होकर ' भायर ' हो गया है। ' य् ' आगम है। फिर भी इसे ' इ ' का विकसित रूप मान सकते हैं।

हिंदी ' भीतर ' तथा कोंकणी ' भितर '

हिंदी ' भीतर ' तथा कोंकणी ' भितर ' का विकास संस्कृत ' अभ्यन्तर ' से है। ' अभ्यन्तर ' से प्राकृत में ' भिंतर, भित्तर ' होता है। ' भिंतर ' के अनुस्वार का लोप होने से अथवा ' भित्तर ' के प्रथम ' त् ' का लोप होने से हिंदी में ' भितर ' का ' भि ' दीर्घ (' भीतर ') हुआ है। परंतु कोंकणी ' भितर ' में ' भि ' दीर्घ नहीं हुआ है।

हिंदी ' पीछे ' तथा कोंकणी ' फाटीं '

हिंदी ' पीछे ' संस्कृत ' पश्चात् ' से निष्पन्न है।

कोंकणी ' फाटीं ' संस्कृत ' पृष्ठे ' से संबंधित है। रूप की दृष्टि से हिंदी ' पीछे ' तथा कोंकणी ' फाटीं ' में भिन्नता है परंतु अर्थ की दृष्टि से दोनों में साम्य है।

हिंदी ' सबेरे ' तथा कोंकणी ' सकाळीं '

हिंदी ' सबेरे ' संस्कृत ' सुवेलायां ' अथवा ' सत्वेलायां ' से निष्पन्न है तो कोंकणी ' सकाळीं ' संस्कृत ' सत्काले ' से विकसित है।

(२) संबंधबोधक अव्यय

(अ) तद्भव संबंधबोधक अव्यय

बहुत से क्रियाविशेषण अव्यय संबंधबोधक अव्यय भी होते हैं। यह अन्तर वाक्य में किये हुए प्रयोग के आधार पर जाना जा सकता है। यदि ये अव्यय किसी संज्ञा या संज्ञारूप में प्रयुक्त अन्य शब्दों के साथ आएँ तो संबंधबोधक अव्यय होते हैं, पर यदि स्वतंत्र रूप में आकर क्रिया की विशेषता बतलावें तो क्रियाविशेषण अव्यय होते हैं। कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होती है –

क्रियाविशेषण अव्यय	संबंधबोधक अव्यय
भीतर कौन है ?	घर के **भीतर** कौन है ?
राम **बाहर** है।	राम घर के **बाहर** है।
पहले खेलो।	खाने के **पहले** खेलो।
राम **यहाँ** रहता है।	राम उसके **यहाँ** रहता है।

नीचे कुछ संबंधबोधक अव्ययों का विवरण प्रस्तुत है।

हिंदी ' बीच ' तथा कोंकणी ' मदीं '

हिंदी ' बीच ' का विकास संस्कृत ' विच् ' या ' व्यचस् ' से माना है। कोंकणी ' मदीं ' का विकास संस्कृत ' मध्ये ' से है।

हिंदी ' पास ' तथा कोंकणी ' लागीं '

हिंदी ' पास ' का विकास संस्कृत ' पार्श्वे ' से है तो कोंकणी ' लागीं ' का विकास सं. लग्ने > अप. लग्गहिं से है।

हिंदी ' आदि ' तथा कोंकणी ' आदीं '

दोनों का विकास संस्कृत ' आदि ' से है।

नीचे हिंदी तथा कोंकणी के कुछ संबंधबोधक अव्ययों का अलग-अलग विकास दिखाया है, यथा :–

हिंदी –

' **ओर** ' : इसका विकास संस्कृत ' अवर ' से है।
' **मारे** ' : इसका विकास संस्कृत ' मारितेन ' से है।
' **लिए** ' : यह संस्कृत ' लग्ने ' से विकसित है।
' **साथ** ' : संस्कृत ' सार्थे ' से हिंदी ' साथ ' विकसित है।
' बिना ' : यह संस्कृत ' विना ' से विकसित है।

कोंकणी –

' थावन ' : सं. तद् > प्रा. ता+हिन्तो से विकसित है ।
' साकून ' : सं. ' साकम् ' + प्रा. ' हिन्तो ' से ' साकून ' विकसित है ।
' पासव ' : यह संस्कृत ' पार्श्व ' से विकसित है ।
' पासून ' : ' पास + ऊन(=पार्श्व+हिन्तो) ' से संबंधित है ।
' कडेन ' : कोंकणी ' कड ' में ' न ' प्रत्यय से सिद्ध है ।
' परस ' : इसका विकास संस्कृत ' स्पर्श ' से माना जा सकता है ।
' मेरेन ' : संस्कृत ' मर्यादा ' से ' मेर ' तथा ' न ' प्रत्यय से ' मेरेन ' सिद्ध है ।
' विशीं ' : यह संस्कृत ' विषये ' से संबंधित है ।
' विणें ' : यह संस्कृत ' विना ' से प्रभावित है ।

(आ) विदेशी संबंधबोधक अव्यय

फारसी-अरबी		हिंदी	कोंकणी
–	एवज	एवज	ऐवजीं
–	खातिर	खातिर	खातीर
–	खेरीज	खेरीज	खेरीज
–	तरफ	तरफ	तर्फे, तरफ
–	मारफत	मारफत	मार्फत
–	बगैर	बगैर	बगर
–	सिवा, सिवाय	सिवा, सिवाय	शिवाय
बगल	–	बगल	बगल
बस	–	बस	बस(+पुरो)

३) समुच्चयबोधक अव्यय

(अ) तत्सम समुच्चयबोधक अव्यय –

परिनिष्ठित हिंदी में बहुत से संस्कृत समुच्चयबोधक अव्यय तत्सम रूप में प्राप्त हैं, यथाः– ' एवं, तथा, अथवा, वा, परंतु, किन्तु, अतः, अत एव, यदि, यद्यपि, तथापि, अर्थात् ' आदि ।

परंतु कोंकणी में इस प्रकार के समुच्चयबोधक अव्यय प्रायः उपलब्ध नहीं है ।

(आ) तद्भव समुच्चयबोधक अव्यय –

नीचे हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त कुछ समुच्चयबोधक अव्ययों का अलग-अलग विकास दिखाया है, यथा :–

हिंदी –

' और ' : ' और ' का विकास < प्रा ' अवर ' < सं. ' अपर ' से है।
' जो ' : यह संस्कृत ' यदि ' > प्रा. ' जद ' से विकसित है।
' तो ' : इसका विकास संस्कृत ' ततः ' से हुआ है।

कोंकणी –

'आनी': इसका विकास संस्कृत ' अन्यत् ' से है। ' आनी ' का अर्थ हिंदी में ' और ' है।

' जर, तर ' : इनका विकास संस्कृत ' यर्हि, तर्हि ' से प्राप्त है।
' पुण ' : यह संस्कृत ' पुनः' से संबंधित है।
' परंत ' : यह संस्कृत ' परंतु ' से विकसित है।

(इ) विदेशी समुच्चयबोधक अव्यय

हिंदी में प्राप्त ' कि ', ' व ', ' मगर ', ' ताकि ', ' या ' जैसे अव्यय फारसी-अरबी से प्राप्त हैं। इनमें से ' कि ', ' व ' अव्यय कोंकणी में प्राप्त हैं। कोंकणी में कुछ लोग बोलते समय ' वो ' जैसे अव्यय का प्रयोग करते हैं। ' वो ' अव्यय ' अथवा ' अर्थ में प्रयुक्त होता है। ' वो ' का विकास शायद संस्कृत ' वा ' से हो सकता है।

(४) विस्मयादिबोधक अव्यय

हिंदी विस्मयादिबोधक अव्यय के संबंध में डा. धीरेंद्र वर्मा लिखते हैं[१३]–

'' हिंदी विस्मयादिबोधक अव्ययों का कोई विशेष इतिहास नहीं है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से कुछ शब्द अवश्य रोचक हैं, जैसे :– हिं. दुहाई (दो+हाय); शाबाश (फा. शादबाश)। हिं. ' अरे ' का संबंध द्राविड भाषाओं के ' अडे ' रूप से बतलाया जाता है।'' फिर भी डा. भोलानाथ तिवारी ने कुछ विस्मयादि-बोधक अव्ययों का इतिहास दिखाया है, यथा :– ' ऐं, हैं (सं. अइ) ', ' ओहो (सं. अहो) ', ' जी (सं. जीव)', ' अच्छा (सं. अच्छः) ', ' हाय (सं. हा) ' आदि।

कोंकणी में ' ए, अरे, आरे, शाबास, हाय, वाः, ओ, शेः, बापरे, शीः ' जैसे विस्मयादिबोधक अव्यय प्राप्त हैं।

संक्षेप में –

(१) कोंकणी में प्रायः तत्सम अव्ययों का अभाव है।
(२) हिंदी तथा कोंकणी में विदेशी अव्यय भी प्राप्त हैं।
(३) शेष हिंदी तथा कोंकणी तद्भव अव्ययों में साम्य तथा वैषम्य प्राप्त है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१) श्री भट्टोजी दीक्षित – सिद्धान्तकौमुदी, पृ. ४५
२) वही, पृ. ४६
३) डा. धीरेंद्र वर्मा हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. ३११
४) वही, पृ. ३१०
५) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २६८
६) डा. चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज्, पृ. ८६५
७) बीम्स – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द माडर्न आर्यन लैंग्वेजेस् आफ इंडिया, भाग ३, परिच्छेद क्रमांक ८१
८) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २६६
९) डा. चटर्जी – द ओरिजिन ऐण्ड डेवलप्मेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज्, परिच्छेद क्रमांक, ६०४
१०) बीम्स – ए कम्परेटिव ग्रामर आफ द माडर्न आर्यन लैंग्वेजेस् आफ इंडिया, भाग ३, परिच्छेद क्रमांक ८२
११) डा. भोलानाथ तिवारी – हिंदी भाषा, खंड दो, पृ. २६६
१२) संपादक, श्री नवलजी – नालंदा विशाल शब्द सागर, पृ. ११४
१३) डा. धीरेंद्र वर्मा – हिंदी भाषा का इतिहास, पृ. ३६०

अध्याय १०

शब्द, अर्थ, मुहावरे और कहावतें

दूसरे अध्याय में हिंदी तथा कोंकणी शब्दसमूहों के विकास के संबंध में विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। फिर भी वहाँ हिंदी तथा कोंकणी शब्दों के बारे में जो बातें स्पष्ट नहीं की थीं उन्हें यहाँ स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। इसके अनन्तर हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त होने वाला अर्थांतर स्पष्ट किया है, जिससे हिंदी तथा कोंकणी शब्दों और अर्थों में प्राप्त होनेवाला साम्य और भेद स्पष्ट हो जाएगा। इसके साथ ही इस अध्याय में मुहावरों और कहावतों का भी संक्षेप में परिचय दिया है।

१) शब्द-विचार

ध्वनियों के मेल से वर्ण बनते हैं और वर्णों के मेल से शब्द बनते हैं। भाषा में शब्दों का बडा महत्व होता है। ये शब्द हर एक भाषा की निजी संपत्ति होती है। इसके बल पर भाषा मानव के आंतरिक भावनाओं, गंभीर विचारों और सभी प्रकार के व्यवहारों को प्रगट करती है। अर्थात् जिस भाषा में शब्दों का भंडार जितना बडा और व्यापक होगा उतनी ही वह भाषा सशक्त बनती है। भाषा की व्यापकता और लोक–व्यवहार्यता हर एक भाषा की शब्द-संपत्ति पर निर्भर है। इसलिए आवश्यकतानुसार एक भाषा दूसरी भाषाओं के शब्दों को अपनाती रहती है। अतः पाठ्य भाषा में प्राप्त शब्दों का जब तक पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाता तब तक उस भाषा का ज्ञान अधूरा रह जाता है। किसी भी भाषा पर अधिकार प्राप्त कर लेना चाहें तो उसके शब्द-समूह का ज्ञान प्राप्त करा लेना नितांत आवश्यक है।

हिंदी तथा कोंकणी शब्दों के संबंध में यह विचारणीय है कि इन दोनों भाषाओं में शब्द किस प्रकार प्राप्त हैं। हिंदी तथा कोंकणी में जो शब्द प्राप्त हैं वे कई स्रोतों से प्राप्त हैं। इनमें संस्कृत, देशी, द्राविड, अरबी, फारसी, तुर्की, पुर्तगाली, अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्द आ मिले हैं। काल एवं परिस्थितियों के परिवर्तन में हिंदी तथा कोंकणी भाषाओं के अन्दर उपर्युक्त सभी भाषाओं के शब्द घुल–मिल गये हैं। ये सारे शब्द अब हिंदी तथा कोंकणी शब्द-भंडार के अभिन्न अंग बन गये हैं।

हिंदी तथा कोंकणी में मुख्यतया चार प्रकार से शब्द प्राप्त हैं, जैसे :– (अ) संस्कृत, (आ) देश्य, (इ) द्राविड और (ई) विदेशी। नीचे इनकी जानकारी दे दी है –

(अ) संस्कृत :

हिंदी तथा कोंकणी में संस्कृत शब्द तीन प्रकार के प्राप्त होते हैं, जैसे :– (i) तत्सम,

i) अर्द्धतत्सम और (iii) तद्भव। इनका विवरण नीचे प्रस्तुत है –

) तत्सम –

तत्सम का अर्थ है 'उसके समान अर्थात् संस्कृत के समान'। जो संस्कृत शब्द हिंदी था कोंकणी में ज्यों के त्यों रूप में ग्रहण किये जाते हैं, वे 'तत्सम शब्द' कहलाये जाते , यथा :– 'अक्षर, वर्ण, वीर, माया, योग, देव, भक्त, नाटक, पूर्व, मरण, रस, रथ, रिमल, चित्र, पुण्य, शरीर, ईश्वर, पुस्तक, सूर्य, आकाश, प्रकाश, कथा, कवि, काव्य, तिक्रमण, अभय, असंभव, अवधि, दिवस, प्रवाह, पक्ष, गणित, रत्न, जीवन, धर्म, सुख, ाप, दान, दया, माया, विज्ञान, उपासना, समाधि, गीत, ध्यान, शांति, पक्षी, गुरु, शत्रु, त्य, शब्द, नवीन, नाश, देवी, हार, टीका, पत्र' आदि। ये शब्द संस्कृत में जिस मूल ूप में प्राप्त हैं, उसी रूप में हिंदी तथा कोंकणी में भी प्राप्त हैं।

इस प्रकार के तत्सम शब्द हिंदी तथा कोंकणी में बहुत उपलब्ध होते हैं।

(ii) अर्द्धतत्सम –

कुछ संस्कृत शब्द ऐसे हैं जो थोडे से परिवर्तन के साथ हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त होते हैं, इन्हें 'अर्द्धतत्सम शब्द' कहा जाता है। ये शब्द संस्कृत से हिंदी तथा कोंकणी में एकाध अक्षर में परिवर्तित होकर आते हैं, जैसे :–

संस्कृत	>	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	>	हिंदी	कोंकणी
अभिषेक	>	अभिसेख	अभिशेक	भगवान्	>	भगवान	भगवान
अवधि	>	अवधी	अवधी	तत्त्व	>	तत्व	तत्व
मन्त्र	>	मंत्र	मंत्र	महत्त्व	>	महत्व	महत्व
यशस्	>	यश	यश	उज्ज्वल	>	उज्वल	उज्वल
विद्वान्	>	विद्वान	विद्वान	जगत्	>	जग	जग

(iii) तद्भव –

तद्भव का अर्थ है 'उससे उत्पन्न अर्थात् संस्कृत से उत्पन्न'। जिन संस्कृत शब्दों से वर्णलोप, वर्णागम, वर्णपरिवर्तन एवं वर्णविकार द्वारा नए शब्द-रूप उभर आते हैं, वे 'तद्भव शब्द' कहलाये जाते हैं। उदाहरणार्थ :– संस्कृत 'जिह्वा' शब्द में वर्णविकार होकर हिंदी में 'जीभ' तथा कोंकणी में 'जीब(भ)' रूप विकसित हैं। इसलिए हिंदी 'जीभ' तथा कोंकणी 'जीब(भ) तद्भव शब्द हैं। यहाँ हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त

कुछ तद्भव शब्द संस्कृत शब्दों के साथ प्रस्तुत किये हैं –

संस्कृत	>	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	>	हिंदी	कोंकणी
हस्तिन्	>	हाथी	हती(त्ती)	मृत्तिका	>	मिट्टी	माती
घोटक	>	घोडा	घोडो	गोधूम	>	गेहूँ	गंव
कण्टक	>	काँटा	कांटो	वृद्ध	>	बूढा	व्हड
वृश्चिक	>	बिच्छू	विंचू	सर्प	>	साँप	सोरोप
पाद	>	पाँव	पाय	हस्त	>	हाथ	हात
अस्थि	>	हड्डी	हाड	अभ्यन्तर	>	भीतर	भितर

इस प्रकार के तद्भव शब्द हिंदी तथा कोंकणी में बहुत उपलब्ध होते हैं।

हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में एक और बात दिखायी देती है। जिन संस्कृत शब्दों का विकास हिंदी में दिखायी देता है उन संस्कृत शब्दों का विकास कोंकणी में नहीं दिखायी देता, यथा :–

संस्कृत	>	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	>	हिंदी	कोंकणी
मुख	>	मुँह	––	वधू	>	बहू	–––
अग्र	>	आगे	–––	प्रपौत्र	>	पडपोता	–––
शृणोति	>	सुनता	–––	श्यालक	>	साला	–––
पितृगृह	>	पीहर	–––	चिनोति	>	चुनता	–––

कभी-कभी इसके विपरीत विकास भी दिखायी देता है। अर्थात् जिन संस्कृत शब्दों का विकास कोंकणी में दिखायी देता है उन संस्कृत शब्दों का विकास हिंदी में नहीं दिखायी देता, यथा :–

संस्कृत	>	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	>	हिंदी	कोंकणी
तुण्ड	>	––	तोंड(ण)	स्नुषा	>	–––	सून
पुरतः	>	–––	फुडें	प्रनप्तृ	>	–––	पणतू
आकर्णयति	>	–––	आयकता	मिथुन	>	–––	मेवणो
कुलगृह	>	–––	कुळार	विचिनोति	>	–––	वेंचता

(आ) देश्य शब्द :

जो शब्द न संस्कृत के शुद्ध हैं, न उसके विकृत रूप हैं और न तो विदेशी भाषाओं से आये हैं, बल्कि इसी देश की बोलियों के हैं वे 'देश्य' या 'देशी' कहलाये जाते हैं। हिंदी

था कोंकणी में इस प्रकार के देश्य शब्द प्राप्त हैं, यथा :–

हिंदी	कोंकणी
चिमटा, झगडा, पेट, गडबड, रोटी	चिमटो, झगडें, पोट, गडबड, रोटी
हिलता, चढना, रेंगना, खूँटी, रेवडी	हालता, चडप, रांगप, खुंटी, रेवडी

पता नहीं, उपर्युक्त शब्दों में एकाध शब्द संस्कृत शब्द से भी विकसित हुआ हो। जब क उसके स्रोत का पता नहीं चलता तब तक उसे देश्य कहा जाएगा। जिनकी व्युत्पत्ति किसी संस्कृत धातु या व्याकरणिक नियमों के अनुसार न हो उन्हें हेमचंद्र ने देशी शब्द कहा । यदि देशी शब्दों का विकास व्युत्पत्ति के नियमानुसार सिद्ध हो जाये तो उन्हें देशी शब्द हीं कहा जाएगा।

इ) द्राविड शब्द :

हिंदी में द्राविड शब्द बहुत ही कम है। अभी तक दिखाने के लिए प्रायः एक ही पिल्ला' शब्द मिला है। परंतु कोंकणी में द्राविड शब्द बहुत मिलते हैं, जैसे –

हिंदी	कोंकणी
पिल्ला	दोळो, आदोळी, कोयती, तोप, तपलें, तपील, तोट, पड, पुळी, बरकय, पुडवें, तूप, बरोवप, कैपंजी, बिंदलो, कातली, करड, आठवल, केस्तोड, गुंडी, गुंडो, बोंडो, बोड(बॉड), बोणी, तवली, मोड, नाड, बास्कळ, बरको, बुगडी

(ई) विदेशी शब्द :

विदेशी शब्द वे हैं जो विदेशियों के सम्पर्क में आने पर हिंदी तथा कोंकणी में आ गये हैं। हिंदी तथा कोंकणी में उपलब्ध होनेवाले विदेशी शब्दों में (i) अरबी, (ii) फारसी, (iii) तुर्की, (iv) पुर्तगाली और(v) अंग्रेजी शब्द ज्यादातर हैं। नीचे हर एक भाषा के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं –

हिंदी	कोंकणी
(i) अरबी –	
शरबत, खजाना, कत्ल, हिकमत	सरबत, खजानो, कत्तल, हिकमत
अक्ल, वकालत, फौज, इत्र, कुर्सी	अक्कल, वकीली, फौज, अत्तर, खुर्ची

(ii) फारसी –

खर्च, शरम, मेज, मजा, सिपाही, अबरू	खर्च, शरम, मेज, मजा, सिपाय, अब्रू
शहर, बेचारा, कागज, अन्दाज, आवाज	शार, बिचारो, कागद, अंदाज, आवाज

(iii) तुर्की –

चाकू, तोप, कुली, चम्मच, गलीचा	चाकू, तोप, कुली, चमचो, गालिचो
अयाल, कजाक, कुरता	आयाळ, कजाग, कुडतो

(iv) पुर्तगाली –

चाबी, अनन्नास, अलमारी, आलपीन	चावी, अनस, आलमार, आलपीन
पाव(=रोटी), पादरी, पिस्तौल, काजू	पाव, पादरी, पिस्तो(स्तू)ल, काजू

(v) अंग्रेजी –

स्कूल, कालिज, पेन, निब, पिन	स्कूल, का(कॉ)लेज, पेन, निब, पिन
पेन्सिल, पेंट, कोट, मोटर, मास्टर	पेन्सिल, पेंट, कोट, मोटार, मास्तर

(**सूचना** :– उपर्युक्त अरबी आदि शब्दों में भी तत्सम, अर्द्धतत्सम आदि शब्द भी दिखाये जा सकते हैं, फिर भी विस्तार–भय के लिए इस विषय को छोड दिया है ।)

उपर्युक्त बात के सिवा आधुनिक साहित्यिक हिंदी तथा कोंकणी में आवश्यकता अनुसार संस्कृत और अंग्रेजी तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुत बढता गया है, जैसे –

संस्कृत तत्सम शब्द :– ' राष्ट्र, विरोध, सत्ताधारी, राजकीय, सामाजिक, आर्थिक योग्यता, साहित्यिक, विशेष, उल्लेख, समीक्षा, उदाहरण, निर्देश, शताब्दी, सभ्यता शास्त्रीय, शिलालेख, भारतीय, मध्यकालीन, कार्यक्षेत्र, भाषाशास्त्र, समाज ' आदि ।

अंग्रेजी तत्सम शब्द :– ' अपील, अस्पताल, आपरेशन, आफिस, कालेज, बैंच, गैस टायप, चाकलेट, रिपोर्ट, थिएटर, मोटर, रेल्वे, डायरी, थर्मामीटर, स्टेशन, केक, रिंग रेकॉर्ड, युनो, युनिट, मीटर, बल्ब, सोडा, स्टील, स्कोर, विकेट, सीट, पेपर ' आदि ।

परंतु एक बात यह है कि हिंदी में तत्सम शब्दों की जितनी भरमार होने लगी उतनी कोंकणी में अभी तक नहीं । इसका कारण यह है कि हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा है अतः सभी प्रकार की व्यावहारिक उपयोगिता सिद्ध होने के लिए इसमें तत्सम शब्दों का आदान आवश्यक हो गया है । कोंकणी जब प्रांतीय स्तर में अपनी उपयोगिता सिद्ध करने लगेगी तो इसमें भी संस्कृत और अंग्रेजी के अनेक शब्द लेना अनिवार्य हो जाएगा ।

फिर भी एक बात की ओर ध्यान देना जरूरी है । हमें जब आवश्यकता नहीं होती तब भी हम अपनी भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक करते हैं । उदाहरण के तौर पर देखा जा सकता है कि पढे–लिखे आदमी हिंदी तथा कोंकणी में बात–चीत करते समय अंग्रेजी शब्दों का अधिक प्रयोग करते हैं, जैसे –

हिंदी –

(१) उसने मेरा एडवांस सैंक्शन कर दिये हैं। (यह वाक्य थोडा गलत है फिर भी लिया है।)

(२) कृपया मुआमले का प्रेसिज तैयार कीजिए।

(३) फायल फायनल सैंक्शन हेतु फिर भेजी जा रही है।

उपर्युक्त वाक्य क्रमांक (१) में पाँच शब्द हिंदी के तो दो शब्द अंग्रेजी के हैं। इसी प्रकार वाक्य क्रमांक (२) में तीन शब्द हिंदी के तो तीन शब्द विदेशी हैं; और वाक्य क्रमांक (३) में छः शब्द हिंदी के तो तीन शब्द अंग्रेजी के हैं।

कोंकणी –

(१) 'हांव ट्वेल्थाच्या एझामिक पणजे वता. (गोवा की कोंकणी में; इसका हिंदी में अनुवाद होगा : मैं बारहवीं की परीक्षा के लिए पणजी जाता हूँ)'।

(२) 'हांव लुकिंग तुगेलो फेस रे. (गोवा की कोंकणी में; इसका हिंदी में अनुवाद होगा : मैं तेरा/तुम्हारा चेहरा देखता हूँ)'।

(३) 'नाइट वॉकेक् वत्तना हातांत स्टिक् आसल्यार डॉग फियर कस्सलें (मंगलूर की कोंकणी में; इसका हिंदी में अनुवाद होगा : रात में घूमने जाते (वक्त) हाथ में काठी हो तो कुत्तों का डर कैसे)' ?

उपर्युक्त वाक्य क्रमांक (१) और (२) में तीन शब्द कोंकणी के तो दो शब्द अंग्रेजी के हैं। इसी प्रकार वाक्य क्रमांक (३) में चार शब्द कोंकणी के हैं तो पाँच शब्द अंग्रेजी के। इन तीनों वाक्यों में तद्भव शब्दों का प्रयोग करके बोला जा सकता था; जैसे :– (१) 'हांव बारावेच्या परिक्षेक पणजी वतां.'; (२) 'हांव तुगेलो चेहरो (चेरो) पळेतां.'; (३) 'रातचे फिरूंक वतना हातांत बडी आसल्यार कुत्र्याचें भंय कसलें ?'। किंतु यह प्रवृत्ति कम होती जा रही है और अंग्रेजी शब्दों की प्रवृत्ति बढती जा रही है। एक समय ऐसा भी था जब हिंदी में फारसी–अरबी शब्दों तो कोंकणी में पुर्तगाली शब्दों की भरमार होती थी; परंतु आज यह प्रवृत्ति बहुत कम हो गयी है। अतः हमें चाहिए कि जहाँ तक हो सके इन प्रवृत्तियों को कम करें।

(उ) सामासिक शब्द

हिंदी तथा कोंकणी में सामासिक शब्द भी प्राप्त होते हैं। नीचे हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त होनेवाले सामासिक शब्द अलग-अलग दिये हैं, यथा –

हिंदी –

'रातोरात, घरघर, हाथोहाथ, दिनोंदिन, यथाशक्ति, प्रतिदिन, पंचवटी, छप्पय,

त्रिभुवन, महाजन, पीताम्बर, खुशबू, बदबू, जन्मान्ध, राजपुत्र, हथकडी, रसोईघर, जलपिपासु, चिडीमार, गँठकटा, कपडछन, देवालय, पराधीन, देशाटन, घुडसवार, दानवीर, माँ–बाप, अन्न–जल, भाई–बहन, सुख–दुःख, नीलकंठ, दुगुना, पँचमेल, सतनजा, कनकटा, नकटा, दूधमुँहा, मुछमुंडा, घुडदौड, पवनचक्की, अधपका, छो(छु)टभैया, दिन–रात, आज–कल, अच्छा–बुरा, आस–पास, राजा–रानी, रामकथा, हाथघडी, दही–बडा, लोकशाही, महारानी, लाल–पीला, नवरतन, दूध–भात, गैर–हाजिर ' आदि ।

कोंकणी –

' प्रतिपळीं, भयाविरयत, करभार, फांत्यापार, मायपाय, साटलीपोटली, भयांकृत, गर्भगळीत, अमरपटो, सुतांपुनव, म्हायात्रा, अज्रंवर, जळींमळीं, पोपटपंची, अदिकादीक, मध्यस्तळ, तानसोक, राखणेदळ, शिळासेतु, काडावोडी, अनद्रीक, कागदबिगद, कोंकणदुदी, झिरकमळ, दोगजाण, सांदनधांकणें, हांतरपाटो, आसर(न)मांडी, भावभैण, आवयबापुय, हिंदुकिरिस्तांव, दोंगरपुळी, पोटखाणें, पायाबोट, तळहात, बेलाफळ, बापोलभाव, आदरसत्कार, लोकशाय, आयतेकान्न, कोंयडेबाल, तिसवाडी, दुकरापेटो, नश्टखर्च, पंचकादय(पंचकदाय), तळपांय, थाटमाट, नदरानदर, फाटबळ ' आदि ।

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी में अनेक सामासिक शब्द उपलब्ध हैं ।

(**सूचना** :– संस्कृत के आधार पर ऐसे सामासिक शब्दों में विविध प्रकार किये जा सकते हैं, फिर भी विस्तार–भय से यहाँ उनका विचार नहीं किया है ।)

२) अर्थ–विचार

अब हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में प्राप्त अर्थान्तर की चर्चा करनी है। हिंदी तथा कोंकणी में प्रायः समानाक्षर शब्दों में अर्थान्तर नहीं है; फिर भी कुछ शब्द ऐसे मिलते हैं जो समानाक्षर होते हुए भी अर्थान्तर में प्रयुक्त हैं । इसी प्रकार कुछ असमानाक्षर शब्दों में अर्थान्तर प्राप्त होता है तो क्वचित् अर्थान्तर प्राप्त नहीं होता है । अतः इस संबंध में नीचे कुछ विस्तृत विचार किया है ।

(I) तत्सम शब्दों में प्राप्त अर्थ–विचार

हिंदी तथा कोंकणी में तत्सम शब्द समान रूप में प्राप्त होते हैं और उनके अर्थ में भी समानता प्राप्त होती है । उदाहरण के लिए कुछ शब्द नीचे दिये जाते हैं –

' शरीर, अपूर्व, अमृत, अरण्य, गंधर्व, सेना, दैत्य, राक्षस, अद्भुत, आकाश, शून्य, आनंद, सुख, प्रसन्न, उल्लास, इच्छा, उत्कंठा, मनोरथ, काम, इंद्र, विष्णु, देव,वस्त्र,मदन,

रण, कुबेर, क्रोध, गणेश, गजानन, गणपति, राम, गंगा, गगन, सेवक, दुःख, पीडा, ट, संकट, शोक, क्लेश, वेदना, यातना, विषण्ण, पीडा, संतोष, कुमारी, धन, द्रव्य, ी, नरक, हवन, हवा, प्रकाश, भजन, विकास, फूल, मुक्ति, मोक्ष, राजा, समुद्र, सूर्य, ह, सुंदर, उत्तम, उत्कृष्ट, उत्साह, उद्योग, यत्न, प्रेम, श्रद्धा, स्वर्ग, प्रभाव, मित्र, क्ति, पत्र, शांति, शब्द, नवीन, सत्य, जीवन, संपत्ति ' आदि । इन शब्दों का प्रयोग दी तथा कोंकणी में समान अर्थ में होता है । ऐसे अनेक शब्द हैं जो हिंदी तथा कोंकणी में मान अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।

परंतु कुछ शब्द ऐसे हैं जो तत्सम होते हुए भी हिंदी तथा कोंकणी में भिन्न अर्थ में युक्त हैं । अतः हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त होनेवाले अर्थान्तर के कुछ तत्सम शब्द दाहरण के तौर पर नीचे दिये हैं –

(i) हिंदी तथा कोंकणी में ' शिक्षा ' शब्द है । यह संस्कृत तत्सम शब्द है । परंतु हिंदी था कोंकणी में ' शिक्षा ' शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न होता है । हिंदी में इसका अर्थ है ' शिक्षण ' तो कोंकणी में इसका अर्थ है ' दंड ' ।

(ii) संस्कृत में ' चेष्टा ' शब्द है । यह हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है, परंतु दोनों में अर्थ का अन्तर है । इसका अर्थ हिंदी में ' प्रयत्न ' तो कोंकणी में ' मजाक ' है ।

(iii) संस्कृत तत्सम ' उपद्रव ' शब्द हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है । हिंदी में इसका अर्थ है ' दंगा–फसाद ' तो कोंकणी में इसका अर्थ है ' त्रास(=तकलीफ) ' ।

(iv) संस्कृत ' देवता ' शब्द हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है । हिंदी में इसका लिंगान्तर हुआ है । हिंदी में यह पुल्लिग है और उसका अर्थ है ' देव(पु.) ' तो कोंकणी में यह स्त्रीलिंग है और उसका अर्थ है ' देवी (स्त्री.) '।

(v) संस्कृत ' समाधान ' शब्द हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है । परंतु हिंदी में इसका अर्थ है ' हल, सुलझाव ' तो कोंकणी में इसका अर्थ है ' संतोष, खुशी ' ।

(vi) हिंदी में संस्कृत ' राग ' शब्द का अर्थ है ' प्रेम, अनुराग ' तो कोंकणी में ' राग ' शब्द का अर्थ है ' क्रोध ' । संगीत विषय से संबंधित ' राग ' शब्द का अर्थ हिंदी तथा कोंकणी में समान है ।

(vii) संस्कृत ' घास ' शब्द का हिंदी में ' तृण ' तो कोंकणी में ' कौर ' अर्थ है । कोंकणी में यह ' घांस ' रूप में भी लिखा जाता है । शायद कोंकणी ' घास / घांस ' शब्द संस्कृत ' ग्रास(=कौर) ' शब्द से भी विकसित हुआ होगा, जिससे हिंदी तथा कोंकणी ' घास ' शब्द में अर्थान्तर प्राप्त है ।

(viii) संस्कृत ' स्वस्थ ' शब्द का अर्थ हिंदी में ' निरोगी, तंदुरुस्त ' है तो कोंकणी में ' सुस्त, कुछ न करनेवाला ' है ।

(ix) हिंदी में ' प्रकृति ' शब्द का अर्थ ' सृष्टि, निसर्ग ' आदि तो कोंकणी में इसक अर्थ है ' तबीयत ' । ' तबीयत ' के बदले कोंकणी में ' तब्येत ' शब्द का प्रयोग होता जो आरोग्य से संबंधित है । इसके सिवा कोंकणी में ' प्रकृति ' शब्द के ' सृष्टि, निसर्ग आदि अर्थ भी हैं ।

(x) हिंदी तथा कोंकणी में ' अवस्था ' शब्द है । दोनों में इसके ' दशा, स्थिति परिस्थिति ' आदि अर्थ हैं । साथ-साथ हिंदी में इसका ' उम्र(जीवन का बीता हुआ काल) ' भी अर्थ है जो कोंकणी में प्रायः नहीं है (कोंकणी में इसके लिए ' वय ' शब्द है) ।

xi) संस्कृत ' आपत्ति ' शब्द हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त है । दोनों में इसका ' संकट अर्थ लिया जाता है । परंतु इसके सिवा हिंदी में इसके ' आरोप, आक्षेप, दोषारोपण ' भी अर्थ लिये जाते हैं जो कोंकणी में प्राप्त नहीं है ।

xii) हिंदी तथा कोंकणी में ' तालीम ' शब्द है । यह अरबी का शब्द है । इसका अर्थ हिंदी में ' शिक्षण ' तो कोंकणी में ' येसाय ' है । कोंकणी में येसाय का अर्थ है ' बार-बार की जाने वाली एक ही क्रिया ' या ' प्रॅक्टिस ' । यह शब्द कोंकणी में विशेषतः नाटक से संबंधित है । लोगों के सामने नाटक खेलने के पूर्व उसके जो ' रियर्सल ' किये जाते हैं उनसे ' तालीम ' शब्द संबंधित है ।

xiii) हिंदी तथा कोंकणी में ' दफ्तर ' शब्द है । यह शब्द फारसी से आगत है । परंतु इसका अर्थ हिंदी में ' कार्यालय ' है तो कोंकणी में ' बस्ता ' है (=पाठशाला में ले जाने का बच्चों का बटुआ । कोंकणी में ' बोटवो ' शब्द भी है) ।

(II) तद्भव शब्दों में प्राप्त अर्थ–विचार

हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों का विकास समान और असमान अक्षरों में प्राप्त होता है । इसी प्रकार हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में प्राप्त अर्थ भी प्रायः समान और क्वचित् असमान वस्तुओं के रूपों में उपलब्ध होते हैं । नीचे दिये हुए उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होती है --

(१) संस्कृत शब्दों का हिंदी तथा कोंकणी में विकास होते समय कुछ शब्द समान रूप से विकसित होते हैं । अर्थात् संस्कृत के शब्द का हिंदी में जिस रूप में, जिस आनुपूर्वी में विकास होता है, उसका कोंकणी में भी उसी रूप में, उसी आनुपूर्वी में विकास होता है । साथ-साथ अर्थ की दृष्टि से भी हिंदी तथा कोंकणी के ऐसे तद्भव शब्दों में प्रायः समानता भी दिखायी देती है, यथा :–

संस्कृत	>	हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	>	हिंदी	कोंकणी
नृत्य	>	नाच	नाच	अद्य	>	आज	आज

खाद्	>	खा	खा	ओष्ठ	>	ओंठ	ओंठ
गौरी	>	गोरी	गोरी	कर्पट	>	कापड	कापड
करोति	>	करता	करता	चतुष्क	>	चौक	चौक

(२) संस्कृत के कुछ शब्द हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से विकसित होते हैं परंतु हिंदी तथा कोंकणी में विकसित उन शब्दों में क्वचित् अर्थान्तर भी प्राप्त होता है जैसे :–

(i) संस्कृत ' घर्म ' शब्द से हिंदी तथा कोंकणी में ' घाम ' शब्द निष्पन्न होता है, परंतु हिंदी ' घाम ' शब्द का अर्थ है ' धूप ' तो कोंकणी ' घाम ' शब्द का अर्थ है ' पसीना '। संस्कृत ' घर्म ' शब्द में ये दोनों अर्थ हैं (देखिए, अमर कोश, पृ. ४९ श्लोक ३३, पृ. ३१८ श्लोक १४१) जो हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त हैं।

(ii) संस्कृत ' स्वैर ' शब्द से हिंदी तथा कोंकणी में ' सैर ' शब्द विकसित है। परंतु दोनों का अर्थ बदला है। हिंदी में ' सैर ' का अर्थ ' घूमना ' तो कोंकणी में ' सैर ' का अर्थ ' स्वच्छंद, अनिर्बंध ' है।

(iii) संस्कृत ' ऊष्म ' शब्द से विकसित ' ऊब ' शब्द हिंदी में ' रूचि न होना ' अर्थ में प्रयुक्त है तो कोंकणी में ' उष्णता, भाफ ' अर्थ में प्रयुक्त है।

(iv) संस्कृत ' पत्र ' से हिंदी में ' पाती ' शब्द विकसित है, जिसका अर्थ है वृक्ष का ' पत्ता ' या ' पत्ती '। कोंकणी में भी संस्कृत ' पत्र ' से विकसित ' पाती ' शब्द उपलब्ध है, जो ' तृण ' समान पदार्थ की ' पत्री ' और ' ब्लेड, चाकू, तलवार आदि के धारदार पत्तर ' से संबंधित है।

(v) संस्कृत ' पर्ण ' से हिंदी तथा कोंकणी में ' पान ' शब्द विकसित है। ' पान ' शब्द हिंदी तथा कोंकणी में समानार्थक है, जिसे कत्था, चूना आदि लगाकर खाया जाता है। इसके सिवा कोंकणी में पान शब्द अन्य पेड–पौधों के पत्तों से भी संबंधित है। इससे कोंकणी में पान शब्द के अर्थ की व्यापकता नजर आती है।

(vi) संस्कृत ' घटी ' शब्द से हिंदी तथा कोंकणी में ' घडी ' शब्द विकसित है। घटी शब्द के संस्कृत में जो अर्थ हैं वे हिंदी तथा कोंकणी ' घडी ' शब्द में प्राप्त हैं, जैसे :– ' समय, उपयुक्त समय, घटिका ' आदि। इसके सिवा हिंदी में इसका एक और अर्थ है, ' समय बताने वाला यंत्र ' जो कोंकणी में प्राप्त नहीं है; तो कोंकणी में भी इसका एक और अर्थ है, ' तह, परत (कपडे आदि को लपेटने या मोडने वाला उसका हर भाग या मोड) ' जो हिंदी में प्राप्त नहीं है.।

vii) संस्कृत ' आर्यिका ' से हिंदी तथा कोंकणी में ' आजी ' शब्द विकसित है। यह हिंदी में शायद एक ही अर्थ देता है, जैसे :– ' पिता की माता, दादी ' (यहाँ दोनों शब्दों के अर्थ एक हैं)। परंतु कोंकणी में इसके दो अर्थ हैं, जैसे :– (१) पिता की माता और (२) माता की माता (माता की माता अर्थ हिंदी में ' नानी ' शब्द में निहित है)।

(प्रश्न है कि ' आजी ' शब्द हिंदी में कहाँ से प्राप्त है। यद्यपि नालंदा विशाल शब्द सागर में यह शब्द नहीं है फिर भी डा. धीरेंद्र वर्मा लिखित ' हिंदी भाषा का इतिहास ' के पृष्ठ १७४ में संस्कृत ' आर्यिका ' से हिंदी ' आजी ' शब्द का विकास दिखाया है। अतः इसका प्रयोग कहीं–न–कहीं अवश्य हुआ होगा।)

(viii) संस्कृत ' भल्लूक ' शब्द से हिंदी तथा कोंकणी ' भालू ' शब्द विकसित है। परंतु दोनों में अर्थ का फरक है। हिंदी में ' भालू ' शब्द का अर्थ है ' रीछ ' तो कोंकणी में उसका अर्थ है ' सियारिन, बूढी कुतिया '।

(३) हिंदी तथा कोंकणी में विकसित तद्भव शब्दों में एकाध वर्ण का भेद होता है, और ऐसे कुछ शब्दों में भी अर्थान्तर प्राप्त होता है जैसे :–

(i) संस्कृत ' कर्षण ' शब्द से हिंदी में ' काढना ' तो कोंकणी में ' काडना ' शब्द विकसित हैं। परंतु हिंदी में ' काढना ' क्रिया का अर्थ ' बेल-बूटियाँ, कशीदा वगैरह निकालना ' तो कोंकणी में ' काडना ' क्रिया का अर्थ है ' बाहर निकालना '। यहाँ काढना और काडना में ' ढ ' और ' ड ' वर्ण का अन्तर है।

(ii) संस्कृत ' आर्द्र ' से विकसित हिंदी के ' ओला ' शब्द का अर्थ है ' बरसात में गिरे हुए बर्फ का टुकडा ' तो संस्कृत ' आर्द्र ' से विकसित कोंकणी के ' ओलो ' शब्द का अर्थ है ' भीगा हुआ '। यहाँ ' ओला ' और ' ओलो ' में आकारान्तता और ओकारान्तता की दृष्टि से फर्क है। यह फर्क हिंदी की आकारान्त तथा कोंकणी की ओकारान्त प्रवृत्ति के अनुसार ही है (देखिए, पृ. १८२)।

iii) संस्कृत ' पत्र ' से हिंदी में ' पत्रा ' और कोंकणी में ' पत्रो ' विकसित है। हिंदी में ' पत्रा ' शब्द का अर्थ है ' पंचांग ' तो कोंकणी में ' पत्रो ' शब्द का अर्थ है ' धातु या सिमेंट आदि का ' तख्ता, पत्तर '।

(iv) संस्कृत ' पत्र ' से विकसित हिंदी ' पत्ता ' शब्द का अर्थ है ' पर्ण(=पान) ' तो संस्कृत ' पत्र ' से विकसित कोंकणी ' पत्तो ' शब्द का अर्थ है ' पता, ठिकाना (जो पत्र आदि पर लिखा जाता है) '।

(v) हिंदी ' कल ' शब्द के दो अर्थ हैं :– (१) ' गुजरा या बीता हुआ दिन ' और (२) ' आने वाला दिन '। कोंकणी में गुजरे हुए दिन के लिए ' काल ' शब्द है (और आने वाले दिन के लिए ' फाल्यां ' शब्द है)। हिंदी ' कल ' तथा कोंकणी ' काल ' संस्कृत ' कल्य ' से विकसित हैं। हिंदी ' कल ' शब्द में जो दो अर्थ प्राप्त हैं उनके संबंध में एक अभिनव कल्पना की है जो विचारणीय है (देखिए पृ. ४२०)।

(vi) संस्कृत ' परश्वः ' शब्द से विकसित हिंदी ' परसों ' शब्द में भी दो अर्थ विकसित हुए हैं :– (१) ' बीते हुए कल से पहले वाला दिन ' और (२) ' आगामी कल के बाद

वाला दिन ' । हिंदी परसों शब्द में जो दो अर्थ प्राप्त होते हैं वे प्रायः हिंदी ' कल ' शब्द के अर्थों के प्रभाव के कारण माने जा सकते हैं । परंतु संस्कृत ' परश्वः ' से कोंकणी में ' परवां ' शब्द विकसित है जिसका अर्थ संस्कृत में प्राप्त अर्थ की तरह केवल एक ही होता है, ' आगामी कल के बाद वाला दिन ' ।

(vii) हिंदी की बोलियों में ' परौं ' शब्द है । हिंदी ' परसों ' शब्द की तरह इसके भी दो अर्थ हैं :– (१) ' बीते हुए कल से पहले वाला दिन ' और (२) ' आगामी कल के बाद वाला दिन ' । हिंदी ' परौं ' शब्द से थोडा–सा सादृश्य रखने वाला शब्द कोंकणी में भी है जो ' परां ' रूप में लिखा जाता है । इसका अर्थ उपर्युक्त कोंकणी ' परवां ' की तरह ' आगामी कल के बाद वाला दिन ' है । हिंदी ' परौं ' तथा कोंकणी ' परां ' संस्कृत'परश्वः' से संबंधित है ।

(viii) संस्कृत ' द्रोणी(स्त्री.) ' शब्द से विकसित हिंदी ' दोन ' तथा कोंकणी ' दोण ' में थोडा-सा अर्थान्तर है । हिंदी में ' नाव के समान लंबा काठ का खोखला टुकडा जिससे खेतों में सिंचाई की जाती है ' के अर्थ में ' दोन ' शब्द का प्रयोग होता है तो कोंकणी में ' छोटी नाव ' के अर्थ में ' दोण ' शब्द का प्रयोग होता है ।

(ix) संस्कृत ' प्रहर ' शब्द का विकास हिंदी में ' पहर ' तो कोंकणी ' पार ' हुआ है । हिंदी ' पहर ' तथा कोंकणी ' पार ' का अर्थ ' चौबीस घंटों का आठवाँ भाग ' या ' तीन घंटों का समय ' है । इसके सिवा कोंकणी में ' पार ' शब्द ' सप्ताह (कों. में ' सप्त ' भी कहते हैं) ' नामक उत्सव से संबंधित है । गोवा में अनेक मंदिरों में सात दिन तक भजन का उत्सव रात–दिन चलता रहता है । उन दिनों भजन चालू रखने की दृष्टि से तीन-तीन घंटों के लिए कुछ लोगों का एक जत्था नियुक्त किया जाता हैं, तो इसे भी ' पार ' कहा जाता है; और उन्हीं दिनों रात के समय सुंदर चित्र आदि बनाकर जुलूस निकाला जाता है, तो उसे भी ' पार ' कहा जाता है । इस प्रकार इन दोनों अर्थों में भी कोंकणी ' पार ' शब्द प्रयुक्त है ।

(x) ' पिता के पिता ' इस अर्थ में, हिंदी में ' दादा ' तो कोंकणी में ' आजो ' शब्द है । फिर भी ' नालंदा विशाल शब्द सागर ' और डा. धीरेंद्र वर्मा लिखित ' हिंदी भाषा का इतिहास ' पुस्तक में दिग्दर्शित (पृ. १७४) संस्कृत ' आर्यिका ' > हिंदी ' आजी ' शब्द के आधार पर हिंदी में उपर्युक्त अर्थ में ' आजा ' शब्द का प्रयोग कर सकते हैं; क्योंकि हिंदी ' आजा ' और कोंकणी ' आजो ' शब्द संस्कृत ' आर्य ' शब्द से विकसित मानने में आपत्ति नहीं है । इन दोनों में थोडे से शाब्दिक अन्तर के साथ थोडा–सा अर्थान्तर भी प्राप्त है । हिंदी में ' आजा ' शब्द ' पिता का पिता ' एक ही अर्थ में प्रयुक्त है तो कोंकणी में ' आजो ' शब्द ' पिता का पिता ' और ' माता का पिता ' दो अर्थों में प्रयुक्त है ।

(xi) संस्कृत ' नप्तृ ' से हिंदी में ' नाती ' तथा कोंकणी में ' नातू ' शब्द विकसित हैं । इन दोनों शब्दों में अन्त्य स्वर की दृष्टि से थोडा-सा अन्तर है । उसी प्रकार अर्थ की

दृष्टि से भी दोनों में अन्तर है। संस्कृत में 'नप्तृ' शब्द का अर्थ है 'लडके या लडकी का पुत्र ('संस्कृत – हिंदी कोश', पृ. ५०९)' तो हिंदी 'नाती' लडकी का पुत्र तथा कोंकणी 'नातू' लडके या लडकी का पुत्र अर्थ में प्रयुक्त होता है।

(xii) संस्कृत 'मेलः' से हिंदी में 'मेला' तथा कोंकणी में 'मेळो' शब्द विकसित हैं। हिंदी 'मेला' का अर्थ कोंकणी में 'जात्रा' है तो कोंकणी 'मेळो' का अर्थ हिंदी में 'जमावडा, भीड' आदि हैं।

(४) हिंदी तथा कोंकणी में विकसित तद्भव शब्दों में एकाध वर्ण का भेद होता है परंतु ऐसे कुछ शब्दों में अर्थान्तर प्राप्त नहीं होता है, जैसे :–

(i) संस्कृत 'पत्र' से हिंदी में 'पता' तो कोंकणी में 'पत्तो' शब्द विकसित हुआ है। इन दोनों शब्दों के अन्तिम वर्ण में थोडा–सा भेद है। फिर भी 'ठिकाना (जो पत्र आदि पर लिखा जाता है)' अर्थ की दृष्टि से दोनों शब्द समान है।

ii) संस्कृत 'पर्ण' से हिंदी 'पन्ना' तो कोंकणी में 'पान' शब्द विकसित है। परंतु दोनों 'बही, पुस्तक' आदि के पृष्ठों से संबंधित है।

(iii) संस्कृत में 'द्रोण' शब्द है। इससे हिंदी में 'दोना' और कोंकणी में 'दोणो' शब्द विकसित हैं। शब्दों की दृष्टि से अन्तिम अक्षरों में भेद होते हुए भी अर्थ की दृष्टि से दोनों में समानता है।

(iv) संख्या (२) के अर्थ में हिंदी में 'दो' तो कोंकणी में 'दोन' शब्द प्राप्त हैं। इनका विकास संस्कृत 'द्वौ' > पालि 'दोण्णि' से है। 'न' अक्षर की दृष्टि से दोनों में अन्तर होते हुए भी अर्थ की दृष्टि से समानता है।

(v) संस्कृत 'प्रहर' शब्द का विकास हिंदी में 'पहर' तो कोंकणी में 'पार' हुआ है। फिर भी विकसित हुए दोनों शब्द 'चौबीस घंटों का आठवाँ भाग' या 'तीन घटों का समय' अर्थ में साम्य रखते हैं।

(vi) हिंदी 'तेरह' तथा कोंकणी 'तेरा' की अन्त्य स्थिति में थोडा-सा अन्तर है, परंतु दोनों में अर्थ की दृष्टि से अंतर नहीं है। इन दोनों का अर्थ है '१३' संख्या। इनका विकास संस्कृत 'त्रयोदश' से है।

(vii) संस्कृत 'सः' से हिंदी 'सो' तो कोंकणी में 'तो' विकसित है। यहाँ 'स्' तथा 'त्' की दृष्टि से शब्दान्तर होते हुए भी 'सो' तथा 'तो' में अर्थान्तर नहीं है।

(viii) संस्कृत 'मेलः' से विकसित हिंदी 'मेला' तथा कोंकणी 'मेळो' में शब्दान्तर होते हुए भी 'समुदाय' अर्थ में समान है।

(५) कभी-कभी संस्कृत शब्द हिंदी में तत्सम रूप में व्यवहृत होते हैं तो कोंकणी में थोडे-से परिवर्तन के साथ अर्द्धतत्सम रूप में व्यवहृत होते हैं, यथा :– संस्कृत 'अनुभव'

शब्द हिंदी में ' अनुभव ' तो कोंकणी में ' अणभव ' रूप में प्रयुक्त है। परंतु इन तीनों शब्दों से समान अर्थ व्यक्त होता है। इसी प्रकार संस्कृत ' अंतःकरण ' शब्द का हिंदी में ' अंतःकरण ' तो कोंकणी में ' अंतस्कर्ण ' होता है, और तीनों शब्दों का अर्थ एक ही है।

इस दृष्टि से कुछ और शब्द द्रष्टव्य हैं, जैसे –

संस्कृत	> हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	> हिंदी	कोंकणी
पारिजात	> पारिजात	पारजात	शाला	> शाला	शाळा
कमल	> कमल	कमळ	बुद्धि	> बुद्धि	बुद्द
शक्ति	> शक्ति	शक्त	आत्मा	> आत्मा	आत्मो
नव	> नव	णव	मूर्ति	> मूर्ति	मूर्त

कभी-कभी इसके विपरीत भी दिखायी देता है। अर्थात् हिंदी शब्दों में थोडा बदल दिखायी देता है तो कोंकणी शब्दों में बदल नहीं दिखायी देता, जैसे –

संस्कृत	> हिंदी	कोंकणी	संस्कृत	> हिंदी	कोंकणी
किरण	> किरन	किरण	गुण	> गुन	गुण
चरण	> चरन	चरण	प्राण	> प्रान	प्राण

(६) उपर्युक्त क्रमांक (५) की प्रवृत्ति में अर्थांतर प्राप्त नहीं होता है। परंतु उसी प्रकार की इस प्रवृत्ति में कभी-कभी अर्थान्तर भी प्राप्त होता है, जैसे :–

(i) संस्कृत ' यात्रा ' शब्द हिंदी में ' यात्रा ' तथा कोंकणी में ' जात्रा ' रूप में प्रयुक्त है अर्थात् यात्रा का विकास कोंकणी में ' जात्रा ' में हुआ है। परंतु संस्कृत अथवा हिंदी ' यात्रा ' शब्द के अर्थ से भिन्न अर्थ कोंकणी ' जात्रा ' शब्द का है। हिंदी में ' यात्रा ' का अर्थ है ' सफर '। कोंकणी ' जात्रा ' शब्द के अर्थ में हिंदी में ' मेला ' शब्द प्रयुक्त है। कोंकणी ' जात्रा ' शब्द हिंदी में नहीं है।

(ii) हिंदी ' मेला ' शब्द संस्कृत ' मेलः ' से विकसित है। इस संस्कृत ' मेलः ' से विकसित शब्द कोंकणी में भी ' मेळ ' रूप में प्राप्त है। परंतु इसका अर्थ अलग है। अनेक लोग जहाँ इकट्ठे होते हैं वहाँ ' मेळ ' शब्द का प्रयोग होता है। हिंदी में इसे ' मिलाप ' भी कहते हैं। इसके सिवा कोंकणी में ' मेळ ' शब्द एक विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होता है। गोवा में फाल्गुन शुद्ध नवमी से चतुर्दशी तक एक प्रकार का उत्सव होता है, जिसे ' शिगमो (मराठी में ' शिमगा ') ' कहते हैं। उस समय गाँव के लोग भिन्न-भिन्न स्वाँग बनाकर वाद्य-गजर के साथ नाचते और कूदते हुए देवताओं के दर्शन के लिए निकल पडते हैं, उन लोगों के जत्थे को ' मेळ ' कहते हैं।

(७) हिंदी तथा कोंकणी के कुछ तद्भव शब्दों में काफी असमानता दिखायी देते हुए भी

अर्थ की दृष्टि से उनमें समानता दिखायी देती है, यथा :–

संस्कृत	>	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	>	**हिंदी**	**कोंकणी**
आदित्यवार	>	इतवार	आयतार	यज्ञोपवीत	>	जनेऊ	जानवें
प्रत्याययति	>	पतियाता	पातेता	अर्द्धत्रय	>	अढाई	अडेच
नवति	>	नब्बे	णव्वद	मातृष्वसा	>	मौसी	मावशी
ज्ञान	>	ग्यान	गिन्यान	वृश्चिक	>	बिच्छू	विंचू

(८) हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में एक भिन्न प्रकार से अर्थ की समानता प्राप्त होती है। प्रायः एक ही अर्थ में व्यवहृत होनेवाले हिंदी तथा कोंकणी के भिन्न-भिन्न तद्भव शब्द संस्कृत के समानार्थक भिन्न-भिन्न शब्दों से विकसित होते हैं, जैसे :– संस्कृत में ' वधू ' शब्द है। संस्कृत में इसके पर्यायवाची अन्य दो शब्द हैं :– ' स्नुषा ' और ' जनी(निः) '। इनमें से ' वधू ' शब्द से विकसित ' बहू ' शब्द हिंदी में व्यवहृत है तो ' स्नुषा ' शब्द से विकसित ' सून ' शब्द कोंकणी में व्यवहृत है। हिंदी ' बहू ' तथा कोंकणी ' सून ' शब्दों में अर्थ की दृष्टि से भिन्नता नहीं है यद्यपि दोनों शब्दों के अक्षरानुपूर्वी में अन्तर है। इसी प्रकार संस्कृत ' श्यालः ' से हिंदी में ' साला ' शब्द विकसित है तो संस्कृत ' मिथुन ' से कोंकणी में ' मेवणो ' शब्द विकसित है। हिंदी ' साला ' तथा कोंकणी ' मेवणो ' शब्द में अर्थांतर नहीं है। यहाँ इस प्रकार के कुछ और शब्द दृष्टव्य हैं, यथा :–

संस्कृत	>	**हिंदी**	**कोंकणी**	**संस्कृत**	>	**हिंदी**	**कोंकणी**
मुख	>	मुँह	----	माता	>	माँ	----
तुण्ड	>	----	तोंड,तोण	अंबा	>	----	आवय
धान्याक	>	धनिया	----	ज्योतिरिंगण	>	जुगनू	----
कुस्तुंबरू	>	----	कोथंबीर	खद्योत	>	----	काजुलो
अग्रे	>	आगे	----	शृणोति	>	सुनता	----
पुरतः	>	----	फुडें	आकर्णयति	>	----	आयकता
गेंदुक	>	गेंद	----	कथयति	>	कहता	----
कंदुक	>	----	चेंडू	संगच्छते	>	----	सांगता
आनय	>	ला	----	कल्य	>	कल(दूसरेदिन)	----
आहर	>	----	हाड	प्रातःकाल	>	----	फाल्यां

(९) हिंदी तथा कोंकणी शब्दों में एक भिन्न प्रकार से अर्थान्तर प्राप्त है। इस प्रकार में हिंदी तथा कोंकणी के शब्द समानाक्षर होते हुए भी भिन्नार्थक होते हैं। इसका कारण यह है कि हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त ये समानक्षर शब्द दो भिन्न-भिन्न शब्दों से विकसित होते हैं, जैसे :–

(i) हिंदी तथा कोंकणी में ' तेरा ' शब्द है। यह संस्कृत के दो भिन्न-भिन्न शब्दों से

विकसित है । हिंदी में 'तेरा' शब्द मध्यम पुरुष 'तू' सर्वनाम का संबंध कारक का एकवचनीय अर्थ दिखाने वाला रूप है । इसका विकास संस्कृत 'तावकीन' से माना है (देखिए, हिंदी 'तेरा', पृ. २१३) । कोंकणी में 'तेरा' संख्यावाची शब्द है, जो हिंदी में तेरह (=१३) से पहचाना जाता है । कोंकणी 'तेरा' रूप संस्कृत 'त्रयोदश' से विकसित है ।

(ii) हिंदी तथा कोंकणी में 'तो' शब्द है । हिंदी 'तो' संस्कृत 'ततः' से विकसित है तो कोंकणी 'तो' संस्कृत 'सः' से विकसित है । एवं हिंदी तथा कोंकणी 'तो' में समानाक्षरता होते हुए भी अर्थान्तर प्राप्त है । यह इसलिए कि यह 'तो' शब्द संस्कृत के दो भिन्न-भिन्न शब्दों से विकसित है ।

(iii) हिंदी तथा कोंकणी में 'दोन' शब्द है । हिंदी 'दोन' संस्कृत 'द्रोणी' से तो कोंकणी 'दोन' संस्कृत 'द्वौ' > पालि 'दोण्णि' से विकसित है । अर्थात् दोनों में अर्थान्तर है ।

(iv) हिंदी तथा कोंकणी में 'पीठ' शब्द है परंतु दोनों के अर्थ में अन्तर है । इसका कारण दोनों का दो भिन्न शब्दों से विकास हुआ है । हिंदी 'पीठ' संस्कृत 'पृष्ठ' शब्द से विकसित है तो कोंकणी 'पीठ(ट)' संस्कृत 'पिष्ट' शब्द से विकसित है (हिंदी 'पीठ' अर्थ के लिए कोंकणी में 'फाट' शब्द है, जो संस्कृत 'पृष्ठ' से विकसित है तो कोंकणी 'पीठ(ट)' अर्थ के लिए हिंदी में 'आटा' शब्द है, जो शायद देशी शब्द से विकसित है) ।

(v) हिंदी तथा कोंकणी में 'ही' शब्द प्राप्त है । परंतु दोनों का विकास संस्कृत के दो भिन्न शब्दों से होने के कारण 'ही' शब्द के अर्थ में अन्तर आया है । हिंदी 'ही' का अर्थ कोंकणी में 'च(अकेला ही = एकलोच)' होता है और कोंकणी 'ही' का अर्थ हिंदी में 'वह(स्त्री.)' होता है । हिंदी 'ही' का विकास प्रायः संस्कृत 'हि' से है तो कोंकणी 'ही' का विकास संस्कृत 'एषा' से है । कोंकणी 'ही' के विकास के संबंध में जो दूसरी कल्पना की है वह अन्यत्र दृष्टव्य है (देखिए, पृ. २३२) ।

(१०) हिंदी तथा कोंकणी में एक अन्य अन्तर स्पष्ट है । हिंदी तथा कोंकणी में कुछ शब्द अक्षरानुपूर्वी में समान दिखाई देते हैं, परंतु उनमें दो प्रकार का अन्तर । पहला अन्तर यह है कि समान अक्षरानुपूर्वी वाले हिंदी तथा कोंकणी शब्द संस्कृत से ही निष्पन्न नहीं होते हैं बल्कि उनमें से एक एकाध समय हिंदी में विदेशी शब्द होगा तो एकाध समय कोंकणी में विदेशी शब्द होगा । ऐसे शब्दों में दूसरा अन्तर अर्थ की दृष्टि से होता है । इसके लिए कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

(i) संस्कृत 'अरण्य' शब्द से कोंकणी में 'रान' शब्द विकसित है (हिंदी में 'अरना' शब्द संस्कृत 'अरण्य' से विकसित है परंतु वह असमान अक्षरानुपूर्वी वाला

होने से यहाँ नहीं लिया है) । हिंदी में कोंकणी ' रान ' शब्द के अक्षरानुपूर्वी से समानता रखनेवाला ' रान ' शब्द है (देखिए, नालंदा विशाल शब्द सागर) । परंतु कोंकणी ' रान ' शब्द का अर्थ है ' जंगल ' और हिंदी ' रान ' शब्द का अर्थ है ' गोद, जंघा ' । हिंदी में ' रान ' शब्द फारसी से प्राप्त है, जो विदेशी है ।

(ii) हिंदी तथा कोंकणी में ' काफी ' शब्द है । परंतु हिंदी में काफी शब्द का अर्थ है ' पर्याप्त, भरपूर ' तो कोंकणी में ' काफी ' शब्द का अर्थ है ' एक पेय ' । ' काफी ' शब्द हिंदी में अरबी से तो कोंकणी में पुर्तगाली (कॉफी) से प्राप्त है ।

(iii) हिंदी तथा कोंकणी में ' खत ' शब्द है । परंतु हिंदी खत शब्द का अर्थ ' पत्र, चिट्ठी ' है तो कोंकणी खत शब्द का का अर्थ ' खाद ' है । हिंदी ' खत ' शब्द अरबी से प्राप्त है तो कोंकणी ' खत ' संस्कृत ' खद् ' से विकसित है ।

(iv) हिंदी तथा कोंकणी में ' खैर ' शब्द प्राप्त है । परंतु हिंदी में खैर शब्द दो स्रोतों से प्राप्त है, जैसे – संस्कृत और फारसी । एवं इसमें अर्थान्तर भी प्राप्त है । हिंदी खैर शब्द का एक अर्थ है ' कत्था और उसका वृक्ष ' तो अन्य अर्थ हैं ' कुशल, अस्तु ' । ' कत्था ' अर्थ में वह संस्कृत ' खदिर ' शब्द से विकसित है तो ' कुशल, अस्तु ' अर्थों में वह फारसी से प्राप्त है । कोंकणी में तो ' खैर ' केवल ' कत्था का वृक्ष ' अर्थ में ही प्रयुक्त है । ' कुशल, अस्तु ' अर्थों में कोंकणी में ' खैर ' शब्द का प्रयोग नहीं होता है ।

(v) हिंदी तथा कोंकणी में ' जलद ' शब्द हैं, परंतु दोनों में अर्थान्तर है । हिंदी 'जलद ' का अर्थ है ' बादल, मेघ ' तो कोंकणी ' जलद ' का अर्थ है ' जल्द ' । हिंदी ' जलद ' संस्कृत तत्सम शब्द है तो कोंकणी ' जलद ' अरबी का शब्द है । अरबी ' जल्द ' का कोंकणी में ' जलद ' रूप में विकास हुआ परंतु उसके अर्थान्तर में विकास नहीं हुआ । अर्थात् समान अर्थ में हिंदी ' जल्द ' और कोंकणी ' जलद ' का प्रयोग स्पष्ट दिखायी देता है ।

(vi) हिंदी तथा कोंकणी में ' जोर ' शब्द है । फारसी से आगत इस शब्द के अर्थ हिंदी तथा कोंकणी में अनेक हैं, जैसे :– ' बल, शक्ति, वेग, व्यायाम ' आदि । परंतु कोंकणी में इस जोर शब्द का एक और अर्थ होता है जो हिंदी में नहीं है । यह अर्थ है ' बुखार ' । इसका कारण यह है कि कोंकणी का यह ' बुखार ' अर्थ वाला ' जोर ' शब्द संस्कृत 'ज्वर ' से विकसित है । इस संस्कृत ' ज्वर ' शब्द से हिंदी में कोई शब्द विकसित नहीं हुआ है ।

(vii) हिंदी तथा कोंकणी में ' ताक ' शब्द है । हिंदी ' ताक ' शब्द का अर्थ है, 'वस्तुएँ रखने के लिए दीवार में बनायी खाली जगह ' (इसके लिए कोंकणी में ' कंत्रेल ' शब्द है जो पुर्तगाली से आगत है) । हिंदी में ' ताक ' का एक और अर्थ है ' टकटकी ' । हिंदी ' ताक ' शब्द में प्राप्त होने वाले ये दोनों अर्थ कोंकणी ' ताक ' शब्द में नहीं है । कोंकणी ' ताक ' शब्द का अर्थ है ' छाछ ' । हिंदी ' ताक ' शब्द अरबी से आगत है तो कोंकणी ' ताक ' शब्द संस्कृत ' तक्र ' से विकसित है ।

(viii) संस्कृत ' लत्ता ' शब्द से विकसित ' लात ' शब्द हिंदी तथा कोंकणी में व्यवहृत है, जो ' पाँव ' अर्थ में प्रयुक्त है। इसके सिवा कोंकणी में ' लात ' शब्द ' कनस्तर ' अर्थ में भी प्रयुक्त है। ' कनस्तर ' अर्थ में प्राप्त होने वाला कोंकणी ' लात ' शब्द पुर्तगाली है।

(ix) हिंदी तथा कोंकणी में ' रास ' शब्द है, परंतु दोनों में शब्दान्तर है और अर्थान्तर भी। ' रास ' शब्द को संस्कृत से आगत माना जाए तो उसका अर्थ होता है, ' गोपों की प्राचीन काल की एक क्रीडा ' या ' श्रीकृष्ण के बचपन का एक क्रीडा प्रकार '। और हिंदी तथा कोंकणी में ये अर्थ मान्य हैं। परंतु कोंकणी ' रास ' शब्द का प्रसिद्ध अर्थ है ' ढेर '। कोंकणी में यह ' रास ' शब्द संस्कृत ' राशि ' शब्द से विकसित है। हिंदी में भी ' रास ' शब्द का एक भिन्न अर्थ है ' लगाम, बागडोर '। इस अर्थ में ' रास ' शब्द हिंदी में अरबी से प्राप्त है।

(x) हिंदी तथा कोंकणी में ' चंद शब्द ' प्राप्त है। हिंदी ' चंद ' शब्द फारसी से आगत है जिसका अर्थ है ' थोडा ' तो कोंकणी ' चंद ' शब्द संस्कृत ' चंद्र ' से विकसित है जिसका अर्थ है ' चाँद '।

(xi) हिंदी तथा कोंकणी में ' तोप ' शब्द में भी अन्तर दीखता है। हिंदी में ' तोप ' शब्द का अर्थ है, ' एक प्रकार का अस्त्र ' तो कोंकणी में ' तोप ' का अर्थ है ' ताँबा, पीतल आदि का एक प्रकार का बरतन '। हिंदी ' तोप ' तुर्की शब्द है तो कोंकणी ' तोप ' कानडी शब्द है।

(xii) यही बात ' राय ' शब्द की है। हिंदी में ' राय ' दो भाषाओं से प्राप्त है – संस्कृत और फारसी। इनमें संस्कृत से विकसित राय का अर्थ है ' राजा, सरदार ' आदि; तो फारसी से प्राप्त ' राय ' का अर्थ है ' मत, सलाह '। कोंकणी में केवल संस्कृत से विकसित ' राय ' शब्द है जिसका अर्थ है राजा, सरदार, बडा आदमी ' आदि। ' मत, सलाह ' अर्थ में कोंकणी में ' राय ' शब्द प्रायः नहीं है।

(xiii) हिंदी तथा कोंकणी में ' तर ' शब्द है। यह शब्द हिंदी में फारसी से आगत है तो कोंकणी में संस्कृत ' तर्हि ' शब्द से विकसित है। अर्थात् दोनों में अर्थान्तर है। हिंदी ' तर ' का अर्थ ' भीगा हुआ ' तो कोंकणी ' तर ' का अर्थ हिंदी में ' तो ' है (हिंदी ' तो ' संस्कृत ' ततः ' से विकसित है)।

(११) उच्चारण भेद के कारण हिंदी तथा कोंकणी के समानाक्षर शब्दों में अर्थान्तर प्राप्त होता है। ऐसे कुछ उदाहरण नीचे द्रष्टव्य हैं –

(i) हिंदी तथा कोंकणी में ' कोप ' शब्द है। हिंदी तथा कोंकणी मे इसका अर्थ है ' क्रोध '। परंतु कोंकणी में ' कोप ' के ' ओ ' का अर्द्धविवृत उच्चारण होता है तब उसका अर्थ होता है ' कप (चाय आदि पीने का साधन) '। कोंकणी में यह पुर्तगाली से प्राप्त है।

(ii) हिंदी तथा कोंकणी में ' चार ' शब्द है । हिंदी में इसका उच्चारण यकारयु (च्यार) होता है और इसका अर्थ संख्या (४) होता है । कोंकणी में भी संख्या (४) अर्थ इसका उच्चारण यकारयुक्त ' च्यार ' होता है । परंतु कोंकणी में इसका उच्चारण ज यकारयुक्त नहीं होता है तब इस ' चार ' के ' एक फल, पनस के फल का छिलका ' आ अर्थ होते हैं ।

(iii) हिंदी में ' जरा ' शब्द का यकारयुक्त और यकाररहित दो प्रकार का उच्चारण है । यकारयुक्त ' जरा(ज्यरा) ' का अर्थ है ' बुढापा ' । यकाररहित ' जरा ' का अर्थ है ' थोडा, कम ' । कोंकणी में ' जरा ' शब्द का उच्चारण केवल यकाररहित ही है औ उसका अर्थ है ' थोडा (कों. मात्सो) ' । परंतु कोंकणी में बुढापा अर्थ में हिंदी के ' जरा(=ज्यरा) ' जैसा शब्द नहीं है (बुढापा अर्थ में कोंकणी में ' म्हातारपण, जाण्टेपण ' शब्द हैं, जो ' म्हातारो, जाण्टो ' से बने हैं)।

(iv) हिंदी तथा कोंकणी में ' जाम ' शब्द उपलब्ध है । इसका उच्चारण हिंदी में केवल यकारयुक्त ही होता है तो कोंकणी में यकारयुक्त और यकाररहित होता है । हिंदी के यकारयुक्त ' जाम (ज्याम) ' और कोंकणी के यकाररहित ' जाम ' का अर्थ है ' प्याला ' इसके सिवा हिंदी तथा कोंकणी में यकारयुक्त ' जाम(ज्याम) ' का अर्थ है ' अशक्त जंगके कारण कडा होना ' आदि । ' जाम ' फारसी का शब्द है ।

(१२) यहाँ एक और प्रकार का अर्थान्तर दृष्टव्य है जो प्रत्यय के कारण प्राप्त होता है, यथा :– हिंदी के ' बीमार (विशेषण) ' शब्द के लिए कोंकणी में ' रोगी, आजारी ' शब्द है ; तो हिंदी के ' बीमारी (भाववाचक संज्ञा) ' शब्द के अर्थ में कोंकणी में ' रोग, आजार ' शब्द प्रयुक्त होते हैं । इन हिंदी के ' बीमार-बीमारी ' तथा कोंकणी के ' रोगी–रोग, आजारी–आजार ' शब्दयुग्मों में प्रत्यय के आधारभूत शब्द भिन्न-भिन्न जातीय होने के नाते समान प्रत्यय लगाने के बाद भी उनसे भिन्न-भिन्न अर्थ निकल आता है । एवं समान प्रत्यय ' ई ' लगाने के उपरान्त भी समान दिखायी देने वाले उपर्युक्त शब्दों में अर्थान्तर प्राप्त हुआ है । इसी प्रकार हिंदी ' ठंडी (स्त्री., विशेषण) ' का अर्थ कोंकणी में ' थंड (विशेषण, अकारान्त के कारण लिंग परिवर्तन नहीं होता है) ' शब्द से व्यक्त होता है; तो हिंदी ' ठंड (स्त्री., भाववाचक संज्ञा) ' का अर्थ कोंकणी में ' थंडी ' से स्पष्ट होता है, जैसे :–

हिंदी	**कोंकणी**
ठंड पडती है ।	थंडी पडता (पट्टा).
स्त्री ठंडी हो गयी ।	बायल(मनीस) थंड जाली.
आदमी ठंडा हो गया ।	मनीस थंड जालो.

यहाँ ' ठंडी ' शब्द ' ठंडा ' विशेषण का स्त्रीलिंग रूप है ।

३) मुहावरे

शब्दों में प्राप्त अर्थान्तर के कारण ही मुहावरों की रचना होती है। अपनी बात को घुमा-फिराकर कहने की प्रवृत्ति मनुष्यमात्र के मन में उत्पन्न होती है। इसलिए शब्द अपनी अभिधा शक्ति से प्राप्त अर्थ को छोडकर अन्य अर्थ को अपनाते रहते हैं। यहीं से मुहावरों का प्रचार सुरू होता है।

नीचे हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त कुछ मुहावरे दिये हैं –

हिंदी	(अर्थ)	कोंकणी
(१) आँखें खुलना	(सावधान होना)	दोळे उघडप
(२) जी चुराना	(काम से बचने के लिए बहाना ढूँढना)	चोर पडप, आंग चोरप
(३) जूतों से खबर लेना	(जूतों से पीटना)	जोत्यान तोंड फोडप
(४) गप्पें हाँकना	(व्यर्थ की बातें करना)	चकाटां पिटप(मारप)
(५) दाल न गलना	(वश न चलना)	दाळ शिजप ना
(६) दिन काटना	(समय बिताना)	वेळ घालवप
(७) दुम दबाकर भागना	(डरके मारे भागना)	भोंकांत शेंपटी घालून धांवप
(८) पेट में चूहे दौडना	(खूब भूख लगना)	पोटात कावळे रडप
(९) बाल पकना	(कोई काम करते करते बुड्ढा हो जाना)	केंस पिकप
(१०) सूखकर काँटा होना	(अत्यन्त दुबला होना)	सुकून काँटो जावप
(११) हाथ बँटाना	(किसी काम में मदद देना)	हात (हातभार) लावप
(१२) हाथ–पैर जोडना	(दीनता दिखाना)	हातापांयां पडप
(१३) हाथ मलते रह जाना	(पश्चात्ताप करते रहना)	हात चोळीत राबप
(१४) दीठ उतारना	(मंत्र द्वारा नजर दूर करना)	दिश्ट काडप
(१५) पैर छूना	(नमस्कार करना)	पांयां पडप

नीचे हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त होनेवाले कुछ मुहावरे अलग-अलग दिए हैं –

हिंदी –

' लट्टू होना, कनखियों से इशारा करना, दिल टूट जाना, हृदय पर साँप लोटना, फूला न समाना, दबोच लेना, जी तोडकर मेहनत करना, छत सिर पर उठाना, कान पक जाना, खून पसीना एक करना, मन खट्टा होना, सिर माथे पर चढाना, जिरह करना, कहा-सुनी होना, मुहर लगाना, दिल पर जमना, खतरा मोल लेना, ठान लेना, गुमसुम बैठना, दम तोड लेना, ताक में रहना, कमर टूट जाना, मुँह चुराना, छाती फट जाना, बधाई देना, घोडे बेचकर सोना, तीन तेरह होना, सिर उठाना ' आदि।

कोंकणी –

' नांव काडप, गांठीक मारप, कांट्यार बसप, कोमार काडप, पावसाचे नांव नासप, पोटाक मारप, न्हीद खळप, पायांक चाकां लागप, भायर पडप, आवरो उडप, बिटकी कवळप, करड काडप, आऱ्हांजार करप(=तयारी करप, पुर्त.), आदमिरार जावप(=अजाप जावप), जीण ओंपप, सार्थकी लागप, स्फूर्त घेवप, दड मारप, फोर्सार करप(=इत्सेभायर करूंक लावप), खप्प जावप, पोटार पांय हाडप, तोंड घेवन वचप, एक फुलवप (=थापट मारप), कल्ल जावप(= काळजाक धको बसप), मान ताठ आसप ' आदि ।

मुहावरों में जो शब्द होते हैं वे बदलना उचित नहीं है । अर्थात् पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग कर उसकी आकृति नहीं बिघाडी जाती, जैसे :– ' आँखें बिछाना ' मुहावरा है । इसमें ' आँखें ' के बदले ' नेत्र ' शब्द का प्रयोग कर ' नेत्र बिछाना ' का प्रयोग करना उचित नहीं है । एवं मुहावरों का प्रयोग उन्हीं शब्दों में करना उचित है ।

हिंदी तथा कोंकणी मुहावरों में एकाध शब्द भिन्न प्राप्त हुआ तो भी उनमें कहीं-कहीं अर्थसाम्य भी प्राप्त होता है, यथा :–

(१) यहाँ हिंदी ' फोटो उतारना ' तथा कोंकणी ' फोटो काडप ' में एक शब्द भिन्न है । फिर भी हिंदी के ' फोटो उतारना ' मुहावरे का अर्थ कोंकणी में ' फोटो काडप ' होता है । ' फोटो उतारना ' का शब्दशः अर्थ लिया जाए तो कोंकणी में उसका अर्थ ' फोटो ऊपर से नीचे उतारना ' अर्थात् ' फोटो उतरावप ' होगा ।

(२) हिंदी के ' दीठ जलाना ' के अर्थ में कोंकणी के ' दिश्ट काडप ' प्रयोग किया जाएगा । यहाँ आखिर दीठ जलायी ही जाती है फिर भी दोनों में शब्दान्तर है परंतु अर्थभेद नहीं है ।

(३) हिंदी के ' गाली देना ' अर्थ में कोंकणी में ' गाळी मारप ' का प्रयोग होता है ।

(४) हिंदी ' बीडी पीना ' के अर्थ में कोंकणी में ' विडी ओडप ' शब्दों का प्रयोग होता है । यहाँ हिंदी ' पीना ' का अर्थ कोंकणी में ' ओडप ' से स्पष्ट किया जाता है ।

(५) हिंदी में ' आरती उतारना ' मुहावरा है । इसी अर्थ में कोंकणी में ' आरत (आरती) करप (=आरती करना)' का प्रयोग किया जाता है ।

कहावतें

कहावत का अपना एक अर्थ होता है जो घटना या कहानी से संबंधित होता है । इनसे जो तत्व निष्कर्ष रूप में निकलता है वही बाद में लोगों के ओठों पर चलता रहता है; और यहीं से कहावत का प्रचार होता है । अपने कथन को अत्यधिक स्पष्ट करने के लिए लोग कहावतों का प्रयोग करते हैं । इनका अस्तित्व वाक्य में स्वतंत्र होता है ।

नीचे हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त कुछ कहावतें दी हैं –

हिंदी –	**कोंकणी –**
(१) अंधों में काना राजा । (=जहाँ लोग कुछ नहीं जानते वहाँ थोडा जानने वाला ही चतुर कहलाता है ।)	आंधळ्याभितर कुड्डो राजा.
(२) करेगा सो भरेगा । (=जो अपराध करेगा वह दण्ड भुगतेगा ।)	करता ताका भरता.
(३) नाच न जाने आँगन टेढा । (=काम करना न जाने और बहाना करे किसी और चीज का ।)	नाचपा येना आंगण वाकडें.
(४) हाथ कंगन को आरसी क्या ? (=जो प्रत्यक्ष है उसके लिए प्रमाण की क्या जरूरत ?)	हाता कांकणाक हारशी कित्याक ?
(५) अधजल गगरी छलकत जाय । (=जहाँ साधारण आदमी दिखावा अधिक करते हैं ।)	अर्दकुटो कळसो हायसुळता(=हालता:).
(६) बोटी देकर बकरा लेना । (=कीमत से ज्यादा लाभ उठाना ।)	आंवाळो दिवन कुंवाळो घेवप.
(७) अपना टेंटर न देखकर दूसरे की फूली देखे । (=अपने बडे दोष को न देखकर दूसरे के छोटे दोष देखना।)	आपुण कुंटो, दुसऱ्याक म्हणता थोंटो.
(८) ऊँट तो दगते थे, मकडी(मेंढ़की)ने भी टाँग फैला दी । (=बडे लोगों की झूठ-मूठ नकल करने से उपहास होता है ।)	ओल्ली नाचता म्हणून सूप नाचता.

इसके सिवा नीचे हिंदी तथा कोंकणी की कुछ कहावतें अलग-अलग दी हैं ।

हिंदी –

(१) अपना पूत पराया टटींगर । (२) न इधर के रहे, न उधर के रहे । (३) उखली में सर दिया तो मूसलों का डर क्या ? (४) एक पंथ दो काज । (५) कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगू तेली । (६) गोद में लडका शहर में ढिंढोरा । (७) चमडी जाय पर दमडी न जाय । (८) जैसी नियत वैसी बरकत । (९) तन कसरत में मन औरत में । (१०) मियाँ की दौड मसजिद तक । (११) मुख में राम बगल में छुरी । (१२) काम को पीछे खाने को आगे । (१३) गरजते हैं, वो बरसते नहीं।(१४) चिकने घडे पर पानी । (१५) छोटा मुँह बडी बात । (१६) दूध का जला, छाछ फूँक-फूँक कर पीता है । (१७) दूर के ढोल सुहावने । (१८) नाम बडे दर्शन खोटे । (१९) बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद ? (२०) वक़्त पडे बाँका, तो गधे को क्या कहे ? (२१) अपनी गली में कुत्ता शेर । (२२) पहले पेट, बाद में सब कुछ । (२३) मान न मान, मैं तेरा मेहमान । (२४) होनहार बिरबान के होत चिकने पात । (२५) हँसते ही घर बसता है ।

कोंकणी –

(१) आंग उदकान नितळ, मन सतान नितळ. (२) आपल्याल्या पांयामुळां कुंवाळें कुसलां, दुसऱ्यालीं सांसवां वेंचता. (३) आळशाक भिकणां भाज म्हळीं, तो म्हण्टा, हरवी खाल्यार चड बरीं. (४) इंद्रा मारल्यार चंद्राक लागता. (५) उबो आसमेरेन लाखाचो, मरतकूच फुकाचो. (६) उमथ्या कळशार उदक. (७) कान फूंक म्हळ्यार वान फुंकता. (८) खांकून खांकून गांवकार जाता. (८) खांडयेक एकवीस कुडव पोल. (१०) खोरें आपले वटेन माती ओट्टा. (११) चामडी दीत पुण दमडी दिना. (१२) चोरा मनांत चान्ने (चांदने). (१३) तकली माल्ल्यार खोंकली वता. (१४) ताकाक येवन बुडकुलो लिपैता. (१५) देखल्यार चोर ना जाल्यार साव. (१६) देव दिता देवचार नाट्टा।(१७) दोळ्यांआड मसण पाड . (१८) माये बगर रड ना, उज्याबगर कड ना. (१९) मेजावैलें केळे काढून फिर्याद जोट्टा. (२०) रावणाक भिकेचे दुवाळे. (२१) लजेक आनी पेजेक पडना. (२२) शेजारची व्हॊंकल कुड्डी. (२३) वेल तशें फळ. (२४) कामा पुरतो मामा. (२५) सताक बारा वर्षा.

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी की कहावतें निम्नलिखित पुस्तकों से ली हैं –
(१) भारतीय कहावत–संग्रह (हिंदी)
(२) कहावत कोश (हिंदी)
(३) द कोंकणी प्रोव्हर्बस् (कोंकणी)

संक्षेप में –

(१) हिंदी तथा कोंकणी संस्कृत से उत्पन्न होने के नाते उनमें उसके शब्द सब से अधिक संख्या में प्राप्त होते हैं । इनमें तत्सम, अर्द्धतत्सम और तद्भव शब्द हैं ।
(२) हिंदी तथा कोंकणी में संस्कृत के सिवा देशी, द्राविड, फारसी, अरबी, तुर्की, पुर्तगाली, अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्द भी प्राप्त हैं ।
(३) हिंदी में फारसी, अरबी के शब्द अधिक हैं तो कोंकणी में कानडी, पुर्तगाली के शब्द अधिक हैं ।
(४) आजकल हिंदी तथा कोंकणी में अंग्रेजी शब्दों का प्रचलन अधिक है ।
(५) आवश्यकता के अनुसार यद्यपि अंग्रेजी शब्दों को ले लिया जाए तो भी जब आवश्यकता न रहे तब हम अपनी भाषाओं के शब्दों का ही प्रयोग करें ।
(६) हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त कुछ तत्सम शब्दों में अर्थान्तर प्राप्त होता है ।
(७) हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों में भिन्न–भिन्न प्रकार का भेद प्राप्त है । इसी के मुताबिक उनमें विविध प्रकार का अर्थ–भेद भी प्राप्त है ।
(८) शब्दों की दृष्टि से भिन्न होते हुए भी अर्थ की दृष्टि से साम्य रखने वाले मुहावरों और कहावतों का यहाँ परिचय दिया है । इसके साथ ही हिंदी तथा कोंकणी के मुहावरों और कहावतों का भी अलग–अलग निर्देश किया है ।

अध्याय ११

हिंदी तथा कोंकणी वाक्य-रचना

वाक्य-रचना में यह विचार किया जाता है कि वाक्य में प्रयुक्त होने वाले पद (= शब्द) उचित स्थान पर क्यों रखे जाएँ; उनका परस्पर संबंध कैसा हो; पुरुष, वचन आदि की दृष्टि से उनका आपस में संबंध क्या हो; काल-वाचक क्रियाओं से वाक्य-रचना किस प्रकार बदलती है आदि बातें आती हैं । शब्दों की इन विभिन्न स्थितियों को देखते हुए लगता है कि वाक्य-विन्यास में तीन बातें आती हैं :– पदक्रम, शब्दों का परस्पर अन्वय और वाक्य-रचना में कारक-चिह्न । फिर भी यहाँ हिंदी तथा कोंकणी की तुलना के कारण अन्य कुछ विशिष्ट शब्दों के संबंध में प्राप्त भेदाभेद स्पष्ट करना आवश्यक हो जाता है । इस दृष्टि से इस अध्याय में वाक्य-रचना के तौर पर हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त होने वाला साम्य तथा वैषम्य स्पष्ट किया है ।

१) वाक्य-रचना में पद-क्रम

संस्कृत संयोगात्मक भाषा होने के कारण वाक्य-गठन में पद-क्रम का कोई वैशिष्ट्य नहीं है । ‘ रामः आम्रं खादति ।’; ‘ आम्रं खादति रामः। ’; ‘ खादति रामः आम्रं ।’ आदि वाक्यों में शब्दों को किसी भी प्रकार रखें, तो भी उनके अर्थ-बोध में बाधा नहीं आती । इस प्रकार संस्कृत की वाक्य-रचना में पूर्ण स्वातंत्र्य मिलता है । फिर भी साधारणतया संस्कृत वाक्यों के प्रारंभ में कर्ता, अन्त में क्रिया होती है, और इन दोनों के बीच कर्म आदि अन्य सभी पद आते हैं , जैसे :–

आदौ कर्तृपदं वाच्यं द्वितीयादि पदं ततः ।
क्त्वातुमन्त्यप्चमध्ये तु कुर्यादन्ते क्रियापदम् ।।

हिंदी तथा कोंकणी में यही क्रम साधारण रूप में प्राप्त है । कभी-कभी हिंदी तथा कोंकणी में वाक्य के विशिष्ट अर्थ पर जोर देने के लिए वाक्य-गत शब्दों (पदों) के क्रम में परिवर्तन कर लिया जाता है । इसके मूल में भी संस्कृत में प्राप्त होने वाली अनियमित शब्द-रचना की प्रवृत्ति ही स्पष्ट दिखायी देती है । अन्तर केवल इतना ही है कि संस्कृत में यह प्रवृत्ति यादृच्छिक है तो हिंदी तथा कोंकणी में वक्तृ-वैशिष्ट्य के आधार पर । अत एव हिंदी तथा कोंकणी के पद-क्रम में परिवर्तन होता है, यथा :– ‘ चोर को सिपाही ने पकडा (हिंदी) ।’ ; ‘ चोराक सिपायान पकडलो (कोंकणी).’ । इन दोनों वाक्यों में कर्तृवाचक ‘ सिपाही ’ तथा ‘ सिपाय ’ शब्दों का प्रयोग कर्मवाचक ‘ चोर ’ शब्द के अनन्तर हुआ है।

नीचे साधारणतया हिंदी तथा कोंकणी वाक्य-गत संरचना के नियमों का स्पष्टीकरण दिया है।

(i) हिंदी तथा कोंकणी पद-क्रम के नियम सामान्यतया समान हैं। हिंदी तथा कोंकणी वाक्य-विन्यास में अन्तिम घटक प्रायः क्रिया होती है। साधारण नियम यह है कि वाक्य के आरंभ में कर्ता, उसके अनन्तर कर्म और अन्त में क्रिया रहती है, यथा :-

हिंदी	**कोंकणी**
लडका पुस्तक पढता है।	भुरगो पुस्तक वाचता.
राम काम करता है।	राम काम करता.
राम ने रावण को मारा।	रामान रावणाक मारलो (माल्लें).

उपर्युक्त हिंदी वाक्यों में ' लडका ', ' राम ' और ' राम ने ' कर्ता है, जिनका प्रयोग वाक्य के आरंभ में है। ' पुस्तक ', ' काम ' और ' रावण को ' कर्मवाचक शब्द मध्य में हैं तथा ' पढता है ', ' करता है ' और ' मारा ' क्रियाएँ हैं जो वाक्य के अन्त में हैं।

यही स्थिति उपर्युक्त कोंकणी वाक्यों में भी दिखाई देती है।

(ii) विशेषण विशेष्य के पहले रखा जाता है, यथा :-

हिंदी	**कोंकणी**
छोटी लडकी खेलती है।	**ल्हान** चली खेळता.
यह **नई** पुस्तक है।	हें **नवें** पुस्तक आसा.
वह **अच्छा** काम करता है।	तो **बरें** काम करता.

उपर्युक्त हिंदी वाक्यों में ' छोटी ', ' नई ', ' अच्छा 'तथा कोंकणी वाक्यों में ' ल्हान ', ' नवें ', ' बरें ' शब्द विशेषण हैं जो विशेष्य के पूर्व व्यवहृत हैं।

(iii) क्रियाविशेषण क्रिया के पहले आता है, यथा :-

हिंदी	**कोंकणी**
तू **कहाँ** जाता है ?	तूं **खंय** वता.
गाडी **तुरंत** आयी।	गाडी **बेगीन** आयली.

(iv) कभी-कभी वाक्य-विन्यास का यह क्रम परिवर्तित भी होता है। वाक्य के किसी एक अंश पर जोर देने के लिए उपर्युक्त क्रम में उलट-फेर भी हो सकता है। अर्थात् अपने कथन को प्रभावोत्पादक या भावनोत्पादक बनाने के लिए वाक्य में ' कर्ता, कर्म ' और ' क्रिया ' का स्थान परिवर्तित किया जाता है, यथा :-

हिंदी	**कोंकणी**
कैसा अच्छा लिखती है लडकी !	आयलोसो दिसता या काळग्यांचो नवो सोमार!
बहुत सुंदर है यह किताब !	जवाहर खरो रमता भुरग्यांमदीं.

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी के वाक्य भिन्नार्थक हैं। कोंकणी के इन वाक्यों का हिंदी

में प्रायः इस प्रकार अनुवाद होगा :– ' आया–सा दीखता है इन कालतुल्यों (कालतुल्य दुष्टों) का नया सोमवार ! '; ' जवाहर सच रमता (आनंदित होता) है बच्चों के बीच । ' ।

यहाँ उपर्युक्त हिंदी वाक्यों में ' लडकी ' और ' किताब ' शब्द वाक्य के अन्त में है जो कर्तृवाचक हैं । पहले वाक्य में क्रिया ' लिखती है ' और दूसरे वाक्य में क्रिया ' है ' हैं जो वाक्य के बीच में हैं । कोंकणी में, पहले वाक्य में ' सोमार ' कर्तृवाचक पद है जो वाक्य के अन्त में, तो दूसरे वाक्य में कर्तृवाचक ' जवाहर ' पद वाक्य के आरंभ में है । पहले वाक्य में क्रिया ' दिसता ' और दूसरे वाक्य में क्रिया ' रमता ' वाक्य के बीच में हैं ।

(v) इसी प्रकार विशेषण का भी विशेष्य के अनन्तर प्रयोग होता है, यथा :–

हिंदी	**कोंकणी**
मैं **अच्छा** हूँ ।	हांव **बरो** आसा.
मकान **ऊँचा** है ।	घर **उंच** आसा.

(vi) कभी-कभी क्रियाविशेषण क्रिया के बाद अथवा संज्ञा के पहले भी आता है, यथा:–

हिंदी	**कोंकणी**
जा **जल्दी** ।	वच **बेगीन.**
कल छुट्टी है ।	**फाल्यां** सुटी आसा.

२) वाक्य-रचना में पदों का अन्वय

पदों के अन्वय में ' पुरुष, वचन, लिंग, विशेष्य-विशेषण ' और ' काल ' का विचार आता है । इसका स्पष्टीकरण नीचे दिया है ।

(I) पुरुष

वाक्य-रचना की दृष्टि से संस्कृत में तीन पुरुष हैं, यथा :– (१) उत्तम पुरुष, (२) मध्यम पुरुष तथा (३) अन्य पुरुष । ये तीनों पुरुष पालि-प्राकृत के द्वारा हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त हैं । पुरुषों का संबंध संज्ञाओं, सर्वनामों और क्रियाओं में प्राप्त होता है ।

(१) पुरुषवाचक शब्दों के रूप में हिंदी तथा कोंकणी में निम्नलिखित शब्द दिखाये जाते हैं :–

पुरुष	:	हिंदी		कोंकणी	
उत्तम	:	मैं(एक.)	हम(बहु.)	हांव(एक.)	आमी(बहु.)
मध्यम	:	तू('')	तुम('')	तूं('')	तुमी('')
अन्य	:	वह('')	वे('')	तो('')	ते('')

शेष सभी सर्वनाम तथा सारी संज्ञाएँ अन्य पुरुष में आती हैं ।

(सूचना :– उपर्युक्त कोंकणी ' तो ' सर्वनाम पर लिंग का प्रभाव है । अतः इसका स्त्री. एक. में ' ती ', स्त्री. बहु. में ' त्यो ', नपुं. एक. में ' तें ' और नपुं. , बहु. में ' तीं ' होता है । इसी प्रकार कोकणी में अन्य ' हो (= यह) , और ' जो (= जो)' सर्वनामों में भी लिंग के कारण रूपान्तर होता है ।)

इन पुरुषों के अनुसार हिंदी तथा कोंकणी वाक्य-रचना में क्रियाएँ परिवर्तित होती हैं, जैसे :–

पुरुष	वचन	हिंदी	कोंकणी
उत्तम	एक. :	मैं काम करता हूँ ।	हांव काम करतां.
''	बहु. :	हम काम करते हैं ।	आमी काम करतांत.
मध्यम	एक. :	तू काम करता है ।	तूं काम करता.
''	बहु. :	तुम काम करते हो ।	तुमी काम करतात.
अन्य	एक. :	वह काम करता है ।	तो काम करता.
''	बहु. :	वे काम करते हैं ।	ते काम करतात.

(२) हिंदी में मध्यम पुरुष में एक और सर्वनाम प्राप्त होता है, जैसे :– ' आप ' । इसे आदरवाचक सर्वनाम कहा जाता है । इसका उपयोग ' तुम ' के बदले किया जाता है । परंतु ' तुम ' के लिए जो क्रिया उपयुक्त होती है वह इसके लिए उपयुक्त नहीं होती है । इसके साथ अन्य पुरुष बहुवचन की क्रिया प्रयुक्त होती है, ज़ैसे :–

तुम काम करते हो । आप काम करते हैं ।
तुम भोजन करोगे ? आप भोजन करेंगे ?

इन वाक्यों में प्राप्त ' करते हो ' और ' करते हैं ' तथा ' करोगे ' और ' करेंगे ' क्रिया-रूपों में अन्तर है ।

कोंकणी में इस प्रकार आदर दिखाने के लिए हिंदी ' आप ' जैसा अलग सर्वनाम नहीं है । कोंकणी में अधिकतर एकवचनीय ' तूं ' का ही प्रयोग होता है । परंतु आजकल पढे-लिखे लोग आदर दिखाने के लिए ' तूं ' के बदले ' तुमी ' का प्रयोग करते हैं, जैसे :– ' तूं कसो आसा (= तू कैसा है) ? ' के बदले ' तुमी कशे आसात (= तुम कैसे हो)?'; ' तूं काम करता. (= तू काम करता है ।) ' के बदले ' तुमी काम करतात. (= तुम काम करते हो ।)'; आदि ।

(३) हिंदी में उपर्युक्त आदरवाचक ' आप ' सर्वनाम का उपयोग अन्य पुरुष बहुवचन में भी किया जाता है । यहाँ भी आदर व्यक्त करना इसका उद्देश्य है, जैसे :–

''गांधीजी भारत की स्वतंत्रता के लिए लडे । आप सत्य और अहिंसा के पुजारी थे।''
''श्रीमान कर्वेजी बडे उदार पुरुष थे । आप महान समाज सेवक थे ।''

इन दोनों उदाहरणों में ' आप ' का प्रयोग अन्य पुरुष बहुवचन में हुआ है ।

इस प्रकार का प्रयोग कोंकणी में उपलब्ध नहीं है ।

हिंदी तथा कोंकणी के शेष सभी सर्वनाम और सारी संज्ञाएँ अन्य पुरुष में प्रयुक्त होती हैं।

(II) वचन

संस्कृत में तीन वचन हैं। इसमें प्राप्त द्विवचन पालि में ही लुप्त हो चुका। हिंदी तथा कोंकणी में दो वचन हैं, यथा :– (१) एकवचन और (२) बहुवचन। वचनों का संबंध संज्ञाओं, सर्वनामों, विशेषणों और क्रियाओं में दिखायी देता है।

प्रायः सामान्य नियम यह है कि एक व्यक्ति या वस्तु के लिए एकवचन और एक से अधिक के लिए बहुवचन। फिर भी अपवाद के स्वरूप इन नियमों में बदल भी होता है। इसके लिए निम्नलिखित कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :–

(१) हिंदी तथा कोंकणी में कुछ शब्द ऐसे हैं जिनमें वस्तुएँ दो होती हैं। ऐसी स्थिति में एकत्व का बोध होने के कारण उन शब्दों का प्रयोग एकवचन में होता है, जैसे :–

हिंदी	**कोंकणी**
मेरा जूता कहाँ है ?	म्हजें जोतें खंय आसा ?
हमने धोती का जोडा खरीदा।	आमी पुडव्याजोडी विकत घेतली.
उसकी चप्पल बहुत सुंदर है।	ताजें चप्पल खूब सोबित आसा.

यहाँ एक से अधिक जोडियाँ हो तो इनका प्रयोग बहुवचन में होता हैं, जैसे :–

हिंदी	**कोंकणी**
यहाँ कई जूते हैं।	हांगा कितलीं जोतीं आसात.
दूकान में बहुत धोती के जोडे हैं।	दुकानांत खूप पुडव्याजोडयो आसात.

इसी प्रकार हिंदी में ' दंपती, सैन्य, भीड, समूह ' तो कोंकणी में ' दंपत्य, सैन्य, गर्दी, जमाव ' आदि शब्द एकवचन में प्रयुक्त हैं।

(२) हिंदी में ' दर्शन, प्राण, हस्ताक्षर, दाम, लोग, होश, आँसू , ओंठ ' आदि कुछ शब्द हैं जिनका प्रयोग बहुवचन में ही होता है तो कोंकणी में ये अथवा एतदर्थक शब्द प्रायः एकवचन में ही प्रयुक्त होते हैं, जैसे :–

हिंदी	**कोंकणी**
आपके दर्शन दुर्लभ हुए।	तुमचें दर्शन कठीण जालां.
नेताजी ने अपने प्राण त्याग दिये।	नेताजीन आपलो प्राण सोडलो.
मैंने हस्ताक्षर किये।	हांवें सय(ही) केली.
उनके होश उड गये।	तांचो आवरो उडलो.

कोंकणी में ' पितर, कात्यो (कृत्तिका नक्षत्र), अक्षता ' आदि शब्द प्रायः बहुवचन में प्रयुक्त हैं।

(३) हिंदी में विशिष्ट व्यक्ति या लेखक कभी-कभी उत्तम पुरुष में एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग करते हैं, परंतु कोंकणी में प्रायः यह नहीं होता है , जैसे :–

हिंदी	**कोंकणी**
हम तुम से पूछते हैं ।	हांव तुमकां विचारतां.
हम हुक्म देते हैं ।	हांव हुकुम दितां(फरमायतां).
यह हमारा मत है ।	हें म्हजें मत आसा.

कभी-कभी बहुत्व स्पष्ट सूचित करने के लिए हिंदी में ' हम ' के साथ ' लोग ' शब्द जोडा जाता है, जैसे :– ' हम लोग अब तुम्हारा कुछ नहीं सुनेंगे । ' ; ' हम लोग चले जाते हैं ।' ; आदि । परंतु कोंकणी में यह स्थिति नहीं है ।

(४) ' तू ' का प्रयोग हिंदी में बहुत ही कम प्रयुक्त है , तो कोंकणी में अधिक । अंग्रेजी में जिस प्रकार मध्यम पुरुष एकवचन में ' दाउ ' के बदले ' यू ' का प्रयोग होता है उसी प्रकार हिंदी में ' तू ' के बदले ' तुम ' बहुवचनीय रूप का प्रयोग अधिक होता है । हिंदी में ' तू ' के प्रयोग से निरादर की भावना सूचित होती है या ' तू ' का प्रयोग करना हलकापन समझा जाता है , जैसे :– ' तू यहाँ से बाहर जा । '; आदि । फिर भी भगवान के संबंध में जब ' तू ' का प्रयोग किया जाता है तब इसमें निरादर की भावना नहीं होती, बल्कि आत्मीयता की भावना दिखायी देती है, जैसे :– ' हे प्रभु , तू मेरी रक्षा कर । '; आदि । यही आत्मीयता कोंकणी में ' तूं ' के प्रयोग में है । अतः इसमें ' तूं ' का प्रयोग अधिक है, जैसे :– ' तूं भायर वच. (= तू बाहर जा)'; आदि । शिष्ट समाज में आजकल एक व्यक्ति के लिए बहुवचन ' तुमी ' का व्यवहार होता है, जैसे :– ' तुमी भायर वचात. (= तुम बाहर जाओ ।)'; आदि ।

(५) हिंदी में ' तुम ' वास्तव में बहुवचनीय रूप है । फिर भी इसमें बहुत्व सूचित करने के लिए ' लोग ' शब्द जोडा जाता है, जैसे :– ' तुम लोग कहाँ जा रहे हो ?' ; आदि । परंतु इस प्रकार कोंकणी में ' तुमी ' के साथ ' लोक ' शब्द का प्रयोग नहीं होता है , जैसे :– तुमी खंय वचत आसात(वतात)?; आदि ।

(६) हिंदी में मध्यम पुरुष बहुवचन में आदरवाचक ' आप ' प्रयुक्त है । इसका प्रयोग हिंदी में ' तुम ' के स्थान पर होता है । कोंकणी में इस प्रकार का ' तुमी ' के स्थान पर प्रयुक्त होने वाला दूसरा शब्द नहीं है । हिंदी ' आप ' का उपयोग आदरणीय या अपने से बडे व्यक्ति के संबंध में होता है । इस ' आप ' के साथ मध्यम पुरुष बहुवचन की क्रिया नहीं आती बल्कि सदा अन्य पुरुष बहुवचन की क्रिया आती है, जैसे :– ' आप क्या करते हैं ?'; ' आप जो कहेंगे सो मैं करूँगा । '; ' क्या, आप पणजी से आये हैं ?; आदि ।

इस ' आप ' के कारण हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त होने वाला अन्तर निम्नलिखित वाक्यों से और भी स्पष्ट होगा, जैसे :–

हिंदी	**कोंकणी**
पिताजी, आप क्या करते हैं ?	बाबा, तूं कितें करता ?

यहाँ हिंदी ' आप ' के लिए कोंकणी में 'तूं' का प्रयोग हुआ है और वह कोंकणी की दृष्टि से उचित भी है। परंतु ' तूं ' के बदले बहुवचन ' तुमी ' का प्रयोग उपर्युक्त कोंकणी वाक्य में बिलकुल नहीं सोहता, जैसे :– ' बाबा, तुमी कितें करतात ?' । हिंदी में ' आप ' शब्द तो वहाँ शोभादायक ही है।

हिंदी में ' आप ' बहुवचनीय शब्द है, फिर भी बहुत्व सूचित करने के लिए इसमें कभी-कभी ' लोग ' शब्द जोडा जाता है, जैसे :– ' आप लोग क्या करते हैं ?'; ' आप लोग तैयार हो जाइए। '; आदि।

(७) हिंदी में आदर प्रगट करने के लिए अन्य पुरुष में भी बहुवचन का प्रयोग होता है, परंतु ऐसी स्थिति में कोंकणी में एकवचन का प्रयोग होता है, जैसे:–

हिंदी	**कोंकणी**
पिताजी बैठे हैं।	बापूय बसला.
नेहरूजी बहुत काम करते थे।	नेहरू खूप काम करतालो.
माताजी बाजार गयीं।	आवय बाजारांत गेल्या.
श्रीमती (पत्नी)जी काम में हैं।	बायल कामांत आसा.
नेताजी कल आये।	नेतो काल आयलो.

ऐसे वाक्यों में हिंदी में संज्ञा-शब्दों में ' जी ' लगाया जाता है और व्यक्ति के एकत्व में भी बहुवचन का प्रयोग होता है। कभी-कभी यह ' जी ' नहीं लगाया जाता फिर भी बहुवचन का प्रयोग होता है, जैसे :–

हिंदी	**कोंकणी**
बडे भाई आये।	व्हडलो भाव आयलो.
मामा (एक.) आयेंगे।	मामा येतलो.

हिंदी में यह प्रवृत्ति विशेष रूप में पायी जाती है, जैसे :– (१) राष्ट्रपति आ गये।; (२) स्वामी बोलते हैं। ; (३)शिक्षक हिंदी पढाते हैं।; (४)शिक्षामंत्री कहते हैं।; आदि।

परंतु यह प्रवृत्ति कोंकणी में नहीं के बराबर है। वहाँ एकवचनीय प्रयोग ही सम्मत है, जैसे :– (१) राष्ट्रपति आयलो. (= राष्ट्रपति आ गया।); (२) स्वामी उलयता. (= स्वामी बोलता है।); (३) गुरुजी/मास्तर हिंदी शिकयता. (= शिक्षक हिंदी पढाता है।); (४) शिक्षणमंत्री सांगता. (= शिक्षामंत्री कहता है।); आदि।

यदि कहीं कोंकणी में बहुवचन का प्रयोग मिला तो वह कोंकणी की अपनी प्रवृत्ति के कारण नहीं बल्कि अन्य भाषा प्रभाव के कारण मानना चाहिए।

(III) लिंग

संस्कृत में तीन लिंग हैं। परंतु यह प्रवृत्ति हिंदी ने छोड दी है तो कोंकणी ने अपनायी है। हिंदी में दो लिंग हैं :– पुल्लिग और स्त्रीलिंग ; तो कोंकणी में तीन लिंग हैं :– पुल्लिग,

स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग । लिंगों का संबंध हिंदी तथा कोंकणी की संज्ञाओं, विशेषणों और क्रियाओं में प्राप्त होता है । इसके सिवा कोंकणी के कुछ सर्वनामों में लिंग का सबंध प्राप्त होता है ।

(१) हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं में प्राप्त लिंगान्तर और हिंदी की अपेक्षा कोंकणी में प्राप्त नपुंसकलिंग के आधिक्य के कारण दोनों की वाक्य-रचना में काफी अन्तर प्राप्त है । यह अन्तर स्पष्ट होने के लिए नीचे हिंदी तथा कोंकणी के समानार्थी कुछ वाक्य दिये हैं ।

हिंदी	**कोंकणी**
पुल्लिंग	**स्त्रीलिंग**
(१) यह कमरा छोटा था ।	ही कूड(खोली) ल्हान आसली.
(२) सबेरा हुआ ।	सकाळ झाली.
(३) रास्ते में एक व्यक्ति मिला ।	रस्त्यांत एक व्यक्ति मेळळी.
(४) मैंने दो रुपये का नोट दिया ।	हांवें दोन रुपयांची नोट दिली.
पुल्लिंग	**नपुंसकलिंग**
(१) यह बडा घर है ।	हें व्हडलें घर आसा.
(२) बुढापा आ गया ।	जाण्टेपण (म्हातारपण) आयलें.
(३) स्कूल आठ बजे खुला ।	इश्कोल आठ वाजता उघडलें.
(४) दही अच्छा है ।	धंय बरें आसा.
स्त्रीलिंग	**पुल्लिंग**
(१) तुम्हारी जेब खाली है ।	तुमचो खिसो रिकामो आसा.
(२) तुम्हारी जय हो ।	तुमचो जय जावं.
(३) नदी में बाढ आयी थी ।	न्हंयक हुंवार आयिल्लो.
(४) मैंने पतंग उडायी ।	हांवें पतंग सोडलो
स्त्रीलिंग	**नपुंसकलिंग**
(१) यह बडी पुस्तक है ।	हे मोटें पुस्तक आसा.
(२) उसकी कलम खोयी है ।	ताजें पेन शेणलां.
(३) आपकी नाक कटी ।	तुमचें नाक कापलें.
(४) तुम्हारी जय हो ।	तुमचें (कां) जैत जावं (मेळूं).

(२) हिंदी सर्वनामों में लिंग का प्रभाव नहीं माना जाता । परंतु कोंकणी ' तो, हो, जो ' में तीनों लिंगों का और ' कितें ' में केवल नपुंसकलिंग का प्रभाव है । अतः हिंदी के ' वह ' शब्द का कोंकणी में अनुवाद करना चाहें तो वाक्य-रचना के अनुसार उसका तीनों लिंगों में अनुवाद होता है । इसके लिए कोंकणी में अलग अलग तीन शब्द हैं, जैसे :–

हिंदी : ' वह '; कोंकणी : ' तो , ती , तें ' । नीचे इनकी वाक्य-रचना देखिए :–

हिंदी	**कोंकणी**
(१) वह दसवीं कक्षा में पढता है ।	तो धाव्या यत्तेंत शिकता(पु.).
(२) वह दसवीं कक्षा में पढती है ।	ती धाव्या यत्तेंत शिकता(स्त्री.).
(३) ——————— ————	तें धाव्या यत्तेंत शिकता(नपुं.).

यहाँ ' वह ' शब्द में पुंस्त्व या स्त्रीत्व क्रिया से जाना जाता है तो कोंकणी में यह क्रिया से नहीं जाना जा सकता है । पुंस्त्व, स्त्रीत्व या नपुंसकत्व दिखाने के लिए कोंकणी में ' तो, ती, तें ' तीन अलग-अलग शब्द हैं, जो ' तो (= वह) ' के रूपान्तर हैं । इस प्रकार इनके बहुवचनीय और अन्य कारकीय रूपों में भी अन्तर है । ये स्थितियाँ कोंकणी ' हो (= यह) ' और ' जो (= जो)' में भी प्राप्त हैं (हिंदी नित्यसंबंधी ' सो ' की तुलना कोंकणी ' तो, ती, तें ' से होती है यह बात पूर्व ही स्पष्ट की है, देखिए, पृ. २४३)।

हिंदी सर्वनामों में लिंग-भेद नहीं माना जाता है, फिर भी ' क्या ' में लिंग-भेद माना जा सकता है । कोंकणी ' कितें ' नपुंसकलिंग है, तो हिंदी ' क्या ' प्रायः पुल्लिंग में प्रयुक्त है, जैसे :–

हिंदी	**कोंकणी**
(१) तुमने क्या किया ?	तुमी कितें केलें ?
(२) उसने क्या पढा ?	ताणें कितें वाचलें ?

उपर्युक्त वाक्यों में प्राप्त भूतकालिक ' किया ' और ' पढा ' क्रियाओं के साथ कर्तृवाचक ' तुमने ' और 'उसने ' शब्दों में ' ने ' प्रत्यय जुडा है । ऐसी स्थिति में कर्म यदि ' को ' प्रत्यय विहीन हो तो कर्म के अनुसार क्रिया होती है । अतः ' किया ' और ' पढा ' पुल्लिग होने के कारण ' क्या ' को पुल्लिग मानना आवश्यक हो जाता है ।

यही स्थिति कोंकणी में है । वहाँ कर्मवाचक ' कितें ' शब्द नपुंसकलिंग होने के कारण कर्म के अनुसार ' केलें ' और ' वाचलें ' क्रियाएँ नपुंसकलिंग में प्रयुक्त हैं; अथवा ' केलें ' और ' वाचलें ' के अनुसार ' कितें ' को नपुंसकलिंग माना जा सकता है ।

(३)हिंदी तथा कोंकणी में एक अन्य प्रकार का लिंगान्तर प्राप्त होता है । ' अंजनी , गीता, कमल, संध्या, पुष्पा , वीणा, विजया , सविता ' आदि शब्द लडकियों या स्त्रियों की संज्ञाएँ होती हैं । ये संज्ञाएँ हिंदी में स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होती हैं जब कि कोंकणी में नपुंसकलिंग में प्रयुक्त होती हैं, जैसे :–

हिंदी में स्त्रीलिंग	**कोंकणी में नपुंसकलिंग**
अंजनी आयी ।	अंजनी आयलें.
संध्या बाजार गयी ।	संध्या बाजारांत गेलें.
पुष्पा घर आएगी ।	पुष्पा घरा येतलें .

वीणा पढेगी ।	वीणा वाचतलें.
विजया गाना गायेगी ।	विजय गाणें म्हणतलें.
सविता काम करती थी ।	सविता काम करतालें.

यहाँ ' अंजनी ' आदि संज्ञाओं का स्त्रीलिंग में व्यवहार करना कोंकणी में अच्छा नहीं लगता, जैसे :– ' अंजनी आयली. संध्या बाजारांत गेली. पुष्पा घरा येतली . वीणा वाचतली. विजय गाणें म्हणतली. ' आदि । ये प्रयोग कोंकणी में सोहते नहीं । इनका नपुंसकलिंग में ही प्रयोग अच्छा लगता है ।

फिर भी कहीं-कहीं यह प्रवृत्ति लडकियों की शादी के बाद बदलती है, परंतु एकदम कम । अतः यह प्रवृत्ति दुर्लक्षित-सी रहती है ।

(४) हिंदी तथा कोंकणी वाक्य-रचना में एक और प्रकार का लिंगान्तर प्राप्त होता है। हिंदी में समान-लिंग की कर्तृवाचक संज्ञाएँ ' और ' आदि समुच्चयबोधक अव्ययों के द्वारा जोडने के बाद क्रिया प्रायः पुल्लिंग या स्त्रीलिंग में होती है । अर्थात् सभी कर्ता पुल्लिंग में तो क्रिया पुल्लिग में ; सभी कर्ता स्त्रीलिंग में तो क्रिया स्त्रीलिंग में । यही स्थिति कोंकणी में भी प्राप्त होती है , जैसे :–

हिंदी	**कोंकणी**
(१) राम और लक्ष्मण वन गये । (सभी कर्ता पुल्लिग में क्रिया पुल्लिग में)	राम आनी लक्ष्मण रानांत गेले.
(२) बेटी और बहू बाजार जाती थीं । (सभी कर्ता स्त्रीलिंग में क्रिया स्त्रीलिंग में)	धूव आनी सून बाजारांत वताल्यो .

[सूचना :– कोंकणी में यही स्थिति नपुंसकलिंग संज्ञाओं में प्राप्त होती है, जैसे :– ' संध्या आनी वीणा (दोनों नपुसंक. संज्ञाएँ हैं) ' बाजारांत वतालीं. ' ; आदि । यहाँ ' वतालीं ' क्रिया नपुंसकलिंग बहुवचन है ।]

परंतु कर्तृवाचक संज्ञा एक पुल्लिग में और दूसरी स्त्रीलिंग में हो तो हिंदी वाक्य में क्रिया पुल्लिग में होती है जब कि कोंकणी वाक्य में क्रिया नपुंसकलिंग में होती है, जैसे :–

हिंदी	**कोंकणी**
(१) राम और सीता वन गये ।	राम आनी सीता वनांत गेलीं.
(२) बहु और बेटा वन गये ।	सून आनी पूत वनांत गेलीं.

(यहाँ ' गये ' पुल्लिंग बहुवचन है तो ' गेलीं ' नपुंसकलिंग बहुवचन है ।)

इस प्रकार यहाँ हिंदी तथा कोंकणी में अन्तर प्राप्त है ।

(IV) विशेष्य-विशेषण में अन्वय

संस्कृत वाक्य-रचना में विशेष्य और विशेषण में लिंग, वचन और विभक्ति समान होती है, यथा :– ' विद्वान् नरः, विदुषी नारी, नीलं पुष्पं, गच्छते नराय ' आदि । परंतु

दी में केवल आकारान्त तथा कोंकणी में केवल ओकारान्त विशेषण ही विशेष्य के लिंग, चन तथा परवर्ती परसर्गयुक्त विशेष्य के अनुसार परिवर्तित होते हैं, यथा :–

हिंदी : ' अच्छा लडका, अच्छी लडकी, अच्छे लडके / लडकों से ' आदि ।

कोंकणी : ' बरो भुरगो, बरी भुरगी (जैसे :– ती बरी भुरगी–शी दिसता.), बरें भुरगें, रे भुरगे, बऱ्यो भुरग्यो , बरीं भुरगीं , बऱ्या भुरग्याक / भुरग्यांक ' आदि ।

V) काल

काल का संबंध क्रिया से है, जैसे :– वर्तमान, भूत और भविष्य । इनके कारण ाक्य-विन्यास में अन्तर आता है, जैसे :–

काल	हिंदी	कोंकणी
वर्तमान	राम किताब पढता है (पु.) ।	राम पुस्तक वाचता (लिंग-भेद नहीं).
,,	सीता रोटी खाती है (स्त्री.) ।	सीता रोटी खाता(लिंग-भेद नहीं).

यहाँ हिंदी के पहले वाक्य में पुल्लिग क्रिया है तो दूसरे वाक्य में स्त्रीलिंग क्रिया है तो कोंकणी के वर्तमानकाल में लिंग-भेदक प्रत्यय न होने के कारण दोनों वाक्यों में क्रियाएँ समान हैं ।

परंतु उपर्युक्त वाक्यों में ' पढना ' और ' खाना ' का भूतकाल करना चाहें तो उनके रूप होंगे ' पढा ' और ' खाया ' । इन रूपों का प्रयोग जब करेंगे तब कारक रूपों में भी अन्तर आता है और विकृत रूप ' राम ' तथा ' सीता ' में ' ने ' प्रत्यय जुट जाता है । इसके साथ ही क्रिया ' पढा ' और ' खाया ' के अनुसार कर्म में बदल करना पडता है या पूर्व स्थित कर्म के अनुसार क्रिया ' पढा ' और ' खाया ' में बदल करना पडता है, जैसे :–

क्रिया के अनुसार कर्म में बदल :–

काल	हिंदी	कोंकणी
भूत	राम ने ग्रंथ पढा (पु.) ।	रामान ग्रंथ वाचलो (पु.).
,,	सीता ने हलुवा खाया (पु.) ।	सीतेन हालवो खालो (पु.).

कर्म के अनुसार क्रिया में बदल :–

काल	हिंदी	कोंकणी
भूत	राम ने किताब पढी (स्त्री.)।	रामान पुस्तक वाचलें (नपुं.).
,,	सीता ने रोटी खायी (स्त्री.)।	सीतेन रोटी खाली (स्त्री.).

उपर्युक्त हिंदी वाक्यों में काल से संबंधित जो बातें कही हैं वे ही बातें उपर्युक्त कोंकणी वाक्यों में भी दिखायी देती हैं । सिर्फ कोंकणी में नपुंसकलिंग अधिक होने के कारण हिंदी तथा कोंकणी के उपर्युक्त भूतकालीन एक ही वाक्य-रचना में थोडा-सा अन्तर दीखता है ।

३) वाक्य-रचना में कारक-चिह्न

नीचे कारक-चिह्नों की दृष्टि से हिंदी तथा कोंकणी वाक्य-रचना में प्राप्त हो वाला साम्य तथा भेद स्पष्ट किया है ।

(I) कर्ता कारक

हिंदी तथा कोंकणी में कर्ता कारक के दो रूप होते हैं :– (अ) अप्रत्यय और (आ सप्रत्यय ।

(अ) अप्रत्यय कर्ता कारक (हिंदी ' ० ' तथा कोंकणी ' ० ')

हिंदी तथा कोंकणी वाक्य-रचना में अप्रत्यय कर्ता कारक में कोई कारक-चिह्न नहं जुडता । कर्ता कारक में कारक-चिह्न का अभाव सूचित करने के लिए ही पृष्ठ क्रमांक १५८ पर दिये हुए कारक-चिह्नों की तालिका में ' ० ' चिह्न दिया है । इस दृष्टि से हिंद तथा कोंकणी के कर्ता कारक एकवचन और बहुवचन में संज्ञाओं के मूल रूपों का प्रयोग होता है, यथा :–

	हिंदी		**कोंकणी**	
लिंग	**एक.**	**बहु.**	**एक.**	**बहु.**
पुल्लिग–	राम, मनुष्य	राम, मनुष्य	राम, मनीस	राम, मनीस
,,	घोडा, हाथी	घोडे, हाथी	घोडो, हती	घोडे, हती
स्त्रीलिंग–	औरत, माला	औरतें, मालाएँ	बायल, माळ	बायलो, माळो
,,	लडकी, जूं	लडकियाँ, जुएँ	चली, ऊ	चलयो, उवो
नपुंसक.–	–––	–––	घर, बकें	घरां, बकीं
,,	–––	–––	मेरूं,मोतीं	मेरवां, मोतयां

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी संज्ञाओं के मूल रूप के एकवचन और बहुवचन में प्राप्त होने वाले रूप हिंदी तथा कोंकणी में कर्ता कारक में प्रयुक्त होते हैं, जिनमें कोई प्रत्यय नहीं लगता है । अतः इन्हें ' अप्रत्यय कर्ता कारक ' कहा जाता है । निम्नलिखित उदाहरणों से यह विधान स्पष्ट होगा :–

लिंग	वचन	**हिंदी**	**कोंकणी**
पु.	एक.	लडका आम खाता है ।	भुरगो आंबो खाता.
,,	बहु.	लडके आम खाते हैं ।	भुरगे आंबो खातात.
स्त्री.	एक.	औरत काम करती है ।	बायल काम करता.
,,	बहु.	औरतें काम करती हैं ।	बायलो काम करतात.

यहाँ हिंदी ' लडका, लडके, औरत, औरतें ' तथा कोंकणी ' भुरगो, भुरगे, बायल, बायलो ' कर्ता कारक के एकवचन तथा बहुवचन में प्रयुक्त हैं । परंतु इन्हें कोई प्रत्यय नहीं लगा है । ये शब्द वाक्य में कर्ता कारक में हैं, फिर भी अप्रत्यय हैं ।

(आ) सप्रत्यय कर्ता कारक (हिंदी ' ने ' तथा कोंकणी ' न ' और ' नी/नीं ')

कर्ता कारक-चिह्न हिंदी ' ने ' तथा कोंकणी ' न ' और ' नी (कहीं-कहीं नुस्वार युक्त ' नीं ' भी) ' वाक्य में कर्तृवाचक संज्ञाओं में जुड जाते हैं । इन ारक-चिह्नों का प्रयोग हिंदी तथा कोंकणी में विकृत रूप (=तिर्यक् संज्ञा) के पश्चात् होता । वाक्य में जब सकर्मक भूतकालिक कृदन्त क्रियाओं का व्यवहार होता है तो सामान्यतः ज्ञा-पदों के पश्चात् इन प्रत्ययों का व्यवहार होता है, यथा :–

वचन	हिंदी	कोंकणी
एक.	लडके ने आम खाया ।	भुरग्यान आंबो खालो.
बहु.	लडकों ने आम खाया ।	भुरग्यांनी(नीं) आंबो खालो.
एक.	औरत ने काम किया ।	बायलेन काम केलें.
बहु.	औरतों ने काम किया ।	बायलांनी(नीं) काम केलें.

हिंदी में ' ने ' प्रत्यय अपने पूर्ववर्ती संज्ञा का क्रिया से कर्तृपरक संबंध स्थापित करता है । उसी प्रकार कोंकणी ' न ' और ' नी(नीं) ' प्रत्यय भी अपने पूर्ववर्ती संज्ञा का क्रिया से कर्तृपरक संबंध स्थापित करते हैं । हिंदी में ' ने ' प्रत्यय कर्तृवाचक पद से अलग लिखा जाता है तो कोंकणी में ' न ' और ' नी(नीं) ' प्रत्यय कर्तृवाचक पद में जोडकर लिखे जाते हैं । दोनों की अपनी-अपनी अलग व्यवस्था है ।

हिंदी में ' ने ' एक. और बहु. में प्रयुक्त है तो कोंकणी में ' न ' एक. में और ' नी(नीं) ' बहु. में प्रयुक्त हैं ।

हिंदी में प्राप्त ' ने ' तथा कोंकणी में प्राप्त ' न ' और ' नी ' के प्रयोग में अपवाद भी प्राप्त हैं, यथा :–

(i) हिंदी में ' बोल, भूल, समझ, मिल ' आदि सकर्मक धातुओं के भूतकालिक कृदन्त क्रियाओं के साथ कर्ता कारक ' ने ' प्रत्यय नहीं आता । इसी प्रकार कोंकणी में भी इसी अर्थ में प्राप्त ' उलै, विसर, समज, मेळ ' आदि सकर्मक धातुओं के भूतकालिक कृदन्त क्रियाओं के साथ कर्ता कारक ' न ' या ' नी ' प्रत्यय नहीं आता, यथा :–

हिंदी	कोंकणी
लडका मुझे से बोला ।	भुरगो म्हजेकडेन उलैलो.
सीता पुस्तक/पाठ भूली ।	सीता पुस्तक / धडो विसरली.
लोग इस बात से क्या समझे ?	लोक ह्या गोष्टीं(त)सून कितें समजले ?
राम हमसे मिला ।	राम आमकां मेळ्ळो.
वह बका ।	तो बडबडलो.

(ii) हिंदी में सकर्मक ' ला ' धातु के भूतकालिक कृदन्त रूप के कर्ता के साथ ' ने ' का प्रयोग नहीं होता, परंतु कोंकणी में हिंदी ' ला ' के समानार्थक ' हाड ' धातु के भूतकालिक कृदन्त रूप के साथ कर्ता में ' न ' या ' नी ' का प्रयोग होता है, यथा :–

हिंदी	कोंकणी
(१) राम सब्जी लाया।	रामान भाजी हाडली.
(२) सीता आम लायी।	सीतेन आंबो हाडलो.
(३) बच्चे एक आम लाये।	भुरग्यांनी एक आंबो हाडलो.

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी वाक्यों में अन्तर है। हिंदी में कर्ता के साथ 'ने' प्रत्य का अभाव होने के कारण क्रिया कर्ता के अनुरूप हुई है, तो कोंकणी में 'न' या 'नी' का प्रयोग कर्ता के साथ होने के कारण क्रिया कर्ता के अनुरूप न होकर कर्म के अनुरूप है। अतः हिंदी में कर्ता 'राम, सीता, बच्चे' के लिंग और वचन के अनुसार क्रि 'लाया, लायी, लाये' का प्रयोग हुआ है तो कोंकणी में क्रमांक (१) में कर्म वाच 'भाजी' शब्द स्त्रीलिंग होने के कारण क्रिया स्त्रीलिंग में है; तथा वाक्य क्रमांक (२) उ (३) में कर्म वाचक 'आंबो' पुल्लिंग एकवचन होने के कारण क्रिया पुल्लिंग एकवचन प्राप्त है।

(iii) हिंदी में अकर्मक धातु 'छींक, खाँस, नहा' आदि के भूतकालिक क्रियाओं साथ 'ने' प्रत्यय आता है, परंतु कोंकणी में एतदर्थक अकर्मक 'शींक, खांक, न्हा' आ के भूतकालिक क्रियाओं के साथ 'न' या 'नी' प्रत्यय नहीं आता है, यथा :–

हिंदी	कोंकणी
बालक ने छींका।	भुरगो शिंकलो.
लडकों ने क्यों छींका ?	भुरगे कित्याक शिंकले ?
लडके ने खाँसा।	भुरगो खांकलो.
लडकी ने खाँसा।	चली खांकली.
लडके ने नहाया।	भुरगो न्हालो.
लडकियों ने नहाया।	चलयो न्हाल्यो.

उपर्युक्त हिंदी वाक्यों में 'छींका, खाँसा, नहाया' में कर्ता के लिंग तथा वचन के कारण कोई परिवर्तन नहीं हैं; क्योंकि यहाँ 'ने' प्रत्यय के कारण क्रिया कर्ता के अनुरूप नहीं होती है। और एक बात यहाँ द्रष्टव्य है। उपर्युक्त हिंदी वाक्यों में क्रियाएँ अकर्मक होने के कारण इनमें कर्म नहीं है जिससे क्रिया में बदल नहीं होता है। परंतु कोंकणी के उपर्युक्त वाक्यों में कर्ता के साथ 'न' या 'नी' प्रत्यय न जुडने के कारण क्रिया कर्ता के अनुरूप बदलती है।

(iv) उपर्युक्त हिंदी 'बोल, भूल, समझ, मिल, ला, छींक, खाँस, नहा' आदि धातुओं के परोक्षविधि क्रियाओं तथा कोंकणी 'उलै, बिसर, समज, मेळ, हाड, शींक, खांक, न्हा' आदि धातुओं के विध्यर्थक क्रियाओं के प्रयोग में एक और दृष्टि से अन्तर है।

कोंकणी में उपर्युक्त धातुओं के विध्यर्थक 'चो' या 'प' प्रत्ययान्त विध्यर्थ क्रियाओं के प्रयोग में कर्ता के साथ 'ने' या 'नी' प्रत्यय जुडता है, परंतु हिंदी में उपर्युक्त धातुओं के परोक्षविधि (इसकी तुलना कोंकणी 'विध्यर्थ' के साथ की है,देखिए, पृ. ३५३) में कर्ता के साथ ने प्रत्यय नहीं जुडता, यथा :–

हिंदी : परोक्षविधि	**कोंकणी : विध्यर्थ**
तू/तुम मुझ से बोलना।	तुंवें / तुमी म्हज्येकडेन उलौचें/उलौप.
(हिंदी में परोक्षविधि प्राय: मध्यम पुरुष में होती है। कोंकणी के शेष वाक्य हिंदी के परोक्षविधि में करना असंभव है।)	भुरग्यान पाठ विसरचो/विसरप?
	भुरग्यांनी आंबो हाडचो/हाडप.
	भुरग्यान शिंकचें/शिंकप.
	चलयेन खांकचें/खांकप.
	हांवें न्हावचें /न्हावप.

कोंकणी के उपर्युक्त वाक्यों का अर्थ हिंदी के 'संभाव्य भविष्य(वर्तमान संभावनार्थ)' स्पष्ट किया जा सकता है, फिर भी हिंदी के इस काल में भी कर्ता के साथ 'ने' प्रत्यय हीं आता है, यथा :–

हिंदी : संभाव्य भविष्य	**कोंकणी : विध्यर्थ**
राम मुझसे बोले।	रामान म्हजेकडेन उलौचें/उलौप.
बालक पाठ भूले ?	भुरग्यान पाठ विसरचो ?
लडके आम लाएँ।	भुरग्यांनी आंबो हाडचो.
बालक छींके।	भुरग्यान शिंकचें.
लडकी खाँसे।	चलयेन खांकचें.
मैं नहाऊँ।	हांवें न्हावचें.

(v) बहुत से विद्वान हिंदी 'ने' कारक-चिह्न को संस्कृत करण कारक (तृतीया विभक्ति) के 'एन' प्रत्यय का रूपान्तर मानते हैं। कुछ विद्वान संस्कृत 'इन' का रूपान्तर 'ने' मानते हैं। अन्य कुछ विद्वान 'ने' को 'लग्य, कर्ण' से संबंधित मानते हैं। परंतु एक बात स्पष्ट है कि हिंदी में 'ने' का प्रयोग संस्कृत 'एन(=इन)' के समान करण कारक के अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता है। संस्कृत में 'एन' करण तथा कर्ता कारक अर्थ में प्रयुक्त है, परंतु हिंदी में 'ने' केवल कर्ता कारक अर्थ में ही प्रयुक्त है। इसलिए हिंदी 'ने' का विकास संस्कृत 'एन' आदि प्रत्ययों के सिवा प्रत्यय-भिन्न शब्दों से भी दिखाने की चढाचढी हिंदी में चल रही है। (देखिए, पृ. १५९)। कुछ भी हो, हिंदी में कर्ता कारक अर्थ में 'ने' तो करण कारक अर्थ में 'से' कारक-चिह्न का प्रयोग होता है।

परंतु कोंकणी में प्राप्त 'न (एक.)' यथार्थ में संस्कृत करण कारक अर्थात् तृतीया विभक्ति के 'एन(=इन)' प्रत्यय का रूपान्तर है। इसलिए कोंकणी 'न' का प्रयोग संस्कृत की तरह कर्ता तथा करण कारक में प्रयुक्त है। यह हिंदी की तरह केवल कर्ता कारक में ही प्रयुक्त नहीं है, यथा :–

कारक	हिंदी	कोंकणी
(१) कर्ता	आदमी ने काम किया।	मनशान काम केलें.
(२) ,,	लडकी ने आम खाया	चलयेन आंबो खालो.
(३) करण	लडका कलम से लिखता है।	भुरगो पेनान(लिखणेन) बरै
(४) ,,	औरत चाकू से आम काटती है।	बायल चाकवान आंबो काप

उपर्युक्त वाक्य क्रमांक (१) और (२) में, हिंदी में 'आदमी ने' और 'लडकी' तथा कोंकणी में 'मनशान' और 'चलयेन' कर्ता कारक हैं। इन्हें हिंदी में 'ने' त कोंकणी में 'न' जुडा है। वाक्य क्रमांक (३) और (४) में, हिंदी में 'कलम से' अ 'चाकू से' तथा कोंकणी में 'पेनान' और 'चाकवान' करण कारक हैं, और इन्हें हिं में 'से' तो कोंकणी में 'न' ही प्रत्यय लगा है।

इसी प्रकार कोंकणी में 'न' का 'नी' बहुवचनीय प्रत्यय भी कर्ता तथा कर अर्थ में प्रयुक्त होता है, यथा :– 'बायलांनी चाकवांनी आंबे कापले.'।

यहाँ कोंकणी में एक और विशेष बात दिखायी देती है। कोंकणी करण कारक ' , नी' प्रत्यय कभी-कभी अधिकरण कारक का अर्थ देते हैं, जैसे :–

	हिंदी	कोंकणी
५)	बच्चा दरवाजे में खडा है।	भुरगो दारान उबो आसा.
६)	वह गाँव–गाँव में भटकता है।	तो गांवा–गांवांनी भोंवता.

उपर्युक्त वाक्य क्रमांक (५) और (६) में कोंकणी के 'दारान (एक.)' तथा गांवांनी (बहु.)' शब्द में अधिकरण 'त' प्रत्यय विकल्प से जुटकर 'दारांत' तथा गांवांत' जैसे अधिकरण कारक के दूसरे रूप होते हैं। परंतु वाक्य क्रमांक (३) और (४) में कोंकणी में केवल 'न' ही प्रत्यय जुटता है। अर्थात् उपर्युक्त प्रकार से हिंदी तथा कोंकणी में अन्तर है।

हिंदी कर्ता और करण कारक प्रत्ययों में प्राप्त भेद तथा कोंकणी कर्ता और करण कारक प्रत्ययों में प्राप्त साम्य त्वरित प्रतीत होने के लिए निम्नलिखित वाक्य द्रष्टव्य हैं, यथा :–

हिंदी – राम ने बाण से बाली को मारा।
कोंकणी – रामान बाणान वालीक माल्लो.

इन दोनों उदाहरणों से हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त अन्तर स्पष्ट होता है।

संस्कृत में तृतीया (करण कारक) का प्रत्यय कर्ता, करण और अधिकरण अर्थ में प्रयुक्त है। यह परंपरा पालि-प्राकृत-अपभ्रंश के द्वारा कोंकणी में प्राप्त है, परंतु यह प्रवृत्ति हिंदी में स्वीकृत नहीं हुई। यह बात उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होती है।

(vi) हिंदी में 'ने' प्रत्यय में परिवर्तन नहीं होता है, परंतु कोंकणी में 'न' प्रत्यय में परिवर्तन होता है, यथा :– एक. में 'न' और बहु. में 'नी'। हिंदी संज्ञाओं में

[ब]हुवचन का ' ने ' तथा कोंकणी संज्ञाओं में बहुवचन का ' नी ' प्रत्यय जोडते समय [सं]ज्ञाओं का बहुवचनीय विकृत रूप लिया जाता है। इस दृष्टि से हिंदी तथा कोंकणी में [सा]म्य है, यथा :–

हिंदी	कोंकणी
लडकों ने पुस्तक पढी।	भुरग्यांनी पुस्तक वाचलें.

(vii) कर्ता कारक प्रत्यय जोडते समय सर्वनामों की दृष्टि से हिंदी तथा कोंकणी में कुछ अन्तर प्राप्त है। हिंदी में सभी सर्वनामों के कर्ता कारक के दोनों वचनों में ' ने ' प्रत्यय जुडता है। परंतु कोंकणी में ' हांव, तूं आपुण, कोण ' सर्वनामों के एकवचन में ' एं ' प्रत्यय जुडता है। ' हांव ' और ' तूं ' के बहुवचन में कोई प्रत्यय नहीं है। ' हांव ' और ' तूं ' के कर्ता कारक बहुवचन में प्रत्यय लगाये बिना जो रूप प्राप्त होता होता है वही रूप ' हांवें ' और ' तुंवें ' के बहुवचन में भी प्राप्त होता है , जैसे :– ' आमी ' और ' तुमी '। ' आपुण (निजवाचक) ' और ' कोण ' सर्वनामों का कर्ता कारक-चिह्न युक्त बहुवचनीय रूप उपलब्ध नहीं है (कोंकणी में उच्चरित रूप में ' कोणी ' रूप उपलब्ध है परंतु लिखित रूप में प्रायः उपलब्ध नहीं है)। ' तो , हो , जो ' सर्वनामों के एकवचन में ' णें ' तथा बहुवचन में ' णीं ' प्रत्यय जुडता है। ये सभी बातें निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट होती हैं, यथा :–

हिंदी				कोंकणी			
सर्वनाम	एक.	बहु.	शेष वाक्यांश	सर्वनाम	एक.	बहु.	शेष वाक्यांश
मैं	मैंने	हमने	आम खाया।	हांव	हांवें	आमी	आंबो खालो.
तू	तूने	तुमने	,, ,,	तूं	तुंवें	तुमी	,, ,,
आप	––	आपने	,, ,,	आपुण	आपणें	––	,, ,,
कौन	किसने	किन्होंने	,, ,,	कोण	कोणें	––	,, ,,
वह	उसने	उन्होंने	,, ,,	तो	ताणें	तांणीं	,, ,,
यह	इसने	इन्होंने	,, ,,	हो	हाणें	हांणीं	,, ,,
जो	जिसने	जिन्होंने	,, ,,	जो	जाणें	जांणीं	,, ,,

(हिंदी ' आप ' आदरवाचक है तो कोंकणी ' आपुण ' निजवाचक है।)

उपर्यक्त कोंकणी ' तो, हो, जो ' में लिंग का प्रभाव है। अतः स्त्रीलिंग एकवचन में ' तिणें, हिणें, जिणें ' का व्यवहार होता है और स्त्रीलिंग बहुवचन में ' तांणीं, हांणीं जांणीं ' का ही व्यवहार होता है। कोंकणी ' तो , हो, जो ' के नपुंसकलिंग में पुल्लिग एकवचन तथा बहुवचन के रूपों का प्रयोग होता है।

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी के सर्वनामिक रूपों में कारक-चिह्न लिखते समय थोडा-साम्य दीखता है। हिंदी में ' ने ' प्रत्यय सर्वनामों में जोडकर लिखा जाता है जिस तरह

कोंकणी में 'न 'जोडकर लिखा जाता है ।

एक और बात यहाँ उल्लेख्य है । कोंकणी सर्वनामवाची शब्द जब करण कारक में प्रयुक्त होते हैं तब उनके एकवचन में 'न' और बहुवचन में 'नी' जुडता है, यथा :– एकवचन : 'म्हज्यान, तुज्यान कोणाच्यान, ताज्यान/ताच्यान' आदि ; बहुवचन : 'आमच्यांनी तुमच्यांनी , ताच्यांनी' आदि ।

(viii) हिंदी 'ने' तथा कोंकणी 'न ', 'नी (और कोंकणी सर्वनामों में लगने वाले 'एं', 'णें', 'णीं' प्रत्यय)' के प्रयोग में क्रिया की स्थिति समान होती है, अर्थात् क्रिया कर्म के अनुसार प्रयुक्त होती है अथवा कर्ता और कर्म का बंधन छोडकर स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होती है । यह स्थिति हिंदी तथा कोंकणी दोनों में समान है, यथा :–

क्रिया की स्थिति –	हिंदी	कोंकणी
कर्म के अनुसार –	राम ने सीता देखी ।	रामान सीता पळेली.
,, ,,	राम ने घोडा देखा ।	रामान घोडो पळेलो.
स्वतंत्र रूप में –	राम ने सीता को देखा ।	रामान सीतेक पळेलें.
,, ,,	राम ने घोडे को देखा ।	रामान घोड्याक पळेलें.

उपर्युक्त पहले दो वाक्यों में क्रिया कर्म के अनुसार है । परंतु दूसरे दो वाक्यों में क्रिया न हि कर्ता के अनुसार है , न हि कर्म के अनुसार ; बल्कि हिंदी में क्रिया पुल्लिंग है , तो कोंकणी में नपुंसकलिंग । यहाँ कोंकणी की वाक्य-रचना के अनुसार 'सीतेक पळैली', 'घोड्याक पळैलो' भी होता है ।

(II) कर्म कारक

हिंदी तथा कोंकणी में कर्म कारक के दो प्रकार हैं :– (अ) अप्रत्यय और (आ) सप्रत्यय । इसके सिवा कोंकणी में एक और प्रकार का कर्म कारक प्राप्त है जो विकृत रूपों के आधार पर बनता है । यह (इ) विभाग में दिया है । ये सभी प्रकार उदाहरण सहित नीचे स्पष्ट किये हैं ।

(अ) अप्रत्यय कर्म कारक (हिंदी '०' तथा कोंकणी '०')

हिंदी तथा कोंकणी वाक्य-रचना में अप्रत्यय कर्म कारक में कोई कारक-चिह्न नहीं लगता । कर्म कारक में कारक-चिह्न का अभाव सूचित करने के लिए पृष्ठ क्रमांक १५८ पर दिये हुए कारक-चिह्नों की तालिका में '०' चिह्न दिया है । इस दृष्टि से हिंदी तथा कोंकणी वाक्य-रचना में कर्म कारक के एकवचन तथा बहुवचन में संज्ञाओं के मूल रूपों का प्रयोग होता है, यथा :–

लिंग	वचन	हिंदी	कोंकणी
पु.	एक.	लडके ने आम खाया ।	भुरग्यान आंबो खालो.
,,	बहु.	लडके ने आम खाये ।	भुरग्यान आंबे खाले.
स्त्री.	एक.	लडके ने रोटी खायी ।	भुरग्यान रोटी खाली.
,,	बहु.	लडके ने रोटियाँ खायी ।	भुरग्यान रोटयो खाल्यो.
नपुं.	एक.	------	भुरग्यान फळ खालें.
,,	बहु.	------	भुरग्यान फळां खालीं.

उपर्युक्त हिंदी की ' आम, आम, रोटी, रोटियाँ ' तथा कोंकणी की ' आंबो, आंबे , रोटी, रोटयो, फळ, फळां ' संज्ञाएँ कर्म कारक के एकवचन तथा बहुवचन में प्रयुक्त हैं । इन कर्म कारक संज्ञाओं में कोई कारक-चिह्न नहीं जुडा है । इसलिए इन संज्ञाओं को ' अप्रत्यय कर्म कारक ' कहा जाता है । हिंदी तथा कोंकणी में प्रायः अप्राणिवाचक कर्म कारक संज्ञा में प्रत्यय नहीं लगता । उपर्युक्त कर्म कारक संज्ञाएँ अप्राणिवाचक हैं ।

(आ) सप्रत्यय कर्म कारक (हिंदी ' को ' तथा कोंकणी ' क ')

इस प्रकार में कर्म कारक का चिह्न हिंदी ' को ' तथा कोंकणी ' क ' वाक्य में कर्म कारक संज्ञाओं में जुड जाते हैं । दोनों भाषाओं में इन कारक-चिह्नों का प्रयोग विकृत रूप(=तिर्यक् संज्ञा) के अनन्तर होता है । हिंदी ' को ' तथा कोंकणी ' क ' प्रायः चेतन या प्राणिवाचक संज्ञाओं के साथ प्रयुक्त होते हैं, यथा :–

हिंदी	कोंकणी
राम घोडे को देखता है ।	राम घोड्याक पळेता.
राम ने घोडे को देखा ।	रामान घोड्याक पळेलो.
शिक्षक शिष्यों को पढाता है ।	शिक्षक विद्यार्थ्यांक शिकैता.
माँ बालक को उठाती है ।	आवय भुरग्याक उठैता.

(इ) विकृत रूपों का कर्म कारकत्व

कोंकणी वाक्यों में एक और प्रकार से कर्म कारक का प्रयोग होता है, जो हिंदी में उपलब्ध नहीं है । कोंकणी में कारक-चिह्न जोडते समय संज्ञाओं के एकवचन तथा बहुवचन में जो विकृत रूप उपलब्ध होता है वही कभी-कभी कर्म कारक में प्रयुक्त होता है, यथा :–

लिंग	वचन	कोंकणी
पु.	एक.	तो मनशा पळेता(= वह आदमी को देखता है ।).
,,	बहु.	तो मनशां पळेता(= वह आदमियों को देखता है ।).
स्त्री.	एक.	तो बायले पळेता(= वह औरत को देखता है ।).
,,	बहु.	तो बायलां पळेता(= वह औरतों को देखता है ।).

इस प्रकार कोंकणी के कर्म कारक में दिखायी देने वाली विकृत रूपों की प्रवृत्ति हिंदी में प्राप्त नहीं है।

सर्वनामों में कर्म कारक का विशेष

सर्वनामों में कर्म कारक प्रत्यय जोडते समय हिंदी तथा कोंकणी में कुछ अन्तर प्राप्त है।

हिंदी के सात सर्वनामों(' मैं, तू , वह, यह, जो, सो, कौन ') के कर्म कारक के दोनों वचनों में सामान्य ' को ' प्रत्यय जुडता है फिर भी इन सर्वनामों के कर्म कारक एकवचन में ' ए ' तथा बहुवचन में ' एं ' प्रत्यय विकल्प से जुडते हैं।

कोंकणी में ' आपुण, कोण , कितें , कांय ' सर्वनामों के कर्म कारक के एकवचन (इनका प्रायः बहुवचन नहीं होता है) में सामान्य ' क ' प्रत्यय जुडता है तो ' हांव, तूं , तो, हो, जो ' के एकवचन में ' का ' तथा बहुवचन में ' कां ' प्रत्यय जुडते हैं। हिंदी के कुछ सर्वनामों के कर्म कारक में वैकल्पिक रूप हैं , वैसे वैकल्पिक रूप कोंकणी में नहीं हैं। यह बात निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट होती है –

हिंदी			**कोंकणी**		
	एक.	**बहु.**		**एक.**	**बहु.**
राम ने	मुझे, मुझको	हमें, हमको देखा।	रामान	म्हाका	आमकां पळेलें.
राम ने	तुझे, तुझको	तुम्हें, तुमको देखा।	रामान	तुका	तुमकां पळेलें.
राम ने	उसे, उसको	उन्हें, उनको देखा।	रामान	ताका	तांकां पळेलें.
राम ने	इसे, इसको	इन्हें, इनको देखा।	रामान	हाका	हांकां पळेलें.
राम ने	जिसे, जिसको	जिन्हें, जिनको देखा।	रामान	जाका	जांकां पळेलें.
राम ने	तिसे, तिसको	तिन्हें, तिनको देखा।	रामान	ताका	तांकां पळेलें.
राम ने	किसे, किसको	किन्हें, किनको देखा ?	रामान	कोणाक	पळेलें ?

(सूचना :– उपर्युक्त कोंकणी के ' पळेलें ' क्रिया के बदले एकवचन में ' पळेलो ' और बहुवचन में ' पळेले ' भी होता है, जैसे :– एक. में : ' रामान म्हाका पळेलो. '; बहु. में : ' रामान आमकां पळेले .'; आदि। कोंकणी के ' रामान कोणाक पळेलें. ' वाक्य में ' कोणाक ' रूप में ' क ' सामान्य प्रत्यय है। ' कोण ' में ' क ' सामान्य प्रत्यय जुडने की बात अभी ऊपर स्पष्ट की है।)

शेष सर्वनामों के दोनों वचनों में, हिंदी में ' को ' तथा कोंकणी में ' क ' प्रत्यय जुडते हैं। यही स्थिति संप्रदान कारक में भी प्राप्त होती है।

(III) करण कारक

हिंदी में करण कारक के एकवचन और बहुवचन में ' से ' कारक-चिह्न प्रयुक्त है; परंतु कोंकणी में करण कारक के एकवचन में ' न ' और बहुवचन में ' नी(नीं) ' प्रयुक्त हैं, यथा :–

वचन	हिंदी	कोंकणी
एक.	वह एक आँख से देखता है।	तो एका दोळ्यान पळेता.
,,	वह आदमी एक कान से सुनता है।	तो मनीस एका कानान आयकता.
,,	आदमी लकडी से घोडे को मारता है।	मनीस बडयेन घोड्याक मारता.
बहु.	आदमी आँखों से देखता है।	मनीस दोळ्यांनी पळेता.
,,	आदमी कानों से सुनता है।	मनीस कानांनी आयकता.
,,	आदमी लकडियों से घोडे को मारता है।	मनीस बडयांनी घोड्याक मारता.

उपर्युक्त हिंदी वाक्यों में एकवचनीय ' आँख, कान, लकडी ' और बहुवचनीय ' आँखों, कानों, लकडियों ' शब्दों में ' से ' कारक-चिह्न जुडा है, तो कोंकणी वाक्यों में एकवचनीय ' दोळ्या, काना, बडये ' शब्दों में ' न ' और बहुवचनीय ' दोळ्यां, कानां, बडयां ' शब्दों में ' नी ' कारक-चिह्न जुडे हैं।

कोंकणी में ' न ', ' नी ' प्रत्यय करण कारक के सिवा कर्ता कारक में भी प्रयुक्त हैं, परंतु हिंदी करण कारक ' से ' प्रत्यय कर्ता कारक में प्रयुक्त नहीं होता है। अर्थात् हिंदी में कर्ता कारक में ' ने ' और करण कारक में ' से ' तो कोंकणी में कर्ता और करण कारक में ' न ', ' नी ' प्रत्यय प्रयुक्त हैं। यह अन्तर निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट होता है –

हिंदी : राम ने बाण से बाली को मारा।
कोंकणी : रामान बाणान (' बाणांनी ' भी) वालीक मारलो.

विकृत रूपों का करण कारकत्व

हिंदी वाक्यों में एक और प्रकार से करण कारक का प्रयोग होता है जो कोंकणी वाक्यों में उपलब्ध नहीं है। हिंदी में कारक-चिह्न जोडते समय जो विकृत रूप उपलब्ध होता है वही रूप कभी-कभी करण कारक में प्रयुक्त होता है, परंतु यह प्रवृत्ति प्रायः बहुवचन में दीखती है, यथा :–

(१) न आँखों देखा न कानों सुना (कों. ' दोळ्यांनी पळेलेंना कानांनी आयकलेंना '.)।
(२) वह भूखों मरता है (कों. ' तो भुखेन मरता '.)।
(३) मैं जाडों सिकुड गया (कों. ' हांव थंडेन कुडकुडलों '.)।

इस प्रकार की प्रवृत्ति कोंकणी करण कारक में प्राप्त नहीं है।

हिंदी तथा कोंकणी में एक और अन्तर दीखता है । इसलिए निम्नलिखित हिंदी तथा कोंकणी के वाक्य द्रष्टव्य हैं –

हिंदी --

(१) आदमी ने चाकू से आम काटा ।
(२) आदमी ने राम के द्वारा चाकू से आम कटवाया (प्रेरणार्थक वाक्य) ।

इनका रूपान्तर कोंकणी में निम्नलिखित प्रकार से होगा –

कोंकणी –

(१) मनशान चाकवान आंबो कापलो.
(२) मनशान रामाकडच्यान चाकवान आंबो कापैलो (प्रेरणार्थक वाक्य).

कोंकणी वाक्य क्रमांक (२) में ' रामाकडच्यान ' शब्द में ' न ' के पूर्व ' कडचो ' शब्द जुडा है । परंतु हिंदी वाक्य क्रमांक (२) में ' राम ' शब्द में ' से ' या ' ने ' नहीं जुडा है । बल्कि इस वाक्य में ' के द्वारा ' शब्द का प्रयोग है । अर्थ की दृष्टि से हिंदी ' के द्वारा ' तथा कोंकणी ' कडच्यान ' में साम्य है, परंतु शब्द और प्रत्यय की दृष्टि से भिन्नता है ।

(IV) संप्रदान कारक

संप्रदान कारक के दोनों वचनों में हिंदी में ' को ' तथा कोंकणी में ' क ' कारक-चिह्न जुडता है, यथा :–

हिंदी	कोंकणी
माँ बच्चे को लड्डू देती है ।	आवय पुताक लाडू दिता.
राजा ने ब्राम्हण को दान दिया ।	राजान ब्राम्हणाक दान दिलें.
वह पढने को गया ।	तो शिकपाक गेलो .

उपर्युक्त हिंदी वाक्यों में ' बच्चे को, ब्राम्हण को, पढने को ' तथा कोंकणी वाक्यों में ' पुताक , ब्राम्हणाक, शिकपाक ' शब्द संप्रदान कारक के हैं ।

विकृत रूपों का संप्रदान कारकत्व

कोंकणी वाक्यों में एक और प्रकार से संप्रदान कारक का प्रयोग होता है । कोंकणी में कारक-चिह्न जोडते समय संज्ञाओं का जो विकृत रूप उपलब्ध होता है वही रूप कभी-कभी संप्रदान कारक के रूप में प्रयुक्त होता है, जैसे :–

(१) आवय पुता लाडू दिता(= माँ बच्चे को लड्डू देती है ।).
(२) तो झाडां उदक घालता(= वह पेडों को पानी डालता(देता)है ।).

यहाँ ' पुता, झाडां ' शब्द संप्रदान कारक में है । इन शब्दों में कारक-चिह्न नहीं है । परंतु ' पुता, झाडां ' शब्द विकृत रूप हैं । यह पद्धति एकवचन तथा बहुवचन में प्रयुक्त है ।

हिंदी में भी यह प्रवृत्ति क्वचित् दिखाई देती है । हिंदी में क्रियार्थक संज्ञा के ' ना ' प्रत्ययान्त के साथ संप्रदान कारक- प्रायः नहीं जुडता है । ऐसे समय ' ना ' प्रत्ययान्त शब्द के विकृत रूप का प्रयोग होता है, यथा :–

हिंदी	**कोंकणी**
वह नदी में तैरने गया ।	तो न्हंयत(=न्हंयचेर)पों(पें)वपा गेलो.
मैं खाने बैठा हूँ ।	हांव खावपा बसलां.

परंतु कोंकणी में ऐसे उदाहरण में भी विकृत रूप का प्रयोग होता है, जैसे :– ' पोंवपा(' पोंवपा ' रूप ' पोंवप ' क्रियार्थक संज्ञा का विकृत रूप है) '।

इस दृष्टि से हिंदी तथा कोंकणी में साम्य है । परंतु उपर्युक्त ' पुता, झाडां (= पूत, पेडों) ' जैसे संज्ञा शब्दों को नजर में रखते हुए देखा जाए तो कोंकणी की यह प्रवृत्ति हिंदी में प्रायः नहीं है ।

सर्वनामों की दृष्टि से हिंदी ' को ' तथा कोंकणी ' क ' जुडते समय हिंदी तथा कोंकणी कर्म कारक में विशेषता दिखायी देती है (देखिए, पृ. ४७२) । यही विशेषता हिंदी तथा कोंकणी संप्रदान में प्राप्त होती है ।

(V) अपादान कारक

हिंदी तथा कोंकणी में अपादान कारक में क्रमशः ' से ' तथा ' सून ' कारक-चिह्न लगता है, यथा :–

हिंदी	**कोंकणी**
वह पणजी से आया ।	तो पणजेसून आयलो.

हिंदी अपादान कारक ' से ' और करण कारक ' से ' में रूप की दृष्टि से साम्य है, परंतु अर्थ की दृष्टि से भेद है । करण कारक ' से ' प्रत्यय के कारण क्रिया जिस पर घटित होती है उस वस्तु और करण याने साधन भूत वस्तु का संयोग प्राप्त होता है, यथा :– ' राम ने बाण से रावण को मारा । ' वाक्य में रावण को मारने की क्रिया ' बाण ' रूप साधन से होती है तभी रावण और बाण का संयोग होता है । यही ' बाण ' में जुडे ' से ' प्रत्यय का अर्थ है । परंतु अपादान कारक ' से ' प्रत्यय में सर्वथा इसके विरुद्ध अर्थ द्योतित होता है । दो संयुक्त वस्तुओं का वियोग अपादान के ' से ' प्रत्यय से विवक्षित है । इस ' से ' कारक-चिह्न से पास की दो वस्तुएँ अलग हो जाती है, यथा :– ' पेड से पत्ता गिरता है । '। इस वाक्य में ' से ' प्रत्यय से यह बात ध्यान में आती है कि दो संयुक्त वस्तुओं का वियोग हो रहा है । इस प्रकार करण और अपादान कारक-चिह्न ' से ' में रूप-साम्य होते हुए भी अर्थ-भेद स्पष्ट है । अत एव अपादान कारक ' से ' की व्युत्पत्ति अलग शब्द रूप से माननी चाहिए (देखिए, पृ ३८२) ।

कोंकणी में करण कारक में ' न (एक.) ' और ' नीं (बहु.) ' प्रयुक्त हैं, तथा अपादान कारक में ' सून ' प्रयुक्त है । हिंदी की तरह करण तथा अपादान में एक ही प्रत्यय

प्रयुक्त नहीं है। इस दृष्टि से हिंदी तथा कोंकणी में अन्तर है।

कोंकणी में ' सून ' कारक-चिह्न के अर्थ में ' च्यान ' का भी प्रयोग दिखायी देता है, जैसे :– ' तो पणजेच्यान आयलो. ' (' च्यान ' के लिए देखिए, पृ. १७१)। इस अर्थ में ' साकून ' आदि भी मिलता है, जैसे :– ' तो पणजेसाकून आयलो. '; आदि।

(VI) संबंध कारक

हिंदी तथा कोंकणी संबंध कारक-चिह्नों का व्यवहार देखने से पता चलता है कि इनमें बहुत कुछ भिन्नता है। संज्ञाओं और कुछ सर्वनामों में प्राप्त होने वाले संबंध कारक-चिह्न, केवल कुछ ही सर्वनामों में प्राप्त होने वाले संबंध कारक-चिह्न, केवल विकृत रूपों में प्राप्त होने वाला संबंध कारकत्व और भिन्न-भिन्न संबंधबोधक अव्ययों के कारण प्राप्त होने वाला संबंध कारक–चिह्न। इस दृष्टि से इनके चार विभाग होते हैं , जैसे :– १) सामान्य संबंध कारक-चिह्न, २) विशिष्ट सर्वनामों का संबंध कारक-चिह्न ३) विकृत रूपों का संबंध कारकत्व और ४) संबंधबोधक अव्ययों से संबंधित कारक-चिन्ह। इनमें तीसरा प्रकार कोंकणी में प्राप्त होता है। शेष तीनों प्रकार हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त हैं। नीचे इनका क्रमशः स्पष्टीकरण दिया है।

(i) सामन्य संबंध कारक-चिह्न

हिंदी तथा कोंकणी संबंध कारक-चिह्नों में बहुत अन्तर है, उसी प्रकार उनके प्रयोग में भी अन्तर है।

हिंदी के संबंध कारक में प्रमुख ' का ' है तो कोंकणी के संबंधकारक में प्रमुख ' चो ', ' लो ' और ' गेलो ' हैं। हिंदी तथा कोंकणी के ये प्रत्यय परवर्ती संबद्ध (= प्रधान) संज्ञा के लिंग, वचन तथा कारक-चिह्न युक्त परवर्ती संबद्ध संज्ञा से प्रभावित होते हैं। अत एव हिंदी ' का ' के दो और रूप होते हैं तो कोंकणी ' चो ', ' लो ', ' गेलो ' के छः-छः और रूप होते हैं, यथा :–

हिंदी ' का '	कोंकणी ' चो ', ' लो ', ' गेलो '
का : के, की	चो : चे, ची, च्यो, चें, चीं, च्या
	लो : ले, ली, ल्यो, लें, लीं, ल्या
	गेलो : गेले, गेली, गेल्यो, गेलें, गेलीं, गेल्या

हिंदी -

' का ' का प्रयोग परवर्ती पुल्लिग संबद्ध संज्ञा के एकवचन में होता है।

' के ' का प्रयोग परवर्ती पुल्लिग संबद्ध संज्ञा के बहुवचन तथा परवर्ती कारक-चिह्न युक्त पुल्लिग संबद्ध संज्ञा के एकवचन तथा बहुवचन में होता है।

' की ' का प्रयोग परवर्ती स्त्रीलिंग संबद्ध संज्ञा और परवर्ती कारक-चिह्न युक्त स्त्रीलिंग संबद्ध संज्ञा के एकवचन तथा बहुवचन में होता है।

कोंकणी –

परवर्ती पुल्लिंग संबद्ध संज्ञा के एकवचन में ' चो ' तथा बहुवचन में ' चे ' का प्रयोग होता है।

परवर्ती स्त्रीलिंग संबद्ध संज्ञा के एकवचन में ' ची ' तथा बहुवचन में ' च्यो ' का प्रयोग होता है।

परवर्ती नपुंसकलिंग संबद्ध संज्ञा के एकवचन में ' चें ' तथा बहुवचन में ' चीं ' का प्रयोग होता है।

परवर्ती कारक-चिह्न युक्त पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग संज्ञा के एकवचन तथा बहुवचन में ' च्या(/चे) ' का प्रयोग होता है। निम्नलिखित उदाहरणों से ये बातें स्पष्ट होती हैं -

क्रमांक	हिंदी	कोंकणी
(१)	राम का घोडा (परवर्ती संज्ञा पुल्लिंग एकवचन में)	रामाचो घोडो
(२)	राम के घोडे (परवर्ती संज्ञा पुल्लिंग बहुवचन में)	रामाचे घोडे
(३)	राम की कहानी (परवर्ती संज्ञा स्त्रीलिंग एकवचन में)	रामाची गोष्ट
(४)	राम की कहानियाँ (परवर्ती संज्ञा स्त्रीलिंग बहुवचन में)	रामाच्यो काणयो
(५)	----- (परवर्ती संज्ञा नपुंसकलिंग एकवचन में)	रामाचें पुस्तक
(६)	----- (परवर्ती संज्ञा नपुंसकलिंग बहुवचन में)	रामाचीं पुस्तकां
(७)	राम के घोडे को/घोडों को (कारक-चिह्न युक्त परवर्ती पुल्लिंग संज्ञा के एक. तथा बहु. में)	रामाच्या घोड्याक/घोड्यांक
(८)	राम की कहानी में / कहानियों में (कारक-चिह्न युक्त परवर्ती स्त्रीलिंग संज्ञा के एक. तथा बहु. में)	रामाच्या काणयेंत/काणयांत
(९)	------ (कारक-चिह्न युक्त परवर्ती नपुंसकलिंग संज्ञा के एक. तथा बहु. में)	रामाच्या पुस्तकांत / पुस्तकांत

उपर्युक्त क्रमांक (८) के कोंकणी विभाग में दिये हुए एकवचनीय ' रामाच्या काणयेंत ' में कभी-कभी ' चे ' प्रत्यय का भी प्रयोग होता है, जैसे :- ' रामचे काणयेंत '।

इस प्रकार कोंकणी ' लो ', ' गेलो ' कारक-चिह्नों के भी भिन्न-भिन्न रूप प्राप्त हैं, जो ' चो ' के रूपों के समान रूपांतरित होते हैं।

(ii) विशिष्ट सर्वनामों का संबंध कारक-चिह्न

हिंदी तथा कोंकणी के सर्वनामों में प्रयुक्त होने वाले संबंध कारक-चिह्न निम्नलिखित प्रकार से हैं।

हिंदी –

हिंदी में ' मैं ', ' तू ' सर्वनामों के संबंध कारक में ' रा, री, रे ' और निजवाचक ' आप ' सर्वनाम के संबंध कारक में ' ना, नी, ने '(तथा शेष सर्वनामों के संबंध कारक में ' का, की, के ')जुडते हैं, जैसे :- ' मैं : मेरा; हम : हमारा; तू : तेरा; तुम : तुम्हारा; आप : अपना; (वह : उसका ; वे : उनका)'; आदि।

कोंकणी -

कोंकणी में ' हांव ', ' तूं ', ' तो ', ' हो ' सर्वनामों के संबंध कारक एकवचन में विशेष रूप से ' जो, जी, जें, जे, ज्यो, जीं, ज्या ' जुडते हैं और ' कोण ', ' आपुण ' सर्वनामों के संबंध कारक में विशेष रूप से ' लो, ली, लें, ले, ल्यो, लीं, ल्या ' जुडते हैं। (शेष सर्वनामों के संबंध कारक में ' चो, ची, चें, चे, च्यो, चीं, च्या ' और ' गेले, गेली, गेलें, गेले, गेल्यो, गेलीं, गेल्या ' जुडते हैं।)

इतना कहने पर भी कोंकणी सर्वनामों के संबंध कारक की रचना स्पष्ट नहीं हो पाती। कोंकणी में, सर्वनामों को नजर में रखते हुए संबंध कारक-चिह्न लगाने पडते हैं। इसके सिवा इन प्रत्ययों के पूर्व स्थित प्रकृति में एकवचनत्व और बहुवचनत्व भी देखना पडता है। इनमें उनकी अपनी-अपनी विशेषता है, जैसे :-

एकवचन में :

(i) ' हांव ', ' तूं ' सर्वनामों के एकवचन में ' जो ' और ' गेलो ' प्रत्यय जुडते हैं, जैसे :-

(१) हो म्हजो / म्हगेलो गांव आसा (= यह मेरा गाँव है।).
(२) तो तुजो / तुगेलो गांव आसा (= यह तेरा गाँव है।).

(ii) ' तो ', ' हो ' सर्वनामों के एकवचन में ' जो, चो ' और ' गेलो ' प्रत्यय जुडते हैं, जैसे :-

(१) ताजो/ताचो/तागेलो बैल (= उसका बैल।).
(२) हाजो / हाचो / हागेलो भुरगो (= इसका बेटा।).

(iii) ' जो ' सर्वनाम के एकवचन में ' चो ' और ' गेलो ' प्रत्यय जुडते हैं, जैसे :-

(१) जाचो/जागेलो घोडो ताका येऊं दी (= जिसका घोडा उसे आने दे।) .

(iv) ' कोण ', ' आपुण ' में ' चो, लो ' और ' गेलो ' प्रत्यय जुडते हैं, जैसे :-

(१) कोणाचो / कोणालो / कोणागेलो भुरगो पडलो (= किसका लडका गिरा) ?
(२) तो आपणाचो / आपणालो / आपणागेलो घोडो घेवंन गेलो (= वह अपना घोडा ले गया ।).

(उपर्युक्त दोनों वाक्यों दिये शब्दों में से ' कोणागेलो ' और ' आपणागेलो ' शब्दों में थोडा अर्थान्तर दीखता है, जैसे :- ' कोणागेलो ' का मतलब है ' किसके घर का ' और ' आपणागेलो ' का मतलब है ' अपने घर का ' । ये अर्थ ' कोणाचो, कोणालो ' और ' आपणाचो, आपणालो ' में प्राप्त नहीं हैं । फिर भी इसकी ओर क्वचित् दुर्लक्ष होता है ।)

(v) ' कितें ' में केवल ' चो ' प्रत्यय जुडता है, जैसे :-
(१) कित्याचो दोष (= काहे का दोष) ?

बहुवचन में :
(i) ' हांव, तूं , तो, हो, जो, कांय ' सर्वनामों के बहुवचन में ' चो ' और ' गेलो ' प्रत्यय जुडते हैं, जैसे :-
(१) हो आमचो / आमगेलो गांव आसा (= यह हमारा गाँव है ।).
(२) तो तुमचो / तुमगेलो गांव आसा (= वह तुम्हारा गाँव है ।).
(३) कांयचो आग्रो आसा (= कुछ का आग्रह है ।).

(ii) ' कोण, कितें, आपुण ' सर्वनामों का प्रयोग बहुवचन में प्रायः प्राप्त नहीं है । अतः यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया हैं ।

इन ' जो, चो, लो, गेलो ' के अन्य छः रूप भी होते हैं जो परवर्ती संबद्ध संज्ञा के अनुसार परिवर्तित होते हैं ।

उपर्युक्त कोंकणी कारक-चिह्नों के व्यवहार में सूक्ष्मता

हिंदी ' का ' तथा उसके अन्य रूपों का प्रयोग करते समय संज्ञाओं के चेतन-अचेतन के संबंध में ध्यान देने की आवश्यकता नहीं रहती । अर्थात् पूर्ववर्ती तथा परवर्ती संज्ञा चेतन या अचेतन हो,हिंदी में ' का , की , के ' आदि प्रत्ययों का व्यवहार होता है, यथा :-

१) राम का बैल (पूर्ववर्ती तथा परवर्ती संज्ञा चेतन है) ।
२) राम की गाय (,, ,, ,, ,, ,, ,,) ।
३) राम का घर (पूर्ववर्ती संज्ञा चेतन तो परवर्ती संज्ञा अचेतन है)।
४) राम के कपडे (,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,)
५) घर का रक्षक (पूर्ववर्ती संज्ञा अचेतन तो परवर्ती संज्ञा चेतन है) ।
६) कागज का टुकडा (पूर्ववर्ती तथा परवर्ती दोनों संज्ञाएँ अचेतन हैं) ।

कोंकणी के उपर्युक्त ' चो ', ' लो ', ' गेलो ' के प्रयोग में भिन्नता है । कोंकणी ' चो ' का प्रयोग प्रायः हिंदी के ' का ' के समान होता है । कोंकणी में ' चो ' तथा उसके अन्य रूपों का प्रयोग करते समय हिंदी की तरह पूर्ववर्ती और परवर्ती संज्ञाओं में

चेतन-अचेतन का संबंध देखने की आवश्यकता नहीं है, यथा :-

१) रामाचो बैल (= राम का बैल; पूर्ववर्ती तथा परवर्ती संज्ञाएँ चेतन हैं)।
२) रामाची गाय (= राम की गाय ,, ,, ,, ,, ,, ,,).
३) रामाचें घर (= राम का घर; पूर्ववर्ती संज्ञा चेतन तो परवर्ती संज्ञा अचेतन है)।
४) रामाचे कपडे (= राम के कपडे; ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,)।
५) घराची मालकीण (= घर की मालकिन; पूर्ववर्ती संज्ञा अचेतन तो परवर्ती संज्ञा चेतन है)।
६) घराच्यो वणटी (= घर की भित्तियाँ; पूर्ववर्ती तथा परवर्ती संज्ञाएँ अचेतन हैं)।

इस प्रकार हिंदी 'का' और उसके अन्य रूपों तथा कोंकणी 'चो' और उसके अन्य रूपों के प्रयोग में साम्य है। परंतु कोंकणी 'लो' तथा 'गेलो' और उसके अन्य रूपों के व्यवहार में सूक्ष्मता बरतनी पडती है।

कोंकणी में चेतन संज्ञाओं में 'लो' और उसके अन्य रूप जुडते हैं। इन प्रत्ययों की परवर्ती संज्ञा चेतन या अचेतन कोई भी सकती है, परंतु पूर्ववर्ती संज्ञा चेतन ही हो, यथा :–

१) रामालो बैल (= राम का बैल; प्रत्यय के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती संज्ञा चेतन है)।
२) रामाली गाय (= राम की गाय; ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,)।
३) रामालें झाड (= राम का पेड; प्रत्यय के परवर्ती संज्ञा अचेतन है)।
४ रामालो बांक (= राम का बैंच; ,, ,, ,, ,, ,, ,,)।
५) बैलालें दावें (= बैल की दाँवरी; ,, ,, ,, ,, ,, ,,)।

उपर्युक्त वाक्य क्रमांक (१) से (५) तक 'लो' और उसके अन्य रूपों की पूर्ववर्ती संज्ञाएँ चेतन हैं। वाक्य क्रमांक (१) और (२) में 'लो' से परवर्ती संज्ञाएँ चेतन हैं तथा वाक्य क्रमांक (३) से (५) तक में 'लें', 'लो' और 'लें' से परवर्ती संज्ञाएँ अचेतन हैं।

अत एव कोंकणी में निम्नलिखित वाक्यों का प्रयोग नहीं पाया जाता, यथा :-

६) रुखालो खांदो (= पेड की शाखा)।
७) रुखालें पान (=पेड का पत्ता)।
८) मातेल्यो वणटी (= मिट्टी कीं दीवारें)।

वाक्य क्रमांक (६) से (८) तक 'लो' और उसके अन्य रूपों की पूर्ववर्ती संज्ञाएँ अचेतन हैं। अतः इन उदाहरणों में 'चो' और उसके रूपों का प्रयोग करना चाहिए, जैसे :– 'रुखाचो खांदो', 'रुखाचें पान', 'मातेच्यो वणटी (वण्टी)' (देखिए, डा. चव्हाण लिखित 'द कोंकण ऐण्ड द कोंकणी लैंग्वेंज, पृ. ३८, परिच्छेद क्रमांक २०)।

कोंकणी में केवल मनुष्य प्राणिवाचक संज्ञाओं तथा तत्संबंध में आने वाले सर्वनामों में गेलो ' तथा उसके रूपों का प्रयोग होता है, यथा :-

१) रामागेलो बैल् आनी तागेली गाय (=राम का बैल और उसकी गाय) ।
२) मामागेली दोळी आयली (= मामा के घर की डोली आयी) ।
३) म्हगेल्या घरदाराचो बरो दिवो तो (=मेरे घरबार का अच्छा दीपक वह) !

उपर्युक्त वाक्य क्रमांक (१) में ' रामा ' मनुष्य प्राणिवाचक संज्ञा है, इसलिए उसे ' गेलो ' जुडा है । उसी वाक्य में ' तागेली ' शब्द ' रामागेली ' शब्द के लिए आया है । ' तागेली ' शब्द में ' ता ' रूप ' तो ' सर्वनाम का विकृत रूप है और ' गेली ' प्रत्यय है । वाक्य क्रमांक (२) में ' मामा ' मनुष्य प्राणिवाचक संज्ञा है इसलिए ' गेली ' जुडा है । वाक्य क्रमांक (३) में बोलने वाली की संज्ञा पूर्व वाक्य में आयी है (देखिए, ' गोमन्तोपनिषत् ', पृ. ३, पंक्ति २) ; और इस वाक्य में उत्तम पुरुषवाचक सर्वनाम के विकृत रूप ' म्ह ' में ' गेली ' जुडा है ।

(iii) विकृत रूपों का संबंध कारकत्व

कोंकणी में संबंध कारक का अर्थ एक और प्रकार से स्पष्ट होता है । इसमें केवल संज्ञाओं के विकृत रूप ही प्रयुक्त हैं, यथा :–

१) तो रुखा खांदी तोट्टा. (= वह पेड की शाखा तोडता है ।)
२) तो धुवे घरा वता. (= वह बेटी के घर जाता है ।)
३) तो केळी पानां काट्टा (काडता). (= वह कदली के पत्ते निकालता है ।)

इन वाक्यों में ' रुखा, धुवे, केळी ' संबंध कारक के रूप हैं जो ' रूख, धूव, केळ ' संज्ञाओं के विकृत रूप हैं । फिर भी ' रुखा, धुवे, केळी ' शब्दों में संबंध कारक-चिह्न नहीं जुडे हैं ।

उपर्युक्त कोंकणी के वाक्य संबंध कारक-चिह्न जोडकर भी प्रयुक्त होते हैं, तब ये वाक्य निम्नलिखित प्रकार से होंगे -

१) तो रुखाची खांदी तोट्टा(तोडता). (= वह पेड की शाखा तोडता है ।)
२) तो धुवेल्या घरा वता. (=वह बेटी के घर जाता है ।)
३) तो केळीचीं पानां काट्टा. (= वह कदली के पत्ते निकालता है ।)

उपर्युक्त कोंकणी ' रुखा, धुवे, केळी ' संबंध कारक के विकृत रूप हैं, और वे कर्म तथा संप्रदान में प्रयुक्त होने वाले विकृत रूप के समान हैं ।

अर्थात् कोंकणी में दो प्रकार से संबंध कारक का अर्थ स्पष्ट होता है - ' संबंध कारक चिह्नों ' तथा ' केवल विकृत ' रूपों से । हिंदी में केवल एक ही प्रकार – अर्थात् संबंध कारक-चिह्नों – से संबंध कारक का अर्थ स्पष्ट किया जाता है ।

इस प्रकार कोंकणी की तरह विकृत रूपों से बनने वाला संबंध कारक हिंदी में नहीं है।

(iv) संबंध बोधक अव्ययों से संबंधित कारक-चिह्न

हिंदी तथा कोंकणी में संबंध बोधक अव्यय हैं -

हिंदी	कोंकणी
'अपेक्षा, सामने, आगे, मध्ये, भीतर, ऊपर, साथ ' आदि ।	' परस, सामकार (समोर), फुडें, मदीं, भितर, वैर, बराबर ' आदि ।

हिंदी तथा कोंकणी संबंध बोधक अव्ययों के प्रयोग में कुछ अन्तर है । हिंदी में संबंध बोधक अव्ययों के पूर्व संबंध कारक-चिह्नों का प्रयोग होता है तो कोंकणी में संबंध बोधक अव्ययों के पूर्व प्रायः संबंध कारक-चिह्नों का प्रयोग नहीं होता, बल्कि संज्ञा का विकृत रूप प्रयुक्त होता है, यथा :–

हिंदी	कोंकणी
राम की अपेक्षा	रामापरस
मकान के सामने	घरासमोर (सामकार)
घर के आगे	घराफुडें

उपर्युक्त कोंकणी उदाहरणों में ' रामच्या परस , घराच्या समोर, घराच्या फुडें ' भी होता है; अर्थात् कारक-चिह्न लगाकर संबंध बोधक अव्ययों का प्रयोग किया जाता है फिर भी यह प्रवृत्ति कोंकणी में कम ही है ।

परंतु कोंकणी में, संबंध बोधक अव्ययों के पूर्व स्थित सर्वनामों में संबंध कारक-चिह्न प्रायः दिखायी देता है, जैसे :- ' म्हजेखातीर (= मेरे खातिर) ', ' ताजेमुखार (= उसके आगे) ', ' तुमचेमदीं (= तुम्हारे बीच) ', ' ताज्याबराबर (= उसके बराबर) '; आदि ।

यहाँ हिंदी में जो सूक्ष्मता है वह ध्यान में रखना आवश्यक है, जैसे :-

(i) हिंदी में ' पास , समीप, नजदीक, नीचे, पहले , ऊपर, पीछे, लिए, साथ, वास्ते, भीतर, आदि संबंध बोधक अव्ययों के पूर्व ' के ' कारक-चिह्न आता है, परंतु कोंकणी में इन अर्थों में प्राप्त होने वाले अव्ययों के साथ प्रायः संज्ञा का विकृत रूप प्राप्त है, जैसे :-

हिंदी	कोंकणी
घर के पास	घरालागीं
घर के भीतर	घराभितर

(ii) हिंदी के ' ओर, खातिर, मारफत, बदौलत, तरह, जगह, अपेक्षा, बनिस्बत ' आदि संबंध बोधक अव्ययों के पूर्व संज्ञा में ' की ' कारक-चिह्न लगता है तो कोंकणी में इन अर्थों के अव्ययों के साथ प्रायः संज्ञा का विकृत रूप प्राप्त होता है, जैसे :-

हिंदी	कोंकणी
वह घर की ओर चला ।	तो घरावटेन चललो (गेलो).
धर्म की खातिर प्रभु अवतार लेता है ।	धर्माखातीर देव अवतार घेता.

परंतु हिंदी में ' ओर, तरफ ' आदि कुछ संबंध बोधक अव्ययों के पूर्व संख्यावाचक विशेषण आ जाए तो संज्ञा में ' की ' के बदले ' के ' कारक-चिह्न लगता है, जैसे :–

हिंदी	कोंकणी
लोक दीवार के दोनों तरफ खडे थे ।	लोक वण्टीच्या दोनीवटेन उभे आसले.
लोग मंदिर के चारों ओर थे ।	लोक देवळाच्या चारी वाटेन आसले.

ऐसी स्थिति में कोंकणी में प्रायः ' च्या ' कारक-चिह्न प्रयुक्त होता है । अर्थात् कभी-कभी कारक-चिह्न नहीं लगता, जैसे :- ' वण्टी दोनीवटेन ', ' देवळा चारी बाजूक ' आदि ।

(iii) हिंदी में ' पहले, पीछे, बाहर ' आदि कुछ संबंध बोधक अव्ययों के साथ विकल्प से ' से ' का प्रयोग होता है अर्थात् कभी-कभी ' के ' का भी प्रयोग होता है । इस स्थिति में कोंकणी में कारक-चिह्न के बिना संज्ञा के विकृत रूप का प्रयोग होता है, जैसे :-

हिंदी	कोंकणी
समय से / के पहले	वेळापयलीं
घर से / के पीछे	धराफाटल्यान
मंदिर से / के बाहर	देवळाभायर

(iv) हिंदी में ' परे, रहित ' जैसे संबंध बोधक अव्ययों के पूर्व ' से ' कारक-चिह्न आता है तो कोंकणी में प्रायः संज्ञा का विकृत रूप प्रयुक्त है, जैसे :-

हिंदी	कोंकणी
घर से परे	घरापेल्यान (पयसुल्यान)
दोष से रहित	दोशाविरयत

(v) हिंदी में ' सहित, तक, पर्यंत, समेत 'आदि अव्ययों का एक ऐसा प्रकार मिलता है जो कोंकणी में प्राप्त होनेवाले प्रकार के समान है । इन अव्ययों के पूर्व हिंदी में संबंध कारक-चिह्न नहीं आता बल्कि संज्ञा का विकृत रूप प्राप्त होता है, जैसे :-

हिंदी	कोंकणी
वह अपने माँ-बाप सहित चली गयी ।	ती आपल्या आवय-बापायबराबर गेली.
राम किनारे तक गया ।	राम किनाऱ्यामेरेन गेलो.
दिया तले अंधेर ।	दिव्यासकयल काळोख.

(vi) इस संबंध में हिंदी की अपनी एक और विशेषता है, जो कोंकणी में उपलब्ध नहीं है । इस प्रकार में ' सिवा, मारे, बिना ' आदि संबंध बोधक अव्यय संज्ञा के पूर्व और

कारक-चिह्न संज्ञा के बाद आते हैं, जैसे -

हिंदी	कोंकणी
सिवा पानी के जीना मुष्किल है।	उदकाशिवाय जगप कठिण आसा.
मारे भूख के	भुकेलागून
बिना रुपयों के	रुपयांशिवाय

कोंकणी के उपर्युक्त ' शिवाय, लागून ' अव्ययों के पूर्व कोई कारक-चिह्न नहीं है। यदि यहाँ कारक-चिह्न लगाना चाहें तो ' च्या (उदकाच्या खेरीज) ', ' क (भुकेक लागून) ' हो सकता है। फिर भी ' सिवा पानी के ' आदि में संज्ञा के पूर्व होने वाला अव्ययों का प्रयोग कोंकणी में दिखायी नहीं देता।

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी में संबंध बोधक अव्ययों के प्रयोग में अन्तर है।

(vii) अधिकरण कारक

अधिकरण कारक में, हिंदी में ' में ', ' पर ' तथा कोंकणी में 'ंत ', ' र ', ' चेर ', ' गेर ' कारक-चिह्न जुडते हैं, यथा :-

क्रमांक	हिंदी	कोंकणी
१)	मछली पानी में रहती है।	मासळी उदकांत रावता.
२)	अंधों में काना राजा।	कुड्यांत काणेर.
३)	चिडिया पेड पर बैठी है।	सवणें झाडार बसलां.
४)	मेज पर किताब है।	मेजार पुस्तक आसा.
५)	वह रास्ते में खडा है।	तो रस्त्याचेर उबो आसा.
६)	यहाँ से दो मील पर तालाब है।	हांगासून दोन मैलांचेर तळें आसा.
७)	हम उसके घर जाएँ।	आमी तागेर वचुंया.
८)	मोहन के घर शादी है।	मोहनागेर लग्न आसा.

उपर्युक्त वाक्य क्रमांक (५) में कोंकणी ' चेर ' का अर्थ हिंदी ' में ' से स्पष्ट किया है तथा वाक्य क्रमांक (६) में कोंकणी ' चेर ' का अर्थ हिंदी में ' पर ' से स्पष्ट किया है। वाक्य क्रमांक (७) और (८) में कोंकणी ' गेर ' का अर्थ हिंदी में ' के घर ' शब्द से स्पष्ट होता है।

यहाँ क्रमांक (५) के हिंदी वाक्य में प्राप्त ' रास्ते में ' शब्दों का अर्थ कोंकणी में ' रस्त्याचेर ' किया है। इस कोंकणी वाक्य में ' रस्त्यांत ' अर्थ भी किया जा सकता है। अतः यहाँ एक अन्य उदाहरण देकर ' रस्त्याचेर ' और ' रस्त्यांत ' शब्दों में प्राप्त ' चेर ' और 'ंत ' का अर्थ स्पष्ट करना आवश्यक है। ' वसुदेव ने बच्ची को देवकी के गोद में

खा । ' । इस वाक्य के अधिकरण ' गोद में ' शब्दों का अर्थ कोंकणी में मांडयेचेर (/मांडयेर)' ही किया जायेगा । यहाँ किसी भी प्रकार ' मांडयेंत ' नहीं हो सकता । इसी प्रकार कोंकणी वाक्य में प्राप्त ' मांडयेचेर (/मांडयेर) ' शब्द के आधार पर हिंदी में 'गोद पर' कहना या लिखना भी गलत है । भाषा की अपनी प्रकृति होती है और उसी के आधार पर कारक-चिह्नों का प्रयोग करना उचित है । कोंकणी में ' रस्त्यार ' भी होता है ।

इसके सिवा कोंकणो में कर्ता तथा करण कारक ' न ' का प्रयोग अधिकरण कारक में भी प्राप्त होता है, यथा :-

हिंदी	**कोंकणी**
वह गाँव में भटकता है ।	तो गांवान फिरता (भटकता).
आदमी दरवाजे में खडा है ।	मनीस दारान उबो आसा.
चोर को संदेह में पकडा ।	चोराक संशयान पकडलो.

(विस्तार के लिए देखिए, पृ. ४६७ ; क्रमांक v)।

विकृत रूपों का अधिकरण कारकत्व

हिंदी तथा कोंकणी अधिकरण कारक में एक और प्रकार उपलब्ध है । इसमें संज्ञाओं का विकृत रूप ही प्रयुक्त है, यथा :-

हिंदी	**कोंकणी**
इस साल बहुत वर्षा हुई ।	ह्या वर्सा खूप पावस पडलो.
शाम तक मैं घर रहूँगा ।	सांजेपर्यंत हांव घरा आसतलो.

उपर्युक्त हिंदी वाक्यों में ' साल ' शब्द में ' में ' और ' घर ' शब्द में ' पर ' नहीं जुडे हैं तथा कोंकणी वाक्यों में ' वर्सा 'शब्द में ' क ' और ' घर ' शब्द में 'ंत ' नहीं जुडे हैं । इस प्रकार हिंदी ' साल ' और ' घर ' तथा कोंकणी ' वर्सा ' और ' घर ' विकृत रूप हैं ।

(VIII) कारक-चिह्नों के प्रयोग में अन्तर

हिंदी तथा कोंकणी में कुछ विशिष्ट क्रियापदों के साथ कारक-चिह्नों के प्रयोग में अन्तर प्राप्त होता है, यथा :–

(i) हिंदी में ' कहना, पूछना, मिलना ' आदि क्रियाओं का प्रयोग करते समय कर्म कारक में स्थित संज्ञा के आगे करण कारक-चिह्न ' से ' प्रयुक्त होता है, जब कि कोंकणी में एतदर्थक ' सांगप, विचारप, मेळप ' आदि क्रियाओं का प्रयोग करते समय कर्म कारक-चिह्न ' क (तथा सर्वनामों में ' का, कां ') ' का प्रयोग होता है, यथा :–

	हिंदी	कोंकणी
(१)	मैं राम **से** कहता हूँ।	हांव राम**ाक** सांगतां.
(२)	शिक्षक ने विद्यार्थियों **से** प्रश्न पूछे।	शिक्षकान विद्यार्थ्यां**क** प्रश्न विचाल्ले.
(३)	मैं तुम**से** कल मिलूँगा।	हांव तुम**कां** फाल्यां मेळटलों.

उपर्युक्त हिंदी वाक्यों में ' से ' के बदले कर्मकारक ' को ' चिह्न का प्रयोग करन अनुचित है, जैसे :– ' मैं राम **को** कहता हूँ। ' आदि। इस प्रकार के वाक्य हिंदी में नह होते।

(कोंकणी के वाक्य क्रमांक (३) में ' तुमकां ' शब्द में ' कां ' चिह्न ' क ' के बदले प्राप्त है क्यों कि ' कां ' कुछ सर्वनामों में प्रयुक्त होने वाला विशिष्ट कारक-चिह्न है।)

फिर भी यहाँ ' कहना ' और ' मिलना ' के बारे में सूक्ष्मता बरतनी आवश्यक है। ' मैं राम से कहता हूँ। ' और ' इस पंछी को तोता कहते हैं। ' वाक्यों से यह सूक्ष्मता स्पष्ट होती है। पहले वाक्य में निवेदन है तो दूसरे वाक्य में विधेयार्थ कथन है। कोंकणी में इनके लिए क्रमशः ' सांगप(=बताना) ' और ' म्हणप(=कहना) ' क्रियाओं का प्रयोग होगा। अर्थात् हिंदी में कोंकणी के ' सांगप ' अर्थ में ' से ' और ' म्हणप ' अर्थ में ' को ' कारक-चिह्न लगते हैं। अत एव उपर्युक्त हिंदी के वाक्यों का कोंकणी में इस प्रकार रूपान्तर होगा :– ' हांव रामाक सांगता. ' और ' ह्या पक्ष्याक पोपट म्हणटात. '। इन कोंकणी वाक्यों में कदाचित् ' हांव रामाक म्हणटां. ' के प्रकार का प्रयोग होता है फिर भी ' ह्या पक्ष्याक पोपट सांगतात. ' की तरह का प्रयोग नहीं होता है। यही कोंकणी ' सांगप ' और ' म्हणप ' में अन्तर है। इस अन्तर को ध्यान में लेकर हिंदी में ' से ' और ' को ' कारक-चिह्नों का प्रयोग ठीक तरह से किया जा सकता है। अत एव हिंदी के ' इस जानवर को गाय कहते हैं। ' वाक्य ठीक लगता है ; क्यों कि यहाँ ' कहते हैं ' का कोंकणी में ' म्हणटात ' अर्थ है।

हिंदी में ' मिलना ' क्रिया के प्रयोग में भी दो कारक-चिह्न प्रयुक्त होते हैं। परंतु इसमें उपर्युक्त ' कहना ' क्रिया के जैसी स्थिति नहीं है। हिंदी ' कहना ' क्रिया के कोंकणी में दो अर्थ (सांगप और म्हणप) देकर ' से ' और ' को ' कारक-चिह्नों की उपपत्ति लगायी गयी है। परंतु हिंदी में ' मिलना ' क्रिया के साथ जो दो कारक-चिह्न प्रयुक्त होते हैं, उनका संबंध कोंकणी की ' मेळप(=मिलना) ' क्रिया के दो अर्थों के आधार पर नहीं बताया जा सकता। यहाँ मिलने के कारण में जो अन्तर है वही हिंदी में कारक-चिह्नों को बदल देता है। मिलने की दो स्थितियाँ हैं। पहली स्थिति है – निमित्त, सबब या हेतु ; और दूसरी स्थिति है – दैवयोग, अचानक या अकस्मात्। इनमें पहली स्थिति में ' से ' तो दूसरी स्थिति में ' को ' कारक-चिह्न आता है, जैसे :–

(१) राम सरपंच से मिला।	(निमित्त आदि)
(२) देवदत्त यज्ञदत्त से मिला	(,, ,,)

(३) किसान को खेत में हीरा मिला। (दैवयोग)
(४) रास्ते में राम को दो रुपये का नोट मिला। (अचानक)

उपर्युक्त वाक्य क्रमांक (१) और (२) में ' सरपंच को ' और ' यज्ञदत्त को ' प्रयोग नहीं होता, परंतु वाक्य क्रमांक (३) और (४) में ' को ' प्रत्यय लगता है। तभी इनमें ' अचानक ' का भाव प्राप्त होता है और साथ-साथ अर्थान्तर भी। जैसे , वाक्य क्रमांक (२) के ' देवदत्त यज्ञदत्त से मिला। ' वाक्य के बदले ' को ' युक्त 'देवदत्त यज्ञदत्त को मिला।' वाक्य का प्रयोग किया जाए तो उसका अर्थ होगा– ' यज्ञदत्त देवदत्त को ढूँढ रहा था तभी यज्ञदत्त को देवदत्त अचानक मिला '। एक और उदाहरण द्रष्टव्य है :–

स्टेशन पर राम को एक बूढा आदमी मिला (अचानक)।
स्टेशन पर राम से एक बूढा आदमी मिला (हेतुपूर्वक)।

इनमें पहले वाक्य में ' अचानक ' भाव है, तो दूसरे में ' हेतु ' है; और दोनों वाक्यों में अर्थान्तर भी है।

इन सभी वाक्यों का कोंकणी में अनुवाद किया जाए तो कोंकणी में ' मेळप ' क्रिया के साथ ' क ' कारक-चिह्न ही प्रयुक्त होगा, जैसे :– ' राम सरपंचाक मेळ्ळो. '; ' देवदत्त यज्ञदत्ताक मेळ्ळो. '; ' शेतकाऱ्याक शेतांत हिरो मेळ्ळो. '; ' रस्त्यांत रामाक दोन रुपयांची नोट मेळ्ळी. '; आदि।

(ii) ' प्रार्थना करना ' शब्द के साथ हिंदी में ' से ' प्रत्यय आता है, यथा :– मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ। कोंकणी में इस वाक्य का अनुवाद होगा :– हांव देवाची प्रार्थना करतां.। अर्थात् कोंकणी में ' प्रार्थना करप ' शब्द के साथ ' ची ' संबंध कारक-चिह्न आता है। यहाँ कोंकणी में ' ली ' का भी प्रयोग होता है।

(iii) ' प्रेम करना ' शब्द के साथ हिंदी में ' से ' प्रत्यय आता है जब कि कोंकणी में ' प्रेम करप ' के साथ ' चेर ' प्रत्यय प्राप्त होता है, यथा :–

	हिंदी	**कोंकणी**
(१)	राम सीता से प्रेम करता है।	राम सीतेचेर प्रेम करता.
(२)	मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।	हांव तुजेर(/तुमचेर) प्रेम करतां.

(कोंकणी ' चेर ' और ' जेर ' में संज्ञा और सर्वनाम तथा वचन के कारण अंतर है।)

(iv) हिंदी में ' डरना ' क्रिया के साथ कर्म कारक में अपादान कारक ' से ' प्रत्यय का प्रयोग होता है, जब कि कोंकणी में ' भिवप ' क्रिया के साथ ' क ' (तथा सर्वनामों में ' का ' या ' कां ') प्रत्यय जुडता है, यथा:–

	हिंदी	**कोंकणी**
(१)	वह कुत्ते से डरता है।	तो कुत्र्याक भिता.
(२)	साँप नेवले से डरता है।	सोरोप मुंगसाक भिता.

(३) बच्चा साँप से डरा।	भुरगो सापाक भिलो (भियेलो).
(४) बच्चा तुझसे डरेगा।	भुरगो तुका भितलो.

(v) हिंदी में कुछ संबंधवाची तथा अवयववाची शब्दों के पूर्व 'को' के बदले 'के' का प्रयोग होता है, परंतु कोंकणी में 'क (तथा सर्वनामों में 'का' या 'कां') ' का प्रयोग होता है, जैसे :-

हिंदी	कोंकणी
(१) दशरथ के तीन रानियाँ थीं।	दशरथाक तीन राणयो आशिल्यो.
(२) पक्षी के दो पंख होते हैं।	पक्ष्याक दोन पंख आसात.
(३) गाय के पूँछ होती है।	गायेक शेंपटी आसा.
(४) उनके एक लडका है।	तांकां एक चलो आसा.
(५) उस भिखारी के एक ही आँख है।	त्या भिकाऱ्याक एकूच दोळो आसा.

यहाँ हिंदी तथा कोंकणी में सूक्ष्म भेद है। साधारण 'हो' धातु और उसके रूपों के साथ 'के' प्रत्यय आता है। तब इसमें अगली संज्ञा के लिंग आदि के कारण परिवर्तन नहीं होता है, जैसे :– 'अनिल के एक बँगला है।'; आदि। कोंकणी में इसका रूपान्तरण दो प्रकार का होगा, जैसे :– 'अनिलाक एक बंगलो आसा.' और 'अनिलालो(चो) एक बंगलो आसा.'; आदि। (यहाँ हिंदी में 'अनिल का एक बँगला है।' नहीं होता है।) परंतु कोंकणी के इन दोनों वाक्यों में सूक्ष्म अर्थ-भेद है जो हिंदी के वाक्य में प्राप्त नहीं है। 'अनिलाक एक बंगलो आसा .' इस कोंकणी के पहले वाक्य का अर्थ होता है, 'अनिल जहाँ नौकरी करता है उस संस्था या मालिक ने उसके रहने की व्यवस्था की है और इसके लिए एक बँगला उसके स्वाधीन किया है जहाँ अनिल रहता है'। इस बँगले पर उसका स्वामित्व नहीं है। कोंकणी के दूसरे वाक्य 'अनिलालो(चो) एक बंगलो आसा.' का अर्थ स्पष्ट है कि एक बंगला है जिसपर अनिल का स्वामित्व है। यहाँ कर्म कारक 'क' और संबंध कारक 'लो(चो)' प्रत्यय लगाने से कोंकणी के उपर्युक्त दोनों वाक्यों के अर्थ में अन्तर प्राप्त है।

स्पष्टता के लिए एक और वाक्य लीजिए। कोंकणी में 'म्हशीक चाय पाय आसात.' और 'म्हशीले(चे) चार पाय आसात.' वाक्य हैं। इनमें पहले वाक्य में 'म्हस(=भैंस)' और 'पायांचो (=पैरों का)' अवयव-अवयवी संबंध है और भैंस के पूरे शरीर के अस्तित्व की कल्पना होती है। परंतु दूसरे वाक्य में 'म्हस (=भैंस)' और 'पायांचो (=पैरों का)' अवयव-अवयवी संबंध है फिर भी भैंस के पूरे शरीर के अस्तित्व की वहाँ कल्पना नहीं होती है। इस वाक्य का अर्थ यह होता है कि भैंस के चार पैर तो वहाँ है परंतु शेष शरीर का वहाँ पता नहीं है। अर्थात् पैर इधर और शेष शरीर गायब। उपर्युक्त कोंकणी के दोनों वाक्यों के लिए हिंदी में 'भैंस के चार पैर हैं।' वाक्य प्रयुक्त होता है। स्पष्टता के लिए हिंदी में 'होते' क्रिया का अधिक प्रयोग कर कोंकणी के पहले वाक्य के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है। इससे हिंदी के वाक्यों में थोडा अर्थान्तर प्राप्त होगा, जैसे : –

हिंदी	**कोंकणी**
भैंस के चार पैर होते हैं।	म्हशीक चार पाय आसात.
भैंस के चार पैर हैं।	म्हशीले(चे) चार पाय आसात

उपर्युक्त प्रकार से कोंकणी के निम्नलिखित वाक्य-युग्मों में अर्थ-भेद दिखायी देता है, जैसे :–

१) शैलाक पांच भाव आसात.　　शैलाले(चे) पांच भाव आसात.
२) ताका एक चलो आसा.　　ताजो(चो) एक चलो आसा.

वाक्य क्रमांक (१) के पहले वाक्य में भाइयों का केवल अस्तित्व दिखाता है तो उसी क्रमांक के दूसरे वाक्य में भाइयों के अस्तित्व के साथ किसी और काम के लिए उनकी आवश्यकता भी दिखायी देती है। वाक्य क्रमांक (२) में भी यही अर्थ निकलता है।

परंतु हिंदी में वाक्य क्रमांक (१) और (२) के वाक्य-युग्मों के लिए ' के ' कारक-चिह्न युक्त केवल एक–एक वाक्य ही होगा, जैसे :– (१) ' शैला के पाँच भाई हैं।' और (२) ' उसके एक बेटा है।' ; आदि।

अर्थात् यहाँ हिंदी तथा कोंकणी में काफी अन्तर है।

(vi) हिंदी में ' बोलना, माँगना ' क्रिया के साथ कर्म कारक में करण कारक ' से ' प्रत्यय जुड जाता है तो कोंकणी में ' कडेन ' या ' लागी ' जैसा संबंध बोधक अव्यय जुड जाता है, जैसे :–

	हिंदी	**कोंकणी**
(१)	राम माता से बोलता है।	राम आवयकडेन(लागीं) उलैता.
(२)	सीता राम से माँगती है।	सीता रामाकडेन (लागीं) मागता.

यहाँ कोंकणी का एक और भेद ध्यान में रखना आवश्यक है। कोंकणी के उपर्युक्त वाक्य में ' आवय ' और ' राम ' में ' क ' प्रत्यय भी जोडा जाता है तब कोंकणी वाक्यों में अर्थ-भेद दिखायी देता है, जैसे :– (१) ' राम आवयक उलैता. ' और (२) ' सीता रामाक मागता. '। इनमें क्रमांक (१) के वाक्य का अर्थ होता है, ' राम शायद क्रुद्ध होकर अपनी माँ से (को) बोलता है।' तो क्रमांक (२) के वाक्य का अर्थ होता है, ' सीता अपने लिए राम की याचना करती है (अर्थात् ' सीता को राम चाहिए ') '। एक तीसरे उदाहरण में ' ग्राहक ने दूकानदार से कलम माँगी(=गिरायकान दुकानदारा कडेन / लागीं पेन मागलें) ।' वाक्य में, कोंकणी में किसी प्रकार ' क ' युक्त ' दुकानदार (=दुकानदाराक) ' शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता, जैसे :– ' गिरायकान दुकानदाराक पेन मागलें. '। इसी प्रकार हिंदी के ' मैं उससे नहीं बोलूँगा।' वाक्य का रूपान्तरण कोंकणी में ' हांव ताजेकडेन उलौवचो ना. ' होगा।

(vii) हिंदी में ' जा ' धातु के साथ ' को, में ' कारक-चिह्न नहीं लगते जब कि ' जा ' के अर्थ में प्रयुक्त कोंकणी के ' वच ' धातु के साथ ' क, ंत ' कारक चिह्न लगते हैं, जैसे :–

	हिंदी	कोंकणी
(१)	मैं स्कूल जाता हूँ।	हांव शाळेक वतां.
(२)	विनायक पणजी गया।	विनायक पणजेक गेलो.

परंतु कोंकणी में, क्रमांक (१) का वाक्य ' हांव शाळे वतां. ' और क्रमांक (२) का वाक्य ' विनायक पणजे गेलो.' रूप में भी प्रयुक्त होता है। इन दोनों वाक्यों में ' शाळे ' और ' पणजे ' विकृत रूप हैं, जो कर्म कारक का तीसरा प्रकार है (देखिए, पृ. ४७१) इसी आधार पर हिंदी में भी ' स्कूल ' और ' पणजी ' शायद विकृत रूप भी माने जा सकते हैं।

और यह मानना ठीक भी है। क्यों कि कारकीय प्रत्यय लगाने के पूर्व संज्ञा का जो रूप होता है वह विकृत रूप ही होता है (देखिए, पृ. १४८)। इसीलिए क्रियार्थक ' खेलना, करना ' आदि (आकारान्त पुं.) संज्ञाओं से बने ' खेलने, करने ' आदि विकृत रूपों का ' जा ' क्रिया के साथ ' को ' कारक-चिह्न विरहित प्रयोग होता है, जैसे :– ' राम खेलने जाता है।', ' कृष्ण काम करने जाता है।'; आदि। यहाँ ' खेलने को ', ' करने को ' नहीं होता है। ' खेलने, करने ' में ' खेलना, करना ' का विकृत रूप स्पष्ट ही दिखायी देता है। इस प्रकार की स्पष्टता उपर्युक्त हिंदी वाक्यों में स्थित ' स्कूल, पणजी ' शब्दों में नहीं दिखायी देती। फिर भी वे रूप मूल शब्द ' स्कूल, पणजी ' के विकृत रूप ही हैं।

यहाँ एक और बात ध्यातव्य है। कोंकणी में ' हांव शाळेक / शाळेंत वता. ' वाक्य में ' क /ंत ' प्रत्यय लगाये हैं। यद्यपि यहाँ ऊपरी तौर पर फर्क नहीं दीखता फिर भी ' हांव गांवाक वता. [= मैं गाँव (की ओर) जाता हूँ।] ' और ' हांव गांवांत वतां. [=मैं गाँव(में) जाता हूँ।] ' में काफी अंतर है। बम्बई में रहने वाला आदमी जब अपने गाँव जाने निकलता है तब वह कहता है,'हांव गांवाक वतां. [=मैं गांव(की ओर) जाता हूँ।]' और गाँव की सीमा पर पहुँचते ही गाँव में अंदर जाने की इच्छा करने वाला आदमी ' हांव गांवांत वतां . [=मैं गाँव(में) जाता हूँ।]' वाक्य का प्रयोग करेगा। परंतु उपर्युक्त-दोनों स्थितियों में, हिंदी में प्रायः ' मैं गाँव जाता हूँ। ' का प्रयोग चलता है।

(viii) हिंदी में ' मदद करना ' शब्दों के साथ ' की ' कारक-चिह्न लगता है तो कोंकणी में ' क ' आता है, जैसे :–

	हिंदी	कोंकणी
(१)	राम ने गरीबों की मदद की।	रामान गरीबांक मदत केली.
(२)	मैं वसंत की मदद करता हूँ।	हांव वसंताक मदत करतां.

इन वाक्यों में 'गरीबों' और 'वसंत' के आगे हिंदी में 'की' है तो कोंकणी में 'क' है। अतः कारक प्रत्यय की दृष्टि से दोनों में फर्क है।

(ix) हिंदी में 'चाहिए' क्रिया के साथ 'को' कारक-चिह्न लगता है तो कोंकणी में 'जाय(=चाहिए)' क्रिया के साथ 'क' कारक-चिह्न लगता है, जैसे :–

	हिंदी	कोंकणी
(१)	राम को दही चाहिए।	रामाक धंय जाय.
(२)	मुझे चाय चाहिए।	म्हाका च्या जाय.

इस संबंध में अधिक जानकारी आगे हिंदी 'चाहिए' तथा कोंकणी 'जाय' क्रिया के विवरण में दी है (देखिए, पृ. ५०१)।

(x) भूतकालिक कृदन्त विशेषण के साथ हिंदी में संबंध कारक 'का-की-के' चिह्न आता है तो कोंकणी में कर्ता कारक 'न, नी' चिह्न आता है, यथा :–

	हिंदी	कोंकणी
(१)	विधि का लिखा हुआ नहीं मिट जाता।	ब्रम्हदेवान बरैल्ले ना जायना (पुसून वचना).
(२)	प्रेमचंद की लिखी कहानी सुंदर है।	प्रेमचंदान बरैयली काणी सुंदर आसा.
(३)	गांधीजी के कहे विचारों का पालन करो।	गांधीन सांगिल्ल्या विचारांचे पालन करात.
(४)	वीणा का किया हुआ काम पूरा हो गया।	वीणाम केलिल्लें काम पुराय जाले.

(xi) कभी-कभी हिंदी संबंध कारक 'का-की-के' चिह्न का अर्थ कोंकणी में 'आंतलो-ली-लें' आदि से स्पष्ट किया जाता है, जैसे :–

	हिंदी	कोंकणी
(१)	घर का आदमी।	घरांतलो मनीस.
(२)	पुस्तक का पाठ पढो।	पुस्तकांतलो धडो वाच.
(३)	शहर के आदमी चुस्त होते हैं।	शारांतले मनीस चपळ आसतात.

(xii) कभी-कभी हिंदी में जहाँ अधिकरण कारक 'में' प्रत्यय लगता है वहाँ कोंकणी में कर्म कारक 'क' प्रत्यय लगता है, यथा :–

	हिंदी	कोंकणी
१)	सूरज पूरब में निकलता है।	सूर्य पूर्वेक उदेता .
२)	घडी में चाबी दो।	घड्याळाक चावी दी.

३)	तुम परीक्षा में बैठो।	तूं परिक्षेक बस.
४)	नदी में बाढ आयी है।	न्हंय(ये)क पूर आयला.
५)	अन्त में बहुत आनंद हुआ।	शेवटाक खूप आनंद जालो.

ऐसी स्थिति में, कोंकणी में कभी-कभी विकृत रूप का भी प्रयोग होता है, जैसे :– (१) सूर्य पूर्वे उदेता . ; (२) घड्याळा चावी दी. ; (३) तूं परिक्षे बस . ; आदि। परंतु इस स्थिति में , हिंदी में विकृत रूप का प्रयोग नहीं होता है , जैसे :– (१) सूरज पूरब निकलता है। ; (२) घडी चाबी दो। ; (३) तुम परीक्षा बैठो। ; आदि।

अर्थ की सूक्ष्मता के लिए निम्नलिखित एक और वाक्य द्रष्टव्य है :– हिंदी के ' मैंने दो रुपये में पुस्तक खरीदी।' वाक्य का कोंकणी में रूपान्तरण होगा, ' हांवें दोन रुपयांक पुस्तक विकत घेतलें. '। इस प्रकार यहाँ हिंदी वाक्य में प्राप्त ' में ' का अर्थ कोंकणी वाक्य में प्राप्त ' क ' से स्पष्ट हो जाता है। फिर भी हिंदी के वाक्य में ' में ' कारक-चिह्न देखकर यदि उसका रूपान्तरण ' हांवें दोन रुपयांत पुस्तक विकत घेतलें. ' किया जाए तो कोंकणी के इस वाक्य से अर्थान्तर प्राप्त होगा। वह अर्थान्तर यह है कि ' पुस्तक दो रुपये में मिलना संभव नहीं था मगर मैंने दो रुपये में ले ली '। इस प्रकार यहाँ कोंकणी में ' क ' और ' त ' लगाने में अन्तर है। परंतु इन दोनों कारक-चिह्नों के अर्थ में हिंदी में यहाँ ' में ' कारक-चिह्न लगेगा।

(xiii) कुछ और फर्क देखिए –

हिंदी	कोंकणी
१) रात को आठ बजे बैठक होगी।	रातच्या आठ वरांचेर बसका जातली .
२) सामान दूकान में रखा है।	सामान दुकानार दवरलां.
३) आपके मत में क्या होगा ?	तुमच्या मतान कितें जातलें ?
४) गोपाल ने उसे भोजन पर बुलाया।	गोपाळान ताका जेवणाक आपयलो .
५) इस पेड पर लगने वाले आम मीठे हैं।	ह्या झाडाक लागपी आमे गोड आसात .
६) नीरू ने बच्चे को गोद में रखा।	नीरून भुरग्याक मांडयेर दवरलें.
७) राम ने लक्ष्मण को काम सौंपा।	रामान लक्ष्मणाक/कडेन काम सोंपयलें.

४) निजवाचक शब्द

निजवाचक शब्द के रूप में, हिंदी में ' स्वतः, खुद , आप, स्वयं ' तथा कोंकणी में ' स्वता , खुद्द , आपुण ' शब्दों का प्रयोग होता है। यहाँ हिंदी के ' स्वयं ' के बारे में बताने की आवश्यकता नहीं है ; क्यों कि यह शब्द कोंकणी में प्रायः उपलब्ध नहीं है। अतः यहाँ हिंदी तथा कोंकणी के उपर्युक्त अन्य शब्दों की वितरण-व्यवस्था में प्राप्त साम्य-भेद स्पष्ट करना है।

हिंदी ' स्वतः , खुद ' तथा कोंकणी ' स्वता , खुद्द '

हिंदी के ' स्वतः ' तथा कोंकणी के ' स्वता ' के वितरण में प्रायः कोई भेद नहीं है। हिंदी तथा कोंकणी के ये दोनों शब्द तीनों पुरुषों और दोनों वचनों से संबंधित हैं, जैसे :–

पु.	हिंदी	कोंकणी
उ.	मैं स्वतः पणजी जाऊँगा।	हांव स्वता पणजे वतलों.
,,	हम ,, ,, जाएँगे।	आमी ,, ,, वतले.
म.	तू ,, ,, जा।	तूं ,, ,, वच.
अ.	वह ,, ,, जाता है।	तो ,, ,, वता.

इसी प्रकार हिंदी ' खुद ' तथा कोंकणी ' खुद्द ' का भी प्रयोग तीनों पुरुषों और दोनों वचनों में होता है, जैसे :– हिंदी : ' मैं खुद पणजी जाऊँगा। '; आदि। कोंकणी : ' हांव खुद्द पणजे वतलों. '; आदि। परंतु ये दोनों प्रवृत्तियाँ हिंदी में कम तो कोंकणी में अधिक हैं।

हिंदी ' आप ' तथा कोंकणी ' आपुण '

निजवाचक सर्वनाम हिंदी ' आप ' तथा कोंकणी ' आपुण ' के प्रयोग में अन्तर है। हिंदी ' आप ' तीनों पुरुषों और दोनों वचनों में प्रयुक्त है तो कोंकणी ' आपुण ' प्रायः अन्य पुरुष के दोनों वचनों में प्रयुक्त है , जैसे :–

पु.	हिंदी	कोंकणी
उ.	मैं आप बम्बई जाऊँगा।	--------
,,	हम ,, ,, जाएँगे।	--------
म.	तू ,, ,, जाएगा।	--------
,,	तुम ,, ,, जाओगे।	--------
अ.	वह आप ही खाता है।	तो आपुणच खाता.
,,	वे ,, ,,खाते हैं।	ते ,, खातात.

यहाँ कोंकणी विभाग में उत्तम और मध्यम पुरुषों के वाक्य नहीं दिये हैं। क्यों कि कोंकणी में उत्तम और मध्यम पुरुषों में ' आपुण ' का प्रयोग प्रायः नहीं होता है। इनमें ' स्वता ' या ' खुद्द ' का प्रयोग होता है जो ऊपर दिखाया है।

फिर भी कोंकणी के कुछ विशिष्ट प्रसंग में एक और प्रकार से उत्तम और मध्यम पुरुषों के शब्दों के साथ ' आपुण ' शब्द का प्रयोग होता है। किसी के कथन का फिर से निवेदन करना हो तो इन दोनों पुरुषों के शब्दों के साथ ' आपुण ' का प्रयोग होता है , जैसे :– ' हांव आपुण वचचोंना अशें तूं म्हणटालो न्हय (= मैं आप नहीं जाऊँगा ऐसा तू कहता था न) ?' ; ' तूं आपुण वतलो अशें म्हणिल्लें (= तू आप जाएगा ऐसा कहा था = मैं आप जाऊँगा ऐसा तूने कहा था।) .'; आदि।

कभी-कभी ' आपुण ' के साथ ' जावन ' का भी प्रयोग होता है , जैसे :– ' हांव आपुण जावन वतलों अशें तूं म्हणटालो न्हय (= मैं आप होकर जाऊँगा ऐसा तू कहता था न) ?' ; ' तूं आपुण जावन वचचोना अशें म्हणटालो (= तू आप होकर नहीं जाएगा ऐसा कहता था ।) .' ; आदि ।

कोंकणी में, अन्य पुरुष में ' आपुण ' का प्रयोग बहुत प्रचलित है, जैसे :– ' तो आपुण वचपाक सोदता (= वह आप जाना चाहता है ।) .' ; ' तो आपुणच येता (= वह आप ही आता है ।).'; आदि । यहाँ भी ' आपुण ' के साथ ' जावन ' का प्रयोग होता है, जैसे :– ' तो आपुण जावन मुंबय गेलो (= वह आप होकर बम्बई चला गया ।). '; ' ते आपुण जावन मुंबय वतले (= वे आप होकर बम्बई जाएँगे ।). '; आदि ।

फिर भी हिंदी में ' आप ' की प्रवृत्ति अधिक तो कोंकणी में ' आपुण ' की प्रवृत्ति कम है ।

कोंकणी में ' आपुण ' का एक और प्रकार से प्रयोग होता है । तब इसका अर्थ प्रायः निजवाचक नहीं होता है, जैसे :– ' आपुण कोण तें मनशाक कळपाक जाय (= मैं कौन वह आदमी को समझना चाहिए ।). '। इस वाक्य में ' आपुण ' का अर्थ ' मैं ' है । ' आपणें न्हिदचें अशें ताका दिसता (=मैं सोऊँ ऐसा उसे लगता है ।).' । इस वाक्य में भी ' आपणें ' का अर्थ ' मैंने ' है (यहाँ ' मैं सोऊँ ... ' वाक्य में ' मैं ' में ' ने ' नहीं लगाया है, क्यों कि हिंदी की प्रवृत्ति के कारण ऐसा हुआ है) । ' आपुण सदांच बरें करतलों अशें मनशान येवजुपाक जाय (= मैं हमेशा अच्छा करूँगा ऐसा आदमी को सोचना चाहिए ।). ' । इस वाक्य में ' आपुण ' का अर्थ प्रत्येक से संबंधित होते हुए भी ' मैं ' अर्थ का द्योतन करता है । इस अर्थ में ' आपुण ' शब्द स्वतंत्र कर्ता के रूप में प्रयुक्त हुआ है । अत एव इसका ' आपणें ' रूप होता है । इसलिए सर्वनाम तथा इस अध्याय में ' आपुण ' शब्द में कर्तृवाचक ' एं ' प्रत्यय जोडकर ' आपणें ' रूप दिखाया है (देखिए, पृ. २६२ तथा ४६९)।

परंतु हिंदी में निजवाचक ' आप ' स्वतंत्र कर्ता के रूप में प्रयुक्त नहीं है और इसमें कर्तृवाचक ' ने ' प्रत्यय लगकर ' आपने ' जैसा रूप नहीं होता है । परंतु आदरवाचक ' आप ' का तो ' ने ' युक्त रूप उपलब्ध होता है, जैसे :– ' आपने काम किया ? ' ।

ऊपर दिखाये प्रकार से कोंकणी ' आपणें ' का जिस प्रकार स्वतंत्र कर्ता के रूप में प्रयोग होता है उसी प्रकार इसका निजवाचक के रूप में भी प्रयोग होता है । इस अर्थ में कोंकणी ' आपणें ' शब्द का प्रयोग तीनों पुरुषों और दोनों वचनों में भी होता है , जैसे :– ' ताणें आपणें काम केलां.' ; ' तांणी आपणें काम केलां. ' ; ' तो आपणें काम केलां म्हणटां . ' ; ' हांवूय आपणें काम केलां म्हणटां .' ; ' आमीय बी आपणें काम केलां म्हणटात . ' ; ' तूं आपणें काम केलां म्हण .' ; ' तुमीय आपणें काम केलें म्हणात.' ; (इन वाक्यों में ' स्वता, खुद्द ' शब्दों का भी प्रयोग होता है, जैसे :– ' ताणें स्वता / खुद्द काम केलां ') । आदि । इस प्रकार यहाँ ' आपणें ' का प्रयोग निजवाचक के रूप में प्राप्त है

इसके साथ कभी-कभी ' जावन ' का भी प्रयोग होता है, जैसे :– ' प्रत्येकान आपणें जावन राष्ट्राची सेवा करपाक जाय. ' ।

हिंदी ' आप ' के आकृति से साम्य रखने वाला ' आप ' शब्द कोंकणी में भी है । परंतु इसका प्रयोग प्रायः सामासिक वृत्ति में दिखायी देता है, जैसे :– ' आपस्वार्थ , आपशीं, आपखुशी , आप-पाप भटा माथ्यार, आपाप, आपोआप ' आदि । इन शब्दों में प्राप्त ' आप ' का अर्थ हिंदी निजवाचक ' आप ' की तरह है ।

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी निजवाचक शब्दों के वितरण में काफी अंतर है ।

हिंदी ' अपना ' तथा कोंकणी ' आपलो , आपणालो, आपणाचो '

हिंदी में निजवाचक ' आप ' के संबंध कारक में ' अपना 'एक रूप है तो कोंकणी में निजवाचक ' आपुण ' के संबंध कारक में ' आपलो , आपणालो, आपणाचो ' तीन रूप उपलब्ध हैं ।

हिंदी तथा कोंकणी के इन रूपों की वितरण-व्यवस्था में अन्तर है । इसके लिए निम्नलिखित बातें द्रष्टव्य हैं ।

हिंदी का ' अपना ' रूप तीनों पुरुषों और दोनों वचनों में समान रूप से प्रयुक्त है ।

कोंकणी में उत्तम और मध्यम पुरुष में स्थिति अलग है तो अन्य पुरुष में अलग । उत्तम और मध्यम पुरुषों में उपर्युक्त कोंकणी के ' आपलो, आपणालो, आपणाचो ' रूप प्रायः उपलब्ध नहीं होते हैं । इन पुरुषों में उस-उस पुरुष का संबंध कारक रूप प्रायः प्रयुक्त होता है । अन्य पुरुष में तो ' तो ' सर्वनाम के संबंध कारक का रूप प्राप्त होता है और इसके सिवा उपर्युक्त ' आपलो, आपणालो , आपणाचो ' रूप भी प्राप्त होते हैं । अर्थात् हांव ' के साथ ' म्हजो/म्हगेलो '; ' आमी ' के साथ ' आमचो/आमगेलो '; ' तूं ' के साथ ' तुजो/तुगेलो '; ' तुमी ' के साथ ' तुमचो/तुमगेलो '; ' तो ' के साथ ' ताजो/ताचो/तागेलो/आपलो/आपणालो/आपणाचो ';' ते ' के साथ' तांचो/तांगेलो/आपलो/आपणालो/आपणाचो ' रूप मिलते हैं । अतः इन सभी के वाक्य इस प्रकार होंगे :–

पु.	हिंदी	कोंकणी
उ.	मैं अपना बैल ले जाता हूँ ।	हांव म्हजो बैल व्हरतां.
,,	हम ,, ,, ,, जाते हैं ।	आमी आमचो ,, व्हरतात.
म.	तू ,, ,, ,, जा ।	तूं तुजो ,, व्हर.
,,	तुम ,, ,, ,, जाओ ।	तुमी तुमचो ,, व्हरात.
अ.	वह ,, ,, ,, जाएगा ।	तो ताजो ,, व्हरतलो.
,,	वे ,, ,, ,, जाएँगे ।	ते तांचो ,, व्हरतले.

इसी प्रकार कोंकणी में ऊपर दिखाये ' म्हगेलो ' आदि शब्दों का भी प्रयोग होता है, जैसे :– ' हांव म्हगेलो बैल व्हरतां. '; ' तुमी तुमगेलो बैल व्हरात. '; ' तो ताचो/तागेलो/आपलो/ आपणालो/आपणाचो बैल व्हरतलो.'; आदि ।

कोंकणी के ' हांव म्हजो बैल व्हरतां .' की तरह हिंदी में ' मैं मेरा बैल ले जाता हूँ ।' वाक्य नहीं होता है । इसी प्रकार ' हम हमारा बैल ले जाते हैं ।' ; ' तू तेरा काम करेगा ।'; ' वह उसका काम करेगा । ' आदि वाक्य हिंदी में गलत साबित होते हैं । परंतु ' हांव म्हजो बैल व्हरतलों .' ; ' आमी आमचो बैल व्हरतले.'; ' तू तुजें काम करतलो. ' ; ' तो ताजें / ताचें काम करतलो. ' आदि वाक्यों का कोंकणी में व्यवहार होता है ।

कोंकणी में कभी-कभी मध्यम पुरुष के साथ ' आपलो/आपणालो/आपणाचो ' शब्दों का भी प्रयोग होता है , जैसे :– ' तूं आपलो /आपणालो / आपणाचो बैल व्हर ..'; ' तुमी आपलो/आपणालो/आपणाचो बैल व्हरात .'; आदि ।

हिंदी तथा कोंकणी के इन रूपों में परवर्ती संबद्ध संज्ञाओं तथा परवर्ती कारक-चिह्न युक्त संबद्ध संज्ञाओं के लिंग और वचन के कारण परिवर्तन होता है, जैसे :– हिंदी : ' मैं अपनी गाय ले जाता हूँ । '; आदि । कोंकणी : ' हांव म्हजी / म्हगेली गाय व्हरतां. '; आदि ।

५) प्रश्नवाचक शब्द

प्रश्नवाचक हिंदी ' क्या ' तथा कोंकणी ' कितें ' शब्द की स्थिति अलग-अलग होती है । इसके लिए निम्नलिखित बातें देखिए :–

(i) हिंदी में जिस संज्ञा या सर्वनाम के बारे में प्रश्न पूछा जाता है उस संज्ञा या सर्वनाम के पहले ' क्या ' का प्रयोग होता है । परंतु कोंकणी में इस प्रकार ' कितें ' का प्रयोग नहीं होता है, जैसे :–

हिंदी	**कोंकणी**
क्या संध्या काम करती है ?	संध्या काम करता ?
क्या तुम लिख रहे हो ?	तुमी बरयतात ?

हिंदी ' क्या ' के अर्थ में कोंकणी में ' कितें ' प्रयुक्त होता है । परंतु इसका प्रयोग हिंदी जैसा संज्ञा या सर्वनाम के पूर्व नहीं होता है । इसके सिवा कोंकणी के ऐसे वाक्यों में ' कितें ' शब्द की आवश्यकता भी नहीं रहती । , जैसे :– संध्या काम करता ? ' ; ' तुमी बरयतात ?' ; आदि । यहाँ बलाघात से ही प्रश्न का बोध होता है । इसके लिए और कुछ वाक्य देखिए :– ' वीणा अभ्यास करता ? ; नागेश बरयता ?; पुष्पा शिकयता ?; मीरा पेटी वाजयता ? ; ' दिनेश पणजे वता ? ' ; आदि । यहाँ हिंदी की तरह कोंकणी में ' कितें ' शब्द का प्रयोग किया जा सकता है, जैसे :– ' कितें संध्या काम करता !'; ' कितें

तुमी बरयतात !' ; आदि । परंतु कोंकणी के इन वाक्यों से आश्चर्य व्यक्त होता है, जिज्ञासा नहीं। यहाँ हिंदी में 'क्या संध्या काम करती है ?'; 'क्या तुम लिख रहे हो ?' आदि वाक्यों से आश्चर्य भी व्यक्त किया जा सकता है, जैसे :-- 'क्या ! संध्या काम करती है !'; 'क्या ! तुम लिख रहे हो !'; आदि।

(ii) हिंदी 'क्या' तथा कोंकणी 'कितें' जब क्रिया से संबंधित होते हैं तब इन दोनों शब्दों का स्थान समान होता है, जैसे :-

हिंदी	**कोंकणी**
विष्णु क्या करता है ?	विष्णु कितें करता ?
कृष्ण क्या करता है ?	कृष्ण कितें करता ?
हरि क्या करता है ?	हरि कितें करता ?

हिंदी तथा कोंकणी के इन उपर्युक्त वाक्यों में 'क्या' तथा 'कितें' के प्रयोग में स्थान-साम्य दीखता है।

(iii) हिंदी 'क्या' तथा कोंकणी 'कितें' प्रायः वाक्य के अन्त में नहीं होते हैं, जैसे:-

हिंदी	**कोंकणी**
सिंधू काम करती है क्या ?	सिंधू काम करता कितें ?
मोहन काम करता है क्या ?	मोहन काम करता कितें ?

हिंदी तथा कोंकणी में इस प्रकार की रचना प्रायः अप्राप्य है।

फिर भी कोंकणी के इस प्रकार के वाक्यों में जब 'कितें' शब्द अन्त में आता है तब उसके पहले 'काय' शब्द का प्रयोग होता है , जैसे :- 'नरसिंह काम करता काय कितें ?' ; 'कमल कॉफी हाडटा काय कितें ?'; आदि। कोंकणी में ऐसे वाक्यों से प्रायः संदेह व्यक्त किया जाता है।

यह प्रवृत्ति प्रायः हिंदी में प्राप्त नहीं है।

६) हिंदी √हो तथा कोंकणी √आस और √जा की रचना

हिंदी में √हो दो अर्थों में प्रयुक्त है – (१) अस्तित्वदर्शक या विद्यमानतादर्शक और (२) उत्पत्तिदर्शक या विकारदर्शक । हिंदी के अस्तित्वदर्शक √हो से कोंकणी √आस संबंधित है तथा हिंदी के उत्पत्तिदर्शक √हो से कोंकणी √जा संबंधित है । हिंदी √हो तथा कोंकणी √आस और √जा के प्रयोग में प्राप्त होने वाला साम्य तथा भेद निम्नलिखित प्रकार से है –

(i) हिंदी अस्तित्वदर्शक √हो तथा कोंकणी √आस का प्रयोग मुख्य क्रिया के समान होता है; अर्थात् इनके साथ अन्य कोई धातु सहायक रूप में नहीं आती है, जैसे :-

	हिंदी	कोंकणी
(१)	मैं हूँ।	हांव आसां.
(२)	वह (पु.) है।	तो आसा.
(३)	वह (स्त्री.) है।	ती आसा.
(४)	वे हैं।	ते आसात.

उपर्युक्त वाक्यों में √हो तथा √आस के साथ किसी अन्य क्रिया का प्रयोग नहीं है। ये दोनों धातु मुख्य रूप में व्यवहृत हैं।

(ii) सामान्य वर्तमानकाल में(डा.धीरेंद्र वर्मा के अनुसार वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ बनाते समय) हिंदी में अस्तित्वदर्शक √हो के रूप मुख्य क्रिया के साथ सहायक रूप में प्रयुक्त होते हैं; परंतु कोंकणी में अस्तित्वदर्शक √आस के रूप मुख्य क्रिया के साथ सहायक रूप में प्रयुक्त नहीं होते बल्कि कोंकणी के सामान्य वर्तमानकाल में मुख्य क्रिया के रूपों का ही प्रयोग होता है, जैसे :–

	हिंदी	कोंकणी
(१)	मैं पढता हूँ।	हांव वाचतां.
(२)	वह पढता है।	तो वाचता.
(३)	वह पढती है।	ती वाचता.
(४)	वे पढते हैं।	ते वाचतात.

उपर्युक्त हिंदी वाक्यों में मुख्य क्रिया (पढना) के साथ√हो के रूप प्राप्त हैं परंतु कोंकणी वाक्यों में मुख्य क्रिया (वाचप) के साथ किसी सहायक क्रिया का प्रयोग नहीं है।

(iii) अपूर्ण वर्तमान काल बनाते समय हिंदी √हो तथा कोंकणी √आस के वर्तमानकालिक रूप वाक्य में सहायता के रूप में प्रयुक्त होते हैं। फिर भी हिंदी में √हो के रूपों के पूर्व √रह के भूतकालिक रूपों का प्रयोग करना पडता है, जैसे :–

	हिंदी	कोंकणी
(१)	मैं पढ रहा हूँ।	हांव वाचत आसां.
(२)	वह पढ रहा है।	तो वाचत आसा.
(३)	वह पढ रही है।	ती वाचत आसा.
(४)	वे पढ रह हैं।	ते वाचत आसात.

डा. धीरेंद्र वर्मा ने अपूर्ण वर्तमानकाल (वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ) का ‘ वह चलता है।’ उदाहरण दिया है। यदि ऐसे प्रयोगों को ले लिया जाय तो हिंदी तथा कोंकणी में साम्य प्राप्त होता है; क्योंकि हिंदी के ‘ वह चलता है।’; ‘ वह पढता है।’ जैसे वाक्यों में √रह का प्रयोग नहीं है। अर्थात् वर्तमानकालिक कृदन्त रूप के साथ सहायक रूप में

हिंदी √हो तथा कोंकणी √आस के रूपों का प्रयोग प्राप्त होता है। इससे हिंदी तथा कोंकणी वाक्यों में साम्य प्राप्त होता हैं, यथा :–

	हिंदी	**कोंकणी**
(१)	मैं पढता हूँ।	हांव वाचत आसां.
(२)	वह पढता है।	तो वाचत आसा.

फिर भी यहाँ हिंदी तथा कोंकणी में थोडा-सा फर्क है। हिंदी में 'ता' तो कोंकणी में 'त' प्रत्ययान्त रूप है। कोंकणी का यह 'त' प्रत्ययान्त रूप भी वर्तमानकालिक कृदन्त 'ता' का ही दूसरा रूप है। इन दोनों में हिंदी का 'ता' प्रत्ययान्त रूप विशेषणात्मक है तो कोंकणी का 'त' प्रत्ययान्त रूप अव्यय है।

(iv) हिंदी में उत्पत्तिदर्शक √हो का मुख्य क्रिया के रूप में प्रयोग होता है तभी इसके साथ अस्तित्वदर्शक √हो का सहायक रूप में प्रयोग होता है। परंतु कोंकणी में ऐसा नहीं होता है। कोंकणी में केवल उत्पत्तिदर्शक √जा के रूपों का ही प्रयोग होता है। इसके साथ किसी अन्य धातु के रूपों का प्रयोग सहायक रूप में नहीं होता है, यथा :–

	हिंदी	**कोंकणी**
(१)	मैं राजा होता हूँ।	हांव राजा जाता.
(२)	वह काम होता है।	तें काम जाता.
(३)	हँसने से लाभ होता है।	हांशिल्यान फायदो जाता.

उपर्युक्त वाक्यों में, हिंदी में उत्पत्तिदर्शक √हो के अर्थ में कोंकणी में उत्पत्तिदर्शक √जा का व्यवहार हुआ है। परंतु अस्तित्वदर्शक हिंदी√हो की तरह कोंकणी में√आस का प्रयोग नहीं हुआ है।

(v) हिंदी में दो √हो का प्रयोग एक साथ होता है, वैसा कोंकणी में दो √आस या दो √जा का प्रयोग एक साथ नहीं होता है, यथा :–

	हिंदी	**कोंकणी**
(१)	मैं होता हूँ।	हांव जातां.
(२)	वह राजा होता है।	तो राजा जाता.

हिंदी के 'मैं होता हूँ।', 'वह राजा होता है।' वाक्यों में प्राप्त 'होता', 'होता' उत्पत्तिदर्शक √हो के रूप हैं; और 'हूँ', 'है' अस्तित्वदर्शक √हो के रूप हैं। कोंकणी में इस प्रकार नहीं होता है। कोंकणी में केवल उत्पत्तिदर्शक √जा का ही प्रयोग हुआ है और इसके अनन्तर अस्तित्वदर्शक √आस का प्रयोग नहीं हुआ है।

(vi) हिंदी में √जा 'गमनार्थक' है, न कि 'उत्पत्यर्थक'। कोंकणी में √जा 'उत्पत्यर्थक' है, न कि 'गमनार्थक'। कोंकणी में गमनार्थक धातु 'वच' है। इससे

हिंदी का 'मैं जाता हूँ।' वाक्य कोंकणी में 'हांव वतां.' होता है। अर्थात् दोनों वाक्यों के अर्थों में समानता है। कोंकणी √जा को लिया जाए तो 'हांव जातां.' वाक्य हिंदी में 'मैं होता हूँ।' में रूपान्तरित होगा। यहाँ 'हांव जातां.' तथा 'मैं होता हूँ।' वाक्य समानार्थक हैं। परंतु हिंदी 'मैं जाता हूँ।' तथा कोंकणी 'हांव जातां.' वाक्यों में भिन्नार्थ दिखायी देता है।

७) शक्यार्थ : हिंदी √सक तथा कोंकणी √शक

हिंदी √सक तथा कोंकणी √शक में 'स' तथा 'श' के कारण थोडा-सा अन्तर है, तथा दोनों के प्रयोग में भी थोडा-सा अन्तर है। हिंदी √सक तथा कोंकणी √शक के प्रयोग में कर्ता परसर्ग-रहित (अविभक्तिक) रूप में आता है। हिंदी में √सक के पूर्व मुख्य क्रिया धातुरूप में होती है और √सक में काल, वचन, लिंग के अनुसार विभिन्न प्रत्यय जोडे जाते हैं। कोंकणी में मुख्य धातु में 'औंक, ऊं, ऊंक, वं, वंक' में से कोई एक प्रत्यय जुडता है और √शक में काल, वचन, लिंग, पुरुष के अनुसार विभिन्न प्रत्यय जोडे जाते हैं, यथा :–

	हिंदी	कोंकणी
(१)	मैं लिख सकता हूँ।	हांव बरौंक शकतां.
(२)	वह पुस्तक पढ सकता है।	तो पुस्तक वाचूं/वाचूंक शकता.
(३)	वह पुस्तक पढ सकती है।	ती पुस्तक वाचूं/वाचूंक शकता.
(४)	वह पुस्तक पढ सकेगी।	ती पुस्तक वाचूंक शकतली.
(५)	औरतें जा सकीं।	बायलो वचूंक शकल्यो.
(६)	तुम जा सकती हो।	तुमी वचूंक शकतात.
(७)	हम रोटी खा सकते हैं।	आमी रोटी खावं / खावंक शकतात.

उपर्युक्त हिंदी के वाक्य क्रमांक (१) से (७) तक मुख्य धातु के मूल रूप प्रयुक्त हैं और √सक के रूप लिंग वचन और काल के अनुसार परिवर्तित हैं।

उपर्युक्त कोंकणी वाक्य के क्रमांक (१) में 'औंक' है। वाक्य क्रमांक (२) और (३) में 'ऊं / ऊंक' है। इसी प्रकार वाक्य क्रमांक (४), (५) और (६) में हो सकता है। वाक्य क्रमांक (७) में 'वं' और 'वंक' जुडे हैं। ये सभी प्रत्यय समानार्थक हैं। इनके आगे √सक के रूप लिंग, वचन, काल' और पुरुष के अनुसार परिवर्तित हुए हैं (कोंकणी के प्रथम वाक्य में दिये 'बरौंक' रूप के लिए देखिए, वालावलीकर लिखित कोंकणी नादशास्त्र, पृ. १८)।

८) हिंदी ' चाहिए ' तथा कोंकणी ' जाय '

हिंदी ' चाहिए ' का कोंकणी पर्यायवाची शब्द है ' जाय ' । हिंदी ' चाहिए ' तथा कोंकणी ' जाय ' क्रियाओं का प्रयोग मुख्य क्रिया के रूप में होता है । हिंदी तथा कोंकणी के इन शब्द-रूपों में भिन्नता है, फिर भी इन दोनों की प्रयोग-व्यवस्था में प्रायः भिन्नता नहीं है । इनकी वितरण-व्यवस्था की तुलनात्मक स्थितिओं के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं, यथा :-

(i) हिंदी ' चाहिए ' तथा कोंकणी ' जाय ' शब्दों का प्रयोग करते समय कर्म कारक का प्रत्यय जुडता है, यथा :-

	हिंदी	कोंकणी
१)	लडकी को रोटी चाहिए ।	चलयेक रोटी जाय.
२)	मुझे पुस्तक चाहिए	आमकां आंबे जाय.
३)	तुम्हें आम चाहिए ।	तुमकां आमो जाय.

(ii) हिंदी ' चाहिए ' तथा कोंकणी ' जाय ' शब्दों पर लिंग , वचन , पुरुष तथा काल का परिणाम नहीं होता है, यथा :-

	हिंदी	कोंकणी
१)	लडके को किताबें चाहिए ।	भुरग्याक पुस्तकां जाय .
२)	हमें आम चाहिए ।	आमकां आमे जाय .
३)	उसे आम चाहिए ।	ताका आंबो जाय.
४)	राम को आज / कल जाना चाहिए ।	रामाक आज / फाल्या वचूंक जाय.

उपर्युक्त हिंदी वाक्य क्रमांक (१) में ' लडका ' अन्य पुरुष एक. तथा ' किताबें ' अन्य पुरुष बहु. हैं; वाक्य क्रमांक (२) में ' हमें ' उत्तम पुरुष बहु. तथा ' आम ' अन्य पुरुष बहु. हैं ; वाक्य क्रमांक (३) में ' उसे ' अन्य पुरुष एक. तथा ' आम ' अन्य पुरुष एक. है; वाक्य क्रमांक (४) में ' राम ' एक. है तो ' आज / कल ' कालवाचक है । यही स्थिति कोंकणी वाक्यों में दिखायी देती है । फिर भी हिंदी तथा कोंकणी के उपर्युक्त वाक्यों में ' चाहिए ' तथा ' जाय ' शब्दों में कुछ भी बदल नहीं हुआ है । कोंकणी के क्रमांक (४) के वाक्य में ' वचूंक ' के बदले ' वचपाक ' भी होता है ।

(iii) हिंदी में ' चाहिए ' के आगे √हो का भूतकालिक रूप तथा कोंकणी में ' जाय ' के आगे √आस का भूतकालिक रूप सहायक क्रिया के रूप में प्रयुक्त होता है, यथा :-

	हिंदी	**कोंकणी**
१)	राम को आम चाहिए था ।	रामाक आंबो जाय आसलो.
२)	उसे किताब चाहिए थी ।	ताका पुस्तक जाय आसले.
३)	उसे मैं चाहिए था ।	ताका हांव जाय आसलों.

उपर्युक्त हिंदी तथा कोंकणी वाक्यों में सहायक भूतकाल के रूपों पर लिंग, वचन का प्रभाव पडता है इसके साथ-साथ कोंकणी में पुरुष का भी प्रभाव पडता है (देखिए क्रमांक (३) का वाक्य)।

(iv) हिंदी में 'चाहिए' के पूर्व मुख्य क्रिया में 'ना' प्रत्यय जोडकर प्रयोग किया जाता है तो कोंकणी में हिंदी 'ना' प्रत्यय के समानार्थक 'प' प्रत्यय जोडा जाता है और उसका कारक-चिह्न सहित अथवा विकृत रूप में प्रयोग होता है, यथा :–

	हिंदी	कोंकणी
१)	मुझे जाना चाहिए।	म्हाका वचपाक / वचपा जाय.
२)	उसको खाना चाहिए।	ताका खावपाक / खावपा जाय.

और इन्हीं वाक्यों में अनिवार्यता प्रगट करने के लिए हिंदी में 'जरूर', 'अवश्य' जैसे शब्दों का प्रयोग तथा कोंकणी में 'सामकें, अवश्य' जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है, यथा –

	हिंदी	कोंकणी
१)	मुझे जरूर जाना चाहिए।	म्हाका सामकें वचपाक जाय.
२)	उसे अवश्य खाना चाहिए।	ताका अवश्य खावपाक जाय.

उपरोल्लिखित कोंकणी के 'प' प्रत्ययान्त रूप के बदले कभी-कभी 'उंक', 'ऊंक' जैसे प्रत्यय जुडते हैं, यथा :– '... संवसार बदलुंक जाय. ['आयचे सोवियत युनियन (पत्रिका)', फेब्रुवारी १९७२, अंक २, पृ. ७]'; '.... अशेंच म्हणूंक जाय.', '...... तजवीज करूंक जाय आसली. ('गोमन्तोपनिषत्' पृ. ६ पंक्ति ३, पृ. १२, पंक्ति १४)'।

उपर्युक्त कोंकणी के 'संवसार बदलुंक जाय.' आदि वाक्य हिंदी के 'मुझे जाना चाहिए (ऐसे वाक्य हिंदी में कार्य की दृढता दिखाते हैं)।' वाक्य की तरह कार्य की दृढता प्रगट करते हैं।

एक बात यहाँ उल्लेख्य है कि कोंकणी में 'उंक', 'ऊंक' कृदन्त अव्यय के साथ जिस प्रकार 'जाय' शब्द का प्रयोग होता है उस प्रकार हिंदी में 'ना' प्रत्ययान्त के सिवा अन्य कृदन्त अव्यय के साथ 'चाहिए' का प्रयोग नहीं होता है।

उपर्युक्त स्थिति में हिंदी तथा कोंकणी में एक और अंतर स्पष्ट करना आवश्यक है। हिंदी में 'ना' प्रत्ययान्त ('जाना' आदि) क्रिया के साथ सदा ही कर्म कारक 'को, ए, एं' प्रत्यय जुडते हैं जब की कोंकणी में 'प' प्रत्ययान्त ('खावप' आदि) क्रिया के साथ कर्ता कारक 'न, एं, णें, नीं, णीं' या कर्म कारक 'क, का, कां' प्रत्यय जुड जाते हैं, जैसे :–

	हिंदी	कोंकणी
१)	राम को दही खाना चाहिए।	रामान/रामाक धंय खावपाक जाय.
२)	मुझे आम खाना चाहिए।	हांवें / म्हाका आंबो खावपाक जाय.
३)	हमें मोह छोड देना चाहिए।	आमी / आमकां मोह सोडपाक जाय.

उपर्युक्त कोंकणी वाक्यों में ' न / क ' लगाने से थोडा अर्थान्तर भी होता है। ' न ' लगाने से क्रिया रामकर्तृक होती है तो ' क ' लगाने से क्रिया रामकर्मक होती है। यह स्थिति हिंदी में प्राप्त नहीं है। हिंदी में केवल ' को ' प्रत्यय ही लगता है।

९) निषेधार्थक शब्द

हिंदी तथा कोंकणी में निषेधार्थक शब्द प्राप्त हैं , जैसे :– हिंदी में ' नहीं , न , मत ' तथा कोंकणी में ' ना , न्हय , नाका ' (इसके सिवा कोंकणी में ' न्ही , न्हूं ' भी प्राप्त हैं)। इनमें हिंदी ' न ' तथा कोंकणी ' ना ' में थोडा-सा आकृतिसाम्य है तो उपर्युक्त शेष शब्दों में भिन्नता है। हिंदी तथा कोंकणी के इन सभी शब्दों की वितरण-व्यवस्था में भी भिन्नता है। हिंदी के ' नहीं , न , मत ' पर वचन और पुरुष का प्रभाव नहीं है ; तो कोंकणी के ' ना ' पर वचन और पुरुष का प्रभाव है ; ' न्हय ' पर वचन और पुरुष का प्रभाव नहीं है और ' नाका ' पर केवल वचन का प्रभाव है। हिंदी तथा कोंकणी के इन शब्दों के व्यवहार में स्थानान्तर भी दिखायी देता है। इन सभी का विवरण नीचे प्रस्तुत है।

हिंदी ' नहीं ' तथा कोंकणी ' ना '

(i) हिंदी ' नहीं ' तथा कोंकणी ' ना ' शब्दों में अर्थ की दृष्टि से समानता प्रतीत होती है, परंतु प्रयोग की दृष्टि से दोनों में भिन्नता है। हिंदी में ' नहीं ' शब्द ' हो ' धातु के रूपों के पूर्व प्रयुक्त होता है तो कोंकणी में ' ना ' मुख्य क्रिया के रूप में प्रयुक्त होता है, यथा :–

	हिंदी	कोंकणी
१)	मैं नहीं हूँ।	हांव नां.
२)	तू नहीं है।	तूं ना.
३)	वह नहीं है।	तो ना.

उपर्युक्त हिंदी वाक्यों में ' नहीं ' के अनन्तर ' हो ' धातु के रूप प्रयुक्त हैं, परंतु कोंकणी वाक्यों में ' ना ' के अनन्तर किसी क्रिया का प्रयोग नहीं है।

(ii) हिंदी में ' नहीं ' रूप अपरिवर्तनीय है , और इसके अनन्तर आने वाली सहायक क्रिया बदलती है, परंतु कोंकणी में ' ना ' परिवर्तनीय है, और इसके अनन्तर सहायक क्रिया नहीं आती। कोंकणी में ' ना ' के कुल मिलाकर चार रूप होते हैं, यथा :– ' नां ' , ' ना ' , ' नांत ', ' नात '। यथा :–

	हिंदी	कोंकणी
१)	मैं नहीं हूँ।	हांव नां.
२)	लडका नहीं है।	भुरगो ना.
३)	हम नहीं हैं।	आमी नांत.
४)	लडके नहीं हैं।	भुरगे नात.

उपर्युक्त हिंदी वाक्यों में आये हुए 'नहीं' शब्द में परिबर्तन नहीं हुआ है, परंतु सहायक √हो में परिवर्तन हुआ है।

कोंकणी वाक्यों में आये हुए 'ना' में परिवर्तन हुआ है, परंतु इसके अनन्तर सहायक क्रिया का प्रयोग नहीं हुआ है।

(iii) हिंदी में √हो छोडकर शेष धातु के पहले 'नहीं' शब्द आता है और उस समय प्रायः सहायक √हो के रूप लुप्त होते हैं। परंतु कोंकणी में 'ना' तथा उसके रूप मुख्य क्रिया के अनन्तर आते हैं और ये रूप मुख्य क्रिया में जोडकर लिखे जाते हैं, यथा :–

	हिंदी	**कोंकणी**
१)	मैं आजकल नहीं पढता।	हांव आजकाल (सध्या) वाचनां.
२)	राम रोटी नहीं खाता।	राम रोटी खायना.
३)	हम काम नहीं करते।	आमी काम करिनांत.
४)	लडकियाँ भोजन नहीं बनातीं।	चलयो जेवण(तयार) करिनात.

उपर्युक्त हिंदी वाक्यों में 'पढ, खा, कर, बना' के पहले 'नहीं' शब्द आया है तो कोंकणी में 'वाच, खा, कर, कर' के अनन्तर 'ना' और उसके रूपों का प्रयोग हुआ है और वे रूप भी मुख्य क्रियाओं में जोडकर लिखे हैं। हिंदी में मुख्य क्रिया के अनन्तर सहायक √हो का प्रयोग नहीं है।

बंगाली में भी कोंकणी की तरह निषेध व्यक्त करने के लिए मुख्य क्रिया के अन्त में 'ना' जोडा जाता है, यथा :– 'करिलेनना'। इसी प्रकार गुजराती में भी निषेध व्यक्त करने के हेतु 'ना' जोडा जाता है।

(iv) हिंदी में, भूतकाल में 'नहीं' पद क्रिया के पूर्व आता है, परंतु किसी भी क्रिया में जोडकर नहीं आता, यथा :– 'नहीं था, नहीं पढा, नहीं खाया' आदि। कोंकणी में, भूतकाल में केवल √आस के पूर्व 'ना' का प्रयोग होता है और वह √आस को जोडकर लिखा जाता है, यथा :– 'नासलो, नाशिल्लो, नासलें' आदि। शेष धातुओं के प्रयोग में 'नां, ना, नांत, नात' क्रिया के अन्त में जुड जाते हैं, यथा :–

	हिंदी	**कोंकणी**
१)	मैं वहाँ नहीं था।	हांव थंय नासलों (नाशिल्लों).
२)	वे बाजर में नहीं थीं।	त्यो बाजारांत नासल्यो.
३)	मैंने आम नहीं खाया।	हांवें आंबो खालोना.
४)	उसने आम नहीं खाये।	ताणें आंबे खालेनात.

(v) एक और अन्तर देखिए। हिंदी में जहाँ निषेधार्थक 'नहीं' शब्द का प्रयोग होता है वहाँ कोंकणी में निषेधार्थक 'ना' या 'न्हय' का प्रयोग होता है। परंतु हिंदी 'नहीं' तथा कोंकणी 'ना' और 'न्हय' के प्रयोग में अन्तर है। साधारणतः कोंकणी में 'क्रिया' का निषेध करने के लिए 'ना' और 'वस्तु' या 'व्यक्ति' का निषेध करने के लिए

' न्हय ' का प्रयोग होता है। ऐसी स्थिति में हिंदी में केवल ' नहीं ' का प्रयोग होता है, यथा :–

	हिंदी	कोंकणी
१)	राम यहाँ नहीं है।	राम हांगा ना.
२)	राम अभ्यास नहीं करता।	राम अभ्यास करिना .
३)	वह चित्र नहीं है।	तें चित्र न्हय.
४)	वह राम नहीं है।	तो राम न्हय.

उपर्युक्त हिंदी के चारों वाक्यों में ' नहीं ' शब्द का प्रयोग है, जो क्रिया, वस्तु तथा व्यक्ति का निषेध करता है। परंतु कोंकणी के वाक्य क्रमांक (१) और (२) में क्रिया ' होना ' और ' करना ' का निषेध है; वाक्य क्रमांक (३) में वस्तु का निषेध है और वाक्य क्रमांक (४) में व्यक्ति का निषेध है। कोंकणी में ' तें चित्र न्हय. ' के बदले ' तें चित्र ना. ' का प्रयोग किया जाता है, परंतु तब चित्र के अस्तित्व का ही निषेध किया जाता है ; अर्थात् ऐसे वाक्य में वस्तु का निषेध प्राप्त नहीं होता है।

(vi) हिंदी में एक और निषेधात्मक ' न ' का उपयोग होता है। हिंदी के ' न ' और ' नहीं ' में ' नहीं ' शब्द निषेध का दाढर्य व्यक्त करता है, यथा :– ' वह न आया। ; मैं न आऊँगा। ' और ' वह नहीं आया।; मैं नहीं आऊँगा। '; आदि। इन वाक्यों में ' वह नहीं आया। ; मैं नहीं आऊँगा। ' वाक्यों में निषेध का दाढर्य प्रगट होता है। इस प्रकार कोंकणी में निषेध का दाढर्य प्रगट करने के लिए निषेधात्मक दूसरा शब्द नहीं है। उपर्युक्त हिंदी वाक्यों का रूपान्तर कोंकणी में ' तो आयलो ना.; हांव येवचो ना.' होगा। इसमें दाढर्य व्यक्त करने के लिए मुख्य क्रिया में ' च ' अव्यय जोडा जाता है, यथा :– ' तो आयलोच ना. ; हांव येवचोच ना. '; आदि।

(vii) हिंदी में कुछ प्रश्नवाचक वाक्यों के अन्त में ' न ' आता है। ऐसे वाक्यों में प्रश्न के अतिरिक्त जिज्ञासा आदि का बोध होता है , और प्रश्नकर्ता उत्तर में ' हाँ ' की अपेक्षा रखता है। यही स्थिति कोंकणी में भी होती है , परंतु कोंकणी में हिंदी ' न ' के अर्थ में ' न्हय ' आता है , यथा

	हिंदी	कोंकणी
१)	आप अच्छे है न ?	तुमी बरे आसात न्हय ?
२)	वह जाता है न ?	तो वता न्हय?

कभी कभी उपर्युक्त अर्थ में कोंकणी वाक्य के अन्त में ' मूं ' अव्यय का भी प्रयोग होता है , यथा :– ' तुमी बरे आसात मूं ? ' ; ' तो वता मूं ? ' ; आदि। यहाँ भी जिज्ञासा आदि अर्थ का ही बोध होता है।

हिंदी ' मत (निषेधार्थक) ' तथा कोंकणी ' नाका '

(i) हिंदी तथा कोंकणी में एक और प्रकार से निषेध व्यक्त किया जाता है। हिंदी में निषेधात्मक ' मत ' तथा कोंकणी में ' नाका (एक.) और ' नाकात (बहु.) ' का प्रयोग होता है। हिंदी ' मत ' तथा कोंकणी ' नाका ' और ' नाकात ' से वर्जना अर्थ सूचित होता है। ' मत ' हिंदी में क्रिया के पूर्व आता है तो ' नाका ', ' नाकात ' कोंकणी में मुख्य क्रिया के अनन्तर आते हैं, यथा :–

	हिंदी	कोंकणी
१)	तू मत जा।	तूं वचूं नाका.
२)	तुम मत पढो।	तुमी वाचूं नाकात.
३)	तुम मत खाना।	तुमी खावं नाकात.

कोंकणी में ' नाका ' और ' नाकात ' के पूर्व मुख्य धातु में ' ऊं ', ' वं ' जैसे कृत् प्रत्यय जोडे जाते हैं और एकवचन में ' नाका ' तथा बहुवचन में ' नाकात ' रूपों का प्रयोग होता है।

(ii) हिंदी में ' मत ' का प्रयोग आज्ञार्थ के मध्यम पुरुष में होता है, यथा :–

	हिंदी	कोंकणी
१)	ऐसा मत कर।	अशें करूं नाका.
२)	ऐसा मत करो।	अशें करूं नाकात.

इस प्रकार हिंदी में ' मत ' मध्यम पुरुष से भिन्न पुरुषों में प्रयुक्त नहीं होता है। अत एव ' आप ' सर्वनाम के साथ ' मत ' का प्रयोग प्रायः नहीं होता है, यथा :– ' आप वहाँ न देखिए।' ; आदि।

(iii) कोंकणी में ' नाका ' और ' नाकात ' रूपों का मध्यम पुरुष से भिन्न पुरुषों में भी प्रयोग होता है। ऐसे समय कर्ता को संप्रदान कारक का कारक-चिह्न लगता है, और कर्म अविभक्तिक होता है, यथा :– (१) ' रामाक आंबो नाका. ' और (२) ' रामाक आंबे नाकात. ' ; आदि। वाक्य क्रमांक (१) में ' आंबो 'कर्म है, और वह एकवचन में है; इसलिए ' नाका (एकवचन) ' प्रयुक्त है। वाक्य क्रमांक (२) में ' आंबे ' बहुवचन है, इसलिए ' नाकात (बहुवचन) ' का प्रयोग हुआ है। ऐसे वाक्यों में ' नाका ' तथा ' नाकात ' स्वतंत्र क्रिया के समान व्यवहृत होते हैं। कोंकणी के इस प्रकार के वाक्यों में इन शब्दों का अर्थ होता है ' आवश्यकता का अभाव ' या ' इच्छा का अभाव '। हिंदी में यह अर्थ स्पष्ट करने के लिए ' नहीं ' शब्द के साथ ' चाहिए ' शब्द का प्रयोग होता है। इस दृष्टि से उपर्युक्त कोंकणी वाक्य हिंदी में इस प्रकार होंगे :– (१) ' राम को आम (एक.) नहीं चाहिए। ' और ' राम को आम (बहु.) नहीं चाहिए। ' आदि। हिंदी के इन वाक्यों में कोंकणी की तरह कर्तृवाचक ' राम ' शब्द में गंप्रदान कारक का ' को ' चिह्न लगा है, और ' आम ' शब्द अविभक्तिक कर्म है। वाक्य क्रमांक (१) में ' आम ' के एकवचन तो

वाक्य क्रमांक (२) में ' आम ' के बहुवचन की विवक्षा है । परंतु कोंकणी की तरह ' आम ' शब्द के बहुवचन के कारण हिंदी में ' नहीं ' तथा ' चाहिए ' में परिवर्तन नहीं हुआ है ।

हिंदी तथा कोंकणी की ऊपर दिखायी गयी वाक्य-रचना सामान्य वर्तमान काल (वर्तमान अपूर्ण निश्चयार्थ) की है । इस प्रकार की रचना सामान्य भूतकाल (भूत अपूर्ण निश्चयार्थ) में भी दिखायी देती है, यथा :– ' राम को आम नहीं चाहिए था । ' यह वाक्य कोंकणी में ' रामाक आंबो नाका आसलो . ' होगा । इस काल में क्रिया बहुवचन में भी होती है, यथा :– ' राम को (बहुत) आम नहीं चाहिए थे । ' ; आदि । कोंकणी में तो बहुवचन होता ही है, यथा :– ' रामाक आंबे नाका आसले.' ; आदि । परंतु कोंकणी में ऐसे प्रयोगों में ' नाका ' के बहुवचन ' नाकात ' शब्द का प्रयोग प्रायः नहीं होता है ।

इस प्रकार के प्रयोग हिंदी में अन्य कालों में प्रायः उपलब्ध नहीं है । परंतु ऐसे प्रयोग कोंकणी में अन्य कालों में भी उपलब्ध होते हैं, यथा :– ' रामाक आंबो नाका आसतलो (भविष्य काल) .' ; आदि । (विशेष विवरण के लिए देखिए, कोंकणिची व्याकरणी बांदावळ पृ. १५०)

१०) हिंदी √चुक तथा कोंकणी √चुक

हिंदी √चुक तथा कोंकणी √चुक में रूप की दृष्टि से साम्य है । उसी प्रकार शब्द-कोशों के आधार पर ' गलती या भूल करना ' अर्थ की दृष्टि से भी दोनों में साम्य है । फिर भी दोनों की वितरण व्यवस्था में अन्तर है ।

' नालन्दा विशाल शब्द सागर ' में यद्यपि ' चुकना ' के अर्थ ' चूकना , भूल करना ' आदि और ' चूकना ' का ' भूल या गलती करना ' दिये हैं, तो भी हिंदी में यह ' गलती करना, भूल करना ' अर्थ में प्रायः प्रयुक्त नहीं है,तब ' चूकना ' या ' चुकना ' के अर्थ में ' गलती करना, भूल करना ' शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जैसे :–

हिंदी	**कोंकणी**
मैंने भूल की ।	हांवें चूक केली.
मैंने भूल की है ।	हांवें चूक केल्या.
मैं गलती कर बैठा ।	हांव चूक करून बसलों.

यहाँ हिंदी के वाक्यों में प्राप्त ' भूल, गलती ' तथा कोंकणी वाक्यों में प्राप्त ' चूक ' शब्द संज्ञाएँ हैं । यहाँ हिंदी में ' मैंने चूक की । ' आदि प्रकार की वाक्य-रचना नहीं दीखती।

इसी प्रकार हिंदी में √चुक का प्रयोग मुख्य क्रिया के रूप में प्रायः नहीं दीखता। परंतु कोंकणी में √चुक का प्रयोग मुख्य क्रिया के रूप में दिखायी देता है, जैसे :– ' हांव चुकलों. '; आदि। कहने का मतलब यह है कि कोंकणी के इस ' हांव चुकलों. ' वाक्य की तरह हिंदी मे ' मैं चुका। ' वाक्य प्रायः लिखा हुआ नहीं दिखायी देता। इसी प्रकार ' हांव चुकतां (= मैं गलती करता हूँ) '; ' तो चुकता (=वह गलती करता है). ' की तरह हिंदी मे ' मैं चुकता हूँ। ' ; ' वह चुकता है। ' वाक्य नहीं दीखता (वास्तव में ऐसा करने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए)। अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि हिंदी में √चुक धातु मुख्य क्रिया के रूप में प्रायः प्राप्त नहीं है।

हिंदी में √ चुक प्रायः सहायक क्रिया के रूप में प्रयुक्त है। उसी प्रकार कोंकणी में भी √चुक सहायक क्रिया के रूप में प्रयुक्त है (अभी ऊपर जो कहा है उसके अनुसार मुख्य क्रिया के रूप में तो है ही)। हिंदी तथा कोंकणी की इन सहायक क्रियाओं के साथ पूर्वकालिक कृदन्त का प्रयोग होता है, परंतु हिंदी में जब इस प्रकार का प्रयोग होता है तब ' पूर्णता ' या ' समाप्ति ' का बोध होता है जो कोंकणी में प्राप्त नहीं होता है। कोंकणी में जब इस प्रकार का प्रयोग होता है तो हिंदी तथा कोंकणी वाक्यों में अर्थान्तर प्राप्त होता है, जैसे : –

हिंदी	कोंकणी
(i) मैं काम कर चुका।	हांव काम करून चुकलों.
(ii) वह खा चुका।	तो खावन चुकलो.
(iii) सूरज छिप चुका।	सूर्य लिपून (मावळून) चुकलो.

यहाँ दोनों में अर्थान्तर है। कोंकणी के वाक्य क्रमांक (i) के ' हांव काम करून चुकलों. ' वाक्य का हिंदी में ' मैंने काम करके गलती की। ' रूपान्तरण होगा। परंतु जो अर्थ उपर्युक्त हिंदी के वाक्य क्रमांक (i) से व्यक्त होता है वह अर्थ कोंकणी के वाक्य क्रमांक (i) से व्यक्त नहीं होता है। अर्थात् दोनों में अन्तर है। हिंदी के ' मैं काम कर चुका। ' वाक्य का अर्थ कोंकणी में ' हांवें काम केलें. ' अथवा ' हांव काम करून मोकळो जालों. ' से ठीक व्यक्त होता है। इसी प्रकार अन्य दो क्रमांकों में भी होता है।

एक और अन्तर यहाँ द्रष्टव्य है। ऊपर बताये प्रकार से हिंदी की तरह कोंकणी में भी √चुक के साथ पूर्वकालिक ' ऊन/वन ' प्रत्ययान्त क्रिया के (करून, खावन, लिपून) बदले भविष्यकालिक ' ऊं/ऊंक/वंक ' प्रत्ययान्त क्रिया के रूप भी (करूं/करूंक, खेळूं/खेळूंक) मिलते हैं , जैसे :– ' वीणा खेळूं/खेळूंक चुकता. '; ' अनिल काम करूं/करूंक चुकलो. '; ' संध्या सत्री घेवंक चुकलें. ' आदि। तब हिंदी में इनका ' वीणा की खेलने में गलती होती है। '; ' अनिल ने काम में गलती की। '; ' संध्या ने छाता लेने में गलती की। ' वाक्यों में रूपान्तरण होगा।

हिंदी में ' चुकना ' क्रिया से समाप्तिबोधक अर्थ प्राप्त होने के कारण इसका प्रयोग प्रायः भूतकाल में दिखायी देता है, जैसे :– ' सूरज छिप चुका । '; आदि । परंतु ' सूरज छिप चुकता है । ' जैसे प्रयोग प्रायः अप्राप्य है ।

११) हिंदी ' भविष्य आज्ञार्थ ' तथा कोंकणी ' विध्यर्थ '

पृष्ठ ३६१ पर क्रमांक (१७) में हिंदी ' भविष्य आज्ञार्थ (परोक्ष विधि) ' की कोंकणी ' विध्यर्थ ' से तुलना की है और इनके उदाहरण भी वहाँ दिये हैं । ये उदाहरण मध्यम पुरुष के हैं । प्रश्न उठता है कि शेष सभी क्रमांकों के उदाहरण अन्य पुरुष के देकर यहाँ ही मध्यम पुरुष के उदाहरण क्यों दिये हैं ।अर्थात् यह जो भिन्नता है उसे स्पष्ट करना जरूरी है।

हिंदी तथा कोंकणी के उपर्युक्त दोनों कालों की वाक्य-रचना में काफी भिन्नता है ।

हिंदी भविष्य आज्ञार्थ केवल मध्यम पुरुष में प्रयुक्त है । इसमें ' ना ' प्रत्ययान्त (' दौडना ' आदि) क्रिया का व्यवहार होता है । इस क्रिया का प्रयोग एकवचन तथा बहुवचन में समान रूप से प्रयुक्त होता है । इस पर लिंग का प्रभाव नहीं है । इसकी वाक्य-रचना में चाहे कर्म हो या ना हो प्रयोग ' कर्तरि ' में ही होता है ।

कोंकणी ' विध्यर्थ ' तीनों पुरुषों में प्रयुक्त है । इसमें ' चो ' प्रत्ययान्त (' धांवचो ' आदि) क्रिया का व्यवहार होता है । इस क्रिया का प्रयोग एकवचन तथा बहुवचन में भिन्न -भिन्न रूप में होता है । इस पर लिंग का प्रभाव है । अर्थात् इसका रूप बदलता है, जैसे :– ' चो, ची, चें, चे, च्यो, चीं ' । वाक्य में जब कर्म होता है तब वाक्य-रचना कर्मणि प्रयोग तथा जब कर्म नहीं होता है तब वाक्य-रचना भावे प्रयोग की होती है । नीचे दोनों के उदाहरण दिये हैं :–

	हिंदी **सकर्मक कर्तरि प्रयोग**	**कोंकणी** **कर्मणि प्रयोग**
१)	तू आम खाना ।	तुंवें आमो खावचो.
२)	तू खूब आम खाना ।	तुंवें खूप आमे खावचे.
३)	तुम आम खाना ।	तुमी आमो खावचो.
४)	तुम खूब आम खाना ।	तुमी खूप आमे खावचे.
५)	तुम कहानी कहना ।	तुमी (तुंवें) गोष्ट सांगची.
६)	—————	हांवें आमो मागचो.
७)	—————	तांणीं काम करचें.

अकर्मक कर्तरि प्रयोग	भावे प्रयोग
तू/तुम दौडना ।	तुंवें/तुमी धांवचें.
----------	हांवें/आमी धांवचें.
----------	ताणें/तांणीं धांवचें.

इस प्रकार यहाँ ' ना ' प्रत्ययान्त क्रिया के रूप में किसी प्रकार का बदल नहीं होता है तो कोंकणी ' चो ' प्रत्ययान्त क्रिया के रूप में भिन्न-भिन्न प्रकार का बदल होता है ।

उपर्युक्त वाक्य क्रमांक (६) और (७) के कोंकणी ' हांवें आमो मागचो. ' और ' तांणीं काम करचें .' वाक्यों का हिंदी में ' मैंनै आम माँगना । ' और ' उन्होंने काम करना । ' रूप में अनुवाद नहीं होगा । इनके लिए हिंदी वाक्य-रचना थोडी बदलनी पडेगी , जैसे :– ' मुझे आम माँगना चाहिए ।' और ' उन्हें काम करना चाहिए । '; आदि । इस प्रकार ' चाहिए ' क्रिया का प्रयोग करके उपर्युक्त कोंकणी के दोनों वाक्यों का अर्थ हिंदी में स्पष्ट किया जा सकता है ।

उपर्युक्त कोंकणी ' चो ' प्रत्यय और उसके रूपों के बदले ' प ' प्रत्यय का भी प्रयोग होता है । यह हिंदी ' ना ' की तरह अविकृत है । अर्थात् इसमें भी हिंदी ' ना ' की तरह बदल नहीं होता है , जैसे :– ' तुंवें आमो खावप (=खाना). ' ; ' तुंवें गोष्ट सांगप (=कहना). ' ; ' तांणी करप (=करना) . ' ; आदि ।

हिंदी तथा कोंकणी के इन वाक्यों से ' कर्तव्य ' आदि का बोध होता है ।

१२) संयुक्त क्रियाएँ

हिंदी तथा कोंकणी में संयुक्त क्रियाएँ प्राप्त हैं । इनके वितरण-व्यवस्था में साम्य तथा वैषम्य प्राप्त होता है । नीचे कुछ बातें स्पष्ट की हैं ।

हिंदी तथा कोंकणी की कुछ संयुक्त क्रियाओं में अर्थ की दृष्टि से साम्य है, जैसे :–

	हिंदी	कोंकणी
(१)	संध्या मुझे कहानी सुनाने लगी ।	संध्या म्हाका काणी सांगपाक लागलें.
(२)	हरि को लिखना पडा ।	हरिक बरोवचें पडलें.
(३)	उसने वह काम कर डाला ।	ताणें तें काम करून उडयलें.
(४)	वीणा दिन भर खेलती रही ।	वीणा दीसभर खेळत रावलें.
(५)	तुम नहा लो ।	तुमी न्हावन घेयात.
(६)	मीरा को जाने दो ।	मीराक वचपा दी.
(७)	नरसिंह को अब पढना चाहिए ।	नरसिंहाक आता वाचपाक जाय.
(९)	वह खाता गया ।	तो खायत गेलो.

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी की कुछ संयुक्त क्रियाओं में साम्य नजर आता है तो भी हिंदी में कुछ संयुक्त क्रियाओं की अपनी एक विशेषता है जो कोंकणी में प्रायः नहीं दीखती। कुछ वाक्य ऐसे हैं, जहाँ हिंदी में संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग होता है वहाँ कोंकणी में एक ही क्रिया का प्रयोग होता है, जैसे :–

	हिंदी	**कोंकणी**
(१)	तुम क्यों हँस पडे ?	तुमी कित्याक हांसले ?
(२)	वह पढा करता है।	तो वाचता.
(३)	सबेरा हो गया।	सकाळ जाली.
(४)	राम लौट आया।	राम परत आयलो.
(५)	अनिल पहुँच गया।	अनिल पावलो.

यहाँ हिंदी में संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग है तो कोंकणी में एक ही क्रिया का प्रयोग है। यदि हिंदी में संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग देखकर कोंकणी में भी इसी प्रकार प्रयोग करना चाहें तो हिंदी का अर्थ उसमें प्राप्त नहीं होगा और दोनों में अर्थान्तर प्राप्त होगा। इसके लिए कुछ उदाहरण नीचे द्रष्टव्य है :–

(i) हिंदी में ' वह हँस पडा। '; वह कूद पडा। '; आदि वाक्य हैं। अर्थ की दृष्टि से कोंकणी में इनका रूपान्तरण ' तो हांसलो. '; ' ताणें उडी मारली. '; आदि होगा। हिंदी वाक्यों का शब्दशः कोंकणी में अनुवाद करें तो ' तो हांसून पडलो. '; ' तो उडी मारून पडलो. ' ; आदि होगा। हिंदी के ' वह हँस पडा। '; ' वह कूद पडा। ' तथा कोंकणी के ' तो हांसून पडलो. ' ; ' तो उडी मारून पडलो. ' में स्पष्ट ही अर्थान्तर है। इसके सिवा यहाँ हिंदी में एक और जो अर्थान्तर है वह कोंकणी में प्राप्त नहीं है ; जैसे कि हिंदी के इन वाक्यों में ' अचांनक , तीव्रता ' का भाव है वह कोंकणी के वाक्यों में उपलब्ध नहीं है। इसी प्रकार हिंदी के ' बरसात आ गयी। '; ' वसंत ऋतु आ गयी। '; ' अनुसूया चली गयी। ' ; आदि वाक्यों में जो तरह तरह के भाव हैं वे अनुवाद करने पर भी कोंकणी वाक्यों में प्राप्त नहीं होते। इसलिए कोंकणी में अन्य शब्दों का प्रयोग करना पडता है, जैसे :– ' अरे वा ! पावस आयलो. ' ; ' आरे ! वसंत रुतू आयलो ! (वसंत रुतू येवन गेलो = वसंत ऋतु आकर गयी। ' ऐसा अर्थ नहीं होगा) '; ' अनुसूया गेलें/गेली . ' ; आदि।

(ii) हिंदी में ' मैं आम खा चुका हूँ। ' वाक्य है। इस वाक्य का अर्थ यदि कोंकणी में स्पष्ट करना चाहें तो इस प्रकार होगा , ' हांव आमो खावंन मेकळों जालों (= मैं आम खाकर अलग हुआ हूँ) ' । परंतु उपर्युक्त वाक्य का रूपान्तर करना चाहें तो इस प्रकार होगा, ' हांव आमो खावंन चुकलों . ' । यदि ऐसा रूपान्तर किया जाए तो इस वाक्य में और हिंदी के उपर्युक्त ' मैं आम खा चुका हूँ। ' वाक्यों में अर्थान्तर होगा। हिंदी के ' मैं आम खा चुका हूँ। ' वाक्य का कोंकणी में ' हांव आमो खावंन चकुलों .' शब्दों में अनुवाद

करने से ' मैंने आम खाकर गलती की । ' रूप में अर्थ प्राप्त होगा जो हिंदी के ' मैं आम खा चुका हूँ । ' वाक्य से अभिहित नहीं है । इसी प्रकार हिंदी के ' बिल्ली चूहा खा गयी । ' वाक्य का कोंकणी में ' मांजर हुनीर खावन गेलें. ' अर्थ नहीं होगा । कोंकणी में उसका अर्थ ' मांजरान हुनीर खालो (=बिल्ली ने चूहा खाया) ' होगा ।

(iii) हिंदी के ' बच्चा रो उठा । ' वाक्य में जो आकस्मिकता है वह प्राप्त होने के लिए कोंकणी में संयुक्त क्रिया नहीं है । वहाँ कोंकणी में ' यकायक ' अर्थ में ' एकदम ' शब्द का प्रयोग आवश्यक हो जाता है, जैसे :– भुरगो एकदम रडलो .' । यहाँ हिंदी के ' बच्चा रो उठा । ' वाक्य का कोंकणी में शब्दशः अनुवाद करने से ' भुरगो रडून उठलो . ' होगा । कोंकणी में यह वाक्य है परंतु अलग अर्थ में । इसमें उपर्युक्त हिंदी के वाक्य में जो अर्थ है वह अर्थ प्राप्त नहीं होगा । इसके लिए हिंदी में ' बच्चा रोते हुए उठा । ' वाक्य कहना पडेगा । इसी प्रकार हिंदी के ' पक्षी बोल उठे । ' ; ' वह पूछ बैठा । ' वाक्यों की स्थिति होगी । इसके लिए कोंकणी में संयुक्त क्रिया नहीं है । हिंदी के ' वह चौंक पडी । ' वाक्य में संयुक्त क्रिया का जो अर्थ है वह कोंकणी में उपलब्ध नहीं होता है ।

(iv) हिंदी में समानार्थक दो क्रियाएँ प्रायः एक वाक्य में दिखायी देती हैं, जैसे :– ' वह गिर पडा । '; आदि । यहाँ गिरना और पडना दो क्रियाओं का प्रयोग हुआ है । हिंदी में ये दोनों क्रियाएँ प्रायः समानार्थक हैं ।

कोंकणी में इस प्रकार समानार्थक दो क्रियाएँ प्रायः एक वाक्य में नहीं दिखायी देती । अतः उपर्युक्त ' वह गिर पडा । ' वाक्य कोंकणी में ' तो पडलो. ' शब्दों में रूपान्तरित होगा । यहाँ हिंदी की तरह ' तो पडून पडलो.' या ' तो पड पडलो. ' नहीं होगा ।

(v) हिंदी में बनना क्रिया से होने वाली संयुक्त क्रिया अपने में एक विशेषता रखती है जो प्रायः देखते ही बनती है, जैसे :– ' ताजमहल का सोंदर्य देखते ही बनता है । ' ; ' सीता का गाना सुनते ही बनता है । '; आदि । यहाँ हिंदी में जो भाव है वह कोंकणी में संयुक्त क्रिया से व्यक्त करना कठिन है ।

(vi) हिंदी में ' लेना ' और ' देना ' दो क्रियाएँ ऐसी हैं जिनका संयुक्त क्रिया में दुबारा प्रयोग होता है, जैसे :– लेना : ' वीणा ने संध्या से किताबें ले लीं । '; ' आम ले लो । ' आदि । देना : ' राम ने मेरी किताब वापस दे दी । '; ' पैसे दे दो । ' आदि ।

इस प्रकार कोंकणी में दो ' घेवप (= लेना) ' और दो ' दिवप (= देना) ' क्रियाओं का संयुक्त क्रिया के रूप में प्रयोग नहीं होता है, जैसे :– घेवप : ' वीणान संध्याकडच्यान पुस्तकां घेतलीं.' ; ' आमो घे. '; आदि । दिवप : ' रामान म्हजें पुस्तक परत दिलें. ' ; ' पैशे दी. ' आदि ।

(vii) हिंदी में संयुक्त क्रियाओं के कारण कर्तरि आदि प्रयोगों में अंतर आता है, जैसे :– हिंदी का ' वह कूद पडा । ' वाक्य अकर्मक कर्तरि प्रयोग में है; तो कोंकणी का ' ताणें उडी मारली. ' वाक्य कर्मणि प्रयोग में है । हिंदी के ' बिल्ली चूहा खा गयी । ' वाक्य का

कोंकणी में अर्थ होगा ' मांजरान हुनीर खालो. ' । इन दोनों वाक्यों में सकर्मक कर्तरि तथा कर्मणि प्रयोगों की दृष्टि से अन्तर है । इसी प्रकार हिंदी के ' वह पूछ बैठा । ' और कोंकणी के ' ताणें विचारलें. ' में भी प्रयोगों की दृष्टि से अन्तर है ।

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी में संयुक्त क्रियाओं की रचना में भेद होने के कारण हिंदी तथा कोंकणी वाक्यों में कर्तृवाचक ' ने ' तथा ' न/नी ' आदि लगाने में अन्तर आता है ।

विशेष :

कोंकणी में एक अन्य प्रकार की क्रिया प्राप्त होती है । इसमें एक ही क्रिया का तीन बार प्रयोग होता है । क्रिया की अतिशयता या आधिक्य द्योतित करने के लिए यह पद्धति प्रायः प्रयुक्त है, जैसे :– ' तो धांव धांव धांवलो. (= वह दौड दौड दौडा ।)' ; ' तो हांस हांस हांसता. (= वह हँस हँस हँसता है ।)'; ' हांव काम कर कर करतालों. (मैं काम कर कर करता था ।) ' ; ' तो रात-दिस खा खा खातालो. (= वह रात-दिन ख़ा खा खाता था ।)' ; आदि ।

इस प्रकार एक ही क्रिया का तीन बार प्रयोग करने की कोंकणी की पध्दति हिंदी में प्रायः प्राप्त नहीं है ।

संक्षेप में

१) हिंदी तथा कोंकणी पदन्क्रम में अन्तर नहीं है । कहीं-कहीं अर्थ-वैशिष्ट्य के लिए दोनों में व्यत्यास भी होता है ।
२) हिंदी तथा कोंकणी पदों के अन्वय में साम्य होते हुए भी वचन, पुरुष, लिंग आदि में अन्तर भी है ।
३) हिंदी तथा कोंकणी कारक-चिह्नों के रूपों में थोडा-सा भेद है । उसी प्रकार इनके प्रयोगों में कहीं साम्य तो कहीं भेद है ।
४) हिंदी तथा कोंकणी में संज्ञाओं के विकृत रूपों से भी कारक-चिह्न का अर्थ स्पष्ट होता है परंतु यह विधा हिंदी की अपेक्षा कोंकणी में अधिक है ।
५) हिंदी की काल-रचना में हो रह तो कोंकणी की काल-रचना में आस (=अस्तित्वदर्शक होना) जा (=उत्पतिदर्शक होना) सहायक क्रियाओं का प्रयोग होता है ; फिर भी दोनों के प्रयोगो में कहीं साम्य तो कहीं वैषम्य है ।
६) शक्यार्थक क्रियाओं का प्रयोग प्रायः दोनों में समान है ।
७) हिंदी ' चाहिए ' तथा कोंकणी ' जाय ' के प्रयोगों में काफी साम्य होते हुए भी थोडा सा अन्तर है ।
८) निषेधार्थक अव्यय हिंदी ' नहीं , न , मत ' तथा कोंकणी ' ना , न्हय , नाका ' के प्रयोगों में अन्तर है ।

९) हिंदी ' चुकना ' तथा कोंकणी ' चुकप ' क्रिया के प्रयोगों में अन्तर है। इसी प्रकार हिंदी में ' चुकना ' सहायक क्रिया के रूप में प्राप्त है जो कोंकणी में प्रायः प्राप्त नहीं है।
१०) हिंदी ' भविष्य आज्ञार्थ (परोक्षविधि)' तथा कोंकणी ' विध्यर्थ ' में यद्यपि अर्थ की दृष्टि से साम्य है फिर भी दोनों की वाक्य-रचनाा और वाच्यों में अन्तर है।
११) हिंदी ' आप ' तथा कोंकणी ' आपुण ' निजवाचक शब्दों में थोडा-सा साम्य है फिर भी दोनों के प्रयोगों में थोडा अन्तर है। हिंदी ' आप ' जैसा शब्द कोंकणी में भी प्राप्त है परंतु उसका प्रयोग प्रायः संयुक्त-शब्दों में प्राप्त होता है।
१२) हिंदी ' अपना ' तथा कोंकणी ' आपलो , आपणालो, आपणाचो ' शब्दों में रूप और संख्या की दृष्टि से अन्तर है। इसी प्रकार इनके प्रयोगों में भी अन्तर है।
१३) प्रश्नवाचक हिंदी ' क्या ' तथा कोंकणी ' कितें ' के प्रयोगों में अन्तर है।
१४) हिंदी तथा कोंकणी संयुक्त क्रियाओं की वाक्य-रचना के अर्थों में काफी अन्तर आता है।
१५) हिंदी में आधिक्य दिखाने के लिए एक ही क्रिया का तीन बार प्रयोग नहीं होता है जो की कोंकणी में प्राप्त होता है।

अध्याय १२

उपसंहार

हिंदी तथा कोंकणी की समीपवर्तिता

यहाँ तक की गयी तुलना के आधार पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि हिंदी तथा कोंकणी भाषाओं का मूल प्रेरणास्रोत एक ही है । ये दोनों भाषाएँ भारतीय आर्यभाषा परिवार की हैं । इन दोनों का स्रोत वैदिक भाषा एवं संस्कृत भाषा है । अत एव हिंदी तथा कोंकणी भाषाओं के व्याकरणों का सामान्य स्वरूप, वाक्य-रचना एवं वाक्प्रचार आदि अनेक बातें परस्पर मिलती जुलती हैं । फिर भी हिंदी तथा कोंकणी भाषाओं का प्रवाह भिन्न-भिन्न दिशाओं में मुडने के कारण दोनों में समानताओं के साथ-साथ विषमताएँ भी प्राप्त होती हैं । परंतु दोनों एक ही परिवार की भाषाएँ होने के कारण दोनों में साम्य अधिक वैषम्य कम दिखायी देता है । यह स्वाभाविक भी है । निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होती है –

१) हिंदी तथा कोंकणी देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं । कोंकणी यद्यपि प्रायः चार लिपियों में लिखी जाती है (जैसे – देवनागरी , रोमन, कन्नड तथा मलयालम) तो भी आज प्रमुखता देवनागरी लिपि को ही मिली है ।

२) हिंदी तथा कोंकणी में कुछ थोडी ही ध्वनियाँ भिन्न है, जैसे :– हिंदी में 'क़् , ख़्, ग़् , ज़्, ड़् ' आदि वर्ण हैं जो कोंकणी में अप्राप्य हैं ; फिर भी यह भेद आधुनिक हिंदी के कुछ विद्वानों की दृष्टि से गौण है । इससे यह भेद मिटता जा रहा है । कोंकणी के द्वितीय प्रकार के ' च् , ज् , झ् , में केवल उच्चारण का ही भेद है जिसके कारण हिंदी तथा कोंकणी लिपि में अन्तर प्राप्त नहीं होता है । कोंकणी के तद्भव शब्दों में प्राप्त होने वाला ' ण ' हिंदी के तद्भव शब्दों में यद्यपि उपलब्ध नहीं होता है तो भी वह हिंदी में , तत्सम शब्दों में प्राप्त होता है । अतः यह भेद भी हिंदी भाषा भाषियों की दृष्टि से गौण है । कोंकणी में ' ळ् ' प्राप्त है जो परिनिष्ठित हिंदी में प्राप्त नहीं है । इसके कारण हिंदी तथा कोंकणी लिपि में थोडा अन्तर प्राप्त होता है ; फिर भी यह ' ळ् ' हिंदी भाषा भाषियों को पूर्णतया अपरिचित नहीं है । इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी में लिपि की दृष्टि से बहुत ही समानता है ।

३) संस्कृत आदि भाषाओं से विकसित हिंदी तथा कोंकणी तद्भव शब्दों के ध्वनि–

विकास में भी बहुत समानता पायी जाती है। फिर भी हिंदी तथा कोंकणी के ध्वनि-विकास की तुलना में एक बात देखी जाती है कि संस्कृत आदि शब्दों में प्राप्त स्वरों और व्यंजनों का विकास भी विविध स्वरूप में भी प्राप्त होता है। यह विविधता थोडे ही प्रयास से आत्मसात की जा सकती है। अतः यह विविधता भी प्रायः गौण है। स्वराघात से अर्थ में परिवर्तन कर देने वाली शक्ति भी हिंदी तथा कोंकणी में समान रूप से पायी जाती है।

४) हिंदी तथा कोंकणी की व्याकरणिक कोटियों में समानता के साथ थोडी विषमता भी प्राप्त है, यथा :– पुल्लिंग , स्त्रीलिंग, वचन , मूल रूप , विकृत रूप तथा कुछ कारक-चिह्न आदि में समानता है, फिर भी नपुंसकलिंग, समानाक्षर शब्दों में प्राप्त लिंगभेद तथा कुछ कारक-चिह्न आदि में विषमता है।

५) संज्ञा के अन्त में प्राप्त स्वरों में भी काफी साम्य है। अलगाव की दृष्टि से हिंदी में आकारान्त तो कोंकणी में ओकारान्त शब्दों का प्राचुर्य है। फिर भी हिंदी में ओकारान्त तथा कोंकणी में आकारान्त शब्द भी प्राप्त हैं जिससे हिंदी में प्राप्त आकारान्त तथा कोंकणी में प्राप्त ओकारान्त शब्दों की प्रवृत्ति एकदम अपरिचित सी नहीं लगती।

६) हिंदी तथा कोंकणी सर्वनामों में प्रायः वैषम्य है साथ-साथ थोडा साम्य भी है।

७) हिंदी तथा कोंकणी विशेषणों में प्रायः समानता दीखती है।

८) हिंदी तथा कोंकणी-काल रचना में एकधातुक क्रिया है तथा सहायक क्रिया + कृदन्त से बनने वाली भी क्रिया है। कहीं-कहीं इनका हिंदी तथा कोंकणी के समानर्थक काल में व्यत्यय भी दीखता है। कर्मवाच्य तथा भाववाच्य की रचना में अन्तर प्राप्त होते हुए भी शेष वाच्यों की रचना में प्रायः समानता है। इसी प्रकार प्रेरणार्थक धातु, नामधातु ,संयुक्त क्रिया आदि में प्रायः समानता है।

९) उपसर्गों और प्रत्ययों में समानता के साथ कुछ विषमता प्राप्त है।

१०) अव्ययों में भी कुछ अव्यय समान है तो कुछ अव्यय अलग हैं।

११) हिंदी तथा कोंकणी के बहुत से शब्दसमूह तथा शब्दार्थों में प्रायः समानता है। मुहावरों , कहावतों की रूप-रचना हिंदी तथा कोंकणी में भिन्न भिन्न शब्दों में होती है , फिर भी अर्थ की दृष्टि से दोनों में समानता होती है।

१२) हिंदी तथा कोंकणी वाक्य-रचना में स्थान की दृष्टि से कर्ता , कर्म और क्रिया समान रहती है । कहीं-कहीं इस क्रम में भी व्यत्यय प्राप्त होता है, जिससे हिंदी तथा कोंकणी
वाक्य-रचना में अन्तर प्राप्त होता है । कारक-चिह्नों में कहीं-कहीं सूक्ष्मता बरतनी पडती है जिससे हिंदी तथा कोंकणी में अर्थ-भेद भी हो सकता है । हिंदी तथा कोंकणी के समानार्थक वाक्यों में कहीं कहीं अलग-अलग कारक-चिह्न जुडते हैं । हिंदी निषेधार्थक शब्दों , प्रश्नार्थक शब्दों , निजवाचक शब्दों आदि में भी कुछ फर्क के साथ साम्य है ।

इस प्रकार हिंदी तथा कोंकणी में विषमता के साथ-साथ समानता भी प्राप्त है ।

विषमता के कारण हिंदी के अध्ययन में प्राप्त कठिनाइयाँ दूर करने के उपाय

हिंदी तथा कोंकणी एक ही स्रोत से प्राप्त हैं । अतः इनमें प्रायः समानता प्राप्त है । फिर भी प्रदेश की भिन्नता, भौगोलिक वातावरण की विभिन्नता तथा भिन्न-भिन्न आधिपत्यों के वर्चस्व में रहने के कारण हिंदी तथा कोंकणी में विषमता भी प्राप्त है । इस विषमता की ओर ध्यान देकर कोंकणी भाषा भाषियों को हिंदी की विषमताओं के संबंध में पूरी तरह से परिचित किया जाना चाहिए । इससे कोंकणी भाषा भाषी विद्यार्थियों को हिंदी के अध्ययन में प्राप्त कठिनाइयों का ज्ञान हो जाएगा तथा उनका हिंदी का अध्ययन सुलभ और सूक्ष्म हो जाएगा ।

अपनी मातृभाषा से पूर्ण परिचित विद्यार्थी को हिंदी सीखते समय अथवा हिंदी-भिन्न भाषा से परिचित विद्यार्थी को हिंदी पढाते समय प्रायः तीन प्रकार की समस्याओं का सामना करना पडता है, जैसे : – (I) उच्चारण की समस्या (II) रूप-रचना की समस्या और (III) वाक्य-रचना की समस्या ।

हिंदी तथा कोंकणी देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं । अतः दोनों में लिपि की दृष्टि से भिन्नता नहीं है । फिर भी हिंदी तथा कोंकणी की कुछ ध्वनियों के उच्चारण पद्धति में भिन्नता है । इसके कारण हिंदी तथा कोंकणी बोलकर तुरंत कोंकणी या हिंदी बोलना चाहें तो प्रायः उसमें एकदम रुकावट-सी पैदा हो जाती है । इतना ही नहीं उच्चारण प्रक्रिया में भी अन्तर प्राप्त होता है । जैसे :– हिंदी में 'घोडा ' शब्द का उच्चारण करने पर तुरंत कोंकणी ' घोडो (उच्चारण की दृष्टि से घॉडॉ)' शब्द का उच्चारण करना चाहते हैं तो इसमें कठिनाई प्राप्त होती है और जो उच्चारण होता है वह ठीक नहीं होता तथा उसका उच्चारण सहजता से नहीं हो पाता । हिंदी ' बाहर ' , ' हाथी ' तथा कोंकणी ' भायर ' , ' हती ' आदि शब्दों के उच्चारण में थोडी-सी कठिनाई होती है ।

इसके सिवा हिंदी तथा कोंकणी की कुछ ध्वनियों की लिपि तथा उच्चारण में थोडा-सा अन्तर प्राप्त होता है, जैसे :– हिंदी ' मैं ' शब्द का उच्चारण जिस प्रकार हिंदी भाषा भाषी करते हैं उस प्रकार का उच्चारण कोंकणी भाषा भाषी नहीं कर पाते । इसी प्रकार कोंकणी में ' फातर (एक.) ' शब्द का उच्चारण ' फातोर (एक.) ' जैसा होता है । ' फातोर ' में प्राप्त ' ओ ' पूर्णतया ' ओ ' नहीं है बल्कि वह प्रायः ' अ ' तथा ' ओ ' के उच्चारण की मध्य स्थिति में प्राप्त होने वाला है । इसका उच्चारण हिंदी भाषा भाषी ठीक तरह से नहीं कर पायेंगे । कोंकणी के ' देव , मोर (बहु.) ' आदि शब्दों का उच्चारण भी हिंदी भाषा भाषियों को कठिन लगेगा ।

कोंकणी में 'च् , ज् , झ् ' ध्वनियाँ दो प्रकार की हैं परंतु हिंदी में एक ही प्रकार की ' च् , ज् , झ् ' ध्वनियाँ हैं । इससे हिंदी भाषा भाषियों कों कोंकणी के द्वितीय प्रकार के ' च् , ज् , झ् ' के उच्चारण में कठिनाई प्राप्त होती है ।

ध्वनियों की दृष्टि से कोंकणी में ' ळ् ' ध्वनि है जो हिंदी में प्राप्त नहीं है । कोंकणी में प्राप्त ' ळ् ' के बदले हिंदी में सर्वत्र ' ल् ' लिखा और बोला जाता है ।

हिंदी के आकारान्त तथा कोंकणी के ओकारान्त प्रवृत्ति के कारण हिंदी तथा कोंकणी भाषा भाषियों में आपस में बोलते समय कुछ असुविधा होती है ।

हिंदी तथा कोंकणी में कुछ सर्वनाम समान हैं तो कुछ सर्वनाम असमान हैं । इससे असमान सर्वनामों के उच्चारण तथा लिखने में सरलता प्राप्त नहीं होती है । इसके सिवा कोंकणी सर्वनामों में लिंग-भेद तथा कारक-चिह्न भेद भी प्राप्त है जिससे कठिनाई का अनुभव होता है ।

क्रिया की दृष्टि से भी हिंदी तथा कोंकणी में कठिनाइयाँ प्राप्त है । तिङन्त से बनने वाले कालों, कृदन्त से बनने वाले कालों तथा कृदन्त + सहायक क्रिया से बनने वाले कालों में थोडी कठिनाई प्राप्त है । इसलिए हिंदी तथा कोंकणी भाषा भाषी काल-रचना में गलतियाँ कर सकते हैं ।

कारक-चिह्न हिंदी में संज्ञा से अलग लिखे जाते हैं जिससे कोंकणी विद्यार्थी इसमें गलती करते हैं ।

कोंकणी भाषा भाषी विद्यार्थी जब हिंदी में लिखते हैं तो वे अपनी मातृभाषा प्रभाव के कारण अनेक गलतियाँ करते हैं, जैसे :– 'कवि ' शब्द को 'कवी ' रूप में लिखना; ' परीक्षा , दूकान ' शब्दों को ' परिक्षा, दुकान ' रूप में लिखना; 'सबंध, भाई ' शब्दों को 'संबंद, बाई ' रूप में लिखना ; आदि । इस दृष्टि से उन्हें उचित जानकारी देना चाहिए ।

लिंग के कारण भी कुछ गलतियाँ होती रहती हैं , जैसे :– ' घर ' शब्द कोंकणी में नपुंसकलिंग है । अर्थात् ' तें तागेलें घर आसा. ' कोंकणी का वाक्य विद्यार्थी हिंदी में ' वह उसके घर है । ' रूप में लिखता है । वास्तव में होना चाहिए था ' वह उसका घर है । '। इसी प्रकार ' हें म्हजें पुस्तक आसा. ' कोंकणी का वाक्य हिंदी में ' यह मेरे/मेरा पुस्तक है ।' रूप में किया जाता है जो वास्तव में ' यह मेरी पुस्तक है । ' रूप में होना चाहिए ।

कारक चिह्न लगाते वक्त पूर्व स्थित विकृत रूपों में कुछ गलतियाँ महसूस होती हैं, जैसे : – मैं परीक्षे (यहाँ ' री 'हृस्व भी लिखा जाता हैं) में उत्तीर्ण हुआ । ' । हिंदी के इस वाक्य में ' परिक्षे में ' जो किया है उस पर मातृभाषा का प्रभाव है, क्यों कि कोंकणी में ' हांव परीक्षेक पास जालों .' वाक्य का प्रयोग किया जाता है । उसी प्रकार ' हे बालकों (होना चाहिए ' बालको ') , काम करो ।' वाक्य कोंकणी के ' ए भुरग्यांनो, काम करात. ' के आधार पर होता है । इसी प्रकार ' ए भुरग्या , खंय वता ?' के आधार पर हिंदी में ' हे लडका, किधर जाता है ? ' किया जाता है ।

कारक-चिह्न लगाते समय भी कुछ विपर्यय होता है । कोंकणी के ' हांव परीक्षेक पास जालों. ' वाक्य के आधार पर हिंदी में ' मैं परीक्षा को उत्तीर्ण हुआ । ' किया जाता है जो कि ' मैं परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ । ' होना चाहिए था । यहाँ कोंकणी में ' क ' के आधार पर हिंदी में ' को ' प्रत्यय लगाया जाता है जो गलत है । यहाँ कभी कभी 'परीक्षेको ' भी किया जाता है ; वह भी गलत है । इसी आधार पर ' सुकण्याक पांखां आसात. ' कोंकणी के वाक्य का रूपान्तरण 'पक्षी को पंख होते हैं । ' किया जाता है , जो होना चाहिए था ' पक्षी के पंख होते हैं । ' । ' ने ' कारक के संबंध में भी गलती होती हैं । जैसे :– ' राम आम लाया । '; ' राम सब्जी लाया । ' वाक्यों का कोंकणी में रूपान्तरण होगा , ' रामान आमो हाडलो. '; ' रामान भाजी हाडली . ' आदि ।

इस प्रकार की अन्य कुछ कठिनाइयाँ हिंदी तथा कोंकणी भाषा भाषियों की दृष्टि से हो सकती हैं । विशेषतः जब कोई हिंदी भाषा भाषी गोवा के विद्यार्थियों को हिंदी पढाता तब उसे उपर्युक्त प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पडता है । हिंदी भाषा भाषी भी कोंकणी भाषा से अनभिज्ञ रहने के कारण इन कठिनाइयों को अच्छी तरह सुलझा नहीं सकते । अतः उन्हें इन कठिनाइयों की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है ।

नीचे हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त कठिनाइयों को दूर करने के लिए कुछ उपाय सूचित लिए हैं ।

१) हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त साम्य तथा वैषम्य का भली भाँति ज्ञान प्राप्त करा लेना आवश्यक है , और इसके आधार पर प्राप्त कठिनाइयों को सुलझाने का प्रयत्न करना आवश्यक है ।

२) हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त असमानताओं का विचार करना चाहिए जिससे हिंदी तथा कोंकणी अपनी-अपनी विशेषताएँ कायम रखते हुए भी दोनों में असमानताएँ कम रह जाएँ और उन्हें सामान्यतया भिन्न रूप में पहचाना न जा सकें ।

३) हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त समानताओं को पूर्ण रूप में उभारना चाहिए जिससे हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त असमानताओं की ओर नजर कम पहुँच सके ।

वास्तव में हिंदी में संस्कृत शब्द बहुत हैं तो भी आज हिंदी में संस्कृत शब्द बहुत बडी संख्या में लिये गये हैं और लिये जा भी रहे हैं । परंतु कोंकणी में संस्कृत शब्द बहुत ही कम लिये जा रहे हैं । फिर भी कोंकणी में भी बहुत बडी संख्या में संस्कृत शब्दों को लेने की आवश्यकता धीरे-धीरे महसूस होने लगेगी और उन्हें हमें स्वीकारना पडेगा । इससे हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त समानता उभर आयेगी । परंतु संस्कृत ज्ञान के अभाव में हमारे कोंकणी लेखक संस्कृत के कुछ शब्दों को मराठी के मान बैठते हैं या उन्हें टालने या तोडने-मरोडने का प्रयत्न करते हैं जो गलत है ।

उपर्युक्त उपायों का समुचित रूप में ज्ञान करा लेने के लिए हिंदी तथा कोंकणी का तुलनात्मक भाषाशास्त्रीय अध्ययन आवश्यक है । इस अध्ययन के आधार पर ही हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त विषमता को दूर किया जा सकता है तथा इनमें प्राप्त कठिनाइयों को सरलता से अपनाया जा सकता है । इस दृष्टि से किया गया यह छोटा-सा प्रयत्न है । इस प्रयत्न से हिंदी भाषा भाषी को हिंदी पढाते समय कुछ-न-कुछ जरूर लाभ होगा । इसके आधार पर वह हिंदी की रचना कोंकणी विद्यार्थियों को सरलता से समझाने में सफल रहेगा । इस दृष्टि से इस अध्ययन का उपयोग हिंदी भाषा भाषी को विशेष उपयुक्त होगा ।

इसी प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन भी कोंकणी भाषा में लिखना आवश्यक है जिससे गोवा के उच्चतर पढाई करने वाले तथा जिज्ञासु विद्यार्थी अपनी भाषिक पूर्व-परंपरा से परिचित होकर हिंदी तथा कोंकणी में प्राप्त साम्य तथा वैषम्य को ठीक तरह से पहचान सकेंगे और उनको आत्मसात् करने में प्रयत्नशील रहेंगे । इस प्रकार हिंदी के अभ्यास में वे दत्तचित्त रहेंगे ।

सामरस्य-भावना की निर्मिति की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन

हिंदी भारत की संपर्क भाषा है । इसके आधार पर भारत के विभिन्न प्रदेशों में भाषिक आदान-प्रदान किया जा सकता है । भाषिक आदान-प्रदान के लिए तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता है । इस तुलनात्मक अध्ययन से हिंदी तथा कोंकणी भाषा भाषी समीप आ सकेंगे तथा उनके भावात्मक एवं बौद्धिक विचारों का आदान-प्रदान होगा

जिससे दोनों में भावनात्मक एवं वैचारिक सामरस्य प्राप्त हो सकेगा। इस सामरस्य प्राप्ति के लिए हिंदी को और भी विकसित होना चाहिए। हिंदी को अपने में परिपुष्टता कोंकणी भाषा से प्राप्त कर
लेनी चाहिए तथा कोंकणी को अपना विकास हिंदी से साध्य करा लेना चाहिए। इस दृष्टि से कोंकणी में प्राप्त समानताओं को तो हिंदी अपना लेंगी ही तथा कोंकणी में प्राप्त असमानताओं को भी उसे अपनाते रहना चाहिए। इस प्रकार भारतीय विभिन्न प्रदेश की भाषाओं की विशेषताओं एवं विशिष्टताओं को आत्मसात् करके ही हिंदी भाषा समृद्ध हो सकेगी। इससे हिंदी का जो नया रूप निखर आएगा वही सर्वमान्य हिंदी का स्वरूप रहेगा। यह हिंदी हर एक प्रादेशिक भाषा के समीप रहते हुए भी सर्व-परिचित होगी ; जिससे प्रत्येक व्यक्ति को इस भाषा में व्यवहार करने में कठिनाई का अनुभव नहीं होगा। इसके लिए हिंदी तथा प्रादेशिक भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन उत्तम साधन है। इस दृष्टि से किया हुआ यह छोटा-सा प्रयास है। इसके द्वारा सुदूर हिंदी भाषा भाषियों तथा कोंकणी भाषा भाषियों में भावात्मक एवं वैचारिक सामरस्य पैदा होने में सुलभता प्राप्त हो सकेगी।

सहायक ग्रंथों, पुस्तकों आदि की सूची

१) श्री अमरसिंहविरचित – "नामलिंगानुशासन", प्रकाशक गव्हर्मेंट सेंट्रल बुक डेपोट, बॉम्बे, पंचम संस्करण, ई. स. १८९६

२) – "ऋग्वेदसंहिता", प्र. जावजी तुकाराम, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई, ई. स. १९१०

३) श्री दीक्षित भट्टोजी – "सिध्दान्त कौमुदी", प्र. निर्णयसागर प्रेस, मुंबई, तृतीया आवृत्ति, ई. स. १८९१

४) प्रा. थत्ते परशुराम ह. चि. तथा शास्त्री गोविंद प. – "सुबन्त कौमुदी", प्र. गोपाल नारायण ॲण्ड को. कम्पनी, मुंबई, ई. स. १९०१

५) श्री पाणिनि महामुनिप्रणीत – "अष्टाध्यायी सूत्रपाठ", प्र. भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस – १, तृतीय संस्करण, ई. स. १९५१

६) डा. फाटक मधुकर – "पाणिनीयशिक्षायाः शिक्षान्तरैः सह समीक्षा", प्र. राय प्रिंटिंग वर्क्स, वारणासी, प्रथम संस्करण, ई. स. १९७२

७) श्री वररुचिप्रणीत – "प्राकृत प्रकाशन", प्र. चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, बनारस सिटी, ई. स. १९४०

८) पं. उपाध्याय शालिग्राम – "अपभ्रंश व्याकरण", प्र. भारतीय विद्याप्रकाशन, वारणासी, ई. स. १९६५

९) श्री काश्यप भिक्षु जगदीश – "पालि महाव्याकरण", प्र. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली–वारणासी–पटना, द्वितीय संस्करण, ई. स. १९६३

१०) डा. कोछड हरिवंश – "अपभ्रंश का साहित्य", प्र. भारती साहित्य मंदिर, फव्वारा, दिल्ली, संवत् २०१३

११) डा. गुणे पी. डी. – "तुलनात्मक भाषाविज्ञान", अनुवादक – डा. तिवारी भोलानाथ, प्र. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली – वारणासी – पटना, चतुर्थ संस्करण का प्रथम हिंदी अनुवाद, ई. स. १९६३

१२) श्री गुरु कामताप्रसाद – "हिंदी व्याकरण", प्र. नागरी प्रचारणी सभा, काशी, सातवाँ पुनर्मुद्रण, संवत् २०१९

१३) डा. चटर्जी सुनीतिकुमार – "भारतीय आर्यभाषा और हिंदी", प्र. राजकमल प्रकाशक, दिल्ली, तृतीय परिवर्धित संस्करण, ई. स. १९६३

१४) डा. चौधरी अनंत – "नागरी लिपि और हिंदी वर्तनी", प्र. बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना – ३, प्रथम संस्करण, ई. स. १९७३

१५) श्री जैन कोमलचंद्र – "प्राकृत प्रवेशिका", प्र. प्राच्यभारती प्रकाशन, अमच्छा, वाराणसी, प्रथम संस्करण, ई. स. १९६४

१६) श्री जोशी कांतिलाल और जेठालाल – "राष्ट्रभाषा व्याकरण और रचना" भाग २, ई. स. १९६२, भाग ३–४, ई. स. १९६३, प्र. धि जनरल बुक डेपो, प्रिन्सेस स्ट्रीट, मुंबई, २

१७) डा. तिवारी उदयनारायण – "हिंदी भाषा का उद्गम और विकास", प्र. भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, द्वितीय संस्करण, संवत् २०१८

१८) डा. तिवारी भोलानाथ – "भाषा विज्ञान कोश", प्र. ज्ञान मंडल लि. वाराणसी, प्रथम संस्करण, संवत् २०२०

१९) डा. तिवारी भोलानाथ – "भाषाविज्ञान", प्र. किताब महल, इलाहाबाद, सप्तम संस्करण, ई. स. १९६९

२०) डा. तिवारी भोलानाथ – "हिंदी भाषा", प्र. किताब महल, १५ थार्नाहिल रोड, इलाहाबाद, ई. स. १९६६

२१) डा. तिवारी भोलानाथ – "हिंदी भाषा का सरल व्याकरण", प्र. राजकमल प्रकाशन, दिल्ली – ६, तृतीया आवृत्ति, ई. स. १९६७

२२) श्री. तिवारी लक्ष्मीनारायण एवं शर्मा बिरबल – "कच्यायन व्याकरण", प्र. तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी, प्रथम संस्करण, ई. स. १९६२

२३) डा. नारंग सत्यपाल – "वैदिक व्याकरण", प्र. देववाणी प्रकाशन, ११५६/१४ रोहतास नगर, दिल्ली – ३२, प्रथम संस्करण, ई. स. १९७०

२४) डा. पांडेय रामवध और मिश्र रविनाथ (संपादक) – "पालि – प्राकृत – अपभ्रंश – संग्रह", प्र. विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९६८

२५) डा. पिशेल आर – '' ए कम्परेटिव्ह ग्रामर आफ द प्राकृत–लेंग्वेज '' का हिंदी अनुवाद, '' प्राकृत भाषाओं का व्याकरण '' अनुवादक – डा. जोशी हेमचंद्र, प्र. बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना – ३४ प्रथम संस्करण , ई. स. १९५८

२६) डा. बडथ्वाल पीतांबर दत्त – '' गोरख–बानी '' , प्र. हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, तृतीय संस्करण, संवत् २०१७

२७) डा. बाहरी हरदत्त – '' हिंदी : उद्धव, विकास और रूप '', प्र. किताब महल, प्रा. लि. इलाहाबाद, प्रथम संस्करण , ई. स. १९६५

२८) टी. बरो – '' द संस्कृत लैंग्वेज '' का हिंदी अनुवाद – ' संस्कृत भाषा ', अनुवादक – डा. व्यास भोलाशंकर, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी – १, प्रथम संस्करण, ई. स. १९६५

२९) ब्लाख ज्झूल – '' ल आँदो एरियाँ '' का हिंदी अनुवाद '' भारतीय आर्य भाषा '', अनुवादक–डा. वार्ष्णेय लक्ष्मीनारायण , प्र. हिंदी समिति सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश , प्रथम संस्करण , ई. स. १९६३

३०) ब्लूम फील्ड – '' लैंग्वेज '' का हिंदी अनुवाद ''भाषा '' , अनुवादक – डा. प्रसाद विश्वनाथ , प्र. मोतीलाल बनारसीदास , दिल्ली – वाराणसी – पटना, प्रथम संस्करण, ई .स. १९६८

३१) मैकडानल आ. ए. – '' ए वैदिक ग्रामर फार स्टुडण्टस् '' का हिंदी अनुवाद '' वैदिक व्याकरण '', अनुवादक – शास्त्री सत्यव्रत, प्र. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण, ई. स. १९७१

३२) मैक्समूल्लर एफ. – '' द सायन्स आफ लैंग्वेज '' का हिंदी अनुवाद '' भाषा विज्ञान '' , अनुवादक – डा. तिवारी उदयनारायण, प्र. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्रथम संस्करण, ई. स. १९७०

३३) डा. मोहम्मद मलिक (द्वारा संपादित) – '' अमीर खुसरो '', प्र. राजपाल एण्ड सन्स , कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्रथम संस्करण , ई. स. १९७५

३४) डा. राजवाडे शं. गो. (अनुवादक) – "ग्रामातिका इन्दोस्ताना (हिंदी अनुवाद)", प्र. जवाहर पुस्तकालय , सदर बाजार, मथुरा, १९७७

३५) डा. रायबहादुर बाबू श्यामसुंदरदास – "हिंदी भाषा" , प्र. इंडियन प्रेस, प्रा. लि. प्रयाग , ई. स. १९६१

३६) डा. वर्मा धीरेंद्र – "हिंदी भाषा का इतिहास", प्र. हिंदुस्थानी एकेडेमी, प्रयाग, नवम संस्करण, ई. स. १९७३

३७) श्री वाजपेयी किशोरीदास – "हिंदी शब्दानुशासन", प्र. नागरी प्रचारणी सभा, काशी, संवत् २०१४

३८) डा. शर्मा देवेंद्रनाथ – "भाषाविज्ञान की भूमिका", प्र. राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, ई. स. १९७२

३९) डा. शर्मा श्रीराम – "दक्खिनी हिंदी का उद्भव और विकास" , प्र. हिंदी साहित्य सम्मेलन , प्रयाग, प्रथम संस्करण, ई. स. १९६४

४०) डा. शास्त्री नेमिचंद्र – "अभिनव प्राकृत व्याकरण", प्र. तारा पब्लिकेशन्स, कमच्छा, वाराणसी, प्रथम संस्करण , ई. स. १९६३

४१) डा. शास्त्री नेमिचंद्र – "प्राकृत प्रबोध", प्र. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, ई. स. १९६५

४२) डा. शास्त्री नेमिचंद्र – "प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास" , प्र. तारा पब्लिकेशन्स, कमच्छा, वाराणसी, प्रथम संस्करण, ई. स. १९६६

४३) आचार्य शुक्ल रामचंद्र – "हिंदी साहित्य का इतिहास", प्र. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, चौदहवाँ पुनर्मुद्रण, संवत् २०१९

४४) डा. श्रीवास्तव वीरेंद्र – "अपभ्रंश भाषा का अध्ययन" , प्र. भारतीय साहित्य मंदीर, फव्वारा , दिल्ली, ई. स. १९६५

४५) डा. सिंह नामवर – "हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग", प्र. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय परिवर्द्धित संस्करण, ई. स. १९६१

४६) डा. सिंह कपिलदेव – "व्रजभाषा और उसके साहित्य की भूमिका", प्र. विनोद पुस्तक मंदिर, हास्पिटल रोड , आगरा , प्रथम संस्करण, ई. स. १९५६

४७) स्व. अमृतलाल सुंदरजी पढियार – '' बालकोंनी बातों '' का अनुवाद '' बालकों की बातें '', प्र. गीता प्रेस, गोरखपुर, अष्टम संस्करण, संवत् २०१७

४८) शैलेंद्र कुमार सिंह तथा प्रा. वसंत देव (संपादक) – '' मराठी की नयी कहानियाँ '', प्र. महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे – २, प्रथम संस्करण, ई. स. १९५९

४९) – '' एक्ट नंबर २ बाबत १९०१ ई. स. '', प्र. मुंशी नवलकिशोर (सी आई, ई) का छापखाना, लखनऊ, ई. स. १९०६

५०) पं. सुकल रघुनाथ प्रसाद – '' श्रीमद्भगवद्गीता वाक्यार्थ बोधिनी टीका '', प्र. धोंडो बाबाजी शेट देवळेकर, मुंबई, ई. स. १८८८

५१) – '' कहानी संग्रह, भाग २ '', अग्रवाल श्रीमन्नारायण (प्रकाशक) , राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, पाँचवाँ संस्करण, ई. स. १९४२

५२ – '' लोकभारती भाग – २ (हिंदी) '' , प्र. महाराष्ट्र राज्य माध्यमिक शिक्षण मंडळ ,पुणे – १०, प्रथमावृत्ति, ई. स. १९७३

५३) – '' आमची भास '', चवथें पुस्तक, प्र. कोंकणी भाशा मंडळ, मडगांव, गोंय(गोवा), तिसरी आवृत्ती, ई. स. १९७३

५४) – '' आमची भास '', सवें पुस्तक , प्र. कोंकणी भाशा मंडळ, मडगांव गोंय(गोवा) , पयलें उजवाडावप, ई. स. १९७४

५५) – '' आमची भास '' , सातवें पुस्तक, प्र. कोंकणी भाशा मंडळ, मडगांव, गोंय(गोवा), पयले उजवाडावप, ई. स. १९७५

५६) श्री केणी चंद्रकांत – '' आशाढ पांवळी '', प्र. जाग प्रकाशन, प्रियोळ–माड्डोळ, गोंय(पयली खेप), ई. स. १९७३

५७) श्री केळेकार रवींद्र (संपादक) – '' महात्मा '', प्र. गोमंत भारती प्रकाशन, गांवदेवी, मुंबई ७, ई. स. १९५५

५८) श्री केळेकार रवींद्र – '' हिमालयांत '' , प्र. जाग प्रकाशन , प्रियोळ–म्हाड्डोळ, गोवा, १९७६

५९) – "कोंकणी वाचनपाठ", यत्ता धावी, प्र. सेक्रेटरी, जी. डी. बी. बोर्ड, ऑफ सेकण्डरी ॲण्ड हायर सेकण्डरी एज्युकेशन, परवरी–गोवा, रिवायज्ड एडिशन, ई. स. १९७८

६०) श्री बोरकार बा. भ. – "कोंकणिची उतरावळ", प्र. कोंकणी भाशा मंडळ, मडगांव, गोंय, पयली खेप, ई. स. १९७३

६१) श्री वालावलीकार वा. र. वर्दे (शणै गोंयबाब) – "कोंकणी नादशास्त्र", प्र. गोमन्तक छापखाना, मुंबई – ४ ई. स. १९४०

६२) श्री वालावलीकार वा. र. वर्दे (शणै गोंयबाब) – "कोंकणी मुळावें पुस्तक", प्र. गोमन्तक छापखाना, गिरगांव, मुंबै–४, दुसरी खेप, ई. स. १९४७

६३) श्री वालावलीकार वा. र. वर्दे (शणै गोंयबाब) – "कोंकणिची व्याकरणी बांदावळ", प्र. गोमन्तक छापखाना, गिरगांव, मुंबै–४, प्रथम संस्करण, ई. स. १९४९

६४) श्री वालावलीकार वा. र. वर्दे (शणै गोंयबाब) – "गोमन्तोपनिषद्", प्र. कोंकणी भाशा मंडळ (गोंय), मडगांव, द्वितीय संस्करण, ई. स. १९६९

६५) श्री वालावलीकार वा. र. वर्दे (शणै गोंयबाब) – "भुरग्यांलें व्याकरण, पैलो वांटो", प्र. गोमन्त छापखाना, गिरगांव, मुंबै–४, ई. स. १९४१

६६) श्री वालावलीकार वा. र. वर्दे (शणै गोंयबाब) – "आमची भास", प्र. काझ गोमन्तक, मडगांव, गोवा, ई. स. १९६२

६७) संपादक रौप्य महोत्सव समिती – "आजचा व कालचा गोमन्तक", प्र. धि गोवा हिंदु ॲसोशिएशन रौप्य महोत्सव स्मारक समिती, मुंबई–४, ई. स. १९५४

६८) डा. कालेलकर ना. गो. – "भाषा आणि संस्कृति", प्र. मौज प्रकाशन गृह, खटाववाडी, मुंबई–४ पहिली आवृत्ति, ई. स. १९६२
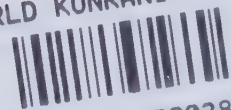
६९) प्रा. कुलकर्णी कृ. पां. – "भाषाशास्त्र आणि मराठी भाषा", प्र. ओरिएंटल बुक एजन्सी, १५ शुक्रवार पेठ, पुणें, ई. स. १९२५

७०) प्रा. कुलकर्णी कृ. पां. – "मराठी भाषा : उद्गम आणि विकास", प्र. द इन्टरनैशनल बुक सर्व्हिस पब्लिशर्स, पुणें–४, प्रथम संस्करण, ई. स. १९३३

७१) श्री गुंजीकर रा. भि. – "सरस्वती मंडळ", प्र. निर्णयसागर छापखाना, मुंबई, ई. स. १८८४

७२) श्री गुंजीकर रा. भि. – "रामचंद्र भिकाजी गुंजीकर यांचे संकलित लेख, प्रथम खंड", मुद्रक व प्रकाशक – रा. का. तटणीस, श्री लक्ष्मीनारायण प्रेस, ३६४ ठाकुरद्वार, मुंबई, ई. स. १९४२

७३) प्रा. चिपळूणकर कृष्ण शास्त्री – "मराठी व्याकरणावर निबंध", प्र. कान्टिनेन्टल प्रकाशन, विजयानगर कॉलनी, पुणे – ३०, द्वितीय आवृत्ती, ई. स. १९७१

७४) डा. तुळपुळे शं. गो. – "यादवकालीन मराठी भाषा", प्र. व्हीनस प्रकाशन, ३८१ क, शनिवारपेठ, पुणे – ४११ ०३०, पुनर्लिखित दुसरी आवृत्ती, ई. स. १९७३

७५) प्रा. तर्खडकर द्वा. रा. – "भाषान्तर पाठमाला भाग – २", प्र. निर्णयसागर प्रेस, मुंबई १५, बावन्नावी आवृत्ती, ई. स. १९७७

७६) श्री नृसिंहचार्य विरचित – "श्री लक्ष्मी वेंकटेश विजय", प्र. श्री राम तत्व प्रकाश प्रिंटिंग प्रेस, बेळगांव, चौथी आवृत्ती, ई. स. १९७३

७७) प्रा. प्रियोळकर अ. का. – "ग्रांथिक मराठी भाषा आणि कोंकणी बोली", प्र. पुणे विद्यापीठ, पुणे, आवृत्ती १ ली, ई.स. १९६६

७८) श्री राजगुरु दि. के. व गो. वि. – "संस्कृत व्याकरण प्रबोध", प्र. बॉम्बे बुक कंपनी, गिरगांव, मुंबई–४, दुसरी आवृत्ती, ई.स. १९६३

७९) श्री सुळे खण्डेराव त्र्यंबक तथा नायक नरेंद्र – "सुगम हिंदी व्याकरण", प्र. स्वस्तिक पब्लिकेशिंग हाऊस, मुंबई–४, प्रथमावृत्ती, ई.स. १९३९

८०) श्री जोशी विनायक शंकर – "कन्नड प्रबोधन", प्र. स्टुडंट्स ओन् बुक डेपो, धारवाड

८१) डा. कत्रे. एस. एम. – द फार्मेशन ऑफ कोंकणी, डेक्कन कॉलेज, पुणा, दुसरी आवृत्ती, ई. स. १९६६

८२) डा. कत्रे. एस. एम. – "कोंकणी फोनेटिक्स.", प्र. कलकत्ता युनिव्हर्सिटी, कलकत्ता, ई.स. १९३५ (कलकत्ता युनिव्हर्सिटी जॉर्नल्)

८३) डा. कादरी एस. जी. मुहीउद्दीन – "हिंदुस्थानी फोनेटिक्स", प्र. इम्प्रिमेरी ला युनियन, टाइप्रोग्राफिक विलेन्यून–सेंट जोर्जस पेरीस, ई. स. १९३०

८४) डा. केलाग एस. एच. – "ए ग्रामर आफ दि हिंदी लैंग्वेज", प्र. ट्रबनर ऐण्ड कंपनी लि., तृतीय संस्करण, लंडन, ई.स. १९३८

८६) डा. चटर्जी सुनीतिकुमार – "द ओरिजिन ऐण्ड डेवलपमेंट आफ द बंगाली लैंग्वेज", प्र. कलकत्ता युनिव्हर्सिटी, कलकत्ता, ई.स. १९२६

८६) डा. ग्रियर्सन जी. ए. – "लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया , भाग ७", प्र. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली–वाराणसी – पटना, रिप्रिंट – ई.स. १९६८

८७) प्रा. तगारे गजानन वासुदेव – "हिस्टारिकल ग्रामर आफ अपभ्रंश", प्र. डेक्कन कॉलेज, पुना, ई. स. १९४८

८८) श्री बरुआ अनोमदर्शी (भिक्षु) – "इन्ट्रोडक्शन टु पाली", प्र. प्राच्य भारती प्रकाशन, कमच्छा, वाराणसी, प्रथम संस्करण, ई.स. १९६५

८९) ब्लाख ज्झूल – "द फार्मेशन आफ द मराठी लिंग्विस्टिक लैंग्वेज", अनुवादक डा. देवराज चनान, प्र. मोतीलाल बनारसीदास, जवाहरनगर, दिल्ली–७ , ई.स. १९७०

९०) डा. भाण्डारकर रा. जी. – "विल्सन फायलोलोजिकल लैक्चर्स", बॉम्बे, १९१४

९१) बीम्स जान – "ए कम्पेरेटिव ग्रामर आफ द माडर्न आर्यन लैंग्वेजेस् आफ इंडिया", प्र. ट्रबनर ऐण्ड कंपनी, लंडन, द्वितीय भाग, ई.स. १८७५

९२) टी. ग्राहम बेली – "ए पंजाबी फोनेटिक रीडर", प्र. युनिव्हर्सिटी ऑफ लंडन प्रेस, ई.स. १९१४

९३) रावबहादुर एस. एस. तालमुखी – "कोंकणी प्रोव्हर्ब्स", बॉम्बे, ई.स. १९३२

९४) डा. रावसाहेब चव्हाण व्ही. पी. – "द कोंकण एण्ड द कोंकणी लैंग्वेज", बॉम्बे, ई.स. १९२४

९५) डा. रावसाहेब चव्हाण व्ही. पी. – "द कोंकणी प्रोव्हर्ब्स", बॉम्बे, ई. स. १९२६

९६) डा. हार्नली रूडोल्फ ए. एफ. – "ए कम्पेरेटिव ग्रामर आफ द गौडियन लैंग्वेजेस्", प्र. ट्रबनर ऍण्ड कंपनी, लंडन, ई.स. १८८०

९७) सौझ, पेलु कॉनेगो जुझे दे एस. रिटा ई – "एलिमेंतुस ग्रामातिसेस द लिंगु कोंकानी", इंप्रेंश लिमिताद एश्तिंत कॉव्हेंतु दस् मारानुश् ६ – लिजबोअ १९२९

९८) ला इस्तेव पेलु पाद्री थोमस – "ग्रामातिक दे लिंगु कोंकानी",सेगुंद इंप्रेसांव, नवा गोवा, ई.स. १८५७

९९) संपादक डा. ब्रजेश्वर वर्मा – गवेषणा १९७१ वर्ष ९, अंक १६, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

१००) संपादक डा. ब्रजेश्वर वर्मा – गवेषणा १९७१ वर्ष ९, अंक १७, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

१०१) संपादक डा. ब्रजेश्वर वर्मा – गवेषणा १९७२ वर्ष १०, अंक २०, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

१०२) संपादक डा. ब्रजेश्वर वर्मा – गवेषणा १९७३ वर्ष ११, अंक २२, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

१०३) संपादक डा. गोपाल शर्मा – गवेषणा १९७४ वर्ष १२, अंक २३, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

१०४) मराठी संशोधन मंडळ, – मराठी संशोधन पत्रिका, वर्ष २३, अंक २, १९७६, प्र. मराठी संशोधन मंडळ, १७२, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुंबई, ४०००१४

१०५) संपादक चंद्रकांत केणी – कुळागार वर्स १, अंक ३, प्र. नवगोमन्त प्रकाशन, मडगांव, गोंय (गोवा)

१०६) – आयचे सोविइत युनियन (पत्रिका), फेब्रुवारी १९७२ अंक २, पृ. ७, प्र. व्ही. ए. वेर्बेन्को, परडाईज, ५१ एल. भुलाभाई देसाय मार्ग, मुंबय–४०००२६

१०७) श्री आपटे वामन शिवराम – "संस्कृत हिंदी कोश", प्र. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली–पटना–वाराणसी, द्वितीय संस्करण, ई.स. १९६९

१०८) श्री कृष्णलाल वर्मा तथा राहामनबाई पेणकर – "राष्ट्रभाषा हिंदी मराठी कोश", प्र. ग्रंथ भांडार, लक्ष्मी हाऊस, माहीम, मुंबई नं. १६, प्रथमावृत्ती, ई.स. १९५१

१०९) श्री नवल जी – "नालन्दा विशाल शब्द सागर", प्र. आदीश बुक डेपो, ३८, यु. ए. जवाहर नगर, बंगला रोड, देहली–७, विक्रम संवत् २००७

११०) आखिल महाराष्ट्र हिंदी प्रचार समिति – "हिंदुस्थानी मराठी कोश", प्र. अखिल महाराष्ट्र हिंदी प्रचार समिति, ३७३ शनिवार पेठ, पुणे २ ई. स. १९३९

१११) दालगादु पेलु मोंसिन्योर सेबस्तियांव रोदोल्फ – "डिक्सियनरिओ कोंकणी पोर्चुगीझ", प्र. ना तिपोग्राफिया द इंदु प्रकाश, बॉम्बे, ई. स. १८९३

११२) भार्गव आर. बी. – "पॉप्युलर मॉडर्न डिक्शनरी", प्र. दि एज्युकेशनल पब्लिसिंग कंपनी, १७ बनाम हॉल लेन, गिरगांव, मुंबई–४

११३) श्री विश्वनाथ दिनकर नरवणे (संपादक) – "भारतीय कहावत संग्रह" का प्रथम खंड, प्र. त्रिवणीसंगम, प्रभात रोड, पुणे, ई. स. १९७८,